# विज्ञापना

श्रीजीनवरेंद्राय नम ॥ श्रीजैनधर्मी साधुसाधवी श्रावकश्रावीका चतुर्विधसंघने प्रथम ज्ञान दर्शन चारित्र तप ए ४ मोक्षमार्गना हेतु छे तेहमा पण ज्ञान मुख्य छे जेहथि हेय ज्ञेय उपादेय पदार्थनु जाणपणु थाय तेहथि प्रथम अभ्याश ज्ञाननो करवो जेहथि परपराये मुक्तिना लाभनो हेतु थाय एहवु जाणिने भव्य जीवना उपकारनिमित्ते आ बोलचालना थोकडा पंडितराज पूज्य श्रीदेवजी स्वामिना शिष्य सर्वगुणालंकृत महाराजश्री ५ लाधाजीस्वामी पांसे शुद्ध करावी छपावी प्रसिद्ध किधाछे तेहमा सुधारता कोइ पण भूल चूक रहि होय तो पंडितजन कृपा करी सिद्धात तथा ग्रंथ जोइ सुधारि लेशो एज माहरी विज्ञप्ति छे जेनमार्गमा ज्ञानपूर्वक क्रिया साफल्य छे विशु आ पुस्तक उघाडे मुखे तथा दिवाने अजवाले वाचवुं नहि ॥

ली भगवानदास केवलदास

## ॥ श्रीप्रकरणसंग्रहना प्रथमजागनी अनुक्रमनिका ॥

॥ ॐ नम ॥ श्रीवीतरागाय नम ॥ श्रीपार्श्वनाथाय नम ॥ श्रीगणधरेभ्यो नम ॥ अथ ७कायना बोल लिख्यते ॥ पहिले बोले ॥ ईंदीथावर काय ॥२॥ बीजे बोले ॥ बंभी थावरकाय ॥३॥ सपि थावरकाय ॥ ४ ॥ सुमति थावरकाय ॥ ५ ॥ पयावच थावरकाय ॥६॥ जगमकाय ॥ हवे गोत्र कहेछे ॥ पृथवी काय ॥१॥ अपकाय ॥२॥ तेउकाय ॥ ३ ॥ वाउकाय ॥ ४ ॥ वनस्पतिकाय ॥ ५ ॥ त्रसकाय ॥ ६ ॥ हवे पृथ्वीकायना ॥ बे भेद ॥ सुक्षम ॥ अने बादर ॥ सुक्ष्मते ॥ आखा लोकमा भ स्याछे ॥ ते आपणी नजरे नावे ॥ ज्ञानी जाणे देखे ॥ हवे बादरपृथ्वीकायना नाम कहेछे ॥ पहेले बोले ॥ माटीने मीठानी जात ॥ २ ॥ खमी खारानी जात ॥ ३ ॥ कालामिंढ ॥ मरमीया पाहाणा नेसिल्लानी जात ॥४॥ हिंगलो ॥ हम्तालनी जात ॥ ५ ॥ गेरु ॥ गोपीचदननी जात ॥ ६ ॥ रत्न ॥ परवालानी जात ॥ ७ ॥ सोल जातना रत्न ॥ आदि लेईने तेतालीस जातनी पृथ्वीकायछे ॥ तेना एक कक

# ॥ श्रीप्रकरणसंग्रहना प्रथमभागनी अनुक्रमनिका ॥



वम्री ॥ काया करेतो ॥ लाख जोजना जम्बुद्विपमा माय नहीं ॥ तेना कुल
लाख क्रोम्हे ॥ तेनु आउखु जघन्य ॥ अंतर मुहुर्तनु ॥ उत्कृष्टु सात हजार वर्षनुं
तेनी दया पालीये तो ॥ अनंता मोक्षना सुख पामीये ॥१॥ हवे तेउकाय ते अग्नी
तेना वे भेद । सुक्ष्म ने बादर ॥ सुक्ष्म ते आखा लोकमां भर्या छे ॥ ते आपणी
नजरे न आवे ॥ हवे बादर अग्नीना नाम कहेछे॥ पहिले बोले चूला ने भठीनी
अग्नी ॥२॥ धुमाम्री तापणीनो अग्नि ॥३॥ चकमक ने वीजलीनी अग्नि ॥४॥ दी
वाने उमाम्रानी अग्नि ॥ ५ ॥ लोढा धगधगता ने अरणीनी अग्नि ॥६॥ ए आ
दिलेइने घणी जातनी अग्नि छे ॥ तेना एकतणखामां ॥ असंख्याता जीव भ
गवते कह्याछे ॥ तेमाथी एकेको जीव नीकलीने । खसखसना दाणा जेवम्री ॥
काया करे तो जम्बुद्विपमा नमाय । तेना कुल ॥ त्रण लाख क्रोम्हे ॥ तेनुं आ
उखु । जघन्य ॥ अंतरमुहूर्तनुं ॥ उत्कृष्टुं ॥ त्रण अहोरात्रिनु ॥ तेनी दया पाली

मामा ॥ असख्याता जीव । श्रीभगवंते कह्याछे ॥ जुवार ॥ तथा पीलु ॥ जे
टली पृथ्वीकाय लइये ॥ तेमाथी ॥ एकेको जीव निकलीने । पारेवा जेवमो काया
करे तो ॥ एक लाख जोजननो जम्बुद्विप छे ॥ तेमा समाय नही ॥ तेना कुल
बार लाख कोम ॥ तेनुं आउखु ॥ जघन्य ॥ अतर मुहुर्त्तनुं ॥ उत्कृष्टु २२ ह
जार वर्षनुं ॥ तेनी दया पालीये तो मोक्षना सुख पामीये ॥ १ ॥ हवे अपकाय
ते पाणी ॥ तेना बे भेद ॥ सुक्ष्म ॥ अने बादर ॥ सुक्ष्मते ॥ आखा लोकमां भ
र्याछे ॥ ते आपणी नजरे न आवे ॥ बादर पाणीना नाम कहे छे ॥ पहिले
बोले ॥ वरसादने कराना पाणी ॥ २ ॥ झाकल ने धुमरना पाणी ॥ ३ ॥ कुवा नदी
तलावना पाणी ॥४॥ दरियाने । झरणना । पाणी ॥५॥ खारा । खाटा । पाणी ॥६॥
मीठा मोला पाणी ॥७॥ ए आदिलेइने घणी जातना पाणी छे ॥ ते पण

असंख्याता जीव कह्याछे ॥ तेमांथी [illegible] ॥ जातना [illegible]
वडी ॥ काया करेतो ॥ लाख जोजना जबुद्विपमा माय नही ॥ तेना कुल सा
लाख क्रोडछे ॥ तेनुं आउखु जघन्य ॥ अंतर मुहुर्तनुं ॥ उत्कृष्टुं सात हजार वर्षनुं
तेनी दया पालीये तो ॥ अनता मोक्षना सुख पामीये ॥२॥ हवे तेउकाय ते अग्नी
तेना वे भेद । सुक्ष्म ने वादर ॥ सुक्ष्म ते आखा लोकमां भर्यां छे ॥ ते आपणी
नजरे न आवे ॥ हवे वादर अग्नीना नाम कहेछे ॥ पहिले बोले चूला ने भठीनी
अग्नी ॥२॥ धुमाडी तापणीनो अग्नि ॥३॥ चकमक ने वीजलीनी अग्नि ॥४॥ दी
वाने उमाडानी अग्नि ॥ ५ ॥ लोढा धगधगता ने अरणीनी अग्नि ॥६॥ ए आ
दिलेइने घणी जातनी अग्नि छे ॥ तेना एकतणखामां ॥ असंख्याता जीव भ
गवंते कह्याछे ॥ तेमाथी एकेको जीव नीकलीने । खसखसना दाणा जेवडी ॥
काया करे तो जबुद्विपमा नमाय । तेना कुल ॥ त्रण लाख क्रोडछे ॥ तेनुं आ
उपु । जघन्य ॥ अतरमुहुर्तनुं ॥ उत्कृष्टु ॥ त्रण अहोरात्रिनुं ॥ तेनी दया पाली

मामा ॥ असस्याता जीव । श्रीभगवंते कह्याछे ॥ जुवार ॥ तथा पीलु ॥ जे
टली पृथ्वीकाय लइये ॥ तेमाथी ॥ एकेको जीव निकलीने । पारेवा जेवडो काया
करे तो ॥ एक लाख जोजननो जबुद्विप छे ॥ तेमा समाय नही ॥ तेना कुल
बार लाख क्रोड ॥ तेनु आउखु ॥ जघन्य ॥ अतर मुहुर्त्तनु ॥ उत्कृष्टु २२ ह
जार वर्षनु ॥ तेनी दया पालीये तो मोक्षना सुख पामीये ॥ १ ॥ हवे अपकार
ते पाणी ॥ तेना बे भेद ॥ सुक्ष्म ॥ अने बादर ॥ सुक्ष्मते ॥ आखा लोकमा भ
र्याछे ॥ ते आपणी नजरे न आवे ॥ बादर पाणीना नाम कहे छे ॥ पहिले
बोले ॥ वरसादने कराना पाणी ॥ २ ॥ झाकल ने धुमरना पाणी ॥ ३ ॥ कुरा नदी
तलावना पाणी ॥४॥ दरियाने । झरणना । पाणी ॥५॥ खारा । खाटा । पाणी ॥६॥
मीठा मोला पाणी ॥७॥ ए आदिलेइने घणी जातना पाणी छे ॥ तेना एक बिंदुमा
असंख्याता जीव क छे ॥

नी दया पालीये तो मोक्षना सुख पामीये ॥ ४ ॥ पांचमे बोले वनस्पतिकाय ॥ तेना बे भेद । सुक्ष्म ॥ अने ॥ बादर सुक्ष्म ते आखा लोकमां भर्याछे ॥ ते आपणी नजरे न आवे । बादरवनस्पतिकायना बे भेद ॥ प्रत्येक अने साधारण ॥ प्रत्येक कोने कहीये । सरीरे सरीरे एकेको जीव होय ॥ तेने प्रत्येक कहीये ॥ अने एक सरीरे अनंता जीव होय । तेने साधारण कहीये ॥ हवे प्रत्येकना नाम कहेछे ॥ पहिले बोले वृक्ष ने वेलानी जात ॥ रिंगणी तलसीने गुलमनी जात ॥ एरमा आकमा धतुरानी जात ॥ दाभम सेलमी ने केलानी जात ॥ भ्रो केवमो दाभमो ने तरणानी जात ॥ फूल कमल ने नागरवेलनी जात ॥ बोरमी केरमो ने कसेलानी जात ॥ जुवार बाजरो मठ मकाइनी जात ॥ ताजल जो सूवा मोघरी वालोरफलीनी जात ॥ ए आदि लेइने घणी जातनो प्रत्यके वनस्पति छे ॥ तेमा भगवाने त्रण प्रकारना जीव कह्याछे ॥ संख्याता ॥ असंख्याता ॥ अनं

ये तो ॥ अनता मोक्षना सुख पामीये ॥ ३ ॥ हवे वायराना भेद । सूक्ष्म ने वादर ॥ सुक्ष्मते आखा लोकमा भर्याछे । ते आपणी नजरे न आवे॥ हवे वादर वायराना नाम कहेछे ॥ पहिले वोले उगमणो ने आयमणो वा ॥ १ ॥ उत्तर ने दक्षीण नोवा ॥ ३ ॥ उचो निचो ने त्रिछो वा ॥ ४ ॥ वतोलियो ने मंडलीयो वा ॥ ५ ॥ गुंजवा ने सुधवा ॥ ६ ॥ एआदिलेइने घणी जातनो वायरो छे ॥ ते सुकर वे करी हणायछे ॥ उघाडे मोढे वोल्ये ॥ झापट नाखवे ॥ सुपडे सोरे । झाटकवे ॥ कातवे । विंजवे ॥ तालोटा वगाडवे ॥ विंझणे विंझवे ॥ ढींचोले ढीं चकवे ॥ आदिलेइने घणी जातना शस्त्रेकरी हणाय छे ॥ ते एकवार उघाडे मो ढे वोल्ये ॥ असंख्याता जीव हणाय छे ॥ तेमाथी एकेको जीव निकलीने ॥ वड ना वीज जेवडी काया करेतो ॥ जंबुद्विपमा नमाय ॥ तेना कुल सातलाखक्रोड छे ॥ तेनु आउखु । जघन्य । अंतरमुहूर्तनु ॥ उत्कृष्टुं ॥ त्रणहजार वर्षनु ॥ ते

नी दया पालीये तो मोक्षना सुख पामीये ॥ ४ ॥ पाचमे बोले वनस्पतिकाय ॥ तेना बे भेद । सुक्ष्म ॥ अने ॥ बादर सुक्ष्म ते आखा लोकमा भर्याछे ॥ ते आप णी नजरे न आवे । बादरवनस्पतिकायना बे भेद ॥ प्रत्येक अने साधारण ॥ प्रत्येक कोने कहीये । सरीरे सरीरे एकेको जीव होय ॥ तेने प्रत्येक कहीये ॥ अने एक सरीरे अनता जीव होय । तेने साधारण कहीये ॥ हवे प्रत्येकना ना म कहेछे ॥ पहिले बोले वृक्ष ने वेलानी जात ॥ रिंगणी तलसीने गुलमनी जा त ॥ एरमा आकमा धतुरानी जात ॥ दाम्म सेलमो ने केलानी जात ॥ धो के वमो दामो ने तरणानी जात ॥ फूल कमल ने नागरवेलनी जात ॥ बोरमो के रमो ने कसेलानी जात ॥ जुवार बाजरो मठ मकाइनी जात ॥ ताजल जो सूवा मोथरी वालोरफलोनी जात ॥ ए आदि लेइने घणी जातनो प्रत्यके वनस्पति छे ॥ तेमा भगवाने त्रण प्रकारना जीव कह्याछे ॥ संख्याता ॥ असंख्याता ॥ अनं

ता॥ए त्रण प्रकारना॥तेनी दया पालीये तो मोक्षना सुख पामीए॥ हवे साधा
रण वनस्पतिना नाम कहेछे॥ पहिले वोले लीलफूल सेवालनी जात॥ गा
जर मूलानी जात॥ मुंगली लसणनी जात॥ आदुने गरमरनी जात॥ रता
लु पिंमालुनी जात॥ कंटालो थोर खरसाणी कुवार सेलरानी जात॥ मोथ लु
णीनी जात॥ उगता अकुरा अने कूणी काकमीनी जात॥ ए कूणी वनस्पति
आदि सर्वे जातनी साधारण वनस्पति छे॥ एक कद मुलना कणमामां। अन
ता जीव छे॥ तेना कुल अठावीस लाखक्रोम छे॥ तेनु आउखु। जघन्य। अतर
मुहुर्तनु। उत्कृष्टुं दशहजार वर्षनुं। तेनी दया पालीये तो मोक्षनासुख पामी
ये॥ हवे त्रसकायना चार भेद छे। बे इंडी ते इंडी। चौरंडी। पचेंडी। हवे बे
इंडीना बे भेद। अप्रजाप्ता। अने प्रजाप्ता॥ बेइंडी तेकोने कहीये। जेने का
या। जीभ्या। बे इंडी ।तेने बेइंडी ।तेना नाम॥ जलो। कीमा।

करमीया ॥ सरमिया । मामणमुम्ग । अलसीया । लट । लाल । संख । छीप । को
म्ग ॥ आदि लेइने घणी जातना । बेइन्द्री जीव छे ॥ तेना कुलसातलाखक्रोम्छे ॥
तेनु आउखुं जघन्य ॥ अंतरमुहुर्तनु उत्कृष्टुं । बारवर्षनुं ॥ तेनी दया पालीये
तो । मोक्षना सुख पामीये ते इंद्रीना बे भेद । अप्रजाप्ता ॥ अने । प्रजाप्ता ॥
ते इंद्री ते कोने कहीये ॥ काया । मूख । ने नासिका होय तेने । ते इन्द्री कहीये ॥
तेना नाम ॥ जु । लीख । चाचम्ग । मांकम्ग । कीम्गी । कंथुवा । माटला । धनेम्ग ।
जूवा । ईतम्गी । गींगोम्ग ॥ घीमेल । गधैया । कानखजुरा ॥ मंकोम्ग ॥ एआ
दि घणी जातना ॥ ते इंद्री जीव छे ॥ तेना कुल ॥ आठलाख क्रोम्ग छे ॥ तेनुं आ
उखु ॥ जघन्य । अंतरमुहुर्तनुं ॥ उत्कृष्टुं । ओगणपंचासदिवसनुं ॥ तेनी दया
पालीये तो । मोक्षना सुख पामीये ॥ हवे चौरिंद्रीना बे भेद । ते अप्रजाप्ता । अने
प्रजाप्ता। चौइन्द्री ते कोने कहीये॥जेहने काया।मुख।नासिका । अने आंख। होय

तेने चौइन्द्री जीव कहीये। तेना नाम माखी मसला। डांस। मछर। भमरा। तीड।
पतंग। करोलीया। कसारी। वींछी। खड्माकडी। वगा। धुडीया। फुदा॥ ए आदि
घणी जातना॥ चौइन्द्री जीव छे॥ तेना कुल। नवलाख क्रोड छे। तेनुं आउखु। जघ
न्य। अंतरमुहुर्तनुं॥ उत्कृष्टु॥ छमासनुं॥ तेनी दया पालीये तो। मोक्षना सुख
पामीये॥ हवे पंचेंद्री ते कोने कहीये। जेने काया। मुख। नासिका। आंख।
कान। ए प्रमाणे होय। तेने पंचेंद्री कहीये॥ तेना बे भेद॥ असंज्ञी। अने
संज्ञी। तेनी॥४॥ जात॥ नारकी। तिर्यंच। मनुष्य। देवता। तेमां॥ १४॥
भेद। नारकीना॥४८॥ भेद। तिर्यंचना॥३०३॥ भेद मनुष्यना॥१९८॥ भेद
देवताना॥ वली तेमां। चार भेद॥ भवनपति॥ वाणव्यंतर॥ जोतषी॥ वैमानि
क॥ मनुष्यना चार भेद॥ १५॥ कर्मभूमीना मनुष्य॥ ३०॥ अकर्म भूमीना म
नुष्य॥ ५६॥ अंतरद्विपना मनुष्य॥ १४॥ स्थानकना **समूर्छिम मनुष्य**॥ बे

नारकीने देवतानी थीती ॥ जघन्य । दशहजार वर्षनी । उत्कृष्टो । त्रास सागरनी ॥ तिर्यंचने मनुष्यनी स्थिती । जघन्य । अतरमुहुर्तनी । उत्कृष्टी । त्रण पल्यनी । तेनी दया पालीये तो । मोक्षना सुख पामीये ॥ इतिश्री छकायना बोल सम्पूर्ण ॥

श्रीपार्श्वनाथाय नमः ॥ अथ श्रीनवतत्व लिख्यते ॥ हवे विवेकि सम्यत्क्दृष्टि जीवने । नवपदार्थ जेहवा छे । तेहवा । तथा रूप बुध्धिप्रमाणे गुरु आम्नायथि धारवा ॥ ते नवपदार्थना नाम कहेछे ॥ जीवतत्व ॥ १ ॥ अजीवतत्व ॥ २ ॥ पुण्यतत्व ॥ ३ ॥ पापतत्व ॥ ४ ॥ आश्रवतत्व ॥ ५ ॥ सवरतत्व ॥ ६ ॥ निर्जरातत्व ॥ ७ ॥ बधतत्व ॥ ८ ॥ मोक्षतत्व ॥ ९ ॥ हवे जीवतत्व ते केहने कहिये ॥ चैतन्यलक्षण ॥ सदास उपयोगी ॥ असख्यात प्रदेशी । सुखदुखनो जाण ॥ सुखदुखनो वेदक तेहने जीवतत्व कहिये ॥ १ ॥ अजीवतत्व ते केहने कहिये ॥

जम्लत्नण ॥ चैतन्यरहित ॥ तेहने अजीवतत्व कहिये ॥ २ ॥ पुण्यतत्व ते शु
न्न कर्माणिये करी ॥ शुन्न कर्मने उदये करी ॥ जेहना फल आत्माने न्नोगवता
मीठालागे तेहने पुण्यतत्व कहिये ॥ ३ ॥ पापतत्व ते अशुन्न कर्माणिये करी ॥
अशुन्न कर्मने उदये करी ॥ जेहना फल आत्माने न्नोगवता कम्वा लागे । तेह
ने पापतत्व कहिये ॥ ४ ॥ आश्रवतत्व ते । अव्रतने अपच्चखाणे करी । विषय
कषायने सेववेकरी ॥ आत्मारूप तलावनेविषे ॥ इंद्रियादिक घम्नाले छिद्रेकरी ।
कर्म पापरूप जलनो प्रवाह आवे । तेहने आश्रवतत्व कहिये ॥ ५ ॥ सवरतत्व
ते जीवरूप तलावनेविषे ॥ कर्मरूप जल आवता व्रतपच्चखाणादिक द्वार देवेकरी
रोकीये ॥ तेहने सवरतत्व कहिये ॥ ६ ॥ निर्जरातत्व ते ॥ आत्माना प्रदेशथि
बार न्नेदे तपस्यायेकरी देशथकि कर्मनु निर्जरवु करीने दूर थावुं ॥ तेहने निर्ज
रातत्व कहिये ॥ ७ ॥ बंधतत्व ते । आत्माना प्रदेशने कर्मपुद्गलना दल क्षीरनी

रनीपरे ॥ लोहपिंम अग्निनी परे । लोलीनूत थइ वंधाय ॥ तेहने वधतत्व कहि
ये ॥ ८ ॥ मोक्षतत्व ते सकल आत्माना प्रदेशथि ॥ सकल कर्मनु छुटवु ॥ सक
ल वधनु मुकाववु ॥ सकल कार्यनि सिधि थाय ॥ तेहने मोक्षतत्व कहिये ॥९॥
ए नव पदार्थनु जाणपणुं ॥ तेहने तत्व कहिये ॥ हवे जीवनो एक नेद छे ॥ स
कल जीवोनु चैतन्य लक्षण एक छे ॥ ते माटे संग्रहनये करी । एक नेदे जीव क
हिये ॥ तथा वे प्रकारे पण जीव कहिये ॥ त्रस ॥ १ ॥ थावर ॥ २ तथा ॥ सि
ध ॥ १ ॥ ने ससारी ॥ २ ॥ तथा त्रण नेदे जीव ॥ स्त्रीवेद ॥ १ ॥ पुरुपवेद ॥२
नपुसकवेद ॥ ३ ॥ तथा । नवसिध्धिया ॥ १ ॥ अनवसिध्धिया ॥ २ ॥ नोनवसिध्धि
य नो अनवसिध्धिया ॥ ३ ॥ तथा च्यार नेदे जीव ॥ नारकी ॥ १ ॥ तिर्यंच ॥२॥
मनुष्य ॥ ३ ॥ देवता ॥ ४ तथा ॥ चक्षुदर्शनी ॥ १ ॥ अचक्षुदर्शनी ॥ २ ॥ अ
वधिदर्शनी ॥ ३ केवलदर्शनी ॥ ४ ॥ तथा पांचप्रकारे जीव ॥ एकेंद्रिय ॥ १ ॥ वे

इन्द्रिय ॥२॥ तेइन्द्रिय ॥३॥ चउरिंद्रिय ॥४॥ पंचेंन्द्रिय ॥५॥ तथा । सजोगी ॥१॥
मनजोगी ॥ २ ॥ वचनजोगी ॥ ३ ॥ कायजोगी ॥ ४ ॥ अजोगी ॥ ५ तथा ।
छ प्रकारे जीव ॥ पृथवीकाय ॥ १ ॥ अपकाय ॥ २ ॥ तेउकाय ॥ ३ ॥ वाउकाय
॥ ४ ॥ वनस्पतिकाय ॥ ५ ॥ त्रसकाय ॥ ६ ॥ तथा ॥ सकषायी ॥ १ ॥ कोह्क
षायी ॥ २ ॥ मानकषायी ॥ ३ ॥ मायाकषायी ॥ ४ ॥ लोभकषायी ॥ ५ ॥ अ
कषायी ॥ ६ ॥ तथा सात प्रकारे जीव । नारकी ॥ १ ॥ तिर्यंच ॥ २ ॥ तिर्यंचणी
॥३॥ मनुष्य ॥ ४ ॥ मनुष्यणी ॥ ५ ॥ देवता ॥ ६ ॥ देवी ॥७॥ तथा । आठ प्र
कारे जीव ॥ सलेशी ॥ १ ॥ कृष्णलेशी ॥ २ ॥ निललेशी ॥ ३ ॥ कापुतलेशी
॥ ४ ॥ तेजुलेशी ॥ ५ ॥ पद्मलेशी ॥ ६ ॥ शुकललेशी ॥ ७ ॥ अलेशी ॥ ८ ॥
तथा नव । प्रकारे जीव ॥ पृथवी ॥१॥ अप ॥२॥ तेउ ॥३॥ वाउ ॥४॥ वनस्पति
॥५॥ बेइन्द्रिय ॥६॥ तेइन्द्रिय ॥७॥ चउरिंद्रिय ॥८॥ पंचेंद्रिय ॥९॥ तथा दश भेदे जी

व ॥ एकेंद्रिय ॥१॥ बेइंद्रिय ॥२॥ ? ड्रिय ॥३॥ च - । इग्यार भेदे जीव ॥
ए ५ ना अप्रजाप्ता । ने । प्रजाप्ता । एवं ॥ १० ॥ तथा ॥ चउरिंद्रिय ॥ ४ ॥ नारकी ॥५॥
एकेंद्रिय ॥ १ ॥ बे इंद्रिय ॥ २ ॥ ते इंद्रिय ॥ ३ ॥ वाण व्यंतर ॥ ए ॥ ज्योतषी ॥१०॥
तिर्यंच ॥ ६ ॥ मनुष्य ॥७॥ भवनपति ॥ ८ ॥ पृथवी ॥१॥ अप ॥२॥ तेउ ॥३॥ वाउ
वैमानिक ॥११॥ तथा ॥१२॥ भेदे जीव ॥ एवना अप्रजाप्ता ने प्रजाप्ता ॥ एवं ॥१२॥
॥४॥ वनस्पति ॥५॥ त्रसकाय ॥६॥ ए ७ना अप्रजाप्ता ने प्रजाप्ता ॥ एवं ॥१२॥ तथा
तथा तेर भेदे जीव ॥ कृष्णलेशी ॥ १ ॥ निललेशी ॥ २ ॥ कापुतलेशी ॥ ३ ॥ ते
जुलेशी ॥ ४ ॥ पद्मलेशी ॥ ५ ॥ शुकललेशी ॥ ६ ॥ ए । ७ना अप्रजाप्ता ने ।
प्रजाप्ता ॥ एवं ॥१२॥ ने । एक अलेशी ॥१३॥ एवं ॥१३॥ हवे जीवना ॥१४॥
भेद कहे छे ॥ सुक्ष्म एकेंद्रियनो अप्रजाप्तो ॥ १ ॥ ने प्रजाप्तो ॥ २ ॥ बादर ए
केंद्रियनो अप्रजाप्तो ॥ ३ ॥ ने प्रजाप्तो ॥ ४ ॥ बे इंद्रियनो । अप्रजाप्तो ॥ ५ ॥

ने । प्रजासो ॥ ६ ॥ ते इंडियनो । अप्रजासो ॥ ७ ॥ ने । प्रजासो ॥ ८ ॥ चउरिं
डियनो अप्रजासो ॥ ए ॥ ने प्रजासो ॥ १० ॥ असंज्ञी पचेंडियनो अप्रजासो
॥ ११ ॥ ने प्रजासो ॥ १२ ॥ संज्ञी पंचेंडियनो अप्रजासो ॥ १३ ॥ ने प्रजासो
॥ १४ ॥ हवे व्यवहार विस्तार नये करीने पांचसेत्रेसठ भेद जीवना कहे छे ॥
तेहमा त्रणसें ने त्रण भेद मनुष्यना ॥ एकसोअठाणु भेद देवताना ॥ अम
तालीस भेद तिर्यंचना ॥ चउद भेद नारकीना ॥ ए ॥ ५६३ ॥ भेद जीवना ॥
हवे तेहमा ॥ मनुष्यना ॥ ३०३ ॥ भेद कहेछे ॥ ते ॥ १५ ॥ कर्म भूमिना मनु
ष्य ॥ ३० ॥ अकर्मभूमिना मनुष्य ॥ ५६ ॥ अंतर द्विपना मनुष्य ॥ एव
॥१०१॥ क्षेत्रना गर्भज मनुष्यना ॥ अप्रजासा । ने प्रजासा ॥ एव ॥ २०२ ॥
ने एकसोने एक क्षेत्रना समुर्छिम मनुष्यना । अप्रजासा ॥ एवं ॥ ३०३ ॥ भेद
मनुष्यना ॥ हवे कर्मभूमि ते केहने कहिये ॥ त्यसी ॥ १ ॥

॥ ३ ॥ ए ॥ ३ ॥ प्रकारना व्यापारे करी जीवे तेहने कर्मभूमिनां मनुष्य कहि
ये ॥ ते ॥ ५ ॥ भरत ॥ ५ ॥ इरवतने ॥ ५ ॥ महाविदेह । एवं ॥ १५ ॥ ते क
र्मभूमि किहा छे ॥ एकलाख जोजननो जंबुद्विप छे ॥ तेहमां ॥ १ ॥ भरत ॥१॥
इरवत ॥ १ ॥ महाविदेह । ए ॥ ३ ॥ क्षेत्र कर्मभूमिनां जंबुद्विपमां छे ॥ तेहने
फरतो ॥ बे लाख जोजननो लवण समुद्र छे ॥ तेहने फरतो च्यारलाख जोज
ननो धातकीखंडद्विप छे ॥ तेहमां ॥ २ ॥ भरत ॥ २ ॥ इरवत ॥ २॥ महाविदेह
छे ॥ तेहने फरतो ॥ ८ ॥ लाख जोजननो । कालोदधि समुद्र छे ॥ तेहने फरतो
॥ ८ ॥ लाख जोजननो । अर्द्धपुष्कर । द्विप छे ॥ तेहमां ॥ २ ॥ भरत ॥ २ ॥ इ
रवत ॥ २ ॥ महाविदेह छे ॥ एवं । छडु ॥ १२ ॥ ने ॥ ३ ॥ पनर कर्मभूमिना
मनुष्य कह्या ॥ हवे ॥ ३० ॥ अकर्मभूमिना मनुष्य कहेछे ॥ अकर्मभूमि ते के
हने कहिये ॥ ३ ॥ कर्मरहित । दशप्रकारना कल्पवृक्षेकरीने जीवे । तेहने अक

र्मभूमिना मनुष्य कहिये ॥ ते केटला छे ॥ ५ ॥ हेमवय ॥ ५ ॥ एरणवय ॥५॥
हरिवास ॥ ५ ॥ रमकवास ॥ ५ ॥ देवकुरु ॥ ५ ॥ उतरकुरु ॥ एव ॥ ३० ॥ हवे
जम्बुद्विपमा ॥ १ ॥ हेमवय ॥ १ ॥ एरणवय ॥ १ ॥ हरिवास ॥१॥ रमकवास
॥ १ ॥ देवकुरु ॥ १ ॥ उतरकुरु ॥ एवं ॥ ६ ॥ क्षेत्रजम्बुद्विपमा छे ॥ धातकिखं
ण्मा । बेबे जाणवा ॥ एव ॥ १८ ॥ अर्धपुष्कर द्विपमा । बेबे । जाणवा ॥ एव
॥ ३० ॥ अकर्मभूमिनामनुष्य कह्या ॥ हवे छपन अंतरद्विपना मनुष्य कहेछे ॥
जम्बुद्विपना भरतक्षेत्रनि मर्यादानो करणहार। चुल हिमवतनामा पर्वत छे ॥ ते
पीलासोनामय छे ॥ ते सो जोजननो उंचो छे ॥ सो गाउनो उंडो छे ॥ एकह
जार बावन जोजन ने बार कलानो पहोलो छे ॥ चोविशहजार नवशेबत्रिश जो
जननो लांबो छे ॥ तेहने पूर्वपश्चिमने छेहडे बबे दाढा निकलि छे ॥ एकेकि द
ढा चोरासीशें चोरासीशें जोजननी झाझेरी लांबि छे ॥ ते एकेकि



तसात अतरद्विपा छे ॥ ते अंतरद्विपा किहां छे ॥ जगतीना कोटथ ॥ ३००॥
जोजन जाइये । तिवारे पहिलो अतरद्विपो आवे ॥ ते ॥३००॥ जोजननो लां
बो ने पहोलो छे ॥ तिहांथि ॥४००॥ जोजन जाइये । तिवारे बिजो अंतरद्विपो
आवे ॥ ते ॥४००॥ जोजननो लांबो ने पहोलो छे ॥ तिहांथि ॥५००॥ जोजन
जाइये तिवारे ॥ त्रिजो अंतरद्विपो आवे ॥ ते ॥ ५०० ॥ जोजननो लांबो ने प
होलो छे ॥ तिहांथि छसे जोजन जाइये तिवारे ॥ चोथो अंतरद्विपो आवे ॥ ते
॥ ६०० ॥ जोजननो लांबो ने पहोलो छे ॥ तिहांथि ॥ ७०० ॥ जोजन जाइये
तिवारे । पाचमो अतरद्विपो आवे ॥ ते ॥ ७०० ॥ जोजननो लांबो ने पहोलो
छे ॥ तिहांथि ॥८००॥ जोजन जाइये तिवारे छठो अंतरद्विपो आवे ॥ ते ॥८००॥
जोजननो लांबो ने पहोलो छे ॥ तिहांथि ॥ ९०० ॥ जोजन जाइये तिवारे । सा
तमो अतरद्विपो आवे ते ॥९००॥ जोजननो लांबो ने पोहलो छे ॥ एवं । सात



र्मभूमिना मनुष्य कहिये ॥ ते केटला छे ॥ ५ ॥ हेमवय ॥ ५ ॥ एरणवय ॥५॥ हरिवास ॥ ५ ॥ रमकवास ॥ ५ ॥ देवकुरु ॥ ५ ॥ उतरकुरु ॥ एवं ॥ ३० ॥ हवे जंबुध्विपमा ॥ १ ॥ हेमवय ॥ १ ॥ एरणवय ॥ १ ॥ हरिवास ॥१॥ रमकवास ॥ १ ॥ देवकुरु ॥ १ ॥ उतरकुरु ॥ एवं ॥ ६ ॥ क्षेत्रजंबुध्विपमा छे ॥ धातकिख ण्मा । बेबे जाणवा ॥ एव ॥ १८ ॥ अर्धपुष्कर ध्विपमा । बेबे । जाणवा ॥ एव ॥ ३० ॥ अकर्मभूमिनामनुष्य कह्या ॥ हवे छपन अतरध्विपना मनुष्य कहेछे ॥ जबुध्विपना भरतक्षेत्रनि मर्यादानो करणहार। चुल हिमवतनामा पर्वत छे ॥ ते पीलासोनामय छे ॥ ते सो जोजननो उंचो छे ॥ सो गाउनो उंडो छे ॥ एकह जार बावन जोजन ने बार कलानो पहोलो छे ॥ चोविशहजार नवशेबत्रिश जो जननो लांबो छे ॥ तेहने पूर्वपश्चिमने छेहडे बबे डाढा निकलि छे ॥ एकेकि डा ढा चोरासीशें चोरासीशें जोजननी झझेरी लांबि छे ॥ ते एकेकि डाढाउपरे ॥ सा

विगयजीव कलेवरे सुवाते ॥ मनुष्यना कलेवर उपजे ॥११॥
पजे ॥ १० ॥ इत्थिपुरिससंजोगेसुवाते स्त्री पुरुषना संजोगमां उपजे ॥ १२ ॥ नगरनिधमणेसु वाते नगरनी खालोमा उपजे ॥ १३ ॥ सवेसुचेव असुइठाणेसुवाते सर्व मनुष्य संबंधि अशुचिस्थानकोमां उपजे ॥ १४ ॥ एवं ॥ १०१ ॥ क्षेत्रनासमुर्छिम मनुष्य अपजाप्ता ॥ एवं । सर्व मिली ॥३०३॥ नेद मनुष्यना कह्या ॥ हवे देवताना ॥१९८॥ नेद कहेछे ॥ तेहमां । दश नवनपतिना नाम ॥ असुरकुमार ॥१॥ नागकुमार ॥ २ ॥ सुवर्णकुमार ॥३॥ विद्युत्कुमार ॥४॥ अग्निकुमार ॥५॥ द्विपकुमार ॥ ६ ॥ उदधिकुमार ॥ ७ ॥ दिशाकुमार ॥ ८ ॥ पवनकुमार ॥ ९ ॥ थणितकुमार ॥१०॥ हवे ॥ १५ ॥ परमाधामिना नाम कहेछे ॥ अंब ॥ १ ॥ अंबरिस ॥२॥ शाम ॥३॥ सबल ॥४॥ रुद्र ॥५॥ वैरुद्र ॥६॥ काल ॥७॥ महाकाल ॥ ८ ॥ असिपत्र ॥९॥ धनुष ॥१०॥ कुंन ॥११॥ वालु ॥१२॥ वेतरणी ॥१३॥ खरस्वर ॥१४

चोकु ॥ २८ ॥ अतरद्विपा जाणवा ॥ एमज इरवतक्षेत्रनि मर्यादानो करणहार शिखरीनामा पर्वत छे ॥ ते चुल्ल हिमवंत शरिखो जाणवो ॥ तिहां पण ॥ २८ ॥ अतरद्विपा छे ॥ अठाविश छ ॥ ५६ ॥ अंतरद्विपा जाणवा ॥ अतरद्विपा ते के हने कहिये ॥ हेठे समुद्र छे ॥ अने उपर अधर माढामां द्विपाना रहेनार छे ॥ माटे अंतर द्विपाना मनुष्य कहिये । हवे ॥ १०१ ॥ क्षेत्रना समुर्छिम मनुष्य ॥१४॥ स्थानकमा उपजे छे । ते कहेछे ॥ उच्चारे सुवाते । वडिनितमा उपजे ॥१॥ पासवणे सुवाते लघुनितमां उपजे ॥ २ ॥ खेलेसुवाते ॥ बलखामां उपजे ॥ ३ ॥ संघाणे सुवाते लिंटमां उपजे ॥ ४ ॥ वंते सुवाते वमनमां उपजे ॥ ५ ॥ पीत्ते सुवाते निला पिला पीतमा उपजे ॥६॥ पुइए सुवाते । परुमां उपजे ॥७॥ सोणिए सुवाते रुधिरमां उपजे ॥ ८ ॥ सुक्केसुवाते विर्यमां उपजे ॥ ९॥ सुक्कपो गलपरिसाडिएसुवा ॥ विर्यादिकना पुद्गलसुकाणाते फिरिनिमाण्याय

॥ ३ ॥ वरुण ॥ ४ ॥ गर्द्दतोया ॥ ५ ॥ तोपिया ॥ ६ ॥ अव्याबाधा ॥ ७ ॥ अ च
॥ ८ ॥ रिठ ॥ ९ ॥ बार देवलोकना नाम ॥ सुधर्म ॥ १ ॥ इशान ॥ २ ॥ सनत्कु
मार ॥ ३ ॥ माहेंद्र ॥ ४ ॥ ब्रह्मलोक ॥ ५ ॥ लंतक ॥ ६ ॥ महाशुक्र ॥ ७ ॥ स
हसार ॥ ८ ॥ आणत ॥ ९ ॥ प्राणत ॥ १० ॥ आरण ॥ ११ ॥ अच्चुय ॥ १२ ॥
नव ग्रीवेकना नाम ॥ भद्दे ॥ १ ॥ सुभद्दे ॥ २ ॥ सुजाए ॥ ३ ॥ सुमाणसे ॥४॥
प्रियदर्शणे ॥ ५ ॥ सुदर्शने ॥ ६ ॥ आमोदे ॥ ७ ॥ सुपम्बुद्धे ॥ ८ ॥ जशोधरे
॥ ९ ॥ पाच अनुत्तर विमानना नाम ॥ विजय ॥ १ ॥ विजयंत ॥ २ ॥ जयंत
॥ ३ ॥ अपराजित ॥ ४ ॥ सर्वार्थसिद्ध ॥५॥ ए ॥ ९९ ॥ जातना देवता अप्र
जासा । ने ॥९९॥ जातना प्रजासा । एव ॥१९८॥ भेद देवताना कह्या ॥ हवे ति
र्यचना ॥ ४८ ॥ भेद कहेछे ॥ पृथवी ॥ १ ॥ पाणि ॥ २ ॥ तेउ ॥ ३ ॥ वाउ ॥ ४ ॥
ए ॥ ४ ॥ सुक्ष्म । ने ॥ ४ ॥ बादर ॥ एवं ॥ ८ ॥ ना । अप्रजासा ने ॥ ८ ॥ प्रजा

महाघोप ॥१५॥ सोल वाणव्यंतरना नाम ॥ पिशाच ॥१॥ भूत ॥२॥ जक्ष ॥३॥ रा
क्षस ॥४॥ किन्नर ॥५॥ किंपुरिस ॥६॥ महोरग ॥ ७ ॥ गधर्व ॥८॥ आणपन्नी ॥९॥
पाणपन्नी ॥ १० ॥ इसिवाइ ॥ ११ ॥ भूइवाइ ॥ १२ ॥ कदिय ॥ १३ ॥ महाकंदि
य ॥ १४ ॥ कोहंम ॥ १५ ॥ पयंगदेव ॥ १६ ॥ दश जंभकाना नाम ॥ आणजंभ
का ॥ १ ॥ पाणजम्नका ॥ २ ॥ लयणजंभका ॥ ३ ॥ शयणजंभका ॥ ४ ॥ वत्थजं
भका ॥ ५ ॥ पुष्पजंभका ॥ ६ ॥ फलजंभका ॥ ७ ॥ पुष्प फलजंभका ॥ ८ ॥
विज्जुजम्नका ॥ ९ ॥ अवियत जंभका ॥ १० ॥ ज्योतिषीना ॥ १० ॥ नाम ॥
चंद्रमा ॥ १ ॥ सूर्य ॥ २ ॥ ग्रह ॥ ३ ॥ नक्षत्र ॥ ४ ॥ तारा ॥ ५ ॥ ए ॥ ५ ॥ चल
ते अढि द्विपमां छे । ने ॥ ५ ॥ स्थिर ते अढि द्विपबाहिर छे ॥ एवं ॥ १० ॥ हवे
॥ ३ ॥ किल्बिषिना नाम ॥ त्रण पलिया ॥ १ ॥ त्रण सागरिया ॥ २ ॥ तेर सा
गरिया ॥ ३ ॥ नव लोकांतिकना नाम ॥ सारस्वत ॥१॥ आदित्य ।

॥७॥ ना प्रजाता। एवं ॥१४॥ कह्या ॥ एव ।

॥५६३॥ नेद जीवना जाणवा ॥ इति जीवतत्वं समाप्तं ॥१॥ हवे अजीवना
॥१४॥ नेद कहेछे ॥ धर्मास्तिकायनो स्कंध ॥१॥ देश ॥२॥ प्रदेश ॥३॥
अधर्मास्तिकायनो ॥ स्कध ॥४॥ देश ॥५॥ प्रदेश ॥६॥ आकाशास्ति काय
नो स्कध ॥७॥ देश ॥८॥ प्रदेश ॥९॥ अद्धासमयकाल ॥१०॥ ए ॥१०॥ नेद
अरुपि अजीवना कह्या ॥ हवे रूपि अजीवना ॥४॥ नेद कहेछे ॥ पुद्गलास्ति
काय ॥ नो स्कंध ॥११॥ देश ॥१२॥ प्रदेश ॥१३॥ परमाणुपुद्गल ॥१४॥ एवं
॥१४॥ हवे व्यवहार विस्तारनयेकरी ॥५६०॥ नेद अजीवतत्वना कहेछे ॥ तेहमां
॥३०॥ नेद । अरूपि अजीवना कहेछे ॥ धर्मास्तिकाय द्रव्यथकि ॥१॥ क्षेत्रथकि
लोक प्रमाणे ॥२॥ कालथकि अनादिअनत ॥३॥ भावथकि । अवर्णे अगंधे ।
अरसे । अफासे । अमुर्ति ॥४॥ गुणथकि चलणसहाय ॥५॥ अधर्मास्तिकाय द्र

त्ता ॥ एवं ॥ १६ ॥ वनस्पतिना ॥ ३ ॥ भेद ॥ सुक्ष्म ॥ १ ॥ प्रत्येक ॥ २ ॥ ने ।
साधारण ॥ ३ ॥ ए ॥ ३ ॥ ना । अप्रजात्ता ने ॥ ३ ॥ ना । प्रजात्ता ॥ एव ॥ ६ ॥
एव ॥ २२ ॥ एकेंद्रियना ॥ त्रण विकलेंद्रिय ॥ बे इंद्रिय ॥ १ ॥ ते इंद्रिय ॥ २ ॥
चउरिंद्रिय ॥३॥ए ॥३॥ ना अप्रजात्ता ने ॥३॥ ना । प्रजात्ता । ए ॥६॥ एवं ॥२०॥
जलचर ॥ १ ॥ थलचर ॥ २ ॥ उरपर ॥ ३ ॥ भुजपर ॥ ४ ॥ खेचर ॥ ५ ॥ ए ॥ ५ ॥
समुर्छिम नो ॥ ५ ॥ गर्भज ॥ एवं ॥ १० ॥ ना । अप्रजात्ता ने ॥ १० ॥ ना । प्र
जात्ता ॥ एव ॥ २० ॥ एव ॥ ४० ॥ भेद तिर्यचना कह्या । हवे ॥ १४ ॥ भेद ना
रकिना कहेछे ॥ सात नरकना नाम ॥ घमा ॥ १ ॥ वंशा ॥ २ ॥ शिला ॥ ३ ॥
अजणा ॥ ४ ॥ रिठा ॥ ५ ॥ मघा ॥ ६ ॥ माघवइ ॥ ७ ॥ हवे ॥ ७ ॥ ना गोत्र
रत्नप्रभा ॥ १ ॥ शर्करप्रभा ॥ २ ॥ वालुप्रभा ॥ ३ ॥ पंकप्रभा ॥ ४ ॥ धुमप्र
भा ॥ ५ ॥ तमप्रभा ॥ ६ ॥ तमतमाप्रभा ॥

॥ एवं । विश चा सो ॥ ६ ॥१॥ घ
संठाण ॥८॥ स्पर्श ॥ एवं । विश चा सो ॥ ६ ॥१॥ घ
गध ॥५॥ रस ॥५॥ संठाण ॥८॥ स्पर्श ॥ एकेका गंधमांहि त्रेविश त्रेविश भेद
ने । सुरभिगध ॥ १ ॥ दुरभिगंध ॥ २ ॥ एकेका गंधमांहि त्रेविश त्रेविश भेद
लाभे ॥५॥ वर्ण ॥५॥ रस ॥५॥ संठाण ॥८॥ स्पर्श । एवं ॥ २३ ॥ छ्यांतालिश
भेद जाणवा ॥ ह्वे ॥ ५ ॥ रस ते ॥ तिखो ॥ १ ॥ कडवो ॥ २ ॥ कसायलो
॥३॥ खाटो ॥४॥ मिठो ॥५॥ एकेका रसमां वीश वीश भेद लाभे ॥५॥ वर्ण ॥२॥
गंध ॥५॥ संठाण ॥८॥ स्पर्श । एवं । वीश पंचा सो ॥ ह्वे ॥५॥ संठाण ॥ परिमंडल
संठाण ॥१॥ वटसंठाण ॥ २ ॥ त्रंश ॥ ३ ॥ चउरंस ॥ ४ ॥ आयतसंठाण ॥५॥
एकेका संठाणमां वीश वीश भेद लाभे ॥ ५ ॥ वर्ण ॥ २ ॥ गंध ॥ ५ ॥ रस ॥८॥
स्पर्श । एवं । वीश पंचा सो ॥ ह्वे ॥८॥ स्पर्श । खरखरो ॥१॥ सुहालो ॥ २ ॥
भारि ॥ ३ ॥ हलवो ॥ ४ ॥ टाढो ॥ ५ ॥उन्हो ॥६॥ चोपड्यो ॥७॥ लुखो ॥८॥
एकेका स्पर्शमा । त्रेविश त्रेविश भेद लाभे ॥५॥ वर्ण ॥२॥ गंध ॥५॥ रस ॥५॥ सं

व्यथकि एक ॥६॥ क्षेत्रथकि लोकप्रमाणे ॥७॥ कालथकि अनादिअनंत ॥८॥
भावथकि । अवर्णे । अगधे । अरसे । अफासे । अमुर्त्ति ॥९॥ गुणथकि स्थिर
सहाय ॥१०॥ आकाशास्तिकाय द्रव्यथकि एक ॥११॥ क्षेत्रथकि लोकालोक
प्रमाणे ॥ १२ ॥ कालथकि अनादिअनत ॥ १३ ॥ भावथकि । अवर्णे । अगं
धे । अरसे । अफासे । अमुर्त्ति ॥ १४ ॥ गुणथकि ॥ अवगाहनादान ॥ १५ ॥
हवेकाल द्रव्यथकि अनेक ॥ १६ ॥ क्षेत्रथकि । अढिद्वियप्रमाणे ॥ १७ ॥ का
लथकि अनादिअनत ॥ १८ ॥ भावथकि । अवर्णे । अगंधे । अरसे । अफासे ।
अमुर्त्ति ॥ १९ ॥ गुणथकि वर्त्तनालक्षण ॥ २० ॥ एवं ॥ २० ॥ भे ॥ १० ॥ पूर्वे
कह्या ते ॥ एवं ॥ ३० ॥ भेदअरूपि अजीवना जाणवा । हवे ॥ ५३० ॥ भेद
रूपि अजीवना कहेछे तेहमा । वर्ण ॥५॥ कालो ॥१॥ निलो ॥२॥ रातो ॥३॥
पिलो ॥ ४ ॥ धोलो ॥ ५ ॥ एकेका

अंग उपांग ॥१४॥ आहारकना अंग उपांग ॥१५॥ वज्ररिषभनाराचसंघयण ॥१६॥ समचउरंशसंठाण॥१७॥ शुभवर्ण॥१८॥ शुभगंध॥१९॥ शुभरस ॥२०॥ शुभस्पर्श ॥२१॥ अगुरुलघुनाम ॥२२॥ पराघातनाम ॥२३॥ उस्वासनाम ॥२४॥ आतापनाम ॥२५॥ उद्योतनाम ॥२६॥ शुभचालवानि गति ॥२७॥ निर्माणनाम ॥२८॥ त्रसनाम ॥२९॥ बादरनाम ॥३०॥ पर्जाप्तानाम ॥३१॥ प्रत्येकनाम॥३२॥ स्थिरनाम ॥ ३३ ॥ शुभनाम ॥ ३४ ॥ सौभाग्यनाम ॥ ३५ ॥ सुस्वरनाम ॥ ३६ ॥ आदेयनाम ॥ ३७ ॥ जशोकीर्तिनाम ॥ ३८ ॥ देवतानुं आउषुं ॥ ३९ ॥ मनुष्यनुं आउषू ॥ ४० ॥ तिर्यंचनुं आउषू जुगलवत् ॥ ४१ ॥ तिर्थंकरनामकर्म ॥ ४२ ॥ एवं ॥४२॥ भेद पुण्यना जाणवा ॥ इति पुण्यतत्वं समाप्तं ॥३॥ हवे ॥ १८ ॥ प्रकारे पाप उपराजे ते कहेछे ॥ प्राणातिपात ॥ १ ॥ मृषावाद ॥ २ ॥ अदत्तादान ॥ ३ ॥ मैथुन ॥ ४ ॥ परिग्रह ॥ ५ ॥ क्रोध ॥६॥ मान ॥ ७ ॥ माया

गण ॥६॥ स्पर्श ॥ एवं ॥२३॥ भेद जाणे । खरखरामारखरखरोने सुंहालो वे व
र्जवा ॥ एमवेवे स्पर्श वर्जवा ॥ एवं ॥ २३ ॥ अग ॥ २८४ ॥ एव सर्व मिलि
ने ॥५३०॥ भेदरूपि अजीवना ॥ एव सर्व मिलिने ॥ ५६० ॥ भेद । अजीवना
जाणवा ॥ इति अजीवतत्व समाप्त ॥ २ ॥ हवे नव भेदे पुण्यउपराजे ते कहे
छे ॥ अन्नपुन्ने ॥ १ ॥ पाणपुन्ने ॥ २ ॥ लयणपुन्ने ॥ ३ ॥ शयणपुन्ने ॥ ४ ॥ व
त्थपुन्ने ॥ ५ ॥ मनपुन्ने ॥ ६ ॥ वचनपुन्ने ॥ ७ ॥ कायपुन्ने ॥ ८ ॥ नमस्कार पु
न्ने ॥ ९ ॥ ए ॥ ९ ॥ भेदे पुण्य उपराजे ॥ तेहना शुभ फल ॥ ४२ ॥ भेदे भो
गवे ॥ शातावेदनिय ॥ १ ॥ उच गोत्र ॥ २ ॥ मनुष्यगति ॥ ३ ॥ मनुष्यानु
पूर्व्वी ॥ ४ ॥ देवतानि गति ॥ ५ ॥ देवानुपूर्व्वी ॥ ६ ॥ पचेंद्रियनि जाति ॥ ७ ॥
उदारिक शरिर ॥ ८ ॥ वैक्रेय शरिर ॥ ९ ॥ अहारक शरिर ॥ १० ॥ तेजस श
रिर ॥ ११ ॥ कार्मण शरिर ॥ १२ ॥ उदारिकना अंग उपाग ॥१३॥

अ स्थिरनाम ॥२७॥ अ३ ननाम ॥२८॥ द ≈ ग्यनाम॥२९॥ दुःस्वरनाम ॥३०।
अनादेयनाम ॥३१॥ अजशोकीर्तिनाम॥३२॥ नरकनिगति॥३३॥ नरकनुं आउषुं
॥ ३४ ॥ नरकानुपूरवी ॥३५॥ अनंतानुबंधि क्रोध ॥ ३६ ॥ अनंतानुबंधि मान
॥३७॥ अनतानुबधि माया ॥३८॥ अनंतानुबंधि लोभ ॥ ३९ ॥ अप्रत्याख्यानी
क्रोध ॥ ४० ॥ अप्रत्याख्यानी मान ॥ ४१ ॥ अप्रत्याख्यानी माया ॥ ४२ ॥
अप्रत्याख्यानी लोभ ॥ ४३ ॥ पच्चखाणावरणिय क्रोध ॥ ४४ ॥ पच्चखाणाव
वरणिय मान ॥ ४५ ॥ पच्चखाणावरणिय माया ॥४६॥ पच्चखाणावरणिय लोभ
॥ ४७ ॥ सजलनो क्रोध ॥ ४८ संजलनो मान ॥४९॥ संजलनी माया ॥५०॥
सजलनो लोभ ॥ ५१ ॥ हास्य ॥ ५२ ॥ रति ॥ ५३ ॥ अरति ॥ ५४ ॥ भय
॥ ५५ ॥ शोक ॥ ५६ ॥ दुगंछा ॥ ५७ ॥ स्त्रीवेद ॥ ५८ ॥ पुरुषवेद ॥ ५९ ॥ न
पुसकवेद ॥ ६० ॥ तिर्यंचनि गति ॥ ६१ ॥ तिर्यंचनी अनुपूरवी ॥ ६२ ॥ एकेंद्रि

॥ ८ ॥ लोन्न ॥ ए ॥ राग ॥ १० ॥ द्वेष ॥११॥ कलह ॥ १२ ॥ अभ्यास्यान
॥१३॥ पैशून्य ॥१४॥ परपरिवाद ॥१५ रतिअरति ॥१६॥ मायामोसो ॥१७॥
मिठादसणसल्ल ॥ १८ ॥ ए ॥ १८ ॥ दवे तेहना अशुन्न फल ॥ ८२ ॥ प्रकारे
न्नोगवे ते कहेछे ॥ मतिज्ञानावरणिय ॥ १ ॥ श्रुतज्ञानावरणिय ॥ २॥ अवधि
ज्ञानावरणिय ॥३॥ मनपर्जवज्ञानावरणिय ॥ ४ ॥केवलज्ञानावरणिय ॥ ५ ॥
दानातराय ॥ ६ ॥ लान्नांतराय ॥७॥ न्नोगांतराय ॥ ८ ॥ उपन्नोगातराय ॥ए॥
वीर्यांतराय ॥ १० ॥ निज्ञा ॥ ११ ॥ निज्ञानिज्ञा ॥ १२ ॥ प्रचला ॥ १३ ॥ प्रच
लाप्रचला ॥ १४ ॥ थीणद्धिनिज्ञा ॥ १५ ॥ चक्षुदर्शनावरणिय ॥ १६ ॥ अचक्षु
दर्शनावरणिय ॥ १७ ॥ अवधिदर्शनावरणिय ॥ १८ ॥ केवलदर्शनावरणिय
॥१ए॥ निच्चगोत्र ॥२०॥ अशातावेदनीय ॥२१॥ मिथ्यात्वमोहनिय ॥२२॥ स्था

तश्रो० ॥ २२ ॥ चक्षु ० आ० ॥ २३ ॥ घ्राणेन्द्रिय ०
॥ १३ ॥ रसेंद्रियअ० आ० ॥ १४ ॥ स्पर्शेंद्रियअ० आ० ॥ १५ ॥ मनअ० आ०
॥ १६ ॥ वचनअ० आ० ॥ १७ कायअ० आ० ॥ १८ ॥ जंमउपगरणउपधिजिम
तिलियेमुके ते आ० ॥ १९ ॥ शुचिकु सग्ग करे ते आ० ॥ २० ॥ हवे विशेषे ॥ ४२ ॥
नेद कहेछे ॥ ५ ॥ आश्रव ॥ ५ ॥ इंद्रिय मोकलि मुके एवं ॥ १० ॥ ने ॥ ४ ॥
कषाय ॥ एव ॥ १४ ॥ त्रिण । अशुन्न जोग । एवं ॥ १७ ॥ ने ॥ २५ ॥ क्रिया ॥
कायिकीक्रिया ॥ १ ॥ अधिकरणकी क्रिया ॥ २ ॥ पाउसिया ॥ ३ ॥ पारितावणिया
॥ ४ ॥ पाणाइवाय ॥ ५ ॥ आरंन्निया ॥ ६ ॥ परिग्गहिया ॥ ७ ॥ मायावतिया
॥ ८ ॥ अपच्चखाणवतिया ॥ ९ ॥ मिछादंशणवतिया ॥ १० ॥ दिठीया ॥ ११ ॥
पुठिया ॥ १२ ॥ पाडुचिया ॥ १३ ॥ सामतोवणिया ॥ १४ ॥ नेसत्रिया ॥ १५ ॥
साहठिया ॥ १६ ॥ आणवणिया ॥ १७ ॥ विदारणिया ॥ १८ ॥ अणाभोगी ॥ १९ ॥

यपणुं ॥ ६३ ॥ वेइन्डियपणु ॥ ६४ ॥ तेइन्डियपणु ॥ ६५ ॥ चउरिन्डियपणुं ॥६६॥
अशुन्न चालवानि गति ॥ ६७ ॥ उपघातनामकर्म ॥ ६८ ॥ अशुन्नवर्ण ॥६९॥
अशुन्नगंध ॥ ७० ॥ अशुन्नरस ॥ ७१ ॥ अशुन्नस्पर्श ॥ ७२ ॥ ऋपन्ननाराच
सघयण ॥ ७३ ॥ नाराचसघयण ॥ ७४ ॥ अर्द्धनाराचसंघयण ॥ ७५ ॥ किलकु
सघयण ॥ ७६ ॥ ढेवट्ठसंघयण ॥ ७७ ॥ निगोहपरिमंमलसंठाण ॥७८॥ सादि
सठाण ॥ ७९ ॥ वामनसंठाण ॥ ८० ॥ कुब्जसंठाण ॥ ८१ ॥ हुंमसंठाण ॥ ८२ ॥
एवं ॥ ८२ ॥ न्नेद पापतत्वना जाणवा ॥ इति पापतत्वं समाप्तं ॥४॥ हवे आश्र
वना सामान्य प्रकारे ॥ ४० ॥ न्नेद कहेबे ॥ मिथ्यात्व ते आश्रव ॥ १ ॥ अव्रत
ते आश्रव ॥ २ ॥ प्रमाद ते आश्रव ॥ ३ ॥ कषाय ते आश्रव ॥४॥ अशुन्नजोग
ते आश्रव ॥ ५ ॥ प्राणातिपात ते आश्रव ॥ ६ ॥ मृषावाद ते

पपपासमति ॥३॥ सुमति ॥ ५॥ ए ॥ ५ ॥ सुमति न ॥ ३॥ गुप्ति॥
लोसघाणपारिठावणीया सुमति ॥ ५॥ ए ॥ ५ ॥ सुमति न ॥ ३॥ गुप्ति॥ ॥ ३ ॥ ए ॥ ८ ॥ आदरवाने
मनगुप्ति ॥ १ ॥ वचनगुप्ति ॥ २ ॥ कायगुप्ति ॥ ॥ ३ ॥ ए ॥ ८ ॥ तृषानो परिसह
॥ २२ ॥ परिसहसहेवा ॥ ते कहेछे ॥ क्षुधानो परिसह ॥ १ ॥ तृषानो परिसह
॥ २ ॥ टाढनो परिसह ॥ ३ ॥ तापनो परिसह ॥ ४ ॥ दंशमंशनो परिसह
॥ ५ ॥ अचेलनो परिसह ॥ ६ ॥ अरतिनो परिसह ॥ ७ ॥ स्त्रीनो परिसह
॥८॥ चरियानो प० ॥९॥ बेसवानो प० ॥ १० ॥ सेजानो प० ॥११॥ आक्रो
श वचननो प० ॥१२॥ वधनो परि० ॥ १३ ॥ जाचवानो प० ॥१४॥ अलाभ
नो प० ॥ १५ ॥ रोगनो परिसह ॥ १६ ॥ तृणस्पर्शनो प० ॥ १७ ॥ मेलनो
प० ॥ १८ ॥ सत्कार पुरस्कारनो प० ॥ १९ ॥ प्रज्ञानो प० ॥ २० ॥ अज्ञा
ननो प० ॥ २१ ॥ दंशण परिसह ॥ २२ ॥ ए ॥ २२ ॥ ने ॥ ८ ॥ पूर्वे कह्या
ते । एवं ॥ ३० ॥ खंति ॥ ३१ ॥ मुत्ति ॥ ३२ ॥ अज्जवे ॥३३॥ मद्दवे ॥ ३४ ॥

केवि पसूइयवाया, कच्छादब्भेहिं केवि विकराला । केवि विउचिअपामासमन्निया सेवगा तस्स ॥ ११७ ॥
एव सो कुट्ठिअपेडएण परिवेढिओ महीवीढे । रायकुलेसु भमतो, पजिअदाण पगिण्हेइ ॥ ११८ ॥
सो एसो आगच्छइ, नरवर ! आडबरेण सजुत्तो । ता मग्गमिण मुत्तु, गच्छह अन्न दिस तुब्भे ॥ ११९ ॥
तो वलिओ नरनाहो, अन्नाइ दिसाइ जाव ताव पुरो। तो पेडयपि तीए, दिसाइ वलिय तुरिअ तुरित ॥१२०॥
राया भणेइ मंतिं, पुरओ गतूणिमे निवारेसु । मुहमग्गियपि दाउ, जेणेसिं दसण न सुह ॥ १२१ ॥

तस्य उम्बरराजस्य केऽपि सेवका प्रसूतिकवातरोगयुक्ता सन्ति, केऽपि कच्छुदर्भभि-र्विकराला सन्ति, केऽपि विचर्चिकापामासमन्विता सन्ति, विचर्चिकाजातीया या पामा तया सँयुक्ता सन्तीत्यथ ॥ ११७ ॥ एवममुना प्रकारेण स उम्बरराज कुष्ठिकानां पेटकेन-समूहेन परिवेष्टित'-समन्तात्परिवृतो महीपीठे-पृथ्वीतले भमन् राजकुलेषु-नृपाणा गृहेषु 'पजियत्ति' मुखमार्गितं दान प्रगृह्णाति ॥ ११८ ॥ हे नरवर ! हे महाराज ! स एष उम्बरराज आडम्बरेण सँयुक्त आगच्छति, तत्तस्मादिम मार्गं मुक्त्वा-त्यक्त्वा यूय अन्यां दिश गच्छत ॥ ११९ ॥ ततो नरनाथो-राजा यावदन्यस्यां दिशि वलितस्तावत्पुरोऽग्रे तत कुष्ठिपेटकमपि त्वरित त्वरित तस्यां दिशि वलितम् ॥ १२० ॥ तदा राजा मन्त्रिण प्रति भणति, त्वं पुरतो-अग्रतो गत्वा इमान् निवारयस्व, किं कृत्वा ?-मुखमार्गितमपि दत्त्वा येन कारणेन एषां कुष्ठिनां दर्शन शुभ नास्ति ॥ १२१ ॥

ज्झ त करेइ मती, गलिअगुलिनामओ दुय ताव । नरवर पुरओ ठाउ, एव भणिउ समाढत्तो ॥ १२२ ॥
सामिअ ! अम्हाण पहू, उबरनामेण राणओ एसो । सव्वत्थ वि मन्निज्जइ, गरुएहिं दाणमाणेहिं ॥ १२३ ॥
तेणऽम्हाण घणकणयचीरपमुहेहिं कीरइ न किंपि । एतस्स पसायेण, अम्हे सव्वेवि अइसुहिणो ॥ १२४ ॥
किंच–एगो नाह ! समत्थि, अम्ह मणचिंतिओ विअप्पुत्ति । जइ लहइ राणओ राणियति ता सुदर होइ ॥१२५॥
ता नरनाह ! पसाय, काऊण देहि कन्नग एग । अवरेण कणगकप्पडदाणेण तुम्ह पज्जत्त ॥ १२६ ॥

यावत्तन्नृपभणित वचन मन्त्री करोति, तावद्गलिताङ्गुलिनामको मन्त्री द्रुत–शीघ्र नरवरस्य–राज्ञ पुरतोऽग्रत स्थित्वा एव भणितु–कथयितु समारब्ध –आरम्भं कृतवान् ॥ १२२ ॥ हे स्वामिन् ! एषोऽस्माक प्रभु–स्वामी उम्बरनाम्ना राजा सर्व्वत्रापि गुरुकैर्महद्भिर्दानमानैर्मान्यते–नृपादिभि सत्क्रियते इत्यर्थ ॥ १२३ ॥ तेन कारणेन अस्माभिर्धनकनकचीरप्रमुखैः किमपि न क्रियते, घनस्वर्णवस्त्रादिभिरस्माक किमपि कार्यं नास्तीत्यर्थ, एतस्य–उम्बरराज्ञ प्रसादेन वय सर्वेऽपि अतिशयेन सुखिन स्म ॥ १२४ ॥ परं हे नाथ ! एकोऽस्माकं मनश्चिन्तित इत्येवंस्वरूपो विकल्पो–विचारोऽस्ति, यदि अस्माकं राजा इत्येवंस्वरूपां स्वोचितामित्यर्थ, राज्ञीं लभते तर्हि सुन्दरं भवति–शोभन स्यात् ॥ १२५ ॥ तत्तस्मात् हे नरनाथ ! हे राजन् ! प्रसाद कृत्वा एकां कन्यकां देहि अपरेण–अन्येन युष्माकं कनकवस्त्रादिदानेन पर्याप्त–सृत अपरेण नास्माकं कार्यमित्यर्थ ॥ १२६ ॥

तो भणइ रायमती, अहो अजुत्त विमग्गिअ तुमए । को देइ निय धूय, कुट्ठकिलिट्ठस्स जाणतो ? ॥ १२७ ॥
गलिअगुलिणा भणिय, अम्हेहिं सुया निवस्सिमा किची । ज किर मालवराया, करेइ नो पत्थणाभग ॥१२८॥
तो सा निम्मलकित्ती, हारिज्जउ अज्ज नरवरिंदस्स । अहवा दिज्जउ काविहु, धूया कुकुलेवि सभूया ॥ १२९ ॥
पभणेइ नरवरिंदो, दाहिस्सइ तुम्ह कन्नगा एगा । को किर हारइ कित्ति, इत्तियमित्तेण कज्जेण " ॥ १३० ॥
चिंतेइ मणे राया, कोवानलजलियनिम्मलविवेगो । नियधूय अरिभूय, त दाहिस्सामि एयस्स ॥ १३१ ॥

ततो राजमन्त्री भणति, अहो ! त्वयाऽयुक्त विमार्गित कुष्ठरोगेण क्लिष्टाय–रोगयुक्ताय पुरुषाय जानन् सन् क पुमान् निजां पुत्रीं ददाति ? अपि तु न कोऽपि ददातीत्यर्थ ॥ १२७ ॥ एतन्नृपमन्त्रिवचः श्रुत्वा गलिताङ्गुलिमन्त्रिणा भणितम्–अस्माभिर्नृपस्य इय कीर्तिं श्रुताऽभूत् यत् किल मालवदेशस्य राजा प्रार्थनाभङ्ग न करोति य कोऽपि यद्वस्तु याचते तस्मै तद्ददातीत्यर्थ ॥ १२८ ॥ ततस्तस्मात्कारणात् अद्य नरवरेन्द्रस्य सा निर्मलकीर्तिर्हार्यताम्, अथवा कापि कुकुलेऽपि सम्भूता–कुत्सितकुलेऽप्युत्पन्ना कन्या दीयताम् ॥ १२९ ॥ तदा नरवरेन्द्रो राजा प्रभणति–रूपयति स युष्माकम् एका कन्यकाऽस्माभिर्दास्यते, किल निश्चित एतावन्मात्रेण कार्येण क स्वकीयां कीर्तिं हारयति ? ॥ १३० ॥ कोपानलेन–क्रोधाग्निना ज्वलितो निर्मलो विवेको यस्य स एवविध सन् राजा मनसि चिन्तयति, किमित्याह–अह तां अरिभूतां तुल्यां निजकन्यां एतस्मै कुष्ठिने दास्यामि ॥ १३१ ॥

सहसा वलिऊण तओ, नियआवासमि आगओ राया । बुल्लावइ त मयणासुदरिनाम निय धूय ॥ १३२ ॥
हु अज्जवि जइ मन्नसि, मज्झ पसायस्स समव सुक्ख । ता उत्तम वर ते, परिणाविय देमि भूरि धण ॥ १३३॥
जइ पुण नियकम्म चिय, मन्नसि ता तुज्झ कम्मणाणीओ । एसो कुट्ठिअराणो, होउ वरो किं वियप्पेण ? ॥१३४॥
हसिऊण भणइ बाला, आणीओ मज्झ कम्मणा जो उ । सो चेव मह पमाण, राओ वा रकजाओ वा ॥१३५॥
कोवधेण रन्ना, सो उबरराणओ समाहूओ । भणिओ य तुममिमीए, कम्माणीओसि होसु वरो ॥ १३६ ॥

सहसाऽकस्मात्तत्तस्मात् स्थानात् वलित्वा राजा निजावासे-स्वमन्दिरे आगत., आगत्य च ता मदनसुन्दरीनाम्नीं निजां पुत्रीं आह्वयति ॥ १३२ ॥ आहूय च किं कथयतीत्याह—हु इत्यनादरे अरे! त्व अद्यापि यदि मम प्रसादसम्भव मत्प्रसादोत्पन्न सुख मन्यसे तत्तर्हि ते-तुभ्य उत्तम-प्रधान वर-भर्त्तारं परिणाय्य भूरि-प्रचुर धन दमि (दामि)-प्रयच्छामि ॥ १३३ ॥ यदि पुनर्निजकर्म्मैव त्व मन्यसे तत्तर्हि तव कर्म्मणा आनीत एष कुष्ठिकराजो वरो भवतु, किं विकल्पेन ?, इह विकल्पस्य-विचारस्य किमपि कार्यं नास्तीत्यर्थ ॥ १३४ ॥ एतन्नृपवच श्रुत्वा मदनसुन्दरीबाला हसित्वा भणति, यो मम कर्म्मणा आनीत स एव वरो मम प्रमाण राजा वा भवतु रङ्कजातो-रङ्कपुत्रो वा भवतु ॥ १३५ ॥ एतत्कन्यावच श्रुत्वा कोपान्धेन राज्ञा स उम्बरराज समाहूत -स्वसमीपदेशे आकारितो भणितश्च। किं भणित इत्याह-त्व अस्या कर्म्मणा आनीतोऽसि तेन त्व अस्या वरो भव ॥ १३६ ॥

तेणुत्त नो जुत्त, नरवर ! वुत्तुपि तुज्झ इय वयण । को कणयरयणमाल, बंधइ कागस्स कंठमि ? ॥ १३७ ॥
एगमह पुव्वकय, कम्म भुजेमि एरिसमणज्ज । अवर च कहमिमीए, जम्म बोलेमि जाणतो ? ॥ १३८ ॥
ता भो नरवर ! जइ देसि कावि ता देसु मज्झ अणुरूव । दासिविलासिणिधूय, नो वा ते होउ कल्लाण ॥१३९॥
तो भणइ नरवरिंदो, भो भो महनदणी इमा किंपि । नो मज्झकय मन्नइ, नियकम्म चेव मन्नेइ ॥ १४० ॥
तेण चिअ कम्मेण, आणीओ तसि चेव जीइ वरो । जइ सा निअकम्मफल, पावइ ता अम्ह को दोसो" ॥१४१॥

एतन्नृपवच श्रुत्वा तेन उम्बरराजेनोक्त हे नरवर! हे राजन् ! तव इत्येतद्वचन वक्तुमपि न युक्तम्। कथमित्याह–काकस्य-निन्द्यपक्षिण कण्ठे-गले कनकरत्नमालां-स्वर्णमणिमालां को बध्नाति? न-कोपीत्यर्थ । एतावताह काकतुल्य इय स्वर्णमालातुल्या अनो नेय मयोग्येतिभाव ॥ १३७ ॥ एकं तु अह ईदृक्षं अनार्य अशुभं पूर्वकृत कर्म्म भुञ्जामि, अपर च अन्यत् पुनर्जानन् सन् अह–अस्या उत्तमकन्याया जन्म कथ बोडयामि, ममैतत्कार्य कर्तुमयुक्तमितिभाव ॥ १३८ ॥ ततस्तस्मात् भो नरवर ' हे राजन् ' यदि कामपि कन्यां ददासि तत्तर्हि–ममाऽनुरूपां–मम योग्यां दास्या विलासिन्या वा पुत्रीं दत्स्व–देहि, वाऽन्यथा ईदृशी कापि न भवेत्तर्हि ते–तव कल्याण भवतु मम सृतमित्यर्थ ॥१३९॥ ततो नरवरेन्द्रो राजा भणति, भो भो उम्बरराज ! इय मम पुत्री मत्कृतं किमपि न मन्यते, केवल निजकर्मैव मन्यते, स्वकृतं कर्म्मैव प्रमाणीकरोतीत्यर्थ ॥ १४० ॥ तेनैव कर्म्मणा त्वमेव अस्या वरो–भर्त्ता आनीतोऽसि साम्प्रतमिह प्रापितोऽसि, यदि सा इय मत्पुत्री निजकर्म्मण फल प्राप्नोति तर्हि अस्माकं को दोष ? ॥ १४१ ॥

तं सोऊण बाला, उट्ठित्ता झत्ति उवरस्स कर । गिण्हइ निययकरेण, विवाहलग्गव साहती ॥ १४२ ॥

सामतमतिअतेउरीउ वारति तहवि सा बाला । सरयससिसरिसवयणा, भणइ सई सुच्चिअपमाण ॥ १४३ ॥

एगत्तो माउलओ, एगत्तो रुप्पसुदरी माया । एगत्तो परिवारो, रुयइ अहो केरिसमजुत्त ? ॥ १४४ ॥

तहवि न नियकोवाओ, वलेइ राया अईव कढिणमणो । मयणावि मुणियतत्ता, निअसत्ताओ न पचलेइ॥१४५॥

तन्नृपवच श्रुत्वा मदनसुन्दरीबाला कन्या तु उत्थाय झटिति–शीघ्र निजकरेण–स्वहस्तेन उम्बरराजस्य कर गृह्णाति, किं कुर्वतीव ? विवाहलग्नं साधयन्तीव ॥ १४२ ॥ सामन्ता –मन्त्रिण. अन्त पुर्योऽन्त'पुरनार्यश्च वारयन्ति, तथापि सा बाला शरच्छशिसदृशवदना–शरच्चन्द्रतुल्यमुखी सती भणति, मम एष एव वर' प्रमाण नान्येन कार्यमित्यर्थ. ॥ १४३ ॥ तस्मिन्नवसरे एकत.–एकस्यां दिशि मदनसुन्दर्या मातुलो–मातुर्भ्राता पुण्यपालो रोदिति, एकस्यां दिशि रूप्यसुन्दरीमाता रोदिति, तथा एकत परिवारस्तत्परिकरो रोदिति, अहो ! इद कीदृशमयुक्त कार्य जातमिति चिन्तयन्तस्ते सर्वे रुदन्तीत्यर्थ ॥ १४४ ॥ तथापि राजा निजकोपात्–स्वकृतक्रोधान्न वलते–न निवर्तते इत्यर्थ , कीदृशो राजा ? अतीव–अत्यन्त कठिन–कठोरं मनो यस्य स कठिनमना , मदनसुन्दर्यपि च निजसत्त्वात्स्वधैर्यान्न प्रचलति । कीदृशी सा ? मुणित–ज्ञात तत्त्व यया सा मुणिततत्त्वा ॥ १४५ ॥

त वेसरिमारोविअ, जा चलिओ उंबरो निअयठाण । ता भणइ नयरलोओ, अहो अजुत्त अजुत्तति ॥ १४६ ॥
एगे भणति धिद्धी, रायाण जेणिम कयमजुत्त । अन्ने भणति धिद्धी, एय अइदुव्विणीयत्ति ॥ १४७ ॥
केवि निंदति जणणिं, तीए निंदति केवि उवज्झाय । केवि निंदति दिव्व, जिणधम्म केवि निंदति ॥ १४८ ॥
तहवि हु वियसियवयणा, मयणा तेणुंबरेण सह जति । न कुणइ मणे विसाय, सम्म धम्म वियाणती ॥१४९॥
उंबरपरिवारेण, मिलिएण हरिसनिब्भरंगेण । निअपहुणो भत्तेण, विवाहकिच्चाइ विहियाइ ॥ १५० ॥

तदनन्तरं स उम्बरो राजा तां कुमारीं वेसरीमश्वतरीमारोप्य यावन्निजक स्थान प्रति चलित, तावन् नगरलोक इति इत्य भणति, किं इत्याह-अहो अयुक्त अयुक्त इद कार्यमिति शेष ॥ १४६ ॥ तस्मिन्नवसरे एके केचिल्लोका भणन्ति राजान धिक् धिक्-धिक्कारोऽस्तु इत्यर्थ । राज्ञा इद अयुक्त कार्य कृतम्, अन्ये पुनर्लोका इति भणन्ति, एतां अतिदुर्विनीतां कन्यां धिग्धिग् यया पितुर्वचनं नाङ्गीकृतमित्यर्थ ॥ १४७ ॥ पुनस्तदा केपि लोकास्तस्या कन्याया जननीं मातरं निन्दन्ति, केपि तस्या उपाध्यायं पाठक निन्दन्ति, केपि दैव भाग्य निन्दन्ति, केपि पुनर्जिनधर्मं निन्दन्ति ॥ १४८ ॥ 'हु' इति निश्चित तथापि मदनसुन्दरी कन्या विकसित-विकस्वरं वदन मुखं यस्या सा एवम्भूता सती तेन उम्बरेण सह यान्ती-गच्छन्ती, मनसि विषाद न करोति, अत्र हेतुगर्भ विशेषणमाह-कीदृशी सा? यत सम्यक् धर्म विजानन्ती ॥ १४९ ॥ ततो मिलितेन उम्बरपरिवारेण विवाहकृत्यानि-विवाहकार्याणि विहितानि-कृतानि कीदृशेन उम्बरपरिवारेण-हर्षनिर्भराङ्गेन हर्षेण निर्भराङ्गेन निर्भर-भृत अङ्ग यस्य स तेन, पुन कीदृशेन? निजप्रभो-स्वस्वामिनो भक्तेन ॥ १५० ॥

इत्तो—रन्ना सुरसुदरीइ वीवाहणत्थमुज्झाओ । पुट्ठो सोहणलग्ग, सो पभणइ राय ! निसुणेसु ॥ १५१ ॥
अज्ज चिय दिणसुद्धी, अत्थि पर सोहण गय लग्ग । तइया जइया मयणाइ, तीइ कुट्ठिअकरो गहिओ ॥१५२॥
राया भणेइ हु हु, नाओ लग्गस्स तस्स परमत्थो । अहुणाविहु निअधूय, एय परिणावइस्सामि ॥ १५३ ॥
रायाएसेण तओ, खणमित्तेणावि विहिअसामग्गि । मतीहिं पहिट्ठेहिं, विवाहपव्व समाढत्त ॥ १५४ ॥
त च केरिस— ऊसिअतोरणपयडपडाय, वज्जिरतूरगहीरनिनाय ।
नच्चिरचारुविलासिणिघट्ट, जयजयसद्दकरतसुभट्ट ॥ १५५ ॥

इत॰ पर राज्ञा सुरसुन्दर्या द्वितीयपुत्र्या विवाहकरणार्थं उपाध्यायोऽध्यापक शुभलग्न पृष्टस्तदा स प्रभणति—वदति, हे राजन् त्वं शृणु ॥ १५१ ॥ अद्यैव दिनशुद्धिरस्ति, इद सम्पूर्णमपि दिन शुद्धमस्तीत्यर्थ , पर केवल शोभन लग्न तु तदा गत यदा तया मदनसुन्दर्या कुष्ठिकस्य उम्बरराजस्य करो गृहीत ॥ १५२ ॥ हु हु इत्यनादरे । ततो राजाऽनादरेण भणति, ज्ञातस्तस्य लग्नस्य परमार्थो यत्तया कुष्ठी परिणीत इति भाव , अधुनापि च—साम्प्रतमपि च एतां निजपुत्रीं परिणापयिष्यामि ॥ १५३ ॥ ततस्तद-नन्तर राजादेशेन—नृपाज्ञया प्रहृष्टैर्हर्षपूरितैर्मन्त्रिभिरमात्यै विवाहपर्व—विवाहोत्सव समारब्ध—प्रारब्ध, कीदृश विवाहपर्व ? क्षण-मात्रेणापि विहिता—कृता सामग्री यस्य तत् विहितसामग्रि ॥ १५४ ॥ तच्च विवाहपर्व कीदृशं ?—तदाह—उच्छ्रितेषु—ऊर्ध्वीकृतेषु तोरणेषु प्रकटा पताका—ध्वजा यत्र तत् तथोक्त, पुनर्वाद्यमानानि यानि तूरा(र्या)णि—वादित्राणि तेषां गम्भीरो निनादो—ध्वनिर्यत्र

पट्टसुयघडओलिज्जमाल, कुरकपूरतंबोलविसाल ।
धवलदिअतसुवासिणिवग्ग, वुड्ढपुरंधिकहिअविहिमग्ग ॥ १५६ ॥
मग्गणजणदिज्जतसुदान, सयणसुवासिणिकयसम्माण ।
मद्दलवायचउप्फलोय, जणजणवयमणि जणियपमोय ॥ १५७ ॥

तत्तयोक्तं, तथा नृत्यन्–नृत्य कुर्वन् चारु–मनोज्ञा (नाम्) विलासिनीनां–विलासवत्स्त्रीणां वेश्यादीनां 'घट्टत्ति' समुदायो यत्र तत्तयोक्त, पुनर्जयजयशब्द कुर्वन्त' सुष्ठु–शोभना भट्टा–भट्टलोका यत्र तत्तयोक्त ॥ १५५ ॥ तथा–पट्टांशुकैर्विविधवर्णोत्तमवस्त्रैरन्वितो मण्डपो यत्र तत् तथा, कुरसभादि तद्भोजनोपरि दीयमानानि कर्पूरेण–घनसारेण युक्तानि यानि ताम्बूलानि–नागवल्लीपत्राणि तानि विशालानि–विस्तीर्णानि यत्र तत् तथा, धवलं ददानो–मङ्गलगानं गायन् सुवासिनीनां–वधूटीनां वर्ग–समूहो यत्र तत् तथोक्त, तथा–वृद्धा –पुरन्ध्य पुत्रदुहित्रादिपरिवारयुक्ता साध्व्य स्त्रियस्ताभि कथितो विधिमार्गो–विवाहविधानमार्गो यत्र तत् तथोक्तम् ॥ १५६ ॥ तथा–मार्गणजनेभ्यो– याचकलोकेभ्यो दीयमान सुष्ठु–शोभन दानं यत्र तत्, पुन स्वजनानां–स्वकीयसम्बन्धिलोकानां सुवासिनीनां च कृत सन्मानो–बहुमानो यत्र तत् तथा, मार्दलानां–मृदङ्गानां वादो–वादन तेन चतुर्गुणा लोका यत्र तत् तथा, जनानां–पौरलोकानां जनपदानां च देशवासिलोकानां मनसि–चित्ते जनित–उत्पादित प्रमोदो–हर्षो येन–तत् तथा ॥ १५७ ॥

कारिअसुरसुदरिसिणगारँ, सिंगारिअअरिदमणकुमार ।
हथलेवइ मडलविहिचग, करमोयणकरिदाणसुरग ॥ १५८ ॥
एव विहिअविवाहो, अरिदमणो लद्धहयगयसणाहो । सुरसुदरीसमेओ, जा निग्गच्छइ पुरवरीओ ॥ १५९ ॥
ता भणइ सयललोओ, अहोऽणुरूवो इमाण सजोगो । धन्ना एसा सुरसु–दरी य जीए वरो एसो ॥ १६० ॥
केवि पससति निव, केवि वर केवि सुदरिं कन्न । केवि तीएँ उज्झाय, केवि पससति सिवधम्म ॥ १६१ ॥

तथा कारित सुरसुन्दर्या कन्यायाः शृङ्गारो यत्र तत्, पुन. शृङ्गारितोऽरिदमनकुमारो यत्र तत्, पुन पाणिग्रहणसमये ब्राह्मणेन क्रियमाणो यो मण्डलविधिर्लोकप्रसिद्धस्तेन चङ्ग–रम्य, तथा करमोचने–हस्तमोचनसमये राज्ञा कृत हस्त्यश्वादिदान तेन सुरङ्गम् ॥१५८॥ एवमुक्तप्रकारेण विहित.–कृतो विवाहो यस्य स तथा, लब्धा –प्राप्ता ये हया–अश्वा गजाश्च–हस्तिनस्तैः सनाथ'–सहित', पुन सुरसुन्दर्या–निजस्त्रिया समेतो–युक्तोऽरिदमनकुमारो वर्या पुर्या यावदुज्जयिनीतो निर्गच्छति ॥१५९॥ तावत् सकलोऽपि–नगरलोको भणति, अहो ! इति आश्चर्येऽनयोः–कुमारकन्ययोरनुरुपो–योग्य संयोग'–सम्बन्ध. सञ्जात इति शेष', च पुन एषा सुरसुन्दरीकन्या धन्यास्ति यस्या एषोऽरिदमनकुमारो वरो–भर्त्ता जात' ॥ १६० ॥ पुन. तदवसरे केऽपि लोका. राजानं प्रशसन्ति, केऽपि वरं–कुमार प्रशंसन्ति, केऽपि सुरसुन्दरीं कन्यां प्रशंसन्ति, केऽपि लोकास्तस्याः–कन्याया उपाध्याय–गुरुं प्रशसन्ति, केऽपि पुन. शिवधर्मं प्रशसन्ति ॥ १६१ ॥

अमावस्या-पूर्णिमातिथिषु पर्युषणापर्वणि कल्याणकतिथिषु च सति सामर्थ्ये सत्यवकाशे पौषधं कार्यः शङ्खादिवत्, तद-भावेऽपि न कर्त्तव्योऽपि श्रावकादिवत्, परमेता अष्टम्यादितिथयः पौषधकर्त्तव्यताया सन्ति, न अन्याः ।

ननु-यदि पर्वदिवसेषु एव पौषधकरणं न अन्येषु, तदा नन्दमणिकारेण श्रीज्ञाताधर्मकथाया, उदायनभूपेन श्रीभगवत्यां कथ पर्वान्यदिवसेषु अपि पौषधो व्यधायि ? । तथा च तत्पाठः-( पृष्ठम् १७८ )

"तएण नदमणिआरसेट्ठी अण्णया गिम्हकालसमयंसि जेट्ठामूलमासम्मि अट्ठमभत्त परिगिण्हति परिगिण्हित्ता पोसह-सालाए जाव विहरति" इति । श्रीज्ञाताधर्मकथाया त्रयोदशाध्ययने । भगवत्यामुदायनपाठो यथा-( पृष्ठम् ६१८ )

"तएण से उदायणे राया अण्णयाकयाइ जेणेव पोसहसाला पोसहिए एगे अबीए पक्खिअ पोसह पडिजागरमाणे विहरति ।" इति ? ।

उच्यते-यद्यपि अत्र उभयत्र आलापकेषु पर्वपद नास्ति, तथापि अशीत्यधिकैकादशशत ११८० प्रमितवर्षे वर्त्तमाने श्रीविजयसिंहाचार्यकृताया श्रीश्रावकप्रतिक्रमणचूर्णौ नन्दमणिकारस्य अधिकारे पर्वपदप्ररूपितमस्ति । तथाहि-

"पवदिहयम्मि कम्मि, अट्ठमभत्त पगिण्हइ नंदो । पोसहसाल पविसइ, पोसहमादाय चइइ अ॥" इति ॥ १ ॥

तथा उदायनभूपाधिकारेऽपि श्रीउत्तराध्ययनवृत्तौ ( पृष्ठम् ६१८ ) 'पक्खिअ पोसह'मिति पाठेन पक्षिकपर्वं पर्वभूताया पौषधकरणं सूचित, तथा च तत्पाठः—

कारे, तथाहि—"जाव निअम पज्जुवासइ" इति, नियमश्च जघन्यतो मुहूर्त्तमानः, उत्कृष्टतोऽहोरात्रमानकाल इति, पौषधश्च शास्त्रे त्रिधा व्याख्यातः, तथाहि—'पडिपुन्नं पोसहं सम्मं अणुपालेमाणे'त्ति, प्रतिपूर्णमहोरात्र यावच्चतुर्थ्याङ्गे तृतीयाश्वासाधिकारे ( पृष्ठम् २९७ ) अन्यत्रापि ग्रन्थे 'पडिपुण्ण'पदव्याख्याने अयमेवार्थो व्याख्यातोऽस्ति, ततोऽयमहोरात्रमान उत्कृष्ट पौषधः १, तथा—'पोसहं दुहओ पक्खं एगराय न हावए।' इत्यत्र रात्रिग्रहणं दिवान्याकुलतया कर्त्तुमशक्नुवन् रात्रावपि पौषधं कुर्यादिति श्रीउत्तराध्ययनवृत्तौ व्याख्यानात् रात्रिपौषधोऽपि द्वितीयः २, सर्वगच्छीयगीतार्थाचरणया साम्प्रत क्रियमाणो दैवसिकपौषधस्तृतीय ३, ननु—भवतु नाम सुबाह्वोरधिकारेऽपि पर्वान्यदिवसेषु पौषधप्रतिषेध, पर अभयकुमारेण पर्वदिनानि विनापि पौषधत्रय व्यधायि। तत्र का वार्त्ता ?, तथा च श्रीज्ञातासूत्रे ( २० पत्रे ) तत्पाठ—

"अत्थि ण मज्झ सोहम्मकप्पवासी पुव्वसंगतिए देवे महिड्ढीए जाव महासोक्खे, त सेयं खलु मम पोसहसालाए पोसहियस्स बभचारिस्स उम्मुक्कमणिसुवण्णस्स ववगयमालावण्णगविलेवणस्स निक्खित्तसत्थमुसलस्स एगस्स अबीयस्स दब्भसंथारोवगयस्स अट्ठमभत्त परिगिण्हित्ता पुव्वसंगतिय देव मणसि करेमाणस्स विहरित्तए, तते ण पुव्वसंगतिए देवे मम चुल्लमाउयाए धारिणीए देवीए अयमेयारूवे अकालमेहेसु डोहल विणेहिति, एव सपेहेति सपेहित्ता जेणेव पोसहसाला तेणामेव उवागच्छति उवागच्छित्ता पोसहसाल पमज्जति, पमज्जित्ता उच्चारपासवणभूमिं पडिलेहेइ पडिलेहित्ता दब्भसंथारग पडिलेहेइ पडिलेहित्ता दब्भसथारगं दुरूहइ दुरूहित्ता अट्ठमभत्त परिगिण्हइ परिगिण्हित्ता पोसहसालाए पोसहिए बभयारी जाव पुव्वसंगतिय देव मणसि करेमाणे करेमाणे चिट्ठइ" इत्यत्र। उच्यते—अत्र 'अट्ठमभत्त'इति पाठात् अभयकुमारेणापि,

तस्मात् हेतोः पर्वणि एव तस्य पौषधव्रतस्य निष्ठा अपि परिपूर्णत्वं समभूत्, तथा च नन्दस्य पर्वणि एव पौषधग्रहणनिष्ठे समुपदिष्टे । अथवा सन्देहदोलावलीबृहद्वृत्तौ तु श्रीजिनपालोपाध्याया ज्येष्ठपूर्णिमायां पौषधव्रतनिष्ठत्वं प्राहु ( पत्रं ५८ ) तथाहि–"जेट्ठा=मूलंसि मासंसी" इति, ज्येष्ठपूर्णिमायां अष्टमे भक्ते तृतीयदिवसे पर्वणि एव त्रिदैवसिके प्रतिमान्त्यरात्रौ कायोत्सर्गवत् पौषधस्य संभवात्, कथं नन्दमणिकारदृष्टान्तेन पौषधस्य अपर्वानुष्ठानता ? इति, अत्र एकत्रनिष्ठाकाल चतुर्दश्याम् अन्यत्र तु पञ्चदश्यां, ततः कथ न विरोधः ? उच्यते–भवतु नाम चतुर्दशी वा पूर्णिमा वा निष्ठाकाले, पर उभयत्राऽपि पर्वदिनत्वं तु वर्तते एव, अस्माक न अत्र विचारः । ननु विपाकसूत्रे प्रथमाध्ययने ( पृष्ठम् १२ ) "तते ण से सुबाहुकुमारे अन्नया कयाइ चाउद्दसट्ठमुद्दिट्ठपुण्णमासिणीसु जेणेव पोसहसाला तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता पोसहसाल पमज्जति, पमज्जित्ता उच्चारपासवणभूमिं पडिलेहति, पडिलेहित्ता दब्भसंथारगं संथरति, संथरित्ता दब्भसंथार दुरुहइ, दुरुहित्ता अट्ठमभत्त पगिण्हइ, पगिण्हित्ता पोसहसालाए पोसहिते अट्ठमभत्तिए पोसहं पडिजागरमाणे विहरति" इति ॥ सुबाहुकुमारस्य अष्टमः प्रतिपादितः तत्र किं समाधानं ? उच्यते–श्रूयतां नन्दमणिकारोदायनवत् सुबाहोरपि अष्टमस्य संभवात् न दोषः, सुबाहुः अन्यदा कस्मिंश्चित् काले अष्टमेन उपवासत्रयेण युतः सन् चतुर्दशी–अष्टमी–उद्दिष्टा पौर्णमासी–रूपपर्वदिवसेषु पौषधव्रतं अकार्षीत् । पर्वदिनतः प्रागुपवासद्वय कृत, चतुर्दश्यादिपर्वदिने तु पौषधव्रत, न तु चतुर्दश्यादिपर्वदिन आदित कृत्वा एकदिनकृतं पौषधं दिनत्रयेऽपि अनुवर्तयति, सर्वगच्छीयगीतार्थानां अनभिमतत्वात्, यत–पौषधस्तु सामायिकाऽवियुतः सामायिककालस्तु उत्कृष्टतोऽपि अष्टप्राहरिक, यदुक्तं–श्रीश्रीचन्द्रसूरिभिः प्रतिक्रमणसूत्रवृत्तौ सामायिकादि-

प्रतिलाभितं तद्दिने तस्याः दिनत्रय अभक्तार्थत्वात् अष्टमोऽभूत् । २ ननु–भवतु नाम श्रीअभयकुमारस्य सावद्ययोगप्रवृत्तत्वेन अष्टमे पौषधव्रतत्वाभाव, पर श्रीविजयेन राज्ञा सप्तदिवसानि यावत् पौषधः पालितः श्रूयते, तत्र किं कर्तव्यं ?, तदधिकारः श्रीवसुदेवहिण्डौ एकोनविंशतिलम्भे ( पत्र ३१६ ) यथा "चउत्थेण भणियं–माहणेण आइट्ठो पोयणाहिवस्स असणिपाओ, न सिरिविजयस्स रण्णो, त सेय णे सत्तरत्त अण्णं राय ठावेउ ति, ततो निमित्तिणा भणिय, 'साहु भो महामती ! सि, एय कायव, रण्णो जीवियपरिरक्खणनिमित्त अहमवि आगओ, नियमजुत्तो राया नित्थरिहिति उवसग्ग, निमित्तिवयण च परिग्गहेऊण राया जिणायतणमागतो सत्तरोहो, मतीहि वि से वेसमणपडिमा पगइसमग्गेहिं अहिसित्ता सेविज्जए राओवयारेण, सिरिविजयो वि दब्भसथारोवगतो सत्तरत्त परिच्चत्तारमपरिग्गहो बम्भयारी सविग्गो पोसह पालेइ, सत्तमे य दिवसे समततो मेहा पाउब्भूया सलिलभारग(रु)या पवणवेगपवित्थरमाणा विज्जुज्जोइयपासा भयजणणनिट्ठुरगज्जियऽसणा, ततो मज्झण्हकाले महयासद्देण पासाद वेसमणपडिम च चुण्णयती इदासणी पडिया, राया अभिनदिओ पगतीहिं 'नमो अरिहताणं' ति निग्गतो पोसहसालाओ त्ति, "दिट्ठो य तुट्ठेण परियणेण" इति। अत्र उच्यते–श्रीविजयेन सप्ताह पौषधो गृहीत, स च इहलोकार्थं विद्युत्पातलक्षणोपद्रवटालनबुद्ध्या प्रवृत्तत्वात् पर न मोक्षार्थं, तत्राऽपि न स पौषधो व्रतरूप सोच्चारः तस्य, यतस्तेन मध्याह्ने एव विद्युत्पातानन्तर 'नमोऽर्हद्भ्य' इत्युक्त्वा पौषध पारयित्वा तदैव पौषधागारान्निर्गमन व्यधायि, पौषधपारणविधेस्तु मिश्रत्वात्, अहोरात्रावसाने च पौषधपारणसमयत्वाच्च न व्रतरूप पौषधः, तेन सप्ताह पौषधविधानेनाऽपि न दूषणावकाशः ॥ ४ ॥

'अष्टमभक्त' अष्टमभक्तशब्दवाच्यम् उपवासत्रयमेव व्यधायि, न पौषधव्रतत्रयम्, कुतः?, पौषधव्रते तु "तम्मिकए पढइ पोत्थय वा वाएइ, धम्मज्झाण वा झीआयइ, जहा एए साधुगुणा अहं मदभग्गो न सम्मत्थो धारेउ एवमाइ विभासेति।" श्रीआवश्यकचूर्णिपाठात् (पृष्ठम् २०४) धर्मध्यान ध्यातव्यम्। अनेन तु अकालमेघवृष्ट्याशंसारूपसावद्यव्यापारचिंतनेन आर्तध्यान ध्यातम्। ततो नेदं व्रतरूपपौषधत्रयं, तदङ्गीकारे तु श्रीज्ञाताया षोडशाध्ययने (पत्र २१४) "तते ण से पउमनाभे राया कच्छुल्लनारयस्स अतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म दोवईए देवीए रूवे य मुच्छिए दोवईए अज्झोववन्ने जेणेव "पोसहसाला तेणेव उवागच्छई उवागच्छित्ता पोसहसाल जाव पुव्वसगइअ देवं" इत्यादिपाठात् पद्मनामकृतपौषधस्यापि पौषधव्रतत्वापत्तिः, सा च न कस्यापि इष्टा, जिनधर्मवासनाया अपि तस्मिन् अभावात्। एव ठाणावृत्तौ–"समयम्मि तओ कण्हो, पोसहसालाए अट्ठम भत्तं। हरिणेगमेसिदेवं, मणम्मि काउं पगिण्हेइ ॥ १ ॥ उम्मुक्कमणिसुवण्णो, ववगयमाला विलेवणो तत्थ। तणसंथारनिसण्णो, चिट्ठइ जा अट्ठम पुण्ण ॥ २ ॥" इति वाक्यात् श्रीकृष्णस्य पौषधशब्दवाचकत्वमष्टम मात्रैव दर्शितम्, अपि वा सो जनाभावे प्रत्याख्यानमन्तरेणाऽपि तृतीयदिने अष्टम स्यादेव, यदुक्त–श्रीहरिभद्रसूरिभिः श्रीआवश्यकबृहद्वृत्तौ (पत्र २२२); तथाहि–"तत्थ सामी पोसबहुलपाडिवए इमं एयाणुरूवं अभिग्गहं अभिगिण्हइ चउव्विहं दव्वओ १ खित्तओ २ कालओ ३ भावओ ४ दव्वओ कुम्मासे सुप्पकोणेण, खित्तओ एलुय विक्खंभइत्ता, कालओ नियत्तेसु भिक्खायरेसु, भावओ जहा रायधुया दासत्तण पत्ता, नियलबद्धा, मुंडियसिरा, रोयमाणी, अट्ठमभत्तिया एव कप्पति सेस न कप्पति" अत्र चन्दनया न स्वयं अष्टमप्रत्याख्यानं कृतं, १ नाऽपि कस्याऽपि समीपे प्रत्याख्यातं, २ किन्तु यद्दिने भगवान्

सूत्रकृताङ्गचूर्णौ 'उद्दिष्टा'शब्दव्याख्याने कल्याणकदिवसेषु पौषधो दर्शित ॥ ३ ॥ सर्वगच्छीयगीतार्थाचरणया च उपधानतपोवहने पौषधग्रहण लिखितम् ॥ ४ ॥ एवमेतै सूत्रवृत्त्याद्यक्षरैः इमाभि पूर्वोक्तयुक्तिभि अनेन च गुरुसम्प्रदायेन पौषधग्रहणनिरूपण लिखितम् । पुनर्यद्रुचयमुक्त तत्प्रमाणमिति ॥

॥ इति पर्वदिने एव पौषधाचरणाधिकारः ॥ २ ॥

ननु-श्रीमहावीरदेवस्य कैश्चित् कल्याणकपञ्चकमेव प्रोच्यते, श्रीखरतरगच्छे तु कल्याणकषट्क, तत्र किं सिद्धान्तादिसाक्ष्यम् ? उच्यते—सर्वत्र-सूत्र-चूर्णि-वृत्तिस्वपरगच्छीयप्रकरणादौ कल्याणकषट्कस्य एव प्ररूपणात् कल्याणकषट्कमेव ।

यदुक्तं-श्रीआचाराङ्गद्वितीयश्रुतस्कन्धे भावनाऽध्ययने-( पत्र ३८७ ) तथाहि—

"तेणं कालेणं तेण समएण समणे भगवं महावीरे पचहत्थुत्तरे यावि होत्था, तंजहा-हत्थुत्तराहिं चुए चइत्ता गब्भं वक्कंते १ हत्थुत्तराहिं गब्भाओ गब्भ साहरिए २ हत्थुत्तराहिं जाए ३ हत्थुत्तराहिं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए ४ हत्थुत्तराहिं कसिणे पडिपुण्णे निव्वाघाए निरावरणे अणंते अणुत्तरे केवलवरनाणदंसणे समुप्पण्णे ५ साइणा भगव परिनिव्वुडे० ६ ।" इति सूत्रम् । तद्वृत्तिरियम्-'तेण कालेण'मित्यादि 'तेन कालेने'ति दु'षमसुषमादिना 'तेन समयेन'इति विवक्षितेन विशिष्टेन कालेन सता उत्पत्त्यादिकमभूदिति सम्बन्धः । तत्र "पचहत्थुत्तरे आऽवि होत्था" इत्येवमादिना "आरोग्गारोग्ग पसूया" इत्येवमन्तेन ग्रन्थेन भगवतो श्रीवर्द्धमानस्वामिनो विमानच्यवन ब्राह्मणीगर्भाधानम् १ तत शक्रादेशात् त्रिशलागर्भसंहरण २ मुत्पत्ति ३ श्चाभिहिता', 'तत्थ पचहत्थुत्तरे होत्थ'त्ति, हस्त उत्तरो यासामुत्तरफाल्गु-

ननु—यदि पर्वदिवस १ कल्याणक २ पर्युषणापर्व ३ तिथिर्विना पौषधग्रहण निषेधश्चक्रे। तर्हि उपधानतपोवाहनमध्ये किमिति पौषधग्रहण सदा कार्यते ? उच्यते—तत्र यद्यपि महानिशीथादौ उपधाने सदा पौषधग्रहण नोक्तं, तथापि सर्वगीतार्थैः सर्वगच्छीयगीतार्थसम्मततया सर्वेष्वपि सुविहितगच्छेषु नियततया स्वस्वोपधानदिनप्रमाणविधितया स्वस्वतपोयोगविधिप्रकरणेषु निबद्धं दृश्यते, तथैव च तद्गच्छीयोपासकैः क्रियते च। तथाहि—श्रावकश्राविकाणां तु एकस्मिन्नुपधानेऽगूढेऽपि गुर्वाज्ञया अनुज्ञानन्दी विधीयमाना दृश्यते, परमेतैरहोरात्रपौषधदिनानि पश्चादपि शीघ्रं सविशेषं पूरणीयानि, इति श्रीचन्द्रगच्छीय-श्रीअजितसूरयः त्रिसप्तत्यधिकद्वादशशत १२७३ वर्षकृते योगविधिप्रकरणे प्रोचु । १ । पुनरपि पौषधग्रहणपुरस्सरं उपधानतपो विधेयमिति उपधानविधिरुच्यते, इति श्रीअभयदेवसूरिशिष्यपरमानन्दसूरिकृतसामाचारीग्रन्थे ।२। तथाहि "पौषधक्रिया तु यद्यपि महानिशीथे साक्षान्नोक्ता तथापि यथा साधोर्योगेषु अतिशायि क्रियावत्त्वं सर्वप्रतीतम्, तथा श्राद्धानामपि उपधानेषु विलोक्यते" इति श्रीतपागच्छीयश्रीरत्नशेखरसूरिकृते श्रीआचारप्रदीपे (पत्रे १९) । ३ । एवं श्रीवृद्धगच्छीयसामाचार्याम् । ४ । श्रीमानदेवसूरिकृते कुलके । ५ । श्रीखरतरगच्छीय-श्रीजिनपतिसूरिकृतद्वादशकुलकवृत्तौ । ६ । श्रीजिनप्रभसूरिकृतविधिप्रपायाम् । ७ । अन्येष्वपि सामाचारीग्रन्थेषु, आचरणया उपधाने पौषधग्रहण प्रमाणीकृतमस्ति, अत्राऽयं भावार्थः,—श्रीस्थानाङ्ग १ सूत्रकृताङ्ग २ श्रीउत्तराध्ययनलघुबृहद्वृत्ति ३ योगशास्त्रवृत्ति ४ श्री औपपातिकवृत्ति ५ ठाणावृत्ति ६ प्रमुखग्रन्थेषु पर्वदिवसेषु पौषध प्रतिपादितः ॥ १ ॥ तथा—आवश्यकबृहद्वृत्ति १ आवश्यकवृत्ति २ पञ्चाशकचूर्णिवृत्ति ३ प्रमुखग्रन्थेषु पर्वान्यदिवसेषु पौषधनिषेधः प्रत्यपादि ॥ २ ॥ तथा शीलाङ्काचार्यकृत-

ननु–अत्र पूर्वलिखितालापकेषु क्वापि स्थानपदमुक्त, क्वापि च वस्तु पद, पर क्वापि च्यवनगर्भापहारादीना नामग्राह
कल्याणकशब्दाभिधेयत्व स्पष्टमुद्दिष्टमस्ति ?, उच्यते–अनेकशः तत्प्रतिपादनात्, यदुक्त–श्रीचन्द्रकुलाम्बरतरणि–श्रीशी-
लभद्रसूरि तच्छिष्यशाकम्भरीयनृपप्रतिबोधकश्रीधर्मघोषसूरि –तच्छिष्यः श्रीयशोभद्रसूरि तच्छिष्यः श्रीदेवसेनगणिः
तच्छिष्यः श्रीपृथ्वीचन्द्रसूरि तद्विरचिते श्रीपर्युषणाकल्पटिप्पनके। तथाहि–"हस्त उत्तरो यासा ता, बहुवचन बहुकल्याण-
कापेक्ष" इति ॥ १ ॥ पुनरपि श्रीपर्युषणाकल्पाध्ययननिरुक्ते श्रीविक्रमात्तत्त्वगुणेन्दुवर्षे १३२५ निर्मिते श्रीविनयेन्दुसूरयोऽप्य-
वोचन्। तथाहि–"तेण कालेण" इति तस्मिन् काले यः पूर्वतीर्थङ्करैः श्रीवीरस्य च्यवनादिहेतुर्ज्ञात कथितश्च, यस्मिन्
समये तीर्थङ्करच्यवनं स एव समय उच्यते, समय–कालनिर्द्धारणार्थ, यत –कालो वर्णोऽपि, तथा "हस्त उत्तरो यासा
ता हस्तोत्तरा उत्तराफाल्गुन्यः, बहुवचन बहुकल्याणकापेक्ष, तथा हि विमोश्च्यवनम् १, गर्भाद्गर्भसङ्क्रान्ति २, जन्म
३, व्रत ४, केवल ५, चाऽभवत्, निर्वृतिस्तु स्वातौ ६, ॥ २ ॥ एव श्रीजिनप्रभसूरयोऽपि सन्देहविषौषध्या कल्याणक-
शब्द प्रोचु (पत्र २), तथाहि–
"पञ्चसु च्यवन १ गर्भापहार २ जन्म ३ दीक्षा ४ ज्ञान ५ कल्याणकेषु हस्तोत्तरा यस्य स तथा, च्यवनादीनि पञ्च उत्तर-
फाल्गुनिषु जातानि, निर्वाणस्य स्वातौ सभूतत्वादिति भावः" ॥ ३ ॥ एव श्रीसङ्घपट्टकबृहद्वृत्तौ (पत्र ५९९) चैत्र कूटीयप्र-
शस्तिसत्काव्यव्याख्यानावसरे। तथाहि–"क्षुद्राणा लिङ्गिना आचीर्णानि सिद्धान्तोक्तमपि श्रीमहावीरस्य षष्ठ गर्भापहारक
ल्याणक लज्जनीयत्वात् न कर्त्तव्यमित्यादिका आचरणा" ॥ ४ ॥ पुनरेतत्सम्मतिप्रतिपादिक गुणचन्द्रकृतप्राकृतवीरचरित्रम्

नीनां वा हस्तोत्तराः तासु पञ्चसु स्थानेषु गर्भाधान १ संहरण २ जन्म ३ दीक्षा ४ ज्ञानोत्पत्ति ५ रूपेषु संवृत्ता', अत पञ्च-हस्तोत्तरो भगवानभूदिति ॥ १ ॥

एवं-श्रीस्थानाङ्गसूत्रवृत्तौ पञ्चमस्थानप्रथमोद्देशकेऽपि (पत्र ३०७), तथाहि-"समणे भगव महावीरे पंचहत्थुत्तरे होत्था, त जहा-हत्थुत्तराहिं चुए चइत्ता गब्भ वक्कते १ हत्थुत्तराहिं गब्भाओ गब्भ साहरिए २ हत्थुत्तराहिं जाए ३ हत्थुत्तराहिं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारिअं पव्वइए ४ हत्थुत्तराहिं अणते अणुत्तरे जाव केवलवरनाणदसणे समुप्पन्ने । ५ । साइणा भगवं परिनिव्वुडे । ६ ।" वृत्तिर्यथा—"समणे"इत्यादि, हस्तोपलक्षिता उत्तरा हस्तोत्तरा, हस्तो वा उत्तरो यासां ता हस्तोत्तराः-उत्तराफाल्गुन्यः, पञ्चसु च्यवनगर्भापहरणादिषु हस्तोत्तरा यस्य स तथा 'गर्भात्, गर्भस्थानात्, गर्भ'न्ति गर्भे=गर्भस्थानान्तरे, संहृतो=नीतः, निर्वृत्तस्तु स्वातिनक्षत्रे कार्तिकामावास्यायामिति ॥ २ ॥

इत्यमेव दशाश्रुतस्कन्धचूर्णावपि अष्टमाध्ययने कल्याणकपद्धमेवामाणि । तथाहि-

"तेण कालेण तेण समएण जो भगवता उसभसामिणा सेसतित्थकरेहि य भगवओ वद्धमाणसामिणो चवणादीण छण्ह वत्थूण कालो णाओ दिट्ठो वागरिओ अ ।"

"तेण कालेण तेण समएण"ति कालान्तर्गतः समयः, समयादिश्च कालः सामण्णकालओ एस विसेसकालो, समओ हत्यस्स उत्तराओ जाओ हत्थुत्तराओ गगणं च पडुच्च हत्थुत्तरो आसिं तातो हत्थुत्तराओ उत्तरफग्गुणीओ छट्ठी अहोर-त्तस्स रत्तीए पुव्वरत्तावरत्तसि" ॥ ३ ॥

ननु—अत्र पूर्वोल्लिखितोल्लेखकेषु क्वापि स्थानपञ्चकमुक्त, क्वापि च वस्तु षट्क, पर क्वापि च्यवनगर्भापहारादीना नामग्राह कल्याणकशब्दाभिधेयत्व स्पष्टमुद्दिष्टमस्ति ?, उच्यते—अनेकशः तत्प्रतिपादनात्, यदुक्त—श्रीचन्द्रकुलाम्बरतरणि—श्रीशीलभद्रसूरिः तच्छिष्यशाकम्भरीयनृपप्रतिबोधकश्रीधर्मघोषसूरिः—तच्छिष्यः श्रीयशोभद्रसूरिः तच्छिष्य श्रीदेवसेनगणिः तच्छिष्यः श्रीपृथ्वीचन्द्रसूरिः तद्विरचिते श्रीपर्युषणाकल्पटिप्पनके। तथाहि—"हस्त उत्तरो यासा ताः, बहुवचन बहुकल्याणकापेक्ष" इति ॥ १ ॥ पुनरपि श्रीपर्युषणाकल्पाध्ययननिरुक्ते श्रीविक्रमात्तत्त्वगुणेन्दुवर्षे १३२५ निर्मिते श्रीविनयेन्दुसूरयोऽप्यवोचन्। तथाहि—"तेण कालेण" इति तस्मिन् काले यः पूर्वतीर्थङ्करे श्रीवीरस्य च्यवनादिहेतुर्ज्ञात कथितश्च, यस्मिन् समये तीर्थङ्करच्यवन स एव समय उच्यते, समय —कालनिर्द्धारणार्थः, यत—कालो वर्णोऽपि, तथा "हस्त उत्तरो यासा ता हस्तोत्तरा उत्तराफाल्गुन्यः, बहुवचन बहुकल्याणकापेक्ष, तस्या हि विभोश्च्यवनम् १, गर्भाद्गर्भसङ्क्रान्ति २, जन्म ३, व्रत ४, केवल ५, चाऽभवत्, निर्वृतिस्तु स्वातौ ६, ॥ २ ॥ एव श्रीजिनप्रभसूरयोऽपि सन्देहविषौषध्या कल्याणकशब्द प्रोचु (पत्र २), तथाहि—

"पञ्चसु च्यवन १ गर्भापहार २ जन्म ३ दीक्षा ४ ज्ञान ५ कल्याणकेषु हस्तोत्तरा यस्य स तथा, च्यवनादीनि पञ्च उत्तरफाल्गुनिषु जातानि, निर्वाणस्य स्वातौ सम्भूतत्वादिति भावः" ॥ ३ ॥ एव श्रीसङ्घपट्टकबृहद्वृत्तौ (पत्र ५९६) चैत्र कूटीयप्रशस्तिसत्कव्याख्यानावसरे। तथाहि—"क्षुद्राणा लिङ्गिना आचीर्णानि सिद्धान्तोक्तमपि श्रीमहावीरस्य षष्ठ गर्भापहारकल्याणकं लघ्ननीयत्वात् न कर्त्तव्यमित्यादिका आचरणा" ॥ ४ ॥ पुनरेतत्सम्मतिप्रतिपादिकं गुणचन्द्रकृतप्राकृतवीरचरित्रम्

नीना ता हस्तोत्तराः ताश्च पञ्चसु स्थानेषु गर्भाधान १ संहरण २ जन्म ३ दीक्षा ४ ज्ञानोत्पत्ति ५ रूपेषु संवृत्ता , अत पञ्च-हस्तोत्तरो भगवानभूदिति ॥ १ ॥

एवं-श्रीस्थानाङ्गसूत्रवृत्तौ पञ्चमस्थानप्रथमोद्देशकेऽपि (पत्र ३०७), तथाहि–"समणे भगव महावीरे पचहत्थुत्तरे होत्था, त जहा–हत्थुत्तराहिं चुए चइत्ता गब्भ वक्कते १ हत्थुत्तराहिं गब्भाओ गब्भ साहरिए २ हत्थुत्तराहिं जाए ३ हत्थुत्तराहिं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारिअं पव्वइए ४ हत्थुत्तराहिं अणंते अणुत्तरे जाव केवलवरनाणदसणे समुप्पन्ने । ५ । साइणा भगवं परिनिव्वुडे । ६ ।" वृत्तिर्यथा—"समणे" इत्यादि, हस्तोपलक्षिता उत्तरा हस्तोत्तरा, हस्तो वा उत्तरो यासा ता हस्तोत्तराः–उत्तराफाल्गुन्यः, पञ्चसु च्यवनगर्भापहरणादिषु हस्तोत्तरा यस्य स तथा 'गर्भात्, गर्भस्थानात्, गर्भ'न्ति गर्भे=गर्भस्थानान्तरे, संहृतो=नीतः, निर्वृतस्तु स्वातिनक्षत्रे कार्त्तिकामावास्यायामिति ॥ २ ॥

इत्थमेव दशाश्रुतस्कन्धचूर्णावपि अष्टमाध्ययने कल्याणकषट्कमेवाभाणि । तथाहि–

"तेणं कालेण तेण समएण जो भगवता उसभसामिणा सेसतित्थकरेहि य भगवओ वद्धमाणसामिणो च्चवणादीण छण्हं वत्थूण कालो णाओ दिट्ठो वागरिओ अ ।"

"तेण कालेण तेण समएण"ति कालान्तर्गत समयः, समयादिश्च काल सामण्णकालओ एस विसेसकालो, समओ हत्थस्स उत्तराओ जाओ हत्थुत्तराओ गगणं च पडुच्च हत्थुत्तरो आसि तासो हत्थुत्तराओ उत्तरफग्गुणीओ छट्ठी अहोरत्तस्स रत्तीए पुव्वरत्तावरत्तंसि" ॥ ३ ॥

च्यवनगर्भापहारादीना नामग्राह
—श्रीचन्द्रकुलाम्बरतरणि–श्रीशी-
ननु–अत्र पूर्वलिखितालापकेषु क्वापि स्थानपञ्चक[illegible]
कल्याणकशब्दाभिधेयत्व स्पष्टमुद्दिष्टमस्ति ?, उच्यते–अनेकशः तत्प्रतिपाद[illegible] श्रीयशोभद्रसूरिः तच्छिष्यः श्रीदेवसेनगणि
लभद्रसूरिः तच्छिष्यशाकम्भरीयनृपप्रतिबोधकश्रीधर्मघोषसूरिः–तच्छिष्यः "हस्त उत्तरो यासा ताः, बहुवचन बहुकल्याण-
तच्छिष्यः श्रीपृथ्वीचन्द्रसूरिः तद्विरचिते श्रीपर्युषणाकल्पटिप्पनके। तथाहि—श्रीविक्रमात्तत्त्वगुणेन्दुवर्षे १३२५ निर्मिते श्रीविनयेन्दुसूरयोऽप्य-
कापेक्ष" इति ॥ १ ॥ पुनरपि श्रीपर्युषणाकल्पाध्ययननिरुक्ते श्रीवीरस्य च्यवनादिहेतुर्ज्ञात कथितश्च, यस्मिन्
वोचन्। तथाहि–"तेण कालेण" इति तस्मिन् काले यः पूर्वतीर्थङ्करैः , यत –कालो वर्णोऽपि, तथा "हस्त उत्तरो यासा
समये तीर्थङ्करच्यवन स एव समय उच्यते, समयः–कालनिर्द्धारणार्थ तस्या हि विभोश्च्यवनम् १, गर्भाद्गर्भसङ्क्रान्ति २, जन्म
ता हस्तोत्तरा उत्तराफाल्गुन्य , बहुवचन बहुकल्याणकापेक्ष, श्रीजिनप्रभसूरयोऽपि सन्देहविषौषध्या कल्याणक-
३, व्रत ४, केवल ५, चाऽभवत्, निर्वृतिस्तु स्वातौ ६, ॥ २ ॥ एव
शब्द प्रोचुः ( पत्र २ ), तथाहि–
"पञ्चसु च्यवन १ गर्भापहार २ जन्म ३ दीक्षा ४ ज्ञान ५ कल्याणकेषु हस्तोत्तरा यस्य स तथा, च्यवनादीनि पञ्च उत्तर-
फाल्गुनिषु जातानि, निर्वाणस्य स्वातौ समूतत्वादिति भावः" ॥ ३ ॥ एव श्रीसङ्घपट्टकबृहद्वृत्तौ (पत्र ५९१) चैत्र कूटीयप्र-
शस्तिसत्ककाव्यव्याख्यानावसरे । तथाहि–"क्षुद्राणा लिङ्गिना आचीर्णानि सिद्धान्तोक्तमपि श्रीमहावीरस्य षष्ठ गर्भापहारक
ल्याणकं लज्जनीयत्वात् न कर्त्तव्यमित्यादिका आचरणा" ॥ ४ ॥ पुनरेतत्सम्मतिप्रतिपादिक गुणचन्द्रकृतप्राकृतवीरचरित्रम्

नीना वा हस्तोत्तराः ताश्च पञ्चसु स्थानेषु गर्भाधान १ संहरण २ जन्म ३ दीक्षा ४ ज्ञानोत्पत्ति ५ रूपेषु संवृत्ता, अतः पञ्च-हस्तोत्तरो भगवानभूदिति ॥ १ ॥

एवं-श्रीस्थानाङ्गसूत्रवृत्तौ पञ्चमस्थानप्रथमोद्देशकेऽपि (पत्र ३०७), तथाहि-"समणे भगवं महावीरे पंचहत्थुत्तरे होत्था, तं जहा-हत्थुत्तराहिं चुए चइत्ता गब्भं वक्कंते १ हत्थुत्तराहिं गब्भाओ गब्भं साहरिए २ हत्थुत्तराहिं जाए ३ हत्थुत्तराहिं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारिअं पव्वइए ४ हत्थुत्तराहिं अणंते अणुत्तरे जाव केवलवरनाणदंसणे समुप्पन्ने । ५ । साइणा भगवं परिनिव्वुडे । ६ ।" वृत्तिर्यथा—"समणे" इत्यादि, हस्तोपलक्षिता उत्तरा हस्तोत्तरा, हस्तो वा उत्तरो यासां ता हस्तोत्तराः-उत्तराफाल्गुन्यः, पञ्चसु च्यवनगर्भापहरणादिषु हस्तोत्तरा यस्य स तथा 'गर्भात्, गर्भस्थानात्, गर्भ'न्ति गर्भे=गर्भस्थानान्तरे, संहृतो=नीतः, निर्वृत्तस्तु स्वातिनक्षत्रे कार्त्तिकामावास्यायामिति ॥ २ ॥

इत्थमेव दशाश्रुतस्कन्धचूर्णावपि अष्टमाध्ययने कल्याणकपञ्चमेवाभाणि । तथाहि—

"तेण कालेण तेण समएण जो भगवता उसभसामिणा सेसतित्थकरेहि य भगवओ वद्धमाणसामिणो च्यवणादीण छण्हं वत्थूण कालो णाओ दिट्ठो वागरिओ अ ।"

"तेण कालेण तेण समएणं"ति कालान्तर्गतः समयः, समयादिश्च कालः सामण्णकालओ एस विसेसकालो, समओ हत्थस्स उत्तराओ जाओ हत्थुत्तराओ गगणं च पडुच्च हत्थुत्तरो जासिं ताओ हत्थुत्तराओ उत्तरफग्गुणीओ छट्ठी अहोरत्तस्स रत्तीए पुव्वरत्तावरत्तंसि" ॥ ३ ॥

ननु–अत्र पूर्वलिखितालापकेषु क्वापि स्थानपद्कमुक्त, क्वापि च वस्तु पद्क, पर क्वापि च्यवनगर्भापहारादीना नामग्राह
कल्याणकशब्दाभिधेयत्व स्पष्टमुद्दिष्टमस्ति ?, उच्यते–अनेकशः तत्प्रतिपादनात्, यदुक्त–श्रीचन्द्रकुलाम्बरतरणि–श्रीशी-
लभद्रसूरिः तच्छिष्यशाकम्भरीयनृपप्रतिबोधकश्रीधर्मघोषसूरि –तच्छिष्यः श्रीयशोभद्रसूरिः तच्छिष्यः श्रीदेवसेनगणि
तच्छिष्यः श्रीपृथ्वीचन्द्रसूरिः तद्विरचिते श्रीपर्युषणाकल्पटिप्पनके। तथाहि–"हस्त उत्तरो यासा ता', बहुवचन बहुकल्याण-
कापेक्ष" इति ॥ १ ॥ पुनरपि श्रीपर्युषणाकल्पाध्ययननिरुक्ते श्रीविक्रमात्तत्त्वगुणेन्दुवर्षे १३२५ निर्मिते श्रीविनयेन्दुसूरयोऽप्य-
घोषन्। तथाहि–"तेण कालेण" इति तस्मिन् काले यः पूर्वतीर्थङ्करैः श्रीवीरस्य च्यवनादिहेतुर्ज्ञातः कथितश्च, यस्मिन्
समये तीर्थङ्करच्यवन स एव समय उच्यते, समय –कालनिर्द्धारणार्थः, यतः–कालो वर्णोऽपि, तथा "हस्त उत्तरो यासा
ता हस्तोत्तरा उत्तराफाल्गुन्यः, बहुवचन बहुकल्याणकापेक्ष, तस्या हि विभोश्च्यवनम् १, गर्भाद्गर्भसङ्क्रान्ति' २, जन्म
३, व्रत ४, केवल ५, चाऽभवत्, निर्वृतिस्तु स्वातौ ६, ॥ २ ॥ एव श्रीजिनप्रभसूरयोऽपि सन्देहविषौषध्या कल्याणक-
शब्द प्रोचुः ( पत्र २ ), तथाहि–
"पञ्चसु च्यवन १ गर्भापहार २ जन्म ३ दीक्षा ४ ज्ञान ५ कल्याणकेषु हस्तोत्तरा यस्य स तथा, च्यवनादीनि पञ्च उत्तर-
फाल्गुनिषु जातानि, निर्वाणस्य स्वातौ सम्भूतत्वादिति भावः" ॥ ३ ॥ एव श्रीसङ्घपट्टकबृहद्वृत्तौ (पत्र ५९६) चैत्र कूटीयप्र-
शस्तिसत्ककाव्यव्याख्यानावसरे। तथाहि–"क्षुद्राणा लिङ्गिना आचीर्णानि सिद्धान्तोक्तमपि श्रीमहावीरस्य षष्ठ गर्भापहारक
ल्याणक लज्जनीयत्वात् न कर्त्तव्यमित्यादिका आचरणा" ॥ ४ ॥ पुनरेतत्सम्मतिप्रतिपादिक गुणचन्द्रकृतप्राकृतवीरचरित्रम्

॥ ५ ॥ प्रवचनसारोद्धार ॥ ६ ॥ श्रीआवश्यकसूत्रवृत्ति ॥ ७ ॥ प्रमुखग्रन्था बहव सन्ति, तदर्थिना ते निरीक्षणीया ।
अथ च श्रीपञ्चाशकसूत्रे श्रीहरिभद्रसूरिकृते ( पत्र १५८ ) "इय ते दिणा पसत्था" इत्यादिगाथात्रिके श्रीमहावीरस्य
कल्याणकपञ्चकमेवोक्तम्, श्रीअभयदेवसूरिणाऽपि तत्तथैव व्याख्यातम्, न तु नाऽस्तीति निषेधपर वचन, तदभिप्राय
तु त एव बहुश्रुता वा जानन्ति ।

अत्र प्रवादीत् कोऽपि प्रतिवादी—ननु च्यवनादीना चतुर्णां कल्याणकत्व भवतु, पर गर्भापहारस्य नेति । मैवम्—यत',
उक्तपूर्ववक्ष्यमाणसूत्र-वृत्ति-चूर्णि-प्रकरणादिषु कुत्रापि एव विवेचन पूर्वसूरिभिः पापभीरुभिर्नोक्त, यदुत श्रीमहावीरस्य
च्यवनादीना कल्याणकत्व गर्भापहारस्य नेति, तर्हि स्वचित्तविकल्पितकुविकल्पेन केन उत्सूत्रवादिना ? उच्यते—अपि च
च्यवनाद्यन्तर्वर्तिनो गर्भापहारस्य कल्याणकत्वे तत्समुदायाद् अपनीयमाने च्यवनादीनापि अकल्याणकत्वापत्तिरापद्येत ।
तथा च हैमन्यायसूत्रम्–'सन्नियोगशिष्टानामेकापायेऽन्यतरस्याप्यपायः ।' अतो हेतोः पञ्चहस्तोत्तरो भगवानभूत् इत्यु-
कत्वाच ( च्यवन )भवनक्रियायाः सर्वत्र समानत्वात् । यदि च्यवनादीनि चत्वारि कल्याणकानि, तर्हि गर्भापहारस्य कल्या-
णकत्व निराकर्तुं साक्षादिन्द्राणामपि अशक्यं, न च वाच्यं गर्भापहारस्य आश्चर्यभूतत्वाद् अनाराध्यत्वम्, एवं चेत्तर्हि
मल्लिजिनस्यापि स्त्रीत्वे तीर्थङ्करस्य आश्चर्यभूतत्वेन अमान्यत्व भावि । तथा च सति श्वेताम्बरधर्मेऽपि दिगम्बरधर्मस्या-
भ्युपगमः स्यादिति १ । पुनरपि एकसमये ऋषभाद्यष्टोत्तरशत सिद्ध, तस्यापि उत्कृष्टावगाहनायां सिद्धत्वेन आश्चर्यभू-
तत्वात् अनाराध्यत्वेन अवन्द्यत्वापत्ति' स्यात् २ ततऋषभादिवत् गर्भापहारस्यापि कल्याणकत्वं आराध्यत्वं युक्तिमत् ।

तथैव श्रीआगमिकगच्छीय-श्रीजयतिलकसूरयोऽपि सम्यक्त्वसम्भयनाम्नि महाकाव्ये सुलसाचरित्रे ( पत्र ८९ ) सप्तश-
तश्लोकमन्यामे सम्यक्त्वपरीक्षणनाम्नि षष्ठे सर्गे अम्बडमुनिकृतवर्द्धमानस्वामिषट्कल्याणकस्तवनाधिकारे षट्कल्याणका-
ना आराध्यत्वेन स्तुतिश्चक्रिरे । तथाहि—

“देवानन्दोदरे श्रीमान्, श्वेतषष्ठ्या सदा शुचिः । अवतीर्णोऽसि मासस्याषाऽऽढस्य शुचिता तत ॥ १ ॥ त्रिशला सर्व-
सिद्धेच्छा, त्रयोदश्यामभूद्यतः । तवावतारस्तेनैषा, सर्वसिद्धा त्रयोदशी ॥ २ ॥ शुक्लत्रयोदश्या यश्चाऽचल मेरु प्रचालयन् ।
चित्रं कृतवाँस्तद्योगात्, चैत्रमासोऽपि कथ्यते ॥ ३ ॥ यस्याद्यदशम्या दुर्ग-मोक्षमार्गस्य शीर्षकम् । चारित्रमादृतं युक्ता,
मासोऽस्य मार्गशीर्षता ॥ ४ ॥ दशम्या यस्य शुक्लाया, केवलश्रीरहो त्वया । द्यादत्ता तेन मासोऽस्य, युक्ता माधवता प्रभो !
॥ ५ ॥ तव निर्वाणकल्याणं, यद्दिन आगमिष्यति । ततो न वेद्मि नाथोऽहं, मादृशोऽप्यक्षवेदिन ॥ ६ ॥ सिद्धार्थराजा-
ङ्गजदेवराज !, कल्याणकैः पञ्चभिरिति स्तुतस्त्वम् । तथाविधे ह्यन्तरवैरिषड्कं, यथा जयाम्याशु तवप्रसादात् ॥ ७ ॥ इति
स्तुत्वा जिनाधीशं, त्रिः प्रणम्याऽम्बडो मुनि । विस्मितास्यः सभासीनोऽश्रौषीच्च धर्मदेशनाम् ॥ ८ ॥” इति ॥ १ ॥

तथा कोटिमितसमवायाङ्गसूत्रे ( पत्र १०५ ) श्रीअभयदेवसूरिकृततट्टीकायां च श्रीमहावीरस्य गर्भापहारस्य पोट्टिलभ-
घात् पञ्चमभवत्वेन प्रमाणीकृतत्वात् । तथाहि-“समणे भगवं महावीरे तित्थगरभवग्गहणाओ छट्ठे पोट्टिलभवग्गहणे एगं
वासकोडिं सामण्णपरिआगं पाउणित्ता सहस्सारे कप्पे सव्वट्ठे विमाणे देवत्ताए उववण्णे ।”
वृत्तिर्यथा-‘समणे’त्यादि, यतो भगवान् पोट्टिलाभिधानो राजपुत्रो बभूव, तत्र च वर्षकोटिं प्रव्रज्यां पालितवान् इत्येको भवः

। १ । ततो देवोऽभूदिति द्वितीय । २ । ततो नन्दनाभिधानो राजसूनुः 'छत्राग्र'नगर्यां जज्ञे इति तृतीय । ३ । तत्र भवे धर्पलक्ष सर्वदा मासक्षपणेन तपस्तप्त्वा दशमे देवलोके पुष्पोत्तर प्रवरविजयपुण्डरीकाभिधाने विमाने देवोऽभवदिति चतुर्थ । ४ । ततो ब्राह्मणकुण्डग्रामे ऋषभदत्तस्य ब्राह्मणस्य भार्याया देवानन्दाऽभिधानाया कुक्षौ उत्पन्न इति पञ्चम । ५ । तत त्र्यशीतितमे दिवसे क्षत्रियकुण्डग्रामे नगरे सिद्धार्थमहाराजस्य त्रिशलाभिधानभार्याया कुक्षौ इन्द्रवचनकारिणा हरिणेगमेषि-नाम्ना देवेन संहृतः, तीर्थंकरतया जात इति षष्ठः । ६ । उक्तभवग्रहण विना हि नान्यद्भवग्रहण षष्ठ श्रूयते भगवत इति, एतदेव षष्ठभवग्रहणतया व्याख्यात, यस्माच्च भवग्रहणादिद षष्ठ तदपि एतस्मात् षष्ठमेव इति सुष्ठु उच्यते, तीर्थंकर-भवग्रहणात्षष्ठे पोट्टिलभवग्रहणे इति ॥ २ ॥

ननु–तपागच्छीयप्राक्तनसूरिकृतग्रन्थेऽपि क्वापि गर्भापहारस्य कल्याणकता प्रतिपादिताऽस्ति ? उच्यते—तपागच्छीय-श्रीकुलमण्डनसूरिणा कल्पसूत्रावचूरौ स्पष्ट तद्भणनात्, तथाहि—"पच हत्थुत्तरे होत्थ त्ति" हस्तादुत्तरस्या दिशि वर्तमानत्वात् हस्तोत्तरा हस्त उत्तरो यासा ता हस्तोत्तरा=उत्तराफाल्गुन्यः, बहुवचन-बहुकल्याणकापेक्ष पञ्चसु च्यवन १ गर्भापहार २ जन्म ३ दीक्षा ४ ज्ञान ५ कल्याणकेषु हस्तोत्तरा यस्य सः, तथा निर्वाणस्य स्वातौ जातत्वादिति ६ ॥ ३ ॥

पुनः श्रीकुलमण्डनसूरिकृतटिप्पनकेऽपि, तथाहि—

पञ्चहस्तोत्तर आसीत्, हस्त उत्तरोऽग्रेसरो यासा ता उत्तरफाल्गुन्यः, बहुवचन=बहुकल्याणकापेक्ष, तस्यां हि विभो च्यवनम् १, गर्भाद्गर्भसङ्क्रान्तिः २ जन्म ३ व्रत ४ केवल ५ चाभवत् निर्वृतिस्तु स्वातौ ६ ॥ ४ ॥

उच्यते—ते एव जानन्ति-तेषामेव ष

ननु-तर्हि कथ तपागच्छीया गुरवो गर्भापहारस्य कल्याणकत्व न श्रद्दधन्ति ? उच्यते—ते एव जानन्ति-तेषामेव ष जिनवचनलोपस्य निजगुरुपारम्पर्यलोपस्य च दोषो भावी, का हानिः अस्माक इति ॥

॥ इति श्रीमहावीरदेवस्य षट्कल्याणकाधिकारः ॥ ३ ॥

ननु-केऽपि परविघ्नसन्तोषिणः प्रलपन्ति यदुत नवाङ्गीवृत्तिकारकः श्रीस्तम्भनकपार्श्वनाथप्रकटक श्रीअभयदेवसूरि श्रीखरतरगच्छे न बभूव, किन्तु अन्यगच्छे इति, तत्र केषां ग्रन्थानां सम्मत्या एतादृश प्रभावक श्रीअभयदेवसूरिः श्रीखरतरगच्छे एव बभूवेति निश्चीयते ?, उच्यते—येषा गच्छे श्रीअभयदेवसूरीणां गुरुशिष्यपरम्परा मिलति तेषामेव गच्छे श्रीअभयदेवसूरिर्जात इति, सा तु तस्य परम्परा श्रीखरतरगच्छे एव, नाऽन्यगच्छेषु । यदुक्त गुणचन्द्रगणिना एकोनचत्वारिंशदधिकैकादशशतवर्ष ११३९ निर्मितस्य पञ्चविंशत्यधिकद्वादशसहस्र १२०२५ प्रमाणस्य श्रीवीरचरित्रस्य प्रशस्तौ, (३३९ पत्रे ) तथाहि—

इय सुक्कज्झाणाणल निदड्ढघणघातिकम्मदारुस्स । गोयमपहुस्स सहसा, उप्पन्न केवल नाण ॥ १ ॥ वारसवासाणि विहरिऊण सिरिजबुवो-हिऊणभवे सिवं गए तमि । भयव सुहम्मसामी, निव्वाणपर्द पयासेइ ॥ २ ॥ तम्मि वि चिरकाल विहरिऊण सिरिजबुसामिणो दाउं । गच्छगणाणमणुन्न, सपत्ते सिद्धिवासम्मि ॥ ३ ॥ एव विज्जाहरसुरनर-सुरिंदसंदोहवदणिज्जेसु । समइक्कतेसु महापहुसु सेज्जभवाईसु ॥ ४ ॥ असुयगुणरयणनिही मिच्छत्ततमंधलोयदिणनाहो । दूरुच्छारिअवइरो, वइरस्सामी समुप्पन्नो ॥ ५ ॥ साहाइ तस्स चदेकुलम्मि निप्पडिमपसमकुलभवण । आसि सिरिवद्धमाणो, मुणिनाहो सजमनि

हिव ॥ ६ ॥ बहुलकलिकालतमपस-रपूरिआसेसविसमसममागो । दीवेण व मुणीण, पयासिओ जेण मुत्तिपहो ॥ ७ ॥ मुणिवइणो तस्स हरि-हासससिअजसपसाहिआसस्स । आसि दुवे वरसीसा, जयपयडा सूरससिणोव ॥ ८ ॥ भवजलहिवी-इसमं-तभविअसत्ताणतारणसमत्थो। बोहित्थोव महत्थो, सिरिसूरिजिणेसरो पढमो ॥ ९ ॥ गुरुसाराओ धवलाओ, 'सुविहिआ' खरयसाहुसंतई[1] जाया । हिमवंताओ गंग-व्व निग्गया सयलजणपुज्जा ॥ १० ॥ अण्णो अ पुण्णिमाच-ंदसुंदरो बुद्धिसागरो सूरी । निम्मविअपवरवागरण-छंदसत्थो पसत्थमई ॥ ११ ॥ एगतवायविलसिर-परवाइकुरंगभगसीहाण । तेसिं सीसो जिणच-ंदसूरिनामा समुप्पण्णो ॥ १२ ॥ संवेगरंगसाला, न केवलं कव्वविरइणा जेण । भवजणविम्हयकरी, विहिया संजमपवित्तीऽवि ॥ १३ ॥ ससमयपरसमयन्नू, विसुद्धसिद्धंतदेसणाकुसलो । सयलमहिवलयवित्तो अन्नोऽभयदेवसूरित्ति ॥ १४ ॥ जेणालंकारधरा, सलक्खणा वरपया पसन्ना य । नवंगवित्तिरयणे-ण भारई कामणिव्व कया ॥ १५ ॥ तेसिं अत्थि विणेओ, समत्थसत्थत्थबोहकुसलमई । सूरी पसण्णचंदो, चंदो इव जणमणाणंदो ॥ १६ ॥ तव्वयणेण सिरिसुम-इवाय-गाणं विणेअलेसेण । गणिणा गुणचंदेण, रइअं सिरिवीरचरिअमिमं ॥ १७ ॥ अग्रे २३ पद्यानि सन्ति—नंद सिहिरुद्द-संखे, ११३९ वोक्कंते विक्कमाउ कालम्मि । जेट्ठस्स सुद्धतइआ, तिहिम्मि सोमे समत्तमिमं ॥ ५० ॥—अत्रेयं गुरुशिष्य-परम्परा—चान्द्रे कुले श्रीवर्द्धमानसूरिर्बभूव, तस्य शिष्यद्वयम्, प्रथमः श्रीजिनेश्वरसूरिः, द्वितीयो बुद्धिसागरश्च, तयोः

---

१ देवचन्द्र–लालभाई–जैनसंस्थाद्वारा मुद्रितपुस्तके तु 'खरयसाहुसंतई जाया' इत्यत्र 'सुविहिया ( निम्मला प्र. ) साहुसंतई जाया' इति परिवर्तितपाठो लभ्यते, किं तु स नासमीचीनः, डॉ पी पीटर्सन् रिपोर्टेन ३-५ पृष्ठेऽपि उपरितनमूलपाठ एव पठितत्वात् ।

शिष्यद्वयं श्रीजिनचन्द्रसूरिः नवाङ्गीवृत्तिकारकः श्रीअभयदेवसूरिश्च, तयोः शिष्यः श्रीप्रसन्नचन्द्राचार्य तद्वचनेन श्रीसुमतिवाचकशिष्येण पं० गुणचन्द्रगणिना इद श्रीवीरचरित्र रचितम् इति ॥ १ ॥

पुनरपि श्रीअभयदेवसूरीणामेव शिष्याः वर्द्धमानसूरयः पञ्चाशिकैकादशशत ११६० वर्षकृतैकादशसहस्र ११००० प्रमिते श्रीआदिनाथचरित्रे प्रशस्तौ प्रोचुः, तथाहि-"समदमसंजमगुणरोहणो विजिअवुज्जयाणगो। आसी सिरिवद्धमाणो, सूरी सयत्थसुपसिद्धो ॥ १ ॥ सूरिजिणेसरसिरिवु द्धिसागरा सागरोव गभीरा। सुरगुरुसुक्कसरित्था, सहोअरा तस्स दो सीसा ॥ २ ॥ वागरणछंदनिघंटु-कव्वनाडयपमाणसमएसु। अणिवारिअप्पआरा, जाणमईसयसत्थेसु ॥ ३ ॥ ताण विणेओ सिरिअभ-यदेवसूरित्ति नाम विक्खाओ। विजयक्खो पक्खक्खो, कयविक्कयसगहो धम्मे ॥ ४ ॥ जिणमयभवणब्भतर-गूढपयत्थाण पयडणे जस्स। दीवयसिहिव विमला, विसुद्धबुद्धी पवित्थरिआ ॥ ५ ॥ ठाणाइनवगाण, पंचासयपमुहपगरणाण च। विवरणकरणेण कओ, उवयारो जेण संघस्स ॥ ६ ॥ इक्कोच्च दोव तिण्णिव, कहवि तु लग्गेण जइगुणा हुति। कलिकाले जंमि पुणो, सुच्छ स सव्वेहि वि गुणेहिं ॥ ७ ॥ सीसेहिं तस्स रइअं, चरिअमिण वद्धमाणसूरीहिं। होउ पढंत सुणता-ण कारण मोक्खसुक्खस्स ॥ ८ ॥ विक्कमनिवकालाच, सएसु एक्कारसेसु सट्ठेसु। सिरिजयसिंहनरिंदे, रज्ज परिपालयतम्मि ॥ ९ ॥ खभाइत्थठिएहिं, सियपक्खे चित्तविजयदसमीए। पुस्सेणं सुरगुरुणो, समत्थियं चरियमिय ति ॥ १० ॥ लोगुत्तमचरियमिण, काऊण जमज्जिय सुहं किं पि। उत्तमगुणाणुराओ, भवे भवे तेण मह होज्ज ॥ ११ ॥ पुया-

---

१ पत्तनस्थप्राच्यजैनभाण्डागारीयग्रन्थसूच्यां प्रथमायां ( ३५० पत्रे )

हिय ॥ ६ ॥ पहलकलिकालसमपस-रपूरिआसेसविसमसममागो । दीवेण व मुणीणं, पयासिओ जेण मुत्तिपहो ॥ ७ ॥ मुणिवइणो तस्स हरि-हद्दाससिअजसपसाहिआसस्स । आसि दुवे वरसीसा, जयपयडा सूरससिणोव्व ॥ ८ ॥ भवजलहिवीइसंभंन्तभविअसंताणतारणसमत्थो । बोहित्थोव्व महत्थो, सिरिसूरिजिणेसरो पढमो ॥ ९ ॥ गुरुसाराओ धवलाओ, 'सुविहिआ' खरयसाहुसतई आया । हिमवंताओ गंग-व्व निग्गया सयलजणपुज्जा ॥ १० ॥ अण्णो अ पुण्णिमाच-दसुंदरो बुद्धिसागरो सूरी । निम्मविअपवरवागरण—छंदसत्थो पसत्थमई ॥ ११ ॥ एगंतवायविलसिर-परवाइकुरंगभगसीहाण । तेसिं सीसो जिणच-दसूरिनामा समुप्पण्णो ॥ १२ ॥ संवेगरंगसाला, न केवलं कव्वविरइणा जेण । भवजणविम्हयकरी, विहिया संजमपवित्तीऽवि ॥ १३ ॥ ससमयपरसमयण्णू, विसुद्धसिद्धंतदेसणाकुसलो । सयलमहिवलयवित्तो अन्नोऽभयदेवसूरित्ति ॥ १४ ॥ जेणालंकारधरा, सलक्खणा वरपया पसन्ना य । नवगविसिरयणे-ण भारई कामिणिव्व कया ॥ १५ ॥ तेसिं अत्थि विणेओ, समरयसत्थत्थबोहकुसलमई । सूरी पसण्णचंदो, चंदो इव जणमणाणंदो ॥ १६ ॥ तव्वयणेण सिरिसुम-इवाइ-गाणं विणेअलेसेण । गणिणा गुणचंदेणं, रइअं सिरिवीरचरिअमिमं ॥ १७ ॥ अमे २३ पद्यानि सन्ति—नद सिहिरुद्दसखे, ११३९ योकते विक्कमाउ कालम्मि । जेट्ठस्स सुद्धतइआ, तिहिम्मि सोमे समत्तमिम ॥ ५० ॥—अत्रेयं गुरुशिष्यपरम्परा—चान्द्रे कुले श्रीवर्द्धमानसूरिर्बभूव, तस्य शिष्यद्वयम्, प्रथमः श्रीजिनेश्वरसूरिः, द्वितीयो बुद्धिसागरश्च, तयोः

१ देवचन्द्र-लालभाई-जैनसंस्थाद्वारा मुद्रितपुस्तके तु 'खरयसाहुसंतई आया' इत्यत्र 'सुविहिया (विम्मला तु) साहुसंतई आया' इति परिवर्तितपाठः लभ्यते, किं तु स वास्तवीनो, डॉ पी पीटर्सन् रिपोर्टस्य ३०५ पृष्ठेऽपि उपरिस्थमूलपाठ एव मिलितत्वात् ।

शिष्यद्वय श्रीजिनचन्द्रसूरि[1] नवाङ्गीवृत्तिकारकः श्रीअभयदेवसूरिश्च, तयोः शिष्यः श्रीमसन्नचन्द्राचार्य तद्वचनेन श्रीसुमतिवाचकशिष्येण पं० गुणचन्द्रगणिना इदं श्रीवीरचरित्र रचितम् इति ॥ २ ॥

पुनरपि श्रीअभयदेवसूरीणामेव शिष्याः वर्द्धमानसूरयः षष्ठ्यधिकैकादशशत ११६० वर्षकृतैकादशसहस्र ११००० प्रमिते श्रीआदिनाथचरित्रे प्रशस्तौ प्रोचुः, तथाहि–"समदमसजमगुणरोहणो विजिअदुज्जयाणगो । आसी सिरिवद्धमाणो, सूरी सव्वत्थसुपसिद्धो ॥ १ ॥ सूरिजिणेसरसिरिबुद्धिसागरा सागरोव्व गमीरा । सुरगुरुसुक्कसरित्था, सहोअरा तस्स दो सीसा ॥ २ ॥ वागरणछंदनिघंटु–कव्वनाडयपमाणसमएसु । अणिवारिअप्पआरा, जाणमईसव्वसत्थेसु ॥ ३ ॥ ताण विणेओ सिरिअभ–यदेवसूरित्ति नाम विक्खाओ । विजयक्खो पक्खक्खो, कयविक्कयसगहो धम्मे ॥ ४ ॥ जिणमयभवणब्भतर–गूढपयत्थाण पयडणे जस्स । दीवयसिहिव्व विमला, विसुद्धबुद्धी पवित्थरिआ ॥ ५ ॥ ठाणाइनवंगाण, पचासयपमुहपगरणाण च । विवरणकरणेण कओ, उवयारो जेण सघस्स ॥ ६ ॥ इक्कोव दोव तिन्निव, कहवि तु लग्गेण जइगुणा हुति । कलिकाले जमि पुणो, वुच्छ स सव्वेहि वि गुणेहिं ॥ ७ ॥ सीसेहिं तस्स रइअ, चरिअमिण वद्धमाणसूरीहिं । होउ पढत सुणंता–ण कारण मोक्खसुक्खस्स ॥ ८ ॥ विक्कमनिवकालाउ, सएसु एक्कारसेसु सट्ठेसु । सिरिजयसिंहनरिंदे, रज्ज परिपालयतम्मि ॥ ९ ॥ संभाइत्थठिएहिं, सियपक्खे चित्तविजयदसमीए । पुस्सेण सुरगुरुणो, समत्थियं चरियमिय ति ॥ १० ॥ लोगुत्तमचरियमिण, काऊण जमज्जिय सुह किं पि । उत्तमगुणाणुराओ, भवे भवे तेण मह होज्ज ॥ ११ ॥ पुद्या-

[1] पत्तनस्थप्राच्यजैनभाण्डागारीयग्रन्थसूच्यां प्रथमायां ( ३५० पत्रे )

यरेण गणिय—स्स सवसत्ता इमस्स गंथस्स । एक्कारस व सहस्सा, सलोगसयाइ नायव्वा ॥ १२ ॥ अत्राऽपि गुरुशिष्य-पारम्पर्यं इदं—चान्द्रे कुले श्रीवर्धमानसूरिः बभूव, तस्य शिष्यौ श्रीजिनेश्वरसूरि-श्रीबुद्धिसागरौ, तयोः विनेयः स्थानाङ्गादि-नवाङ्गीवृत्तिकारकः श्रीअभयदेवसूरिः, तस्य शिष्यैः श्रीवर्धमानाचार्यैः इदं श्रीआदिनाथचरित्रं रचितमिति ॥ २ ॥

तथा तथैव गुरुशिष्यपारम्पर्यं, श्रीछत्रापल्लीयश्रीविबुधप्रभसूरिशिष्य-श्रीपद्मप्रभसूरिभिरपि चतुर्नवत्यधिकद्वादशशत-वर्ष १२९४ विनिर्मिते श्रीमुनिसुव्रतस्वामिचरित्रे भवत्रयनिबद्धे पर्वत्रितयप्रमाणे पञ्चदशप्रस्तावे स्पष्टीकृतः तथाहि—"पूर्वं चान्द्रकुले बभूव विपुले श्रीवर्धमानप्रभुः, सूरिर्मङ्गलभाजनं सुमनसां सेव्यः सुवृत्तास्पदम् । शिष्यस्तस्य जिनेश्वरः समजनि स्याद्वादिनामग्रणीः, बन्धुस्तस्य च बुद्धिसागर इति त्रैवेद्यपारङ्गमः ॥ १ ॥ सूरिः श्रीजिनचन्द्रोऽभयदेवगुरुर्नवाङ्गवृत्तिकरः श्रीजिनभद्रमुनीन्द्रो, जिनेश्वरविभोस्त्रयः शिष्याः ॥ २ ॥ चक्रे श्रीजिनचन्द्रसूरिगुरुभिर्धुर्युः प्रसन्नाभिध—स्तेन ग्रन्थच-तुष्टयीस्फुटमतिः श्रीदेवभद्रप्रभुः । देवानन्दमुनीश्वरोऽभवदतश्चारित्रिणा ग्रामणीः, संसाराम्बुधिपारगामिजनताकामेषु कामं सखा ॥ ३ ॥ यन्मुखावासवास्तव्या, व्यवस्यति सरस्वती । गन्तु नाऽन्यत्र स न्यायः, श्रीमान् देवप्रभः प्रभुः ॥ ४ ॥ मुकु-रतुलामङ्कुरयति, वस्तुप्रतिबिम्बविशदमतिवृत्तम् । श्रीविबुधप्रभचित्तं, न विभाति वैपरीत्यं तु ॥ ५ ॥ तत्पदपद्मभ्रमर—श्चक्रे पद्मप्रभश्चरितमेतत् । विक्रमतोऽतिक्रान्ते, वेदग्रहरवि १२९४ मिते समये ॥ ६ ॥ इत्यादि ॥ अत्राऽपि चान्द्रे कुले श्रीव-

१ जेसलमेरभाण्डागारीयग्रन्थानां सूच्यां ( १० पत्रे ) ।

र्धमानसूरिः बभूव, तस्य द्वौ शिष्यौ–श्रीजिनेश्वरसूरिः श्रीबुद्धिसागरश्च, श्रीजिनेश्वरसूरेः त्रयः शिष्याः–श्रीजिनचन्द्रसूरिः, नवाङ्गवृत्तिकारकः श्रीअभयदेवसूरिः, श्रीजिनभद्रसूरिश्च इत्यादि ॥ ३ ॥

एवमेव गुरुपरम्परायां श्रीरुद्रपल्लीयखरतरश्रीसङ्घतिलकाचार्या अपि सप्तविंशत्यधिकचतुर्दशशत १४२७ वर्षे कृताया सम्यक्त्वसप्ततिकावृत्तौ ( २३७ पत्रे ) प्रोचिवांसः, तथाहि—

'श्रीवीरशासनमहोदधितः प्रसूतः, प्रोद्यत्कलाभिरभितः प्रथितः पृथिव्याम् । माद्यन्महःप्रसरनाशिततामसोऽस्ति, श्रीचन्द्रगच्छ इति चन्द्र इवाऽद्भुतश्रीः ॥ १ ॥ तत्राऽऽसीद्धरणेन्द्रवन्द्यचरणः श्रीवर्धमानो गुरु–स्तत्पट्टे च जिनेश्वरः सुविहितश्रेणीशिरःशेखरः । तच्छिष्योऽभयदेवसूरिरभवद्‌नवाङ्गीमहा–वृत्तिस्तम्भनपार्श्वनाथजिनराड्मूर्त्तिप्रकाशैककृत् ॥ २ ॥ तत्पट्टपूर्वाचलचूलिकाया, भास्वानिव श्रीजिनवल्लभाख्यः । सच्चक्रसम्बोधनसावधान–बुद्धिः प्रसिद्धो गुरुमुख्य आसीत् ॥ ३ ॥ तच्छिष्यो जिनशेखरो गणधरो जज्ञेऽतिविज्ञाग्रणीस्तत्पादाम्बुजराजहंससदृशः श्रीपद्मचन्द्र प्रभु । तत्पट्टाम्बुधिवर्धने कुवलयप्रोद्यत्प्रबोधैकधीः, श्रीमान् श्रीविजयेन्दुरिन्दुवदभूच्छश्वत् कलालङ्कृतः ॥ ४ ॥ पट्टे तदीयेऽभयदेवसूरि–रासीद्द्वितीयोऽपि गुणाद्वितीय । जातो यतोऽस्य जयतीह रुद्र–पल्लीयगच्छः सुतरामतुच्छः ॥ ५ ॥ तत्पादाम्भोजभृङ्गोऽजनि जिनसमयाम्भोजपाथोधिजन्मा, सूरीन्द्रो देवभद्रोऽनुपमशमरमारामसेयोपमानः । तस्याऽन्तेवासिमुख्यः कुमतमतितमःखण्डमार्तण्डकल्पः, कल्पद्रुः कल्पितार्थप्रवितरणविधौ श्रीप्रभानन्दसूरिः ॥ ६ ॥ ज्योतिस्तोमैरमानै प्रतिहतजगतीवर्त्तितेजस्वितेज–स्फूर्त्तीतत्पट्टपूर्वाचलविमललसन्मौलिमौलीयमानौ । श्रीमान् श्रीचन्द्रसूरिर्विमलशशिगुरुश्चाऽप्रमेयप्रभावौ, जातौ

श्रीराजहंसाविव भविकजनम्यूहबोधैकदक्षौ ॥ ७ ॥ आकाश्मीरमरीणचारुधिषणान् वादीन्द्रवृन्दारकान्, माधद् वादविधौ विजित्य जगति प्राप्तप्रतिष्ठोदयाः ॥ सूरीन्द्रा गुणशेखराः स्मयहराः श्रृंगारचन्द्रक्षमाधीशा-भ्यर्च्यपदाम्बुजा समभवस्तत्पट्ट-शृंगारिणः ॥ ८ ॥ श्रीसंघतिलकाचार्या-स्तत्पदाम्भोजरेणवः ॥ सम्यक्त्वसप्ततेर्वृत्तिं, विदधुस्तत्त्वकौमुदीम् ॥ ९ ॥ अस-च्छिष्यवरस्य सोमतिलकाचार्यानुजस्याधुना, श्रीदेवेन्द्रमुनीश्वरस्य वचसा सम्यक्त्वसत्सप्तते ॥ श्रीमद्विक्रमवत्सरे द्विनयना-म्भोधिक्षपाकृद्(१४२२)प्रमे, श्रीसारस्वतपत्तने विरचिता दीपोत्सवे वृत्तिका ॥ १० ॥ सा सोमकलशवाचक-वरानुजैरत्र विहित-सा-हाय्यै ॥ प्रथमाऽऽदर्शे लिखितो-पाध्यायैः श्रीयशःकलशैः ॥ ११ ॥ मेधामान्द्यात्प्रमादाच्च, यदवद्यमिहाजनि ॥ तत्प्रसद्य महाविद्याः, शोधयन्तु विशारदाः ॥ १२ ॥ द्वादशात्मेव सद्द्वारे द्वादशात्मेव बोधकृत् ॥ इय सम्यक्त्वतत्त्वाना, कौमुदी द्योतता भुवि ॥ १३ ॥ इत्यादि ॥ ४ ॥

पुनः श्रीरुद्रपल्लीयखरतरकृतप्रबन्धे एषा एव परम्परा । तथाहि—चान्द्रे कुलेऽसिन्नमलैश्चरित्रैः, प्रभुर्बभूवाऽभयदेव-सूरिः । नवाङ्गवृत्तिच्छलतो यदीय-मद्यापि जागर्त्ति यशःशरीरम् ॥ १ ॥ तस्मान्मुनीन्दुर्जिनवल्लभो यस्तथा प्रभामाप निजैर्गुणौघैः । विपश्चितां संयमिनां च वर्ये धुरीणता तस्य यथाऽधुनाऽपि ॥ २ ॥ तेषामन्वयमण्डनं समभवत् सजीवनं दु:समा-मूर्छालस्य (?) मुनिमतस्य भवन निःसीमपुण्यश्रियः । श्रीमन्तोऽभयदेवसूरिगुरवस्ते यद्वियुक्तैर्गुणैः, दृष्ट तादृश-माद्-शान्तरमहो दिक्चक्रमाक्रम्यते ॥ ३ ॥ यतिपतिरथ देवभद्रनामा, समजनि तस्य पदावतंसदेभ्यः । दधुरचरितभाव-रोगयोगा-ज्जगति रसायनता यदीयवाच ॥ ४ ॥ तदीयपट्टे प्रतिभासमुद्रः, श्रीमान् प्रभानन्दमुनीश्वरोऽभूत् । स वीतराग-

स्तवनेष्वमीषु, विनिर्ममे दुर्गपदप्रकाशम् ॥ ५ ॥ 'एवं सपादशतयुत-विंशतिशतपरिमितप्रबन्धोऽयम् । लिखितः प्रथमादर्शे, गणिना हर्षेन्दुना शमिना' ॥ ६ ॥ अत्राऽपि शिष्यपरम्परा एवं-चन्द्रकुले नवाङ्गीवृत्तिकारकाः श्रीअभयदेवसूरयोऽभूवन्, तेषां शिष्यः श्रीजिनवल्लभसूरिः, तदन्वयेऽभयदेवसूरिः, तत्पट्टे श्रीदेवभद्रसूरिः, तत्पट्टे प्रभानन्दसूरिः, इत्यादि इति ॥ ५ ॥

तथा श्रीजिनपतिसूरिविनिर्मितपञ्चलिङ्गीविवरणप्रशस्तौ ( पत्रे १८६ ) अपि च इत्थमेव गुरुशिष्यपरम्परा अस्ति, तथाहि-'न रजनिकृतसाफल्यं, सदा न नक्षत्रबुधपरिगृहीतम् । अस्ति कुलं चान्द्रमहो, न तमो हत्या येन प्रथितम् ॥ १ ॥ तत्र न वियति प्रसितो, बुधो नवीनो न सूर्यसहचरितः । अनिशापतितनयः श्री-जिनेश्वरः सूरिरजनिष्ट ॥ २ ॥ यस्मिन् गोष्ठ्या कलयति कला हेलया अल्पकेलौं, कण्डूलानामपि निरवधिस्वेदधाराप्रवाहम् । शङ्के सारस्वतरसरय क्षोभतापानुषङ्गादङ्गान्यन्त प्लवनशुभगं वादिनामुद्वमन्ति ॥ ३ ॥ सम्प्राप्तेऽनुविधेयतापदमिति चौलुक्यमाणिक्यतां, श्रीमद्दुर्लभराजि जल्पकथया वल्गद्विकल्पस्पृशा । प्रत्याख्यायत दैवदैवकुलिकान् दर्पोन्नमत्कन्धरान्, सविभ्रमतिना विहारपदवीं श्रुत्या समाधत्त यः ॥ ४ ॥ शिष्यौ बभूवतुरमुष्य मनुष्यमौलेर्दिक्कूलमुद्वहयशःप्रवहप्रबन्धौ । आद्यस्तयोः प्रतिकलं स्वनिवेशसिद्धौ, विद्याप्रसादवदनो जिनचन्द्रसूरिः ॥ ५ ॥ नर्तयितुं संवेगं, पुनर्नृणां लुप्तनृत्यमिव कलिना । संवेगरङ्गशाला, येन विशाला व्यरचि रुचिरा ॥ ६ ॥ द्वितीयः प्रज्ञातोऽभवदभयदेवो मुनिपति-र्विविक्तादेयायास्तनरितमपनीयान्तरपटीम् । अकार्षीद् यो गुह्यस्वरसरससंवेदनकृते, नवाङ्ग्यास्तन्वङ्ग्यास्तनुविवरणं कामुक इव' ॥ ७ ॥ इत्यादि ॥ ६ ॥

इत्थमेव श्रीरुद्रपल्लीयखरतरगच्छमण्डनश्रीतिलकोपाध्यायविरचितगौतमपृच्छाप्रकरणप्रशस्तौ गुरुपरम्परा दर्शिताऽस्ति । तथाहि–'श्रीवर्धमान इति चन्द्रकुलाम्बरार्क–स्तस्माज्जिनेश्वरमुनीश्वर एव जज्ञे । रङ्गनवाङ्गविवृतिप्रथनप्रसिद्ध–माहात्म्य-भूरभयदेवगुरुस्ततश्च ॥ १ ॥ सूरिर्बभूव जिनवल्लभनामधेय–स्तत्पादपद्ममधुकृज्जिनशेखराख्यः । पद्मेन्दुरिन्दुनिभकीर्त्ति-भरो बभूव, सूरिस्ततो यतिपतिर्विजयेन्दुनामा ॥ २ ॥ तस्माद्बभूवाऽभयदेवसूरि–र्विध्वस्तविस्तारिकुवादिगर्वः । श्रीदेवभद्रोऽथ कृतोरुभद्र–स्ततः प्रभानन्दमुनीश्वरश्च ॥ ३ ॥ श्रीचन्द्रसूरिः सुगुरुस्तदीये, पट्टावतसप्रतिमोऽधुनाऽस्ति । अस्य द्वितीयस्तु धियाऽद्वितीयो, जज्ञे मुनीन्द्रो विमलेन्दुनामा ॥४॥ आचार्यधुर्यत्वमवापिता' श्री–श्रीचन्द्रसूरिप्रवरैस्त्रयोऽमी । श्रीचारुचन्द्रो जिनभद्रसूरि–र्गुणाम्बुधि' श्रीगुणशेखरश्च ॥ ५ ॥ एतैरेव वितीर्णो–पाध्यायपदो मुनीश्वरोत्तंसैः । श्रीदेवभद्रयतिपति–शिष्यः श्री श्रीतिलकनामा ॥ ६ ॥ गौतमपृच्छाप्रकरण–विवरणमिदमल्पबुद्धिविभवोऽपि । भव्यजनोपकृतिकृते, कृतवानभ्यर्थितः कृतिभि' ॥ ७ ॥ छन्दोलङ्कृतिलक्षण–दोषैर्दुष्टमस्ति किमपीह । तदखिलमपि मदनुग्रह–बुद्ध्या शोध्यं विमलधीभिः ॥ गगनतले परिखेलति० ॥ ९ ॥ कल्याणाचलभूर्विका० ॥ १० ॥ इत्यादिद्वादशपद्यानि, अत्राऽपि गुरुपरम्परा इयं–चन्द्रे कुले वर्धमानसूरिः बभूव, तत्पट्टे श्रीजिनेश्वरसूरिः, तस्य शिष्यो नवाङ्गीवृत्तिकारकः श्रीअभयदेवसूरिः तत्पट्टे श्रीजिनवल्लभसूरिः इत्यादि ॥ ७ ॥

१ संस्कृत एण्ड प्राकृत मॅन्युस्क्रिप्ट्स इन् कायमेरी ऑफ् दि बॉम्बे ब्रँच ऑफ् दि रॉयल एसियाटीक सोसायटी ( ११०–११ पत्रयोः )

अपि च रुद्रपल्लीयखरतरगच्छाधिपति-श्रीअभयदेवसूरयोऽपि अष्टसप्तत्यधिकद्वादशशत १२७८ वर्षकृतद्वात्रिंशति-शतश्लोकमानजयन्तविजयकाव्यप्रशस्तौ ( १३८ पत्रे ) अमुमेव परम्परा कथयामासुः । तथाहि—

"आसीच्चन्द्रकुलाम्बराम्बरमणिः श्रीवर्धमानप्रभोः, पादाम्भोरुहचञ्चरीकचरितश्चारित्रिणामग्रणीः । स श्रीसूरिजिनेश्वरस्त्रिपथगापाथःप्रवाहैरिव, स्वैरं यस्य यशोभरैस्त्रिजगत पावित्र्यमासूत्रितम् ॥ १ ॥ अभवदभयदेव सूरिरस्मात् स यस्य, प्रभुरभजत सोप स्तम्भने पार्श्वनाथः । प्रकटितविकटार्थां सद्गुसाम्राज्यवृत्त्यै, व्यधित निधिसमाना यश्च वृत्तिं नवाङ्ग्याः ॥ २ ॥ तच्छिष्यो जिनवल्लभ प्रभुरभूद्विश्वम्भराभामिनी-भास्वद्भालललामकोमलयश स्तोम शमारामभूः । यस्य श्रीनरवर्मभूपतिशिरःकोटीररत्नाङ्कुर-ज्योतिर्जालजलैरपुष्यत सदा पादारविन्दद्वयी ॥ ३ ॥ अत्रापि सूरिगुरुपरपरायामेव चन्द्रकुले श्रीवर्द्धमानसूरिर्बभूव, तच्छिष्यः श्रीजिनेश्वरसूरिः तस्य शिष्य श्रीस्तमनपार्श्वनाथमूर्तिप्रकटको नवाङ्गीवृत्तिकारक श्रीअभयदेवसूरिः, 'तच्छिष्या श्रीजिनवल्लभसूरिः' इत्यादिनवपद्यानि ॥ ८ ॥

पुनः श्रीरुद्रपल्लीयखरतरगच्छाधिपति-श्रीदेवेन्द्रसूरयोऽपि गुरुशिष्यक्रम तथैवाऽऽहुः श्रीप्रश्नोत्तररत्नमालावृत्तौ एकोनत्रिंशदधिकचतुर्दशशत १४२९ वर्षकृतायां ( पत्र ५६७ ); तथाहि-"श्रीवर्धमानजिनशासनमेरुभूधा-भूते सुधर्मगणनायकभद्रशाले । श्रीकोटिकाख्यगणकल्पतरौ सुवज्र-शाखेऽत्र गुच्छ इव राजति चन्द्रगच्छः ॥ १ ॥ तस्मिन् महोज्ज्वलफलोपमितिं दधानः, श्रीवर्धमान इति सूरिवरो बभूव । यस्याऽग्रतः समगुणोद्धरणोरगेन्द्र , सूरीन्द्रमन्त्रविधिधोपनिपत्प्रकारान् ॥ २ ॥ ततोऽस्तदोषो नियतं विवस्वान्, जिनेश्वर सूरिवरः समासीत् । नो चेत्कथं श्रीधनपालचित्ता-न्मह्वातम-

इत्यमेव श्रीरुद्रपल्लीयखरतरगच्छमण्डनश्रीतिलकोपाध्यायविरचितगौतमपृच्छाप्रकरणप्रान्ते गुरुपरम्परा दर्शिताऽस्ति । तथाहि–'श्रीवर्धमान इति चन्द्रकुलाम्बरार्क–स्तस्माज्जिनेश्वरमुनीश्वर एव जज्ञे । रत्नसनाथविवृतिप्रथमानगिर–माहात्म्य-भूरभयदेवगुरुस्ततश्च ॥ १ ॥ सूरिर्बभूव जिनवल्लभनामधेय–स्तत्पादपद्ममधुकृज्जिनशेखराख्यः । धर्मेन्दुरिन्दुनिभकीर्त्ति-मरो बभूव, सूरिस्ततो यतिपतिर्विजयेन्दुनामा ॥ २ ॥ तस्माद्बभूवाऽभयदेवसूरि–र्निःस्वयिक्लारिगुणादिगर्वं । श्रीदेवभ-द्रोऽप कृतोरुभद्र–स्ततः प्रभानन्दमुनीश्वरश्च ॥ ३ ॥ श्रीचन्द्रसूरिः सुगुरुस्तदीये, पट्टानतप्रतिमोऽधुनाऽस्ति । अस्य द्वितीयस्तु धियाऽद्वितीयो, जज्ञे मुनीन्द्रो विमलेन्दुनामा ॥ ४ ॥ आचार्यधुर्यत्वमथापिता' श्री–श्रीचन्द्रसूरिप्रवरैस्त्रयोऽमी । श्रीचारुचन्द्रो जिनभद्रसूरि–र्गुणाम्बुधिः श्रीगुणशेखरश्च ॥ ५ ॥ एतैरेव वितीर्णो–पाध्यायपदो मुनीश्वरोचसे । श्रीदेव-भद्रयतिपति–शिष्यः श्री-श्रीतिलकनामा ॥ ६ ॥ गौतमपृच्छाप्रकरण–विवरणमिदमल्पबुद्धिविभवोऽपि । भव्यजनोपकृति-कृते, कृतवानभ्यर्थितः कृतिभिः ॥ ७ ॥ छन्दोलङ्कृतिलक्षण–दोषैर्दुष्टमस्ति किमपीह । तदखिलमपि मदनुग्रह–बुद्ध्या शोध्यं विमलधीभिः ॥ गगनतले परिखेलति० ॥ ९ ॥ कल्याणाचलभूर्विका० ॥ १० ॥ इत्यादिद्वादशपद्यानि, अत्राऽपि गुरुपरम्परा इय–चन्द्रे कुले वर्धमानसूरिः बभूव, तत्पट्टे श्रीजिनेश्वरसूरिः, तस्य शिष्यो नवाङ्गीवृत्तिकारकः श्रीअभयदेव-सूरिः तत्पट्टे श्रीजिनवल्लभसूरिः इत्यादि ॥ ७ ॥

१ संस्कृत ऐण्ड प्राकृत मैन्युस्क्रिप्ट्स इन् लायब्रेरी ऑफ् दि बॉम्बे ब्रैंच ऑफ् दि रॉयल एसियाटिक सोसायटी ( ९१०–११ पञ्चो: )

अपि च रुद्रपल्लीयखरतरगच्छाधिपति–श्रीअभयदेवसूरयोऽपि अष्टसप्तत्यधिकद्वादशशत १२७८ वर्षकृतद्वाविंशति-
शतश्लोकमानजयन्तविजयकाव्यप्रशस्तौ ( १२८ पत्रे ) अमुमेव परम्परा कथयामासुः । तथाहि—
"आसीच्चन्द्रकुलाम्बराम्बरमणिः श्रीवर्धमानप्रभोः, पादाम्भोरुहचञ्चरीकचरितश्चारित्रिणामग्रणी । स श्रीसूरिजिनेश्व
रस्त्रिपथगापाथःप्रवाहैरिव, स्वैरं यस्य यशोभरैस्त्रिजगतः पावित्र्यमासूत्रितम् ॥ १ ॥ अभवदभयदेव सूरिरस्मात् स
यस्य, प्रभुरभजत तोषं स्तम्भने पार्श्वनाथः । प्रकटितविकटार्थां सङ्गसाम्राज्यसूत्रौ, व्यधित निधिसमाना यश्च वृत्तिं नवा-
ङ्गयाः ॥ २ ॥ तच्छिष्यो जिनवल्लभः प्रभुरभूद्विश्वम्भराभामिनी–भास्वद्भालललामकोमलयशःस्तोमः शमारामभूः । यस्य श्री-
नरवर्मभूपतिशिरःकोटीररत्नाङ्कुर–ज्योतिर्जालजलैरपुष्यत सदा पादारविन्दद्वयी ॥ ३ ॥ अत्रापि सूरिगुरुपरंपरायामेव चन्द्र-
कुले श्रीवर्द्धमानसूरिर्बभूव, तच्छिष्यः श्रीजिनेश्वरसूरिः तस्य शिष्यः श्रीस्तम्भनपार्श्वनाथमूर्तिप्रकटको नवाङ्गीवृत्तिकारक
श्रीअभयदेवसूरिः, 'तच्छिष्या श्रीजिनवल्लभसूरिः' इत्यादिनवपद्यानि ॥ ८ ॥

पुनः श्रीरुद्रपल्लीयखरतरगच्छाधिपति–श्रीदेवेन्द्रसूरयोऽपि गुरुशिष्यक्रमं तथैवाऽऽहुः श्रीप्रश्नोत्तररत्नमालावृत्तौ एको-
नत्रिंशदधिकचतुर्दशशत १४२९ वर्षकृताया ( पत्र ५६७ ); तथाहि–"श्रीवर्धमानजिनशासनमेरुभूपा–भूते सुधर्मगणना-
यकभद्रशाले । श्रीकोटिकाख्यगणकल्पतरौ सुवज्र–शाखेऽत्र गुच्छ इव राजति चन्द्रगच्छः ॥ १ ॥ तस्मिन् महोज्ज्वलफलो-
पमितिं दधानः, श्रीवर्धमान इति सूरिवरो बभूव । यस्याऽग्रतः समगुणोद्धरणोरगेन्द्र , सूरीन्द्रमन्त्रविविधोपनिपत्प्रका-
रान् ॥ २ ॥ ततोऽस्तदोषो नियतं विवस्वान्, जिनेश्वरः सूरिवरः समासीत् । नो चेत्कथं श्रीधनपालचित्ता–न्महातम-

इत्यमेव श्रीरुद्रपल्लीयखरतरगच्छमण्डनश्रीतिलकोपाध्यायविरचितगौतमपृच्छाप्रकरणप्रशस्तौ गुरुपरम्परा दर्शिताऽस्ति ।
तथाहि–'श्रीवर्धमान इति चन्द्रकुलाम्बरार्क–स्तस्माज्जिनेश्वरमुनीश्वर एव जज्ञे । रङ्गप्रवाङ्गविवृतिप्रथनप्रसिद्ध–माहात्म्य-
भूरभयदेवगुरुस्ततश्च ॥ १ ॥ सूरिर्बभूव जिनवल्लभनामधेय–स्तत्पादपद्ममधुकृज्जिनशेखराख्य । पद्मेन्दुरिन्दुनिभकीर्त्ति-
भरो बभूव, सूरिस्ततो यतिपतिर्विजयेन्दुनामा ॥ २ ॥ तस्माद्बभूवाऽभयदेवसूरि–र्विध्वस्तविश्वारिकुवादिगर्व । श्रीदेवभ-
द्रोऽथ कृतोरुभद्र–स्ततः प्रभानन्दमुनीश्वरश्च ॥ ३ ॥ श्रीचन्द्रसूरिः सुगुरुस्तदीये, पट्टावतंसप्रतिमोऽधुनाऽस्ति । अस्य
द्वितीयस्तु धियाऽद्वितीयो, जज्ञे मुनीन्द्रो विमलेन्दुनामा ॥ ४ ॥ आचार्यधुर्यत्वमवापिता श्री–श्रीचन्द्रसूरिप्रवरैस्त्रयोऽमी ।
श्रीचारुचन्द्रो जिनभद्रसूरि–र्गुणाम्बुधिः श्रीगुणशेखरश्च ॥ ५ ॥ एतैरेव वितीर्णो–पाध्यायपदो मुनीश्वरोचसे । श्रीदेव-
भद्रयतिपति–शिष्यः श्री श्रीतिलकनामा ॥ ६ ॥ गौतमपृच्छाप्रकरण–विवरणमिदमल्पबुद्धिविभवोऽपि । भव्यजनोपकृति-
कृते, कृतवानभ्यर्थितः कृतिभिः ॥ ७ ॥ छन्दोलङ्कृतिलक्षण–दोषैर्दुष्टमस्ति किमपीह । तदखिलमपि मदनुग्रह–बुद्ध्या
शोध्यं विमलधीभिः ॥ गगनतले परिखेलति० ॥ ९ ॥ कल्याणाचलभूर्विका० ॥ १० ॥ इत्यादिद्वादशपद्यानि, अत्राऽपि
गुरुपरम्परा इयं–चन्द्रे कुले वर्धमानसूरिः बभूव, तत्पट्टे श्रीजिनेश्वरसूरिः, तस्य शिष्यो नवाङ्गीवृत्तिकारकः श्रीअभयदेव-
सूरिः तत्पट्टे श्रीजिनवल्लभसूरिः इत्यादि ॥ ७ ॥

१ संस्कृत ऐण्ड प्राकृत मैन्युस्क्रिप्ट्स इन् लायबेरी ऑफ दि बॉम्बे ब्रैंच ऑफ दि रॉयल एसियाटिक सोसायटी ( १२०–११ पत्रयोः )

अपि च रुद्रपल्लीयखरतरगच्छाधिपति–श्रीअभयदेवसूरयोऽपि अष्टसप्तत्यधिकद्वादशशत १२७८ वर्षकृतद्वाविंशतिशतश्लोकमानजयन्तविजयकाव्यप्रशस्तौ ( ११८ पत्रे ) अमुमेव परम्परा कथयामासुः । तथाहि—

"आसीच्चन्द्रकुलाम्बराम्बरमणिः श्रीवर्धमानप्रभोः, पादाम्भोरुहचञ्चरीकचरितश्चारित्रिणामग्रणीः । स श्रीसूरिजिनेश्वरस्त्रिपथगापाथःप्रवाहैरिव, स्वैर यस्य यशोभरैस्त्रिजगत पावित्र्यमासूत्रितम् ॥ १ ॥ अभयदभयदेव सूरिरस्मात् स यस्य, प्रभुरभजत तोष स्तम्भने पार्श्वनाथः । प्रकटितविकटार्थां सङ्घसाम्राज्यवृद्ध्यै, व्यधित निधिसमाना यश्च वृत्तिं नवाङ्ग्याः ॥ २ ॥ तच्छिष्यो जिनवल्लभः प्रभुरभूद्विश्वम्भराभामिनी–भास्वद्भालललामकोमलयश'स्तोम शमारामभू । यस्य श्रीनरवर्मभूपतिशिरःकोटीररत्नाङ्कुर–ज्योतिर्जालजलैरपुष्यत सदा पादारविन्दद्वयी ॥ ३ ॥ अत्रापि सूरिगुरुपरपरायामेव चन्द्रकुले श्रीवर्द्धमानसूरिर्बभूव, तच्छिष्य' श्रीजिनेश्वरसूरिः तस्य शिष्यः श्रीस्तभनपार्श्वनाथमूर्तिप्रकटको नवागीवृत्तिकारक श्रीअभयदेवसूरिः, 'तच्छिष्या श्रीजिनवल्लभसूरि ' इत्यादिनवपद्यानि ॥ ८ ॥

पुनः श्रीरुद्रपल्लीयखरतरगच्छाधिपति–श्रीदेवेन्द्रसूरयोऽपि गुरुशिष्यक्रम तथैवाऽऽहुः श्रीप्रश्नोत्तररत्नमालावृत्तौ एकोनत्रिंशदधिकचतुर्दशशत १४२९ वर्षकृताया ( पत्र ५६७ ), तथाहि–"श्रीवर्धमानजिनशासनमेरुभूधा–भूते सुधर्मगणनायकभद्रशाले । श्रीकोटिकाख्यगणकल्पतरौ सुवज्र–शाखेऽत्र गुच्छ इव राजति चन्द्रगच्छ ॥ १ ॥ तस्मिन् महोज्ज्वलफलोपमितिं दधानः, श्रीवर्धमान इति सूरिवरो बभूव । यस्याऽग्रतः समगृणोद्धरणोरगेन्द्र , सूरीन्द्रमन्त्रविविधोपनिषत्प्रकारान् ॥ २ ॥ ततोऽस्तदोषो नियत विवस्वान्, जिनेश्वर सूरिवरः समासीत् । नो चेत्कथ श्रीधनपालचित्ता–न्महातम-

स्तोममपाकरोद्राक् ॥ ३ ॥ तस्माद्बभूवाऽभयदेवसूरि-र्यः स्तम्भने पार्श्वजिनेन्द्रमूर्त्तिम् । प्रकाश्य शास्त्राश्च नवाङ्गवृत्ती कृत्वा कृतार्थं स्वजनुस्ततान ॥ ४ ॥ तदनु जिनवल्लभाख्यः, प्रख्यातः समयकनककषपट्टः । यत्प्रतिबोधनपटहो,-ऽधुनाऽपि दन्ध्वन्यते जगति" ॥ ५ ॥ इत्यादित्रयस्त्रिंशत्पद्यानि सन्ति ॥ ९ ॥

एवं पुनः श्रीदशगणधरसंबन्धगर्भित-श्रीपार्श्वनाथचरित्रे १२१६७ श्लोकमिते वसुरसरुद्र ११६८ वर्षे श्रीदेवभद्राचार्यं अपि प्रशस्तौ प्रोक्त । तथाहि—

"तित्थमि वह(व)ते तस्स, भगवओ तियससवणिज्जमि । चंदकुलमि पसिद्धो, विउलाए वइरसाहाए ॥ १ ॥ सिरिवद्धमाणसूरी-अहेसि तवनाणचरणरयणनिही । जस्सवि सुमरंतो, लोगो रोमं च मुयइ ॥ २ ॥ तस्साऽसि दोन्नि सीसा, जयविक्खाया दिवायरससिव्व । आयरिअजिणेसरबुद्धिसागरायरिअनामाणो ॥ ३ ॥ तेसिं च पुणो जाया, सीसा दो महियलमि सुपसिद्धा । जिणचंदसूरिनामो, बीओऽभयदेवसूरित्ति ॥ ४ ॥ सिद्धंतवित्तिविरयण पगरणठवयारियभवलोयाण । को ताण गुणलवं पि हु, होज्ज समत्थो पवित्थरिउ ॥ ५ ॥ तेसिंविणेअस्स पसन्नचंदसूरिस्स सयगुणनिहिणो । पयपउमसेवगेहिं, सुमइउवज्झायसिस्सेहिं ॥ ६ ॥ संवेगरंगसाला-राहणसत्थं जगमि वित्थरिअं । रइअं च वीरचरिअं, जेहिं कहारयणकोसो(सा)य ॥ ७ ॥ सोधम्मिसियमहिअ-मुणिसुव्वयवीरभवणरमणीए । भरुअच्छे तेहिं ठिए, सुमंदिरे

१ डॉ॰ पिटर्सन् रिपोर्ट न ३ पत्रं ११ ।

आमदत्तस्स ॥ ८ ॥ सिरिदेवभद्दसूरिहिँ, विरइअं पासनाहचरिअमिम । लिहिय पढमिल्लुय पोत्थयमि गणिअमलचंदेणं" ॥ ९ ॥ इत्यादि ॥ १० ॥

एव श्रीमर्बुदाचले श्रीवस्तुपालवसतौ देवकुलिकाप्रशस्तौ अपि लिखितमस्ति ॥

स्वस्ति श्रीनृपविक्रमसं० १२९३ मिति वैशाखशुक्ल १५ दिने शनौ, अद्येह श्रीअर्बुदाचलमहातीर्थे अणहिल्लपुरवास्तव्यप्राग्वाटज्ञातीय-श्रीचन्द्र० इत्यादिवहुनामानि सन्ति, ततः श्रीशान्तिनाथविम्ब कारितं, प्रतिष्ठित च नवाङ्गीवृत्तिकारक-श्रीअभयदेवसूरिसन्तानीयै श्रीधर्म्मघोपसूरिभि इत्यादि। अत्र मधुकरश्रीखरतरगच्छीय-श्रीधर्मघोपसूरयो ज्ञेयाः ॥ ११ ॥

एयमेव श्रीद्वीपासन्न-श्रीचनानगरे भूमिगृहान्तर्वर्त्तिप्रतिमाप्रशस्तौ अपि लिखितमस्ति, यथा "नवाङ्गीवृत्तिकारकश्रीअभयदेवसूरिसन्तानीयैः श्रीधर्मघोपसूरिभिः प्रतिष्ठित" ॥ १२ ॥

एव श्रीबीजापुरनगरे खरतरश्रावकहम्मीरपुरनरेश्वरमन्त्रिविजयपालपुत्रमन्त्रिदेवाकारितदेवगृहपट्टिकाया वहूनि प्रशस्तिकाव्यानि लिखितानि सन्ति, तत्र श्रीवर्धमानसूरित आरभ्य लघुजिनेश्वरसूरिं यावत् एकैकेन काव्येन श्रीवर्धमानसूरि १ श्रीदुर्लभराजपर्षत् खरतरविरुदप्रापक-श्रीजिनेश्वरसूरि २ श्रीजिनचन्द्रसूरि ३ नवाङ्गीवृत्तिकारक-श्रीअभयदेवसूरि ४ श्रीजिनवल्लभसूरि ५ श्रीजिनदत्तसूरि ६ प्रमुखा वर्णिताः सन्ति, सा पट्टिका श्यामवर्णा सांप्रत बीजापुरे खयतरशालामध्ये भित्तौ स्थापिताऽस्ति स्वय मया दृष्टा च, पुनः कौतुकिना तत्र गत्वा द्रष्टव्या ॥ १३ ॥

१ श्रीमद्बुद्धिसागरसूरिकृतविजापुरवृत्तान्तमन्यस्य प्रस्तावनायां '५ पत्रे, १२' श्लोकात् ११५ श्लोकपर्यन्तम् ।

ननु-श्रीअभयदेवसूरिभिरपि स्वय क्वापि ग्रन्थे पूर्वोक्तगुरुशिष्यपरम्परा प्रोक्ताऽस्ति ? उच्यते-बहुशो यत श्रीस्थानाङ्गवृत्तौ विंशत्यधिकैकादशशतवर्ष ११२० कृताया द्विशतद्विपञ्चाशदधिकचतुर्दशसहस्र १४२५२ प्रमाणाया प्रान्ते (पत्र ५२७) उक्तम्, तथाहि-"श्रीस्थानाङ्गस्य महानिधानस्य इव उन्मुद्रणमिव अनुयोग प्रारभ्यते इति। तच्चन्द्रकुलीनप्रवचनप्रणीता प्रतिबद्धविहारहारिचरित्र-श्रीवर्द्धमानमुनीन्द्रपादोपसेविनः प्रमाणादिव्युत्पादनप्रवणप्रकरणप्रबन्धप्रणायिनः प्रबुद्धप्रतिबन्धकप्रवक्तृप्रवीणाप्रतिहतप्रवचनार्थप्रधानवाक्प्रसरस्य सुविहितमुनिजनमुख्यस्य श्रीजिनेश्वराचार्यस्य तदनुजस्य च व्याकरणादिशास्त्रकर्तुः श्रीबुद्धिसागराचार्यस्य चरणकमलचञ्चरीककल्पेन श्रीमदभयदेवसूरिनाम्ना मया महावीरजिनराजसन्तानवर्त्तिना महाराजवंशजन्मनेव सविग्नमुनिवर्गप्रवरश्रीमदजितसिंहाचार्यान्तेवासि-यशोदेवगणिनामधेयसाधोः उत्तरसाधकस्य इव विद्याक्रियाप्रधानस्य साहाय्येन समर्थितम् ॥ १४ ॥ एवमेव श्रीसमवायाङ्गसूत्रवृत्तिप्रशस्तौ (१६० पत्रे) अपि पट्टानुक्रमोऽस्ति, तदर्थिना ते ग्रन्था विलोकनीयाः ॥ १५ ॥ एवमेव श्रीभगवतीवृत्तिप्रशस्तौ (९८० पत्रे) अपि ॥ १६ ॥ एवमेव श्रीज्ञाताधर्मकथावृत्तिप्रशस्तौ (२५४ पत्रे) अपि ॥ १७ ॥ एवमेव श्रीअनुत्तरोपपातिकदशावृत्तिप्रशस्तौ (८ पत्रे) अपि ॥ १८ ॥ एवमेव श्रीप्रश्नव्याकरणवृत्तिप्रशस्तौ (१६५ पत्रे) अपि ॥ १९ ॥

एवमेव श्रीपञ्चाशकवृत्तौ (३०१ पत्रेऽपि) सा एव गुरुपरम्परा, तथाहि-"यस्मिन्नतीते श्रुतसयमश्रिया-वप्रासुवत्यावपरं तथाविधम्। तस्या(स्या) श्रयं सवसतोऽतिदुःस्थिते, श्रीवर्धमानः स यतीश्वरोऽभवत् ॥ १ ॥ शिष्योऽभवत्तस्य जिनेश्वराख्यः, सूरिः कृतानिन्द्यविचित्रशास्त्रः। सदा निरालम्बविहारवर्ती, चन्द्रोपमश्चन्द्रकुलाम्बरस्य ॥ २ ॥

अन्योऽपि विद्यो भुवि बुद्धिसागरः पाण्डित्यचारित्रगुणैरनो(नू)पमैः । शब्दादिलक्ष्मप्रतिपादकानघ–ग्रन्थप्रणेता प्रवर क्षमावताम् ॥ ३ तयोरिमा शिष्यवरस्य वाक्याद्, वृत्तिं व्यधात् श्रीजिनचन्द्रसूरेः । शिष्यस्तयोरेव विमुग्धबुद्धि–र्ग्रन्थार्थ-बोधेऽभयदेवसूरिः ॥ ४ ॥ बोधो न शास्त्रार्थगतोऽस्ति तादृशो, न तादृशी वाक्पटुतास्ति मे तथा । न चास्ति टीकेह न वृद्धनिर्मिता, हेतुः पर मेऽत्र कृतौ विभोर्वचः ॥ ५ ॥ यदिह किमपि दृब्ध बुद्धिमान्द्याद्विरुद्धं, मयि विहितकृपास्तच्छी-धनाः शोधयन्तु । निपुणमतिमतोऽपि प्रायशः सावृतेः स्यात्, न हि न मतिविमोहः किं पुनर्मादृशस्य ॥ ६ ॥ चतुरधिकविंशातियुते, वर्षसहस्रे शते च सिद्धेयम् । धवलकपुरे वसतौ, धनपत्योर्बकुलधदिकयो' ॥७॥ अणहिलपाटकनगरे, सघवरैर्वर्तमानबुधमुख्यैः । श्रीद्रोणाचार्यै–र्विद्वद्भिः शोधिता चेति" ॥ ८ ॥ इत्यादि । एव एषा एव गुरुपरम्परा श्रीअभयदेवसूरिभिः स्वकृतानेकग्रन्थप्रशस्तौ लिखिताऽस्ति, जिज्ञासुभिः ते ग्रन्था विलोकनीयाः ॥ २० ॥

ननु–अन्यगच्छीयसूरिभिः अपि इदमेव गुरुशिष्यपारम्पर्यं श्रीअभयदेवसूरीणा क्वापि ग्रन्थे लिखितमस्ति ? उच्यते–अनेकेषु ग्रन्थेषु अनेकैः लिखित वरीवर्ति । तथाहि–

"जिणवल्लहगणिलिहिय, सुहुमत्थवियाररयणमिण सुयणा । निसुणतु मुणंतु सय, परे वि बोहिंतु सोहिंतु ॥ १५२ ॥"

व्याख्या–'जिनवल्लहगणि'त्ति श्रीजिनवल्लभगणिनामकेन मतिमता सकलार्थसङ्ग्राहिस्थानाङ्गाद्यङ्गोपाङ्गपञ्चाशकादिशास्त्र-वृत्तिविधानावाप्तावदातकीर्त्ति–सुधाधवलितधरामण्डलाना श्रीमदभयदेवसूरीणा शिष्येण लिखित कर्म्मप्रकृत्यादिगंभीर-

शास्त्रेभ्यः समुद्धृत्य दृब्ध जिनवल्लभगणिलिखितम्। इति सार्द्धशतकवृत्त्या (९९ पत्रे) एकसप्तत्यधिकैकादशशतवर्षे ११७१ कृतायां श्रीचित्रावालगच्छीय-श्रीधनेश्वरसूरयः प्राहु' ॥ २१ ॥

ननु-तपागच्छीयसूरिभिः अपि श्रीअभयदेवसूरीणा पूर्वोक्ता गुरुशिष्यपरम्परा क्वापि प्रोक्ताऽस्ति ? उच्यते-श्रीकल्पान्तर्वाच्ये तपागच्छीयश्रीहेमहंससूरिभिः भिन्नभिन्नगच्छप्रभावकाधिकारे तथैव प्रतिपादिताऽस्ति, तथाहि—'श्रीउपकेशवंशे श्रीरत्नप्रभसूरि हुया, जिये कोरटे नगरइ अनइ ओसिंए समकालै एकसमे एकलग्ने प्रतिष्ठा कीधी १। चित्रावालगच्छीय-श्रीवादिदेवसूरि हुआ। जीए हेमराज अनातणें, आस्थानिं गुणचन्द्र दिगम्बर जीतौ २। नवाङ्गीवृत्तिकारक श्रीअभयदेवसूरि जिणे थंभणै सेढी नदीनें उपकंठि श्रीपार्श्वनाथतणी स्तुति करी, धरणेन्द्रसाहाय्यै श्रीपार्श्वबिम्बप्रत्यक्ष कीधो, शरीरतणो कोढरोग उपसमाव्यो, तच्छिष्य श्रीजिनवल्लभसूरि हुआ, चारित्रनिर्मल अनेक ग्रन्थ तणो निर्माण कीधो। इणे अनुक्रमइ श्रीखरतरपक्षइ सूरिवर अनेक हुआ सातिशय' इत्यादि ॥ २२॥

पुनः तपागच्छनायक-श्रीसोमसुन्दरशिष्यमहोपाध्याय-श्रीचारित्रगणिविनेय प० श्रीसोमधर्मगणिविरचिताया ( स० १५०३ वर्षे ) श्रीउपदेशसप्ततिकाया निष्पन्नाया द्वितीयाधिकारे सप्तमोपदेशे ( पत्र ४३ ), तथाहि—

"जयत्यसौ स्तम्भनपार्श्वनाथः, प्रभावपूरैः परितः सनाथः। स्फुटीचकाराभयदेवसूरि-र्यां भूमिमध्यस्थितमूर्त्तिमिद्धम् ॥ १ ॥ पुरा श्रीपत्तने राज्य, कुर्वाणे भीमभूपतौ। अभूवन् भूतले ख्याताः, श्रीजिनेश्वरसूरयः ॥ २ ॥ सूरयोऽभयदेवाख्या-स्तेषा पट्टे दिदीपिरे। येभ्य' प्रतिष्ठामापन्नो, गच्छः खरतराभिधः ॥ ३ ॥" इत्यादि ॥ २३ ॥

पुनः उपदेशतरङ्गिण्यां श्रीमुनिसुन्दरसूरयोऽपि प्रोचुः । तथाहि—"व्याख्यातामयदेवसूरिरमलप्रज्ञो नवाङ्गयाः पुन-र्मे-व्याना जिनदत्तसूरिरददाद्दीक्षा सहस्रस्य तु । प्रौढः श्रीजिनवल्लभो गुरुरभूद् ज्ञानादिलक्ष्म्या पुन-र्मन्यान् श्रीतिलकश्चकार विविधांश्चन्द्रप्रभाचार्यवत् ॥ १ ॥" इति ॥ २४ ॥

एव श्रीअणहिल्लपत्तने स० १६१७ मिते युगप्रधानश्रीजिनचन्द्रसूरिभिः सम श्रीअभयदेवसूरिं आश्रित्य तपागच्छीयधर्मसागरेण विवादे प्रारब्धेऽनेकग्रन्थदर्शनपूर्वं चतुरशीतिगच्छाचार्यैः एकीभूय धर्म्मपक्ष कक्षीकृत्य—अङ्गीकृत्य च सर्वगच्छीयसङ्घसमक्ष साक्ष्य प्रदत्त स्वहस्ताक्षरैः मतानि लिखितानि । यदुत श्रीस्तम्भनकपार्श्वनाथमूर्त्तिप्रकटको नवाङ्गीवृत्तिकारक श्रीअभयदेवसूरिः श्रीखरतरगच्छे एव नाऽन्यत्र गच्छे बभूव इति । इय वार्त्ता आबालगोपाल प्रसिद्धा अस्ति, पुनस्तदर्थिना इद मतपत्र द्रष्टव्यम्—

अत्र मतपत्रमिदम्—

"स० १६१७ मिते कार्त्तिक सुदि ७ दिने शुक्रवारे श्रीपाटणनगरे श्रीखरतरगच्छनायकवादिकन्दकुद्दालभट्टारक-श्रीजिनचन्द्रसूरि चौमासी कीधी । तिवारइ क्षपीमती धर्मसागरै कुडी चरचा माण्डी, ज उ अभयदेवसूरि नवाङ्गीवृत्तिकर्त्ता श्रीथम्भणापार्श्वनाथप्रकटकर्ता, ते खरतरगच्छे न हुआ । एहवी वात साभली तिवारै श्रीजिनचन्द्रसूरि समस्तदर्शन एकठा कीधा, पछै समस्त दर्शन नइ पूछयो, जे श्रीअभयदेवसूरि नवाङ्गीवृत्तिकर्त्ता थम्भणपार्श्वनाथप्रकटकर्ता किसै गच्छइ हुआ ? तिवारैं समस्त दर्शन मिली अनै धणा ग्रन्थ जोया । पछै इम कह्यो—जे श्रीअभयदेवसूरि खरतरगच्छे

हूवा सही, सत्य समस्त दर्शन घणा ग्रंथ जोई नइ सही कीधी, सही वार १०८ ॥ अत्र सास्त्रिभट्टारककर्मसुन्दरसूरिमत १, सिद्धान्तीया-वडगच्छा-श्रीथिरचन्द्रसूरिमत २, जावडीयागच्छे श्रीहर्षविनयमतम् ३, नीगमीया-तपागच्छे श्रीकल्याणरत्नसूरिमत ४, वृहत्तपागच्छे श्रीसिद्धसूरिमतम् ५, विवदणीक घारे जिया-खडखडता-तपागच्छे श्रीपरमानन्दसूरिमत ६, सिद्धान्तीया-वडगच्छा-श्रीमहीसागरसूरिमतम्, ७ काछेला-पुनमीयागच्छे उदयरत्नसूरिमतम् ८, पीपलियागच्छे धिमलच न्द्रसूरिमतम् ९, आंठाडीआ-पूनमिआगच्छे श्रीविद्याप्रभसूरिमतं १०, ढढेरिया-पुनमीयागच्छे श्रीसयमसागरसूरिमतम् ११, कुतबपुरा-तपागच्छे श्रीविनयतिलकसूरिमतम् १२, वोकडियागच्छे देवानन्दसूरिमत १३, सिद्धान्तीयागच्छे पंन्यासप्रमोदहंसमतम् १४, पाल्हणपुरागच्छे वादिनयकीर्त्तिमतम् १५, पाल्हणपुरीशाखातपागच्छे वा० रगनिधानमतं १६, अंचलगच्छे प० भावरत्नमत १७, छापरियापुनमीयागच्छे प० उदयराजमत १८, साधुपुनमीयागच्छे पं० वा० नगामत १९, मलधारीगच्छे पं० गुणतिलकमत २०, ओसवालगच्छे प० रत्नहर्षमत २१, धवलपक्षीयामावलीयागच्छे पन्यास रगामत २२, चित्रावालगच्छे वा० क्षेमामत २३, चिन्तामणीया पाडा वा० गुणमाणिक्यगणिमत २४, आगमीया उपाध्यायसुमतिशेखरमतम् २५, वेगडाखरतर प० पद्ममाणिक्यमत २६, वृहत्खरतर वा० मुनिरत्नमतम् २७, चित्रावालओगीवाडई पं० राजामतं २८, कोरण्टवालगच्छे चेला-हासामत २९, विवदणीक-खिराजुआमत ३०, आगमीया मोकलमत ३१, खरतर-उपाध्याय श्रीजयलाभमत ३२, कार्त्तिकसुदि ७ शुक्रवारे सर्वदर्शनी मिली, मतलब कीधी, धर्मसागर ऋषिमती तेडाव्यो, पुणि धर्मसागर दर्शनमाहि न आव्यउ, वार तीन मनकर करी तेडाव्यो, पछी

छिपी रह्यो, पण न आवे, तिवारें काती सुदि १४ दिने सर्वदर्शन मिली घरमाये पोटो जाणीने निह्नव थाप्यौ, जिन-दर्शन बाहिर कीधौ सही। सही १०८। सर्वदर्शनसम्मत श्रीअभयदेवसूरि नवाङ्गीवृत्तिकर्त्ता थंभणा पार्श्वनाथ प्रकट-कर्त्ता ते खरतर गच्छइ हुआ, पत्तनीयसमस्तदर्शनिभिः विचार्य मत लिखितम्" ॥

अथ ग्रन्थसाक्ष्य लिख्यते—श्रीतपागच्छीय-हेमहंससूरिकृतकल्यान्तर्वाच्ये १, भावहर्षकृत-गुरुपर्वप्रभावकग्रन्थे २, तपा-लघुशालालघुपट्टावल्या ३, तपाकृते आचारप्रदीपे ४, सन्देहदोलावलीखरतरग्रन्थप्रामाण्यसाधके ५, कुमरगिरिस्थिततपा-सामग्रीसाधुपट्टावल्या ६, श्रीजिनवल्लभसूरिकृत-सार्द्धशतककर्मग्रन्थमध्ये ७, श्रीचित्रावालगच्छीयश्रीधनेश्वरसूरिकृत-वृत्ति-परम्परासाधके ८, तपाकल्याणरत्नसूरिचिरन्तनटिप्पनकद्वये ९, छापरीया-पुनमीया-पट्टावल्यां १०, साधुपुनमीयापट्टा-वल्यां ११, गुर्वावलीग्रन्थे १२, प्रभावकचरित्रे चन्द्रप्रभसूरिप्रणीते १३, सर्गे (१६१ पत्रे) श्रीअभयदेवसूरिचरित्रे १३, पल्लीवालगच्छीय भ० श्रीआमदेवसूरिकृतप्रभावकचरित्रे १४, पीपलीया-उदयरत्नप्रारम्भेण जीवानुशासने १५, तथा तपा-श्रीसोमसुन्दरसूरिराज्ये कृतोपदेशसप्ततिग्रन्थे १६, किं बहुना ४१ ग्रन्थमध्ये। हुंडी-श्रीअभयदेवसूरिः नवाङ्गीवृत्ति-कर्त्ता श्रीस्तम्भनकपार्श्वनाथप्रकटकर्त्ता खरतरगच्छे बभूव-सर्वदर्शनिमतोपेत मूलपत्र अणहिल्लपत्तनभाण्डागारे मुक्त अस्ति, तद् आलोक्य एतल्लिखित अस्ति, ये च न मन्यन्ते ते निह्नवाः।

अथ स्तम्भतीर्थमतानि लिख्यन्ते—स्वस्ति श्रीस्तम्भनाधीशं नत्वा श्रीस्तम्भतीर्थमध्ये समस्तदर्शनिभिर्लिखितम्। श्री-अभयदेवसूरि श्रीथंभणपार्श्वनाथ प्रकटकारक नवाङ्गीवृत्तिकारक खरतरगच्छे हुआ, केई एक इम नथी सरदहिता, राग-

हूवा सही, सत्यं समस्त दर्शन घणा ग्रथ जोई नइ सही कीधी, सही चार १०८ ॥ अत्र सासिभट्टारककर्मसुन्दरसूरि-
मतं १, सिद्धान्तीया-वडगच्छा-श्रीथिरचन्द्रसूरिमत २, जावडीयागच्छे श्रीहर्षविनयमतम् ३, नीगमीया-तपागच्छे
श्रीकल्याणरत्नसूरिमत ४, बृहत्तपागच्छे श्रीसिद्धसूरिमतम् ५, विवदणीक घारे जिया-खडखडता-तपागच्छे श्रीपरमानन्द-
सूरिमत ६, सिद्धान्तीया-वडगच्छा-श्रीमहीसागरसूरिमतम्, ७ काछेला-पुनमीयागच्छे उदयरत्नसूरिमतम् ८, पीपलिया-
गच्छे विमलचन्द्रसूरिमतम् ९, त्रांठाडीआ-पूनमिआगच्छे श्रीविद्याप्रभसूरिमत १०, ढढेरिया-पुनमीयागच्छे श्रीसयम-
सागरसूरिमतम् ११, कुतबपुरा-तपागच्छे श्रीविनयतिलकसूरिमतम् १२, वोकडियागच्छे देवानन्दसूरिमत १३, सिद्धा-
न्तीयागच्छे पंन्यासप्रमोदहसमतम् १४, पाल्हणपुरागच्छे वादिनयकीर्त्तिमतम् १५, पाल्हणपुरीशाखातपागच्छे वा० रग-
निधानमतं १६, अचलगच्छे पं० भावरत्नमत १७, छापरियापुनमीयागच्छे प० उदयराजमत १८, साधुपुनमीयागच्छे
पं० वा० नगामत १९, मलधारीगच्छे पं० गुणतिलकमत २०, ओसवालगच्छे प० रत्नहर्षमत २१, धवलपर्वीयाआच-
लीयागच्छे पन्यास रगामतं २२, चित्रावालगच्छे वा० क्षेमामत २३, चिन्तामणीया पाडा वा० गुणमाणिक्यगणि-
मत २४, आगमीया उपाध्यायसुमतिशेखरमतम् २५, वेगडाखरतर प० पद्ममाणिक्यमत २६, बृहत्खरतर वा० मुनि-
रत्नमतम् २७, चित्रावालओगीवाडई पं० राजामतं २८, कोरण्टवालगच्छे चेला-हासामत २९, विवंदणीक-खिराद्रुआमत
३०, आगमीया मोकलमत ३१, खरतर-उपाध्याय श्रीजयलाभमत ३२, कार्त्तिकसुदि ७ शुक्रवारे सर्वदर्शनी मिली, मल-
उस कीधी, धर्मसागर ऋषिमती तेडाव्यो, पुणि धर्मसागर दर्शनमांहि न आव्यउ, चार तीन मलक करी तेडाव्यो, पछै

छिपी रह्यो, पण न आवे, विचारे काती सुदि १३ दिने सर्वदर्शन मिली चरचाये पोटो जाणीने निह्नव थाप्यो, जिन-दर्शन बाहिर कीधौ सही । सही १०८ । सर्वदर्शनसम्मत श्रीअभयदेवसूरि नवाङ्गीवृत्तिकर्त्ता थभणा पार्श्वनाथ प्रकट-कर्त्ता ते खरतर गच्छइ हुआ, पत्तनीयसमस्तदर्शनिभि विचार्य मत लिखितम्" ॥

अथ ग्रन्थसाक्ष्य लिख्यते—श्रीतपागच्छीय-हेमहंससूरिकृतकल्पान्तर्वाच्ये १, भावहडाकृत-गुरुपर्वप्रभावकग्रन्थे २, तपा-लघुशाखालघुपट्टावल्या ३, तपाकृते आचारप्रदीपे ४, सन्देहदोलावलीखरतरग्रन्थप्रामाण्यसाधके ५, कुमरगिरिस्थिततपा-सामग्रीसाधुपट्टावल्या ६, श्रीजिनवल्लभसूरिकृत-सार्द्धशतककर्म्मग्रन्थमध्ये ७, श्रीचित्रावालगच्छीयश्रीधनेश्वरसूरिकृत-वृत्ति-परम्परासाधके ८, तपाकल्याणरत्नसूरिचिरन्तनटिप्पनकद्वये ९, छापरीया-पुनमीया-पट्टावल्या १०, साधुपुनमीयापट्टा-वल्या ११, गुर्वावलीग्रन्थे १२, प्रभावकचरित्रे चन्द्रप्रभसूरिप्रणीते १३, सर्गे ( १६१ पत्रे ) श्रीअभयदेवसूरिचरित्रे १३, पल्लीवालगच्छीय भ० श्रीआमदेवसूरिकृतप्रभावकचरित्रे १४, पीपलीया-उदयरत्नप्रारम्भेण जीवानुशासने १५, तथा तपा-श्रीसोमसुन्दरसूरिराज्ये कृतोपदेशसप्ततिग्रन्थे १६, किं बहुना ४१ ग्रन्थमध्ये । हुंडी-श्रीअभयदेवसूरि नवाङ्गीवृत्ति-कर्त्ता श्रीस्तम्भनकपार्श्वनाथप्रकटकर्त्ता खरतरगच्छे बभूव-सर्वदर्शनिमतोपेत मूलपत्रं अणहिल्लपत्तनभाण्डागारे मुक्त अस्ति, तद् आलोक्य एतल्लिखित अस्ति, ये च न मन्यन्ते ते निह्नवाः ।

अथ स्तम्भतीर्थमतानि लिख्यन्ते—स्वस्ति श्रीस्तम्भनाधीश नत्वा श्रीस्तम्भतीर्थमध्ये समस्तदर्शनिभिर्लिखितम् । श्री-अभयदेवसूरि श्रीथभणपार्श्वनाथ प्रकटकारक नवाङ्गीवृत्तिकारक खरतरगच्छे हुआ, केई एक इम नथी सरदहिता, राग-

हुवा सही, सत्य समस्त दर्शन घणा ग्रथ ओई नइ सही कीधी, सही वार १०८ ॥ अन सासिभट्टारकरुमसुन्दरसूरि-
मतं १, सिद्धान्तीया-वडगच्छा-श्रीथिरचन्द्रसूरिमत २, जावडीयागच्छे श्रीहर्षविनयमतम् ३, नीगमीया-तपागच्छे
श्रीकल्याणरत्नसूरिमत ४, वृहत्तपागच्छे श्रीसिद्धसूरिमतम् ५, विवदणीक वारे जिया-खडखडता-तपागच्छे श्रीपरमानन्द-
सूरिमत ६, सिद्धान्तीया-वडगच्छा श्रीमहीसागरसूरिमतम्, ७ काछेला-पुनमीयागच्छे उदयरत्नसूरिमतम् ८, पीपलिया-
गच्छे विमलचन्द्रसूरिमतम् ९, आंठाडीआ-पूनमिआगच्छे श्रीविद्याप्रभसूरिमत १०, ढंढेरिया-पुनमीयागच्छे श्रीसयम-
सागरसूरिमतम् ११, कुतबपुरा-तपागच्छे श्रीविनयतिलकसूरिमतम् १२, घोकडियागच्छे देवानन्दसूरिमत १३, सिद्धा-
न्तीयागच्छे पन्यासप्रमोदहसमतम् १४, पाल्हणपुरागच्छे वादिनयकीर्तिमतम् १५, पाल्हणपुरीशाखातपागच्छे वा० रंग-
निधानमतं १६, अचलगच्छे प० माधरसमत १७, छापरियापुनमीयागच्छे प० उदयराजमतं १८, साधुपुनमीयागच्छे
प० वा० नगामत १९, मलधारीगच्छे प० गुणतिलकमत २०, ओसवालगच्छे पं० रत्नहर्षमत २१, धवलपर्वीयाआव-
लीयागच्छे पन्यास रंगामतं २२, चित्रावालगच्छे वा० क्षेमामत २३, चिन्तामणीया पारा वा० गुणमाणिक्यगणि-
मतं २४, आगमीया उपाध्यायसुमतिशेखरमतम् २५, बेगडाखरतर प० पद्ममाणिक्यमत २६, बृहत्खरतर वा० मुनि-
रत्नमतम् २७, चित्रावालओगीवाडई पं० राजामतं २८, कोरण्टवालगच्छे चेला-हासामत २९, विवदणीक-लिरालुआमत
३०, आगमीया मोकलमत ३१, खरतर-उपाध्याय श्रीजयलाभमतं ३२, कार्तिकसुदि ७ शुक्रवारे सर्वदर्शनी मिली, मत-
उव कीधी, धर्मसागर ऋषिमती तेडाव्यो, पुणि धर्मसागर दर्शनमाहि न आव्यउ, वार तीन मजकूर करी तेडाव्यो, फरी

छिपी रह्यो, पण न आवे, तिवारें कार्ती सुदि ११ दिने सर्वदर्शन मिली घरचाये पोटो जाणीने निह्नव थाप्यौ, जिन-दर्शन बाहिर कीधौ सही। सही १०८। सर्वदर्शनसम्मत श्रीअभयदेवसूरि नवाङ्गीवृत्तिकर्त्ता थमणा पार्श्वनाथ प्रकट-कर्त्ता ते खरतर गच्छइ हुआ, पत्तनीयसमस्तदर्शनिभिः विचार्य मत लिखितम्" ॥

अथ ग्रन्थसाक्ष्य लिख्यते–श्रीतपागच्छीय-हेमहंससूरिकृतकल्पान्तर्वाच्ये १, मायहथाकृत–गुरुपर्वप्रभावकग्रन्थे २, तपा-लघुशालालघुपट्टावल्या ३, तपाकृते आचारप्रदीपे ४, सन्देहदोलावलीखरतरग्रन्थप्रामाण्यसाधके ५, कुमरगिरिस्थिततपा-सामग्रीसाधुपट्टावल्यां ६, श्रीजिनवल्लभसूरिकृत–सार्द्धशतककर्मग्रन्थमध्ये ७, श्रीचित्रावालगच्छीयश्रीधनेश्वरसूरिकृत–वृत्ति-परम्परासाधके ८, तपाकल्याणरत्नसूरिचिरन्तनटिप्पनकद्वये ९, छापरीया–पुनमीया–पट्टावल्यां १०, साधुपुनमीयापट्टा-वल्या ११, गुर्वावलीग्रन्थे १२, प्रभावकचरित्रे चन्द्रप्रभसूरिप्रणीते १३, सर्गे ( १९२ पत्रे ) श्रीअभयदेवसूरिचरित्रे १२, पल्लीवालगच्छीय भ० श्रीआमदेवसूरिकृतप्रभावकचरित्रे १४, पीपलीया–उदयरत्नप्रारम्भेण जीयानुशासने १५, तथा तपा–श्रीसोमसुन्दरसूरिराज्ये कृतोपदेशसप्ततिग्रन्थे १६, किं बहुना ४१ ग्रन्थमध्ये। एवी–श्रीअभयदेवसूरिः नवाङ्गीवृत्ति-कर्त्ता श्रीस्तम्भनकपार्श्वनाथप्रकटकर्त्ता खरतरगच्छे बभूव–सर्वदर्शनिमतोपेत मूलपत्र अणहिल्लपत्तनभाण्डागारे मुक्त अस्ति, तद् आलोक्य एतल्लिखित अस्ति, ये च न मन्यन्ते ते निह्नवाः।

अथ स्तम्भतीर्थमतानि लिख्यन्ते–स्वस्ति श्रीस्तम्भनाधीश नत्वा श्रीस्तम्भतीर्थमध्ये समस्तदर्शनिभिर्लिखितम्। श्री-अभयदेवसूरि श्रीथभणपार्श्वनाथ प्रकटकारक नवाङ्गीवृत्तिकारक खरतरगच्छे हुआ, केई एक श्रम नथी सरदहिता, राग-

हुया सही, सत्य समस्त दर्शन घणा ग्रंथ जोई नइ सही कीधी, सही वार १०८ ॥ अत्र साखिभट्टारककमंसुन्दरसूरि-
मत १, सिद्धान्तीया-वडगच्छा-श्रीथिरचन्द्रसूरिमत २, जावडीयागच्छे श्रीहर्षविनयमतम् ३, नीगमीया-तपागच्छे
श्रीकल्याणरत्नसूरिमत ४, बृहत्तपागच्छे श्रीसिद्धसूरिमतम् ५, विवदणीक वारे जिया-खडखडता-तपागच्छे श्रीपरमानन्द-
सूरिमत ६, सिद्धान्तीया-वडगच्छा-श्रीमहीसागरसूरिमतम्, ७ काछेला-पुनमीयागच्छे उदयरत्नसूरिमतम् ८, पीपलिया-
गच्छे विमलचन्द्रसूरिमतम् ९, त्रांठारीआ-पूनमिआगच्छे श्रीविद्याप्रभसूरिमत १०, ढढेरिया-पुनमीयागच्छे श्रीसयम-
सागरसूरिमतम् ११, कुतबपुरा-तपागच्छे श्रीविनयतिलकसूरिमतम् १२, वोकडियागच्छे देवानन्दसूरिमत १३, सिद्धा-
न्तीयागच्छे पंन्यासप्रमोदहंसमतम् १४, पाल्हणपुरागच्छे वाविनयकीर्त्तिमतम् १५, पाल्हणपुरीशाखातपागच्छे वा० रग-
निधानमतं १६, अचलगच्छे पं० मावरसमत १७, छापरियापुनमीयागच्छे प० उदयराजमत १८, साधुपुनमीयागच्छे
पं० वा० नगामत १९, मलधारीगच्छे प० गुणतिलकमत २०, ओसवालगच्छे प० रत्नहर्षमत २१, धवलपर्वीसाआव-
लीयागच्छे पन्यास रगामतं २२, चित्रावालगच्छे वा० क्षेमामत २३, चिन्तामणीया पाडा वा० गुणमाणिक्यगणि-
मतं २४, आगमीया उपाध्यायसुमतिशेखरमतम् २५, वेगडाखरतर प० पद्ममाणिक्यमत २६, बृहत्खरतर वा० मुनि-
रत्नमतम् २७, चित्रावालओगीवाडई पं० राजामत २८, कोरण्टवालगच्छे चेला-हासामत २९, विवंदणीक-खिराक्षुआमत
३०, आगमीया मोकलमत ३१, खरतर-उपाध्याय श्रीजयलाभमत ३२, कार्त्तिकसुदि ७ शुक्रवारे सर्वदर्शनी मिली, मत-
लस कीधी, धर्मसागर ऋषिमती तेडाव्यो, पुणि धर्मसागर दर्शनमांहि न आव्यउ, वार तीन मनावा करी तेडाव्यो, पछे

। तेपामाचार्यवर्याणा, मान्याना भूभृतामपि । कुष्ठव्या
पट्टे दिदीपिरे । येभ्यः प्रतिष्ठामापन्नो, गच्छः खरतराभिधः ॥ ३ ॥ तेपामाचार्यवर्याणा, मान्याना भूभृतामपि । कुष्ठव्या
घिरभूद्देहे, प्राच्यकर्मानुभावतः ॥ ४ ॥ तत श्रीगुर्जरत्राया सभाणकपुर प्रति । शक्त्यल्पत्वेऽपि ते चक्रुर्विहार मुनिपुङ्ग
वा ॥ ५ ॥ रोगग्रस्ततयाऽत्यन्त, सम्भाव्य स्वायुषः क्षयम् । मिथ्यादुष्कृतदानार्थं, सर्वं सङ्घ समाह्वयत् ॥ ६ ॥ तस्यामेव
निशीथिन्या, स्वप्ने शासनदेवता । प्रभो ! स्वपिषि जागर्षि, किं ? वेत्याह गुरु प्रति ॥ ७ ॥ रोगेण क्वास्ति ? मे निद्रे-त्युक्ते
देवी गुरु जगौ । उन्मोटयत तत्रैता सूत्रस्य नव कुकुंटी (कुक्कुटी ?) ॥ ८ ॥ शक्तेरभावात्किं कुर्वे ?, साऽऽह मैव वचो
वद । त्वमद्यापि नवाङ्ग्या यद्-वृत्तिः स्फीता करिष्यसि ॥ ९ ॥ श्रीसुधर्मकृतग्रन्थान्, कथमर्थापयाम्यहम् ? । पङ्गो प्रत्येति
को नाम ?, मेर्वारोहणकौशलम् ॥ १० ॥ देव्याह यत्र सन्देहा , स्मर्त्तव्याऽह त्वया तदा । यथा भिनद्मि तान् सर्वान्, पृष्ट्वा
सीमन्धर जिनम् ॥ ११ ॥ रोगग्रस्तः कथ मातः !, करोमि विधृतीरहम् ? । माऽवादीस्तत्प्रतीकारे, किन्तूपायमिम शृणु
॥ १२ ॥ अस्ति स्तम्भनकग्रामे, सेढीनाममहानदी । तस्या श्रीपार्श्वनाथस्य, प्रतिमाऽस्त्यतिशायिनी ॥ १३ ॥ यत्र च
क्षरति क्षीर, प्रत्यह कपिलेति गौ । तत्खुरोत्खातभूमौ च, द्रक्ष्यसि प्रतिमामुखम् ॥ १४ ॥ तदेव सप्रभाव तद् बिम्ब
वदस्व भावतः । यथा त्व स्वस्थदेह स्याः, इति प्रोच्य गता सुरी ॥ १५ ॥ प्रातर्जागरितास्तेऽथ, स्वप्नार्थमवबुध्य च । सम
समग्रसङ्घेन, चेलु स्तम्भनक प्रति ॥ १६ ॥ तत्र गत्वा यथा स्थाने, प्रेक्ष्य पार्श्वजिनेश्वरम् । उल्लसत्सर्वरोमाञ्चा, एव ते तुष्टु-
वुर्मुदा ॥१७॥ "जय तिहुयणवरकप्परुक्ख जय जिणधन्नतरि, जय तिहुयणकल्लाणकोस दुरिअक्करिकेसरि । तिहुयणजणअवि-
लघियाण भुवणत्तयसामिय, कुणसु सुहाइ जिणेसपास थभणयपुरट्ठिय ॥ १ ॥" वृत्ते तु पोडशे साऽर्चा, सर्वाङ्ग प्रकटाऽभ-

लेपना वाल्या कुबुद्धि घाल्या, ते मापडा दुखीहुस्ये सही १०८, सिद्धान्तनैमेलि नवागीवृत्तिने वृद्ध सम्प्रदायनें मेळि, नेह न मानइ ते घणा कूडा पडे छे। समस्त दर्शन वेसी श्रीनवागीप्रशस्ति जोईं वृद्धसम्प्रदाय जोईंनें सही कीधी, जे श्रीअभयदेवसूरि खरतरगच्छे हुआ। अत्र साखि–ओसवालगच्छे प० सोंहामत १ अचलगच्छे प० लक्ष्मीनिधानमत २ वृद्धशालीयतपागच्छे श्रीसौभाग्यरत्नसूरिमत ३ वडागच्छे उ० विनयकुशलमत ४ कोरटवालगच्छे प० पद्मशेखरमत ५ पूर्णिमागच्छे प० रत्नधीरमत ६ वडगच्छातपागच्छे प० रत्नसागरमत ७ मलधारीगच्छे क्षमासुन्दरमत ८ अचलीयागच्छे पूर्णचन्द्रमत ९ साडेरा–समयरत्नमत १० आगमीयागच्छे ऋपिराममतम् ११ सुधर्मघोषगच्छे ऋपिरत्नसागरमत १२ कडूआमती–पोमसीमतं १३ श्रीखरतरगच्छे श्रीअभयदेवसूरि स० ११११ श्रीथंभणो पार्श्वनाथ प्रगट कीधो, स० ११२० श्रीनवाङ्गीवृत्ति कीधी, स० १२०४ श्रीरुद्रपल्लीगच्छे अभयदेवसूरि बीजा हुआ न माने ते अभागीया, खोटुं बोलीने चारित्र गमाडे छे। तथा के इक कदाग्रही इम कहै–जे श्रीअभयदेवसूरि नवाङ्गीवृत्तिकर्त्ता श्रीथंभणपार्श्वनाथप्रकटकारक खरतरगच्छे न हुआ, ते महाउत्सूत्रवादी जाणिवा, जिणे कारणें तपागच्छनायक श्रीसोमसुन्दर सूरिना शिष्यनी कीधी उपदेशसत्तरी ग्रन्थ तेमांहि १२ मइ उपदेशे ( ४३ पत्रे ) ते कालना गीतार्थ संवेगी हुआ। तिणे खरतरगच्छे कह्या छे ते हुंडी लिखी जइ छे॥

जयत्यसौ स्तम्भनपार्श्वनाथः, प्रभावपूरै परितः सनाथः। स्फुटीचकाराभयदेवसूरि–र्यो भूमिमध्यस्थितमूर्त्तिमिद्धम्॥१॥ पुरा श्रीपत्तने राज्य, कुर्वाणे भीमभूपतौ। अभूवन् भूतले ख्याताः, श्रीजिनेश्वरसूरयः॥ २॥ सूरयोऽभयदेवाख्या–स्तेषां



३४ श्रीसर्वदेवसूरि ३५ श्रीअजितदेवसूरि ३६ श्रीविजयसिंहसूरि ३७ श्रीसोमप्रभसूरि ३८ श्रीमुनिचन्द्रसूरि ३९ श्रीअजितसिंहसूरि ४० श्रीविजयसेनसूरि ४१ श्रीमणिरत्नसूरि ४२ श्रीजगच्चन्द्रसूरि ४३ श्रीदेवेन्द्रसूरि ४४ श्रीधर्मघोपसूरि ४५ श्रीसोमप्रभसूरि ४६ श्रीसोमतिलकसूरि ४७ श्रीजयानन्दसूरि ४८ श्रीदेवसुन्दरसूरि ४९ श्रीज्ञानसागरसूरि ५० श्रीकुलमण्डनसूरि ५१ श्रीसोमसुन्दरसूरि ५२ श्रीजयचन्द्रसूरि ५३ श्रीमुनिसुन्दरसूरि ५४ श्रीरत्नशेखरसूरि ५५ श्रीलक्ष्मीसागरसूरि ५६ श्रीसुमतिसाधुसूरि ५७ श्रीहेमविमलसूरि ५८ श्रीआनन्दविमलसूरि ५९ श्रीविजयदानसूरि ६० श्रीहीरविजयसूरि ६१ श्रीविजयसेनसूरि ६२ श्रीविजयदेवसूरिप्रमुखाः ६३ । एवमन्येषु अपि आगमिक १ पूर्णिमापक्षीय २ विधिपक्षीयादि ३ गच्छेषु पट्टावल्या एतादृशप्रभावक–श्रीअभयदेवसूरिनाम न क्वाऽपि लिखितमस्ति, ततो यस्य पितामहगुरुः श्रीवर्द्धमानसूरिः गुरुश्च श्रीजिनेश्वरसूरिः सतीर्थ्यश्च श्रीजिनचन्द्रसूरिः शिष्यो यस्य श्रीजिनवल्लभसूरिः प्रशिष्यश्च श्रीजिनदत्तसूरिः स्वय च श्रीस्तम्भनकपार्श्वनाथमूर्त्तिप्रटको नवाङ्गीवृत्तिकारकश्च, एतादृशः प्रभावकः श्रीअभयदेवसूरिः श्रीखरतरगच्छे एव जात , नाऽन्यत्र ।

॥ इति श्रीअभयदेवसूरेः खरतरगच्छेशत्वाधिकारः ॥ ४ ॥

ननु–आत्मीयगच्छे प्रतिक्रमणान्ता साधव –"आयरिय उवज्झाए"त्ति, गाथा त्रिक कथ न पठन्ति ? उच्यते–आवश्यकादिषु साधूना नामग्राह तस्य अनुक्तत्वात् । ननु–तर्हि श्रावकाः कथं कथयन्ति ? सत्यं, श्रीजिनवल्लभसूरिभि निजसामाचार्यां उक्तत्वात्, तथाहि–"दाऊण वदणं तो, पणगाइसु जइसु खामए तिन्नि । किइकम्म किरिअ ठिओ सड्ढो गाहा तिग पढई ॥ १६ ॥" अत्र आह परः—ननु–श्रीप्रवचनसारोद्धारबृहद्वृत्तौ रात्रिप्रतिक्रमणाधिकारे ( ४० पत्रे ) "वदणय गा-

घत्। अत एवाऽमवृत्ते तैः, पञ्चक्सेति पदं कृतम् ॥ १८ ॥ "फणिफणफारफुरतरयणकररजियनहयल, फलिणीकन्दलदल-तमालनीलुप्पलसामल । कमठासुरउवसग्गवग्गससग्गअगजिय, जय पञ्चक्खजिणेसपास थमणयपुरट्ठिय ॥ १८ ॥" एवं द्वात्रिंशता वृत्तैः, सुष्टुवुः पार्श्वतीर्थपम्। श्रीसङ्घोऽपि महापूजाद्युत्सवाँस्तत्र निर्ममे ॥ १९ ॥ अन्त्य वृत्तद्वय तत्र त्यक्त्वा देव्युपरोधतः । चक्रिरे त्रिंशता वृत्तैः, स प्रभावं स्वयं हि ते ॥ २० ॥ तत्कालरोगनिर्मुक्ताः, सूरयस्तेऽपि जज्ञिरे। नव्यकारितचैत्ये च, प्रतिमा सा निवेशिता ॥ २१ ॥ स्थानाङ्गादिनवाङ्गानां, चक्रुस्ते विवृतीः क्रमात्। देवतावचन न स्यात्, कल्पान्तेऽपि हि निष्फलम् ॥ २२ ॥ इत्यादि समस्तवृत्तान्तजाणी करी जे सवेगी गीतार्थ छे ते समस्तसिधा कहिस्ये, उत्सूत्रथी बीहता थका बीजाई पूर्वाचार्य अनेरे गच्छि हूआ तेहिं इम कह्या जे श्रीअभयदेवसूरि नवाङ्गीवृत्तिकर्त्ता थभणापार्श्वनाथ प्रकटणहार "जयतिहुयण बत्तीसी" कारक श्रीखरतरगच्छि हूआसही सन्देह नही ॥ न च वाच्य एतादृशः प्रभावक श्रीअभयदेवसूरिः तपागच्छे न बभूव, कथ तत्पट्टावल्या तन्नाम अभवत् ? । तत्पट्टानुक्रमस्तु अयम्—"श्रीवर्धमान १ श्रीसुधर्म २ जम्बू ३ प्रभव ४ श्रीसिज्जभव ५ श्रीयशोभद्र ६ श्रीसम्भूतिविजय ७ श्रीस्थूलभद्र ८ श्रीआर्यसुहस्ति ९ श्रीसुस्थित १० श्रीइन्द्रदिन्न ११ श्रीदिन्नसूरि १२ श्रीसिंहगिरि १३ श्रीवज्रस्वामि १४ श्रीवज्रसेन १५ श्रीचन्द्रसूरि १६ श्रीसामन्तभद्रसूरि १७ श्रीदेवसूरि १८ श्रीप्रद्योतनसूरि १९ श्रीमानदेवसूरि २० श्रीमानतुङ्गसूरि २१ श्रीवीरसूरि २२ श्रीजयदेवसूरि २३ श्रीदेवानन्दसूरि २४ श्रीविक्रमसूरि २५ श्रीनरसिंहसूरि २६ श्रीसमुद्रसूरि २७ श्रीमान् देवसूरि २८ श्रीविबुधप्रभसूरि २९ श्रीजयानन्दसूरि ३० श्रीरविप्रभसूरि ३१ श्रीयशोभद्रसूरि ३२ श्रीविमलचन्द्रसूरि ३३ श्रीउद्योतनसूरि

चित्ता शोकेन १ दृप्तचित्ता दर्पेण २ यक्षाविष्टा=देवताधिष्ठिता ३ उन्मादप्राप्ता वातादिना ४ उपसर्गप्राप्ता तिर्यङ्मनुष्यादिना नीयमानां ५ साधिकरणां कलहयन्तीं ६, षड्भिः स्थानैः वक्ष्यमाणैः निर्ग्रन्था –साधवो निर्ग्रन्थ्याः च साध्व्यः तथाविधनिर्ग्रन्थाभावे मिश्राः सन्तः साधर्मिक=समानधर्मयुक्त साधु इत्यर्थः, 'समायरमाणे'त्ति समाद्रियमाणाः–साधर्मिकं प्रति आदर कुर्वाणाः समाचरन्तो वा उत्पाटनादिव्यवहारविषयीकुर्वन्तो, न अतिक्रामन्ति आज्ञा स्त्रीभिः सह विहार १–स्वाध्याया २–वस्थानादि न कार्यं इत्यादिरूपा, पुष्टालम्बनत्वात् इति 'अतोर्हितो व'त्ति गृहादेः मध्याद् वहिर्नयन्तो वाशब्दा विकल्पार्थाः, वाहिर्हितो व'त्ति गृहादेः बहिस्तात् निर्वहिः–अत्यन्तबहिः वहिस्तात्तरा नयन्तः, 'उपेक्षमाणा' इति उपेक्षा द्विविधा–व्यापारोपेक्षा अव्यापारोपेक्षा च, तत्र व्यापारोपेक्षया त उपेक्षमाणाः तद्विषयाया छेदनबन्धनादिकाया समयप्रसिद्धक्रियाया व्याप्रियमाणा इत्यर्थः, अव्यापारोपेक्षया च मृतकस्वजनादिभिः त सत्क्रियमाण उपेक्षमाणाः तत्र उदासीना इत्यर्थः, तथा 'उवासमाण'त्ति पाठान्तरेण 'भयमाण'त्ति वा रात्रिजागरणात् तदुपासना विदधाना, 'उवसामेमाणा'त्ति पाठान्तरे त क्षुद्रव्यन्तराधिष्ठितं समयप्रसिद्धविधिनोपशमयन्त इति, तथा 'अणुन्नवेमाण'त्ति तत्स्वजनादीन् तत्परिष्ठापनाय अनुज्ञापयन्तः, 'तुसिणीए'त्ति तूष्णींभावेन सम्प्रव्रजन्त तत्परिष्ठापनार्थं आगमानुज्ञातत्वात् सर्वं इद आज्ञाऽतिक्रमाय न भवति इति ।" अत्र स्पष्टमेव साधूना साध्वीभिः सम विहारो न्यषेधि ॥ १ ॥

तथा पुनर्निषेधमाह–"जे भिक्खू आगंतागारे जाव परिआवहेसु वा एगो एगित्थिए सद्धिं विहार वा करेज्ज सज्झायं वा करेज्ज असणं वा पाण वा खाइम वा साइम वा आहारेज्ज उच्चारपासवण वा परिट्ठवेइ, अण्णयर वा (अणारिअं) आणा-

चिन्मते न पठति च" इति श्रीभावदेवसूरिकृतयतिदिनचर्याया (८२ पत्रे)। अथ पञ्चवस्तुकसूत्रे साधुप्रतिक्रमणाधिकारे (७७ पत्रे) 'आयरिय उवज्झाए' इत्यादि गाथात्रिक भणितमस्ति, तत्रापि तद्गच्छीयसामाचारी एव प्रमाणम् ॥ अथवा 'तत्त्व पुनः केवलिनो विदन्ति' यथाऽस्ति तथा प्रमाण, नाऽस्माक कोऽपि अभिनिवेशः, अस्मद्गच्छसामाचारी चेयम्, यत्साधवः, 'आयरिय उवज्झाए'त्ति गाथात्रिक न पठन्तीति ॥

॥ इति आयरिय उवज्झाए श्रावकपठनाधिकारः ॥ ५ ॥

ननु–केपाचिद्गच्छे साम्प्रत साधूनां साध्वीभिः सम विहारो दृश्यते,आत्मगच्छे तु तन्निषेधः, तत् कथम्? अत्रोच्यते, सूत्रवृत्त्यादौ साधूनां स्त्रीभिः सह विहारः १ स्वाध्यायः २ अवस्थानादे ३ निषेधात्, यदुक्त स्थानाङ्गसूत्रे पष्ठस्थानके प्रथमोद्देशके (३५२ पत्रे), तथाहि—

"छहिं ठाणेहिं निग्गथे निग्गथीं गिण्हमाणे वा अवलमाणे वा नाइक्कमति, त जहा–सित्तचित्त १ दित्तचित्त २ जक्खाइट्ठ ३ उम्मायपत्तं ४ उवसग्गपत्त ५ साहिकरणं ६ ॥ छहिं ठाणेहिं निग्गथा निग्गथीओ अ साहम्मिअ कालगय समायरमाणा नाइक्कमति, तजहा–अतोहिंतो वा बाहिं णीणेमाणा वा १ बाहिं हिंतो वा निबाहिं णीणेमाणा २ उवेहमाणा वा ३ उवासमाणा वा ४ अणुन्नवेमाणा वा ५ तुसिणीते वा सपव्वयमाणा ६ ॥ तट्टीका–अनन्तर गणधरगुणा उक्ताः, गणधरकृतमर्यादया च वर्त्तमानो निर्ग्रन्थो न आज्ञा अतिक्रामति इति एतत् सूत्रद्वयेनाऽऽह–तत्र प्रथम पञ्चमस्थानके व्याख्यातमेव, तथापि किंचिदुच्यते गृह्णन्–ग्रीवादौ अवलम्बयन्, हस्तवाह्वादौ गृहीत्वा न अतिक्रामति आज्ञामिति गम्यते। क्षिप्त-

क्षिप्ता शोकेन १ दृप्तचित्ता हर्षेण २ यक्षाविष्टा=देवताधिष्ठिता ३ उन्मादप्राप्ता वातादिना ४ उपसर्गप्राप्ता तिर्यङ्मनुष्यादिना नीयमाना ५ साधिकरणा कलहयन्ती ६, षड्भिः स्थानैः वक्ष्यमाणैः निर्ग्रन्थाः—साधवो निर्ग्रन्थ्याः च साध्व्यः तथाविधनिर्ग्रन्थाभावे मिश्राः सन्त साधर्मिक—समानधर्मयुक्तं साधुं इत्यर्थं, 'समायरमाणे'त्ति समाद्रियमाणाः—साधर्मिकं प्रति आदर कुर्वाणाः समाचरन्तो वा उत्पाटनादिव्यवहारविषयीकुर्वन्तो, न अतिक्रामन्ति आज्ञा स्त्रीभिः सह विहार १—स्वाध्याया २—वस्थानादि न कार्यं इत्यादिरूपा, पुष्टालम्बनत्वात् इति 'अतोहिंतो व'त्ति गृहादे मध्याद् बहिर्नयन्तो वाशब्दा विकल्पार्थाः, बाहिहिंतो व'त्ति गृहादेः बहिस्तात् निर्बहिः—अत्यन्तबहिः बहिस्तात्तरा नयन्तः, 'उपेक्षमाणा' इति उपेक्षा द्विविधा—व्यापारोपेक्षा अव्यापारोपेक्षा च, तत्र व्यापारोपेक्षया त उपेक्षमाणा तद्विषयाया छेदनबन्धनादिकाया समयप्रसिद्धक्रियाया व्याप्रियमाणा इत्यर्थः, अव्यापारोपेक्षया च मृतकस्वजनादिभिः त सत्क्रियमाण उपेक्षमाणाः तत्र उदासीना इत्यर्थः, तथा 'उवासमाण'त्ति पाठान्तरेण 'भयमाण'त्ति वा रात्रिजागरणात् तदुपासना विदधानाः, 'उवसामेमाणा'त्ति पाठान्तरे त क्षुद्रव्यन्तराधिष्ठितं समयप्रसिद्धविधिनोपशमयन्त इति, तथा 'अणुन्नवेमाण'त्ति तत्स्वजनादीन् तत्परिष्ठापनाय अनुज्ञापयन्तः, 'तुसिणीए'त्ति तूष्णींभावेन सम्प्रव्रजन्तः तत्परिष्ठापनार्थं आगमानुज्ञातत्वात् सर्वं इदं आज्ञाऽतिक्रमाय न भवति इति ।" अत्र स्पष्टमेव साधूना साध्वीभिः समं विहारो न्यषेधि ॥ १ ॥

तथा पुनर्निषेधमाह—"जे भिक्खू आगंतागारे जाव परिआवहेसु वा एगो एगित्थिए सद्धिं विहार वा करेज्ज सज्झायं वा करेज असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा आहारेज्ज उच्चारपासवण वा परिट्ठवेइ, अण्णयर वा (अणारिअं) आणा-

चिन्मते न पठति च" इति श्रीभावदेवसूरिकृतयतिदिनचर्यायां ( ८३ पत्रे )। अथ पञ्चवस्तुकसूत्रे साधुप्रतिक्रमणाधिकारे ( ७७ पत्रे ) 'आयरिय उवज्झाए' इत्यादि गाथात्रिक भणितमस्ति, तत्रापि तद्गच्छीयसामाचारी एव प्रमाणम् ॥ अथवा 'तत्त्वं पुनः केवलिनो विदन्ति' यथाऽस्ति तथा प्रमाण, नाऽस्माकं कोऽपि अभिनिवेशः, अस्मद्गच्छसामाचारी चेयम्, यत्श्रावकः 'आयरिय उवज्झाए'त्ति गाथात्रिक न पठन्तीति ॥

॥ इति आयरिय उवज्झाए श्रावकपठनाधिकारः ॥ ५ ॥

ननु–केषांचिद्गच्छे साम्प्रत साधूनां साध्वीभिः सम विहारो दृश्यते,आत्मगच्छे तु तन्निषेधः, तत् कथम् ? अत्रोच्यते, सूत्रवृत्त्यादौ साधूना स्त्रीभिः सह विहारः १ स्वाध्यायः २ अवस्थानादे ३ निषेधात्, यदुक्त स्थानाङ्गसूत्रे षष्ठस्थानके प्रथमोद्देशके ( ३५२ पत्रे ), तथाहि—

"छहिं ठाणेहिं निग्गथे निग्गथीं गिण्हमाणे वा अवलमाणे वा नाइक्कमति, त जहा–खित्तचित्तं १ दित्तचित्त २ जक्खा इट्ठ ३ उम्मायपत्त ४ उवसग्गपत्तं ५ साहिकरणं ६ ॥ छहिं ठाणेहिं निग्गथा निग्गथीओ अ साहम्मिअ कालगय समायरमाणा नाइक्कमंति, तंजहा–अतोर्हितो वा बाहिं णीणेमाणा वा १ बाहिं हिंतो वा निबाहिं णीणेमाणा २ उवेहमाणा वा ३ उवासमाणा वा ४ अणुन्नवेमाणा वा ५ तुसिणीते वा सपव्वयमाणा ६ ॥ तट्टीका–अनन्तर गणधरगुणा उक्ताः, गणधरकृतमर्यादया च वर्त्तमानो निर्ग्रन्थो न आज्ञां अतिक्रामति इति एतत् सूत्रद्वयेनाऽऽह–तत्र प्रथम पञ्चमस्थानके व्याख्यातमेव, तथापि किंचिदुच्यते गृह्णन्=भीवादौ अवलम्बयन्, हस्तबाहुलादौ गृहीत्वा न अतिक्रामति आज्ञामिति गम्यते । क्षिप्त-

चित्ता शोकेन १ दृप्तचित्ता दर्पेण २ यक्षाविष्टा=देवताधिष्ठिता ३ उन्मादप्राप्ता वातादिना ४ उपसर्गप्राप्ता तिर्यङ्मनुष्या-दिना नीयमाना ५ साधिकरणा कलहयन्ती ६, पञ्चि स्थाने वक्ष्यमाणै निर्ग्रन्थाः—साधवो निर्ग्रन्थ्याः च साध्व्यः तथाविध-निर्ग्रन्थ्याभावे मिश्राः सन्तः साधर्मिक=समानधर्मयुक्त साधु इत्यर्थः, 'समायरमाणे'त्ति समाद्रियमाणा —साधर्मिकं प्रति आदर कुर्वाणाः समाचरन्तो वा उत्पादनादिव्यवहारविपयीकुर्वन्तो, न अतिक्रामन्ति आज्ञा स्त्रीभि सह विहार १—स्वाध्याया २—वस्थानादि न कार्य इत्यादिरूपा, पुष्टालम्बनत्वात् इति 'अतोहिंतो व'त्ति गृहादे मध्याद् वहिर्नयन्तो वाशब्दा विकल्पार्थाः, बाहिर्हिंतो व'त्ति गृहादेः वहिस्तात् निर्मद्दि—अत्यन्तवहिः वहिस्तात्तरा नयन्तः, 'उपेक्षमाणा' इति उपेक्षा द्विविधा—व्यापारोपेक्षा अव्यापारोपेक्षा च, तत्र व्यापारोपेक्षया त उपेक्षमाणाः तद्विपयाया छेदनवन्धनादिकाया समयप्रसिद्ध-क्रियाया व्याप्रियमाणा इत्यर्थः, अव्यापारोपेक्षया च मृतकस्वजनादिभिः त सत्क्रियमाण उपेक्षमाणाः तत्र उदासीना इत्यर्थः, तथा 'उवासमाण'त्ति पाठान्तरेण 'भयमाण'त्ति वा रात्रिजागरणात् तदुपासना विदधाना, 'उवसामेमाणा'त्ति पाठान्तरे त क्षुद्रव्यन्तराधिष्ठित समयप्रसिद्धविधिनोपशमयन्त इति, तथा 'अणुन्नवेमाण'त्ति तत्स्वजनादीन् तत्परिष्ठापनाय अनुज्ञापयन्तः, 'तुसिणीए'त्ति तूष्णींभावेन सप्रव्रजन्तः तत्परिष्ठापनार्थं आगमानुज्ञातत्वात् सर्व इद आज्ञाऽतिक्रमाय न भवति इति ।" अत्र स्पष्टमेव साधूना साध्वीभिः समं विहारो न्यपेधि ॥ १ ॥

तथा पुनर्निषेधमाह—"जे भिक्खू आगंतागारे जाव परिआवहेसु वा एगो एगित्थिए सद्धिं विहार वा करेज्ज सज्झायं वा करेज्ज असणं वा पाण वा खाइम वा साइम वा आहारेज्ज उच्चारपासवण वा परिट्ठवेइ, अण्णयर वा (अणारिअ) आणा-

रिअ निट्ठुर असमणपाउग्गं कह कहेइ कहंतं वा साइज्जति तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासिय परिहारट्ठाण अणुग्घाइय" इत्यादि इति श्रीनिशीथेऽष्टमोद्देशके ॥ उक्तः सप्तमः, इदानीं अष्टमः "तस्स इमो सनधो कहितो"–

"कहिया खलु आगारा, ते उ कहिं ? कतिविहा ? य विन्नेया । अगतागारादीसुं, सविगारविहारमादीया ॥ १ ॥" सत्तममत्त अतसुत्ते(इ)त्थी पुरिसागारा कहिता, ते कहिं हवेज ? अगंतागारादिसु, ते आगतागारादी इह समति कतिविहा गाने अगारा निण्णेया ? इह अपुत्तरूवियाणि—

व्याख्या–एगो साहू एगाए इत्थिआए सद्धिं समाण गामाओ गामतर विहारो अहवा गयागय चकमण सज्झाय करेइ, असणादिअ वा आहारेति उच्चार पासवण वा परिठवेइ, एगो एगत्थिआए सद्धिं विहारभूमिं गच्छति, अणारिआ कामकहा' निरन्तर वा अप्पिय कहं कहेति, काम निठुरकहाओ एता चेव असमणपाउग्गा, अथवा देसभत्तकहादी जा सजमोवका-रिका ण भवति, सा सवा असमणपाउग्गा ॥

"आगतगारे आरामागारे कुलावसत्थे। पुरिसित्थिएगऽणेगे चउक्कभयणा, दुयक्खेऽवि ॥२॥" एगो एगित्थिए सद्धिं, एगो अणेगित्थीए सद्धिं, अणेगा एगित्थिए सद्धिं, अणेगा अणेगित्थिए सद्धिं, आ कामकहा सा उ होइ अणारिया तरव छोइया णरवाहणदत्तकथा लोगुत्तरिया तरंगवती मलयवती मगधसेणादी, चउत्तरिया निठुरमलीकरण भागवयदोसकामणचा ॥ ३ ॥

"अवि मायर पि सद्धिं, कथावि एगाणियस्स पविसिजा । किं पुण ? अगारिगाथी, तरुणित्थीणं सहगयस्स ॥ ४ ॥"

"कवि मायरे स्व कवि... सद्धिं ? ... धम्मकहावि काउं ण वट्टइ, किं पुण अण्णाहिं सरुणित्थीहिं सद्धिं ?

माइभगिणिमादीहिं अगमित्थीहिं सद्धिं एगागिअस्स धम्मकहावि काउं ण वट्टइ, किं पुण अण्णाहिं सरुणित्थीहिं सद्धिं ? ॥ ५ ॥"

"अण्णावि अप्पसत्थासु थीसु कहा किमु अणारिय असब्भ चंकमणपाणभोअणे उच्चारेसु तु सविसेसो ॥६॥" भयणपया चउभंगो

"भयणपयाण चउण्ह, अण्णयजुत्ते अ सजए सव्वे। जे भिक्खू विहरेज्जा, अहवा करेज्ज सज्झाय ॥७॥ सो आणा अणवत्थ, मिच्छत्तविराहण तहा दुविहं, पावति जम्हा तेण एए पया विवज्जेज्जा ॥८॥ दिट्ठे सका भोगादि जम्हा एए दोसा तम्हा न कप्पंति विहाराइ काउ, कारणे पुण करेज्जावि ॥ ९ ॥ बितियपदमणप्पज्झे, गेलण्णुवसग्गरोहगिद्धाणे। सभमभयवासासु य, खति समादीण निक्खमणे ॥ १ ॥ दारगाहा—अणाद्य अणप्पज्झो सो सयाणि विहारादीणि करेज्जा, इआणि गेलण्णे उद्देसंमि चउत्थे गेळण्णे जो विही समक्खाओ सो चेव य वितिअपए गिलण्णे अट्ठसमुद्देसे ॥ १० ॥ कठा । इयाणिं उवसोगेसि तत्थिमं उदाहरण—कुलवसमि पहीणे, ससगभसगेहिं होइ आहरण । सुकुमालिअपव्वज्जा, सपच्चवाया य फासेण ॥ ११ ॥ इत्यादि निशीथभाष्यचूर्णौ अष्टमोद्देशके-किंच यत्र सयत्यो भवन्ति तत्र क्षेत्रे अपि अनवस्थान साधूना आस्ता विहारादि ॥ २ ॥ तथा चोक्तं बृहत्कल्पसूत्रभाष्यवृत्तिषु द्वितीयखण्डे—"से गामंसि वा जाव राए, हाणींसि वा एगगवडाए एगदुवाराए एगनिक्खमणपवेसाए नो कप्पइ निग्गथाण य निग्गथीण य एगत्तउ वत्थए" ॥ अथाऽस्य सूत्रस्य कः सम्बन्धः ? इत्याह-गामनगराइएसु तेसु अ खेत्तेसु कत्थ वसिअव ? जत्थ न वसति समणीओ

भ्यासे निग्गमपहे वा, ग्रामनगरादिषु तेषु पूर्वसूत्रोक्तेषु क्षेत्रेषु कुत्र वस्तव्य इति चिन्तायां अनेन सूत्रेण प्रतिपाद्यते, यत्र "अभ्यासे" प्रतिश्रयासन्ने "निर्गमपथे वा" निर्गमनद्वारे श्रमण्यो न वसति भवन्ति तत्र वस्तव्य इति । + + + "जहा तस्स रायपुत्तस्स वेज्जेहिं अनगा अपत्थियत्ति काउ पडिसिद्धा, तहा भगवयाऽवि साहूण अबंभपडिसेवा इह परत्थ य अपत्थियत्ति काउ पडिसिद्धा, तप्परिहरणे वा ओअ इत्थीपसुपंडगसंसत्ताए वसहीए सजयखेत्ते अ ण ठायव ॥" एतावता साधुभिः साध्वीभिः समं न विहर्त्तव्यम्, यत्र च साधवः साध्वीः प्रतिक्षेत्रान्तर नयन्ति, तत्राऽपि अमी एव नयन्ति, नाऽन्ये । यदुक्तं, पञ्चानां=आचार्योपाध्यायप्रवर्त्तकस्थविरगणावच्छेदकाना एकतरः सयती नयति, ताश्च स्त्रीसार्थेन सम संविग्नेन परिणतवयसा नेतव्या । इति बृहत्कल्पभाष्ये चतुर्थोद्देशके ॥ ३ ॥

गणधरस्य एव साध्वीना क्षेत्रान्तरनयने अधिकारः, तत्प्रकारश्च निशीथभाष्यचूर्णौ अष्टमोद्देशके जीतकल्पे च प्रोक्त—"जया खेत्ताओ खेत्त संजतीओ सचारिज्जति तदा निब्भए निरावाहे साहू पुरओ ठिआ, ताओ मग्गओ पट्ठिआ आगच्छति, भयाइ कारणे पुण साधूना पुरओ मग्गओ संजतीतो सचारिज्जंति, तया निब्भए निरावाहे साहू पुरओ ठिआ ताओ य मग्गओ पट्ठिआ आगच्छति, भयाइकारणे पुण साधूण पुरओ मग्गओ पक्खापक्खियं वा समतओ वा ठिआ गच्छति, "णिपच्च गाहा" सजतीण सबंधिणो जे संजया तेहिं सहिओ गणधरो अप्पबितिओ अप्पततिओ वा निपच्चवाए णेति सपच्चवाए सत्थेण समं णेति, जो वा संजओ सहस्सजोधाती सत्थे वा कयकरणो तेण सहिओ णेति, "उभयट्ठा० गाहा" एगे आयरिआ भणति पुरओ वि ठिआ संयतीतो गच्छति, किं कारणम्? आह, काइअसण्णाणिसेठ्ठसंजयं मा वइणीए लहिति सोववइणि तम्हा पुरओ गच्छतु त ण

जुञ्जति कम्हा ? तासिं अविणओ भण्णति 'लोगविरुद्ध च' तम्हा उभय जयणाए कारेज्जा, का जयणा ? जत्थ एगो काइ-असण्ण वोसिरति, तत्थ सव्वेपि चिट्ठति, ततो ( सजइओ ) वि चिट्ठते दट्ठु मग्गतो चेव चिट्ठति, ताओ वि पिट्ठओ सरीरचिंत करेंति एव दोसा न भवंति" इत्यादि ।

साध्वीनां क्षेत्रान्तरनेता गणधरश्च ईदृग् पृष्यते—

"पिअधम्मे दढधम्मे, संविग्गोऽवज्जओअतेजस्सी । सगहुवग्गह कुसलो, सुत्तत्थविऊ गणाहिवई ॥ १ ॥"

व्याख्या—"पिअधम्मो०" प्रिय इष्टो धर्मः श्रुतचारित्ररूपो यस्य स प्रियधर्मः, यस्तु तस्मिन् एव धर्मे दृढो द्रव्यक्षेत्राद्यापद्युदयेऽपि निश्चलः स दृढधर्मो राजदन्तादिवत् दृढशब्दस्य पूर्वनिपातः, संविग्नो द्विधा—द्रव्यतो भावतश्च, तत्र द्रव्यतो मृगः सदैव त्रस्तमानसत्वात्, भावतो यः ससारभयोद्विग्नः पूर्वरात्रापररात्रकाले संप्रेक्षते—'किं मया कृत ?, किं वा कर्तव्यशेष ?, किं वा शक्यमपि तपःकर्मादिक किं अह न करोमि ?' इत्यादि, "वज्जित्ति" अकारप्रश्लेषाद् अवद्य=पाप, सूचनात् सूत्रं इति कृत्वा तद्भीरुः अवद्यभीरुः, ओजः तेजश्च उभयमपि वक्ष्यमाणलक्षण तद् विद्यते यस्य स ओजस्वी तेजस्वी चेति, 'सग्रहो' द्रव्यतो वस्त्रादिभिः भावतः सूत्रार्थाभ्या, 'उपग्रहो' द्रव्यत औषधादिभिः, भावतो ज्ञानादिभिः, एतयोः संयतिविषययोः सग्रहोपग्रहयोः कुशलः, तथा 'सूत्रार्थविद्' गीतार्थः, एष एवविधो गणधराधिपतिः आर्यिकाणा गणधरः स्थापनीयः । अथ ओजस्वी इति व्याचष्टे—

"जे भिक्खू सगणच्चिआए परगणच्चियाए निग्गंथीए सम गामाणुगाम दूइज्जमाणे पुरओ गच्छमाणे पिट्ठओ रीअमाणे ओहयमणसकप्पे चिंतासोगसागरं सपविट्ठो करयलपल्हत्थमुहे अट्टज्झाणोवगए विहार करेइ जाव करेंतं वा साइज्जति जाव त सेवमाणे आवज्जति चाउम्मासिअ परिहारट्ठाण' अणुग्घइय" इति ॥ १ ॥

अत्रेद तात्पर्यम्-श्रीस्थानाङ्गवृत्त्यभिप्रायेण साधूना स्त्रीभिः समं विहारो निषिद्धः, तथा निशीथभाष्याभिप्रायेण साधूना स्त्रीभिः समं चतुर्भङ्ग्याऽपि विहारो न्यषेधि, करणे तु बहवो दोषा प्रतिपादिताः, ग्लानादिनिमित्ते ताभिः सम विहारविधिः उक्तः, स तु कारणिकः, अपवादपद उत्सर्गपदे स्थाप्यमान तु उत्सूत्राय भवतीति । तथा श्रीबृहत्कल्पभाष्यवचनमाश्रित्य तु-श्रीआचार्योपाध्यायप्रवर्तकस्थविरगणावच्छेदकाना बहुश्रुतानां परिणतवयस्काना संविग्नाना अन्यतरः कोऽपि स्त्रीसम्बन्धिसार्थयोगेन साध्वीः क्षेत्रान्तरे नयति, तत्राऽपि आचार्यैः संवेगी निर्विकारो भ्रात्रादिः सहस्रयोधिशस्त्रकलाकुशलो द्वित्रिसाधुसमन्वितो विलोक्यते नाऽन्यः, एतादृशः पूर्वोक्तनिशीथभाष्यबृहत्कल्पविधिना साध्वीः क्षेत्रान्तरे प्रापयति न यादृशः तादृशः, अतोऽत्र इदं आकूतम्—सामान्यसाधूनां तु साध्वीनां क्षेत्रान्तरे प्रापण निषिद्ध, आचार्यादिपञ्चक प्रापयति तत्र तु कारणं उक्त, तथा पुनः साध्वीभिः सम विहारनिषेधसूत्र तु स्पष्टमेव पूर्वं उपदिष्टमस्ति, तथा लोकविरुद्धश्चायम्—ताभिः सम विहार' ये केऽपि पश्यन्ति तेऽपि निन्दन्ति—अहो ब्रह्मचर्यधारिणोऽमी योगियोगिनीवत् ये वनिताभि' विरहिता दिनमपि स्थातुं न शक्नुवन्ति । अपरं च तेषामपि मध्ये केचिद्भुक्तभोगाः, केचिदभुक्तभोगा', केचिद्युवानः, ततस्तेषां वा दृष्ट्वा कथं चेतोवृत्तो कन्दर्पकेलिकेलयो जलधिजलवेला इव प्रसरन्त्यो वारयन्ते, तदनिवारणेन कदाचित्कथंचित्

शीलव्रतभङ्गे द्वयोरपि बोधिबीजनाशः स्यात्। यदुक्तम्—"चेइयदव्वविणासे, १ रिसिघाए पवयणस्स उड्डाहे। संजइ च उत्थभंगे, मूलग्गीबोहिलाभस्स ॥ १ ॥" इत्यादि, न च सर्वेऽपि साम्प्रतीकाः साधवः श्रीस्थूलभद्रस्वामिसधर्माणः सन्ति, तत्समयेऽपि तत्समतां न केऽपि सिंहगुहावासितत्सतीर्थ्यसाधुप्रमुखा लेभिरे, ततः सम्प्रति तथाविधाः कथं भवेयुः ?, ततस्तासां सङ्गतिः एव असङ्गता ओतोः इवाऽऽखूनाम्। यदुक्तं श्रीउत्तराध्ययनसूत्रे ३२ अध्ययने ( ६२५ पत्रे )—

"जहा विरालावसहस्स मूले, न मूसगाणं वसही पसत्था। एमेव इत्थीनिलयस्स मज्झे, न बंभयारिस्स खमो निवासो" ॥ १२ ॥ इत्यादि ॥७॥ तत आधुनिकसाधुभिः साध्वीभिः समं विशेषतो विहारो न कार्यः, जिनाज्ञाभङ्गात्। तत्प्रसङ्गेन महानन्र्थकोटिप्रादुर्भावाच्च ॥

ननु—तपागच्छे साम्प्रतं किमिति साध्वीभिः समं साधवो विहारं कुर्वन्ति ? उच्यते—सिद्धान्तादिषु निष्कारणं प्रकटं निषेधे अपि, तपागच्छीयश्रीविजयचन्द्रसूरिणा एकादशनवीनाऽऽचरणासु साध्वीभिः समं साधूनां विहारस्य स्थापितत्वात्, यदुक्तं तपागच्छीयप्रबन्धे, तथाहि—

"श्रीजगच्चन्द्रसूरिणा वीजापुरे सं० १२८५ 'तपा' इति नाम लब्धं द्वादशवर्षाचाम्लकरणेन, तच्छिष्यौ श्रीदेवेन्द्रसूरि १ श्रीविजयचन्द्रसूरी २ तत्र प्रथमो देवेन्द्रसूरिः तत्पट्टे स्थापितः, द्वितीयस्तु आचार्यत्वेन गच्छप्रवर्तकः तदनु ॥ श्रीदेवेन्द्रसूरौ मालवकं गते, गूर्जरधरित्र्यां विजयचन्द्रसूरिणा सर्वगच्छावर्जनार्थं निर्विकृतिकप्रत्याख्याने निर्विकृतिकग्रहणम् १, साधुभिः समं साध्वीविहारस्थापनं २, तत्कालीनोष्णोदकग्रहणं ३, साधुसाध्वीनां वस्त्रपोट्टिकाप्रदानम् ४, हरितफल-

सप्तम्यद्वितीयव्याख्याने, बहुदिवससम्भृतगोधूममण्डकं व्याख्यातं, ततः पर्युषितद्विदलपर्युषितगोधूममण्डकयोः द्वयोरपि ग्रहणं स्वय अङ्गीकरणेन भगवता साधूनामपि अनुज्ञातम्। एवमाचाराङ्गचूर्णा अपि, तथाहि–'सुचिते णाम कुसणि त असूचितं भत्त, सीतपिंडो–वासी तवकूरो पुराणकुम्मासो वि पज्जुसिअकुम्मासो अदु बक्कस पुलाग वा उद्दे पिंडे अलद्धए दविए, पक्तो पुराणवण्णवक्कसं पुराणसतुगा च पुराणगोरसो वा पुराणगोधूममण्डको वा, पुलाग णाम अवयवो निप्फावादि, उभेवि पज्जत्ते, दविओ नाम न राग गच्छति" इत्यादि, अत्राऽपि पर्युषितद्विदलगोधूमयोः ग्रहण व्याख्यात ॥ २ ॥

न च वाच्यं, श्रीमहावीरदेवस्य लोकातीतमार्गत्वात् भवतु नाम पर्युषितद्विदलादिग्रहण, पर विधिवादेन साधुभि अपि कुत्राऽपि तग्रहण व्यधायि ! उच्यते–श्रीऔपपातिकप्रथमोपाङ्ग ( ३९ पत्रे ) बाह्यतपोऽधिकारे श्रीमहावीरशिष्यसाधुभिः तग्रहण कृतं, तथाहि–

'तेणं कालेण इत्यादि, तावत्, अन्नगिलायए' ततश्च–"अरसाहारे विरसाहारे अताहारे पताहारे लुहाहारे सेत रस परिचाए' इत्यादि ॥"

व्याख्या–'अन्नगिलाय'त्ति अन्न–भोजन विना ग्लायति, अन्नग्लायकः, स च अभिग्रहविशेषात् प्रातरेव दोपात् न "अरसाहारे"त्ति भुगिति इत्यादि, "अरसो" हिंग्वादिभिः असस्कृतः आहारो यस्य स तथा, "विरसाहारे"त्ति विगतरसः पुराणधान्यौदनादिः "अताहारे"त्ति, अन्ते भवं अन्त्य=जघन्यधान्यं वल्लादि "पताहारे"त्ति, प्रकर्षेण अन्त्यं वल्लाद्येव भुक्तावशेष पर्युषितं वा 'लूहाहारेत्ति रूक्ष–रूक्षस्वभाव', इत्यादि, अत्रापि पताहारव्याख्याने पर्युषितवल्लादिग्रहण साधूनामपि अनुज्ञात-

मेव ॥३॥ एव सूत्रकृताङ्गेऽपि क्रियास्थानकाधिकारे साधुवर्णके ( २३३ पत्रे ), तथाहि–"अदुत्तर च ण उक्खित्तचरगा × × अतचरगा पतचरगा × × अताहारा पताहारा अरसाहारा विरसाहारा लूहाहारा तुच्छाहारा अतजीवी पतजीवी" इत्यादि ॥४॥

तथा स्थानाङ्गेऽपि पञ्चमस्थानके प्रथमोद्देशके साधूनां अभिग्रहाधिकारे ( २९६ पत्रे ), तथाहि–

"पच ठाणाइं समणाण जाव अब्भणुन्नायाइ भवति, त जहा उक्खित्तचरते निक्खित्तचरते अतचरते पतचरते लूहचरते" व्याख्या–इतश्च साधुधर्मभेदस्य बाह्यतपोविशेषस्य वृत्तिसंक्षेपाभिधानस्य भेदाः 'उक्खित्तचरए' इत्यादिना अभिधीयन्ते, तत्र उत्क्षिप्त स्वप्रयोजनाय पाकभाजनात् उद्धृत तदर्थं अभिग्रहविशेषात् चरति–तद्गवेषणाय गच्छति इति उत्क्षिप्तचरकः १, एव सर्वत्र, नवर निक्षिप्त=अनुद्धृत २, अन्ते भव आन्त=भुक्तावशेषं वल्लादि ३, प्रकृष्टं आन्त=प्रान्त तदेव पर्युषित ४, रूक्ष=नि स्नेह इति ५, इह च भावप्रत्ययप्रधानत्वेन उत्क्षिप्तचरकत्व इत्यादि द्रष्टव्य, एव उत्तरत्राऽपि भावप्रधानता दृश्या, इह च आद्यौ भावाभिग्रहौ इतरे द्रव्याभिग्रहाः, अत्राऽपि प्रान्तशब्देन पर्युषितवल्लादि व्याख्यातम् ॥ ५ ॥

पुनरपि श्रीस्थानाङ्गे चतुर्थस्थानके द्वितीयोद्देशके ( २१९ पत्रे ), तथाहि–

"चउव्विहे आहारे पन्नत्ते तजहा–उवक्खरसपन्ने १, उवक्खडसपन्ने २, सभावसपन्ने ३, परिजुसियसपन्ने ४" व्याख्या–उपस्क्रियते अनेन इति उपस्करो हिङ्ग्वादिः, तेन सपन्नो युक्त उपस्करसपन्न तथा उपस्करण उपस्कृत=पाक इत्यर्थः, तेन सपन्न ओदनमण्डकादि उपस्कृतसपन्नः पाठान्तरेण नो उपस्करसपन्नो–हिङ्ग्वादिभि असस्कृत ओदनादिः, स्वभावेन–पाक विना सपन्नः–सिद्धो द्राक्षादिः स्वभावसपन्नः, 'परिजुसिय'त्ति पर्युषित=रात्रिपरिवसन तेन सपन्नः पर्युषितसपन्नः

सशब्दद्वितीयव्याख्याने, बहुदिवससम्भृतगोधूममण्डकं व्याख्यातं, ततः पर्युषितद्विदलपर्युषितगोधूममण्डकयोः द्वयोरपि ग्रहणं स्वयं अङ्गीकरणेन भगवता साधूनामपि अनुज्ञातम् । एवमाचाराङ्गचूर्णौ अपि, तथाहि–'सुचिते णाम कुम्राणि व असूचित भक्त, सीतपिंडो–वासी ततकूरो पुराणकुम्मासो वि पज्जुसिअकुम्मासो अदु चक्कस पुलाग वा उद्धे पिंडे अलद्धए दविए, एक्कतो पुराणधण्णधक्कस पुराणसतुगा च पुराणगोरसो वा पुराणगोधूममण्डको वा, पुलाग णाम अनयणो निष्फावादि, उद्धेवि पज्जसे, दविओ नाम न राग गच्छति" इत्यादि, अत्राऽपि पर्युषितद्विदलगोधूमयो ग्रहण व्याख्यात ॥ २ ॥

न च वाच्यं, श्रीमहावीरदेवस्य लोकातीतमार्गत्वात् भवतु नाम पर्युषितद्विदलादिग्रहण, पर विधिनादेन साधुभि अपि कुत्राऽपि तद्ग्रहण व्यधायि ? उच्यते–श्रीऔपपातिकप्रथमोपाङ्गे ( ३९ पत्रे ) बाह्यतपोऽधिकारे श्रीमहावीरशिष्यसाधुभिः तद्ग्रहण कृतं, तथाहि–

'तेणं कालेण'इत्यादि, यावत्, अन्नगिलायए' ततश्च–"अरसाहारे विरसाहारे अंताहारे पंताहारे लूहाहारे सेत रस परिवाए' इत्यादि ॥"

व्याख्या–'अन्नगिलाय'त्ति अन्न–भोजन विना ग्लायति, अन्नग्लायकः, स च अभिग्रहविशेषात् प्रातरेव दोषात् न "अरसाहारे"त्ति भुंगिति इत्यावि, "अरसो" हिंग्वादिभिः असंस्कृतः आहारो यस्य स तथा, "विरसाहारे"त्ति विगतरसः पुराणधान्यौदनादिः "अंताहारे"त्ति, अन्ते भव अन्त्य=अधम्यधान्यं वल्लादि "पंताहारे"त्ति, प्रकर्षेण अन्त्यं वल्लाद्येव भुक्तावशेषं पर्युषितं वा 'लूहाहारेत्ति रूक्ष–रूक्षस्वभाव', इत्यादि, अत्रापि पंताहारव्याख्याने पर्युषितवल्लादिग्रहण साधूनामपि अनुज्ञात-

मेव ॥३॥ एव सूत्रकृताङ्गेऽपि क्रियास्थानकाधिकारे साधुवर्णके ( ३३३ पत्रे ), तथाहि—"अदुत्तर च ण उक्खित्तचरगा × × अतचरगा पंतचरगा × × अताहारा पताहारा अरसाहारा विरसाहारा लूहाहारा तुच्छाहारा अतजीवी पतजीवी" इत्यादि ॥४॥

तथा स्थानाङ्गेऽपि पञ्चमस्थानके प्रथमोद्देशके साधूना अभिग्रहाधिकारे ( २९६ पत्रे ), तथाहि—

"पच ठाणाइं समणाण जाव अब्भणुन्नायाइ भवति, त जहा उक्खित्तचरते निक्खित्तचरते अतचरते पतचरते लूहचरते" व्याख्या—इतश्च साधुधर्मभेदस्य बाह्यतपोविशेषस्य वृत्तिसक्षेपाभिधानस्य भेदाः 'उक्खित्तचरए' इत्यादिना अभिधीयन्ते, तत्र उत्क्षिप्त स्वप्रयोजनाय पाकभाजनात् उद्धृत तदर्थं अभिग्रहविशेषात् चरति—तद्गवेषणाय गच्छति इति उत्क्षिप्तचरक १, एव सर्वत्र, नवर निक्षिप्त=अनुद्धृत २, अन्ते भव आन्त=भुक्तावशेष वल्लादि ३, प्रकृष्ट आन्त=प्रान्त तदेव पर्युषित ४, रूक्ष=नि स्नेह इति ५, इह च भावप्रत्ययप्रधानत्वेन उत्क्षिप्तचरकत्व इत्यादि द्रष्टव्य, एव उत्तरत्राऽपि भावप्रधानता दृश्या, इह च आद्यौ भावाभिग्रहौ इतरे द्रव्याभिग्रहा, अत्राऽपि प्रान्तशब्देन पर्युषितवल्लादि व्याख्यातम् ॥ ५ ॥

पुनरपि श्रीस्थानाङ्गे चतुर्थस्थानके द्वितीयोद्देशके ( २१९ पत्रे ), तथाहि—

"चउव्विहे आहारे पन्नत्ते तजहा—उवक्खरसपन्ने १, उवक्खडसपन्ने २, समावसपन्ने ३, परिजुसियसपन्ने ४" व्याख्या—उपस्क्रियते अनेन इति उपस्करो हिङ्ग्वादि, तेन सपन्नो युक्तः उपस्करसपन्नः तथा उपस्करण उपस्कृत=पाक इत्यर्थ, तेन सपन्न ओदनमण्डकादि उपस्कृतसपन्न पाठान्तरेण नो उपस्करसपन्नो—हिङ्ग्वादिभिः असस्कृत ओदनादि, स्वभावेन—पाक विना सपन्नः—सिद्धो द्राक्षादिः स्वभावसपन्नः, 'परिजुसिय'त्ति पर्युषित=रात्रिपरिवसन तेन सपन्न पर्युषितसपन्नः

इक्षुरिकादिः, यतः ताः पर्युषितकल्नीकृताः अम्लरसाः भवन्ति, आरनालस्थितआम्रफलादि वा इति, अत्राऽपि पर्युषितशब्दस्य तथैव अर्थव्याख्यानात् ॥ ६ ॥ एवं ओघनिर्युक्तिसूत्रवृत्त्योः अपि ( ६७ पत्रे ), तथाहि–

"खित्त तिहा करेत्ता, दोसीणे नीणिअमि अ भयंति। अन्नो लद्धो बहुओ, थोव दे मा य रूसेज्जा ॥१४५॥ अहव ण दोसीणं चिय, जायामो देहि दहि घयं खीरं। खीरे घयगुडपेज्जा, थोव थोवं च सव्वत्थ ॥१४६॥" व्याख्या–क्षेत्रं त्रिधा कृत्वा त्रिभिः भागैः विभज्य एको विभागः प्रत्युषसि एव हिण्ड्यते, अपरो मध्याह्ने हिण्ड्यते, अपरो ( अन्त्यो ) अपराह्ने, एवं ते भिक्षां अटन्ति, 'दोसीणे नीणियमि य भयंति' 'दोसीणे' पर्युषिते आहारे निस्सारिते सति वदन्ति–'अण्णो लद्धो बहुओ' अन्य आहारो लब्धः प्रचुरः ततश्च 'थोव दे'त्ति स्तोकं ददस्व–स्वल्पं प्रयच्छ, 'मा य रूसेज्ज'त्ति मा वा रोषं ग्रहीष्यसि अनादरजनितम्, एतच्चाऽसौ परीक्षार्थं करोति, किं अयं लोको दानशीलो न वा ? इति, अत्राऽपि 'दोसीण'पदव्याख्याने पर्युषिताहारग्रहणं अनुमतं ॥७॥ पुनरपि ओघनिर्युक्तिं तत्र वृत्तिपाठं पर्युषितद्विदला-ऽऽहारग्रहणसमूचकं ( १८७ पत्रे ) तथाहि–

"अंतंत भोक्खामि–त्ति वेसए भुंजए य तह चेव। एस ससारणिविट्ठो, ससारओ उट्ठिओ साहू ॥ ५७१ ॥" व्याख्या–इदानीं ससारः कदाचिद् भोजनार्थं उपविशन् भवति कदाचिद् उपविष्टः कदाचिद् उत्थितः, एतत् प्रदर्शनाय आह–'अतंतं' अन्त्य–प्रत्यवरं वल्लचणकादि तदपि अन्त्य पर्युषितं चणकादि अन्त्य अपि अन्त्यं अन्त्यान्त्यं भक्षयिष्यामि इति, एवंविधेन परिणामेन उपविष्टो मण्डल्यां भुङ्क्ते यः सयैव एष साधुः शुभपरिणामत्वात् ससार उपविष्टः ससारश्च उत्थितः तस्य शुभपरिणामस्य अप्रतिपतितत्वात्, एवमेव भङ्गत्रितयं योजनीय, तत्र प्रथमो भङ्गः ससारो निविट्ठो ससारो उट्ठिओ १

ससारो निविट्ठो असारो उट्ठिओ बिइओ भगो २ असारो निविट्ठो ससारो उट्ठिओ तइओ भंगो ३ असारो निविट्ठो असारो उट्ठिओ एस चउत्थो भंगो ४ सारश्चाऽत्र ज्ञानादि, आदिग्रहणाद् दर्शन चारित्र चेति तेन ज्ञानादिना सहितो य साधुः स ससारो भण्यते इत्यादि ॥ ८ ॥

एव प्रश्नव्याकरणे प्रथमसवरद्वारे ( १०० पत्रे ) "अतचरएहिं" इत्यादि-व्याख्या-अन्त=वल्लचणकादि, प्रान्त-तदेव भुक्तावशेषं पर्युषित वा ॥ ९ ॥

ननु-यथा विधिवादेन पर्युषितद्विदलादिकग्रहण दृश्यते तथा चरितानुवादेनाऽपि क्वाऽपि अस्ति? उच्यते-अस्तीति, श्रीभगवतीसूत्रे नवमशतके त्रयस्त्रिंशत्तमोद्देशके ( ४८४ पत्रे ), तथाहि-जमालिना पर्युषितद्विदलवल्लचणकादिग्रहणात्, तथाहि-"तते णं तस्स जमालिस्स अणगारस्स तेहिं अरसेहि" इत्यादि। "अरसेहि अ"त्ति हिङ्ग्वादिभि· असंस्कृतत्वात् अविद्यमानरसैः, 'विरसेहि य'त्ति-पुराणत्वात् विगतरसै , 'अतेहि य'त्ति अरसतया सर्वधान्यान्तवर्त्तिभि वल्लचणकादिभि , 'पतेहिअ'त्ति तैरेव भुक्तावशेषत्वेन पर्युषितत्वेन वा प्रकर्षेण अन्तवर्त्तित्वात् प्रान्ते , ॥ १० ॥ तथैव ज्ञाताधर्मकथाया पञ्चमाध्ययने (१११ पत्रे) सेलकाचार्यैरपि शैथिल्यावस्थायाः प्रागपि तद्ग्रहणात् तथाहि-"तते णं तस्स सेलगस्स रायरिसिस्स तेहिं अंतेहि य पंतेहि य तुच्छेहि य" इत्यादि-व्याख्या-'अतेहि य'त्ति इत्यादि अन्तैः=वल्लचणकादिभि , प्रान्तै-तैरेव भुक्तावशेषैः पर्युषितैः वा इत्यादि ॥ ११ ॥

ननु–तपागच्छीया आधुनिकाः पर्युषितवल्लचणकपूपिकादीना ग्रहण श्रीआचाराङ्ग–सूत्रकृताङ्ग–स्थानाङ्ग–भगवती–ज्ञाताधर्मकथा–औपपातिक–ओघनिर्युक्त्यादिसूत्रवृत्तिषु साक्षाद्भगवताऽनुज्ञातमपि निषेधयन्तो दृश्यन्ते, पर तद्गच्छीयमाकन्सूरिकृतग्रन्थेऽपि निषेधोऽस्ति न वा ? उच्यते–निषेधो दूरे तिष्ठतु, प्रत्युत तद्ग्रहण अनुज्ञातमस्ति, यदुक्त तपागच्छीयरत्नशेखरसूरिभिः पञ्चविंशत्यधिकपञ्चदशशतवर्षे १५०६ कृताया श्रीश्राद्धप्रतिक्रमणवृत्तौ विधिकौमुदीनाम्न्या चतुर्मासिकाभिग्रहाधिकारे श्रावकानधिकृत्य पर्युषितद्विदलपूपिकापर्पटवटकादि–शुष्कशीततन्दुलीयकादि–पत्रशाकदुम्परकखादिरिकखर्जूरद्राक्षाखण्डशुण्ठ्यादीना कुन्थुकुन्थ्वीलिकादिससक्तिसम्भवात् त्यागः, औषधादिविशेषकार्ये तु सम्यक् शोधनादियतनया एव तेषा ग्रहणमित्यादि, एतावता चातुर्मासिके पर्युषितद्विदलादीना निषेध वदता च आचार्येण शीतकालादौ तद् अप्रतिषेधात् तद्ग्रहण उक्तमेव । पुनर्विधिकौमुद्यामेव तपागच्छनायक–श्रीरत्नशेखरसूरिणा पर्युषितपूपिकानां निषेधो न कृत , किन्तु पर्युषितद्विदलपूपिकानिषेधः ? काकोक्तिः इय । तथाहि–

पर्युषितद्विदलपूपिकादि १ केवलजलराद्धकूरादि २ तथाऽन्यदपि सर्व कुथितान्न पर्युषितौदनपक्वान्नादि वा अभक्ष्यत्वेन वर्जनीयमिति, तन्निषेधश्च अस्माभिरपि सर्वैः क्रियते एव, को नाम कुथितान्नपर्युषितद्विदलपूपिकाः स्वीकरोति ? इति । ननु–ये च तपागच्छीयाः पर्युषितवल्लचणकमाषादिद्विदलाना पर्युषितगोधूममण्डकपूपिकादीना च ग्रहणनिषेध कुर्वन्ति, ते ? किं सूत्राक्षराणि दर्शयन्ति, किं वा स्वगच्छवृद्धपरम्परा वदन्ति ?, उच्यते–स्वगच्छपरम्परामेव, यदुक्त तपागच्छाचार्य–हीरविजयसूरिप्रसादीकृतप्रश्नोत्तरसमुच्चये नवमप्रश्ने ( ३९ पत्रे ), तथाहि–

"औपपातिकसूत्रे साधुवर्णनाधिकारे 'पताद्वारे' इत्यस्य वृत्तौ पर्युषित वल्लचणकादीनि इति व्याख्यातमस्ति, तथा च पर्युषितपूपिकाभक्षणादराणा खाद्यादीना तद्विषये दोषोद्घट्टनं कथ युक्तिमत्? इति प्रश्नः, तत्रोत्तर तत्र–"निष्पावचणकमाई अत पत च होइ वावन्न" इति बृहत्कल्पभाष्ये जिनकल्पिकाधिकारे, पतद्वृत्तौ च 'वावन्न'शब्देन विनष्टमिति व्याख्यातमस्ति, तत्त्व तु तत्त्वविद्वेद्यम्, आत्मना तु पर्युषितान्नग्रहणेऽविच्छिन्नवृद्धपरम्पराराधनं ससक्तिसद्भावे तद्दोषवर्जनं च गुणाय एव इति बोध्य ॥९॥" इत्याद्यक्षरैः श्रीहीरविजयसूरिभिरपि स्वगच्छीयसर्वगीतार्थसम्मततया वृद्धपरम्परैव प्रमाणीकृता नाऽन्यत् किमपि, तथा पुनस्तपागच्छीय–श्रीमुनिसुन्दरसूरिकृतषडावश्यकबालावबोधेऽपि "मज्जे महुम्मि मसम्मि नवणीयम्मि" इत्यादि गाथायां अभक्ष्यव्याख्यानाधिकारे चलितरसशब्देन कुथितान्नमेव व्याख्यात, न पर्युषितान्न । तथा च तत्पाठः–

"चलितरस जे कुहिअन्न १ चउवीस पहुरओ ओदनादिक २ सोळपहुर उपरं दही ३" इत्यादि ।

पुनरप्याह कश्चित्–ननु–रात्रिरक्षित प्रातर्वल्लचणकमाषादिद्विदल गोधूममण्डक च विनश्यति, ततश्चलितरसत्वेन अभक्ष्य भवेत्, कथकार सुविहितसाधुभिः गृह्यते ? उच्यते–सत्य, अत्राऽय परमार्थः, यदा यच्चलितरस ज्ञायते तदा तन्न ग्राह्यमेव, तत्राऽपि अयं निश्चयो नाऽस्ति, यद् रात्रिरक्षितं प्रातर्वल्लचणकादि गोधूममण्डकादि विनश्यते एव, तद्दिनसत्क नेति, उभययापि विरोधदर्शनात् कथं कदाचिच्छीतकालादौ रात्रिरक्षितमपि न विनश्यति ? कदाचित्तु उष्णकालादौ तद्दिनसत्कचक्षादि गोधूममण्डकादि तत्कालमपि कस्यापि सयोगे विनश्यत् दृश्यते । तत आत्मना गच्छे एषा सिद्धान्ताद्यक्ष

ननु–तपागच्छीया आधुनिकाः पर्युषितवल्लचणकपूपिकादीना ग्रहण श्रीआचाराङ्ग–सूत्रकृताङ्ग–स्थानाङ्ग–भगवती–ज्ञाताधर्मकथा–औपपातिक–ओघनिर्युक्त्यादिसूत्रवृत्तिषु साक्षाद्भगवताऽनुज्ञातमपि निषेधयन्तो दृश्यन्ते, पर तद्गच्छीयप्राक्तनसूरिकृतग्रन्थेऽपि निषेधोऽस्ति न वा ? उच्यते–निषेधो दूरे तिष्ठतु, प्रत्युत तद्ग्रहण अनुज्ञातमस्ति, यदुक्त तपागच्छीयरत्नशेखरसूरिभिः षडधिकपञ्चदशशतवर्षे १५०६ कृताया श्रीश्राद्धप्रतिक्रमणवृत्तौ विधिकौमुदीनाम्न्या चतुर्मासिकाभिग्रहाधिकारे श्रावकानधिकृत्य पर्युषितद्विदलपूपिकापर्पटवटकादि–शुष्कशीततन्दुलीयकादि–पत्रशाकतुम्बरकखादिरिकखर्जूरद्राक्षाखण्डशुण्ठ्यादीना कुन्थुकुन्थ्वीलिकादिससक्तिसम्भवात् त्यागः, औषधादिविशेषकार्ये तु सम्यक् शोधनादियतनया एव तेषा ग्रहणमित्यादि, एतावता चातुर्मासिके पर्युषितद्विदलादीना निषेध वदता च आचार्येण शीतकालादौ तद् अप्रतिषेधात् तद्ग्रहण उक्तमेव । पुनर्विधिकौमुद्यामेव तपागच्छनायक–श्रीरत्नशेखरसूरिणा पर्युषितपूपिकाना निषेधो न कृतः, किन्तु पर्युषितद्विदलपूपिकानिषेधः ? काकोक्तिः इय । तथाहि–

पर्युषितद्विदलपूपिकादि १ केवलजलराद्धकूरादि २ तथाऽन्यदपि सर्व कुथितान्न पर्युषितौदनपक्वान्नादि वा अभक्ष्यत्वेन वर्जनीयमिति, तन्निषेधश्च अस्माभिरपि सर्वैः क्रियते एव, को नाम कुथितान्नपर्युषितद्विदलपूपिकाः स्वीकरोति ? इति । ननु–ये च तपागच्छीयाः पर्युषितवल्लचणकमाषादिद्विदलाना पर्युषितगोधूममण्डकपूपिकादीना च ग्रहणनिषेध कुर्वन्ति, ते ? किं सूत्राक्षराणि दर्शयन्ति, किं वा स्वगच्छवृद्धपरम्परा वदन्ति ?, उच्यते–स्वगच्छपरम्परामेव, यदुक्त तपागच्छाचार्य–हीरविजयसूरिप्रसादीकृतप्रश्नोत्तरसमुच्चये नवमप्रश्ने ( ३९ पत्रे ), तथाहि–

वेसु पसत्थो जिणमए तह्वा जोगो । अट्ठमी पन्नरसीसुय, निअमेण हविज्ञ पोसहिओ ॥ १ ॥" पुनः तत्रैव "चउद्दसिअट्ठमि-पुण्णमासिणीसु पडिपुन्न पोसह सम्म अणुपालइ" इति ॥१५॥ कल्पसूत्रे (३५ पत्रे), यथा "नवमल्लई नवलेच्छई कासीकोसलगा अट्ठारस वि गणरायाणो अमावसाए पाराभोय पोसहोववास पट्ठविंसु" इति, पुनरपि श्रीवृहद्गच्छाधीश्वरश्रीसर्वदेवसूरिशिष्यविनयचन्द्रोपाध्यायशिष्यमुनिचन्द्रेण अब्धिमुनिरुद्र ११७४ वर्षे विरचिताया श्रीउपदेशपदवृत्त्या (५३ पत्रे) कृष्णपक्षो अमावास्यापर्यन्तः शुक्लपक्षश्च पौर्णमासीपर्यन्तः प्रोक्त, तथाहि-

"इह चन्द्रमासस्य द्वौ पक्षौ-तत्र आद्यः कृष्णो द्वितीयश्च शुक्लः, तत्र च कृष्णपक्षो अमावास्यापर्यन्तः शुक्लश्च पौर्णमासी परिनिष्ठितः । एव च अमावास्या पक्षसधितया व्यवह्रियते । पौर्णमासी च माससन्धितया, ततो अमावास्या इव सधिः अमावास्यासन्धिः, अग्रेतनपक्षात्यन्तसन्निधानलक्षण तस्मिन् सप्राप्त इति योग ॥ १७ ॥ इत्यादिसिद्धान्ताक्षरै पञ्चदश्या एव पक्षस्य पूर्त्तिप्रतिपादनात् पञ्चदश्यां एव पाक्षिकप्रतिक्रमण युक्त, प्रयोगश्च पञ्चदश्या एव पाक्षिकप्रतिक्रमण सम्पूर्ण पक्षत्वात्, यत्र न सम्पूर्ण पक्षः, तत्र न पाक्षिकप्रतिक्रमण, यथा द्वादश्या सपूर्णपक्षो न भवति, न अय अनुष्ण तेजोऽवयवी इत्यादिवत् प्रत्यक्षविरुद्धः, पञ्चदश्या एव पाक्षिकप्रतिक्रमणस्य आगमे दृश्यमानत्वात् नाऽस्ति सर्वज्ञ इत्यादिवत् पञ्चदश्यां पाक्षिकप्रतिक्रमण, अयं पक्षः आगमविरुद्धः नाऽस्ति इति उक्ते कोऽपि प्राह—अहो ! आगमविरुद्धोऽय पक्ष, यतः—आगमे चतुर्दश्या पाक्षिकशब्दस्य प्ररूपणात्, यतः श्रीव्यवहारवृत्तिकारः श्रीमलयगिरिः—पाक्षिक कृष्णचतुर्दशीरूप

लभमाणः चान्द्रो मास, एकपौर्णमासीपरावर्तनः चान्द्रो मास इति यावत् ॥ १० ॥ अथवा चन्द्रचारनिष्पन्नत्वाद् उपचारतो मासोऽपि चान्द्रः २, चः समुच्चये, दीर्घत्वं आर्षत्वात्, इत्थमेव श्रीसूर्यप्रज्ञप्त्या अपि चान्द्रमासप्ररूपणा ॥११॥ किं च पाक्षिकक्षामणकावसरे त्रिःकृत्वः कल्याणोदन्तप्रश्नेन पाक्षिकप्रतिक्रमण पञ्चदश्या एव सूचित, तदेवाऽऽह—"दिवसो पोसहो पक्खो वइक्कंतो अन्नो मे ! कल्लाणेण" इति, एतच्चूर्णिः—"पोसहो अट्ठमीचउद्दसीसु उववासकरणं" वृत्तिश्च ( यशोदेवकृता-वृ ७२ पत्रे ) दिवसो=दिनः, किंविधः ? पौषध=पर्वरूपः, तथा पक्षोऽर्धमासरूपो व्यतिक्रान्तोऽतिलङ्घित , अन्यच्च पक्ष इति वर्तते, 'मे' भवतां शुभेन=कल्याणेन युक्त इति गम्यते ॥१२॥ अत्राह कोऽपि स्थूलमति । ननु—उपवासादि पाक्षिककृत्य चतुर्दश्यामेव उक्तं, तद्बलेन च पाक्षिकप्रतिक्रमणमपि चतुर्दश्यामेव युज्यते ? मैवम्, तदभिप्रायापरिज्ञानात्, यतो दशाश्रुतस्कन्धसूत्रे पञ्चदशायाम्, तच्चूर्णौ च पाक्षिकशब्दस्य चतुर्दशीत पार्थक्येन भणनात्, तथाहि—

'पक्खिअपोसहिएसु समाहि पत्ताण ति' सूत्र । चूर्णिर्यथा—"पक्खिअ पक्खिअमेव पक्खिए पोसहो पक्खिअपोसहो वा चाउद्दसी अट्ठमीसु वा समाहिपत्ताण" । अत्र यदि 'पक्खिअ'शब्देन चतुर्दशी गृहीता अभविष्यत् तदा पार्थक्येन चतुर्दशीग्रहण नाऽकारिष्यत् व्यर्थत्वात्, तस्मात् 'पक्खिअ'शब्देन पञ्चदश्येव, तत्र पाक्षिके पौषध उपवासश्चतुर्दश्यामष्टम्या चेति ॥ १३ ॥ पुनर्व्यवहारसूत्रदशमोद्देशके, ( ४१ पत्रे ) तथाहि—"पक्खिअपोसहिएसु कारयति तव सय, करोति च । भिक्खायरिए तहा निज्जुजति परं सय वा वी ॥ २०८ ॥ व्याख्या—पाक्षिके अर्धमासपर्वणि पौषधिके च अष्टम्यादिषु पर्वसु परं तपः कारयति स्वयमपि करोति च ॥१४॥ एव आवश्यकचूर्णौ अपि, (उत्त० ३०४ पत्रे) तथाहि—"सव्वेसु कालप-

घेसु पसत्थो जिणमए तहा जोगो । अट्ठमी पन्नरसीसुय, निअमेण हविज्ज पोसहिओ ॥ १ ॥" पुन तत्रैव "चउद्दसिअट्ठमि-पुण्णमासिणीसु पडिपुन्न पोसह सम्म अणुपालइ" इति ॥१५॥ कल्पसूत्रे (२५ पत्रे), यथा "नवमल्लई नवलेच्छई कासीको-सलगा अट्ठारस वि गणरायाणो अमावसाए पाराभोय पोसहोववास पट्ठविंसु" इति, पुनरपि श्रीबृहद्गच्छाधीश्वरश्रीसर्वदेव-सूरिशिष्यविनयचन्द्रोपाध्यायशिष्यमुनिचन्द्रेण अब्धिमुनिरुद्र ११७४ वर्षे विरचिताया श्रीउपदेशपदवृत्त्या (५२ पत्रे) कृष्णपक्षो अमावास्यापर्यन्तः शुक्लपक्षश्च पौर्णमासीपर्यन्त प्रोक्तः, तथाहि–

"इह चन्द्रमासस्य द्वौ पक्षौ–तत्र आद्यः कृष्णो द्वितीयश्च शुक्लः, तत्र च कृष्णपक्षो अमावास्यापर्यन्त शुक्लश्च पौर्णमासी परिनिष्ठितः । एव च अमावास्या पक्षसधितया व्यवह्रियते । पौर्णमासी च माससन्धितया, ततो अमावास्या इव सधि अमावास्यासन्धिः, अग्रेतनपक्षात्यन्तसन्निधानलक्षण तस्मिन् सम्प्राप्त इति योग ॥ १७ ॥ इत्यादिसिद्धान्ताक्षरैः पञ्चदश्या एव पक्षस्य पूर्त्तिप्रतिपादनात् पञ्चदश्यां एव पाक्षिकप्रतिक्रमण युक्त, प्रयोगश्च पञ्चदश्या एव पाक्षिकप्रतिक्रमण सम्पूर्ण पक्षत्वात्, यत्र न सम्पूर्ण पक्ष, तत्र न पाक्षिकप्रतिक्रमण, यथा द्वादश्या सपूर्णपक्षो न भवति, न अय अनुष्ण तेजोऽव-यवी इत्यादिवत् प्रत्यक्षविरुद्धः, पञ्चदश्या एव पाक्षिकप्रतिक्रमणस्य आगमे दृश्यमानत्वात् नाऽस्ति सर्वज्ञ इत्यादिवत् पञ्चदश्या पाक्षिकप्रतिक्रमणं, अय पक्षः आगमविरुद्धः नाऽस्ति इति उक्ते कोऽपि प्राह—अहो ! आगमविरुद्धोऽय पक्षः, यतः–आगमे चतुर्दश्या पाक्षिकशब्दस्य प्ररूपणात्, यत श्रीव्यवहारवृत्तिकार श्रीमलयगिरिः–पाक्षिक कृष्णचतुर्दशीरूप

प्रोक्तवान्, नैव, सम्यग् परिज्ञानाभावात्, तथाहि—न तत्र पाक्षिकप्रतिक्रमणाधिकार किन्तु विद्यासाधनविचार एव, तथाहि–( पञ्चविभागे ४५ पत्रे )

"विज्जाणं परिवाडी, पव्वे पव्वे य दिंति ( देंति ) आयरिया। मासद्धमासिआण, पव्वं पुण होइ मज्झ तु ॥२५१॥ पक्खस्स अट्ठमी खलु, मासस्स य पक्खिअं मुणेयव्वं। अन्नपि होइ पव्वं, उवरागो चंदसूराण ॥२५२॥" व्याख्या–आचार्या पर्वणि पर्वणि विद्याना परिपाटीः ददति, विद्याः परावर्तन्ते इति भावः, अथ पर्व किमुच्यते ? तत् आह–मासार्धमासयोः मध्य पुन पर्व भवति, एतदेवाऽऽह–अर्धमासस्य पक्षात्मकस्य मध्य अष्टमी सा खलु पर्व, मासस्य मध्य पाक्षिक पक्षेण निर्वृत्त ज्ञातव्य, तच्च कृष्णचतुर्दशीरूप अवसातव्यं, तत्र प्रायो विद्यासाधनोपचारभावात् "बहुलादिका मासा" इति वचनाच्च, न केवल एतदेव पर्व किन्तु अन्यदपि पर्व भवति, यत्र उपरागो ग्रहण चन्द्रसूर्ययोः, एतेषु च पर्वसु विद्यासाधनप्रवृत्तेः॥ २५१ ॥ २५२ ॥ १८ ॥ अत्र सूत्रकारेण चतुर्दश्या नामाऽपि न गृहीत। चूर्णिकारेण–'कण्हपक्खस्स चउद्दसीए विज्जासाहणोवयारो।' इत्यादिभिः अक्षरैः तच्च 'कृष्णचतुर्दशीरूपं' इत्याद्यक्षरैः वृत्तिकारेणाऽपि विद्यासाधन उक्त, न पाक्षिकप्रतिक्रमण, तच्च पाक्षिक कृष्णचतुर्दशीरूप प्रोक्त मलयगिरिणा तदभिप्रायं न जानीमः, तत कथ आगमविरोध ? अथ यदि कृष्णचतुर्दश्या एव पाक्षिक तदा एकस्या चतुर्दश्या पक्षो द्वितीयचतुर्दश्यां मासः, एव च कृते मासस्य मध्य पाक्षिक भवति, परन्तु पूर्वोक्तपक्षस्य मध्ये अष्टमी न भवति 'बहुलादिका मासा' इत्यपि विरुध्येत, किंच विशेषणं व्यवच्छेदक इति कृत्वा तव कृष्णचतुर्दशीरूपं, एतद्बलेन चतुर्दश्या पाक्षिक कुर्वाणेन मासे मासे पाक्षिकप्रतिक्रमणं कर्तव्यं भाद्रपदशुक्लपञ्चम्या एव पर्युषणाप्रतिक्रमण-

यत्, यथा पर्युषणाप्रतिक्रमणस्य सांवत्सरिकं नाम तथा पाक्षिकप्रतिक्रमणस्याऽपि मासिक इति नाम युक्तं परन्तु तथा न दृश्यते, तेन चतुर्दश्यां पाक्षिकप्रतिक्रमण इति वदता स्थाने स्थाने महान् विरोधः, तेन च पञ्चदश्या एव पाक्षिकप्रतिक्रमणं प्रतिपत्तव्य, येन न सिद्धान्तादिशास्त्रैः सम विरोधः, अन्यथा पदे पदे विरोधो भावी, तथा आलोचनाऽपि च पञ्चदश्यां न निषिद्धा, यदुक्त व्यवहारभाष्ये–( द्वितीयविभागे ४० पत्रे )

"पडिकुट्ठेल्लगदिवसे, वज्जेज्जा अट्ठमिं च नवमिं च। छट्ठिं च चउत्थिं च बारसिं दुण्णपि पक्खाण ॥ भा० १२६॥" एतेन ये वदन्ति अमावस्या न आलोचना दीयते तदपास्त, तथा कोऽपि प्राह–अमावास्या आलोचना निषिद्धा, कथ अगृहीतालोचनाना तत्र पाक्षिकप्रतिक्रमणं घटते ? इति चेत् तर्हि चतुर्दश्या अपि आलोचना निषिद्धा, यदुक्त श्रीआवश्यके–(४७१पत्रे) "चाउद्दसिं पण्णरसिं च वज्जिज्जा अट्ठमिं च नवमिं च। छट्ठिं च चउत्थिं बारसिं च दुण्हपि पक्खाण ॥ १ ॥" पर एतदालोचनान्तरं अपेक्ष्य भविष्यति, यदुक्त श्रीपर्युषणाकल्पे–'पक्खिआ आरोवणा' पक्षे पक्षे आलोचना ग्राह्या, तेन पञ्चदश्यामेव आलोचनां आदाय तत्रैव प्रतिक्रमण विधेय नाऽत्र कोऽपि दोषः, आवश्यकचूर्णौ (११२ पत्रे) तथा "ततो सागरचदो कमलामेला य सामिसगासे धम्म सोऊण गहिआणुव्वयाणि सावगाणि सवुत्ताणि, तओ सागरचदो अट्ठमीचउद्दसीसु सुण्णघरे सुसाणेसु वा एगराइअं पडिमं ठाइ" इत्याद्यनेकालापकैः नानासिद्धान्तोक्तैः अष्टम्या चतुर्दश्या उपवासादि कृत्य उक्तमस्ति, यदि तत्पाक्षिककृत्य इति कृत्वा चतुर्दश्यां पाक्षिकप्रतिक्रमण स्थाप्यन्ते तथा अष्टम्या अपि पाक्षिकप्रतिक्रमण कर्तव्य स्यात्, प्रयोगश्च अष्टम्यादि अपि पाक्षिकप्रतिक्रमणं तत्राऽपि पाक्षिककृत्यस्य क्रियमाणत्वात् यत्र यत्र पाक्षिककृत्य क्रियते तत्र तत्र पाक्षिक-

मोक्ष्वान्, नैवं, सम्यग् परिज्ञानाभावात्, तथाहि—न तत्र पाक्षिकप्रतिक्रमणाधिकार किन्तु विद्यासाधनविचार एव, तथाहि—( षष्ठविभागे ४५ पत्रे )

"विज्ञाणं परिवाडी, पवे पवे य दिंति ( देंति ) आयरिया। मासद्धमासिआण, पवं पुण होइ मज्झ तु ॥२५१॥ पक्खस्स अट्ठमी खलु, मासस्स य पक्खिअ मुणेयवं। अन्नपि होइ पव, उवरागो चदसूराणं॥२५२॥" व्याख्या—आचार्याः पर्वणि पर्वणि विद्याना परिपाटीः ददति, विद्याः परावर्तन्ते इति भावः, अथ पर्व किमुच्यते ? तत् आह—मासार्धमासयोः मध्य पुन पर्व भवति, एतदेवाऽऽह—अर्धमासस्य पक्षात्मकस्य मध्य अष्टमी सा खलु पर्व, मासस्य मध्य पाक्षिक पक्षेण निर्वृत्त ज्ञातव्य, तच्च कृष्णचतुर्दशीरूप अवसातव्यं, तत्र प्रायो विद्यासाधनोपचारभावात् "बहुलादिका मासा" इति वचनाच्च, न केवल एतदेव पर्व किन्तु अन्यदपि पर्व भवति, यत्र उपरागो ग्रहण चन्द्रसूर्ययो, एतेषु च पर्वसु विद्यासाधनप्रवृत्ते ॥२५१॥२५२॥१८॥ अत्र सूत्रकारेण चतुर्दश्या नामाऽपि न गृहीत। चूर्णिकारेण—'कण्हपक्खस्स चउद्दसीए विज्जासाहणोवयारो।' इत्यादिभि अक्षरैः तच्च 'कृष्णचतुर्दशीरूप' इत्याद्यक्षरैः वृत्तिकारेणाऽपि विद्यासाधन उक्त, न पाक्षिकप्रतिक्रमण, तच्च पाक्षिक कृष्णचतुर्दशीरूपं मोक्ष मलयगिरिणा तदभिप्राय न जानीमः, तत कथ आगमविरोध ? अथ यदि कृष्णचतुर्दश्या एव पाक्षिक तदा एकस्या चतुर्दश्यां पक्षो द्वितीयचतुर्दश्यां मासः, एव च कृते मासस्य मध्य पाक्षिक भवति, परन्तु पूर्वोक्तपक्षस्य मध्ये अष्टमी न भवति 'बहुलादिका मासा' इत्यपि विरुध्येत, किंच विशेषणं व्यवच्छेदक इति कृत्वा तच्च कृष्णचतुर्दशीरूपं, एतद्बलेन चतुर्दश्या पाक्षिकं कुर्वाणेन मासे मासे पाक्षिकप्रतिक्रमणं कर्तव्यं भाद्रपदशुक्लपञ्चम्या एव पर्युषणाप्रतिक्रमण-

पूआ तओ नाम, पयट्टो तत्थ ऊसवो" ॥ ८३ ॥ इति । पुन –'नयरम्मि धरावासे' इत्यादि कालिकाचार्यकथाया पद्रप-
श्चाशत्प्रमाणगाथाया अङ्काष्टयक्ष १३८९ वर्षे श्रीधर्मप्रभसूरिकृताया, तथाहि–

"आयरेणा वि हु पज्जो–सविअव तो निवो भणइ तुट्ठो । भयव ! अणुगाहिउ ह, ज महे अतेउरीण तु ॥ ४२ ॥
"पक्खोववासपारण–दिवसमि भत्तमेसणासुद्ध । साहूणुत्तरपारण–दिवसमि भविस्सए बहुअ ॥ ४३ ॥" इति ॥

ननु–यदि पञ्चदश्यां पाक्षिकप्रतिक्रमणं आसीत्, तदा कथ साम्प्रत चतुर्दश्या विधीयते ? उच्यते–श्रीकालिकाचार्यैः आचीर्णत्वात्, यदुक्त ठाणावृत्तौ श्रीहेमाचार्यगुरुश्रीदेवचन्द्रसूरिभिः । तथाहि–

"एव च कारणे ण कालगायरिएहिं चउत्थीए पज्जोसवण पवत्तिअ, समत्थसघेण य अणुमन्निअ, तव्वसेण य पक्खिअाईणि चउद्दसीए आयरियाणि, अन्नहा आगमुत्ताणि पुण्णिमाए'त्ति ।" एव श्रीकालिकाचार्यकथाया अतिजीर्णाया २६९ श्लोकमिताया अपि उक्त, तथाहि–

"राइणा भणिअ–जइ एव तो चउत्थीए भवतु, सूरिहिं भणिअ–एव होउ नत्थि अणत्थो सो भणिअमागमे "आयरेणा वि पज्जोसविअव"मिति तओ हरिसवसुफुल्ललोअणेण जपिअ राइणा भयव ! महापसाओ महतो अम्हाणमणुग्गहो जओ मम अतेउरिआण पक्खोववासपारणए साहूण उत्तरपारणय भविस्सइ, तओ गिहे गतूण समाइट्ठिवाओ अतेउरिआओ तुम्हाण ममावसाए उववासो होही पारणेअ साहूण उत्तरपारणय भविस्सइ, ता तत्थ अहा पवत्तेहिं भत्तपाणेहिं साहुणो पडिलामेह, जओ भणिअमागमे–"पहसतगिलाणमि अ, आगमगहणे अ लोअकरणे अ । उत्तर-

प्रतिक्रमण, यथा चतुर्दश्यां तथा यथा अष्टम्या न भवति तथा चतुर्दश्या अपि मा भवतु, किंच चतुर्दश्या पाक्षिकप्रतिक्रमण अङ्गीकुर्वता सूत्रोक्ता पूर्णिमा विहाय चतुर्मासिक अपि तत्र एव प्रतिक्रमणीय, यतः चतुर्मासिके अष्टौ पक्षा भवन्ति ते च तन्मते चतुर्दश्यां एव पूर्णतां अगच्छन्, पाक्षिकस्य तत्र एव करणत्वात्, अथ चतुर्मासिकसंबन्धी पक्ष प्रतिपद आरभ्यते पाक्षिकसंबन्धी तु अन्यत एव इति चेत् तर्हि कोऽयं अर्धजरतीन्याय ? तथा च सति महान् सूत्रविरोध तत्र इदृग् अर्थस्य अदर्शनात् न युक्त एव, ततश्च कृष्णाचतुर्दशीरूप इति चेत् तर्हि सकलमपि पूर्वोक्त दूषणकदम्बक तत्पश्चात् अनुधावति, किंच एवं चतुर्दश्या पाक्षिकप्रतिक्रमण कुर्वता पूर्णमास्या चतुर्मासिक आचरता चतुर्मासिकसंबन्धि तपो साध्यते स्थानाऽनवाप्ते पाक्षिकचतुर्मासिकयोः मध्य दिनाभावात्, ननु किमर्थं तद्दिन ईक्षते ? उच्यते—पाक्षिके चतुर्थस्य करणात्, चतुर्मासिके षष्ठसंभवात् मध्यं दिन अन्तरेण तच्च न घटते, तस्मात् युक्त्याऽपि पाक्षिक पञ्चदश्या एव युज्यते, पुनरपि प्रयोगो न चतुर्दश्या पाक्षिकप्रतिक्रमण अपूर्णपक्षत्वात्, यत्र यत्र असंपूर्णं पक्षत्वं तत्र तत्र न पाक्षिकप्रतिक्रमण यथा दशम्या, किंच श्रीकालिकाचार्यकथायां शतगाथाप्रमाणाया श्रीभावदेवसूरिकृताया पक्षोपवासपारणे साधूना अष्टमोत्तरपारणस्य प्रोक्तत्वात् पाक्षिक पर्व पञ्चदश्या एव आगत, तथाहि—

"मम अंतेवरी पक्खोववासपारणए अओ । साहूण फासुह भत्त, होही उत्तरपारणे ॥ ८१ ॥ एव पव्वं चउत्थीए, कय कालगसूरिणा । एअ पज्जोसवणाकप्प, समणसंघेण मन्निअं ॥ ८२ ॥ साहू पूआरओ लोओ, जाओ तप्पभिइ तओ । साहू

सारोद्धारसूत्रवृत्त्योः 'षट्त्रिंशदुत्तरशततमद्वारे ( २५५ पत्रे ) स्वकायपरकायशस्त्रोपहत प्रासुक जलं साधूना ग्रहणोचितं प्रत्यपादि, तथाहि–

"उसिणोदगं तिदंडु-क्कलिअ फासुअजल च जइ कप्प। नवरि गिलाणाइकए, पहरतिगोवरिवि धरिअव्वं ॥ ८८१ ॥
जायइ सचित्तया से, गिम्हम्मि पहरपचगस्सुवरिं ॥ चउपहरुवरिं ससिरे, वासासु पुणो तिपहरुवरिं ॥ ८८२ ॥

त्रिभिर्दण्डैः–उत्कालैः उत्कलित=आवृत्त यदुष्णोदक, तथा यत् प्रासुक स्वकायपरकायशस्त्रोपहतत्वेनाऽचित्तीभूत जल तदेव यतीना कल्प्य–ग्रहीतु उचित, इह किल प्रथमे दण्डे जायमाने कश्चित् परिणमति कश्चिन्न इति मिश्रः १, द्वितीये प्रभूतः परिणमति स्तोकोऽवतिष्ठते २, तृतीये तु सर्वोऽपि अप्कायोऽचित्ती भवतीति दण्डत्रयग्रहण, इद च सर्वमपि प्रहरत्रयमध्ये एव उपभोक्तव्य, प्रहरत्रयादूर्ध्वं पुन कालातिक्रान्तदोषसम्भवेन उपभोगानर्हत्वात् न धारणीय, नवर केवल ग्लानाधिकृते ग्लानवृद्धाना अर्थाय प्रहरत्रिकादपि ऊर्ध्वं धर्त्तव्य,–॥ ८८१ ॥ 'जायइ' इत्यादि गाहा। जायते=भवति सचित्तता 'से'त्ति, तस्य उष्णोदकस्य प्रासुकजलस्य वा ग्लानाद्यर्थं धृतस्य 'ग्रीष्मे' उष्णकाले प्रहरपञ्चकस्योपरि–प्रहरपञ्च–कादूर्ध्वं कालस्याऽतिरूक्षत्वात् चिरेण एव जीवससक्तिसद्भावात्, तथा शिशिरे=शीतकाले कालस्य स्निग्धत्वात् प्रहरचतु-ष्टयादूर्ध्वं सचित्तता भवति, "वर्षासु" वर्षाकाले पुनः कालस्याऽतिस्निग्धत्वात् प्रासुकीभूतमपि जल भूय प्रहरत्रयादूर्ध्वं सचित्तीभवति, तदूर्ध्वमपि यदि ध्रियते तदा क्षारः प्रक्षेपणीयः–सर्जिकादिकं क्षेप्तव्य, येन भूय' सचित्त न भवतीति ॥ ८८२ ॥ इति ॥ ४ ॥

पौषध्या ( १४८ पत्रे ) श्रीजिनप्रभसूरिभिः 'सुद्धविअड'त्ति, शुद्धविकट उष्णोदक १ वर्णान्तरादिप्राप्त शुद्धजल २ चेति, वर्णान्तरादिप्राप्तजलस्य प्राह्यत्वेन उक्तत्वात् । न च वाच्यं श्रीजिनप्रभसूरिभि कस्य ग्रन्थस्य सम्मत्या व्याख्येय व्यधायीति । श्रीकुलमण्डनसूरिकृतायां श्रीकल्पसूत्रावचूर्णौ तथैव व्याख्यानात्, तथाहि—

"वासावास पज्जोसविअस्स अट्ठमभत्तिअस्स भिक्खुस्स कप्पति तओ पाणगाइ पडिगाहित्तए, त जहा—आयामे वा १ सोवीरे वा २ सुद्धविअडे वा ३ । अत्र 'सुद्धविअड'त्ति, शुद्धविकट उष्णोदक १ वर्णान्तरादिप्राप्त शुद्धजल २ चेत्यादि ॥ १॥

एवमेव श्रीयतिदिनचर्यासूत्रवृत्त्योरपि ( ६५ पत्रे ) । तथाहि–

"गिण्हिज्ज आरनाल आंबिलधोवणतिदण्डउक्कलिअ । वण्णतराइपत्त, फासुअसलिलपि तदभावे॥ १०२ ॥ व्याख्या–पिडग्रहणसमये साधुः आरनाल=अवश्रावण गृह्णीयात् १ आम्बिल=काञ्जिक २ तन्दुलादिधावनजल ३ त्रिदण्डोत्कलित उष्णोदक ४ वर्णान्तरादिप्राप्त अन्यत् प्रासुकजलमपि ५ गृह्णीयादिति योगः, पर तदभावे–तस्य उष्णोदकस्याऽप्राप्तौ यदाहुः,–"उस्सेइम १ ससेइम २ तंदुल ३ तिल ४ तुस ५ जवोदगा ६ ऽऽयाम ७ । सोवीर ८ सुद्धविअड ९ अवड १० अवाडय ११ कविट्ठ १२ ॥ १ ॥ माउलिंग १३ दक्खा १४ दाडिम १५ खजूर १६ नालियर १७ कयर १८ वयरफल १९ । आमलय २० चिंचापाणगाइ २१ पढमगभणिआइ ॥ २ ॥

पुनः श्रीआचाराङ्गवृत्तौ शस्त्रपरिज्ञाऽध्ययने तृतीयोद्देशके ( ४२ पत्रे ), तथाहि—

अतो यद्बादरशस्त्रसम्पर्कात् परिणामान्तरापन्न वर्णादिभिः तत् अचित्त साधुपरिभोगाय कल्पते इति ॥ ३॥ एवं प्रवचन-

पुनः निशीथभाष्यचूर्णिर्यथा–'फासुअमुदग'ति जं वुत्तं तस्स इमा वक्खा–"तुवरे फले अ पत्ते रुक्खसिलो तुप्पमद्दणाईसु ।" इत्यादि । तुवरसद्दो रुक्खसद्दे संबज्झो तुवर'-वृक्षः, सो अ समूलपत्तपुप्फफलो जम्मि उदगे पडिओ तेण परिणामिअं घिप्पइ, अहवा तुवरफला हरीतक्यादयः तुवरपत्ता पलाशपत्रादयः 'रुक्ख'त्ति–रुक्खकोटरे फडुफलपत्तपरिणामिअ घिप्पइ'सिल'त्ति, क्वचिच्छिलायां अनन्तर रुक्खछल्ली कुट्टिआ तम्मि ज सठिअ उदगं त परिणामिअ घिप्पइ जत्थ वा सिलाए तुप्परिणामिअ उदग त घिप्पइ, "तुप्पो" पुण मयगकलेवरवसा भण्णइ, "मद्दणाइसु" हस्त्यादिमर्दित आदिसद्दो हस्त्यादिकमर्दने इत्यादि । एव पिण्डनिर्युक्तिवृत्त्योरपि । तथाहि–

"दव्वओ परिणओ तिलतूवराईहिं दवेहिं ।" विभीतकादिकषायद्रव्यै अपि मिश्रोदकानि वर्णा(दी)नि परिणतानि प्रासुकानि, अत्र आदिशब्दात् यथासम्भव वर्णादिपरिणामहेतूनि गोमयरक्षादिद्रव्याणि सर्वाणि ज्ञेयानि, । पुन ओघनिर्युक्तौ (१३१ पत्रे), तथाहि–

"सीउण्हखारखत्ते, अग्गी लोणूसअविले नेहे । वक्कतजोणिएण, पओयण तेणिम होंति ॥ ३४६ ॥

एतद्वृत्ति–"सीउण्हा"–पसिद्धा, "खारो"–तिलकरीरखाराई, खत्त–उक्करडिआ कयवरो, अग्गीलोणा पसिद्धा, ऊसो गो-पंसुखारदल, अविल–सोवीराई, 'नेहो'–तिल्लघयवसाई, एएहिं जो परिणओ' इति । पुन निशीथभाष्ये यथा–

"सीएअरफासु चउहा, दवे ससट्ठमीसग खित्त । काले पोरसि परओ, वण्णाई परिणयं भावे॥ १ ॥" इति, एव कषोत-

पुनरपि सुविहितसाधूनां पानीयत्रिकग्रहणे कषायद्रव्यमिश्रितपानीयस्य ग्रहीतु कल्पत्वेन उक्तत्वात्, तथाहि—

"अग्गजल १ उण्ह वा २ कसायदव्वेहिं मीसिअ वावि ३। कप्पइ जईण नऽण्ण, सुविहिअ कप्पट्ठिआण च ॥ २ ॥" इति ॥ ५ ॥ पुनः वर्णगन्धरसस्पर्शैः परिणत पानीयं प्रासुक यतो गृह्णीयाद् इति विधिवादेनाऽपि प्रोक्तत्वात्, तथाहि–

"वण्णरस–गधपण्णं, परिणय फरसेण वा। अजीव फासुअ नच्चा, पडिगाहेज्ज सजए ॥ १ ॥" इति ॥ ६ ॥

ननु–वर्णान्तरप्राप्तपानीय साधूना योग्य च सम्मत्या दर्शित तत्तथैव, पर कै द्रव्यै केन च विधिना प्रासुक तत् स्यात्, केषु च ग्रन्थेषु प्रोक्तम्? इत्याह–श्रीबृहत्कल्पभाष्ये, तथाहि–

"वण्णरसगधफासा, जह दव्वे जम्मि उक्कडा हुति। तह तह चिर न चिट्ठइ, असुभेसु सुभेसु कालेण ॥ १ ॥" व्याख्या–यस्मिन् द्रव्ये यथा वर्णरसगन्धस्पर्शा उत्कटा–उत्कटतरा भवन्ति, तथा तथा तेन तेन द्रव्येण सह मिश्रित उदक चिर न तिष्ठति, क्षिप्र क्षिप्रतर परिणमति, किं अविशेषेण? न इत्याह–येऽशुभा वर्णादय उत्कटा तेषु एव क्षिप्र परिणमति, ये तु शुभा वर्णादयः तेषु उत्कटेषु कालेन परिणमते चिरादित्यर्थ, अत्रैव निदर्शनमाह–"जो चदणे कडुरसो, ससट्ठज-लेण दूसणा जाओ। सो खलु दगस्स सत्थ, फासो उ उवग्गह कुणइ ॥ १ ॥" व्याख्या–इह तन्दुलोदक चन्दनेन काऽपि मिश्रित तत्र चन्दनस्य यः कटुको रसः स तन्दुलोदकस्य शस्त्र, पर य स्पर्शः शीतलः स जलस्योपग्रह करोति इति कृत्वाऽचिरेण तत्परिणमति, एव ससृष्टजलस्यापि या दूषणा आम्लरसता सा उदकस्य शस्त्र, स्पर्शस्तु शीतलत्वाद् उपग्रहकारी अतः चिरेण परिणमति, इति ॥

श्राद्धाः प्राय उष्णोदक न पिबन्ति, तत्रापि त्रिदण्डोत्कलितमेव कल्पते, नाऽन्यथा, तादृश तु प्रायशो दुर्लभं साधूनुद्दिश्य क्रियमाण तु आधाकर्मदोषभाक् भवति, सति च तस्मिन् द्वयोरपि दातृग्रहीत्रोः अहिताय अल्पायुष्याय च भवति, कसेल्लकप्रासुकनीर तु आत्मना गच्छे श्राद्धा विशेषतः श्राद्धिकाश्च पिबन्ति, तैस्तु तत् स्वार्थं क्रियमाणमस्ति, तन्मध्ये साधुभिरपि यतनया गृह्यमाण न दोषाय स्यात्, तत सिद्धान्तमूलत्वेन गच्छपरम्परया च कसेल्लकप्रासुकपानीय गृह्यते इति ॥ ९ ॥

॥ इति कसेल्लकपानीयविचार ( अधिकारः ) ॥ ९ ॥

ननु-श्रीखरतरगच्छीयाः श्राद्धा आचाम्ले द्रव्यद्वय गृह्णन्ति, नाऽधिकं, तत्किम् ? उच्यते-श्रीमज्जिनवल्लभसूरिशिष्य-श्रीजिनदत्तसूरिभिः सन्देहदोलावलीसूत्रे ( ११९ पत्रे ) द्रव्यद्वयस्य एव प्रतिपादितत्वात्, तथाहि-

"गिहिणो इह विहि आय बिलस्स कप्पति दुन्नि दव्वाइ । एग समुचिअमन्न, बीअ पुण फासुअ नीर ॥ १०४ ॥" इति ॥

अत्र उचित अपि नीरमेव, न तु काञ्जिका १ अवस्रावण २ तक्रं ३ क्षुरसादीनि ४ तेषा हि पानकाहारत्वेऽपि शुद्ध्य-हेतुत्वेन आचमनादिकार्यस्य अनर्हत्वात्, अत एव प्रत्याख्यानचूर्णावपि जलमेव उक्त । तथाहि-

"जावइअ उवउज्जइ, तावइअ भायणे गहेऊणं । जलबिन्दुड काउ, भुत्तव एस इत्थ विही ॥ १ ॥

एव द्रव्यद्वयातिरिक्तद्रव्यनिषेध श्रीजिनपतिसूरिभिरपि सामाचारीमध्ये २५ लिखितः ॥ १ ॥ तथाहि-

"आयबिले पप्पड १ घुग्घरिआ २ वेढमिआ ३ इड्डुरिआ ४ तक्काइ ५ निसेहो त्ति ॥२॥ पुन जीर्णपुस्तकेषु अपि आचाम्ल-प्रत्याख्यानपाठे-"सूरे उग्गए पुरिमड्ढ पच्चक्खामि तिविह चउविह पि आहार असण पाण खाइम साइम अन्नत्थणाभोगेण

कपानीय प्रासुकत्वेन तपागच्छेशहीरविजयसूरि-प्रसादीकृतप्रश्नोत्तरसमुच्चये तच्छिष्य प० कीर्त्तिविजयगणिसमुच्चिते
प० जगमालगणिकृतत्रयोदशप्रश्नेऽपि ( ३९ पत्रे ) प्रोक्त, तथाहि–

वर्णान्तरप्राप्त कसेल्लकनीर प्रासुक भवति न वा ? तत्रोत्तर–वर्णान्तरप्राप्त कसेल्लकनीर प्रासुक भवति पर आत्मीयवृत्ते अनाचीर्णं इति ज्ञेयं, एवं पुनस्तत्रैव ग्रन्थे द्वीपबन्दरसङ्घकृत १५ प्रश्नेऽपि ( ८४ पत्रे ), तथाहि–मतान्तरीयस्य कदाचिदुपवासादिप्रत्याख्यान क्रियते, तत्र 'पाणस्से'त्युच्चारणमाश्रित्य किं विधेय ?, यतस्तस्य कसेल्लकादिपानीयपाने कथ तत्पालन भवतीति ? तत्रोत्तरम्–अत्र मतान्तरीयस्य प्रत्याख्यानकरणे 'पाणस्से'त्युच्चारणे स यदि कसेल्लकादिपानीय पिबति तदा प्रत्याख्यानभङ्गो ज्ञातो नाऽस्ति, यतः कसेल्लकक्षेपेऽपि पानीय प्रासुक भवति, पर आत्मना आचरणा नाऽस्तीति नो गृह्यते इति । ननु–त्रिविधाहारप्रत्याख्याने कसेल्लकस्य स्वादिमत्वात् कथ न प्रत्याख्यानभङ्गः ?, उपवासप्रत्याख्याने च कथ न द्रव्यद्वयापत्तिर्भवेत् ? उच्यते–कसेल्लकस्वादो हि तथा नीरेण सम तदात्मना परिणतो यथा न नीरात्पृथग्भूतो ज्ञायते, अतो न प्रत्याख्यानभङ्गो नाऽपि च द्रव्यद्वयापत्तिः, एव येषा सम्प्रदाये त्रिफलापानीय पीयमानमस्ति तैरपि यद्यपि हरीतकीविभीतके स्वादिमे आमलकाद्य अशने, तथापि तन्मिश्रितोदकपानेन त्रिविधाहारप्रत्याख्यानभङ्गो मन्यते, नापि उपवासप्रत्याख्याने द्रव्यत्रयगणना, अन्यथा प्रत्याख्यानभङ्गः सम्पद्येत इति ॥

ननु–पूर्वमुष्णोदकाभावे वर्णान्तरप्राप्तपानीयग्रहण उपदिष्ट, साम्प्रत तु वर्णान्तरप्राप्तमेव प्रासुकोदक गृह्यते तत्किमिति ? उच्यते–नाऽस्माभि एकान्तेन कसेल्लकप्रासुकपानीयमेव गृह्यते, किन्तु उष्णोदकमपि गृह्यते, पर साम्प्रत

श्राद्धाः प्राय उष्णोदक न पिबन्ति, तथापि त्रिदण्डोत्कलितमेव कल्पते, नाऽन्यथा, तादृश तु प्रायशो दुर्लभं साधुनुद्दिश्य क्रियमाण तु आधाकर्मदोषभाक् भवति, सति च तस्मिन् द्वयोरपि दातृग्रहीत्रोः अहिताय अल्पायुष्काय च भवति, फासुकप्रासुकनीरं तु आत्मनां गच्छे श्राद्धा विशेषत श्राद्धिकाश्च पिबन्ति, तेसु तत् स्वार्थं क्रियमाणमस्ति, तन्मध्ये साधुभिरपि यतनया गृह्यमाणं न दोषाय स्यात्, ततः सिद्धान्तमूलत्वेन गच्छपरम्परया च फासुकप्रासुकपानीयं गृह्यते इति ॥ ९ ॥

॥ इति फसेल्लकपानीयविचार ( अधिकारः ) ॥ ९ ॥

ननु–श्रीखरतरगच्छीयाः श्राद्धा आचाम्ले द्रव्यद्वय गृह्णन्ति, नाऽधिक, तत्किम् ? उच्यते–श्रीगणिनायकाचार्यविरचित–श्रीजिनदत्तसूरिभि सन्देहदोलावलीसूत्रे ( ११६ पत्रे ) द्रव्यद्वयस्य एव प्रतिपादितत्वात्, तथाहि–

"गिहिणो इह विहि आय बिलस्स कप्पति दुन्नि दवाइ । एग समुचिअमन्नं, बीअं पुण फासुअं नीरं ॥ १०४ ॥" इति ॥

अत्र उचित अपि नीरमेव, न तु काञ्जिका १ अवस्रावण २ तक्र ३ क्षुरसादीनि ४ रोगादि पानकाहारत्वेऽपि प्रत्याख्यान-हेतुत्वेन आचमनादिकार्यस्य अनर्हत्वात्, अत एव प्रत्याख्यानचूर्णावपि उपयोग उक्तः । तथाहि–

"जावइअ उवउज्जइ, तावइअ भायणे गहेऊणं । जलबिन्दुउ फाउं, भुत्तं एस इत्थ विही ॥ १ ॥

एवं द्रव्यद्वयातिरिक्तद्रव्यनिषेध श्रीजिनपतिसूरिभिरपि सामाचारीमध्ये २५ लिखितः ॥ १ ॥ तथाहि–

"आयबिले पप्पड १ घुग्घरिआ २ वेढमिआ ३ इड्डुरिआ ४ तवाइ ५ निसेधो त्ति ॥२॥ पुनः जीर्णपुस्तकेषु भणि भाषात्मक प्रत्याख्यानपाठे–"सूरे उग्गए पुरिमड्ढ पच्चक्खामि तिविहं चउव्विहं पि आहार असणं पाणं खाइमं साइमं अन्नत्थणाभोगेणं

सहसागारेण पच्छन्नकालेण दिसामोहेण साहुवयणेण महत्तरागारेण सवसमाहिवत्तियागारेण आयंबिलं पच्चक्खामि अन्नत्थ-
णाभोगेणं सहसागारेण लेवालेवेण उक्खित्तविवेगेणं गिहत्थससट्ठेण पारिट्ठावणियागारेण महत्तरागारेण सवसमाहिवत्तिया-
गारेण एकासण पच्चक्खामि तिविहपि आहार" इत्यादि, दसविसए सघनिअमा अन्नत्थणाभोगेण सहसागारेण महत्तरागा-
रेण सवसमाहिवत्तियागारेणं वोसिरामि" अय पाठः श्रीजेसलमेरुभाण्डागारे स० १२१५ लिखितपुस्तिकाया अस्ति ॥ ३ ॥
ननु-मूलग्रन्थे क्वाऽपि द्रव्यद्वय प्रतिपादित अस्ति? उच्यते-महानिशीथसूत्रे तच्चूर्णौ च "दोहिं दवेहिं आयंबिलेहिं"
॥ ४ ॥ एवं श्रीआवश्यकबृहद्वृत्तौ, तथाहि—"एव जहन्ने मज्झिमे उक्कोसेऽवि आयंबिले दवदुगेण सवत्थ भणिअव"। पुन
अत्राऽर्थे सूक्ष्मधिया श्रीहरिभद्रसूरिकृतावश्यकबृहद्वृत्तिः विचारणीया, तत्पाठस्तु ( ८५५ पत्रे ) अयम्—
"एत्थ आयंबिल च भवति आयंबिलपाउग्ग च, तत्थोदणे आयंबिल आयंबिलपाउग्ग च, आयंबिला सकूरा, जाणि
कूरविहाणाणि आयंबिलपाउग्ग, तंदुलकणिआउ कुडतो पीट्ठ पिहुगा पिट्ठपोवलियाओ रालगा मडगादि कुम्मासा पुव्व
पाणिएण कड्डिज्जति, पच्छा उक्खलीए पीसति, ते तिविहा-सण्हा मज्झिमा थूला, एते आयंबिल आयंबिलपाउग्गाणि,
पुण जे तस्स तुसमीसा कणिआउ कक्कडुगा य एवमादि, सत्तुआ जवाण गोधूमाण विहिआण वा, पाउग्ग पुण गोधूम-
भुंजिया पिचुगाला य जाव मुंजिआ से अ जतएण ण तीरति पीसितु, तस्सेव णिहारे कणिकादि वा, एयाणि आय-
बिलपाउग्गाणि, त तिविह पि आयंबिल तिविह उक्कोस १ मज्झिम २ जहण्ण ३ च, दवओ कलमसालिकूरो उक्कोस ज
वा जस्स पत्थं रुच्चइ वा रालगो सामागो वा जहण्णो, सेसा मज्झिमा, जो सो कलमसालिकूरो सो रस पडुच्च तिविधो

उक्कोसं १ तं चेव तिविधं पि आयबिल णिज्जरागुण पडुच्च तिविध उक्कोसो णिज्जरागुणो, मज्झिमो जहण्णोत्ति, कलमसालिकूरो दव्वतो उक्कोस, दव्वं चउत्थरसिएण समुद्दिसति, रसओ वि उक्कोस तस्सच्चएणऽवि आयामेण उक्कोस रसओ, गुणतो जहण्ण थोवा णिज्जरति भणित भवति, सो चेव कलमोदणो जदा अन्नेहिं आयामेहिं तदा दव्वतो उक्कोसो, रसतो मज्झिमो, गुणतो वि मज्झिमो चेव, सो चेव जदा उण्होदएण तदा दव्वतो उक्कोस, रसतो जहण्ण, गुणओ मज्झिम चेव, जेण दव्वओ उक्कोस न रसओ, इआणिं जे मज्झिमा ते चाउलोदणा तेन दव्वओ मज्झिमा आयबिलेण रसओ उक्कोसा गुणओ मज्झिमा तहेव च उण्होदएण दव्वओ मज्झ, रसओ जहण्ण, गुणओ मज्झ, मज्झिम दव्वति काऊण, रालगतणकूरा दव्वओ जहण्ण, आयबिलेण रसओ उक्कोस, गुणओ मज्झ ते चेव आयामेण दव्वओ जहण्ण, रसओ मज्झ, गुणओ मज्झ, ते चेव उण्होदएण दव्वओ जहण्ण, रसओ जहण्ण, गुणओ उक्कोस बहुणिज्जरत्ति भणित होति, अहवा उक्कोसे तिण्णि विभासा—उक्कोसउक्कोस उक्कोसमज्झिम उक्कोसजहण्ण कंजियआयामउण्होदएहिं जहण्णा मज्झिमा उक्कोसा णिज्जरा, एव तिसु विभासितव्व ॥ ५ ॥ एव श्रीहरिभद्रसूरिकृतश्रावकधर्मप्रज्ञप्तिवृत्तौ अपि एतादृश एव पाठोऽस्ति ॥६॥ तथा—द्वाविंशत्यभ्यधिकै—कादशवत्सरशतैस्तु विक्रमतः। अकृतैना नमिसाधु, शिष्य श्रीशालिसूरीणाम् ॥१॥ इति प्रशस्तिसद्भावेन ११२२ वर्षे नमिसाधुकृतषडावश्यकवृत्तौ विशेषो यथा विशेषस्तु कलमशालिचतुर्थरसकाद्युत्कृष्ट शेषकूरः चतुर्थरसकादिश्च मध्यमः उष्णोदकादिश्च जघन्यो गुणतश्च बह्वी निर्जरा उत्कृष्टे मध्यमा मध्यमेऽल्पा च जघन्ये चेति, एव च स्थिते कलमशालिकूर कलमशालिकञ्जिकेन उत्कृष्ट, उत्कृष्टेन यदा भुज्यते तदा जघन्या=निर्जरा अल्पे-

सहसागारेण पच्छन्नकालेण दिसामोहेण साहुवयणेण महत्तरागारेण सव्वसमाहिवत्तियागारेण आयंबिलं पच्चक्खामि अन्नत्थ-णाभोगेण सहसागारेण लेवालेवेण उक्खित्तविवेगेण गिहत्थसंसट्ठेण पारिट्ठावणियागारेण महत्तरागारेण सव्वसमाहिवत्तिया-गारेण एकासण पच्चक्खामि तिविहंपि आहारं" इत्यादि, दवविसए सवनिअमा अन्नत्थणाभोगेण सहसागारेण महत्तरागा-रेण सव्वसमाहिवत्तियागारेणं वोसिरामि" अयं पाठः श्रीजेसलमेरुभाण्डागारे सं० १२१५ लिखितपुस्तिकायां अस्ति ॥ ३ ॥

ननु-मूलग्रन्थे क्वाऽपि द्रव्यद्वयं प्रतिपादितं अस्ति? उच्यते-महानिशीथसूत्रे तच्चूर्णौ च "दोहिं दव्वेहिं आयंबिलेहिं" ॥ ४ ॥ एवं श्रीआवश्यकबृहद्वृत्तौ, तथाहि—"एवं जहन्ने मज्झिमे उक्कोसेऽवि आयंबिले दव्वदुगेण सव्वत्थ भणिअव्व" । पुन अत्राऽर्थे सूक्ष्मधिया श्रीहरिभद्रसूरिकृतावश्यकबृहद्वृत्तिः विचारणीया, तत्पाठस्तु ( ८५५ पत्रे ) अयम्-

"एत्थ आयंबिलं च भवति आयंबिलपाउग्गं च, तत्थोदणे आयंबिलं आयंबिलपाउग्गं च, आयंबिला सकूरा, जाणि कूरविहाणाणि आयंबिलपाउग्गं, तंदुलकणिआउ कुट्टतो पीट्ठं पिहुगा पिट्ठपोवलियाओ रालगा मंडगादि कुम्मासा पुव पाणिएण कड्ढिज्जति, पच्छा उक्खलीए पीसंति, ते तिविहा-सण्हा मज्झिमा थूला, एते आयंबिलं आयंबिलपाउग्गाणि, पुण जे तस्स तुसमीसा कणिआउ कक्कुगा य एवमादि, सत्तुआ जवाण गोधूमाण विहिआण वा, पाउग्गं पुण गोधूम मुंजिया पिचुगाला य जाव मुंजिज्जा से अ जतएण ण तीरंति पीसिउं, तस्सेव णिहारे कणिकादि वा, एयाणि आय-बिलपाउग्गाणि, तं तिविहं पि आयंबिलं तिविहं उक्कोसं १ मज्झिमं २ जहण्णं ३ च, दवओ कलमसालिकूरो उक्कोसं अ वा जस्स पत्थं रुच्चइ वा रालगो सामागो वा जहण्णो, सेसा मज्झिमा, जो सो कलमसालिकूरो सो रसं पडुच्च तिविधो

उक्कोसं २ त चेव तिविध पि आयविल णिज्जरागुण पडुच्च तिविध उक्कोसो णिज्जरागुणो, मज्झिमो जहण्णोत्ति, कलमसालिकूरो दव्वतो उक्कोस, दव चउत्थरसिएण समुद्दिसति, रसओ वि उक्कोस तस्सच्चएणऽवि आयामेण उक्कोस रसओ, गुणतो जहण्ण थोवा णिज्झरति भणित भवति, सो चेव कलमोदणो जदा अन्नेहिं आयामेहिं तदा दव्वतो उक्कोसो, रसतो मज्झिमो, गुणतो वि मज्झिमो चेव, सो चेव जदा उण्होदएण तदा दव्वतो उक्कोस, रसतो जहण्ण, गुणओ मज्झिम चेव, जेण दव्वओ उक्कोस न रसओ, इआर्णि जे मज्झिमा ते चाउलोदणा तेन दव्वओ मज्झिमा आयविलेण रसओ उक्कोसा गुणओ मज्झिमा तहेव च उण्होदएण दव्वओ मज्झ, रसओ जहण्ण, गुणओ मज्झ, मज्झिम दव्वति काऊण, रालगतणकूरा दव्वओ जहण्ण, आयविलेण रसओ उक्कोस, गुणओ मज्झ ते चेव आयामेण दव्वओ जहण्ण, रसओ मज्झ, गुणओ मज्झ, ते चेव उण्होदएण दव्वओ जहण्ण, रसओ जहण्ण, गुणओ उक्कोस बहुणिज्जरत्ति भणित होति, अहवा उक्कोसे तिण्णि विभासा–उक्कोसउक्कोस उक्कोसमज्झिम उक्कोसजहण्ण कजियआयामउण्होदएहिं जहण्णा मज्झिमा उक्कोसा णिज्जरा, एव तिसु विभासितव ॥ ५ ॥ एव श्रीहरिभद्रसूरिकृतश्रावकधर्मप्रज्ञप्तिवृत्तौ अपि एतादृश एव पाठोऽस्ति॥६॥ तथा–द्वाविंशत्यभ्यधिकै–कादशवत्सरशतैस्तु विक्रमत ।अकृतैना नमिसाधु , शिष्यः श्रीशालिसूरीणाम् ॥१॥ इति प्रशस्तिसद्भावेन ११२२ वर्षे नमिसाधुकृतषडावश्यकवृत्तौ विशेषो यथा विशेषस्तु कलमशालिचतुर्थरसकाद्युत्कृष्ट शेषकूर चतुर्थरसकादिश्च मध्यम उष्णोदकादिश्च जघन्यो गुणतश्च वह्वी निर्जरा उत्कृष्टे मध्यमा मध्यमेऽल्पा च जघन्ये चेति, एव च स्थिते कलमशालिकूरः कलमशालिकञ्जिकेन उत्कृष्टः, उत्कृष्टेन यदा भुज्यते तदा जघन्या=निर्जरा अल्पे-

त्यर्थः, तथा उत्कृष्ट द्रव्य जघन्यरसेन भुज्यते, तदा मध्यमो निर्जरा गुण इत्यादिभङ्गका द्रष्टव्या इति, अयमर्थो द्रव्यरसयोः द्वयोः उत्कृष्टत्वे जघन्या निर्जरा एकैकोत्कृष्टत्वे मध्यमा द्वयोर्जघन्यत्वे उत्कृष्टा निर्जरा इति, अपि चात्र सर्वेष्वपि पूर्वोक्तेषु भङ्गकेषु जघन्य १ मध्यमो २ त्कृष्टरूपेषु ३ शालिप्रभृतीना अन्नाना मध्यादेकतरत् अन्न, अथ च काञ्जिकप्रभृतीनां नीराणां च मध्यात् एकतरन्नीर आचाम्लमध्ये ग्राह्यत्वेन प्रोक्त, पर न कुत्राऽपि एवरूपो भङ्गको लिखितो, यदुत-एकस्मिन् आचाम्ले शालिप्रभृत्यन्नानां मध्यात् अन्नद्वय तत्त्रय वा अथ च काञ्जिकप्रभृतिनीरमध्यात् नीरद्वय तत्त्रय वा ग्राह्यमिति ॥ ७ ॥ ननु द्रव्यद्वयस्य एव ग्रहणे नियमिते कथ दन्तशोधन विना मुखशुद्धि ?-तत्राऽर्थे सन्देहदोलावली गाथा ( ११७ पत्रे ) यथा-

जो पुण सिलिआइँ विणा, मुहसुद्धिं काउमित्थमसमत्थो । सो कडुअकसायरस, सिलिअ गिण्हइ न से भग्गो ॥ १०६ ॥

अनाहारत्वात् ॥ ८ ॥ यदुक्त-'निंघाईण' गाथा, अतो बहुनिर्जराहेतुत्वेन उत्कृष्टाऽऽचाम्ले द्रव्यद्वयग्रहण युक्त, पुन अत्रार्थे वृद्धपरपरागतसामाचार्येव प्रमाण, किमेतत्प्रामाण्यात् निर्विकृतिकाऽऽचाम्लोपवासादिषु सचित्तनियममेव न कुर्वन्ति श्राद्धाः किम्व उपवासे एकमेव द्रव्य न गृह्णन्ति, ततो यथा सूत्राक्षरादर्शनेऽपि अत्र अवश्यतया सचित्तनियमः क्रियते, एव द्व्यधिकद्रव्यनियमोऽपि इति सन्देहदोलावलिबृहद्वृत्तिवचनप्रामाण्यात् वृद्धपरम्परागतसामाचार्या उत्कृष्टाऽऽचाम्लत्वेन द्रव्यद्वयमेव आचाम्ले गृह्यते, ततो यद्भगवत्केवलिभाषित तत्प्रमाण नाऽत्राऽस्माक कोऽप्यभिनिवेश इति ॥

॥ इति आचाम्ले द्रव्यद्वयग्रहणाधिकारः ॥ १० ॥

ननु-केचिद्वदन्ति अपक्वदुग्धेन समं द्विदलभक्षणं अभक्ष्यदोषभाक्, तत् किम्? उच्यते—न चैतत् सङ्गतिमङ्गति, क्वाऽपि तद्दोषस्याऽनुक्तत्वात् इति, आह परः, उच्यते–

ननु–भो! "आमगोरससम्पृक्त-द्विदलादिषु जन्तवः। दृष्टाः केवलिभिः सूक्ष्मा-स्तस्मात् तानि विवर्जयेत् ॥ ७१ ॥", इति श्रीहेमाचार्यकृतश्रीयोगशास्त्र( १७१ पत्रे )वचनप्रामाण्यात् आमगोरससम्पृक्तद्विदले सूक्ष्मजन्तूत्पत्तिसद्भावेन तद्वर्जनस्य सुतरां प्रोक्तत्वात् तद्दुष्टता एव समागता। न च वाच्यं गोरसशब्देन दधितक्रे। परं दुग्धं न?, उच्यते–श्रीहेमाचार्यैः गोरसशब्देनाऽभिधानचिन्तामणौ ( १६७ पत्रे ) दधि १ दुग्ध २ घोल ३ रूपार्थत्रयस्य प्रोक्तत्वात्, तथाहि–"दुग्धं तु सोमजं, गोरसः क्षीरमूधस्यं, स्तन्यं पुंसवनं पयः ॥ ६८ ॥ १ तथा ( १६८ पत्रे ) "क्षीरजं=दधि गोरसश्च २" पुनः ( १६९ पत्रे ) "दण्डाहते कालशेय-घोलारिष्टानि गोरसः रसायनं ३" इति। ततः आमगोरसेन समं द्विदलभक्षणे स्पष्टं अभक्ष्यदोषः?, सत्यं, यद्यपि आमगोरसशब्देन अपक्वदुग्धमपि समायातं, परं द्विदलदोषाधिकारे आमगोरसशब्दस्य प्रवृत्तिः अनुत्कालितदधितक्रयोः एव विषये, तयोः द्वयोः एव ग्रन्थादौ व्याख्यातत्वात्, यदुक्तं "श्रीतपागणसरोजरविश्रीदेवसुन्दरगणेन्द्रविनेयः, श्राद्धवर्गविहिताग्रहतः श्रीसोमसुन्दरगुरुः कुरुतेऽदः ॥ १ ॥" इति ग्रन्थादौ सद्भावेन तपागच्छनायकश्रीसोमसुन्दरसूरिभिः श्रीयोगशास्त्रबालावबोधे, तथाहि–

"आमगोरससंपृक्तं, द्विदलं पुष्पितौदनम्। दध्यहर्द्वितयातीतं, क्वथितान्नं विवर्जयेत्"॥ ७ ॥

व्याख्या–"आम गोरस-अणऊकाल्या दूध दही छासि ते माहि मिल्यौ विदल कठउल अने घासीकठूउल अने आदि शब्द लगे फूल्यो जे रान्ध्यो चदन १ ढुंढणादिक २ तथा विदिहडो-सोल पहुर ऊपहरा दहीमाहि ३ अनइ घासीयकठउलादिक कुहिआ अन्न ४ एतला सवि हि माहि इष्टा केवलज्ञानीये सूक्ष्मजीव चपजता दीठा, ते भणी ए सगला ही श्रावके वर्जिना इति ।"अत्रार्थे योगशास्त्रावचूर्णिरपि विलोकनीया, "तत्राऽऽमगोरसशब्देन अनुत्कालितदधि-तक्रवस्तुद्वयस्य एव व्याख्यानात्", तथा विहाय एक कचिद् गच्छं, अन्येषु गच्छेषु आमदुग्धमध्ये द्विदलग्रहणनिषेधो नाऽस्ति, प्रत्युत प्रवृत्ति वर्त्तते, अथ काऽपि ग्रन्थेऽपक्वदुग्धमध्ये द्विदलनिषेधः मोक्तो भवेत्, तदा स ग्रन्थो विचार्येत, पर स ग्रन्थो नाऽस्तीति सम्भाव्यते इति ॥

॥ इति अपक्वदुग्धमध्ये द्विदलग्रहणाधिकारः ॥ ११ ॥

ननु–आत्मनां गच्छे मुद्गादीनामिव सक्करादीनामपि द्विदलत्व गण्यते, केषाचिद्गच्छे तु न इति, तत्र को विचारः ? उच्यते,—श्रीजिनदत्तसूरियुगप्रधानैः उत्सूत्रपदोद्घट्टने सक्करादीना द्विदलत्वे अमन्यमाने उत्सूत्रस्य प्ररूपितत्व उक्तमस्ति, तथाहि–

"कडुअसगरियाओ न हुति विदलति विरुहगाऽणत इति उत्सूत्र", ॥ १ ॥ एवमेव श्रीजिनप्रभसूरिभि विधिप्रपाया सम्यक्त्वारोपणविधौ प्रत्यपादि, तथाहि–

सगरफलिआमुग्गमउठमासमसूरकलायचणयचवलवल्लकुलत्थमितियिआ, कडुअगोआरमाइ विदलाइ गोरसेण सह न जिमेअवाइं एएसिं राइचिम न कायव" इति ॥ २ ॥

इत्थमेव चैत्यवन्दनकुलकेऽपि, ( ९७ पत्रे ) तथा हि–

"संगरफलिमुग्गमुहट्ठमासकडू अपमुक्खविदलाइ । सह गोरसेण न जिमेए य रायत्तिअ न करे ॥ १८ ॥
"संगरफलिमुग्गमुहट्ठमासकडूअपमुक्खविदलाइ । सह गोरसेण न जिमेए य रायत्तिअ न करे ॥ १८ ॥

जम्मि य पीलिज्जते, मणय पि न नेहनिग्गमो हुज्जा । दुन्निअदलाइ दीसति मित्थिगाईण जह लोए ॥ १९ ॥" ॥ २ ॥
जम्मि य पीलिज्जते, मणय पि न नेहनिग्गमो हुज्जा । दुन्निअदलाइ दीसति मित्थिगाईण जह लोए ॥ १९ ॥" ॥ २ ॥

एव श्रीजिनपतिसूरिभिरपि निजसामाचारीग्रन्थे ८ प्रत्यपादि, तथाहि–"संगर कडूअगोयराइ विदल"इति ३ ।

ननु–पूर्वाचार्यग्रन्थेऽपि क्काऽपि सङ्करादीना द्विदलत्वसम्मतिः अस्ति ? उच्यते—यद्यपि साम्प्रत प्रवर्त्तमाना श्रीसिद्धसेनसूरिकृता श्रीप्रवचनसारोद्धारवृत्तिः तत्र सा नाऽस्ति, पर श्रीआनन्दसूरिभिः श्रीप्रवचनसारोद्धारगाथाद्वितीयार्द्धं व्याख्यानयद्भिः स्ववृत्तौ तथैवोक्त, तथाहि–

"दहिए विगयगयाइ, घोलवडाँ घोलसिहरिणि करवो । लवणकणदहिअमहिअ सगरगाइम्मि अप्पडिए ॥ १ ॥"

व्याख्या–लवणकणैः जीरकलवणलेशैः युक्त दधि हस्तेन मथित वस्त्रेण गालित तदपि रात्र्युषित सत् कल्पते, निर्विकृतिकप्रत्याख्यानवता, क्काऽपि देशे सङ्कराद्यपि तत्र प्रक्षिप्यते, इत्याशङ्क्याऽऽह, पर सङ्करादौ अपतिते सति, तत्र तु द्विदलदोषसम्भवात् न कल्पते इत्यर्थः ॥ ४ ॥ एवं यतिदिनचर्याया अपि, तथा हि–"फलियावग्गे तह सगर वल्ला चवला य होलायेति" ॥ ५ ॥ ननु–सङ्करादीना मुग्गादीनामिव द्विदलत्वसाधक लक्षणमस्ति न वा ? उच्यते–बाढ अस्तीति ब्रूम , तथा हि–

न य सगरवीयाओ तिलुप्पत्ति कयाइवि सभवइ । दलिए दुन्नि दलाइ मुग्गाईण च दीसति ॥ १ ॥ इत्यादि ॥ ६ ॥

पुनः केवलिना दृष्ट सत्यमिति ॥

॥ इति सङ्करप्रमुखाणा द्विदलत्वाधिकारः ॥ १२ ॥

ननु-केषाञ्चित् गच्छे श्राद्धानपि साधूनिव "पाणस्स लेवाडेण वा" इत्यादिपानपडागारा उच्चारयन्ति, आत्मना गच्छे तु न इति, तत्र किं निदानम्? उच्यते-

शास्त्रे निषिद्धत्वात्, वृद्धाना असमतत्वात्, युक्तियुक्तत्वाच्च, यतः श्राद्धाना पानकागारपट्कनिषेध श्रीजिनदत्तसूरयः उत्सूत्रपदोद्घट्टने प्रोचिवासः, तथाहि-

"अजिअजलाहारगिही पाणागारे समुच्चरइ" तदुत्सूत्रमिति ॥ १ ॥ एव श्रीजिनपतिसूरयोऽपि निजसामाचार्यां १२ लिखन्ति स्म; तथाहि-"सावयाण पाणस्स लेवाडेण वा इच्चाइ पाणगागार अणुच्चारण" इति ॥ २ ॥ ननु-पूर्वसूरिभिरपि काऽपि ग्रन्थे तन्निषेधो भणितोऽस्ति? उच्यते-श्रीबृहद्भाष्ये; तथा हि-"ए ए छ आगारा साहूण, न पुण सड्ढाण" इति ॥ ३ ॥ एवं श्रीप्रत्याख्यानभाष्ये त्र्यशीत्यधिकैकादश ११८३ शतवर्षे निर्मिताया तद्वृत्तौ च, तथाहि-"एते पानकागारा यतीनामेव, न तु श्राद्धाना, न खलु श्राद्धा सर्वविरतयः इति" ॥ ४ ॥ ननु-वृद्धाना असमतत्व युक्तियुक्तत्व च कथ? इत्याह-श्रूयता सावधानीभूय विचार्यता च चक्षुषी निमील्य, अत्र अय परमार्थः—यतीना एकाशनादिप्रत्याख्यानवतां भिक्षावृत्तित्वेन यथालब्धसर्वपानकानि गृह्णता पिबता च तदपवादभूताः, "पाणस्स लेवाडेण वा" इत्यादि पडागारा अपि उच्चारयितुं कल्पन्ते एव, परं सचित्तपरिहारिणां गृहस्थाना एकाशनादिप्रत्याख्यानवतां आरम्भवशित्वेन पानकापवादसेवार्थं पडागारान् उच्चारयितु न घटामाटीकते। न च वाच्य गृहस्थानां अपि भिक्षावृत्तिः अस्तु,

को दोषो गृहस्थाना एकादशप्रतिमाया अर्वाक् भिक्षासूत्रे अष्टकप्रन्यादौ पौरुषघ्नीत्वेन निषिद्धत्वात् । अथ यतिन इव गृहस्था अपि पानकपडागारान् उच्चरिष्यन्ति, तदा गृहस्था अपि यतिन इव उपवासादित्रिविधाहारप्रत्याख्यानमध्ये सौवीरा-धश्रावणादिपानीयानि अपि पास्यन्ति, न च एषा सौवीरादिपानीयपानप्रवृत्तिः, केषाचिदपि गच्छे दृश्यते । तदपाने च तदपवादागाराणा अपि समुच्चारणे स्पष्टं असगतिरेव, नहि विशेष्याभावे विशेषणसभवः, प्रत्युत पानकपडागारोच्चारणं अन्तरेणाऽपि सर्वगच्छेषु सचित्तपरिहारिणः श्राद्धाः सन्ध्याया द्विविधत्रिविधाहारदिवसचरिमप्रत्याख्यानकरणानन्तर रात्रौ प्रासुकपानीयं पिबन्तो दृश्यन्ते । अपि च यथा दिवसचरिमप्रत्याख्याने अनुच्चारितेषु अपि पानकागारेषु रात्रौ गृहस्थाः शुद्धोदक पिबन्ति, तथा अन्येषु अपि दैवसिकप्रत्याख्यानेषु पानकोच्चार विनाऽपि पानीय पिबन्तु, का विचारणा ? उभयत्र समानत्वात्, किं च खर्जूर-तिल-तन्दुलधावना-ऽवश्रावणादीनि पानकानि, यथा रात्रौ गृहिणा अपेयानि तथा दिवा अपि अपेयानि एव, तत्पानस्य धर्मे अभिमुखानां अप्रतिपत्तिहेतुत्वेन अप्रतिपन्नधर्माणा, विपरिणामहेतुत्वेन वैधर्मिकाणा, जिनधर्मस्य निन्दाकृतौ प्रेरकत्वेन च महादोषत्वात् तेन पानकोच्चारणं अनर्थक एव, आह पर —न तु तद् अनर्थक, यतो यद्यपि फोगरङ्ग–दाडिमछल्ल्यादिभि प्रासुकीकृत जल त्रिविधाहारेण पातु कल्पते एव, तेषा कषायवृक्षफलछल्लीचूर्णत्वेन अनाहारकत्वात्, तथापि बिभीतकादिना प्रासुकीकृत न कल्पते एव, तस्य च स्वादिमाहारत्वादिति । तदर्थं पानकागा-रान् उच्चरन्तु गृहस्थाः इति चेत् ? न, वस्तुगत्या बिभीतकादे अपि कटुफलत्वेन अनाहारकत्वात्, न च वाच्य पानभङ्गभिया

तेण। जत्तेण होइअवं, सुहाणुबंधप्पहाणेणं ॥ ४ ॥ समवइ अकाले वि हु, कुसुम महिलाण तेण देवाण। पूयाए अहि गारो, नमो हओ होइ सुमुचो ॥ ५ ॥ लोगुत्तमदेवाण समुच्चणे समुचिओ इह नेओ सुइगुण जिट्ठत्तणओ, लोए लोउत्तरे पुरिसो ॥ ६ ॥ न छिवंति जहा देहं, ओसरणे भावजिणवरिंदाण। तह तप्पडिम पि सय, पूअंति न जुवनारीओ ॥ ७ ॥"
इत्यादि, अत्र इद रहस्यम्–श्रीजिनदत्तसूरिभिः इद निषिद्ध, यदुत तरुणस्त्री मूलप्रतिमा स्वकरेण चन्दनादिविलेपनेन पूजयेदिति न अन्यत् किमपि। ननु–तर्हि या बाला वृद्धा च सा अन्यगच्छीयबालवृद्धस्त्रीवत् प्रतिमापूजा कुर्वती कथ न दृश्यते? उच्यते–तथाविधाया रूढेः दुर्वार्यत्वात्, कुर्वन्तु ताः, प्रतिमापूजां को निवारक?, कुर्वन्ति अपि च ताः बाला वृद्धाश्च काश्चन स्त्रियः कुत्रचित् ॥

॥ इति तरुणस्त्रिया, मूलप्रतिमापूजानिषेधाधिकारः ॥ १४ ॥

ननु–आत्मीयो गच्छः सुविहितः तर्हि साम्प्रत श्राद्धाः "दसण १ वय २ सामाइय ३ पोसह ४ पडिमा य ५ बंभ ६ सच्चित्ते ७। आरंभ ८ पेस ९ उद्दिट्ठ १०, वज्जए समणभूए अ ॥ १ ॥" इत्येवरूपा एकादश प्रतिमाः कथ न वहंति? उच्यते–सम्प्रति काले दुःषमकालानुभावेन संहनन–साहस–बलधैर्याभावात्, निरतिचारसम्यक्त्वादि पालयितु न शक्यते, पुनः कायोत्सर्गप्रतिमाया पञ्चमासीं यावत् शून्यगृहे श्मशाने वा चतुरः प्रहरान् कायोत्सर्गं कृत्वा पौषधिकीरात्रिः अतिवाहयितु अशक्या। पुनः भूत–प्रेतव्यन्तरादिदुष्टानिष्टदेवतादिकृतोपसर्गे सति प्रादुर्भूतप्रभूतभीत्या च मनोधैर्य क्षणमपि न तिष्ठति, प्रत्युत अपायापत्तिश्च स्यादिति तद्वहननिषेधो युक्तिमान्। ननु–कैः तद्वहननिषेधोऽकारि? उच्यते—युगप्रधान-

श्रीजिनदत्तसूरिप्रमुखैः । कथं ? कस्मिन् ग्रन्थे ? इत्याह–"पुरिसित्थीओ पडिमा, वहति तत्थाइमा चउरो ॥ ६ ॥" तदुत्सूत्र इति श्रीजिनदत्तसूरिकृतोत्सूत्रपदोद्घट्टनकुलके षष्ठगाथाया ॥ १ ॥ एव श्रीजिनपतिसूरिभिरपि निजसामाचार्यां तन्निषेधो लिलिखे, तथाहि–"सपइ काले सावयपडिमाओ न वहिज्जते ॥ २ ॥" ननु–तत' प्राक्तनग्रन्थेऽपि क्वाऽपि प्रतिमावहननिषेधो दृश्यते ? उच्यते–तीर्थोद्गारप्रकीर्णके तद्व्यवच्छेदस्य प्रतिपादना, तथाहि–

साहूणऽग्गोयरओ वुच्छिन्नो दूसमाणुभावाओ । अज्जाण पणवीस सावयधम्मो अ वुच्छिन्नो ॥ १ ॥ एतद्गाथार्थस्तु अय तथाहि–साधूनां–महात्मनां पूर्वं प्रमादाल्पत्वेन 'अग्गोऽयरओ' त्ति अग्रवेचारः ( अग्रावतारः ) परिधानविशेषः साधुजनप्रतीतः आसीत्, स सप्रति व्युच्छिन्नः, कटिपट्टकस्य अन्यथा करणात् कस्माद् दु'षमानुभावात् १ तथा आर्यिकाणा साध्वीनां पञ्चविंशत्युपकरणाना आसन्, सप्रति तानि अपि व्यवच्छिन्नानि २ तथा श्रावकधर्मः श्रावकैकादशप्रतिमारूपो धर्मोऽपि व्यवच्छिन्नः ३ न च वाच्य श्रावकधर्मशब्देन सम्यक्त्वमूलस्थूलद्वादशव्रतरूपो धर्मो व्यवच्छिन्नः, एतद्वचनस्य द्वादशव्रतरूपश्रावकधर्मस्य प्रत्यक्ष क्रियमाणत्वेन अघटमानत्वात्, तद्व्यवच्छेदस्य तु साधुधर्मव्यवच्छेदेन सहभावित्वाच्च, साधुधर्मस्तु आदुःप्रसहसूरिं स्थास्यति, ततः तत्सहभावित्वेन श्रावकधर्मोऽपि द्वादशव्रतरूपः तावन्त काल स्थाता । ननु–तीर्थोद्गारप्रकीर्णकगाथातुर्यपदस्य केन अर्थो व्याख्यातः ? यदुत 'एकादशप्रतिमारूपो धर्मो व्यवच्छिन्न ' ? उच्यते–तरुणप्रभसूरिणा स्वकृतषडावश्यकबालावबोधे इत्यमेव प्रतिपादितत्वात्, तथाहि–

"साहूणऽगोअरओ, वुच्छिन्नो दूसमाणुभावाओ । अज्जाण पणवीस, सावयधम्मो अ वुच्छिन्नो ॥ १ ॥" अत्र साधु-

गाहित्तए त० तिलोदगं वा तुसोदग वा जवोदगं वा । वासावासं पज्जोसविअस्स अट्ठमभत्तियस्स भिक्खुस्स कप्पति, तओ पाणगाइ पडिगाहित्तए त० आयामे वा सोवीरे वा सुद्धवियडे वा इत्यादि” श्रीदशाश्रुतस्कन्धाष्टमाध्ययनादिषु ( कल्पसूत्रे सामाचार्यां ) चतुर्थषष्ठाष्टमादिप्रत्याख्यानस्य स्पष्ट नामश्रवणात् । कथङ्कार नो उपलभः ?, सत्य, श्रूयता श्रुती दत्त्वा, विचार्यता च क्षण चक्षुषी निमील्य । अत्र इद रहस्य—एतानि चतुर्थ-षष्ठाष्टमादीनि प्रत्याख्यानकारापणक्षणे नामग्राह न उच्चार्यन्ते किन्तु केनाऽपि एकोपवास कृतः तस्य उपवासस्य चतुर्थ इति सञ्ज्ञा १, एव उपवासद्वयस्य षष्ठ इति सञ्ज्ञा २, उपवासत्रयस्य अष्टम इति सञ्ज्ञा ३, यावत् षोडशोपवासाना चतुर्स्त्रिंशत्तम इति सञ्ज्ञा वर्तते, तथैव श्रीस्थानाङ्गवृत्तौ अपि तृतीयस्थाने चतुर्थस्य अर्थ एकोपवासः, एव षष्ठस्य अर्थ उपवासद्वय, अष्टमस्य अर्थ उपवासत्रय इत्यादि व्याख्यातमस्ति । तथा च तद्वृत्तिपाठः ( १४७ पत्रे )—चउत्थेत्यादिसूत्राणि चतुर्दश व्यक्तानि, केवल एक पूर्वदिने, द्वे उपवासदिने, चतुर्थपारणकदिने भक्त=भोजनं परिहरति यत्र तपसि तत् चतुर्थ भक्त, तदस्य अस्ति स चतुर्थभक्तिक तस्य एव अन्यत्राऽपि, शब्दव्युत्पत्तिमात्र एतत् प्रवृत्तिस्तु चतुर्थभक्तादिशब्दाना एकाद्युपवासादिषु इति । अथ च श्रीआवश्यकसूत्रेऽपि उपवासपाठस्तु अथ ( ८५३ पत्रे ) तथाहि—“सूरे उग्गए अब्भत्तट्ठं पच्चक्खाइ” इत्यादि, पर न तु एव यदुत ‘सूरे उग्गए चउत्थं पच्चक्खाइ’ एव छट्ठभत्त अट्ठमभत्त यावत् चउतीसभत्त । अथ यदि पुनः प्रथमदिने एव षष्ठविधायिनः षष्ठसञ्ज्ञा स्यात् तदा षष्ठभक्तिकमुनेः प्रथमदिनेऽपि पूर्वोक्तानि तिल-तुष-यवोदकानि द्वितीयदिने कल्पनीयानि उपादेयानि स्युः षष्ठभक्तिकत्वात्, पर न च चतुर्थप्रायोग्यपानीयानि, न च एव प्रवृत्ति कुत्राऽपि, एव अष्टमभक्तिकस्याऽपि साधोः

प्रथमदिने तृतीयदिनप्रायोग्याणि आयाम-सौवीर-शुद्धविकटानि त्रीणि पानकानि ग्राह्याणि स्युः अष्टमभक्तिकत्वात्, पर न चतुर्थषष्ठप्रायोग्याणि पानकानि, एव विकृष्टभक्तिकस्याऽपि महामुनेः प्रथमदिने एव उष्णविकटमेव पानीय उपादेय स्यात् न उत्स्वेदिमादिक, असगत च एतत्, यत तृतीयदिनात् उपर्येव तच्छरीर देवताधिष्ठित इति, प्रथमद्वितीयतृतीय-दिनेषु विकृष्टभक्तिकस्य शेषपानकानां अस्वीकारे भगवदाज्ञाभङ्गः स्यात्, यतो विकृष्टभक्तिकस्य एक उष्ण विकटमेव पानक अनुज्ञात, यदाह-श्रीभद्रबाहुस्वामी श्रीकल्पसूत्रे साधुसामाचार्यां, तथाहि-

'विकट्ठभत्तिअस्स भिक्खुस्स कप्पति एगे उसिण वियडे' इति, किं च युगपत् अष्टमप्रत्याख्याने प्रथमदिने चतुर्विधा-हारपरिहारिणः अग्रिमदिनद्वये पानकाहारकर्तुः अष्टमप्रत्याख्यातुः प्राग्दिने कथं प्रत्याख्यानं सगतिं अङ्गति ?। तथा अष्टमप्रत्याख्यानकृत्, उपासकः पाण्मासिकतपश्चिन्तनावसरे आद्यदिने अष्टम कर्तुं शक्नोमि इति उक्तौ सत्या, द्वितीयदिने किं तपः कर्तुं शक्नोमि इति ब्रूयात् ? एव तृतीयेऽपि दिने किं ब्रूयात् ? न च वाच्य दिनत्रयेऽपि अष्टम कर्तुं शक्नोमि इति वक्तव्य अनवस्थाप्राप्तेः, कथं तृतीयदिनेऽपि ? यदि अष्टमप्रत्याख्यान करोति तदा पुन उपवासद्वय अग्रेऽपि कर्तव्य स्यात्, तदकरणे च अष्टमशब्दप्रतिज्ञाभङ्गः स्यात्, तथा अष्टाह्निका कर्तुकामस्य श्राद्धादेः प्रथमदिने एव अष्टादशभक्तयुगपत्प्रत्याख्याने एकस्य कस्याऽपि कथंचित् उपवासस्य भङ्गे अष्टाह्निकाया अपि भङ्ग आपद्येत, पुनरपि केनाऽपि उपवासद्वय कृत आसीत्, पश्चात् अकस्मात् तृतीयोपवासः कृत तस्य अष्टमं कथ्यते न वा ? । अथ यदि षष्ठाष्टमादीना उच्चाररूपता स्यात्, तदा अभक्तार्थादिवत् तेषामपि आकारयत्वापत्तिः स्यात् न च सा क्वाऽपि दृष्टा

गाहित्तए तं० तिलोदग वा तुसोदग वा जवोदगं वा । वासावासं पज्जोसविअस्स अट्ठमभत्तियस्स भिक्खुस्स कप्पंति, तओ पाणगाइ पडिगाहित्तए तं० आयामे वा सोवीरे वा सुद्धवियडे वा इत्यादि" श्रीदशाश्रुतस्कन्धाष्टमाध्ययनादिषु ( कल्पसूत्रे सामाचार्यां ) चतुर्थषष्ठाष्टमादिप्रत्याख्यानस्य स्पष्ट नामश्रवणात् । कथङ्कार नो उपलभ ?, सत्य, श्रूयता श्रुती दत्त्वा, विचार्यता च क्षण चक्षुषी निमील्य । अत्र इदं रहस्य—एतानि चतुर्थ-षष्ठाष्टमादीनि प्रत्याख्यानकारापणक्षणे नामग्राह न उच्चार्यंते किन्तु केनाऽपि एकोपवासः कृतः तस्य उपवासस्य चतुर्थ इति सज्ञा १, एव उपवासद्वयस्य षष्ठ इति सज्ञा २, उपवासत्रयस्य अष्टम इति सज्ञा ३, यावत् षोडशोपवासानां चतुर्स्त्रिंशत्तम इति सज्ञा वर्तते, तथैव श्रीस्थानाङ्गवृत्तौ अपि तृतीयस्थाने चतुर्थस्य अर्थ एकोपवासः, एव षष्ठस्य अर्थ उपवासद्वय, अष्टमस्य अर्थ उपवासत्रय इत्यादि व्याख्यातमस्ति । तथा च तद्वृत्तिपाठः ( १४७ पत्रे )—चउत्थेत्यादिसूत्राणि चतुर्दश व्यक्तानि, केवल एक पूर्वदिने, द्वे उपवासदिने, चतुर्थपारणकदिने भक्त=भोजन परिहरति यत्र तपसि तत् चतुर्थ भक्त, तदस्य अस्ति स चतुर्थभक्तिक तस्य एवं अन्यत्राऽपि, शब्दव्युत्पत्तिमात्र एतत् प्रवृत्तिस्तु चतुर्थभक्तादिशब्दाना एकाद्युपवासादिषु इति । अथ च श्रीआवश्यकसूत्रेऽपि उपवासपाठस्तु अयं ( ८५३ पत्रे ) तथाहि—"सूरे उग्गए अब्भत्तट्ठं पच्चक्खाइ" इत्यादि, पर न तु एव यदुत 'सूरे उग्गए चउत्थ पच्चक्खाइ' एव छट्ठभत्त अट्ठमभत्त यावत् चउतीसभत्त । अथ यदि पुनः प्रथमदिने एव षष्ठविधायिनः षष्ठसज्ञा स्यात् तदा षष्ठभक्तिकमुनेः प्रथमदिनेऽपि पूर्वोक्तानि तिल-तुष-जवोदकानि द्वितीयदिने कल्पनीयानि उपादेयानि स्युः षष्ठभक्तिकत्वात्, पर न च चतुर्थप्रायोग्यपानीयानि, न च एवं प्रवृत्तिः कुत्राऽपि, एव अष्टमभक्तिकस्याऽपि साधोः

॥

प्रथमदिने तृतीयदिनप्रायोग्याणि आयाम-सौवीर-शुद्धविकटानि त्रीणि पानकानि ग्राह्याणि स्युः अष्टमभक्तिकत्वात्, पर न
चतुर्थषष्ठप्रायोग्याणि पानकानि, एव विकृष्टभक्तिकस्याऽपि महामुनेः प्रथमदिने एव उष्णविकटमेव पानीयं उपादेय
स्यात् न उत्स्वेदिमादिक, असंगत च एतत्, यत तृतीयदिनात् उपर्येव तच्छरीर देवताधिष्ठित इति, प्रथमद्वितीयतृतीय-
दिनेषु विकृष्टभक्तिकस्य शेषपानकानां अस्वीकारे भगवदाज्ञाभङ्गः स्यात्, यतो विकृष्टभक्तिकस्य एक उष्ण विकटमेव
पानक अनुज्ञात, यदाह–श्रीभद्रबाहुस्वामी श्रीकल्पसूत्रे साधुसामाचार्यां, तथाहि–
'विकट्ठभत्तिअस्स भिक्खुस्स कप्पति एगे उसिण वियडे' इति, किं च युगपत् अष्टमप्रत्याख्याने प्रथमदिने चतुर्विधा-
हारपरिहारिणः अग्रिमदिनद्वये पानकाहारकर्तुः अष्टमप्रत्याख्यातुः प्राग्दिने कथ प्रत्याख्यान सगतिं अङ्गति? । तथा
अष्टमप्रत्याख्यानकृत्, उपासकः पाण्मासिकतपश्चिन्तनावसरे आद्यदिने अष्टम कर्तुं शक्नोमि इति उक्तौ सत्या, द्विती-
यदिने किं तपः कर्तुं शक्नोमि इति ब्रूयात्? एव तृतीयेऽपि दिने किं ब्रूयात्? न च वाच्य दिनत्रयेऽपि अष्टम कर्तुं
शक्नोमि इति वक्तव्य अनवस्थाप्राप्तेः, कथ तृतीयदिनेऽपि? यदि अष्टमप्रत्याख्यान करोति तदा पुनः उपवासद्वय
अग्रेऽपि कर्तव्य स्यात्, तदकरणे च अष्टमशब्दप्रतिज्ञाभङ्गः स्यात्, तथा अष्टाहिका कर्तुकामस्य श्राद्धादे· प्रथमदिने
एव अष्टादशभक्तयुगपत्प्रत्याख्याने एकस्य कस्याऽपि कथचित् उपवासस्य भङ्गे अष्टाहिकाया अपि भङ्ग आपद्येत, पुनरपि
केनाऽपि उपवासद्वयं कृत आसीत्, पश्चात् अकस्मात् तृतीयोपवासः कृतः तस्य अष्टमं कथ्यते न वा? । अथ यदि
पष्ठाष्टमादीना उच्चाररूपता स्यात्, तदा अभक्तार्थादिवत् तेषामपि आकारयत्वापत्तिः स्यात् न च सा काऽपि दृष्टा

श्रुता च, ततः श्राद्धादि चतुर्थ-पष्ठं-अष्टमं वा यावत् चतुस्त्रिंशत्तमं वा करोतु पर प्रत्यह प्रत्याख्यान एकोपवासस्य एव कार्यते न तु पष्ठाष्टमादीना तेषां सज्ञामात्रत्वात् । अत्राऽऽह परः—ननु-प्रथमदिने अष्टमकर्तु अष्टमकर्तृत्व न उच्यते, तदा तृतीयदिने तस्य कुतो अष्टमकर्तृत्वं अभ्यागतम्? उच्यते-आगमादेव, क आगम? इत्याह श्रीभगवतीसूत्रे सप्तमशतके नवमोद्देशके ( ३२० पत्रे ), तथाहि-

'तते णं से वरुणे नागनत्तुए अण्णया कयाइ रायाभिओगेण गणाभिओगेण वलाभिओगेण रहमुसले सगामे आणत्ते समाणे छट्ठभत्तिए अट्ठमभत्त अणुवट्टेति अट्ठमभत्त अणुवट्टेत्ता कोडुविअपुरिसे सद्दावेइ सद्दावेइत्ता' इत्यादि । पुन श्रीपञ्चमाङ्गे एव तृतीयशतके ( १७१ पत्रे )

तथाहि-"ते ण काले ण ते ण समएण अह गोयमा! छउमत्थकालिआए एक्कारसवासपरिआए छट्ठ छट्ठेण अणिक्खित्तेण तवो कम्मेण सजमेण तवसा अप्पाण भावेमाणे पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे गामाणुगाम दूइज्जमाणे जेणेव सुसमारपुरे नगरे, जेणेव असोअवणसडे उज्जाणे, जेणेव असोअवरपायवे, जेणेव पुढविसीलावट्टओ तेणेव उवागच्छामि उवागच्छित्ता असोगवरपायवस्स हेट्ठा पुढविसीलापट्टयसि अट्ठमभत्त परिगिण्हामि, दोवि पाए साहट्टु-वग्घारिअपाणी एगपोग्गलनिविट्ठदिट्ठी अणिमिसनयणे ईसिंपब्भारगएण काएण अहापणिहिएहिं गत्तेहिं सव्विदिएहिं गुत्तेहिं एगराइय महापडिम उवसपज्जित्ताण विहरामि" इति, अत्र उभयवरुण १ श्रीमहावीरयोर्द्वितीयदिने पष्ठभक्तिकनामत्वे सति तृतीयदिने अष्टमभक्तिकत्व जात, पर प्रथमद्वितीयदिनयोर्न अभूत् इति, तथा "अण्णे भणंति एव चिंतेमर्थ-किं मए पच्चक्खातम? जइ आवस्सगमादि-

आणं जोगाणं सक्केति सधरण काउं तो अब्भत्तट्ठ ववसति, असक्केंतो पुरिमड्ढायंबिलेगट्ठाण, असक्केंतो निवीयं असक्केंतो पोरिसमाइ विभासा, अह्व चउत्थभत्तिओ छट्ठ ववसइ छट्ठभत्तिओ अट्ठममिच्चादि विभासा" इति श्रीआवश्यकचूर्णौ ( २१४ पत्रे ) अत्राऽपि चतुर्थभक्तिको अभूत् प्रथमदिने, अथ च द्वितीयदिने तपश्चिन्तनावसरे षष्ठमनोरथो जात', ततः षष्ठः कृतः ततो विचारयन्तु, तस्य षष्ठकर्तुः प्रथमदिवसे चतुर्थभक्तिकत्व कथित, न षष्ठभक्तिकत्व, एव छट्ठभत्तिओ अट्ठम ववसइ, अत्राऽपि अष्टमकर्तुरपि द्वितीयदिने षष्ठभक्तिकत्वेन प्रोक्तमिति । इति प्रत्यह प्रत्याख्यान एकोपवासस्य एव कार्यते न षष्ठाष्टमादीना इति ॥ १६ ॥

॥ इति अनेकोपवासप्रत्याख्याननिषेधाधिकारः ॥ १६ ॥

ननु-श्रीखरतरगच्छीयाः श्राद्धाः सामायिकदण्डकोच्चार वारत्रय कुर्वन्ति, तत्स्वगच्छपरम्परया किं वा ग्रन्थानुसारेण ? उच्यते-ग्रन्थानुसारेण एव, कथ ? इत्याह-श्रीजिनपतिसूरिभिः स्वकृतसामाचार्यां सामायिकदण्डकोच्चारस्य वारत्रय पठनोपदेशात्, तथाहि-"पडिक्कमणाइसु सामाइदडगो नवकारो अ वारतिग भणिज्जइ १" एव श्रीजिनप्रभसूरिभिरपि अभाणि, तथाहि-"नमुक्कारतिगपुव्वं करेमि भते ! सामाइय इच्चाइ दडग वोसिरामि पज्जत वारतिग कड्ढिअ खमासमणेण इरिय पडिक्कमिअ" इत्यादि २ इत्थमेव श्रीतरुणप्रभसूरिभिरपि स्वकृतबालावबोधे प्रोचे, तथाहि-"मुहपत्ती पडिलेही एक खमा० सामाइय संदिसावेमि, बीय ख० सामाइय ठाएमि ती० ख० देइकरी अर्धावनतगात्र हु तउ तिण्ह नमस्कार कही त्रिणि वार करेमि भते० इसउं सामायिक सूत्र त्रिणि वार कहइ" इत्यादि ३ । ननु-काऽपि जीर्णग्रन्थेऽपि सामायिकदण्डकोचार

पाठो वारत्रयं पठितोऽस्ति ? उच्यते–श्रीव्यवहारभाष्ये चतुर्थोद्देशके यतीना दीक्षाग्रहणे ( ५८ पत्रे ) प्रोक्तत्वात्, तथाहि– "अप्पो वा थिरहत्थो, सामाइअतिगुणमट्ठगहण च । तिगुणं पादक्खिणं, नित्थारग गुरुगुणविवड्ढी ॥ २०९ ॥" तट्टीकाकारैः मलयगिरिभिरपि त्रिःकृत्वः सामायिकोच्चारण व्याख्यातमस्ति ४, पुनर्व्यवहारभाष्यटीकायां तत्रैव लिखित "यतीनां व्रतोच्चारे कार्यमाणे सति एकैकं व्रत गुरुर्यदि वारत्रय नोच्चारयति तदा गुरोश्चतुर्लघुनामप्रायश्चित्तापत्ति स्यात्", तथाहि– ( ५८ पत्रे ) "अप्पत्ते अकहित्ते अणहिगय अपरिच्छ अइक्कमे पासे । एक्केक्को चउगुरुगा, चोअग सुत्त तु कारणिअं ॥२११॥" तत्र अतिक्रमे एकैकस्य व्रतस्य वारत्रय अनुच्चारणे एतेषु सर्वेषु प्रत्येक एकैकस्मिन् प्रायश्चित्त चत्वारो गुरुकाः । ४ । ननु–इदं सामायिकदण्डकोच्चारण वारत्रयं तु यतीनां दीक्षाग्रहणादौ प्रतिपादित, न श्रावकाणा नामग्राह ? सत्य, यद्यपि श्रावकाणा नामग्राह न उक्त, तथापि श्रावकाणामपि सामायिकनवमव्रतोच्चारे कथ वारत्रय न उच्चार्यते ? व्रतोच्चारविधिः सर्वेषां सर्वत्र समानत्वात् श्रावकाणा साध्वनुगामिक्रियाकरणत्वोपदेशत्वाच्च । न च वाच्य खरतरगच्छे एव वारत्रयं दण्डकोच्चारण, अन्येष्वपि बहुषु गच्छेषु सम्यक्त्वव्रतशीलव्रताद्युच्चारे वारत्रय तदुच्चारस्य पठ्यमानत्वात् । ननु–आवश्यकचूर्णि १ तट्टीका २ पञ्चाशकवृत्ति ३ नवपदप्रकरणविवरण ४ पौषधविधिप्रकरणादिषु ५ कथ सामायिकोच्चारस्य बहुत्व न दर्शितम् ? उच्यते—तत्राऽपि सामान्यतया उक्तौ अपि जात्यैकवचनमिति न्यायेन बहुत्वं ज्ञेयं । यतो यथा ओघनिर्युक्तौ "सामाइय उभयकाल पडिलेहा" इति पाठे सामान्यतया सामायिकशब्द उक्तः, तथापि तद्वृत्तिकृता श्रीद्रोणाचार्येण 'सामाइअ ति' सामायिक वारत्रयमाकृष्य स्वपितीति व्याख्यात। एव उत्तराध्ययनेष्वपि षड्विंशाध्ययने प्रतिक्रमणा-

ध्ययनाधिकारे (५४४ पत्रे) "काउस्सग्ग तओ कुज्जा" अय पाठः सामान्यतः कायोत्सर्गाभिधायी अपि टीकाकृता "कायोत्सर्ग-चारित्र १ दर्शन २ श्रुतज्ञान ३ शुद्धिनिमित्तं कायोत्सर्गत्रयलक्षणं जातौ एकवचनं, ततो गुरुवन्दनाद् अनन्तरं कुर्याद्" इति व्याख्यात, एव अत्राऽपि आवश्यकचूर्ण्यादिषु सामान्यतः सामायिकाभिधानेऽपि अन्यग्रन्थसम्मत्या सप्रदायाच्च तत् त्रय अवसेयम्। ननु-रात्रिपौषधिकाना शयनावसरे सामायिकदण्डकत्रय तु साक्षात् दर्शित=तत्सत्य-पर अन्यत्र अन्यदा सामायिकग्रहणसमये न तत् त्रित्व दर्शित ?, सत्य, यदि शयनसमयेऽपि तत्त्रय अभ्यनुज्ञात तदा सामायिकग्रत उच्चरद्भिः सद्भिः विशेषतः तत् त्रित्व वाच्यम्। तथा निशीथचूर्णौ अपि सामायिकदण्डकत्रयोच्चारण स्पष्ट उद्दिष्ट अस्ति, तथाहि-"एव जहा जाय दाय थामपासे वि अस्स आयरिओ भणइ इमस्स साहुस्स सामाइअस्स आरुहावण करेमि काउस्सग्गं, अन्ने भणति उच्चारावण करेमि काउस्सग्ग', उभयथाऽपि अविरुद्धे "अन्नत्थ ऊससिएण जाव वोसिरामित्ति, लोगस्स उज्जोयगरे चिंतेता वा नमो अरिहंताण पढिचा पच्छा पव्वावणजेण सेहो सामाइयं तिक्खुत्तो कड्ढइ" इत्यादि॥

ननु-यदि भवतां गच्छे सामायिकग्रहणाधिकारे वारत्रय सामायिकदण्डकोच्चारः, तदा भवत्पूर्वजैः श्रीजिनवल्लभसूरिभिः पौषधविधिप्रकरणे। सामायिकोच्चाराधिकारे किमिति वारत्रयं सामायिकदण्डकोच्चारो न प्रतिपादित ? उच्यते—सत्य, यद्यपि श्रीजिनवल्लभसूरिभिः आवश्यकवृत्तिचूर्ण्यनुसारेण (३२ पत्रे) "पचमगलं कड्ढित्ता भणइ करेमि भते ! सामाइय" इत्यादिपाठः सामान्यतया एव लिखितः, तथापि तेषा अभिप्राय तच्छिष्य-प्रशिष्यैः एव ज्ञायते न अपरैः, अत एव तत्पट्टपरम्परागतैः श्रीजिनप्रभसूरि १ श्रीजिनपतिसूरि २ श्रीतरुणप्रभसूरिभिः ३ तदभिप्राय जानद्भिः विधिप्रपा १

पाठो वारत्रय पठितोऽस्ति ? उच्यते-श्रीव्यवहारभाष्ये चतुर्थोद्देशके यतीना दीक्षाग्रहणे ( ५८ पत्रे ) प्रोक्तत्वात्, तथाहि-"अण्णो वा विरहत्थो, सामाइअतिगुणमड्डगहणं च । तिगुणं पादक्खिणण, नित्थारग गुरुगुणविवड्ढी ॥ २०९ ॥" तट्टीकाकारैः मलयगिरिभिरपि त्रिःकृत्वः सामायिकोच्चारणं व्याख्यातमस्ति ४, पुनर्व्यवहारभाष्यटीकाया तत्रैव लिखित "यतीनां व्रतोच्चारे कार्यमाणे सति एकैक व्रत गुरुर्यदि वारत्रयं नोच्चारयति तदा गुरोश्चतुर्लघुनामप्रायश्चित्तापत्तिः स्यात्", तथाहि- ( ५८ पत्रे ) "अप्पत्ते अकहित्ते अणहिगय अपरिच्छ अइक्कमे पासे । एक्केको चउगुरुगा, चोअग सुत्त तु कारणिअं ॥ २११ ॥" तत्र अतिक्रमे एकैकस्य व्रतस्य वारत्रय अनुच्चारणे एतेषु सर्वेषु प्रत्येक एकैकस्मिन् प्रायश्चित्त चत्वारो गुरुकाः । ४ । ननु-इद सामायिकदण्डकोच्चारण वारत्रयं तु यतीना दीक्षाग्रहणादौ प्रतिपादित, न श्रावकाणा नामग्राह ? सत्य, यद्यपि श्रावकाणा नामग्राह न उक्त, तथापि श्रावकाणामपि सामायिकनवमव्रतोच्चारे कथ वारत्रय न उच्चार्यते ? व्रतोच्चारविधिः सर्वेषां सर्वत्र समानत्वात् श्रावकाणा साध्वनुगामिक्रियाकरणत्वोपदेशत्वाच्च । न च वाच्यं खरतरगच्छे एव वारत्रय दण्डकोच्चारणं, अन्येष्वपि बहुषु गच्छेषु सम्यक्त्वव्रतशीलव्रताद्युच्चारे वारत्रय तदुच्चारस्य पठ्यमानत्वात् । ननु-आवश्यकचूर्णि १ तट्टीका २ पञ्चाशकवृत्ति ३ नवपदप्रकरणविवरण ४ पौषधविधिप्रकरणादिषु ५ कथ सामायिकोच्चारस्य बहुत्व न दर्शितम् ? उच्यते—तत्राऽपि सामान्यतया उक्तौ अपि जात्यैकवचनमिति न्यायेन बहुत्वं ज्ञेय । यतो यथा ओघनिर्युक्तौ "सामाइय उभयकाल पडिलेहा" इति पाठे सामान्यतया सामायिकशब्द उक्तः, तथापि तद्वृत्तिकृता श्रीद्रोणाचार्येण 'सामाइअ ति' सामायिक वारत्रयमाकृष्य स्वपितीति व्याख्यातं । एव उत्तराध्ययनेष्वपि षड्विंशाध्ययने प्रतिक्रमणा-

चलवलइ करी प्रमार्जिवानुं ज कार्ज करइ, पणि महात्मानी परि मुख आगइ धरइ नही, तिहा आचरणाज प्रमाण इत्यादि" एव तपागच्छाधिराजश्रीरत्नशेखरसूरिणाऽपि स्वकृतश्राद्धविधिविनिश्चये लिखितमस्ति, कायोत्सर्गकरणावसरे वन्दनकदानावसरे च "रजोहरण चरणपार्श्वे मोक्तव्यमिति भणितमस्ति" ननु-तपागच्छीयसूरिप्रमुखैः साधुवत् रजोहरणधरण निषिद्ध वर्तते तर्हि कथ तपागच्छीयश्राद्धा क्रिया कुर्वन्तः साधुवत् रजोहरण बिभ्रति ? उच्यते-तत्राऽर्थे तद्गुरव एव प्रष्टव्याः, न वयं काञ्चन निन्दामः ॥ १८ ॥

॥ इति श्रावकाणा चलवलक नैश्चयिकं न भवतीति विचार ॥ १८ ॥

ननु-आत्मीयगच्छे पौषधिकाः सत्यपि सामायिकव्रते पुनरपि रात्रिपश्चिमप्रहरे सामायिक नवीनं गृह्णन्ति, तत्कथ ? उच्यते-युक्तियुक्तत्वात्, का युक्तिः ? इत्याह-श्रूयता, सामायिकस्य जघन्यो मुहूर्त्तमेक, उत्कृष्टश्च अष्टौ यामा कालो, ध्यानशतकेऽभ्यधायि, ततो गतरात्रे मुहूर्त्तशेषे सामायिकं गृहीत आसीत्, पुनरग्रिमरात्रेरपि मुहूर्त्ते शेषे अष्टौ यामाः सपूर्णा बभूवुः, तत्संपूर्णताभवनेन सामायिककालोऽपि अष्टप्रहररूप उत्कृष्टः सपूर्णोऽजनिष्ट, पौषधश्च सामायिकानुगतोऽतः सामायिक नवीन अवश्य ग्राह्यमेव ॥

ननु-नवीनसामायिकग्रहणे शास्त्राक्षराणि अपि सन्ति ? उच्यते-सन्तीति, कानीत्याह-श्रीजिनवल्लभसूरिभिः पौषधविधिप्रकरणे ( ३८ पत्रे ) उक्तत्वादिति तथाहि-"तओ राईए चरमे जामे उट्ठेऊण इरियावहिअ पडिक्कमिअ सक्कत्थएण

पुनः सङ्घाचारवृत्तौ तपागच्छीयश्रीधर्मकीर्त्युपाध्यायेनाऽपि "खेलिणकविंट्ठ वुगं पुण, अगीयसे हाइयाण समाव । संभवइ गिहत्याण वि, कयाइ एगत्तभावमि ॥ १ ॥" इत्युक्तत्वात्, खेलिणकविंट्ठकायोत्सर्गदूषणद्वय, अगीतार्थशिष्याणां लगत् प्रोक्त, गृहस्थस्य तु एतद्दूषणद्वयं, कदाचित् एकत्वभाव गतस्य भवतुक्त पर न सर्वदा, एकत्वभावश्च गृहस्थस्य एकादशप्रतिमायामेव न अर्वाक् । अत्र इद रहस्यम्,—कदाचित् यतनानिमित्त श्राद्धो रजोहरण बिभर्ति तथापि क्रिया कुर्वन् साधुवत् न मुखाभावो रक्षति, यतः श्रीअनुयोगद्वारसूत्रवृत्त्योः (३० पत्रे) अपि रजोहरणादीना यथोचितव्यापारनियोगे अर्पितत्वेन युक्त्वमणनात्, तथाहि—

"से किं तं लोगुत्तरिअ भावावस्सय जण्णं इमे समणे वा समणी वा सावओ वा साविआ वा तच्चित्ते तम्मणे तल्लेसे तदज्झवसिए तत्तिव्वज्झवसाणे तदट्ठोवउत्ते तदप्पिअकरणे तब्भावणाभाविए (एगमणे अविमाणजिणवयणधम्मरागरत्तमणे) अण्णत्थ कत्थइ मण अकरेमाणे उभओकाल आवस्सय करेंति । से त लोगुत्तरिअ भावावस्सयं", अत्र "तदप्पिअकरणे" इति पदस्य वृत्तिर्यथा तदर्पितकरणः करणानि तत्साधकतमानि, देह—रजोहरणमुखवस्त्रिकादीनि तस्मिन् आवश्यके यथोचितव्यापारनियोगेन अर्पितानि—नियुक्तानि येन स तथा सम्यक् यथास्थानन्यस्तोपकरण इत्यर्थः ।

पुनरपि तपागच्छनायकश्रीसोमसुन्दरसूरि—श्रीजयचन्द्रसूरि—श्रीविशालराजसूरि—श्रीरत्नशेखरसूरि—श्रीउदयनन्दसूरिपदकमलसेविना शिष्यहेमहंसगणिना श्राद्धवराभ्यर्थनया कृते श्रीषडावश्यकबालावबोधेऽपि लिखितमस्ति यथा—"श्रावको वन्दन ददन् चलचलकेन प्रमार्जनस्य एव कार्य करोति न तु महात्मवत् मुखाग्रे रक्षति, तथाहि—"वांदणा देतउ श्रावक

चलचलइ करी प्रमार्जिवानुज कार्ज करइ, पणि महात्मानी परि मुख आगइ धरइ नही, तिहा आचरणाज प्रमाण इत्यादि" एव तपागच्छाधिराजश्रीरत्नशेखरसूरिणाऽपि स्वकृतश्राद्धविधिविनिश्चये लिखितमस्ति, कायोत्सर्गकरणावसरे वन्दनकदानावसरे च "रजोहरण चरणपार्श्वे मोक्तव्यमिति भणितमस्ति" ननु–तपागच्छीयसूरिप्रमुखैः साधुवत् रजोहरणधरण निषिद्ध वर्तते तर्हि कथ तपागच्छीयश्राद्धाः क्रिया कुर्वन्तः साधुवत् रजोहरण बिभ्रति ? उच्यते–तत्राऽर्थे तद्गुरव एव प्रष्टव्याः, न वय काश्चन निन्दामः ॥ १८ ॥

॥ इति श्रावकाणा चलचलक नैश्चयिक न भवतीति विचार ॥ १८ ॥

ननु–आत्मीयगच्छे पौषधिका सत्यपि सामायिकमते पुनरपि रात्रिपश्चिमप्रहरे सामायिक नवीन गृह्णन्ति, तत्कथ ? उच्यते–युक्तियुक्तत्वात्, का युक्तिः ? इत्याह–श्रूयता, सामायिकस्य जघन्यो मुहूर्त्तमेक, उत्कृष्टश्च अष्टौ यामा कालो, ध्यानशतकेऽभ्यधायि, ततो गतरात्रे मुहूर्त्तशेषे सामायिक गृहीत आसीत्, पुनरग्रिमरात्रेरपि मुहूर्त्ते शेषे अष्टौ यामाः संपूर्णा बभूवुः, तत्सपूर्णताभवनेन सामायिककालोऽपि अष्टप्रहररूप उत्कृष्टः सपूर्णोऽजनिष्ट, पौषधश्च सामायिकानुगतोऽतः सामायिक नवीन अवश्यं ग्राह्यमेव ॥

ननु–नवीनसामायिकग्रहणे शास्त्राक्षराणि अपि सन्ति ? उच्यते–सन्तीति, कानीत्याह–श्रीजिनवल्लभसूरिभिः पौषधविधिप्रकरणे ( ३८ पत्रे ) उक्तत्वादिति तथाहि–"तओ राईए चरमे जामे उट्ठेऊण इरियावहिअ पडिकमिअ सक्कत्थएण

पुनः सङ्घाचारवृत्तौ तपागच्छीयश्रीधर्मकीर्त्युपाध्यायेनाऽपि "खेलिंणकविट्ठ वुगं पुण, अगीयसे हाइयाण समाव। सभयइ गिहत्याण वि, कयाइ एगत्तभावमि ॥ १ ॥" इत्युक्त्वात्, खेलिणकविट्ठकायोत्सर्गदूपणद्वय, अगीतार्थशिष्याणां लगत् प्रोक्त, गृहस्थस्य तु एतद्दूपणद्वयं, कदाचित् एकत्वभाव गतस्य भवयुक्त पर न सर्वदा, एकत्वभावश्च गृहस्थस्य एकादशप्रतिमायामेव न अर्वाक्। अत्र इद रहस्यम्,—कदाचित् यतनानिमित्त श्राद्धो रजोहरण विभर्ति तथापि क्रिया कुर्वन् साधुवत् न मुखाग्रादौ रक्षति, यतः श्रीअनुयोगद्वारसूत्रवृत्त्योः (३० पत्रे) अपि रजोहरणादीना यथोचितव्यापारनियोगे अर्पितत्वेन युक्त्वभणनात्, तथाहि–

"से किं तं लोगुत्तरिअं भावावस्सय जण्ण इमे समणे वा समणी वा सावओ वा साविआ वा तच्चिते तम्मणे तल्लेसे तदज्झवसिए तत्तिवज्झवसाणे तदट्ठोवउत्ते तदप्पिअकरणे तब्भावणाभाविए (एगमणे अविमाणजिणवयणधम्मरागरत्तमणे) अण्णत्थ कत्थइ मण अकरेमाणे उभओकाल आवस्सय करेंति। से त लोगुत्तरिअ भावावस्सयं", अत्र "तदप्पिअकरणे" इति पदस्य वृत्तिर्यथा तदर्पितकरणः करणानि तत्साधकतमानि, देह–रजोहरणमुखवस्त्रिकादीनि तस्मिन् आवश्यके यथोचितव्यापारनियोगेन अर्पितानि—नियुक्तानि येन स तथा सम्यक् यथास्थानन्यस्तोपकरण इत्यर्थ।

पुनरपि तपागच्छनायकश्रीसोमसुन्दरसूरि–श्रीजयचन्द्रसूरि–श्रीविशालराजसूरि–श्रीरत्नशेखरसूरि–श्रीउदयनन्दसूरिपदकमलसेविना शिष्यहेमहंसगणिना श्राद्धवराभ्यर्थनया कृते श्रीषडावश्यकबालावबोधेऽपि लिखितमस्ति यथा–"श्रावको वन्दन ददन् चलवलकेन प्रमार्जनस्य एव कार्यं करोति न तु महात्मवत् मुखाग्रे रक्षति, तथाहि—"वादणा देतउ श्रावक

...॥ ५०२ ॥" पुनस्तत्रैव ग्र...

...। ४ । पुन श्रीहरिभद्रसूरिविरा...

–उग्घाडापोरुसी ताव सो पजिमितो, परित्ता सिणा...

...घे ठाइदव इति" । ५ । एवमेव श्रीआवश्यकलघुवृत्तावपि तिलकाचार्य...

...श्रा श्रीशीतलाचार्यसबन्धिवन्दनाधिकारे ( ५१२ पत्रे ), तथाहि–"जे तुज्झ भाइणे ...

...वेट्ठा, तेण कहिअ, तुट्ठो, इमेसिं पि रत्तिं सुहेण अज्झवसाणेण चउण्हवि केवलणाण समुप्पन्न, पभा...

...दिलाइ पलोएइ, पच्छाहे मुहुत्तेण एहिंति, पोरिसिच्चि सुत्त मण्णे करेंति अच्छति, उग्घाडाए अत्थपोरिसिति अतिचिरा-

...यव ते देवकुलिअ गया, ते वीअरागाणा न आढयति, दडओऽणेण ठविणो पडिक्कतो, आलोइए भणति–कओ

...दरामि ? भणति–जओ मे पडिहायति सो चिंतेति–अहो दुट्ठसेहा निलज्जति" । ७ । इत्यमेव श्रीआवश्यकचूर्णावपि

...उग्घाडा पोरिसिति, अतिचिराविए देवकुलिअ गया ते अ वीअरागाणा ठायति, दडओ ठविउ पडिक्कतो" इत्या-

...दि । ८ । ...श्रीयसूरिकृतेऽपि ग्रन्थे क्वाऽपि उग्घाडा पोरिसी भणिताऽस्ति? उच्यते–अनेकेषु ग्रन्थेषु तथा

...रत्नशेखरसूरिणा स्वकृतश्राद्धविधिकौमुद्यां ( ४२० पत्रे ), तथाहि–"तच्च प्रतिक्रमण पञ्चभेद

चेइए वंदिअ पुण व पुत्तिं पेहिअ नमुक्कारपुव्वं सामाइअसुत्त कड्ढिअ सदिसाविअ सज्झाय कुणइ जाव पडिक्कमणवेला, तओ पुव्वविहिणा पडिक्कमिअ पडिलेहणाइअं करेइ" ।१। एवं श्रीजिनप्रभसूरिभिरपि विधिप्रपाया अभाणि—

"तओ पच्छिमरयणीए उट्ठिअ इरियावहिअं पडिक्कमिअ कुसुमिणदुस्सुमिणकाउस्सग्ग सय उस्सास, मेहुणसुमिणे अट्ठुत्तरसयउस्सासं करिअ सक्कत्थय भणिअ पुव्वुत्तविहिए सामाइय काउं सज्झायं सदिसाविअ ताव करेइ जाव पडिक्कमणवेला" ।२। एवमेव श्रीतरुणप्रभसूरिकृतषडावश्यकबालावबोधेऽपि ज्ञेयं ॥ ३ ॥ ननु-जीर्णग्रन्थस्याऽपि एतत्सम्मतिरस्ति ? उच्यते, श्रीषडावश्यकचूर्णौ तथैव प्रोक्तत्वात् तथाहि-"तओ राइए चरमजामे उट्ठिऊण इरियावहिअ पडिक्कमिअ पुत्तिं च पोत्तिं पेहिअ नमुक्कारपुव्व सामाइयसुत्तं कड्ढिअ संदिसाविअ सज्झाय कुणइ" ॥ ४ ॥ इति ॥ १९ ॥

॥ इति पौषधिकानां पश्चिमरात्रौ नवीनसामायिकग्रहणाधिकारः ॥ १९ ॥

ननु-तपागच्छप्रमुखगच्छेषु साधवः पादोनप्रहरे प्रतिलेखनासमये "उग्घाडा पोरिसी" इति न भणन्ति किन्तु "बहुपडिपुन्ना पोरिसी" इति, अस्मन्नां गच्छे तु "उग्घाडा पोरिसी" इति भणन्ति तत्र किं गच्छाचारः प्रमाणं ?, किं वा शास्त्रोक्तिः ? उच्यते—शास्त्रोक्तिरेव, का शास्त्रोक्तिः ? इत्याह-श्रीविधिप्रपाया (१४ पत्रे ) श्रीजिनप्रभसूरिभिः तथैव भणनात्, तथाहि-" तत्थ वेवसिअ पडिक्कम रयणिपढमपहर जाव सुज्झइ, राइय पुण आयस्सयचुण्णिअभिप्पायेण उग्घाडापोरिसिं जाव, ववहाराभिप्पाएण पुण पुरिमड्ढं जाव सुज्झइ" इत्यादि ।१।

एवमेव श्रीतरुणप्रभसूरिविनिर्मितश्रीषडावश्यकबालावबोधेऽपि ।२। ननु-प्राक्तनपूर्वाचार्यविरचितग्रन्थेष्वपि एत-

इत्याह-श्रीप्रवचनसारोद्धारसूत्रे ( १६६ पत्रे ) ५९२ गाथाशकले तथैव
त्सम्मतिरस्ति ? उच्यते—अस्तीति, कथ ? इत्याह-श्रीप्रवचनसारोद्धारसूत्रे उग्घाडपोरिसीए उ पत्तनिज्जोगपडिलेहा
उक्त्वात्, तथाहि-"उवगरणचउद्दसगं, पडिलेहिज्जइ दिणस्स पहरतिगे। "साधुवचन-उद्घाटा पौरुषी" इत्यादिक विभ्र-
॥ ५९२ ॥" पुनस्तत्रैव ग्रन्थे ( ४८ पत्रे ) १०६ गाथाव्याख्याने प्रत्याख्यानाधिकारेऽपि, तथाहि-"साहुणो
मकारणम् । ४ । पुन श्रीहरिभद्रसूरिविरचितावश्यकबृहद्वृत्तौ ( ८५२ पत्रे ) तेण से भुजवस्स कहित ण पूरितति
भणति-उग्घाडापोरुसी ताव सो पज्जिमितो, परित्ता मिणाति अण्णो वा मिणति, । ६ । पुन श्रीआवश्यकवृत्तौ हारि-
ताचे ठाइयव्व इति" । ५ । एवमेव श्रीआवश्यकलघुवृत्तावपि तिलकाचार्यकृतायां भाइणिज्जा ते आगया वियालोत्ति न
भद्रा श्रीशीतलाचार्यसबन्धिवन्दनाधिकारे ( ५१२ पत्रे ), तथाहि-"जे तुज्झ केवलणाण समुप्पन्न, पभाए आयरिया
पविट्ठा, तेण कहिअ, वुड्ढो, इमेसिं पि रत्तिं सुहेण अज्झवसाणेण चउण्हवि उग्घाडाए अत्थपोरिसिति अतिचिरा-
दिसाउ पलोएइ, एत्ताहे मुहुत्तेण एहिंति, पोरिसित्ति सुत्त मण्णे करेंति अच्छति, आलोइए भणति-कओ
विपय ते देवकुलिअ गया, ते वीअरागाणा न आढयति, दंडओऽणेण ठविणो पडिफतो, इत्यमेव श्रीआवश्यकचूर्णावपि
घसामि ? भणति-अओ मे पडिहायति सो । चिंतेति-अहो वुड्ढसेहा निहज्जति" । ७ । दंडओ ठविउ पडिफतो" इत्या-
'उग्घाडाए जत्थ पोरिसिति, अतिचिराविए देवकुलिअ गया ते अ वीअरागाणा ठायति, उच्यते-अनेकेषु ग्रन्थेषु तथा
दे । ८ । ननु-तपागच्छीयसूरिकृतेऽपि ग्रन्थे क्वाऽपि उग्घाडा पोरिसी भणिताऽस्ति? तथाहि-"तच्च प्रतिक्रमण पञ्चमेद
चोर्डे श्रीजयचन्द्रनामकश्रीरत्नशेखरसूरिणा स्वकृतश्राद्धविधिकौमुद्या ( ४२० पत्रे ),

दैवसिकं रात्रिकं पाक्षिकं चातुर्मासिकं सांवत्सरिकं चेति। एषां कालस्तु उत्सर्गेण एवं उक्तः, "अद्ध निवुड्डे बिंबे, सुत्त कड्ढति गीअत्था। इअवयणपमाणेण, देवसि आवस्सए कालो ॥ १ ॥" रात्रिकस्य चैव आवस्सगस्स समए, निद्दामुद्द चयंति आयरिआ। तह तं कुणति जह दस-पडिलेहणतरं सूरो ॥ २ ॥" अपवादस्तु दैवसिकं दिवसतृतीयप्रहरादर्वाक् अर्धरात्रं यावत्। योगशास्त्रवृत्तौ तु मध्याह्नादारभ्य अर्धरात्रं यावत् इत्युक्तं, रात्रिकं अर्धरात्रादारभ्य मध्याह्नं यावत्। उक्तं च—

"उग्घाडपोरिसिं जा, सइ अवस्सअस्सचुण्णीए। ववहाराभिप्पाया, भणति पुण जाव पुरिमड्ढं ॥ २ ॥" पाक्षिकचातुर्मासिकसांवत्सरिकाणि तु पक्षाद्यन्तेषु च स्युः। ९। पुनरपि श्रीदेवेन्द्रसूरिविरचितश्रीश्राद्धदिनकृत्यवृत्तौ अपि अमाणि, तथाहि—"साधुवचन उग्घाडा पोरिसी इत्यादि विभ्रमकारण। १०।" पुनरपि श्रीदेवेन्द्रसूरिकृतप्रत्याख्यानभाष्येऽपि तथाहि—"साहुवयण उग्घाडा पोरिसी तणुसुत्थया समाहिचि" इत्यादि २५ गाथायाम्। ११।

॥ इति उग्घाडा पोरिसी भणनाधिकारः ॥ २० ॥

ननु—श्रीखरतरगच्छे पुत्रादिजन्मनि तन्मरणे च जातमृतकं सूतकं गण्यते, तत्राऽपि पुत्रस्य एकादशदिनानि पुत्र्याश्च द्वादशदिनानि यावत् तद्गृहे खरतरसाधवो भिक्षा न गृह्णन्ति, तपागच्छादिगच्छेषु तु केषुचित् न सूतकशङ्कायाङ्कः, तत्र मूलतः क्वाऽपि शास्त्रे सूतकगृहवर्जनं समुपदिष्टं वर्तते न वा ? उच्यते—श्रीजिनपतिसूरिभिः निजसामाचार्यां प्रोक्तत्वात्, तथाहि—"सयवइसूरिपयकुलेसु वि दसाह सुअसूअगकुलाण च एगारसाहं पुत्तिआ सूअग बारसाह मयगकुलाण च वज्जण ॥ २१ ॥" एवं तरुणप्रभसूरिकृतश्रीषडावश्यकबालावबोधे २ पुनरन्यप्रन्थीयगाथाबालावबोधव्याख्यानेऽपि यथा—

"छक्कायदयावंतो वि, संजओ दुलहं कुणइ बोहिं । आहारे नीहारे, दुगुंछिए पिंडगहणे अ ॥ १ ॥" इत्यत्र [illegible]
पिंडगहणे अ सूतक मृतक रजकै पण्कर प्रभृतिक गे छद दुगुंछित [illegible]
रूप तणइ ग्रहणि दुलभ इति संबंध करियउ । ३ । ननु-क्वापि सूत्रेषु [illegible] अपि [illegible]
उच्यते-सन्तीति, श्रीसूत्रकृदङ्गसूत्रवृत्त्योः ( २८० पत्रे ), तथैव [illegible], तथाहि-"[illegible]
अ । मामारिअं च पिंडं च, न विज्ज परिजाणिआ ॥ २१ ॥" व्याख्यालेशः-सागारिकः शय्यातरः, [illegible]
वा सागारिकपिण्ड इति सूतकगृहपिण्डं जुगुप्सितं वर्णापसदपिण्डं वा, [illegible]
परिज्ञाय प्रत्याख्यानपरिज्ञया च परिहरेदिति" ० नध्ययने २१ गाथायाम् ॥ ४ ॥ पुनः श्री[illegible]
प्रथमाध्ययने चतुर्थोद्देशके ( ६०७ पत्रे ),

तथा हि-"भिक्खागा नामेगे एवमाहंसु [illegible] गामाणुगामं दूइज्जमाणे [illegible]
सनिरुद्धाए नो महालए से हंता [illegible] गामाणि भिक्खायरियाए वयह' इति । [illegible]
'भिक्खागाः' साधवस्तद्विहारिणः ते [illegible], [illegible] ग्रामानुग्रामं दूइज्जमाणा [illegible]
'यथा क्षुल्लकोऽयं ग्रामः [illegible], [illegible] इति [illegible]
लार्थ, अतिशयेन क्षुल्लक इत्यर्थः, [illegible] । इति [illegible], [illegible]
येव ब्रूयात्" इति । ५ । पुनः श्रीनिशीथभाष्यचूर्णौ यथा "जे भिक्खू दुगुंछियकुलेसु [illegible]-

दैवसिकं रात्रिकं पाक्षिकं चातुर्मासिकं सांवत्सरिकं चेति । एषां कालस्तु उत्सर्गेण एव उक्त, "अद्ध निवुड्डे बिंबे, सुत्त कड्ढति गीअत्था । इअवयणपमाणेण, देवसि आवस्सए कालो ॥ १ ॥" रात्रिकस्य चैव आवस्सगस्स समए, निद्दामुद्द चयति आयरिआ । तह तं कुणति जह दस-पडिलेहणतरं सूरो ॥ २ ॥" अपवादस्तु दैवसिकं दिवसतृतीयप्रहरादर्वाक् अर्धरात्रं यावत्। योगशास्त्रवृत्तौ तु मध्याह्नादारभ्य अर्धरात्रं यावत् इत्युक्त, रात्रिकं अर्धरात्रादारभ्य मध्याह्नं यावत्। उक्त च-"उग्घाडपोरिसिं जा, सइ अवस्सयस्सचुण्णीए । ववहाराभिप्पाया, भणति पुण जाव पुरिमड्ढ ॥ २ ॥" पाक्षिक-चातुर्मासिकसांवत्सरिकाणि तु पक्षाद्यन्तेषु च स्युः । ९ । पुनरपि श्रीदेवेन्द्रसूरिविरचितश्रीश्राद्धदिनकृत्यवृत्तौ अपि अभाणि, तथाहि-"साधुवसन उग्घाडा पोरिसी इत्यादि विभ्रमकारण । १० ।" पुनरपि श्रीदेवेन्द्रसूरिकृतप्रत्याख्यान-भाष्येऽपि तथाहि-"साहुवयण उग्घाडा पोरिसी तणुसुच्छया समाहित्ति" इत्यादि २५ गाथायाम् । ११ ।

॥ इति उग्घाडा पोरिसी भणनाधिकारः ॥ २० ॥

ननु-श्रीखरतरगच्छे पुत्रादिजन्मनि तन्मरणे च जातमृतकं सूतक गण्यते, तत्राऽपि पुत्रस्य एकादशदिनानि पुत्र्याश्च द्वादशदिनानि यावत् तद्गृहे खरतरसाधवो भिक्षां न गृह्णन्ति, तपागच्छादिगच्छेषु तु केषुचित् न सूतकशङ्काशङ्क', तत्र मूलतः क्वाऽपि शास्त्रे सूतकगृहवर्जनं समुपदिष्ट वर्तते न वा ? उच्यते—श्रीजिनपतिसूरिभिः निजसामाचार्यां प्रोक्तत्वात्, तथाहि-"सघवइसूरिपयकुलेसु वि दसाह सुअसूअगकुलाण च एगारसाहं पुत्तिआ सूअग बारसाह मयगकुलाण च वज्जणं ॥ २१ ॥" एव तरुणप्रभसूरिकृतश्रीषडावश्यकबालावबोधे २ पुनरन्यग्रन्थीयगाथाबालावबोधव्याख्यानेऽपि यथा—

"छकायदयावंतो वि, सजओ कुणइ दुलह बोहिं । आहारे नीहारे, दुगछिए पिंडगहणे अ ॥ १ ॥" इत्यत्र दुगछिए पिंडगहणे अ सूतक मृतक रजकं वणकर प्रमृतिक जे छइ दुगछित निंदित कुल तिहा पिंड असन-पान-खादिम-स्वादिम-रुप तणइ ग्रहणि हुतइ इति सबंध करिवउ । ३ । ननु-क्वाऽपि मूलसूत्र-भाष्ये-चूर्णि-वृत्त्यादौ अपि अक्षराणि सन्ति ? उच्यते-सन्तीति, श्रीसूत्रकृदङ्गसूत्रवृत्त्यो (१८० पत्रे), तथैव उक्तत्वात्, तथाहि-"सपसारी कयकिरिए, पसिणायतणाणि अ । सागारिअ च पिंड च, त विज्ज परिजाणिआ ॥ १६ ॥" व्याख्यालेशः-सागारिकः=शय्यातर, तस्य पिण्ड=आहार, यदि वा सागारिकपिण्ड इति सूतकगृहपिण्ड जुगुप्सित वर्णापसदपिण्ड वा, चशब्द समुच्चये । एतत्सर्वं विद्वान्=ज्ञपरिज्ञया परिज्ञाय प्रत्याख्यानपरिज्ञया च परिहरेदिति" ९ अध्ययने १६ गाथायाम् ॥ ४ ॥ पुन. श्रीआचाराङ्गे द्वितीयश्रुतस्कन्धे प्रथमाध्ययने चतुर्थोद्देशके (३०५ पत्रे),

तथा हि-"भिक्खागा नामेगे एवमाहसु समाणा वा वसमाणा वा गामाणुगाम दूइज्जमाणे खुड्डाए खलु अय गामे सनिरुद्धाए नो महालए से हता भयतारो बाहिरगाणि गामाणि भिक्खायरिआए वयह' इति । वृत्त्येकदेशो यथा-'वसमानाः' मासकल्पविहारिण ते एवभूता, प्राघूर्णकान् समायातान् ग्रामानुग्रामं दूयमानान् गच्छत एव ऊचु —'यथा क्षुल्लकोऽय ग्रामः अल्पगृहभिक्षादो वा, तथा सनिरुद्ध-सूतकादिना, नो महान्' इति पुनर्वचन आदरख्यापनार्थं, अतिशयेन क्षुल्लक इत्यर्थ, ततो हन्त ! इति आमन्त्रण, यूय भवन्तः=पूज्या बहिर्ग्रामेषु भिक्षाचर्यार्थं व्रजत इत्येव ब्रूयात्" इति । ५ । पुन श्रीनिशीथभाष्यचूर्णौ यथा "जे भिक्खू दुगछिअकुलेसु असणाइ-वत्थाइ-वसहि-

दैवसिकं रात्रिकं पाक्षिक चातुर्मासिकं सांवत्सरिकं चेति। एषा कालस्तु उत्सर्गेण एव उक्तः, "अद्ध निवुड्डे बिंबे, सुत्त कड्ढंति गीअत्था। इअवयणपमाणेण, देवसि आवस्सए कालो ॥ १ ॥" रात्रिकस्य चैव आवस्सगस्स समए, निद्दामुद्द चयंति आयरिआ। तह तं कुणंति जह दस-पडिलेहाणतरं सूरो ॥ २ ॥" अपवादस्तु दैवसिक दिवसतृतीयप्रहरादर्वाक् अर्ध-रात्रं यावत्। योगशास्त्रवृत्तौ तु मध्याह्नादारभ्य अर्धरात्रं यावत् इत्युक्त, रात्रिक अर्धरात्रादारभ्य मध्याह्नं यावत्। उक्त च-

"उग्घाडपोरिसिं जा, सह अवस्सयस्सचुण्णीए। ववहाराभिप्पाया, भणंति पुण जाव पुरिमड्ढं ॥ २ ॥" पाक्षिक-चातुर्मासिकसांवत्सरिकाणि तु पक्षाद्यन्तेषु च स्युः। ९। पुनरपि श्रीदेवेन्द्रसूरिविरचितश्रीश्राद्धदिनकृत्यवृत्तौ अपि अभाणि, तथाहि-"साधुवचनं उग्घाडा पोरिसी इत्यादि विभ्रमकारण। १०।" पुनरपि श्रीदेवेन्द्रसूरिकृतप्रत्याख्यान-भाष्येऽपि तथाहि-"साहुवयण उग्घाडा पोरिसी तणुसुच्छया समाहित्ति" इत्यादि २५ गाथायाम्। ११।

॥ इति उग्घाडा पोरिसी भणनाधिकारः ॥ २० ॥

ननु-श्रीखरतरगच्छे पुत्रादिजन्मनि तन्मरणे च जातमृतकं सूतक गण्यते, तत्राऽपि पुत्रस्य एकादशदिनानि पुत्र्याश्च द्वादशदिनानि यावत् तद्गृहे खरतरसाधवो भिक्षां न गृह्णन्ति, तपागच्छादिगच्छेषु तु केषुचित् न सूतकशङ्काशङ्कः, तत्र मूलतः क्वाऽपि शास्त्रे सूतकगृहवर्जनं समुपदिष्टं वर्तते न वा? उच्यते—श्रीजिनपतिसूरिभिः निजसामाचार्यां प्रोक्तत्वात्, तथाहि-"सघरसूरिपयकुलेसु वि दसाह सुअसूअगकुलाण च एगारसाह पुत्तिमा सूअग बारसाह मयगकुलाण च वज्जणं ॥ २१ ॥" एव तरुणप्रभसूरिकृतश्रीषडावश्यकबालावबोधे २ पुनरन्यग्रन्थीयगाथाबालावबोधव्याख्यानेऽपि यथा—

"छक्कायदयायतो वि, सजओ कुणइ दुल्लह योहिं । आहारे नीहारे, दुगछिए पिंडगहणे अ ॥ १ ॥" इत्यत्र दुगछिए पिंडगहणे अ सूतक मृतक रजक घर्णकर प्रभृतिक जे छइ दुगछित निंदित कुल तिहा पिंड असन-पान-खादिम-स्वादिम-रूप तणइ ग्रहणि हुनइ इति सबंध करिवउ । ३ । ननु—काऽपि मूलसूत्र भाष्ये-चूर्णि-वृत्त्यादौ अपि अक्षराणि सन्ति ? उच्यते—सन्तीति, श्रीसूत्रकृदङ्गसूत्रवृत्त्योः ( १८० पत्रे ), तथैव उक्तत्वात्, तथाहि—"सपसारी कयकिरिए, पसिणायतणाणि अ । सागारिअ च पिंड च, त विज्ज परिजाणिआ ॥ १६ ॥" व्याख्यालेश —सागारिकः=शय्यातर, तस्य पिण्ड=आहार, यदि वा सागारिकपिण्ड इति सूतकगृहपिण्ड जुगुप्सित वर्णापसदपिण्डं वा, चशब्द समुच्चये । एतत्सर्व विद्वान्=ज्ञपरिज्ञया परिज्ञाय प्रत्याख्यानपरिज्ञया च परिहरेदिति" ९ अध्ययने १६ गाथायाम् ॥ ४ ॥ पुन. श्रीआचाराङ्गे द्वितीयश्रुतस्कन्धे प्रथमाध्ययने चतुर्थोद्देशके ( ३०५ पत्रे ),

तथा हि—"भिक्खागा नामेगे एवमाहसु समाणा वा वसमाणा वा गामाणुगाम दूइज्जमाणे खुड्डाए खलु अय गामे सनिरुद्धाए नो महालए से हता भयतारो वाहिरगाणि गामाणि भिक्खायरिआए वयह' इति । वृत्त्येकदेशो यथा— 'वसमानाः' मासकल्पविहारिण' ते एवंभूताः, प्राघूर्णकान् समायातान् ग्रामानुग्रामं दूयमानान् गच्छत एव ऊचुः— 'यथा क्षुल्लकोऽय ग्रामः अल्पगृहभिक्षादो वा, तथा सनिरुद्धः—सूतकादिना, नो महान्' इति पुनर्वचन आदरख्यापनार्थ, अतिशयेन क्षुल्लक इत्यर्थ, ततो हन्त ! इति आमन्त्रण, यूय भवन्त'=पूज्याः वहिर्ग्रामेषु भिक्षाचर्यार्थं व्रजत इत्येव ब्रूयात्" इति । ५ । पुन श्रीनिशीथभाष्यचूर्णौ यथा "जे भिक्खू दुगछिअकुलेसु असणाइ—वत्थाइ—वसहि—

सज्झाय वा करेइ" इत्यादि चउलहुअ तेसिं एसो मे दोसरूव चउविहा गाहा इत्तरिअत्ति सूअगगाहा निज्जूढा जे ठप्पाकया सिलागा पडिअत्ति, आवकहिआ जे जत्थ वीसए आदि जुंगिआ जहा दक्खिणापहे लोहगार कलाला टाडेसु, नड–वरुडचम्मकारादि एए आवकहिआ ६।" पुन श्रीनिशीथचूर्णौ "जे भिक्खू ठवणा कुलाइ" इत्यादि ठवणा गाहा, समासो संखेवे, लोइअ दुविहा इत्तिआ १ आवकहिआ २ इमे इत्तिरिआ सूअगगाहा कालावहीए जे ठप्पाकया ते निसूढा जेत्ति कुला जत्थ विसए जुगिआ अभोज्या इत्यर्थः। कम्मेण वा सिप्पेण वा जाइए वा कम्मे एहा वि आसाविका मोरपोसगा सिप्पेहिङ्गा पहाविआ तेरिमापतकरा निल्लेवा जातीए पाणा डुवा मोरुत्तिआय, खलुशब्दो अवधारणे, ते चेय अक्षत्य जुगिआ जहा सिंधूए निल्लेवगा इत्यादि।७। पुनरेवमेव श्रीनिशीथषोडशोद्देशकभाष्यचूर्णिषु अपि तथाहि–

"दुविहा दुगछिमा खलु, इत्तरिआ हुंति आवकहिआ य। एएसिं नाणत्त, वुच्छामि आणुपुवीए॥ १॥ सूअगमयगुल्लाइ, इत्तरिया जे हवंति निज्जूढा जे जत्थ जुगिआ खलु, ते हुती आवकहिआ उ ॥ २॥ तेसु असण वत्थाइं, वसही विप्परिणामो तहेव कुच्छिया। तेसिं पि होइ सका, सवे एआरिसा मन्ने॥ ३॥" इति भाष्यम्। अत्र चूर्णिव्याख्या–छिआ अभोज्या इत्यर्थः, कम्मेण १ सिप्पेण वा २ जाइए वा ३, कम्मे न्हावियाइणो १ सिप्पे वि ठार न्हाविआइणो २ हि डान्हाविया तेरिमाजाइए पाणाइणो ३, पुनरपि श्रीदशवैकालिकसूत्रे पञ्चमाध्ययने श्रीहरिभद्रसूरिकृताया तद्वृत्तौ च (१९९ पत्रे) सूतकादिकुले प्रवेशस्य वर्जनीयत्वेन उक्तत्वात्, तथाहि–

'पडिकुट्ठकुल न पविसे, मामग परिवज्जए । अचियत्तकुल न पविसे, चिअत्त पविसे कुल ॥ १७ ॥ व्याख्या–प्रतिकुष्ट
कुल द्विविधम्–इत्वरं यावत्कथिक च, इत्वर सूतकयुक्तं, यावत्कथिक अभोज्यं, एतन्न प्रविशेत् शासनलघुत्वप्रसंगात् ।
अत्रार्थे प्रशमरतिसूत्रवृत्ती अपि ( ४० पत्रे ), तथा–
"लोक सत्वाधारः, सर्वेषां ब्रह्मचारिणां यस्मात् । तस्माल्लोकविरुद्ध, धर्मविरुद्ध च सत्याज्यम् ॥ १३१ ॥ व्याख्या–
लोको जनपदः, खलुशब्दो अवधारणे, लोक एव आधारः सर्वेषां ब्रह्मचारिणा, यस्मात् ब्रह्म–सयम सप्तदशभेद', तद्यो-
गात् सयमिनः तेषां सर्वेषामिति गच्छवासिना गच्छनिर्गताना च, तस्मात् लोके यद्विरुद्ध जात–मृतक–सूतक समूह–
निराकृतादिगृहेषु भिक्षादिग्रहणं अभोज्येषु च परिहार्य, तथा चाऽऽर्षे–
"जे जहिं दुगुंछिआ खलु, पव्वावणवसहिभत्तपाणेसु । जिणवयणे पडिकुट्ठा, वज्जेअया पयत्तेण ॥ १ ॥" यच्च लोके-
कदेशे विरुद्ध मद्य–मांस–लशुन–बीजानन्तकायादि धर्मसाधनविरुद्ध अनेकं तदपि परिहार्यमिति ॥ १३२ ॥ इतश्च लोके-
कवार्तान्वेषण श्रेयोहेतुः इति दर्शयति । ननु–दशदिनादिमान अपि कुत्राऽपि प्रोक्तमस्ति ?, उच्यते–श्रीव्यवहारभाष्यवृत्तौ
श्रीमलयगिरिसूरिभिः दशदिनमान उक्तं अस्ति, तथाहि–"जातसूतक नाम जन्मानन्तरं दशाऽहानि यावत्, मृतकसूतक
मृतानन्तर दश दिवसान् यावत् । १ । पुनरपि व्यवहारभाष्यवृत्तौ प्रथमोद्देशके, तथाहि–"लौकिक द्विधा, इत्वर यावत्क-
थिकं च, तत्र इत्वर मृतकसूतकादि, तथाहि–लोकैः सुतकादि दश दिवसान् यावत् वर्ज्यते इति, यावत्कथिक वरुड–छिम्प-
क–चर्मकार–डुम्बादि एते हि यावज्जीव शिष्टैः संभोगादिना वर्ज्यन्ते इति । २ । पुनः निशीथचूर्णौ परिहारनिक्षेपाधिकारे

"लोइओ दुविहो इत्तरिओ आवकहिओ अ, इत्तरिओ सूयगादिसु दसादिदिवसपरिवज्जण, आवकहिओ जहा नट्ट—वरुड-छिंपग—चम्मार डुमा य, लोउत्तरिओ सेज्जायाण—अभिगमसड्ढादि आवकहिओ रायपिंडो इति ३। पद्मपुराणेऽपि उक्तम्—"मृते स्वजनमात्रेऽपि, सूतक जायते किल। अस्तगते दिवानाथे, भोजनं क्रियते कथम्? ॥ १ ॥" तथा लौकिकसूतकमपि एवं, तथाहि—"सूतक वृद्धिहानिभ्यां, दिनानि त्रीणि द्वादश। प्रसूतिस्थानमासैक, वासरा' पञ्च गोत्रिणाम् ॥ १ ॥ प्रसूतिं च मृते बाले, देशान्तरमृते रणे। सन्ताने मरण चैव, दिनैक सूतक मतम् ॥ २ ॥ यद्दिने सूतके जाते, गते द्वादशके दिने। जिनाभिषकपूजायां, पात्रदानेन शुद्ध्यति ॥ ३ ॥ पञ्चाहा सूतक क्षत्रे, शूद्रे पक्षैकसूतकम्। दशाहा ब्राह्मणे विदि, द्वादशाहा वैश्यमाचरेत् ॥ ४ ॥ सतीसूतक हत्या च, पाप पाण्मासिक भवेत्। अन्येपामात्महत्याना, यथापाप च कल्पयेत् ॥ ५ ॥ अश्वी—चेटिका—महिषी—गोप्रसूतिर्गृहाङ्गणे। सूतक दिनमेक स्यात्, गृहवाह्ये न सूतकम् ॥ ६ ॥ दासी दासस्तथा कन्या, जायते म्रियते यदि। त्रिरात्र सूतक ज्ञेय, गृहमध्येऽतिदूषितम् ॥ ७ ॥ यदि गर्भविपत्ति' स्यात्, श्रवणे वाऽपि योषिताम्। यावन्मास स्थितो गर्भ—स्तावद्दिनानि सूतकम् ॥ ८ ॥ महिषीपक्षकं क्षीर, गोक्षीर च दिना दश। अष्टक च अजाक्षीर, पश्चात् क्षीरं प्रवर्त्तकम् ॥ ९ ॥ इत्यादिस्वशासनपरशासनसम्मत्या समर्थितं सूतकवर्जनम् ॥ २१ ॥

॥ इति जातमृतकसूतकपिण्डनिषेधाधिकारः ॥ २१ ॥

ननु—खरतरगच्छीयाः श्राद्धाः प्रतिक्रमणसूत्रान्ते उत्तिष्ठन्त "तस्स धम्मस्स केवलिपन्नत्तस्से ति" वाक्य न कथयन्ति, वाचा अनुच्चरन्तो मनस्येव तदर्थं ध्यायन्तीति, अत्र काऽपि ग्रन्थसम्मतिरस्ति? उच्यते—अस्तीति, श्रीजिनपतिसूरिभि

सामाचार्यां स्पष्ट उक्तत्वात् । तथाहि–"सावया पडिक्कमणसुत्तते तस्स धम्मस्स केवलिपन्नत्तस्सेति न भणति", इति ॥ १ ॥ पुनरपि श्रीतरुणप्रभसूरिकृतषडावश्यकबालावबोधेऽपि, तथाहि–"तस्स धम्मस्स केवलिपन्नत्तस्स" इसउ पद श्रावक प्रतिक्रमणप्राति आम्नायतणा अभावइ तओ केइएक पढइ नही, केइएक पुणि पढइ, तथापि हि "अब्भुट्ठिओमि आराहणाए विरओमि विराहणाए" ए पद जुगलु तिहाजि सघषियु छइ, तिण कारणि मतिवर्तमानु जाणिवु ( १५२ पत्रे ) ॥ २ ॥ एव श्रीचन्द्रसूरिकृतप्रतिक्रमणवृत्तौ अपि तथैव उक्तम्, तथाहि–"तस्स धम्मस्स केवलिपन्नत्तस्स" इत्यादि द्वादशाक्षरी वाचा अनुचरन् श्राद्ध उत्तिष्ठतीति ॥ ३ ॥ एव श्रीजिनप्रभसूरिकृतविधिप्रपायामपि "तस्स धम्मस्स केवलिपन्नत्तस्सेति" वाक्य न लिखितमस्ति, तथाहि–तत्पाठः–"तओ पुत्तीए कट्ठासण पाउछण वा पडिलेहिअ, वाम जाणु हिट्ठा दाहिण च उड्ढं काउ करजुअगहिअपुत्ती सम्म पडिक्कमणसुत्त भणइ, तओ दव्वभावुट्ठिओ अब्भुट्ठिओमि इच्चाइ दडगं पठित्ता वदण दाउ", इत्यादि ॥ ४ ॥ २२ ॥

॥ इति तस्स धम्मस्स केवलिपन्नत्तस्स कथननिषेधाधिकार ॥ २२ ॥

ननु–आस्मना गच्छे श्रावणस्य वृद्धौ द्वितीयश्रावणद्वितीयपक्षे, भाद्रपदवृद्धौ प्रथमभाद्रपदद्वितीयपक्षे श्रीपर्युषणापर्वकरणात् आषाढचातुर्मासकात् पञ्चाशता दिनैरेव यत्पर्युषणापर्व क्रियते, तत्कुत्र तदक्षराणि सन्ति ? उच्यते–श्रीजिनपतिसूरिभिः निजसामाचार्यां ११ तथैव उक्तत्वात्, तथाहि–"सावणे भद्दवए वा अहिगमासे चउम्मासाओ पण्णासइमे दिणे पज्जोसवणा कायव्वा न असीइमे" इति ॥ ११ ॥ ननु–यैः आषाढचातुर्मासकात् अशीत्या दिनै श्रीपर्युषणापर्व विधी

कारयेदिति । पुनः श्रीपर्युषणाकल्पटिप्पणकेऽपि उक्त "नो से कप्पइ त रयणिं ति" भाद्रपदशुक्लपञ्चमीं अतिक्रमितु इत्यादि, एव सर्वत्र पर्युषणाकर्तव्यस्य भाद्रपदशुक्लपञ्चम्यामेव प्रोक्तत्वात्, न काऽपि श्रावणे तत्कर्तव्यता दृश्यते इति चक्तव्य, कथ ? इत्याह-मूलपक्षे आषाढवृद्धौ "नो तं रयणिं उवायणावित्तए ति" सामान्यसूत्रापेक्षया "अभिवड्ढिअमि वीसेति" विशेषसूत्रस्य बलीयस्त्वात्, श्रावणेऽपि पर्युषणासत्कसर्वकर्तव्यकरणात्, ततोऽस्माक लौकिकटिप्पणकानुसारेण श्रावणवृद्धौ आषाढवृद्धौ इव श्रावणेऽपि पर्युषणापर्वकुर्वता सिद्धान्तपक्षिकरणात् को दोषः ?, पुनरपि कार्तिकचातुर्मास-काधिकारे तु चन्द्रसवत्सरापेक्षया पर्युषणातो दिनैः सप्तत्या एव तस्य जैनाम्नायेन अवर्धितवर्षेऽपि सप्तत्या दिनै तस्य सभवः पौषाषाढयो' एव वृद्धेः, लौकिकटिप्पणकानुसारेण तु भाद्रपदाश्वयुजवृद्धौ दिनशतसभवः स्यात्, दीपमालिकाऽनन्त-रमेव चतुर्मासकसभवात्, शैलकज्ञाते कार्तिकपूर्णिमाया चतुर्मासकप्रतिक्रमणस्य उक्तत्वादिति, न च असक्रान्तिमासोऽधि-कमासः स्फुटं स्यादिति भास्कराचार्योक्तत्वात्, असक्रान्तिमासे कथ पर्युषणा ? इति वाच्य, तस्मिन् लग्नकार्यस्य एव निषि-द्धत्वात्, दीक्षा-स्थापना-प्रतिष्ठालक्षणं नाऽन्यत् धर्मकर्म, यत उक्त नारचन्द्रीयद्वितीयप्रकरणे ( १४५ पत्रे ), तथाहि-

"रविक्षेत्रगते जीवे, जीवक्षेत्रगते रवौ । दीक्षामुपस्थापना चाऽपि, प्रतिष्ठा च न कारयेत् ॥ ४५ ॥ वपशुद्धिः-हरि-शयनेऽधिकमासे, गुरुशुक्रास्ते न लग्नमन्वेष्य, लग्नेशांशाधिपयोर्नीचाऽस्तमने च न शुभ स्यात् ॥ ४६ ॥" ततो असक्रान्ति-मासे पर्युषणाकरणप्रतिषेधो न घटते, इत्यल विस्तरेण ॥ तत इद स्थित श्रावणवृद्धौ द्वितीयश्रावणशुक्लचतुर्थ्यां, भाद्रपद

वृद्धौ प्रथमभाद्रपदशुक्लचतुर्थ्यां पर्युषणापर्व कर्तव्य न अशीत्या दिनैः, इद च स्थल बहुगम्भीरार्थं, मया तु पूर्वगीतार्थप्रतिपादितसिद्धान्ताक्षरयुक्त्यनुसारेण लिखित अस्ति, न स्वगच्छकल्पित, पुनर्यथाऽस्ति तथा बहुश्रुता विदन्ति ॥ २३ ॥

॥ इति श्रावणभाद्रपदयोः वृद्धौ ५० पञ्चाशद्दिनैः पर्युषणा कार्या इत्यधिकारः ॥ २३ ॥

ननु—श्रीखरतरगच्छे कदाचित् कुत्रचित् कल्पसूत्र गीतार्था नव वाचनानि वाचयन्ति, कदापि क्वाऽपि एकादशवाचनाभिः, कदापि कुत्राऽपि त्रयोदशवाचनाभिः वाचयन्ति, तपागच्छीयादिगीतार्थास्तु नवभिरेव वाचनाभि नाऽधिकन्यूनाभि, तत्र किमपि नियामक वर्तते न वा? उच्यते—सत्य, भोः! पूर्वो मूलविधिः कल्पसूत्रश्रवणस्य श्रूयता, तथाहि—"तहा गिहत्थाणं अन्नतित्थिआण गिहत्थीण अन्नतित्थीणीण उसेणाण संजईण च अग्गओ पज्जोसवणाकप्पो न कड्डिअवो, सम्मीसवाससकाइदोसप्पसगाओ, पज्जोसवणाकप्पो दिवसओ कड्डिउ न चेव कप्पइ, जत्थ वि खेत्त पडुच्च कड्डिज्जइ, जहा दिवसओ, आणदपुरे मूलचेइयहरे सव्वजणसमक्ख कड्डिज्जइ, तत्थ वि साहू नो कड्डइ, पासत्थो कड्डइ, त साहू सुणिज्जा न दोसो, आणदपुर नाम सपइ वडनगर महाठाण भण्णइ, पासत्थाण कड्डगस्स असइ दंडगेण वा अब्भत्थिओ सड्ढेहिं वा साहू ताहे दिवसओ सभाए सय कड्डइ, पज्जोसवणाकप्पे य कड्डणे इमा सामायारी। अप्पणो उवस्सए पादोसिए आवस्सए कए काल घेत्तु काले सुद्धे वा असुद्धे वा पट्ठविचा कड्डिज्जइ एगो कड्डइ सेसा उद्धट्ठिआ सुणति, एव चउसु वि राईसु पज्जोसवणाराईए पुण कड्डिए सवे (साहवो) साहू कप्पसमप्पावणिअ काउस्सग्ग (करेंति) करिंता पज्जोसवणाकप्पस्स समप्पावणिअ करेमि काउस्सग्ग ज खडिअ ज विराहिअ ज न पडिपूरिअ तस्स उत्तरीकरणेण जाव वोसिरामित्ति सवो दंडओ कड्डिअवो

जाव वोसरामित्ति लोगस्स उज्जोअगर चिंतिऊण उस्सारित्ता पुणो लोगस्स उज्जोअगर कड्ढित्ता सव्वे साहुणो निसीअंति, जेण कड्ढिओ सो ताहे कालस्स पडिक्कमइ, ताधे वरिसाकाल ठवणा ठविज्जइ, एसो विधि भणियो जइ उ कड्ढिज्जते गिहत्था अण्णतित्थिआ उसण्णा च आगच्छिज्जा तो वि ण किज्जा इत्यादि" इति श्रीनिशीथचूर्णौ दशमोद्देशके, इत्यमेव श्रीदशाश्रुत स्कन्धचूर्णौ अपि, एवमेव श्रीसन्देहविषौषधिवृत्तिमान्तेऽपि, एतद्ग्रन्थानुसारेण पूर्वं पञ्चरात्रे प्रतिक्रमणानन्तर पाक्षिकसूत्रपाठवत् साधूना कल्पसूत्रश्रवणं उपलभ्यते, पर अयं विधिः व्यवच्छिन्नः । सांप्रत तु श्रीवीरनिर्वृतेः नवसु वर्षशतेषु अशीत्यधिकेषु गतेषु आनन्दपुरे पुत्रमरणार्त्तध्रुवसेननृपसन्तोषनिमित्तं सभासमक्ष कल्पो वाचयितु प्रारब्ध, यदुक्तं श्रीकल्पसूत्रावचूरौ, तथाहि—केचित्तु इदं आहुः यत् "इयत्कालातिक्रमे ध्रुवसेननृपस्य पुत्रमरणार्त्तस्य समाधये आनन्दपुरे सभायां अयं ग्रन्थो वाचयितु प्रारब्ध इति" अन्यत्र तु सर्वसम्मतचिरन्तनग्रन्थेषु कुत्रापि वाचनानियमो न कृतः, पूर्वसूरिभि प्रत्युत निशीथचूर्णौ प्रोक्तमस्ति "ये नववाचनाभिः कल्पं वाचयन्ति ते पार्श्वस्था इति" अत एव ऐदयुगीना—गीतार्थाः प्रतिगच्छ स्वपरम्परया यथारुचि वाचना विदधानाः सन्ति, न च वाच्यं यथ मूलविध्यनुसारेण पञ्च दिनानि कल्प वाचयन्तो नववाचनानियमः कुर्वाणाः स्मः, कथ तद्विधिलेशस्याऽपि अभावात्, कथ तदनुसारिता ? कथ इत्याह—मूलविधौ रात्रौ पार्श्वस्थपार्श्वश्रवणं, सांप्रत तु दिवसे, पूर्वं तु गृहस्थादीना असमक्षं, संप्रति तु तत्समक्ष, पूर्वं तु एकवार, अधुना तु दिवसमध्येऽपि वारद्वयं वाचनं, अथ ये नववाचनातो अधिकवाचनावाचने जिनाज्ञाबाह्यत्व वदन्ति तेषामपि इद अज्ञानविजृम्भित, यतोऽत्र सूत्रोक्तविधिविपरीतत्वेन गीतार्थाचरणतो गच्छपरम्परा वर्तते । पुनः श्रीहीरविजयसूरिप्रसादीकृत-

प्रश्नोत्तरसमुच्चये ( १२ पत्रे ) तच्छिष्य प० कीर्तिविजयगणिसमुच्चिते ग्रन्थे प० वेलऋषिगणिकृतप्रश्नाधिकारे प्रथमप्रश्नोत्तरसमुच्चये ( १२ पत्रे ) तच्छिष्य प० कीर्तिविजयगणिसमुच्चिते ग्रन्थे प० वेलऋषिगणिकृतप्रश्नाधिकारे प्रथमप्र-

प्रश्नोत्तरसमुच्चये ( १२ पत्रे ) तच्छिष्य प० कीर्तिविजयगणिसमुच्चिते ग्रन्थे प० वेलऋषिगणिकृतप्रश्नाधिकारे प्रथमप्र- श्नेऽपि प्रोक्तं, तथाहि–"नवक्षणैः कल्पसूत्र वाच्यते, कैश्चिदधिकैरपि वाच्यते, तदक्षराणि क्व सन्ति? इति, तत्रोत्तरम्–कल्पसूत्रं नवक्षणैः वाच्यते परम्परातः १ अन्तर्वाच्यमध्ये नवक्षणविधानाक्षरसद्भावाच्चेति २ अत्राऽपि नववाचनावाचने गच्छपरम्परा एव, प्रत्युत्तरिवा न तदक्षराणि दर्शितानि, अन्तर्वाच्य तु तत्कृत आधुनिक च, तत इद रहस्य आगतम्—मूलपक्षः कोऽपि नाऽस्ति क्वाऽपि, पश्चात् येषा नववाचनाना गच्छपरम्परा ते नववाचनाभिः वाचयन्तु, अथ च येषा गच्छे नवाधिकवाचनानां परम्परा ते तदेकादशक तत्त्रयोदशक वा कुर्वन्तु, न कस्याऽपि निन्दा कार्या धर्मार्थिभिः गच्छपरम्पराया व्यवस्थायाश्च स्वरुच्यनुयायित्वात् ॥ २४ ॥

॥ इति कल्पसूत्रवाचने नववाचनानियमाभावविचारः ॥ २४ ॥

ननु–"करेमि भंते ! पोसहं आहारपोसह देसओ सव्वओ च" इत्यादिपाठसद्भावात् पौषधो द्विविधो देशतः सर्वतश्च सर्वत्र प्रतिपादितः, ततो यथा देशतः पौषधोच्चारे श्रावका पानीय पिबन्ति तथा एकाशनादिकरणेन भोजनमपि कथ न कुर्वन्तु ? देशत इति पाठस्य अत्राऽपि भङ्गाभावात्, उच्यते–सत्यं, पर उपधान विना पौषधे त्रिधाहारप्रत्याख्यानस्य चतुर्धाहारप्रत्याख्यानस्य वा उपवासस्य एव घटमानत्वात् पौषधोपवासरूपशब्दव्याख्यानस्याऽपि श्रीतत्त्वार्थभाष्यवृत्तौ ( ९२ पत्रे ) तथैव उक्तत्वाच्च, तथाहि–

पौषधोपवासो नाम इत्यादिना पौषधस्वरूप निरूपयति, रूढ्या पौषधशब्दः पर्वसु वर्तते, पर्वाणि च अष्टम्यादि-

तिथयः पूरणात् पर्व धर्मोपचयहेतुत्वात्, तत्र=पौषधे पर्वणि उपवासः पौषधोपवासः त्रिविधस्य चतुर्विधस्य वाऽऽहारस्य छेदः इत्यादि, एवमेव श्रीसमवायाङ्गसूत्रवृत्तौ श्रीअभयदेवसूरिभि व्याख्यानात् ( १९ पत्रे ), तथाहि–"पौषध पर्वदिन अष्टम्यादि तत्रोपवासोऽभक्तार्थः पौषधोपवास इति इयं व्युत्पत्तिरेव, प्रवृत्तिस्तु अस्य शब्दस्य आहारशरीरसत्कारब्रह्मचर्यव्यापारपरिवर्जनेषु इति ध्येयमिति"। ननु–तर्हि श्रीजिनवल्लभसूरिभिः श्रीपौषधविधिप्रकरणे ( ३५ पत्रे ) कथं पौषधमध्ये भोजन प्रतिपादितम् ? तथाहि–

"जो पुण आहारपोसही देसओ सो पुण्णे पच्चक्खाणे तीरिए अ खमासमणदुगेण मुहपत्तिं पडिलेहिअ खमासमणेण वदिअ भणइ–इच्छाकारेण सदिसह पारावह पोरिसी पुरिमड्ढ चउविहाहार एगासण निवीय आयबिल वा कय, जा काय वेला तीए पारावेमि, तओ सक्कत्थएण चेइए वंदिअ सज्झाय सोलस वीस वा सिलोगे काउ जहासभवमतिथिंसविभाग दाउं मुह हत्थपाए पडिलेहिअ नवकारपुव्वमरत्तदुट्ठो भुजइ", इति। अत्रोत्तर–यद्यपि अत्र पौषधमध्ये भोजन उक्त, पर एतदुपधान आश्रित्य अभ्यधायि, येषा पुनः गच्छे पौषधमध्ये भोजन अनुज्ञात तेषा अपि अपवादत एव न उत्सर्गतः। तथा चोक्त तपागच्छीयसोमसुन्दरसूरिशिष्यहेमहंसगणिकृतषडावश्यकबालावबोधेऽपि, तथाहि–

"तृतीयशिक्षाव्रत पौषधोपवास, स च पर्वतिथिषु अहोरात्र यावत् चतुर्विधाहारपरित्यागेन, तथा न शक्नोति चेत् तदा त्रिविधाहारपरित्यागेन, एवमपि अशक्तौ अपवादतः आचाम्लादि समुच्चार्य भोजन क्रियते इत्यादि" न च अपवादपदं उत्सर्गपदे क्षेप्तव्य, तस्य पञ्चमअङ्गात् भिन्नत्वेन अभिधानात्, उपधानविचारस्तु अयम्–उपधानानि श्रीमहानिशीथसूत्रे

सामान्यतया प्रोक्तानि, पर यद्यपि तत्र उपधानतपसि पौषधव्रत न उक्त, तथापि समस्तगच्छीयगीतार्थसम्मततया सर्वेषु अपि धर्मगच्छेषु नियत यथा स्वस्वोपधानादिप्रमाणतया तत्र स्वस्वतपोयोगविधिप्रकरणेषु गीतार्थैः निबद्ध दृश्यते, तै कार्यमाण च उपासकै उपलभ्यते । तत्र श्रीअभयदेवसूरिशिष्यपरमानन्दकृतयोगविधिग्रन्थे चतुश्चत्वारिंशदधिकद्वादशशतवर्षे १२४४ लिखिते यथा "पौषधग्रहणपुरस्सर उपधानतपो विधेयमिति अत उपधानविधिः उच्यते इति १" पुनः श्रीचन्द्रगच्छीय–श्रीअजितदेवसूरिकृतयोगविधौ त्रिसप्तत्यधिकद्वादशशतवर्षे १२७३ कृते यथा "श्रावकश्राविकाणा तु एकस्मिन् उपधाने अव्यूढेऽपि गुर्वाज्ञया अनुज्ञानन्दी विधीयमाना दृश्यते, पर एतै अहोरात्रपौषधदिनानि पश्चादपि शीघ्र सविशेष पूरणीयानि २" पुनरपि–तपागच्छीय-श्रीरत्नशेखरसूरिकृते श्रीआचारप्रदीपे ( १९ पत्रे ), यथा–

पौषधग्रहणक्रिया तु यद्यपि श्रीमहानिशीथे साक्षात् नोक्ता, तथाऽपि यथा साधो योगेषु अतिशायि क्रियावत्त्व सर्वप्रतीत तथा श्राद्धाना अपि उपधानेषु विलोक्यते ३" पुनरपि श्रीखरतरगच्छाधिपति–श्रीजिनपतिसूरिकृतद्वादशकुलकवृत्ति – वडगच्छीयजीर्णसामाचारी–श्रीजिनप्रभसूरिकृतविधिप्रपा–श्रीमान्देवसूरिकृतकुलकप्रमुखग्रन्था विलोकनीयाः ॥

ननु–श्रीविधिप्रपाया "मुहपत्तिं पडिलेहिअ वंदिअ भणइ भगवन् ! भातपाणी पारावेह, उवहाणवाही भणइ–नयकारसहिअ चउविहाहार, इअरो भणइ–पोरिसिं पुरिमड्ढं वा तिविहाहार चउविहाहार वा एगासण निव्विइअ आयंबिल वा जा काइ वेलातीए भत्तपाण पारावेमि त्ति", श्रीजिनप्रभसूरिभिः 'उवहाणवाही भणइ इअरो भणइ' इति भेदद्वयोक्त्या पौषधमध्ये उपधान विनाऽपि कथं भोजन अनुज्ञातम्? उच्यते—तत्परमार्थं लघुखरतरगच्छीया श्रीजिनप्रभसूरय एव जानन्ति,

सूरे हि श्रीऋषभदेवशिष्यत्व न व्यभिचरति शिंशपत्वे वृक्षत्ववत् । तथा तपागच्छीयग्रन्थेऽपि सूरिप्रतिष्ठा एव स्थाने स्थाने दृश्यते, यदुक्त–तपाश्रीसोमसुन्दरसूरि–तच्छिष्यमहोपाध्याय–श्रीचारित्रगणितद्विनेय–प० सोमधर्मगणिविरचिताया उपदेशसप्ततिकायां द्वितीयाधिकारे अष्टमोपदेशे ( ३८ पत्रे ), तथाहि–"निर्मापित पासिलसञ्ज्ञकेन, श्रद्धावता श्राद्धवरेण चैत्यम् । आरासणे श्रीगुरुदेवसूरि–प्रतिष्ठितं तीर्थमभूत् क्रमेण ॥ १ ॥" पुनः अत्रैव सम्बन्धप्रान्ते ( ४० पत्रे )—
"गोगाकस्य सुतेन मन्दिरमिद श्रीनेमिनाथप्रभो–स्तुङ्ग पासिलसञ्ज्ञितेन सुधिया श्रद्धावता मन्त्रिणा । शिष्यै श्रीमुनिचन्द्रसूरिसुगुरोर्निर्ग्रन्थचूडामणे–र्वादीन्द्रैः प्रभुदेवसूरिगुरुभिर्नेमेः प्रतिष्ठा कृता ॥ १ ॥" एतदक्षरानुसारेण सूरि एव प्रतिष्ठाकृत् सभाव्यते, पुनः यथार्थता यथार्थवेदिगम्या इति ॥ २९ ॥

॥ इति सूरेः प्रतिष्ठाधिकारः ॥ २९ ॥

ननु–आत्मना गच्छे चतुर्दशीहानौ चतुर्दशीकृत्य पौषधग्रहणपाक्षिकातिचारालोचनादिक पूर्णिमाया क्रियते, अन्यगच्छेषु तु केषुचित् त्रयोदश्यां विधीयते तत्कथ ? उच्यते—पूर्णिमायाः पर्वतिथित्वेन मूलपक्षे सिद्धान्ते प्रत्याख्याततत्वात् पूर्णिमायां एव तत्सङ्क्रान्ति अङ्गति ?, अपि च पर्वभूतां पूर्णिमा अमावास्या वा विहाय अपर्वभूताया त्रयोदश्या कथ पाक्षिककृत्य क्रियेत ?, को नाम विज्ञमन्यो निकटवर्तिनीवृहत्प्रवाहा गङ्गा तीर्थभूता विहाय अतीर्थभूते कूपे स्नान समाचरेत् ?, पुनः त्रयोदश्या तिथ्या तत्करणे तु आगमाचरणयोः द्वयो मध्ये एकस्याऽपि पक्षस्य अनाराधितत्व स्यात् । यदुक्त श्रीजिनप्रभसूरिभि विधिप्रपाया, तथाहि–

"नवरं चाउम्मासिए तह चउद्दसीहासे पुण्णिमा जुज्जइ, तेरसीगहणे आगमआयरणाण अन्नतरपि न आराहिअ होज्जा" इति, ननु-एतदर्थसंवादिका जीर्णग्रन्थे सम्मतिः अपि अस्ति ? उच्यते—अस्त्येव, कथ ? इत्याह-श्रीहरिभद्रसूरिभि' स्वकृततत्त्वविचारसारग्रन्थे तथैव उक्तत्वात्, तथाहि-"भवइ जहिं तिहिहाणी, पुवतिही विद्धिआ य सा किरइ । पक्खी न तेरसीए, कुज्जा सा पुण्णिमासीए ॥ १ ॥ इति", । एवमेव श्रीउमास्वातिवाचका अपि स्वकृतायां आचारवल्लभाया प्रोचुः, तथाहि-"तिहिपडणे पुवतिही, कायवा जुत्ताधम्मकज्जेसु । चाउद्दसी विलोवे, पुण्णिमिअं पक्खिपडिकमण ॥ १ ॥" इति, इत्थमेव श्रीज्योतिष्करण्डेऽपि अकथि, तथाहि-"छट्ठिसहिआ न अट्ठमि, तेरसिसहित न पक्खिअ होइ । पडिवयसहिअ न कया वि, इअ भणिअ वीअरागेहिं ॥ १ ॥" ? इति, ननु-यथा चतुर्दशीहानौ अग्रिमतिथिपूर्णिमाया अमावास्या वा पाक्षिक कर्तव्य क्रियते, तथा अष्टमीहानौ नवमीतिथौ अष्टमीकर्तव्य क्रियता, पर सप्तम्या कथ क्रियते ? उच्यते-सत्यं, भो यौक्तिक ! श्रूयतां, पूर्णिमायास्तु पर्वतिथित्वेन तत्र पाक्षिककृत्य घटा आटीकते, पर नवमी तु अपर्वतिथिः, ततो नवमीतिथेः अपर्वतिथित्वेन सप्तम्या साम्येऽपि अष्टमीसत्कभोगबहुलत्वेन वर सप्तम्या एव अष्टमीकृत्य, यदुक्त श्रीजिनप्रभसूरिभिः विधिप्रपाग्रन्थे, तथाहि-

"जया य पक्खिआइपव्वतिही पडइ तया पुवतिही चेव तब्भुत्तिबहुला पव्वक्खाणपूआइसु घिप्पइ, न उत्तरा तब्भोगगधस्स वि अभावाओ इति", एतदर्थसवादिका गाथा अपि च श्रीसूर्यप्रज्ञप्तौ श्रूयते । तथाहि-"पज्जुसणे चउमासे, पक्खिअपवऽट्ठमीसु कायवा । जाए उदए सूरो, ताओ तिहिओ न अन्नाओ ॥१॥" इति, न च 'क्षये पूर्वा तिथिः ग्राह्या' इति

सूरे हि श्रीऋषभदेवशिष्यस्य न व्यभिचरति शिंशपात्वे वृक्षत्ववत् । तथा तपागच्छीयग्रन्थेऽपि सूरिप्रतिष्ठा एव स्थाने स्थाने दृश्यते, यदुक्त-तपाश्रीसोमसुन्दरसूरि-तच्छिष्यमहोपाध्याय-श्रीचारित्रगणितद्विनेय-प० सोमधर्मगणिविरचितायां उपदेशसप्ततिकायां द्वितीयाधिकारे अष्टमोपदेशे (३८ पत्रे), तथाहि-"निर्मापितं पासिलसज्ञकेन, श्रद्धावता श्राद्धवरेण चैत्यम् । आरासणे श्रीगुरुदेवसूरि-प्रतिष्ठितं तीर्थमभूत् क्रमेण ॥ १ ॥" पुनः अत्रैव सम्बन्धप्रान्ते (४० पत्रे)—

"गोगाकस्य सुतेन मन्दिरमिदं श्रीनेमिनाथप्रभो-स्तुङ्गं पासिलसञ्ज्ञितेन सुधिया श्रद्धावता मन्त्रिणा । शिष्यैः श्रीमुनिचन्द्रसूरिसुगुरोर्निर्ग्रन्थचूडामणे-र्वादीन्द्रैः प्रभुदेवसूरिगुरुभिर्नेमेः प्रतिष्ठा कृता ॥ १ ॥" एतदक्षरानुसारेण सूरिः एव प्रतिष्ठाकृत् सभाव्यते, पुनः यथार्थता यथार्थवेदिगम्या इति ॥ २६ ॥

॥ इति सूरेः प्रतिष्ठाधिकारः ॥ २६ ॥

ननु-आत्मना गच्छे चतुर्दशीहानौ चतुर्दशीकृत्य पौषधग्रहणपाक्षिकातिचारालोचनादिकं पूर्णिमायां क्रियते, अन्यगच्छेषु तु केषुचित् त्रयोदश्यां विधीयते तत्कथं ? उच्यते—पूर्णिमायाः पर्वतिथित्वेन मूलपक्षे सिद्धान्ते प्रत्याख्यातत्वात् पूर्णिमाया एव तत्सङ्गतिं अङ्गति !, अपि च पर्वभूतां पूर्णिमां अमावास्यां वा विहाय अपर्वभूतायां त्रयोदश्यां कथं पाक्षिककृत्यं क्रियेत ?, को नाम विज्ञमन्यो निकटवर्तिनीमुहत्प्रवाहां गङ्गां तीर्थभूतां विहाय अतीर्थभूते कूपे स्नानं समाचरेत् ?, पुनः त्रयोदश्यां तिथ्यां तत्करणे तु आगमाचरणयोः द्वयोः मध्ये एकस्याऽपि पक्षस्य अनाराधितत्वं स्यात् । यदुक्तं श्रीजिनप्रभसूरिभिः विधिप्रपायां, तथाहि—

पौषधं पर्वदिनानुष्ठान, तच्च द्वेधा–इष्टजनभोजनदानादिरूप, आहारादिपौषधरूप च, तत्र शङ्ख इष्टजनभोजनदानरूप पौषध कर्तुकामः सन् यदुक्तवान् तद्दर्शयत–इद उक्त इति, अथ यदि शतकादिश्रावकैः भोजनानन्तर पौषधो गृहीतो अभविष्यत् तदा तत्र पौषधपारणप्रस्तावोऽपि प्रोक्तो अभविष्यत्, पर न उक्त इति नो गृहीतः, न च वक्तव्य यथा तथा पौषधकरण भव्य एव, एव चेत्तर्हि प्रभाते भुक्त्वा पौषध कर्तव्यः, ततः पुनरपि सन्ध्याया पौषधमध्ये भुक्त्वा पौषधकरणं पौषधस्य आराधन कर्तव्य, न च अय पौषधो लाभाय भवेत्, यदि अतिप्रसङ्गनिवारणार्थं भोजनद्वयी पौषधो गीतार्थैः निषिद्धः, तदा अस्माकीनगीतार्थैः अपि अतिप्रसङ्गनिवारणार्थं पौषधमध्ये भोजन निषिद्ध अस्ति, पुन सिद्धान्तवचन प्रमाण, न अस्माक कोऽपि पक्षपात ॥ २९ ॥

॥ इति भोजनानन्तर पौषधग्रहणनिषेधाधिकारः ॥ २९ ॥

ननु–श्रीखरतरगच्छे यदि चतुष्पर्वी कल्याणकादितिथिं च विना पौषधग्रहण निराकृत, तर्हि उपधानमध्ये कथ श्राद्धाना सदा पौषधग्रहण कार्यते ? उच्यते–सत्य, यद्यपि उपधानाधिकारे श्राद्धाना श्रीमहानिशीथसूत्रे पौषधग्रहण न अलेखि, तथापि समस्तगच्छीयगीतार्थसम्मततया सर्वेषु अपि धर्मगच्छेषु गीतार्थैः स्वस्वोपधानदिनप्रमाणतया तत्र स्वस्वतपोयोगविधिप्रकरणेषु निबद्ध, ततो अस्मद्गीतार्थपूर्वैः अपि अन्यगीतार्थसम्मत्या आचरणया उपधानमध्ये पौषधग्रहण प्रमाणीकृत, उपधानमध्ये पौषधग्रहणपारणादिसर्वविधिः श्रीखरतरगच्छाधिपतिश्रीजिनवल्लभसूरिभि श्रीपौषधविधिप्रकरणे प्रोक्तोऽस्ति, तथैव श्रीजिनपतिसूरिभिः द्वादशकुलकवृत्तौ, पुनः श्रीजिनप्रभसूरिभि विधिप्रपाया, अपि च श्रीअभयदेव-

मेण जुत्ताओ । ता अवरविद्धअवरा, वि हुज्ज न हु पुव्वतविद्धा ॥ ४ ॥" इति, "क्षये पूर्वा तिथिर्ग्राह्या, वृद्धौ ग्राह्या तथोत्तरा" इदमपि वाक्यं श्रीरत्नशेखरसूरिणा विधिकौमुदीग्रन्थे उमास्वातिवचनपरिघोषतया लिखितं अस्ति ॥ २८ ॥

॥ इति तिथिवृद्धौ प्रथमा तिथिः मान्या इत्यधिकारः ॥ २८ ॥

ननु–श्रीखरतरगच्छे श्रावकाः भुक्त्वा पौषधं कथं न गृह्णन्ति तपागच्छीयश्रावकवत् ? उच्यते,—भुक्त्वा पौषधग्रहणं जीर्णग्रन्थेषु सर्वसम्मतेषु केषुचित् अपि दृष्टं श्रुतं वा नाऽस्ति, न च श्रीभगवतीसूत्रे द्वादशशतकप्रथमोद्देशके शङ्ख-श्रावकाधिकारे– ( ५५२ पत्रे ) ॥

"तए णं से सङ्खे समणोवासए ते समणोवासए एवं वयासी–तुब्भे णं देवाणुप्पिआ ! विउलं असणं पाणं खाइमं साइमं उवक्खडावेह, तए णं अम्हे तं विउलं असणं पाणं खाइमं साइमं आसाएमाणा विसाएमाणा परिभुंजेमाणा परिभाएमाणा पक्खिअं पोसहं पडिजागरमाणा विहरिस्सामो" इति अक्षरदर्शनात् वक्तव्यं, अत्र भोजनानन्तरं पौषधग्रहणं प्रतिपादितं अस्ति तदभिप्रायापरिज्ञानात्, अतोऽत्र पौषधशब्देन व्यापारपौषधो व्याख्यातोऽस्ति, न तु आहारपरित्यागरूपः । यदुक्तं एतदालापकवृत्तौ ( ५५५ पत्रे ) तथाहि–

"पक्खिअं पोसहं पडिजागरमाणा विहरिस्सामो त्ति" पक्षे=अर्धमासि भवं पाक्षिकं पौषधं=अव्यापारपौषधं प्रतिजाग्रतोऽनुपालयन्तो विहरिष्यामः=स्थास्यामः, यच्च इह अतीतकालीनप्रत्ययान्तत्वेऽपि वार्तमानिकप्रत्ययोपादानं तद्भोजनानन्तरं एव अक्षेपेण पौषधाभ्युपगमप्रदर्शनार्थं, एवं उत्तरत्राऽपि गमनिका कार्या इत्येके, अन्ये तु व्याचक्षते–इह किल

पौषधं पर्वदिनानुष्ठान, तच्च द्वेधा–इष्टजनभोजनदानादिरूप, आहारादिपौषधरूप च, तत्र शङ्कः इष्टजनभोजनदानरूप पौषध कर्तुकाम' सन् यदुक्तवान् तद्दर्शयत–इद उक्त इति, अथ यदि शतकादिश्रावकैः भोजनानन्तर पौषधो गृहीतो अभविष्यत् तदा तत्र पौषधपारणप्रस्तावोऽपि प्रोक्तो अभविष्यत्, पर न उक्तः इति नो गृहीतः, न च वक्तव्य यथा तथा पौषधकरण भव्य एव, एवं चेत्तर्हि प्रभाते भुक्त्वा पौषधः कर्तव्य, तत पुनरपि सन्ध्याया पौषधमध्ये भुक्त्वा पौषधकरणं पौषधस्य आराधन कर्तव्य, न च अय पौषधो लाभाय भवेत्, यदि अतिप्रसङ्गनिवारणार्थ भोजनद्वयी पौषधो गीतार्थै॰ निषिद्धः, तदा अस्माकीनगीतार्थैः अपि अतिप्रसङ्गनिवारणार्थ पौषधमध्ये भोजन निषिद्ध अस्ति, पुन सिद्धान्तवचन प्रमाण, न अस्माक कोऽपि पक्षपातः ॥ २९ ॥

॥ इति भोजनानन्तर पौषधग्रहणनिषेधाधिकारः ॥ २९ ॥

ननु–श्रीखरतरगच्छे यदि चतुष्पर्वी कल्याणकादितिथिं च विना पौषधग्रहण निराकृत, तर्हि उपधानमध्ये कथ श्राद्धाना सदा पौषधग्रहणं कार्यते ? उच्यते–सत्य, यद्यपि उपधानाधिकारे श्राद्धाना श्रीमहानिशीथसूत्रे पौषधग्रहण न अलेखि, तथापि समस्तगच्छीयगीतार्थसम्मततया सर्वेषु अपि धर्मगच्छेषु गीतार्थै स्वस्वोपधानदिनप्रमाणतया तत्र स्वस्वतपोयोग-विधिप्रकरणेषु निबद्ध, ततो अस्मद्गीतार्थवृद्धै अपि अन्यगीतार्थसम्मत्या आचरणया उपधानमध्ये पौषधग्रहण प्रमाणीकृत, उपधानमध्ये पौषधग्रहणपारणादिसर्वविधि श्रीखरतरगच्छाधिपतिश्रीजिनवल्लभसूरिभि श्रीपौषधविधिप्रकरणे प्रोक्तोऽस्ति, तथैव श्रीजिनपतिसूरिभिः द्वादशकुलकवृत्तौ, पुनः श्रीजिनप्रभसूरिभि विधिप्रपाया, अपि च श्रीअभयदेव-

मेण जुत्ताओ। ता अवरविद्धअवरा, वि हुज्ज न हु पुव्वतविद्धा ॥ ४ ॥" इति, "क्षये पूर्वा तिथिर्ग्राह्या, वृद्धौ ग्राह्या तथोत्तरा" इदमपि वाक्य श्रीरत्नशेखरसूरिणा विधिकौमुदीग्रन्थे उमास्वातिवचनपरिघोषतया लिखित अस्ति ॥ २८ ॥

॥ इति तिथिवृद्धौ प्रथमा तिथि' मान्या इत्यधिकारः ॥ २८ ॥

ननु—श्रीखरतरगच्छे श्रावकाः भुक्त्वा पौषध कथ न गृह्णन्ति तपागच्छीयश्रावकवत्? उच्यते,—भुक्त्वा पौषधग्रहण जीर्णग्रन्थेषु सर्वसम्मतेषु केषुचित् अपि दृष्ट श्रुत वा नाऽस्ति, न च श्रीभगवतीसूत्रे द्वादशशतकप्रथमोद्देशके शङ्खश्रावकाधिकारे–(५५२ पत्रे)॥

"तए णं से सखे समणोवासए ते समणोवासए एव वयासी—तुब्भे ण देवाणुप्पिआ! विउल असण पाण खाइम साइम उवक्खडावेह, तए ण अम्हे त विउल असण पाण खाइम साइम आसाएमाणा विसाएमाणा परिभुंजेमाणा परिभाएमाणा पक्खिअ पोसह पडिजागरमाणा विहरिस्सामो" इति अक्षरदर्शनात् वक्तव्य, अत्र भोजनानन्तर पौषधग्रहण प्रतिपादित अस्ति तदभिप्रायापरिज्ञानात्, अतोऽत्र पौषधशब्देन व्यापारपौषधो व्याख्यातोऽस्ति, न तु आहारपरित्यागरूप। यदुक्त एतदालापकवृत्तौ (५५५ पत्रे) तथाहि—

"पक्खिअ पोसह पडिजागरमाणा विहरिस्सामो त्ति" पक्षे=अर्धमासि भव पाक्षिक पौषध=अव्यापारपौषध प्रतिजाग्रतोऽनुपालयन्तो विहरिष्यामः=स्थास्यामः, यच्च इह अतीतकालीनप्रत्ययान्तत्वेऽपि वार्तमानिकप्रत्ययोपादान तद्भोजनानन्तर एव अक्षेपेण पौषधाभ्युपगमप्रदर्शनार्थ, एव उत्तरत्राऽपि गमनिका कार्या इत्येके, अन्ये तु व्याचक्षते—इह किल

उत्सर्गतः प्रावरणग्रहण नाऽस्ति, पर अपवादतः श्रीजिनदत्तसूरियुगप्रधानैः सन्देहदोलावल्या ( ६८ पत्रे ) काष्ठदाहशीता-
दिकारण आश्रित्य प्रावरणत्रय उक्त अस्ति, तथाहि–

"उस्सग्गनएण सावगस्स परिहाण साडगादवर । कप्पइ पाउरणाइ, न सेसमववायओ तिण्णि ॥ ४६ ॥"

नतु–मूलग्रन्थे तु न क्वाऽपि श्रावकाणा प्रावरण दृश्यते ? सत्य, पर सामायिकस्थः श्रावको यतितुल्यः सर्वत्र प्रति-
पादितः । यतीना तु शीताद्यपवादे कल्पत्रयस्य क्रमेण प्रावरणं उक्त, तथाहि ओघनिर्युक्तिभाष्य–'जाहे तह वी न तरे, ताहे
निविड्डिंग पाउणे खोम। तेण वि असथरतो, दो खोमी पाउणा ताहे॥ १॥ "तहवी असथर तो तइआणं ओण्णिं पाउणे" इति'
ततः "पागुरण सदिसावेमि पागुरणं पडिघाएमि" इति क्षमाश्रमणद्वय दत्त्वा, गुरोः पार्श्वे आदेश लात्वा, प्रावरणं गृह्णता
साम्प्रतीना शक्त्यभावे अपवादपद अङ्गीकुर्वता न दोपभाक्त्वम् । ननु–केपाचित् गच्छे गुरो पार्श्वे "पागुरण सदिसावेमि
पागुरण पडिघाएमि" इति क्षमाश्रमणद्वयं अदत्त्वा एव पागुरण गृह्यते तत्कथम् ? उच्यते–दोप एव तेपा सभाव्यते, तत्राऽर्थे
ते एव प्रष्टव्याः, तत्क्षमाश्रमणद्वय कुत्राऽन्तर्भवतीति वा ॥ ३४ ॥

॥ इति सामायिकादौ उत्सर्गतः प्रावरणनिपेधाधिकारः ॥ ३४ ॥

ननु–प्रतिक्रमणस्थापने आत्मना गच्छे क्षमाश्रमणचतुष्क दीयते, तत्कुत्र प्रतिपादित अस्ति ? उच्यते—"वदित्तु चेइआइ,
दाउं चउराइ खमासमणे । भूनिहिअसिरो सयला–इयारमिच्छुक्कड देई ॥ १ ॥" इति श्रीजिनवल्लभसूरिकृत'प्रति-

ननु-श्रीखरतरगच्छीयाः श्राद्धाः प्राभातिकसामायिकग्रहणे पूर्वं वइसण संदिसाएमि वइसण ठाएमि, पश्चात् सज्झाय संदिसाएमि सज्झायं करेमि इति वदन्ति, सायन्तनसामायिकग्रहणे तु पूर्वं सज्झाय संदिसावेमि सज्झाय करेमि, पश्चात् वइसण संदिसावेमि वइसण ठाएमि इति ब्रुवते, तत्र किं व्यत्ययकथने कारणम्? सामायिकविधे तुल्यत्वात् उभयत्र, उच्यते-सत्य, परं श्रीजिनवल्लभसूरिकृतपौषधविधिप्रकरणे श्रीजिनप्रभसूरिविरचितश्रीविधिप्रपाग्रन्थे श्रीपञ्चाशकचूर्णौ च रात्रिपौषधिकश्रावकस्य सामायिकग्रहणावसरे प्रातः वइसणाक्षमाश्रमणद्वयदानात् अनु स्वाध्यायक्षमाश्रमणद्वयदान प्रोक्त, पुनः तत्रैव पञ्चाशकचूर्ण्यादौ पौषधिकस्य सायं प्रथम स्वाध्यायक्षमाश्रमणद्वयदान, तदनु वइसणाक्षमाश्रमणद्वयदान उक्त, यथा पौषधे तथा सामायिकेऽपि उभयत्राऽपि क्रियाया तुल्यत्वात्, तथा श्रीआवश्यकचूर्णौ प्राभातिकसामायिकग्रहणे "उवविट्ठो पढइ" इत्यादिपाठप्रामाण्यात्, 'उवविट्ठ'शब्देन वइसणा क्षमाश्रमणे, 'पढइ'शब्देन स्वाध्यायक्षमाश्रमणे, सायन्तनसामायिकग्रहणे तु सर्वेष्वपि स्वाध्यायक्षमाश्रमणाभ्या, अनु वइसणाक्षमाश्रमणदान सम्मत एव इति किं विचार्य? अत्र पौषधविधिप्रकरण-विधिप्रपा-पञ्चाशकचूर्णि-आवश्यकचूर्णि-पाठस्तु तत्तद्ग्रन्थविलोकनेन ज्ञातव्य ॥

॥ इति सामायिकग्रहणे प्रभाते पूर्वं वइसणं तत स्वाध्यायम् इति अधिकारः ॥ ३३ ॥

ननु-"पावरण पमुत्तूणं गिण्हत्ता मुहपत्तिअ। वत्थकायविसुद्धीए करेइ पोसहा इअ ॥ १ ॥" इति व्यवहारचूर्णिवचनात्, तथा "सो अ किर सामाइअं करिंतो मउडं अवणेइ कुंडलाणि नाममुद्दं तंबोलपावारगमाइ वोसिरइ" इति आवश्यकचूर्णिपाठप्रामाण्याच्च, प्रावरणनिषेधे सति किमिति सामायिकपौषधादौ श्रावकैः प्रावरण गृह्यते? उच्यते-यद्यपि

उत्सर्गतः प्रावरणग्रहण नाऽस्ति, पर अपवादतः श्रीजिनदत्तसूरियुगप्रधानैः सन्देहदोलावल्यां ( ९८ पत्रे ) काष्ठदाहशीतादिकारणं आश्रित्य प्रावरणत्रय उक्त अस्ति, तथाहि–

"उस्सग्गनएण सावगस्स परिहाण साडगादवर । कप्पइ पाउरणाइ, न सेसमववायओ तिण्णि ॥ ४६ ॥"

ननु–मूलग्रन्थे तु न क्काऽपि श्रावकाणा प्रावरण दृश्यते ? सत्यं, पर सामायिकस्थः श्रावको यतितुल्य सर्वत्र प्रतिपादितः । यतीना तु शीताद्यपवादे कल्पत्रयस्य क्रमेण प्रावरण उक्त, तथाहि ओघनिर्युक्तिभाष्य–'जाहे तह वी न तरे, ताहे निविट्ठेग पाउणे खोम। तेण वि असंथरतो, दो खोमी पाउणा ताहे ॥ १ ॥ "तहवी असथर तो तइआण ओणिंण पाउणे" इति' ततः "पागुरणं सदिसावेमि पागुरणं पडिघाएमि" इति क्षमाश्रमणद्वय दत्त्वा, गुरोः पार्श्वे आदेश लात्वा, प्रावरण गृह्णता सामतीना शक्त्यभावे अपवादपद अङ्गीकुर्वता न दोपभाक्त्वम् । ननु–केपाचित् गच्छे गुरो पार्श्वे "पागुरण संदिसावेमि पांगुरण पडिघाएमि" इति क्षमाश्रमणद्वय अदत्त्वा एव पागुरण गृह्यते तत्कथम् ? उच्यते–दोप एव तेपा सभाव्यते, तत्राऽर्थे ते एव प्रष्टव्याः, तत्क्षमाश्रमणद्वय कुत्राऽन्तर्भवतीति वा ॥ ३४ ॥

॥ इति सामायिकादौ उत्सर्गत प्रावरणनिपेधाधिकारः ॥ ३४ ॥

ननु–प्रतिक्रमणस्थापने आरमना गच्छे क्षमाश्रमणचतुष्क दीयते, तत्कुत्र प्रतिपादित अस्ति ? उच्यते—"वंदित्तु चेइआइ, दाउं चउराइ खमासमणे । भूनिहिअसिरो सयला–इयारमिच्छुक्कड देई ॥ १ ॥" इति श्रीजिनवल्लभसूरिकृत'प्रति-

क्रमणसामाचारी' पाठसद्भावात् । पुनः "इरिया कुसुमिणुस्सग्गो, सक्कत्थय साहुनमण सज्झाय । चउरो वि खमासमणा, सयस्स वि दुक्कओ चेव ॥ १० ॥" इत्यादि भावदेवसूरिकृत( ८ पत्रे )यतिदिनचर्याग्रन्थसम्मत्या च क्षमाश्रमणचतुष्क एव सङ्गतिं अङ्गति, एवं तरुणप्रभसूरिकृतबालावबोधे अपि, तथाहि–"देववन्दना अनन्तरं तओ पाछइ एक खमासमणि आचार्यमिश्र वांदीयइ १ बीअ खमासमणि उपाध्यायमिश्र वांदीयइ २ तओ पाछइ एक खमासमणि भगवत वर्तमान-गुरु वांदीयइ ३ चउथी खमासमणि सर्वसाधु वांदीयइ ४ इसी परे चउरादि खमासमण देइ करी गोडिलिया होइ, माथउ भुइ लिगाडी, मुहपत्ति मुहि दीधा हुंति हाथ जोडिए "सयस्स वि देवसिअ" इत्यादि कहीये छेहिं, "इच्छाकारेण संदि-स्सह" इसुं पद न कहियइ, तस्स मिच्छामि दुक्कड कही करी उभा थइ करेमि भंते ! इत्यादि, एवमेव रात्रिप्रतिक्र-मणस्थापनासमयेऽपि क्षमाश्रमणचतुष्कं लिखित अस्ति, एव श्रीजिनप्रभसूरिकृतविधिप्रपाया अपि क्षमाश्रमणचतुष्क एव, तथाहि "चेइआइं वंदित्तु चउराइ खमासमणेहिं आयरियाई वंदिअ भूनिहिअसिरो "सयस्स वि देवसिअ" इच्चाइ दंड-गेण सयलाइयारमिच्छामि दुक्कडं दाउ" इत्यादि। ननु–तपागच्छीयगीतार्थैः अपि क्वाऽपि प्रतिक्रमणप्रारम्भे क्षमाश्रमणचतु-ष्टय उक्त अस्ति? उच्यते—तपागच्छीय–श्रीजयचन्द्रसूरिभि प्रतिक्रमणहेतुगर्भग्रन्थे स्पष्ट तस्य प्रतिपादनात्, तथाहि–"चतुरादिक्षमाश्रमणैः श्रीगुरून् वन्दते" इत्यादि । ननु–तर्हि साम्प्रतीनाः तपागच्छीयाः साध्वादय "भगवन् ! देवसिअ पडिक्कमणु ठाउं" इत्येवरूप पञ्चम क्षमाश्रमण अनुक्त अपि कथं ददते ? उच्यते—तत्राऽर्थे ते एव प्रष्टव्याः, पुनः तपा-

गच्छीयाः प्रथमक्षमाश्रमणे श्रीभगवन् वादु इति वदन्ति, तत्र भगवच्छब्देन किं देवो वा गुरुः वा ?, न देव, तस्य च देववन्दनाधिकारे पूर्वं वन्दितत्वेन पुनरुक्तदोषसंभवात्, नाऽपि गुरुः, गुरुवन्दने आचार्यवन्दनस्य पृथक्क्षमाश्रमणेन प्रतिपादितत्वात्, नाऽपि आचार्यात् अधिको गुरुः कोऽपि सभाव्यते, अत्र बहु विचार्यमपि तेषाम् ॥ ॥ इति ॥ ३५ ॥

॥ इति प्रतिक्रमणस्थापने क्षमाश्रमणचतुष्क एव न तत्पञ्चकम् ॥ ३५ ॥

ननु–लौकिकटिप्पणकानुसारेण कार्तिकवृद्धौ कस्मिन् कार्तिके चतुर्मासिकप्रतिक्रान्त्यादिकृत्य क्रियमाण अस्ति ? उच्यते–प्रथमकार्तिके एव, यदुक्त श्रीखरतरगच्छीयसामाचारीपत्रे, तथाहि–"काती वधइ तउ पहिलीइ काती चउमासउ कीजइ । १ ।" इत्थमेव श्रीजिनपतिसूरिसामाचार्यां अपि, तथाहि–"कत्तिअवुड्ढीए पढमकत्तिए चेव चाउम्मासिअ पडिक्कमिज्जइ, सेसमासवुड्ढीए पच्छसु मासेसु चउमास कीरइ" इति १४ सामाचारी । २ । ननु–यथा श्रीखरतरगच्छे कार्तिकवृद्धौ प्रथमकार्तिके एव चतुर्मासिकप्रतिक्रान्त्यादिकृत्य क्रियते, तथा अन्यगच्छेषु अपि क्वाऽपि एव वर्तते न वा ? उच्यते—श्रीतपागच्छीयपट्टावल्या अवदातवर्णनाधिकारे, श्रीसोमप्रभसूरयः प्रथमकार्तिके एव प्रतिक्रम्य विहृताः सन्ति, तथाहि तत्पट्टावलीप्रबन्धः–"स० १३१० वर्षे श्रीसोमप्रभसूरिणां जन्म २१ दीक्षा ३२ सूरिपद, श्रीगुरुदत्तमन्त्रपुस्तिका "चारित्र मे प्रयच्छत मन्त्रपुस्तिकां न" इत्युक्त्वा न गृहीता, अपरयोग्याभावात् गुरुभि जले बोलिता सा, श्रीसोमप्रभसूरिणा एकादशाङ्गानां सूत्रार्थौ कण्ठस्थौ, भीमपल्ल्या चतुर्मासीं अवस्थिताः, एकादशसु अपरेषु आचा-

क्रमणसामाचारी' पाठसद्भावात् । पुनः "इरिया कुसुमिणुसग्गो, सक्कत्थय साहुनमण सज्झाय । चउरो वि खमासमणा, सयस्स वि दउओ चेव ॥ १० ॥" इत्यादि भावदेवसूरिकृत( ८ पत्रे )यतिदिनचर्याग्रन्थसम्मत्या च क्षमाश्रमणचतुष्क एव सङ्गतिं अङ्कति, एवं तरुणप्रभसूरिकृतबालावबोधे अपि, तथाहि–"देववन्दना अनन्तर तओ पाछइ एक खमासमणि आचार्यमिश्र वांदीयइ १ बीअ खमासमणि उपाध्यायमिश्र वांदीयइ २ तओ पाछइ एक खमासमणि गुरु वादीयइ ३ चउथी खमासमणि सर्वसाधु वादीयइ ४ इसी परे चउरादि खमासमण देइ करी गोडिलिया होइ, मायउ मुह लिगाडी, मुहपत्ति मुहि दीधा हुति हाथ जोडिए "सवस्स वि देवसिअ" इत्यादि कहीये छेहिं, "इच्छाकारेण संदिसह" इसुं पद न कहियइ, तस्स मिच्छामि दुक्कड कही करी उभा थइ करेमि भंते ! इत्यादि, एवमेव रात्रिप्रतिक्रमणस्थापनासमयेऽपि क्षमाश्रमणचतुष्कं लिखित अस्ति, एव श्रीजिनप्रभसूरिकृतविधिप्रपाया अपि क्षमाश्रमणचतुष्क एव, तथाहि "चेइआइ वंदित्तु चउराइ खमासमणेहिं आयरियाई वंदिअ भूनिहिअसिरो "सवस्स वि देवसिअ" इच्चाइ दंडगेण सयलाइयारमिच्छामि दुक्कडं दाउ" इत्यादि। ननु–तपागच्छीयगीतार्थैः अपि क्वाऽपि प्रतिक्रमणप्रारम्भे क्षमाश्रमणचतुष्टय उक्त अस्ति? उच्यते—तपागच्छीय–श्रीजयचन्द्रसूरिभिः प्रतिकमणहेतुगर्भग्रन्थे स्पष्ट तस्य प्रतिपादनात्, तथाहि–"चतुरादिक्षमाश्रमणैः श्रीगुरून् वन्दते" इत्यादि । ननु–तर्हि साम्प्रतीनाः तपागच्छीया साध्वादयः "भगवन् ! देवसिअ पडिकमणु ठाउं" इत्येवरूप पञ्चम क्षमाश्रमण अनुक्तं अपि कथं वदते ? उच्यते—तत्राऽर्थे ते एव प्रष्टव्याः, पुन तपा-

सागा, मुग्गगय आमगोरसुम्मीस । संसज्जए अ इयरा, तहवि हु, नियमा वु दोसायत्ति ॥ १ ॥" इति आत्मसंयमविराधनारूपौ द्वौ दोपौ इत्यर्थ ॥ पुनरपि तथैव श्रीकुमारपालभूपालशुश्रूपितश्रीहेमचन्द्रसूरिभि अपि उक्तं, तथाहि–

"आमगोरससपृक्त–द्विदलादिषु जन्तवः। दृष्टा केवलिभिः सूक्ष्मा–स्तस्मात् तानि विवर्जयेत्॥१॥" अत्र इदं रहस्य—अत्र सर्वत्र एव प्रतिपादित यदुत अनुत्कालितगोरसेन सम मीलिते द्विदलान्ने संमूर्च्छेत्सूक्ष्मत्रसजीवविराधनादोषो भवति। ननु–मुखे यदा आमगोरसद्विदलान्नयो' सयोगो भवति, तदा सूक्ष्मत्रसजीवा समूर्च्छन्ति इति वहवो लोकाः प्रतिपादयन्ति तत्र किं उत्तरम्? उच्यते—तयोः मुखसयोगे तदुत्पत्त्यक्षराणि न दृष्टानि, प्रत्युत निपेधो दृश्यते। यदुक्त श्रीजिनभद्रसूरिपट्टालङ्कारश्रीजिनचन्द्रसूरिविजयराज्ये श्रीमेरुसुन्दरनामोपाध्यायैः स्वकृतसाधिकशतप्रश्नोत्तरग्रन्थे, तथाहि–"विदल किम जीव उपजइ तत्रार्थे श्रीवडाकल्पना भाष्यमांहे गाहा कही जइ–"जइ मुग्गमासपमुहं, विदल कच्चमि गोरसे पडइ । ता तसजीवुप्पत्तिं, भणंति दहिए वि तिदिणुवरिं ॥ १ ॥" अत्र काचा गोरसमाहि विदलान्न पडइ तिवारइ त्रसजीव उपजइ, पणि कठतालुया नइ योगइ नही कह्या, वलि जिणदिहाडइ विदल जिमइ छइ तिणदिहाडइ गोरस केइ नही जिमता, ते स्यु कारण? तत्रार्थे ते वात अयुक्ता, जे भणी विदलान्न जेतलइ जिमउ तेतलइ उदराग्नियोगि ते परिपक्व हुयउ, ते भणी तिवारइ तक्रादि लीजइ तउ दोप न हुवइ, तेह तक्रादिक उदराग्नि मुखि पडता सामानि परिपक्व थायइ तेहमणी एह दोप नहीं, यतो "विदलं कच्चमि गोरसे पडइ" इतिवचनात्, इति ६४ प्रश्ने" ॥ ३७ ॥

॥ इति अनुत्कालितगोरसेन सम मीलिते द्विदलान्ने दोपाधिकारः ॥ ३७ ॥

येषु वारयसु अपि कार्तिकद्वये प्रथमे कार्तिके मते, न तु पक्षः, ते आचार्याः चतुर्मासके प्रतिक्रम्य विहृताः” इत्यादि ॥

॥ इति कार्तिकवृद्धौ प्रथमकार्तिके चतुर्मासिकप्रतिक्रमणाधिकारः ॥ २६ ॥

ननु–आमगोरसेन समं द्विदलान्न भुञ्जानाना दोषः प्रतिपादितः सर्वत्र, तत्तु सङ्गतिं अङ्गति, पर स दोष किं स्थाल्यादिभोजनादिभाजनस्थितेन आमगोरसेन सम मीलिते द्विदले भवति १ किं वा मुखे प्रक्षिप्ते २ किं वा गिलनानन्तर ३ ? उच्यते—आद्ये विकल्पे द्विदलदोषो भवति, पर न मुखे प्रक्षिप्ते, नाऽपि गिलनानन्तर, यतः श्रीसन्देहदोलावलीसूत्रवृत्त्योः ( ९३ पत्रे ) आमगोरसमध्ये द्विदले पतिते दोषो भवति, इत्थमेव उक्तत्वात्, तथाहि–

“उक्कालिअम्मि तक्के, विदलक्खेवे वि नत्थि तद्दोसो । अतत्तगोरसम्मि य, पडिअ ससप्पए विदल ॥ ९६ ॥”

व्याख्या–‘उत्कालिते’ अग्नितापात् अत्युष्णीभूते, ‘तक्रे’ गोरसे तक्र गोरसभेदाना दध्यादीनां उपलक्षण, द्वे दले यस्य तद्विदल–मुद्गादि, तस्य ‘क्षेपे’ऽपि न्यासेऽपि, किं पुनः द्विदलकवलगिलनानन्तर उत्कालिततक्राधारमकप्रमले अवलेहादिपाने, इति अपेः अर्थः, ‘नाऽस्ति’ न भवति तद्दोषो=द्विदलदोषो जीवविराधनालक्षणः । अत्र हेतु आह–यत इति अध्याहार्य, यतः कारणात् ‘अतप्तगोरसे’ आमगोरसे ‘पतित’ सगतं ‘द्विदल’ पालक्यालट्टशाकमुद्गादि ससर्पति=ससजति संमूर्च्छत्सूक्ष्मत्रसजीवयुक्तं भवति इत्यर्थः ॥ इत्थमेव श्रीदुर्लभराजसभालब्धजयवादश्रीजिनेश्वरसूरिभिः अपि उक्तम्, तथाहि–“ जइ मुग्गमासपमुहं, विदल आमम्मि गोरसे पडइ । ता तसजीवुप्पत्ती, भणंति दहिअम्मि तिदिणुवरिं ॥ १ ॥”

ननु–पूर्वाचार्यमन्थेषु अपि इत्थं प्रतिपादितं अस्ति न वा ? उच्यते–श्रीकल्पभाष्ये तथैव प्रतिपादना, तथाहि–“पालकलट्ट-

## ॥ अथ द्वितीयः प्रकाशः ॥

॥ श्रीमत्पार्श्वनाथाय नमः ॥

---

ननु–श्रीजिनशासने संप्रति कति आगमाः सन्ति ? उच्यते—पञ्चचत्वारिंशत्, यदुक्त–"इक्कारस अंगाइं ११, बारसउवंगाइं २३ दस पइण्णा ३३ य। छ च्छेअ ३९ मूलचउरो ४३, नंदी ४४ अणुयोगदाराइं ४५ ॥ १ ॥" पृथक् पृथक् नामानि अपि इत्य—श्रीआचाराङ्ग १ सूत्रकृताङ्ग २ स्थानाङ्ग ३ समवायाङ्ग ४ भगवती ५ ज्ञाताधर्मकथा ६ उपासकदशाङ्ग ७ अन्तकृद्दशाङ्ग ८ अनुत्तरोपपातिकदशाङ्ग ९ प्रश्नव्याकरण १० विपाकश्रुत ११ चेति एकादश अङ्गानि। औपपातिक १ राजप्रश्नीय २ जीवाभिगम ३ प्रज्ञापना ४ सूर्यप्रज्ञप्तिः ५ जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति ६ चन्द्रप्रज्ञप्तिः ७ निरयावली ८ कल्पावतंसिका ९ पुष्पिका १० पुष्पचूलिका ११ वह्निदशोपाङ्ग १२ चेति द्वादश उपाङ्गानि पूर्वमीलने २३। चतुःशरणप्रकीर्णक १ चन्द्रावेध्यकः २ आतुरप्रत्याख्यान ३ महाप्रत्याख्यान ४ भक्तप्रत्याख्यान ५ तन्दुलवैकालिक ६ गणिविद्या ७ मरणसमाधिः ८ देवेन्द्रस्तवः ९ संस्तारकप्रकीर्णक १० चेति दश प्रकीर्णकानि पूर्वमीलने ३३। निशीथ १ महानिशीथ २ व्यवहारः ३ बृहत्कल्पः ४ जीतकल्पः ५ दशाश्रुतस्कन्धः ६ चेति षट् छेदग्रन्था पूर्वमीलने ३९। ओघनिर्युक्ति १ पिण्डनिर्युक्तिः २ दशवैकालिक ३ उत्तराध्ययन ४ चेति चत्वारि मूलसूत्राणि। क्वाऽपि विचारामृतसंग्रहादौ ओघनिर्युक्तिस्थाने

खरतरगच्छाधीशा, जिनचन्द्रयुगप्रधानगुरुराजा । श्रीपातसाहिमान्याः, समभूवन् भूमिविख्याता ॥ १ ॥
श्रीपूज्यमुख्यशिष्याः, दक्षाः श्रीसकलचन्द्रनामानः । मद्गुरवो गुणगुरव–स्तेषामेष प्रसादो मे ॥ २ ॥
सप्तत्रिंशन्मितैरेवं, पूर्णं प्रश्नोत्तरैः स्फुटम् । प्रकाश प्रथम चक्रे, गणि समयसुन्दरः ॥ ३ ॥
इति श्रीसामाचारीशतके पञ्चमप्रकाशे श्रीसमयसुन्दरोपाध्यायविरचिते प्रथमः प्रकाश सम्पूर्ण ॥ १ ॥

इति श्रीसमयसुन्दरोपाध्यायविरचिते सामाचारी-
शतके प्रथमः प्रकाशः समाप्तः ॥

महानिशीथ २ दशप्रकीर्णक १२ अनुयोग (द्वाराणि) १३ एते त्रयोदश, तेषा पूर्वाचार्यछद्मस्थप्रणीतत्वात्, मम मनस्तु गणधरदेवभाषित एव प्रीतिं जनयति न अन्यत्, अत्रार्थे रे मनोमतिशिष्य ! शृणु निश्चलमनोदानेन गणधरदेवभाषिता तु द्वादशाङ्गी अभूत् मूलतः, तत्राऽपि दृष्टिवादः सूत्रार्थाभ्या व्यवच्छिन्नः, साम्रत एकादश अङ्गानि गणधरभाषितानि, अन्यागमाः सर्वेऽपि छद्मस्थैः पूर्वाचार्यैः अङ्गेभ्यः उद्धृताः सन्ति, यथा प्रज्ञापना श्रीश्यामाचार्येण कृता, यदुक्त प्रज्ञापना प्रथमपादे ( ५ पत्रे ) अन्यकृत गाथाद्वय इदम्, तथाहि–'वायगवरवसाओ, तेवीसइमेण धीरपुरिसेण। दुद्धरधरेण मुणिणा, पुव्वसुयसमिद्धबुद्धीण ॥ १ ॥ सुयसागरा विणेऊ–ण जेण सुअरयणमुत्तम दिन्न । सीसगणस्स भगवओ, तस्स नमो अज्ज-सामस्स ॥ २ ॥ एतट्टीकायां एतद्गाथाद्वयव्याख्यान अपि अस्ति, श्रीऋषिमण्डलसूत्रेऽपि १९१ गाथायाम्, यथा–'निज्जूढा जेण तया, पन्नवणा सव्वभावपन्नवणा । तेवीसइमो पुरिसो, जाओ सामज्जनामुत्ति ॥ १ ॥ स च श्रीश्यामाचार्यः श्रीमहावीरात् ३३५ वर्षे जातो, यदुक्त विचारसारे–"सिरिवीराउ गएसुं, पणतीसहिएसु तिसयवरिसेसु । पढमो कालिगसूरी, जओ सामज्जनामुत्ति ॥ १ ॥" ॥ १ ॥ तथा दशाश्रुतस्कन्धस्तु श्रीभद्रबाहुस्वामिना चतुर्दशपूर्वधरेण श्रीमहावीरदेवतः सप्तत्यधिकशत १७० वर्षे जाते तेन विनिर्मितः ॥ २ ॥ श्रीदशवैकालिकसूत्रमपि श्रीसुधर्मस्वामिनः चतुर्थपट्टधरेण श्रीशय्यंभवसूरिणा विहितम् ॥ ३ ॥ श्रीउत्तराध्ययनसूत्र तु श्रीपाक्षिकवृत्तौ "ऋषिभाषितानि उत्तराध्ययनानि" इति व्याख्यातत्वात् ऋषिभाषित ॥ ४ ॥ एवं अन्येऽपि आगमाः छेदग्रन्थादिका अवशिष्टाः सर्वेऽपि पूर्वाचार्यकृता एव सन्ति, ततः त्वं एकादश अङ्गानि एव मन्यस्व न द्वात्रिंशत् आगमान् । अथ यदि उपाङ्गादीन् द्वात्रिंशद् आगमान् मानयिष्यसि तदा

आवश्यकनिर्युक्तिः अस्ति पूर्वमीलने ४३ नन्दीसूत्र ४४ अनुयोगद्वार ४५ इति ४५ आगमा'। एतानि एव आगमनामानि श्रीजिनप्रभसूरिभिः अपि स्वकृतसिद्धान्तस्तवे प्रोक्तानि, तथाहि–

"सिरिवीरजिण सुयरय–ण रोहण पणमिऊण। भत्तीए कित्तेमि तप्पणीअ सिद्धातमह जगप्पईव ॥ १ ॥ पढम आयारग १, सूअगड २ ठाणंग ३ समवाय ४। भगवइअग ५ नाया–धम्मकहो ६ वासगदसा ७ य ॥ २ ॥ अतग डदसा ८ णुत्तर–वाइदसा ९ पण्हवागरणनामं १०। सुहदुक्खविवागसुअ ११, दिट्ठीवाय १२ च अगाणि ॥ ३ ॥ उववाई १ रायपसे–णिअ २ तह जीवाभिगम ३ पन्नवणा ४। जंबुप्पन्नत्ती ५ च–द ६ सूरपन्नत्ति ७ नामाओ ॥ ४ ॥ निरयावलिआ ८ कप्पा–वयंसि ९ पुप्फिया १० पुप्फचूला य ११। वह्नीदसा १२ य एए, वारसुवगाण नामाणि ॥ ५ ॥ चउसरण १ चदविज्झग २, आउर ३ महपुयपच्चक्खाण ४ च। भत्तपइण्णा ५ तदुल–वेयालीय ६ च- गणिविज्जा ७ ॥ ६ ॥ मरणसमाही ८ देविं–दथओ ९ सथार १० इय दस पइण्णा। वीरत्थय गच्छाया–रपमुह चउ दससहस्स पुरा ॥ ७ ॥ दसवेआलिअ १ तह ओ–घ २ पिंडनिज्जुत्ति ३ उत्तरज्झयणा ४। चत्तारि मूलगया, नदी १ अणुयोगदाराई २ ॥ ८ ॥ निस्सीह १ कप्पववहा–र २ पंचकप्पो ३ दसासुअक्खधो ४। तह महनिसीह ५ एए, छ—च्छेआ जीअकप्पो ६ अ ॥ ९ ॥ पंचपरमिट्ठसामा–इयाइ आवस्सय च छ—च्छेअ। निज्जुत्तिचुण्णिवित्ती, विसे- सआवस्सयाइजुअ ॥ १० ॥ इअ जिणपहेण गुरुणा, रेइअं सिद्धतनाममेगत्त। पणयालीसपमाण, निअनिअनामेण नायव ॥११॥" अत्र आह कोऽपि मनोमतिशिष्यः—ननु–अह द्वात्रिंशत् एव आगमान् मानयिष्यामि, न निशीथ १

महानिशीथ २ दशप्रकीर्णक १२ अनुयोग (द्वाराणि) १३ एते त्रयोदश, तेषा पूर्वाचार्यछद्मस्थप्रणीतत्वात्, मम मनस्तु गणधरदेवभाषित एव प्रीतिं जनयति न अन्यत्, अत्रार्थे रे मनोमतिशिष्य ! शृणु निश्चलमनोदानेन गणधरदेवभाषिता तु द्वादशाङ्गी अभूत् मूलतः, तत्राऽपि दृष्टिवादः सूत्रार्थाभ्यां व्यवच्छिन्नः, साम्प्रत एकादश अङ्गानि गणधरभाषितानि, अन्यागमाः सर्वेऽपि छद्मस्थैः पूर्वाचार्यैः अङ्गेभ्यः उद्धृताः सन्ति, यथा प्रज्ञापना श्रीश्यामाचार्येण कृता, यदुक्त प्रज्ञापना प्रथमपादे ( ५ पत्रे ) अन्यकृत गाथाद्वयं इदम्, तथाहि–'वायगवरवसाओ, तेवीसइमेण धीरपुरिसेण । दुद्धरधरेण मुणिणा, पुव्वसुयसमिद्धबुद्धीण ॥ १ ॥ सुयसागरा विणेऊ–ण जेण सुअरयणमुत्तम दिन्न । सीसगणस्स भगवओ, तस्स नमो अज्जसामस्स ॥ २ ॥ एतट्टीकाया एतद्गाथाद्वयव्याख्यान अपि अस्ति, श्रीऋषिमण्डलसूत्रेऽपि १९१ गाथायाम्, यथा–'निज्जूढा जेण तया, पन्नवणा सव्वभावपन्नवणा । तेवीसइमो पुरिसो, जाओ सामज्जनामुत्ति ॥ १ ॥ स च श्रीश्यामाचार्यः श्रीमहावीरात् ३३५ वर्षे जातो, यदुक्त विचारसारे–"सिरिवीराउ गएसुं, पणतीसहिएसु तिसयवरिसेसु । पढमो कालिगसूरी, जओ सामज्जनामुत्ति ॥ १ ॥" ॥ १ ॥ तथा दशाश्रुतस्कन्धस्तु श्रीभद्रबाहुस्वामिना चतुर्दशपूर्वधरेण श्रीमहावीरदेवतः सप्तत्यधिकशत १७० वर्षे जाते तेन विनिर्मितः ॥ २ ॥ श्रीदशवैकालिकसूत्रमपि श्रीसुधर्मस्वामिनः चतुर्थपट्टधरेण श्रीशय्यभवसूरिणा विहितम् ॥ ३ ॥ श्रीउत्तराध्ययनसूत्र तु श्रीपाक्षिकवृत्तौ "ऋषिभाषितानि उत्तराध्ययनानि" इति व्याख्यातत्वात् ऋषिभाषित ॥ ४ ॥ एव अन्येऽपि आगमाः छेदग्रन्थादिका अवशिष्टाः सर्वेऽपि पूर्वाचार्यकृता एव सन्ति, ततः त्व एकादश अङ्गानि एव मन्यस्व न द्वात्रिंशत् आगमान् । अथ यदि उपाङ्गादीन् द्वात्रिंशद् आगमान् मानयिष्यसि तदा

मारित इति कथ न विरोधः ? ॥ १ ॥ अपि च श्रीज्ञाताधर्मकथाया ( २०६ पत्रे ) "तए णं सा सूमालिआ अज्जा अणोहट्टिआ अनिवारिआ सच्छदमई अभिक्खण अभिक्खण हत्थे धोवेइ जाव चेएति, तत्थवि अ ण पासत्था पासत्थविहारी, ओसन्ना ओसन्नविहारी कुसीला कुसीलविहारी ससत्ता संसत्तविहारी बहूणि वासाणि सामण्णपरिआग पाउणति अद्धमासिआए सलेहणाए तस्स ठाणस्स अणालोइअ अपडिक्कंता कालमासे काल किच्चा ईसाणे कप्पे अण्णयरसि विमाणसि देवगणिअत्ताए उववन्ना, तत्थेगइआण देवीणं नवपलिओवमाइ ठिई पन्नत्ता, तत्थण सूमालिआए देवीए नव पलिनमाइ ठिई पन्नत्ता" अपि च श्रीज्ञाताधर्मकथाया विराधितसंयमा सुकुमारिकाऽऽर्या ईशाने कल्पे देवगणिकात्वेन उत्पन्ना इत्यादि प्रोक्त अस्ति, एतद् सूत्रविसंवादि च इद श्रीभगवतीसूत्र ( ४९ पत्रे ), यथा "विराहिअसजमाण कहिं उववाओ ? गोयमा ! जहन्नेण भवणवासु, उक्कोसेण सोहम्मे कप्पे" इति। अत्र इदं रहस्य—ज्ञातायां विराधितसयमाया अपि सुकुमारिकाया ईशाने देवलोके उत्पाद उक्तः, भगवत्या तु उत्कर्षेण अपि विराधितसयमस्य सौधर्मे एव उत्पादः, तर्हि कथ न विसवादः ? ॥ २ ॥ पुन श्रीजीवाभिगमसूत्रे ( ३७ पत्रे ) "से किं त थलयरपरिसप्पसमुच्छिमा ? २ दुविहा पन्नत्ता, त जहा–उरगपरिसप्पसमुच्छिमा, भुयगपरिसप्पसमुच्छिमा। से किं तं उरगपरिसप्पसंमुच्छिमा ? २ चउविहा पन्नत्ता, त जहा–अही १ अयगरा २ आसालिआ ३ महोरगा ४। से किं त अही ? अही दुविहा पन्नत्ता, तं जहा–दव्वीकरा मउलिणो अ, से किं त दव्वीकरा ? दव्वीकरा अणेगविहा पन्नत्ता, त जहा–आसीविसा जाव से तं दव्वीकरा। से किं त मउलिणो ? मउलिणो अणेगविहा पन्नत्ता, तजहा–दिव्वा गोणसा जाव से त मउलिणो, से त अही। से किं त अयगरा ? अयगरा एगागारा पन्नत्ता, से त अयगरा।

से किं त आसालिआ? १ आसालिआ २ जहा पन्नवणाए। से त आसालिआ। से किं तं महोरगा? महोरगा जहा पन्नवणाए, से तं महोरगा। जे यावण्णे तहप्पगारा ते समासओ दुविहा पन्नत्ता, तं जहा—पज्जत्ता य, अपज्जत्ता य त चेव, नवरि सरीरोगाहणा जहन्नेण अंगुलस्सऽसंखेज्जभाग उक्कोसेणं जोयणपुहुत्तं" एतत्सूत्रविरोधि तु इद श्रीप्रज्ञापनासूत्र (४६ पत्रे), तथाहि—

कहिणं भंते! आसालिआ संमुच्छंति? गोयमा! अंतोमणुस्सखित्ते अड्ढाइज्जेसु दीवेसु निव्वाघाएण पन्नरससु कम्मभूमिसु वाघाय पडुच्च पंचसु महाविदेहेसु चक्कवट्टिखंधावारेसु बलदेवखंधावारेसु वासुदेवखंधावारेसु मंडलिअखंधावारेसु महामंडलिअखंधावारेसु गामनिवेसेसु निगमनिवेसेसु खेडनिवेसेसु नगरनिवेसेसु कव्वडनिवेसेसु मडंबनिवेसेसु दोणमुहनिवेसेसु पट्टणनिवेसेसु आगरनिवेसेसु आसमनिवेसेसु संवाहनिवेसेसु रायहाणीनिवेसेसु एएसिण चेव विणासेसु एत्थ ण आसालिआ संमुच्छति। जहन्नेण अंगुलस्स असंखेज्जइभागमित्ताए ओगाहणाए उक्कोसेणं बारसजोयणाइं तयणुरूवं च णं विक्खंभबाहल्लेण भूमिं दालित्ता णं समुट्ठेइ, असन्नी मिच्छदिट्ठी अन्नाणी पचींदी अंतोमुहुत्तऽद्धाउया चेव काल करेइ, अत्र अयं विरोधः—पुनः जीवाभिगमसूत्रे संमूर्च्छिमोरःपरिसर्पभेदेषु आसालिकसर्पान् आश्रित्य शरीरावगाहना जघन्येन अङ्गुलासंख्यभागा उत्कृष्टा अवगाहना च योजनपृथक्त्वं इति उक्त, प्रज्ञापनासूत्रे तु द्वादश योजनानि इति। २। अपि च श्रीस्थानाङ्गसूत्रे (३९८ पत्रे) "जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे अतीताए उसप्पिणीए सत्त कुलगरा होत्था, त जहा—मित्तदामे १ सुदामे अ २, सुपासे अ ३ सयपभे ४। विमलघोसे ५ सुघोसे त ६, महाघोसे ७ अ सत्तमे ॥१॥" एतद्विसंवादि च श्रीस्थानाङ्गस्य एव दशमं स्थानम् तथाहि—(५१८ पत्रे) जंबुद्दीवे २ दीवे भारहे वासे अतीताए उसप्पिणीए दस कुलगरा होत्था, त जहा—सय-

मारितः इति कथ न विरोधः ? ॥ १ ॥ अपि च श्रीज्ञाताधर्मकथाया ( २०६ पत्रे ) "तए णं सा सूमालिआ अज्जा अणोहट्टिआ अनिवारिआ सच्छदमई अभिक्खण अभिक्खण हत्थे धोवेइ जाय चेएति, तत्थवि अ ण पासत्था पासत्थविहारी, ओसन्ना ओसन्नविहारी कुसीला कुसीलविहारी ससत्ता ससत्तविहारी बहूणि वासाणि सामण्णपरिआग पाउणति अद्धमासिआए सलेहणाए तस्स ठाणस्स अणालोइअ अपडिक्कता कालमासे काल किच्चा ईसाणे कप्पे अण्णयरंसि विमाणसि देवगणिअत्ताए उववन्ना, तत्थेगइआण देवीणं नवपलिओवमाइं ठिई पन्नत्ता, तत्थण सूमालिआए देवीए नव पलिवमाइ ठिई पन्नत्ता" अपि च श्रीज्ञाताधर्मकथायां विराधितसंयमा सुकुमारिकाऽऽर्या ईशाने कल्पे देवगणिकात्वेन उत्पन्ना इत्यादि प्रोक्त अस्ति, एतत् सूत्रविसवादि च इद श्रीभगवतीसूत्र ( ४९ पत्रे ), यथा "विराहिअसजमाण कहिं उववाओ ? गोयमा ! जहन्नेण भवणवासु, उक्कोसेणं सोहम्मे कप्पे" इति। अत्र इदं रहस्य—ज्ञातायां विराधितसयमाया अपि सुकुमारिकाया ईशाने देवलोके उत्पाद उक्ता, भगवत्या तु उत्कर्षेण अपि विराधितसंयमस्य सौधर्मे एव उत्पादः, तर्हि कथ न विसवादः ? ॥ २ ॥ पुन श्रीजीवाभिगमसूत्रे ( ३७ पत्रे ) "से किं त थलयरपरिसप्पसमुच्छिमा ? २ दुविहा पन्नत्ता, त जहा–उरगपरिसप्पसमुच्छिमा, भुयगपरिसप्पसमुच्छिमा । से किं त उरगपरिसप्पसमुच्छिमा ? २ चउविहा पन्नत्ता, त जहा–अही १ अयगरा २ आसालिआ ३ महोरगा ४ । से किं त अही ? अही दुविहा पन्नत्ता, त जहा–दव्वीकरा मउलिणो अ, से किं त दव्वीकरा ? दव्वीकरा अणेगविहा पन्नत्ता, त जहा–आसीविसा जाव से तं दव्वीकरा । से किं त मउलिणो ? मउलिणो अणेगविहा पन्नत्ता, तजहा–दिव्वा गोणसा जाव से त मउलिणो; से तं अही। से किं तं अयगरा ? अयगरा एगागारा पन्नत्ता, से त अयगरा ।

दस अज्झयणा पन्नत्ता, त जहा—उवमा १ सखा २ इसिभासिआइ ३ आयरिअभासिआइ ४ महावीरभासिआइ ५ खोमग पसिणाइ ६ कोमलपसिणाइ ७ अद्दा[द्दा]गपसिणाइ ८ अगुट्ठपसिणाइ ९ बाहुपसिणाइ १०" इति अत्र अय विरोधः—अत्र उक्त 'एतानि दश अध्ययनानि श्रीप्रश्नव्याकरणे सन्ति,' तानि कानि ? न एतादृशानि नामानि क्काऽपि सन्ति, नाऽपि अर्थवक्तव्यता सङ्गति , साम्प्रत तु पञ्च आश्रवद्वाराणि पञ्च सवरद्वाराणि च सन्ति ॥ ७ ॥

एवं श्रीजीवाभिगमसूत्रे नारकाणां सहननं न उक्त, अथ च उत्तराध्ययनसूत्रे एकोनत्रिंशदध्ययने मास नारकाणा उक्तम् ॥ ८ ॥ तथा श्रीआचाराङ्गसूत्र द्वितीयश्रुतस्कन्धे पिण्डैषणाऽध्ययने चतुर्थोद्देशके पट्रसनवविकृतिग्रहण अनगाराणा उक्तं, श्रीस्थानाङ्गे भगवत्यां च मासनिषेधः प्रत्यपादि, दशवैकालिके मद्यनिषेधः ॥ ९ ॥ तथा दशवैकालिकादौ उक्तम्—साधव षड्जीवनिकायरक्षका' सचित्तपृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पत्यादिसघट्टे आहार अपि न गृह्णन्ति । पुन श्रीआचाराङ्गे श्रीकल्पसूत्रे च साधूनां नदीलङ्घन नद्युत्तरण वर्षति अपि मेघे आहारार्थं गमन च समनुज्ञातम् ॥ १० ॥ श्रीभगवत्यादौ श्रावकाणा पञ्चदश कर्मादानानि निवारितानि ॥ उपासकदशासूत्र आनन्दकामदेवादीना पञ्चशतहलवाहनेऽपि श्रावकत्व श्लाघितम् ॥ ११ ॥ तथा प्रथमोपाङ्गे तापसानां उत्कृष्टा गतिः ज्योतिष्केषु प्रोक्ता ॥ भगवत्या तु तामलितापस ईशानकल्पे समुत्पन्न ॥ १२ ॥ तथा सूत्रकृताङ्गे साधो स्त्रीसङ्गतौ त्रिविध त्रिविधेन परिहार' प्रत्यपादि । श्रीस्थानाङ्गे तु साधु प्रपतन्तीं साध्वीं स्वहस्तेन अवलम्बयेत् इति उक्तम् ॥ १३ ॥ ज्ञातायां श्रीकृष्णवासुदेवस्य अन्तःपुर्यो द्वात्रिंशत्सहस्रा लिखिता , अन्तकृते च षोडशसहस्रा' ॥ १४ ॥ तथा अष्टमाङ्गे श्रीकृष्णो द्वादशमो जिनो भावी इति निगदित, समवायाङ्गे तु त्रयोदशम इति ॥ १५ ॥

अले १ सयाऊ य २ अणतसेणे अ ३ अमितसेणे अ ४ । तक्कसेणे अ ५ मीमसेणे अ ६ महामीमसेणे सत्तमे ७ ॥१॥ ददरहे ८ दसरहे ९ सयरहे १०" इयं विघटना यदुत–अतीतोत्सर्पिण्या एकस्मिन् एव स्थानाङ्गे सप्तमस्थाने सप्त, दशमस्थाने दश कुलकरा उक्ताः ॥ ४ ॥ तथा पुनः श्रीस्थानाङ्गे ( ३९८ पत्रे ) "जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे आगमिस्साए उसप्पिणीए सत्त कुलकरा भविस्सति, त जहा–मित्तवाहणे १ सुभोमे अ २, सुप्पमे अ ३ सयपमे ४ । दत्ते ५ सुहुमे ६ [सुहे सुरूवे य] सुमधू अ ७ आगमेस्सिण होक्खई ॥ १ ॥" एतत्सूत्रविसंवादि च दशम स्थान ( ५१८ पत्रे ), तथाहि–जंबुद्दीवे २ दीवे भारहे वासे आगमिस्साए उसप्पिणीए दस कुलगरा भविस्संति, तं जहा–सीमकरे १ खेमधरे २ सीमकरे ३ खेमधरे ४ विमलवाहणे ५ समुती ६ पडिसुए ७ दढधणू ८ दसधणू ९ सतधणू १०" अत्राऽपि सप्ताना दशभि सम कुलकरसंख्यया विरोधः ॥ ५ ॥ तथा श्रीस्थानाङ्गसूत्रे ( ३९८ पत्रे )वर्तमानावसर्पिण्यां सप्त कुलकरा उक्ताः, तथाहि–

जंबुदीवे दीवे भारहे वासे इमीसे ओसप्पिणीए सत्त कुलगरा होत्था, तं जहा–"पढमित्थ विमलवाहण १ चक्खुम २ जसम ३ चउत्थमभिचदे ४ । तत्तो य पसेणइ ५ पुण, मरुदेवे चेव ६ नामी य ७ ॥ १ ॥" इति, जम्बूद्वीपप्रज्ञप्त्या ( १३२ पत्रे ) तु पञ्चदश उक्ताः, तथाहि–"तीसेणं समाए पच्छिमे तिभागे पलिओवमट्ठभागावसेसे एत्यणं इमे पण्णरस कुलगरा समुप्पज्जित्था, त जहा–सुमई १ पडिस्सुई २ सीमकरे ३ सीमधरे ४ खेमकरे ५ खेमधरे ६ विमलवाहणे ७ चक्खुम ८ जसम ९ अभिचदे १० चदामे ११ पसेणई १२ मरुदेवे १३ नामी १४ उसमे त्ति १५" इति, सप्तकुलकराणां पञ्चदशकुलकरसंख्यया समं विसवादः ६ । तथा श्रीस्थानाङ्गे दशमस्थाने (५०६ पत्रे ) एव प्रत्यपादि 'पण्हावागरणदसाण

तव्य इति १३ पत्रे । ततः पञ्चचत्वारिंशदपि आगमा एकसमानकर्तृकाः, छद्मस्थैः एकसमानबुद्ध्या माननीयाः, न अत्र शङ्काशङ्कुः हृदि रक्षणीयो विचक्षणैः ॥ ३८ ॥

॥ इति ४५ आगमस्थापनाधिकारः ॥ ३८ ॥

ननु–केषु केषु आगमेषु जिनप्रतिमा अस्ति, केन केन च सा पूजिता वन्दिता चाऽस्ति ? तद्दर्शयन्तु, उच्यते—श्रीज्ञाताधर्मकथाया षोडशाध्ययने ( २१० पत्रे ) द्रौपद्या जिनप्रतिमा पूजिताऽस्ति, तथाहि–"तएण सा दोवई रायवरकन्ना जेणेव मज्जणघरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता मज्जणघर अणुपविसइ, अणुपविसित्ता न्हाया कयवलिकम्मा कयकोउअमगलपायच्छित्ता सुद्धप्पावेसाइ मंगल्लाइ वत्थाई पवराई परिहिआ, मज्जणघराओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता जेणेव जिणघरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता जिणघर अणुपविसइ, अणुपविसित्ता जिणपडिमाण आलोए पणाम करेइ, पणाम करित्ता लोमहत्थय परामुसइ, एवं जहा सूरिआभो जिणपडिमाओ अच्चेइ, अच्चेइत्ता तहेव भाणिअव्व जाव धूव डहइ धूय डहित्ता वामं जाणु अचेइ दाहिण जाणु धरणियलसि निवेसेइ, निवेसित्ता तिक्खुत्तो मुद्धाणं धरणियलसि नमेइ, नमेइत्ता ईसिं पच्चुण्णमइ करयल जाव कट्टु एवं वयासी "नमोत्थु णं अरिहताण भगवताण जाव ठाण सपत्ताण" वदइ नमसइ, नमसित्ता जिणघराओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता जेणेव अतेउरे तेणेव उवागच्छइ" इत्यादि, अत्र इदं रहस्यम्—द्रौपदीश्राविकया प्रतिमा पूजिता, पुनः अत्राऽर्थे श्रूयतां अत्र "जेणेव जिणघरे तेणेव उवागच्छइ" इति उक्त, इद जिनगृहणं शाश्वत अशाश्वतं वा ? न आद्यपक्षो दक्षः, एतत्स्थाने शाश्वतचैत्यस्य सिद्धान्ते अनभिधानेन

तथा चतुर्दशपूर्विणो जघन्यतोऽपि लान्तके गच्छन्ति, कार्तिकस्तु चतुर्दशपूर्वधरोऽपि सौधर्मे समुत्पन्न' ॥ १६ ॥ एवं प्रत्यागम शतशो विसंवादाः सन्ति किं क्रियते ? ननु-यदि एक एव श्रीदेवर्द्धिगणिक्षमाश्रमणः पञ्चचत्वारिंशतोऽपि आगमाना संकलना कृतवान् तर्हि कथं एतावन्तो विसंवादा लिखिता तेन ? उच्यते-एक तु कारण इद, यथा यथा यस्मिन् यस्मिन् आगमे मृतावशिष्टसाधुभिः यद् यद् उक्त तथा तथा तस्मिन् तस्मिन् आगमे श्रीदेवर्द्धिगणिक्षमाश्रमणेन अपि पुस्तकारूढीकृत, नहि पापभीरवो महान्त इद सत्यं, इदं तु असत्यं इति एकान्तेन प्ररूपयन्ति इति, द्वितीयं तु कारणं इद, यथा वलभ्या यस्मिन् काले देवर्द्धिगणिक्षमाश्रमणतो वाचना प्रवृत्ता, तथा तस्मिन् एव काले मथुरानगर्यां अपि स्कन्दिलाचार्यतोऽपि द्वितीया वाचना प्रवृत्ता, तदा तत्कालीनमृतावशिष्टछद्मस्थसाधुमुखविनिर्गतागमालापकेषु सकलनाया विस्मृतत्वादिदोष एव वाचनाविसंवादकारको जातः । यदुक्त श्रीज्योतिष्करण्डकवृत्तौ, तथाहि-"इह स्कन्दिलाचार्यप्रवृत्तौ दुष्षमानुभावतो दुर्भिक्षप्रवृत्त्या साधूनां पठनगणनादिक सर्व अपि अनश्यत्, ततो दुर्भिक्षातिक्रमे सुभिक्षप्रवृत्तौ द्वयोः सङ्घयो मेलापको अभूत्, तद् यथा, एको वलभ्यां, एको मथुरायां, तत्र सूत्रसंघट्टने वाचनाभेदो जात', विस्मृतयोः हि सूत्रार्थयोः स्मृत्वा स्मृत्वा सघट्टने भवति अवश्य वाचनाभेदः, न कदाचिद् अनुपपत्तिः, तत्र अनुयोगद्वारादिक इदानीं वर्तमानं माथुरीवाचनानुगत, ज्योतिष्करण्डकसूत्रकर्ता च आचार्यो वालभ्य', तत इद सख्यास्थानप्रतिपादनमालभ्यवाचनानुगत, इति न अस्य अनुयोगद्वारप्रतिपादितैः सङ्ख्यास्थानैः सह विसदृशत्व उपलभ्य चित्तकेलि-

तव्य इति १३ पत्रे । ततः पञ्चचत्वारिंशदपि आगमाः एकसमानकर्तृकाः, छद्मस्थैः एकसमानबुद्ध्या माननीयाः, न अत्र शङ्काशङ्कुः हृदि रक्षणीयो विचक्षणैः ॥ ९८ ॥

॥ इति ४५ आगमस्थापनाधिकार ॥ ९८ ॥

ननु—केषु केषु आगमेषु जिनप्रतिमा अस्ति, केन केन च सा पूजिता वन्दिता चाऽस्ति ? तद्दर्शयन्तु, उच्यते—श्रीज्ञाताधर्मकथाया षोडशाध्ययने ( २१० पत्रे ) द्रौपद्या जिनप्रतिमा पूजिताऽस्ति, तथाहि—"तए णं सा दोवई रायवरकन्ना जेणेव मज्जणघरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता मज्जणघरं अणुपविसइ, अणुपविसित्ता न्हाया कयबलिकम्मा कयकोउअमंगलपायच्छित्ता सुद्धप्पावेसाइं मंगल्लाइं वत्थाइं पवराइं परिहिआ, मज्जणघराओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता जेणेव जिणघरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता जिणघरं अणुपविसइ, अणुपविसित्ता जिणपडिमाणं आलोए पणामं करेइ, पणामं करित्ता लोमहत्थयं परामुसइ, एवं जहा सूरिआभो जिणपडिमाओ अच्चेइ, अच्चेइत्ता तहेव भाणिअव्वं जाव धूवं डहइ धूवं डहित्ता वामं जाणुं अंचेइ दाहिणं जाणुं धरणियलंसि निवेसेइ, निवेसित्ता तिक्खुत्तो मुद्धाणं धरणियलंसि नमेइ, नमेइत्ता ईसिं पच्चुण्णमइ करयल जाव कट्टु एवं वयासी "नमोत्थु णं अरिहंताणं भगवंताणं जाव ठाणं संपत्ताणं" वंदइ नमंसइ, नमंसित्ता जिणघराओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता जेणेव अंतेउरे तेणेव उवागच्छइ" इत्यादि, अत्र इदं रहस्यम्—द्रौपदीश्राविकया प्रतिमा पूजिता, पुनः अत्राऽर्थे श्रूयतां अत्र "जेणेव जिणघरे तेणेव उवागच्छइ" इति उक्तं, इदं जिनगृहणं शाश्वतं अशाश्वतं वा ? न आद्यपक्षो दक्षः, एतत्स्थाने शाश्वतचैत्यस्य सिद्धान्ते अनभिधानेन

तथा चतुर्दशपूर्विणो जघन्यतोऽपि लान्तके गच्छन्ति, कार्तिकस्तु चतुर्दशपूर्वधरोऽपि सौधर्मे समुत्पन्न' ॥ १६ ॥ एवं प्रत्यागम शतशो विसंवादाः सन्ति किं क्रियते ? ननु–यदि एक एव श्रीदेवर्द्धिगणिक्षमाश्रमणः पञ्चचत्वारिंशतोऽपि आगमाना सकलनां कृतवान् तर्हि कथं एतावन्तो विसंवादा लिखिता तेन ? उच्यते–एक तु कारण इद, यथा यथा यस्मिन् यस्मिन् आगमे मृतावशिष्टसाधुभिः यद् यद् उक्त तथा तथा तस्मिन् तस्मिन् आगमे श्रीदेवर्द्धिगणिक्षमाश्रमणेन अपि पुस्तकारूढीकृत, नहि पापभीरवो महान्त इद सत्य, इद तु असत्यं इति एकान्तेन प्ररूपयन्ति इति, द्वितीय तु कारण इद, यथा वलभ्यां यस्मिन् काले देवर्द्धिगणिक्षमाश्रमणतो वाचना प्रवृत्ता, तथा तस्मिन् एव काले मथुरानगर्यां अपि स्कन्दिलाचार्यतोऽपि द्वितीया वाचना प्रवृत्ता, तदा तत्कालीनमृतावशिष्टछद्मस्थसाधुमुखविनिर्गतागमालापकेषु सकलनायां विस्मृतत्वादिदोष एव वाचनाविसंवादकारको जातः । यदुक्त श्रीज्योतिष्करण्डकवृत्तौ, तथाहि–"इह स्कन्दिलाचार्यप्रवृत्तौ दुःषमानुभावतो दुर्भिक्षप्रवृत्त्या साधूनां पठनगणनादिक सर्व अपि अनश्यत्, ततो दुर्भिक्षातिक्रमे सुभिक्षप्रवृत्तौ द्वयोः सङ्घयो' मेलापको अभूत्, तद् यथा, एको वलभ्यां, एको मथुरायां, तत्र सूत्रसघट्टने वाचनाभेदो जात', विस्मृतयोः हि सूत्रार्थयोः स्मृत्वा स्मृत्वा संघट्टने भवति अवश्य वाचनाभेदः, न काचित् अनुपपत्ति', तत्र अनुयोगद्वारादिक इदानीं वर्तमानं माथुरीवाचनानुगत, ज्योतिष्करण्डकसूत्रकर्ता च आचार्यो वालभ्य', तत इद सङ्ख्यास्थानप्रतिपादनवालभ्यवाचनानुगत, इति न अस्य अनुयोगद्वारप्रतिपादितैः सङ्ख्यास्थानैः सह विसदृशत्वं उपलभ्य चिकित्सि-

तत्त्व इति १३ पत्रे । ततः पञ्चचत्वारिंशदपि आगमाः एकसमानकर्तृकाः, छद्मस्थैः एकसमानबुद्ध्या माननीयाः, न अत्र शङ्काशङ्कुः हृदि रक्षणीयो विचक्षणैः ॥ ९८ ॥

॥ इति ४५ आगमस्थापनाधिकार ॥ ९८ ॥

ननु–केषु केषु आगमेषु जिनप्रतिमा अस्ति, केन केन च सा पूजिता वन्दिता चाऽस्ति ? तद्दर्शयन्तु, उच्यते—श्रीज्ञाताधर्मकथाया षोडशाध्ययने ( २१० पत्रे ) द्रौपद्या जिनप्रतिमा पूजिताऽस्ति, तथाहि–"तएण सा दोवई रायवरकन्ना जेणेव मज्जणघरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता मज्जणघर अणुपविसइ, अणुपविसित्ता न्हाया कयबलिकम्मा कयकोउअमगलपायच्छित्ता सुद्धप्पावेसाइ मगलाइ वत्थाइ पवराइ परिहिआ, मज्जणघराओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता जेणेव जिणघरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता जिणघर अणुपविसइ, अणुपविसित्ता जिणपडिमाण आलोए पणाम करेइ, पणाम करित्ता लोमहत्थयं परामुसइ, एव जहा सूरिआभो जिणपडिमाओ अच्चेइ, अच्चेइत्ता तहेव भाणिअव जाव धूव डहइ धूव डहित्ता वाम जाणु अचेइ दाहिण जाणु धरणियलसि निवेसेइ, निवेसित्ता तिक्खुत्तो मुद्धाण धरणियलसि नमेइ, नमेइत्ता ईसिं पच्चुण्णमइ करयल जाव कट्टु एव वयासी "नमोत्थु णं अरिहताण भगवताण जाव ठाण सपत्ताण" वदइ नमसइ, नमसित्ता जिणघराओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता जेणेव अतेउरे तेणेव उवागच्छइ" इत्यादि, अत्र इद रहस्यम्—द्रौपदीश्राविकया प्रतिमा पूजिता, पुनः अत्राऽर्थे श्रूयतां अत्र "जेणेव जिणघरे तेणेव उवागच्छइ" इति उक्त, इद जिनगृहणं शाश्वत अशाश्वतं वा ? न आद्यपक्षो दक्षः, एतत्स्थाने शाश्वतचैत्यस्य सिद्धान्ते अनभिधानेन

तथा चतुर्दशपूर्विणो जघन्यतोऽपि लान्तके गच्छन्ति, कार्त्तिकस्तु चतुर्दशपूर्वधरोऽपि सौधर्मे समुत्पन्न" ॥ १९ ॥ एवं प्रत्यागमं शतशो विसंवादाः सन्ति किं क्रियते ? ननु-यदि एक एव श्रीदेवर्द्धिगणिक्षमाश्रमणः पञ्चचत्वारिंशतोऽपि आगमानां सङ्कलनां कृतवान् तर्हि कथं एतावन्तो विसंवादा लिखिता तेन ? उच्यते-एकं तु कारणं इदं, यथा यथा यस्मिन् यस्मिन् आगमे मृतावशिष्टसाधुभिः यद् यद् उक्तं तथा तथा तस्मिन् तस्मिन् आगमे श्रीदेवर्द्धिगणिक्षमाश्रमणेन अपि पुस्तकारूढीकृतं, नहि पापभीरवो महान्त इदं सत्यं, इदं तु असत्यं इति एकान्तेन प्ररूपयन्ति इति, द्वितीयं तु कारणं इदं, यथा वल्लभ्यां यस्मिन् काले देवर्द्धिगणिक्षमाश्रमणतो वाचना प्रवृत्ता, तथा तस्मिन् एव काले मथुरानगर्यां अपि स्कन्दिलाचार्यतोऽपि द्वितीया वाचना प्रवृत्ता, तदा तत्कालीनमृतावशिष्टछद्मस्थसाधुमुखविनिर्गतागमालापकेषु सङ्कलनायां विस्मृतत्वादिदोष एव वाचनाविसंवादकारको जातः । यदुक्तं श्रीज्योतिष्करण्डकवृत्तौ, तथाहि-"इह स्कन्दिलाचार्यप्रवृत्तौ दुष्षमानुभावतो दुर्भिक्षप्रवृत्त्या साधूनां पठनगणनादिकं सर्वं अपि अनश्यत्, ततो दुर्भिक्षातिक्रमे सुभिक्षप्रवृत्तौ द्वयोः सङ्घयो मेलापको अभूत्, तद् यथा, एको वल्लभ्यां, एको मथुरायां, तत्र सूत्रसङ्घट्टने वाचनाभेदो जातः, विस्मृतयोः हि सूत्रार्थयोः स्मृत्वा स्मृत्वा संघट्टने भवति अवश्यं वाचनाभेदः, न कदाचिद् अनुपपत्तिः, तत्र अनुयोगद्वारादिकं इदानीं वर्तमानं माथुरीवाचनानुगतं, ज्योतिष्करण्डकसूत्रकर्ता च आचार्यो वाल्लभ्यः, तत इदं सङ्ख्यास्थानप्रतिपादनं वाल्लभ्यवाचनानुगतं, इति न अस्य अनुयोगद्वारप्रतिपादितैः सङ्ख्यास्थानैः सह विसदृशत्वं उपलभ्य चिकित्सि-

अनुत्थानादौ असंयतावि-
मान्यत्वेन यौवनादिमदोत्कटतया नारदस्य न उत्थानादि चक्रे इति, यत सूत्रे गणधरदेवोक्तं  रतादिक हेतु मुक्त्वा नवीनस्वगल्लकल्पितहेतु वदत तव महोत्सूत्रदोषापत्तिः भविष्यति इति, अपि च यदि द्रौपदी श्रा-
विका न अभविष्यत् तदा नमोत्थु ण कथ अकथयिष्यत्, नहि श्रावकधर्मं विना कोऽपि नमोत्थु ण पठति जिनप्रतिमाग्रे
कथयति वा। पुन प्राह मनोमतिशिष्यः ननु–द्रौपद्या जिनप्रतिमा पूजिता पर धर्मार्थं न, किन्तु विवाहसमयत्वात् ससा-
रार्थं, तत्राऽर्थे शृणु रे मूर्ख ! यदि कोऽपि विद्यमान तीर्थङ्कर पूर्वं वन्दयित्वा वा साधु वा पूर्वं प्रतिलाभयित्वा सामा-
यिक वा पूर्वं लात्वा पश्चात् भोजन कुरुते, तर्हि किं विद्यमानतीर्थङ्करवन्दनादिपुण्य संसारार्थे किं पतिष्यति ? प्रत्युत
एवं प्रशसा कर्तव्या तस्याः "अहो ! धन्या एषा द्रौपदी, अहो ! दृढ अस्या सम्यक्त्व, अहो ! शस्यं अस्याः श्राविकात्व,
यदुत विवाहादिकर्तव्यव्यग्रतायां अपि जिनप्रतिमा पूजितवती" इति। न च वाच्य अनया तु पूर्वजन्मनि निदान व्यधायि,
तेन तस्मिन् सति कथ तस्याः सम्यक्त्ववत्त्व श्राविकात्व चेति ? द्रौपदीकृतनिदानस्य "निव १ धणि २ नारी ३ नर ४ सुर ५
अप्पप्पविहार ६ आयविआरत्त ७ सड्ढत्त ८ दरिदत्त ९ चइज्ज नवनिआणाइ ॥ १ ॥" इति निदाननवके न अन्तर्भावात्
निदानता एव न भवति, यथा कथचित् चतुर्थनिदानमध्ये अन्तर्भावेऽपि अध्यवसायविशेषेण तस्य निदानताया अभावात्
तस्याः श्राविकात्व न व्याहन्यते, अपि च तादृशनिदानसद्भावे ब्रह्मदत्तचक्रवर्तिवत् न विरतिः उदय एति, द्रौपदी तु प्रव्र-
जिता अतो न तस्याः निदानता ? तथा श्रीभगवतीसूत्रे २० शतके नवमोद्देशके ( ७९३ पत्रे ), यथा विद्याचारणजङ्घाचा-

तदुक्तौ स्फुट तत्सूत्रदोषापत्तेः, अथ यदि अशाश्वतं तर्हि केनचित् कारित एव भविष्यति, न च मिथ्यात्विना तत् कारार्ते अधिकार', तत' कैश्चित् श्रावकैः एव तत् जिनगृह कारित इति निश्चय , न च वक्तव्य द्रौपदी तु अत्र श्राविका न उक्ता, किं तु राजवरकन्या कथिता इति, यतो राजवरकन्या इति उक्तौ श्राविकात्व न व्याहन्यते, यथा श्रीउत्तराध्ययने द्वाविंश-तितमे अध्ययने ( ४९२ पत्रे ) राजीमती राजवरकन्या प्रोक्ता, तर्हि न सम्यक्त्वधारिणी न श्राविका ? तत्पाठो यथा—

"सोऊण रायकन्ना, पव्वज्ज सा जिणस्स उ । णीहासा उ निराणदा, सोगेण य समुच्छिआ ॥ २८ ॥ राईमई विचिंतेइ, धिगत्थु [ धिरत्थु ] मम जीविअ । जाऽह तेण परिचत्ता, सेअ पव्वइउ मम ॥ २९ ॥ अह सा भमरसन्निभे, कुच्चफणगपसाहिए । सयमेव लुचई केसे, धिइमती ववस्सिआ ॥ ३० ॥ वासुदेवो अ ण भणइ, लुत्तकेसिं जिइंदिअ । संसारसागर घोरं, तर कन्ने ! लहु लहुं ॥ ३१ ॥ अह सा रायवरकन्ना, सुट्ठिआ नियमव्वए । जाई कुल च सील च, रक्खमाणी तय वदे ॥ ४० ॥" इति, तथा पुनः श्रीज्ञाताया ( १३५ पत्रे ) मल्लिकुमारी अपि राजवरकन्या प्रोक्ताऽस्ति, तथाहि—तए ण कुभए तेसिं संजत्तगाणं जाव पडिच्छइ, पडिच्छित्ता मल्लीं विदेहवररायकन्न सद्दावेइ, सद्दावित्ता त दिव्व कुडलजुयलं मल्लीए विदेहवररायकन्नगाए पिणद्धइ, पिणद्धित्ता पडिविसज्जइ" इति, अपि च रे मनोमते ! शिष्य ! चक्षुषी क्षण निमील्य विचारय, यतो द्रौपदी श्राविका, तत एव नारदस्य असंयताऽविरताऽप्रतिहतप्रत्याख्यातपापकर्मणो न उत्थानादिभक्ति कृतवती, तत्पाठो ज्ञाताख्यो यथा ( २१३ पत्रे ) "तते ण सा दोवई कच्छुल्लनारयं अस्संजय अविरय अपडिहयपच्चक्खायपावकम्म तिकट्टु नो आढाति नो परिजाणइ नो अब्भुट्ठेइ नो पज्जुवासइ" इति, न च वाच्य द्रौपदी पञ्चभर्तृ-

आराहणा ( सूत्र ६८३ ), से केणट्ठेणं भते ! एव वुच्चइ जघाचारणे ? जघाचारणे गोयमा ! तस्स ण अट्ठमं अट्ठमेणं अणिक्खित्तेण तवोकम्मेण अप्पाणं भावेमाणस्स जघाचारणलद्धीनाम लद्धी समुप्पज्जइ, से तेणट्ठेण जाव एव वुच्चइ जघाचारणे, जघाचारणस्स ण भंते ! कह सीहा गति कह सीहे गइविसए पन्नत्ते ? गोयमा ! अयन्न जबुद्दीवे दीवे एव जहेव विज्जाचारणस्स, णवर तिसत्तक्खुत्तो अणुपरिअट्टित्ताण हव्वमागच्छेज्जा, जघाचारणस्स णं गोयमा ! तहा सीहा गई तहा सीहे गतिविसए पन्नत्ते सेसं त चेव । जघाचारणस्स णं भते ! तिरिअ केवतिए गइविसए पन्नत्ते ? गोयमा ! से ण इतो एगेण उप्पाएण रुअगवरे दीवे समोसरण करेइ, करित्ता तहिं चेइआइ वदति, वदित्ता ततो पडिनिअत्तमाणे वितिएण उप्पाएण नदीसरवरदीवे समोसरण करेइ, करित्ता तहिं चेइआइ वंदइ वदित्ता इहमागच्छइ, आगच्छित्ता इह चेइआइ वदइ, जघाचारणस्स ण गोयमा ! तिरिअं एवतिए गइविसए पन्नत्ते, । जघाचारणस्स ण भते ! उड्ढ केवतिए गइविसए पन्नत्ते ? गोयमा ! से ण इतो एगेण उप्पाएणं पडगवणे समोसरण करेइ, करित्ता तहिं चेइआइ वदइ, वदित्ता तओ पडिनिअत्तमाणे वितिएण उप्पाएण नंदणवणे समोसरण करेइ, करित्ता तहिं चेइआई वदइ, वंदित्ता इहमागच्छइ, आगच्छित्ता इह चेइआइ वंदइ, जंघाचारणस्स ण गोयमा ! उड्ढं एवतिए गइविसेए पन्नत्ते, से ण तस्स ठाणस्स अणालोइअअपडिक्कते कालं करेइ नत्थि तस्स आराहणा, से ण तस्स ठाणस्स आलोइअपडिक्कते काल करेइ अत्थि तस्स आराहणा, सेव भते ! सेव भते ! जाव विहरति ( सूत्र ६८४ )" ॥ इति विंशतितमशतके नवमोद्देशकः सम्पूर्णः ॥

इह विद्याचारणेन तिर्यग्लोके मानुषोत्तरपर्वते नन्दीश्वरपर्वते च चैत्यानि वन्दितानि, ऊर्ध्वलोके च नन्दनवने पाण्डु-

"कइविहा णं भंते ! चारणा पन्नत्ता ? गोयमा ! चारणा दुविहा पन्नत्ता, तं जहा—विज्जाचारणा य जंघाचारणा य, से केणट्ठे णं भंते ! एवं वुच्चइ विज्जाचारणा ? विज्जाचारणा गोयमा ! तस्स णं छट्ठंछट्ठेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं विज्जाए उत्तरगुणलद्धिं खममाणस्स विज्जाचारणलद्धीनाम लद्धी समुप्पज्जइ, से तेणट्ठेणं जाव विज्जाचारणा०, विज्जाचारणस्स णं भंते ! कहं सीहा गई कहं सीहे गइविसए पन्नत्ते ? गोयमा ! अयन्न जंबुद्दीवे दीवे जाव किंचिविसेसाहिए परिक्खेवेणं देवे णं महड्ढीए जाव महेसक्खे जाव इणामेवत्तिकट्टु, केवलकप्पं जंबुद्दीवं दीवं तिहिं अच्छरानिवाएहिं तिक्खुत्तो अणुपरिअट्टित्ता णं हव्वमागच्छेज्जा, विज्जाचारणस्स णं गोयमा ! तहा सीहा गई तहा सीहे गईविसए पन्नत्ते। विज्जाचारणस्स णं भंते ! तिरिअं केवतिए गतिविसए पन्नत्ते ? गोयमा ! से णं इओ एगेणं उप्पाएणं माणुसुत्तरे पव्वए समोसरणं करेइ, समोसरणं करित्ता तहिं चेइआइं वंदइ, वंदित्ता बितिएणं उप्पाएणं नंदीसरवरे दीवे समोसरणं करेइ, समोसरणं करित्ता तहिं चेइआइं वंदइ, वंदित्ता ततो पडिनिअत्तति २ इहमागच्छइ, आगच्छित्ता इह चेइआइं वंदइ। विज्जाचारणस्स णं गोयमा ! तिरिअं एवतिए गतिविसए पन्नत्ते। विज्जाचारणस्स णं भंते ! उड्ढं केवतिए गइविसए पन्नत्ते ? गोयमा ! से णं इओ एगेणं उप्पाएणं नंदणवणे समोसरणं करेइ, करित्ता तहिं चेइआइं वंदइ वंदित्ता, बितिएणं उप्पाएणं पंडगवणे समोसरणं करेइ, करित्ता तहिं चेइआइं वंदइ, वंदित्ता तओ पडिनियत्तति तओ २ इहमागच्छइ, आगच्छित्ता इह चेइआइं वंदइ, वंदित्ता विज्जाचारणस्स णं गोयमा ! उड्ढं एवतिए गइविसए पन्नत्ते। से णं तस्स ठाणस्स अणालोइअपडिक्कंते कालं करेइ, नत्थि तस्स आराहणा, से णं तस्स ठाणस्स आलोइअपडिक्कंते कालं करेइ अत्थि तस्स

तस्स ण अट्ठमं अट्ठमेण अणि-
ण जाव एव वुच्चइ जघाचारणे,
जम्बुद्दीवे दीवे एव जहेव विज्जा-
गोयमा ! तहा सीहा गई तहा सीहे
चारणस्स, णवर ...
गतिविसए पन्नत्ते सेस त चेव । जघाचारणस्स ण भते ! तिरिअ गइविसए पन्नत्ते ? गोयमा ! से णं इतो एगेण उप्पाएण रुअगवरे दीवे समोसरण करेइ, करित्ता तहिं चेइआइ वदति, वदित्ता ततो पडिनिअत्तमाणे वितिएण उप्पाएणं नदीसरवरदीवे समोसरण करेइ, करित्ता तहिं चेइआइ वंदइ वदित्ता इहमागच्छइ, आगच्छित्ता इह चेइआइ वंदइ, जघाचारणस्स ण गोयमा ! तिरिअ एवतिए गइविसए पन्नत्ते, । जघाचारणस्स ण भते ! उड्ढ केवतिए गइविसए पन्नत्ते ? गोयमा ! से ण इतो एगेण उप्पाएण पडगवणे समोसरण करेइ, करित्ता तहिं चेइआइ वदइ, वदित्ता तओ पडिनिअत्तमाणे वितिएण उप्पाएण नंदणवणे समोसरण करेइ, करित्ता तहिं चेइआइ वदइ, वंदित्ता इहमागच्छइ, आगच्छित्ता इह चेइआइ वंदइ, जंघाचारणस्स ण गोयमा ! उड्ढं एवतिए गइविसेए पन्नत्ते, से ण तस्स ठाणस्स अणालोइअ-अपडिक्कते कालं करेइ नत्थि तस्स आराहणा, से ण तस्स ठाणस्स आलोइअपडिक्कते काल करेइ अत्थि तस्स आराहणा, सेव ! सेव भते ! जाव विहरति ( सूत्र ६८४ )" ॥ इति विंशतितमशतके नवमोद्देशकः सम्पूर्ण ॥

विद्याचारणेन तिर्यग्लोके मानुपोत्तरपर्वते नन्दीश्वरपर्वते च चैत्यानि वन्दितानि, ऊर्ध्वलोके च नन्दनवने पाण्डु-

"कइविहा ण भंते ! चारणा पन्नत्ता ? गोयमा ! चारणा दुविहा पन्नत्ता, त जहा—विज्जाचारणा य जंघाचारणा य, से केणट्ठे णं भंते ! एवं वुच्चइ विज्जाचारणा ? विज्जाचारणा गोयमा ! तस्स ण छट्ठंछट्ठेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेण विज्जाए उत्तरगुणलद्धिं खममाणस्स विज्जाचारणलद्धीनाम लद्धी समुप्पज्जइ, से तेणट्ठेण जाव विज्जाचारणा०, विज्जाचारणस्स णं भंते ! कह सीहा गई कहं सीहे गइविसए पन्नत्ते ? गोयमा ! अयन्नं जंबुद्दीवे दीवे जाव किंचिविसेसाहिए परिक्खेवेणं देवे णं महड्ढीए जाव महेसक्खे जाव इणामेवत्तिकट्टु, केवलकप्प जंबुद्दीव दीवं तिहिं अच्छरानिवाएहिं तिक्खुत्तो अणुपरियट्टित्ता ण हव्वमागच्छेज्जा, विज्जाचारणस्स णं गोयमा ! तहा सीहा गई तहा सीहे गइविसए पन्नत्ते । विज्जाचारणस्स णं भंते ! तिरिअं केवतिय गतिविसए पन्नत्ते ? गोयमा ! से ण इओ एगेण उप्पाएण माणुसुत्तरे पव्वए समोसरणं करेइ, समोसरण करित्ता तहिं चेइआइ वदइ, वदित्ता बितिएण उप्पाएण नंदीसरवरे दीवे समोसरण करेइ, समोसरण करित्ता तहिं चेइआइ वदइ, वदित्ता तओ पडिनिअत्तति २ इहमागच्छइ, आगच्छित्ता इह चेइआइ वदइ । विज्जाचारणस्स ण गोयमा ! तिरिअं एवतिए गतिविसए पन्नत्ते । विज्जाचारणस्स ण भंते ! उड्ढं केवतिए गइविसए पन्नत्ते ? गोयमा ! से ण इओ एगेण उप्पाएण नंदणवणे समोसरण करेइ, करित्ता तहिं चेइआइ वदइ वदित्ता, बितिएण उप्पाएण पंडगवणे समोसरण करेइ, करित्ता तहिं चेइआइं वदइ, वदित्ता तओ पडिनियत्तति तओ २ इहमागच्छइ, आगच्छित्ता इह चेइआइ वंदइ, वदित्ता विज्जाचारणस्स ण गोयमा ! उड्ढं एवतिए गइविसए पन्नत्ते । से ण तस्स ठाणस्स अणालोइअपडिक्कंते कालं करेइ, नत्थि तस्स आराहणा, से णं तस्स ठाणस्स आलोइअपडिक्कते काल करेइ अत्थि तस्स

आराहणा ( सूत्र ६८३ ), से केणट्ठेण भंते ! एव वुच्चइ जघाचारणे ? जघाचारणे गोयमा ! तस्स ण अट्ठमं अट्ठमेण अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेण अप्पाणं भावेमाणस्स जघाचारणलद्धीनाम लद्धी समुप्पज्जइ, से तेणट्ठेण जाव एवं वुच्चइ जघाचारणे, जघाचारणस्स ण भते ! कह सीहा गति कह सीहे गइविसए पन्नत्ते ? गोयमा ! अयन्न जम्बुद्दीवे दीवे एव जहेव विज्जाचारणस्स, णवर तिसत्तक्खुत्तो अणुपरिअट्टित्ताण हव्वमागच्छेज्जा, जघाचारणस्स ण गोयमा ! तहा सीहा गई तहा सीहे गतिविसए पन्नत्ते सेस त चेव । जघाचारणस्स ण भते ! तिरिअ केवतिए गइविसए पन्नत्ते ? गोयमा ! से ण इतो एगेण उप्पाएणं रुअगवरे दीवे समोसरण करेइ, करित्ता तहिं चेइआइ वदति, वंदित्ता ततो पडिनिअत्तमाणे वितिएण उप्पाएण नदीसरवरदीवे समोसरण करेइ, करित्ता तहिं चेइआइ वंदइ वदित्ता इहमागच्छइ, आगच्छित्ता इह चेइआइ वदइ, जघाचारणस्स ण गोयमा ! तिरिअ एवतिए गइविसए पन्नत्ते, । जघाचारणस्स ण भते ! उड्ढ केवतिए गइविसए पन्नत्ते ? गोयमा ! से ण इतो एगेण उप्पाएण पडगवणे समोसरण करेइ, करित्ता तहिं चेइआइ वदइ, वदित्ता तओ पडिनिअत्तमाणे वितिएण उप्पाएणं नंदणवणे समोसरण करेइ, करित्ता तहिं चेइआई वंदइ, वदित्ता इहमागच्छइ, आगच्छित्ता इह चेइआइ वंदइ, जंघाचारणस्स ण गोयमा ! उड्ढं एवतिए गइविसेए पन्नत्ते, से ण तस्स ठाणस्स अणालोइअअपडिक्कते कालं करेइ नत्थि तस्स आराहणा, से ण तस्स ठाणस्स आलोइअपडिक्कंते काल करेइ अत्थि तस्स आराहणा, सेव भते ! सेवं भते ! जाव विहरति ( सूत्र ६८४ )" ॥ इति विंशतितमशतके नवमोद्देशकः सम्पूर्णः ॥

इह विद्याचारणेन तिर्यग्लोके मानुषोत्तरपर्वते नन्दीश्वरपर्वते च चैत्यानि वन्दितानि, ऊर्ध्वलोके च नन्दनवने पाण्डु-

कथने च चैत्यानि वन्दितानि, तानि च स्थानकचतुष्केऽपि शाश्वतचैत्यानि ज्ञेयानि, तत्र मागतो च नन्दन [illegible] चैत्यानि वन्दितानि, एवं जङ्घाचारणेन अपि रुचके नन्दीश्वरे च तिर्यग्लोके पाण्डुकवने [illegible] स्थानचतुष्के शाश्वतचैत्यवन्दना अकारि, अत्राऽऽगमने वारद्वय च [illegible]

अत्राऽऽह मनोमतिशिष्यः ननु–विद्याचारणा जङ्घाचारणाश्च चैत्यवन्दनार्थं गमनागमनं [illegible] मोक्षाः, अरे अत्रार्थे गणधराभिप्राय शृणु, एभिः लब्धि प्रयुक्ता, तेन [illegible] प्रमादस्थान गुरुसमीपं आगत्य अवश्य आलोचयितव्य, अन्यथा विराधकत्व आपद्येत, पर चैत्यवन्दनाया आलोचना तत्र गमनं एव न घटां आटीकते, गमनागमनालोचना तु सङ्गतिं अङ्गति एव, यदि हस्तशतादुपरि गम्यते तदा [illegible] आगतेन गमनागमन गुरुसमक्ष आलोचयितव्यं एव, किं वाऽस्य नन्दीश्वरद्वीपरुचकद्वीपगमनागमनयोः ?, यदुक्तं श्रीआवश्यकनिर्युक्तौ—

"हत्थसयादागंतुं, गंतु च मुहुत्तग जहिं चिट्ठे । पथे वा वच्चते, नइसंतरणे पडिक्कमण ॥ १ ॥" पुनः श्रीदशवैकालिकसूत्रे पञ्चमाध्ययनेऽपि ( १७८ पत्रे ) आलोचनाविधिः, तथाहि–

"विणएणं पविसित्ता, सगासे गुरुणो मुणी । इरियावहियमायाय, आगओ अ पडिक्कमे ॥ ८८ ॥ आभोइत्ताण नीसेसं, आईआर च जहक्कमं । गमणागमणे चेव, भत्तपाणे व संजए ॥ ८९ ॥ उज्जुप्पन्नो अणुव्विग्गो, अव्वक्खित्तेण चेतसा । आलोए गुरुसगासे, जं जहा गहिअं भवे ॥ ९० ॥ न सम्ममालोइअं हुज्जा, पुव्विं पच्छा व जं कडं । पुणो पडिक्कमे

तस्स, वोसट्ठो चिंतए इम ॥ ९१ ॥ अहो जिणेहिं असावज्जा, वित्ती साहूण देसिआ । मुक्खसाहणहेउस्स, साहुदेहस्स धारणा ॥ ९२ ॥ नमुक्कारेण पारित्ता, करित्ता जिणसथव । सज्झाय पट्ठवित्ता ण, वीसमेज्ज खण मुणी ॥ ९३ ॥ पुन श्रीगौतमस्वामिना श्रीउपासकदशासूत्रे ( २१ पत्रे ) गमनागमन आलोचित अस्ति, तथाहि—

"तते ण से भयव गोयमे आणंदएण समणोवासएण एवंवुत्ते समाणे, सकिए कखिए वितिगिच्छिए मेदसमावन्ने आणंदस्स समणोवासगस्स अतियाओ पडिनिक्खमइ पडिनिक्खमित्ता जेणेव दूइपलासे चेइए, जेणेव समणे भगव महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स अदूरसामते गमणागमणे पडिक्कमइ, पडिक्कमित्ता एसणमणेसण आलोएइ, आलोइत्ता भत्तपाण पडिदसेइ, पडिदसित्ता समण भगव महावीर वदइ नमंसइ" इत्यादि, एवं स्थाने स्थाने साधुभिः आहारार्थं गत्वा आगत्य गुरुपार्श्वे गमनागमन आलोचित अस्ति। पुनरपि आह मनोमतिः ननु—यदि विद्याचारणा जङ्घाचारणाश्च अन्तराले कदाचित् काल कुर्युः तदा कुत्र यान्ति? उच्यते—गतिः तेषां सूत्रे न लिखिताऽस्ति पर त्वमपि विद, आहारार्थं विद्यमानतीर्थङ्करवन्दनार्थं वा गत्वा कदाचित् साधुः म्रियते तदा कुत्र गच्छेत्? अत्र इदं रहस्य जानीहि—अत्र भावस्य एव प्रधानत्वं ज्ञेय, यथा सविग्नगीतार्थसमीपे साधुः आलोचनाग्रहणार्थं गच्छन् अन्तराले एव काल कुर्वन् शुद्धभावत्वेन सुगतिमेव गच्छेत् तथा विद्याचारणा जङ्घाचारणा अपि सुगतिभाज एव। अपि च मनुष्यक्षेत्राद् बहि न केऽपि म्रियन्ते मनुष्यक्षेत्रान्तर अपि "दुसमुद्दे तिसि सेस जळे" इति उक्तत्वात्, लवणसमुद्रादौ सिद्धान्ते उक्ता, अथ च पञ्चचत्वारिंशल्लक्षयोजनप्रमिते क्षेत्रे

"यत्र एकः सिद्धः तत्र अनन्ताः सिद्धाः" इत्येवमकारेण सर्वमपि सिद्धक्षेत्र सिद्धजीवव्याप्तं तदा एव जातं यदा तदधः पञ्चचत्वारिंशल्लक्षयोजनप्रमिते मनुष्यक्षेत्रेऽपि समश्रेण्या सर्वत्र अनन्ताः सिद्धाः, ततो मनुष्यक्षेत्रान्तःसमुद्रेऽपि अनन्ता सिद्धाः सन्ति ते के? तान् विचारय, विचारय । तथा श्रीऔपपातिकसूत्रे ( ९७ पत्रे ) अम्बडश्रावकाधिकारो यथा–

'अंबडस्स ण नो कप्पइ अण्णउत्थिए वा अण्णउत्थियदेवयाणि वा अण्णउत्थियपरिग्गहिआणि वा अरिहंतचेइआणि वंदित्तए वा नमंसित्तए वा जाव पज्जुवासित्तए वा, नमत्थ अरिहंते वा अरिहंतचेइआणि वा" इत्यादि, अत्र अर्हच्चैत्यादिजिनप्रतिमा इति ॥ ३ ॥ एवं श्रीउपासकदशासूत्रे ( १४ पत्रे ) आनन्दश्रावकाधिकारेऽपि, तथाहि–"नो खलु मे भंते! कप्पइ अज्जप्पभिइ अन्नउत्थिए वा अन्नउत्थिअदेवयाणि वा अन्नउत्थिअपरिग्गहिआणि अरिहंतचेइआणि वा वंदित्तए वा नमंसित्तए वा" अत्राऽपि चैत्यानि अर्हत्प्रतिमालक्षणानि यथा भौतपरिगृहीतानि वीरभद्र १ महाकालादीनि ॥ ४ ॥ तथा श्रीप्रश्नव्याकरणसूत्रे तृतीयसंवरद्वारे ( १२२ पत्रे ) चैत्यवैयावृत्तिकरणे कर्मनिर्जरा प्रोक्ता, तथाहि–

"अह केरिसए पुणाइ आराहए वयमिणं? जे से उवहि–भत्त–पाण संगहण–दाणकुसले अच्चंतबाल–दुब्बल–गिलाण–वुड्ढखमके पवत्ति–आयरिय–उवज्झाए सेहे साहम्मिए तवस्सीकुल–गण–संघ–चेइअट्ठे अ निज्जरट्ठी वेयावच्चं अणिस्सिअं दसविहं बहुविहं करेइ" व्याख्याऽपि यथा ( १२६ पत्रे ) 'जे से' इत्यादि योऽसौ उपधेः भक्तपानानां च दानं च संग्रहणं च तयोः कुशलो=विधिज्ञो यः स तथा, बालश्च दुर्बलश्च इत्यादि समाहारद्वन्द्वः, ततो अत्यन्तं यद्बाल–दुर्बल–

ग्लान–वृद्ध–क्षपक तत् तथा, तत्र विषये वैयावृत्य करोति इति योगः, तथा प्रवृत्त्याचार्योपाध्याये इह द्वन्द्वैकत्वात् प्रवृत्त्यादिषु, तत्र प्रवृत्तिलक्षण इद—

"तवसजमजोगेसु, जो जोगो तत्थ त पवत्तेइ । असहु च निअत्तेइ, गणतत्तिल्लो पवित्ती उ ॥ १ ॥ इतरौ प्रतीतौ तथा 'सेहे'त्ति शैक्षे–अभिनवप्रव्रजिते साधर्मिके=समानधर्मके लिङ्गप्रवचनाभ्या तपस्विनि–चतुर्थभक्तादिकारिणि, तथा कुल=गच्छसमुदायरूप चन्द्रादिक, गणः=कुलसमुदाय कोटिकादिक , सङ्घः=तत्समुदायरूपः, चैत्यानि जिनप्रतिमा, एतासा योऽर्थः–प्रयोजन स तथा, तत्र च निर्जरार्थी–कर्मक्षयकामः वैयावृत्य–व्यावृत्तकर्मरूप उपष्टम्भन इत्यर्थः, अनिश्रित–कीर्त्यादिनिरपेक्षं दशविध–दशप्रकार आह च–

"वेयावच्च वावड–भावो इह धम्मसाहणनिमित्त । अन्नाइयाण विहिणा, सपायणमेस भावत्थो ॥ १ ॥
आयरिय उवज्झाए, थेरे तवस्सी गिलाण सेहाणं । साहम्मिअ कुल गणे स–घ सगय तमिह कायव ॥ २ ॥"

इति, बहुविधं भक्तपानादिदानभेदेन अनेकप्रकार करोति इति ॥ अत्राऽऽह मनोमतिशिष्य ॥

ननु–प्रश्नव्याकरणे आश्रवद्वारे ( १२ पत्रे ) निगदित अस्ति "ये विहार-प्रासाद चैत्य–देवकुलादीना अर्थे पृथिवीजीवान् हिंसन्ति ते मन्दबुद्धिकाः" ततोऽह कथ प्रासाद–चैत्यदेवकुलानि मानयामि ? तत्पाठोऽपि ( ८ पत्रे ) यथा–'किं ते ? करिसाणपोक्खरणी–वावि–विप्पिणी–कूव–सर–तलाग–चिति–वेति–खाति अ–आराम–विहार–थूभ–पागार–दार–गोपुर–अट्टालग–चरिआ–सेतु–सकम–पासाय–विकप्प–भवण–घर–सरण–लेण–आवण–चेइअ–देवकुल–चित्तसभा–

पया–आयतण–आवसह–भूमिघर–मंडवाण य कए भायण–भंडोवगरणस्स विविहस्स य अट्ठाए पुढविं हिंसति मंदबुद्धिया" अत्र उच्यते, रे पूर्वापराविचारक ? अत्र विहारो–बौद्धाद्याश्रयः, प्रासादो—नरेन्द्राश्रयः, जिनप्रासादस्य तु प्रायो जिनगृह सिद्धायतनं च इति संज्ञात्वात्, चैत्यानि व्यन्तरादिदेवप्रतिमाः, देवकुलानि च सशिखरलौकिकहरिहरादिदेवप्रासादाः, अयं अर्थो ज्ञेयः, अन्यथा "चेइअट्ठे निज्जरट्ठी" इति संवरद्वारे चैत्यवैयावृत्तिकारको निर्जराभागी कथं उक्तः ?, नहि गणधरदेववचनं पूर्वापरविसंवादि स्यात्, अपि च राजप्रश्नीयोपाङ्गादौ ( १७ पत्रे ) प्रोक्तं–"एयं मे पेच्चा हिआए सुहाए खमाए निस्सेसाए आणुगामियत्ताए भविस्सतितिकट्टु एवं संपेहेइ" इति, मोक्षपर्यन्तं पूजाफलं विधत्ते, न च वाच्यं चैत्यशब्दस्य अन्यार्थः कोऽपि भविता ( भाव्यते ) इति, चैत्यशब्दस्य कुत्राऽपि वृक्षाद्यर्थं वाचकत्वेऽपि तद्वैयावृत्तिकरणे निर्जराभागित्वासंभवात् ॥ ४ ॥ एवं श्रीऔपपातिकोपाङ्गे ( २ पत्रे ) चम्पानगरीवर्णनेऽपि अर्हच्चैत्यानि प्रतिपादितानि सन्ति, पाठान्तरे तथाहि–

"अरिहंतचेईअजणवय–विसण्णिविट्ठबहुलेत्ति" व्याख्या यथा–अर्हच्चैत्यानां १ जनानां २ व्रतिनां च ३ विविधानि यानि संनिविष्टानि–पाटकाः तैः बहुलेति विग्रहः ॥ ५ ॥ तथा श्रीभगवत्यां चमरोद्देशके चमरेन्द्रेणाऽपि सौधर्मं गच्छता अर्हच्चैत्यनिश्रा गृहीताऽस्ति, ( १७० पत्रे ) तथाहि–

"किं निस्साए णं भंते ! असुरकुमारा देवा उड्ढं उप्पयंति जाव सोहम्मो कप्पो ? गोयमा ! से जहानामए–इह सबरा इ वा बब्बरा इ वा टंकणा इ वा भुत्तुया इ वा पल्हया इ वा पुलंदा इ वा एगं महं गड्डं वा खड्डं वा दुग्गं वा-

दरिं वा विसम वा पवय वा नीसाए सुमहल्लमवि आसवल वा हत्थिवल वा जोहवल वा धणुवल वा आगलेंति एवामेव असुरकुमारा वि देवा णण्णत्थ अरिहते वा अरिहतचेइआणि वा अणगारे वा भाविअप्पणो निस्साए उड्ढं उप्पयति जाव सोहम्मो कप्पो। × × × ( १७५ पत्रे ) तते ण तस्स सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो इमेयारूवे अज्झत्थिए ४ जाव समुप्पज्जित्था–णो खलु पहू चमरे असुरिंदे असुरराया नो खलु समत्थे चमरे असुरिंदे असुरराया, णो खलु विसए चमरस्स असुरिंदस्स असुररण्णो अप्पणो निस्साए उड्ढ उप्पइत्ता जाव सोहम्मो कप्पो, णण्णत्थ अरिहते वा अरिहतचेइआणि वा अणगारे वा भाविअप्पणो णीसाए उड्ढं उप्पयति जाव सोहम्मो कप्पो" इत्यादि ॥ ६ ॥ पुन श्रीराजप्रश्नीयोपाङ्गे ( १०४ पत्रे ) सूर्याभदेवेन यथा जिनप्रतिमापूजा विस्तरेण विहिताऽस्ति, तथा श्रूयता, तथाहि–"तए ण से सूरियामे देवे पोत्थयरयण गिण्हति, गिण्हित्ता पोत्थयरयण मुयइ, मुयइत्ता पोत्थयरयण विहाडेइ, विहाडित्ता पोत्थयरयण वाएइ, पोत्थयरयण वाएत्ता धम्मिअ ववसाय गिण्हइ, गिण्हित्ता पोत्थयरयण पडिनिक्खिवति, पडिनिक्खिवित्ता सीहासणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठित्ता ववसायसभाओ पुरच्छिमिल्लेण दारेण पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता जेणेव नदापुक्खरणी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता णदापुक्खरणिं पुरच्छिमिल्लेण तोरणेण पुरच्छिमिल्लेण तिसोवाणपडिरूवएण पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता हत्थपाय पक्खालेइ, पक्खालित्ता आयंते चोक्खे परमसुइभूए एग मह सेअ रययामय विमल सलिलपुण्ण मत्तगयमुहागितिकुमसमाण भिंगार पगिण्हइ, पगिण्हित्ता जाइ तत्थ उप्पलाइ जाव सतसहस्सपत्ताइ ताइ गिण्हइ, गिण्हित्ता णदातो पुक्खरणीतो पच्चोरुहति, पच्चोरुहित्ता जेणेव सिद्धायतणे तेणेव पहारेत्थ गमणाए ( सूत्र ४३ ) ( १०५ पत्रे )

तते ण त सूरिआभ देव बहवे आभिओगिआ देवा य देवीओ अ अप्पेगइआ कलसहत्थगया जाव अप्पेगइआ धूवकडुच्छुय हत्थगया हट्ठतुट्ठ जाव सूरियाभ देव पिट्ठओ पिट्ठओ समणुगच्छति तए ण से सूरिआभे देवे चउहिं सामाणिअसाह-स्सीहिं जाव अण्णेहिं य बहूहिं य सूरियाभ जाव देवेहिं य देवीहिं य सद्धिं सपरिवुडे, सव्वड्ढीए सव्वबलेहिं जाव णातियरवेण जेणेव सिद्धायतणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सिद्धायतण पुरच्छिमिल्लेण दारेण अणुपविसइ, अणुपविसित्ता जेणेव देवच्छदए जेणेव जिणपडिमाओ तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता जिणपडिमाण आलोए जिणपडिमाण पणाम करेइ, पणाम करित्ता लोमहत्थग गिण्हइ, गिण्हित्ता जिणपडिमाण लोमहत्थेण पमज्जइ, पमज्जित्ता जिणपडिमाओ सुरभिणागधो-दएण ण्हाणेइ, ण्हाणित्ता सरसेण गोसीसचदणेण गायाइ अणुलिंपइ, अणुलिंपइत्ता सुरभिगधकासाइएण गायाइ लूहेति-लूहित्ता जिणपडिमाण अहयाइ देवदूसजूयलाइ नियंसेइ, नियसित्ता पुप्फारुहण मल्लारुहण गधारुहण चुण्णारुहण वन्ना-रुहणं वत्थारुहण आभरणारुहणं करेइ, करित्ता आसत्तोसत्तविउलवट्टवग्घारिअ मल्लदामकलाव करेइ, करित्ता कयग्गहग-हियकरयलपब्भट्ठविप्पमुक्केण दसद्धवन्नेण कुसुमेण मुक्कपुप्फपुजोवयारकलिअ करेइ, करित्ता जिणपडिमाण पुरओ अच्छेहिं सण्हेहिं रययामएहिं अच्छरसातदुलेहिं अट्ठट्ठमंगले आलिहइ, त जहा—सोत्थिअ जाव दप्पण, तयाणतर च ण चदप्पभरयण-वइरवेरुलिअविमलदड कंचणमणिरयणभत्तिचित्त कालागुरुपवरकुदुरुक्कतुरुक्कधूवमघमघतगंधुद्धुआभिराम च गधवट्टिं धूववट्टिं विणिम्मुअत वेरुलिअमय कडुच्छुय पग्गहिअ पयत्तेणं धूव दाऊण जिणवराण अट्ठसयविसुद्धगथ(गन्थ)जुत्तेहिं अत्थजुत्तेहिं अपुणरुत्तेहिं महावित्तेहिं सथुणइ, संथुणित्ता पच्छा सत्तट्ठपयाइ पच्चोसक्कइ, पच्चोसक्कित्ता वाम जाणु अचेइ,

अचित्ता दाहिण जाणु धरणितलंसि निहट्टु तिक्खुत्तो मुद्धाणं धरणितलंसि निवाडेइ, निवाडित्ता एगसाडिअ उत्तरासंग करेइ, करित्ता ईसिं पच्चुण्णमइ, पच्चुण्णमित्ता करयलपरिग्गहिअ दसनहं सिरसावत्तं मत्थए अजलिं कट्टु एवं वयासी—"नमुत्थुणं अरहंताणं जाव ठाणं संपत्ताणं" इति ॥ अत्राऽऽह मनोमतिशिष्य —

ननु—सूर्याभदेवेन प्रतिमावत् स्तम्भादीनि अपि अनेकवस्तूनि पूजितानि सन्ति, कथं तर्हि सम्यक्त्वधारी ? उच्यते,—अहो ! विमृश स्तम्भादीनि पूजितानि, परं जिनप्रतिमां विना कस्याऽग्रे नमुत्थुणं कथितं स्यात् ? तदा दर्शय, अथ च स्तम्भादीनां पूजा यदि व्यधायि तदा सम्यक्त्वस्य किं ? यदि श्रीआदिनाथपुत्रेण श्रीभरतचक्रवर्तिना चक्ररत्नं पूजितं, किं तर्हि तस्य सम्यक्त्वं गतं ? चक्ररत्नपूजाक्षराणि श्रीजम्बूद्वीपप्रज्ञप्त्या( १८४ पत्रे ) यथा—

"तते णं से भरहे राया तस्स आउहघरिअस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ठ जाव सोमणस्सिए विकसितवरकमलनयणवयणे पयलिअवरकडगतुडिअकेऊरमउडकुंडलहारविरायंतरइअवच्छे पालंबपलंबमाणघोलंतभूसणधरे ससंभमं तुरिअं चवलं नरिंदे सीहासणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठित्ता पायपीढाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता पाउयाओ ओमुअति, ओमुइत्ता एगसाडियं उत्तरासंगं करेइ, करित्ता अंजलिमउलिअग्गहत्थे चक्करयणाभिमुहे सत्तट्ठपयाइं अणुगच्छइ, अणुगच्छित्ता वामं जाणुं अंचेइ, अंचित्ता दाहिणं जाणुं धरणितलंसि निहट्टु करयल जाव अंजलिं कट्टु चक्करयणस्स पणामं करेइ" इति, पुनः श्रीअभयकुमारेण पूर्वसंगतिकं देवं मनसि कृत्वा निजलघुमातृदोहदपूरणनिमित्तं अष्टमभक्तं अकारि, तर्हि किं सम्यक्त्वधारी न ? तदक्षराणि अपि श्रीज्ञाताधर्मकथासत्कानि ( ३० पत्रे ) "तए णं

तते ण त सूरिआभ देव बहवे आभिओगिआ देवा य देवीओ य अप्पेगइआ कलसहत्थगया जाव अप्पेगइआ धूवकडुच्छुय हत्थगया हट्ठतुट्ठ जाव सूरियाभ देव पिट्ठओ पिट्ठओ समणुगच्छति तए ण से सूरिआभे देवे चउहिं सामाणिअसाहस्सीहिं जाव अण्णेहिं य बहूहिं य सूरियाभ जाव देवेहिं य देवीहिं य सद्धिं सपरिवुडे, सव्वड्ढीए सव्वबलेहिं जाव णातियरवेण जेणेव सिद्धायतणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सिद्धायतण पुरच्छिमिल्लेण दारेण अणुपविसइ, अणुपविसित्ता जेणेव देवच्छदए जेणेव जिणपडिमाओ तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता जिणपडिमाण आलोए जिणपडिमाण पणाम करेइ, पणाम करित्ता लोमहत्थगं गिण्हइ, गिण्हित्ता जिणपडिमाण लोमहत्थेण पमज्जइ, पमज्जित्ता जिणपडिमाओ सुरभिणा गधोदएण ण्हाणेइ, ण्हाणित्ता सरसेण गोसीसचदणेण गायाइ अणुलिंपइ, अणुलिंपइत्ता सुरभिगधकासाइएण गायाइ लूहेति-लूहित्ता जिणपडिमाण अहयाइ देवदूसजूयलाइ नियंसेइ, नियसित्ता पुप्फारुहण मल्लारुहण गधारुहण चुण्णारुहण वन्ना-रुहणं वत्थारुहण आभरणारुहण करेइ, करित्ता आसत्तोसत्तविउलवट्टवग्घारिअ मल्लदामकलाव करेइ, करित्ता कयग्गहग्गहियकरयलपब्भट्ठविप्पमुक्केणं दसद्धवन्नेण कुसुमेण मुक्कपुप्फपुजोवयारकलिअ करेइ, करित्ता जिणपडिमाण पुरओ अच्छेहिं सण्हेहिं रययामएहिं अच्छरसातदुलेहिं अट्ठट्ठमगले आलिहइ, त जहा—सोत्थिअ जाव दप्पण, तयाणतर च ण चदप्पभरयणवइरवेरुलिअविमलदड कंचणमणिरयणभत्तिचित्त कालागुरुपवरकुदुरुक्कतुरुक्कडज्झतमघमघतगधुद्धुआभिराम च गधवट्टिं धुववट्टिं विणिम्मुअत वेरुलिअमय कडुच्छुय पग्गहिअ पयत्तेण धूव दाऊण जिणवराण अट्ठसयविसुद्धगथ(गन्थ)जुत्तेहिं अत्थजुत्तेहिं अपुणरुत्तेहिं महावित्तेहिं सथुणइ, सथुणित्ता पच्छा सत्तट्ठपयाइ पच्चोसक्कइ, पच्चोसक्कित्ता वाम जाणुं अचेइ,

जहारिह एव वयासी–खिप्पामेव भो देवाणुप्पिआ! सघरयणामए महइमहालए तओ चेइअथूभे करेह, एग भगवओ तित्थगरस्स चिइगाए, एगं गणहरचिइगाए, एग अवसेसाण अणगाराण चिइगाए, तते णं ते बहवे जाव करिंति, तते णं ते वहवे भवणवइ जाव वेमाणिआ देवा तित्थगरस्स परिनिघाणमहिम करेइ, करित्ता जेणेव नदीसरवरे दीवे तेणेव उवागच्छंति तते ण से सक्के देविंदे देवराया पुरच्छिमिल्ले अंजणगपवए अट्ठाहिअ महामहिम करेंति, तए ण सक्कस्स देविंदस्स चत्तारि लोगपाला चउसु दहिमुहगपवएसु अट्ठाहिय महामहिम करेंति, ईसाणे देविंदे देवराया उत्तरिल्ले अजणगे अट्ठाहिअ, तस्स लोगपाला चउसु दहिमुहपवगेसु अट्ठाहिअ, चमरो अ दाहिणिल्ले अजणगे तस्स लोगपाला दहिमुहगपवएसु, बली पच्चत्थिमिल्ले अजणगे, तस्स लोगपाला दहिमुहगपवएसु, तते ण ते वहवे भवणवइवाणमतर जाव अट्ठाहिआओ महामहिमाओ करेंति, करित्ता तेणेव साइं साइं विमाणाइं जेणेव साइं साइं भवणाइं जेणेव साओ साओ सभाओ सुहम्माओ, जेणेव सगा सगा माणवगा चेइअखभा तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता वइरामएसु गोलवट्टसमुग्गएसु जिणसकहाओ पक्खिवंति, पक्खिवित्ता अग्गेहिं वरेहिं गंधेहिं अ मल्लेहिं अ अच्चेंति, अच्चित्ता विउलाइं भोगभोगाइं भुजमाणा विहरंति" इति ॥ ८ ॥ एव जीवाभिगमसूत्रे ( २४९ पत्रे ) विजयदेवेनाऽपि यथा जिनप्रतिमापूजा न्यधायि, तथा श्रूयता—

"तते ण तस्स विजयस्स देवस्स आभियोगिया देवा पोत्थयरयण उवणेंति, तए ण से विजये देवे पोत्थयरयण गिण्हइ, गिण्हित्ता पोत्थयरयण अंके मुअइ पोत्थयरयण मुइत्ता पोत्थयरयण विहाडेइ, पोत्थयरयण विहाडेत्ता पुण पोत्थ-

तस्स अभयकुमारस्स अयमेयारूवे अब्भत्थिए जाव समुप्पज्जित्था—नो खलु सक्का माणुस्सएण उवाएण मम चुल्लमाउयाए धारिणीए देवीए अकालडोहलमणोरहसंपत्तिं करेत्तए, णण्णत्थ दिव्वेण उवाएण, अत्थि ण मज्झ सोहम्मकप्पवासी पुव्वसंगतिए देवे महिड्ढिए जाव महासोक्खे, त सेय खलु मम पोसहसालाए पोसहियस्स बंभयारिस्स उम्मुक्कमणिसुवण्णस्स ववगयमालावण्णगविलेवणस्स निक्खित्तसत्थमुसलस्स एगस्स अबीअस्स दब्भसथारोवगयस्स अट्ठमभत्त परिगिण्हित्ता पुव्वसंगतिक देव मणसि करेमाणस्स विहरित्तए, तते ण पुव्वसंगतिए देवे मम चुल्लमाउयाए धारिणीए देवीए अयमेयारूवे अकालमेहेसु डोहल विणेहिति, एवं सपेहेइ, सपेहित्ता जेणेव पोसहसाला तेणामेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता पोसहसाल पमज्जति, पमज्जित्ता उच्चारपासवणभूमिं पडिलेहेइ, पडिलेहित्ता दब्भसथारग पडिलेहेइ, पडिलेहित्ता दब्भसथारग दुरुहइ, दुरुहित्ता अट्ठमभत्त परिगिण्हइ, परिगिण्हित्ता पोसहसालाए पोसहिए बंभयारी जाव पुव्वसगतिय देव मणसि करेमाणे चिट्ठति" इत्यादि ॥ ७ ॥ तथा पुनः यदि शक्रादयो देवेन्द्राः जिनदंष्ट्रा अपि पूजयन्ति, तदा जिनप्रतिमाया किं वाच्यम्? तत्राऽर्थे जम्बूद्वीपप्रज्ञप्त्या ( १५८ पत्रे ) यदुक्त तत् श्रोतव्य, तथाहि—

तते ण से सक्के देविंदे देवराया भगवओ तित्थगरस्स उवरिल्ल दाहिण सकह गेण्हइ, ईसाणे देविंदे देवराया उवरिल्लं वाम सकह गेण्हइ, चमरे असुरिंदे असुरराया हिट्ठिल्लं दाहिण सकह गेण्हइ, बली वइरोअणिंदे वइरोअणराया हिट्ठिल्ल वाम सकह गेण्हइ, अवसेसा भवणवइ जाव वेमाणिया देवा जहारिहं अवसेसाइ अगमगाइ, केई जिणभत्तीए, केई जितमेयतिकट्टु केई धम्मोत्ति कट्टु गेण्हति, तते णं से सक्के देविंदे देवराया बहवे भवणवइ जाव वेमाणिए देवे

सुरभिणा गधोदएण ण्हाणेइ, ण्हाणित्ता दिव्वाए सुरभिगधकासाइए गाताइ लूहेइ, लूहित्ता सरसेण गोसीसचदणेण गाताणि अणुलिंपइ, गाताणि अणुलिंपेत्ता जिणपडिमाण अहयाइ सेआइ दिव्वाइ देवदूसजुअलाइ नियंसेइ, निअसित्ता अग्गेहिं वरेहि अ गधेहिं अ मल्लेहिं अ अच्चेइ, अच्चित्ता पुप्फारुहण मल्लारुहण गधारुहण वन्नारुहण चुन्नारुहण आभरणारुहण करेति, करित्ता आसत्तोसत्तविउलवट्टवग्घारिअमल्लदामकलाव करेइ, करित्ता अच्छेहिं सण्हेहिं [सेएहिं] रययामएहिं अच्छरसातदुलेहिं जिणपडिमाण पुरओ अट्ठट्ठमगलए आलिहति, त जहा—सोत्थिअ सिरिवच्छ जाव दप्पण अट्ठट्ठमगलगे आलिहति, आलिहित्ता कयग्गाहग्गहिअकरयलपब्भट्ठविप्पमुक्केण दसद्धवन्नेण कुसुमेण मुक्कपुप्फपुजोवयारकलिअ करेइ, करित्ता चदप्पभवइरवेरुलिअविमलदड कचणमणिरयणभत्तिचित्त कालागुरुपवरकदुरुक्कतुरुक्कधूवगधुत्तमाणुविद्ध धूमवट्टीं विणिम्मुअत वेरुलिआमय कडुच्छुय पग्गहित्तु पयत्तेण धूव दाऊण जिणवराण अट्ठसयविसुद्धगत्थजुत्तेहिं महावित्तेहिं अत्थजुत्तेहिं अपुणरुत्तेहिं सथुणइ, सथुणित्ता सत्तट्ठ पयाइ ओसरइ, ओसरित्ता वाम जाणु अचेइ, अचेइत्ता दाहिण जाणु धरणितलसि निवाडेइ तिक्खुत्तो मुद्धाण धरणितलसि नमेइ, नमित्ता ईसिं पच्चुण्णमति, पच्चुण्णमित्ता कडगतुडिअथभिआओ भुयाओ पडिसाहरइ, पडिसाहरित्ता करयलपरिग्गाहिअ सिरसावत्त मत्थए अजलिं कट्टु एम [एव] वयासी—नमोत्थुण अरिहताण भगवताण जाव सिद्धिगइनामधेय ठाण सपत्ताण त्तिकट्टु वदइ नमसइ" इत्यादि, पुन अत्रैव अग्रे पत्रान्तरे विजयदेवेन जिनसक्थानि अपि पूजितानि सन्ति, तत्पाठो यथा ( २५१ पत्रे ) "जेणेव सुहम्मा सभा तेणेव पहारेत्थ गमणाए, तए ण तस्स विजयदेवस्स चत्तारि सामाणिअसाहस्सीओ एअप्पभिइं जाव सव्विड्ढीए जाव नाइयरवेण जेणेव सुहम्मा सभा

यरयण थाएइ पोत्थयरयण वाएत्ता धम्मिअ ववसाय पगिण्हइ, धम्मिय ववसायं पगिण्हित्ता पोत्थयरयण पडिनिक्खवइ, पडिनिक्खिविता सीहासणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठित्ता ववसायसभाओ पुरत्थिमिल्लेण दारेण पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता जेणेव नदा पुक्खरिणी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता नदा पुक्खरिणीं अणुप्पयाहिणीकरेमाणे पुरत्थिमिल्लेण दारेण अणुप्पविसइ, अणुप्पविसित्ता पुरत्थिमिल्लेण तिसोपाणपडिरूवगएण पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता हत्थं पाय पक्खालेइ, पक्खालित्ता एगं महं सेअ रयतामय विमलसलिलपुण्ण मत्तगयमहामुहाकितिसमाण भिंगार पगिण्हइ, भिंगार पगिण्हित्ता जाइ तत्थ उप्पलाइ पउमाइ जाव सयसहस्सपत्ताइ ताइ गिण्हइ, गिण्हित्ता नदाओ पुक्खरिणीओ पच्चुत्तरेइ, पच्चुत्तरित्ता जेणेव सिद्धायतणे तेणेव पहारेत्थ गमणाए ॥ तए ण तस्स विजयस्स देवस्स चत्तारि सामाणिअसाहस्सीओ जाव अन्ने अ बहवे वाणमतरा देवा य देवीओ अ अप्पेगइआ उप्पलहत्थगया जाव हत्थगया विजय देवं पिट्ठओ पिट्ठओ अणुगच्छति । तए ण तस्स विजयस्स देवस्स बहवे आभिओगिया देवा देवीओ अ कलसहत्थगया जाव धूवकडुच्छुयहत्थगया विजय देव पिट्ठओ पिट्ठओ अणुगच्छति । तए ण से विजए देवे चउहिं सामाणिअसहस्सीहिं जाव अन्नेहिं य बहूहिं वाणमतेरहिं देवेहिं य देवीहिं अ सद्धिं सपरिवुडे सव्विड्ढीए सव्वजुईए जाव निग्घोसणाइअरवेण जेणेव सिद्धाययणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सिद्धायतण अणुप्पयाहिणी करेमाणे करेमाणे पुरत्थिमिल्लेण दारेण अणुप्पविसइ, अणुप्पविसित्ता जेणेव देवच्छदेए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता आलोए जिणपडिमाण पणामं करेइ, पणाम करित्ता लोमहत्थग गिण्हइ, लोमहत्थग गिण्हित्ता जिणपडिमाओ लोमहत्थएण पमज्जइ, पमज्जित्ता

पया पन्नत्ता, तं जहा-पुरत्थिमिल्ले अंजणगपव्वए १ दाहिणिल्ले अंजणगपव्वए २ पच्चत्थिमिल्ले अंजणगपव्वए ३ उत्तरिल्ले अंजणगपव्वए ४, ते णं अंजणगपव्वया चउरासीति जोयणसहस्साइं उड्ढं उच्चत्तेण एग जोयणसहस्सं उव्वेहेण मूले दसजोयणसहस्साइं विक्खमेण, तदणंतर च ण मायाए मायाए परिहायेमाणा परिहायेमाणा उवरिमेगं जोयणसहस्स विक्खमेण पन्नत्ता, मूले इक्कतीस जोयणसहस्साइं छच्च तेवीसे जोयणसए परिक्खेवेण, उवरिं तिन्नि तिन्नि जोयणसहस्साइं एग च छावट्ठ जोयणसय परिक्खेवेणं, मूले विस्थिन्ना ( विच्छिन्ना ) मज्झे सं खित्ता उप्पितणुआ० गोपुच्छसंठाणसंठिआ सव्वअंजणमया अच्छा सण्हा लण्हा घट्ठा मट्ठा नीरया निप्पंका निक्ककडच्छाया सप्पभा समिरीया सउज्जोया पासाईया दरिसणीया अभिरूवा पडिरूवा, तेसि ण अंजणगपव्वयाण उवरिं बहुसमरमणिज्जभूमिभागा पन्नत्ता, तेसि ण बहुसमरमणिज्जभूमिभागाण बहुमज्झदेसभागे चत्तारि सिद्धायतणा पन्नत्ता, ते ण सिद्धाययणा एग जोयणसय आयामेण पन्नत्ता, पन्नास जोयणाइं विक्खमेण, बावत्तरि जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेण, तेसिं सिद्धाययणाण चउद्दिसिं चत्तारि दारा पन्नत्ता, त जहा-देवदारे १ असुरदारे २ नागदारे ३ सुवण्णदारे ४, तेसु ण दारेसु चउविहा देवा परिवसंति, त जहा-देवा १ असुरा २ नागा ३ सुवण्णा ४, तेसि णं दाराण पुरओ चत्तारि मुहमंडवा पन्नत्ता, तेसि ण मुहमंडवाण पुरओ चत्तारि पेच्छाघरमंडवा पन्नत्ता, तेसि ण पेच्छाघरमंडवाण बहुमज्झदेसभागे चत्तारि वइरामया अक्खाडगा पन्नत्ता, तेसि ण वइरामयाण अक्खाडगाण बहुमज्झदेसभागे चत्तारि मणिपीढिआओ पन्नत्ता, तासाण मणिपीढिआण उवरिं चत्तारि सीहासणा पन्नत्ता, तेसि ण सीहासणाण उवरिं चत्तारि विजयदूसा पन्नत्ता, तेसि ण विजयदूसगाणं बहुमज्झदेसभागे चत्तारि वइरामया अंकुसा पन्नत्ता, तेसु ण वइ-

तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता त णं सभ सुधम्म अणुप्पयाहिणी करेमाणे करेमाणे पुरत्थिमिल्लेण अणुपविसइ, अणुपविसित्ता आलोए जिणसकहाणं पणाम करेइ, करित्ता जेणेव मणिपेढिआ जेणेव माणवचेइअखमे जेणेव वइरामया गोलवट्टसमुग्गका तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता लोमहत्थयं गिण्हइ, गिण्हित्ता वइरामए गोलवट्टसमुग्गए लोमहत्थएण पमज्जइ, पमज्जित्ता वइरामए गोलवट्टसमुग्गए विहाडेइ, विहाडित्ता जिणसकहाओ लोमहत्थएण पमज्जइ, पमज्जित्ता सुरभिणा गंधोदएण तिसत्तखुत्तो जिणसकहाओ पक्खालेइ, पक्खालित्ता सरसेणं गोसीसचंदणेण अणुलिंपइ, अणुलिंपेत्ता अग्गेहिं वरेहिं गंधेहिं मल्लेहिं अ अच्चिणइ, अच्चिणित्ता धूवं दलयइ, दलित्ता वइरामएसु गोलवट्टसमुग्गएसु पडिनिक्खिवति, पडिनिक्खिवित्ता माणवक चेइयखंभ लोमहत्थएणं पमज्जइ, पमज्जित्ता दिव्वाए उदगधाराए अब्भुक्खेइ, अब्भुक्खेइत्ता सरसेणं गोसीसचंदणेण चच्चए दलयति, दलित्ता पुप्फारुहणं जाव आसत्तोसत्त० कयग्गाह० धूवं दलयति, धूव दलित्ता जेणेव सभाए सुहम्माए बहुमज्झदेसभाए त चेव दारच्चणिआ" इत्यादि ॥ ८ ॥ पुन: श्रीजीवाभिगमे चन्द्रविमाने चन्द्रवक्तव्यताया (२८२पत्रे) तथाहि–

"चंदस्स ण जोतिसिंदस्स जोतिसरण्णो चंदवडेंसए विमाणे सभाए सुहम्माए माणवगंसि चेइयखंभंसि वइरामएसु गोलवट्टसमुग्गएसु बहुआओ जिणसकहाओ सन्निक्खित्ताओ चिट्ठंति, जाओ ण चंदस्स जोइसिंदस्स जोइसरण्णो अन्नेसिं च बहूण जोइसिआणं देवाण य देवीण य अच्चणिज्जाओ जाव पज्जुवासणिज्जाओ" इत्यादि ॥ ९ ॥ अथ श्रीस्थानाङ्गसूत्रे चतुर्थस्थानके द्वितीयोद्देशके ( २२९ पत्रे ) शाश्वतजिनप्रतिमाग्रे अष्टाहिकामहोत्सवं देवा कुर्वन्ति, तथा लिख्यते, तथाहि–

"[अथ–नन्दीश्वरविचारः] नंदीसरवरस्स णं दीवस्स चक्कवालविक्खंभस्स बहुमज्झदेसभागे चउद्दिसिं चत्तारि अंजणगप-

गाण एव आयसगाण थालाण पातीण सुपतिट्ठकाणं मणगुलिआण वातकरगाण चित्ताण रयणकरडगाण" इत्यादि ॥ १० ॥ तथा चमरेन्द्रादयोऽपि ईशानान्ता इन्द्रा निजनिजसौधर्मादिसभाया स्थिताः, तत्रवर्तिन्यो जिनदंष्ट्रा पूजनीया अर्चनीयाश्चेति ज्ञात्वा तत्समक्ष अप्सरोभिः सम मैथुनमपि न सेवन्ते । यदुक्त श्रीभगवतीसूत्रे दशमशतके पञ्चमोद्देशके (५०२ पत्रे), तथाहि–

"चमरस्स ण भते! असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो कति अग्गमहिसीओ पन्नत्ताओ ? अज्जो! पच अग्गमहिसीओ पन्नत्ताओ तजहा–काली १ रायी २ रयणी ३ विज्जु ४ मोहा ५ तत्थ ण एगमेगाए देवीए अट्ठट्ठ देवीसहस्सा परिवारो पन्नत्तो, पभू ण भते! ताओ एगमेगा देवी अण्णाइ अट्ठट्ठदेवी सहस्साइ परिवार विउवितए ? एवामेव सपुव्वावरेण चत्तालीस देवीसहस्सा, से त तुडिए, पभू ण भते! चमरे असुरिंदे असुरकुमारराया चमरचचाए रायहाणीए सभाए चमरसि सीहासणसि तुडिएणं सद्धिं दिव्वाइं भोगभोगाइ भुजमाणे विहरित्तए ?, णो तिणट्ठे समट्ठे, से केणट्ठे ण भते! एव वुच्चइ ? णो पहू चमरे असुरिंदे चमरचचाए रायहाणीए जाव विहरित्तए ? अज्जो चमरस्स ण असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो चमरचचाए रायहाणीए सभाए सुहम्माए माणवए चेइयखभे वइरामएसु गोलवट्टसमुग्गएसु बहूओ जिणसकहाओ सनिक्खित्ताओ चिट्ठति, जाओ ण चमरस्स असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो अण्णेसिं च बहूण असुरकुमाराण देवाण य देवीण य अच्चणिज्जाओ वदणिज्जाओ नमसणिज्जाओ पूयणिज्जाओ सक्कारणिज्जाओ सम्माणणिज्जाओ कल्लाण मगल देवय चेइअ पज्जुवासणिज्जाओ भवति तेसिं पणिहाए नो पभू, से तेणट्ठेण अज्जो! एव वुच्चति–णो पहू चमरे असुरिंदे जाव राया चमरचंचाए जाव विहरित्तए

रामएसु अकुसेसु चत्तारि कुंभिआ मुत्तादामा पन्नत्ता, ते ण कुंभिआ मुत्तादामा पत्तेय पत्तेय अन्नेहिं तदद्धउच्चत्तपमाणमित्तेहिं चउहिं अद्धकुंभिकेहिं मुत्तादामेहिं सव्वाओ समता सपरिक्खित्ता, तेसि ण पेच्छाघरमडवाण पुरओ चत्तारि मणिपीढिआओ पन्नत्ताओ, तासि णं मणिपीढिआण उवरिं चत्तारि चत्तारि चेतितथूभा पन्नत्ता, तासि ण चेतितथूभाण पत्तेय पत्तेय चवद्दिसिं चत्तारि मणिपीढिआओ पन्नत्ता, तासि ण मणिपीढिआण उवरिं चत्तारि जिणपडिमाओ सव्वरयणामईओ सपलिअक निसन्नाओ थूभाभिमुहाओ चिट्ठंति, त जहा–रिसहा १ वद्धमाणा २ चदाणणा ३ वारिसेणा ४" इत्यादि ॥ ९ ॥ पुन' श्रीजीवाभिगमसूत्रे ( २२३ पत्रे ) शाश्वतजिनप्रतिमापूजाधिकारः, तथाहि–

"तासि णं जिणपडिमाणं पिट्ठओ पत्तेअ पत्तेअ छत्तधारपडिमाओ पन्नत्ताओ, ताओ ण छत्तधारपडिमाओ हिमरययकुंदेंदुसप्पकासाइं सकोरेंटमल्लदामधवलाइ आतपत्ताइ सलील ओहारेमाणीओ चिट्ठति । तासि ण जिणपडिमाण उभओ पासिं पत्तेअ पत्तेअ चामरधारपडिमाओ पन्नत्ताओ, ताओ ण चामरधारपडिमाओ चदप्पहवइरवेरुलियनाणामणिकणगरयणविमलमहरिहतवणिज्जुज्जलविचित्तदडाओ चिल्लिआओ ससकुंददगरययमतमथितफेणपुजसण्णिकासाओ सुहुमरयतदीहवालाओ धवलाओ चामराओ सलील ओहारेमाणीओ चिट्ठति । तासि ण जिणपडिमाण पुरओ दो दो नागपडिमाओ, दो दो जक्खपडिमाओ, दो दो भूतपडिमाओ, दो दो कुडधारपडिमाओ विणओणयाओ पायवडिआओ पजलिउडाओ सन्निक्खित्ताओ चिट्ठति, सव्वरयणामतीओ अच्छाओ सण्हाओ लण्हाओ घट्ठाओ मट्ठाओ नीरयाओ निप्पकाओ जाव पडिरूवाओ । तासि ण जिणपडिमाण पुरओ अट्ठसय घटाण अट्ठसय चदणकलसाण एव अट्ठसय भिंगार-

गाण एव आयसगाण थालाणं पातीण सुपतिट्ठकाणं मणगुलिआण वातकरगाण चित्ताण रयणकरडगाण" इत्यादि ॥ १० ॥ तथा चमरेन्द्रादयोऽपि ईशानान्ता इन्द्रा निजनिजसौधर्मादिसभायां स्थिताः, तत्रवर्तिन्यो जिनदंष्ट्रा पूजनीया अर्चनीयाश्चेति ज्ञात्वा तत्समक्ष अप्सरोभिः सम मैथुनमपि न सेवन्ते । यदुक्त श्रीभगवतीसूत्रे दशमशतके पञ्चमोद्देशके (५०१ पत्रे), तथाहि–

"चमरस्स ण भते! असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो कति अग्गमहिसीओ पन्नत्ताओ? अज्जो! पच अग्गमहिसीओ पन्नत्ताओ तजहा–काली १ रायी २ रयणी ३ विज्जु ४ मोहा ५ तत्थ ण एगमेगाए देवीए अट्ठट्ठ देवीसहस्सा परिवारो पन्नत्तो, पभू ण भते! ताओ एगमेगा देवी अण्णाइ अट्ठट्ठदेवी सहस्साइ परिवार विउव्वित्तए? एवामेव सपुव्वावरेण चत्तालीस देवीसहस्सा, से त तुडिए, पभू ण भते! चमरे असुरिंदे असुरकुमारराया चमरचचाए रायहाणीए सभाए चमरसि सीहासणसि तुडिएण सद्धिं दिव्वाइ भोगभोगाइ भुजमाणे विहरित्तए?, णो तिणट्ठे समट्ठे, से केणट्ठे ण भते! एव वुच्चइ? णो पहू चमरे असुरिंदे चमरचचाए रायहाणीए जाव विहरित्तए? अज्जो चमरस्स ण असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो चमरचचाए रायहाणीए सभाए सुहम्माए माणवए चेइयखमे वइरामएसु गोलवट्टसमुग्गएसु बहूओ जिणसकहाओ सनिक्खित्ताओ चिट्ठति, जाओ ण चमरस्स असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो अण्णेसिं च बहूण असुरकुमाराण देवाण य देवीण य अच्चणिज्जाओ वदणिज्जाओ नमसणिज्जाओ पूयणिज्जाओ सक्कारणिज्जाओ सम्माणणिज्जाओ कल्लाण मगल देवय चेइअ पज्जुवासणिज्जाओ भवति तेसिं पणिहाए नो पभू, से तेणट्ठेणं अज्जो! एव वुच्चति–णो पहू चमरे असुरिंदे जाव राया चमरचंचाए जाव विहरित्तए

पहू ण अज्जो चमरे असुरिंदे असुरकुमारराया चमरचचाए रायहाणीए सभाए सुहम्माए चमरंसि सीहासणंसि चउ-सट्ठीए सामाणियसाहस्सीहिं तायत्तीसाए जाव अण्णेहिं य बहूहिं असुरकुमारेहिं देवेहिं अ देवीहिं य सद्धिं सपरिवुडे महयाहय जाव भुजमाणे विहरित्तए०, केवल परियारिड्ढीए णो चेव ण मेहुणवत्तिअ ( सूत्र ४०५ )" इत्यादि, अत्र तेषा देवाना स्त्रीशब्दश्रवणरूपदर्शनप्रमुखस्तथा भोग उक्तः, न मैथुनसेवा, एव तेषा लोकपालानामपि आलापका ज्ञेया ॥११॥

पुन मरणसमाधिप्रकीर्णकमध्येऽपि (९७ पत्रे) चैत्यभक्ति प्रोक्ताऽस्ति, तथाहि–"अरिहंतसिद्धचेइअ–गुरुसु अयधम्म-साहुवग्गे अ । आयरिअउवज्झाए, पवयणे सव्वसंघे अ ॥ १९ ॥ एएसु भत्तिजुत्ता, पूअंता अहरह अणण्णमणा । सम्मत्तमणुस-रिन्ता, परित्तससारिआ हुंति ॥ २० ॥ सुविहिअ ! इम पइण्ण, असद्दहंतेहिं णेगजीवेहिं । बालमरणाणि तीए, मयाइ काले अणंताइ ॥ २१ ॥" ॥ १२ ॥ पुनरपि नामस्तवे "कित्तिअवंदिअमहिआ" तत्र कीर्तिता नामादिभिः, वन्दिता मनोवाक्कायैः, महिताः पुष्पादिभिः, "सव्वलोए अरिहंतचेइआण करेमि काउस्सग्ग वंदणवत्तिआए पूअणवत्तिआए" इत्यादि । १३ । पुनः "जावंति चेइआइं, उड्ढे अ अहे अ तिरिअ लोए अ । सव्वाइं ताइं वंदे, इह संतो तत्थ संताइ ॥ १ ॥" ॥ १४ ॥ एवं श्रीआवश्यकनिर्युक्तौ ( १९९ पत्रे ) अपि श्रीअष्टापदतीर्थे भरतकारितजिनप्रतिमादिवर्णन, तथाहि–

"थूभसय भाउगाण, चउवीस चेव जिणहरे कासी । सव्वजिणाण पडिमा, वण्णपमाणेहिं निअएहिं ॥ ४५ ॥ ( मू० भा० )

आयंसघरपवेसो, भरहे पडणं च अंगुलीअस्स । सेसाण उम्मुअण, संवेगो नाण दिक्खा अ ॥ ४३६ ॥" न च चार्च्य–आवश्यकनिर्युक्तेः पञ्चचत्वारिंशदागमेभ्योऽतिरिक्तत्वेन न तद्वचन प्रमाणमिति–आवश्यकनिर्युक्ते चतुर्दशपूर्वधर-

श्रीभद्रबाहुस्वामिप्रणीतत्वात् श्रीकल्पसूत्रस्य इव सुतरां मान्यत्वात्, नहि समानैककर्तृकग्रन्थेषु एको मान्योऽन्ये
तु अमान्या इति ॥ १५ ॥

तथा श्रीजम्बूद्वीपप्रज्ञप्तौ पुनः भणितं, तथाहि-"तित्थयरगुणा पडिमा-सु नत्थि निस्संसयं वियाणंतो । तित्थयरत्ति
नमंतो, सो पावइ निज्जरं विउलं ॥ १ ॥" ॥ १६ ॥ पुनः श्रीआवश्यकनिर्युक्तौ ( ४९३ पत्रे ) वंदनाध्ययने यथा-
"अकसिणपवत्तगाणं, विरयाविरयाण एस खलु जुत्तो । संसारपयणुकरणो, दव्वथए कूवदिट्ठंतो ॥ १॥" ॥१९४॥ ( भा० )
श्रीमहानिशीथसूत्रेऽपि यथा-

"काउं पि जिणायतने-हिँ मंडिअं सव्वमेइणीपिट्ठं । दाणाइचउक्केण, सुट्ठु वि गच्छिज्ज अच्चुयं न परओ ॥ १ ॥" ॥१८॥
गणिविद्याप्रकीर्णकेऽपि ( ७३ पत्रे ) यथा-"धणिट्ठा सयभिसा सई, सवणो अ पुणवसू । एएसु गुरुसुस्सूसं, चेइआण च
पूअणं ॥ ३८ ॥" इति, ॥ १९ ॥ एवं देवेन्द्रस्तवेऽपि भवनपत्यधिकारे पूजाधिकारो यथा-

"कणगमणिरयणथूभिअ-रम्माइं चेइआइं भवणाइं । एएसिं दाहिणओ, सेसाणं उत्तरे पासे ॥ १ ॥" ॥ २० ॥
पुनः देवेन्द्रस्तवे व्यन्तराधिकारेऽपि ( ८१ पत्रे ) यथा-"मणिकणगरयणथूभिअ-जवूणय[चे]नेइआइं भवणाइं । एएसिं
दाहिणओ, सेसाणं उत्तरे पासे ॥ ७८ ॥ तथा च ( ९२ पत्रे ) "तत्थ विमाणा बहुविहा, पासायपगइवेइयारम्मा । येरु-
लिअथूभिआगा, रयणामयदामलंकारा ॥ २४२ ॥" ॥ २२ ॥ तथा अनार्यदेशोत्पन्नोऽपि आर्द्रकुमारं श्रीअभयकुमारमु-
क्तजिनप्रतिमादर्शनेन जातिस्मरणज्ञानेन प्रतिबोधं अवाप्य आर्यदेशे समागत्य दीक्षां गृहीतवान्, नाऽपि प्रतिमादर्शनं

यिना तस्य प्रतिबोधकारणं क्वाऽपि दृष्ट श्रुत वा, तदक्षराणि तु श्रीद्वितीयाङ्गनिर्युक्तौ ( ३८६ पत्रे ) श्रीभद्रबाहुस्वा-
मिकृताया, तथाहि–
"गामे वसंतपुरए, सामइओ घरणिसहिअ [ओ] निक्खंतो । भिक्खायरिआदिट्ठा, ओहासिअभत्तवेहास ॥ १९१ ॥
संवेगसमावन्नो, माई भत्त चइत्तु दिअलोए । चइऊण अद्दपुरे, अद्दसुओ अद्दओ जाओ ॥ १९२ ॥ पीती अ दोण्ह दूओ,
पुच्छणमभयस्स पट्ठवे सोऽवि । तेणावि सम्मदिट्ठि–त्ति होज्ज पडिमा रहंमि गया ॥ १९३ ॥" इति ॥ २३ ॥ तथा
श्रीबृहत्कल्पेऽपि तीर्थङ्कर १ सामान्यकेवलि २ चतुर्दशपूर्वधर ३ सपूर्णपूर्वधर ४ सविग्नशुद्धचारित्रि ५ असविग्नचा-
रित्रि ६ साधुसदृशवेषमात्रधारि ७ द्वादशव्रतधारिश्रावक ८ निष्केवलसम्यक्त्वधारि ९ जिनप्रतिमाना १० दशाना
दर्शनेन भव्यजीवाना भावग्राममोक्षज्ञानादिलाभो जायमानो निगदितोऽस्ति, तथाहि–"तित्थयरा १ जिण २ चउदस ३,
भिन्ने ४ सविग्ग ५ तह य असविग्गो ६ । सारूविअ ७ वय ८ दंसण ९–पडिमाओ १० भावगामाओ ॥ १ ॥" इति
॥ २४ ॥ पुनः श्रीबृहत्कल्पच्छेदग्रन्थे साधोः प्रायश्चित्ताधिकारे एव प्रोक्त अस्ति, कोऽपि महात्मा क्वाऽपि ग्रामादौ जिन-
प्रासाद दृष्ट्वा चैत्यं नमस्कर्तुं मध्ये गत', तत्र कथचित् असमार्यमाणे चैत्ये भगवत्प्रतिमाया उपरिष्टात् लूताकौलिकजाल-
कभ्रमरीगृहादिक दृष्ट्वा च यदि उपेक्षां कुर्यात्, कोऽर्थो यदि स्वय तत् न दूरीकुर्यात्, तदा गुरुप्रायश्चित्त प्राप्नोति, तत्क-
रणे तु लघुप्रायश्चित्तम्, तत्राऽर्थे तत्रत्या गाथा यथा–
"लूआ कोलिगजालिग–कोत्थलहारी अ उवरिगेहे अ । साउतमसाडवे, लहुगा गुरुगा य भत्तीए ॥१॥" इति ॥ २५ ॥

पुनः श्रीतीर्थोद्गालिप्रकीर्णकेऽपि श्रेणिकजीवपद्मनाभतीर्थङ्करदीक्षाधिकारे जलजस्थलजकुसुमैः भगवत पूजा प्रतिपादिताऽस्ति, तथाहि–"चदप्पहाइ सीआ, अविरहिआजम्ममरणमुक्कस्स । आसत्तमल्लदामा, जलयथलयदीवकुसुमेहिं ॥ १ ॥" इति ॥ २६ ॥ इत्थ चैत्यस्तवेऽपि पूजा "पूअणवत्तिआए" इति ॥ २७ ॥ श्रीउत्तराध्ययननिर्युक्तौ ( ३२१ पत्रे ) अपि गौतमेन जिनप्रतिमा वन्दिताऽस्ति, तथाहि–

"सोऊण त भगवओ, गच्छइ तहि गोअमो पहिअकित्ती । आरुहइ त नगवर, पडिमाओ वदइ जिणाण ॥ २९१ ॥"

पुनः श्रीआवश्यकनिर्युक्तौ ( २१० पत्रे ) यथा–

"तत्तो अ पुरिमताले, वग्गुर ईसाण अच्चए पडिमा । मल्लीजिणायण पडिमा, उण्णाए वंसि बहुगोट्ठी ॥ ४९० ॥"

पुन श्रीआवश्यकचूर्णौ ( २९५ पत्रे ) तत्सम्बन्धलेशोऽपि यथा–"तेण कालेण तेण समएण ईसाणे देविंदे देवराया जहा अभिसेगे जाव आणमाणेण सव्विड्ढीए सामीं तिक्खुत्तो आयाहिण पयाहिण काऊण वदइ नमसइ, वदित्ता नमसित्ता, जाव पजलिकडे भगवओ चरिअ आगायमाणे सामिंमि दिन्नदिट्ठीए पज्जुवासेमाणे चिट्ठइ, वग्गुरो य सेट्ठी त काल ण्हाओ ओल्लपडसाडओ सपरिजणो महया इड्ढीए विविहकुसुमहत्थगतो त आयतण अच्चओ जाति, त च वितिवयमाण ईसाणिंदो पासइ, भणति य भो वग्गुरा ! तुब्भ पच्चक्खतित्थगरस्स महिम ण करेसि, तो पडिम अच्चतो जासि, जा एस महइमहावीरवद्धमाणसामी जगनाहेति लोगपुज्जेति, सो आगओ मिच्छादुक्कड काउ खमेति महिम करेइ" इति ॥ ३० ॥ श्रीसमवायाङ्गसूत्रे ( ६० पत्रे ) जलज–१ स्थलज–२ वैक्रिय–३ पुष्पैः उपचारकरण देयाना यथा–"चोत्तीस बुद्धाइसेसा

विना तस्य प्रतिबोधकारणं काऽपि दृष्टं श्रुतं वा, तदक्षराणि तु श्रीद्वितीयाङ्गनिर्युक्तौ ( ३८६ पत्रे ) श्रीभद्रबाहुस्वामिकृतायां, तथाहि–

"गामे वसंतपुरए, सामइओ घरणिसहिअ [ओ] निक्खंतो। भिक्खायरिआदिट्ठा, ओहासिअभत्तवेहास ॥ १९१ ॥ संवेगसमायण्णो, माई भत्त चइत्तु दिअलोए। चइऊण अद्दपुरे, अद्दसुओ अद्दओ जाओ ॥ १९२ ॥ पीती अ दोण्ह दूओ, पुच्छणमभयस्स पट्ठवे सोऽवि। तेणावि सम्मदिट्ठि–त्ति होज्ज पडिमा रहंमि गया ॥ १९३ ॥" इति ॥ २३ ॥ तथा श्रीबृहत्कल्पेऽपि तीर्थङ्कर १ सामान्यकेवलि २ चतुर्दशपूर्वधर ३ सपूर्णपूर्वधर ४ संविग्नशुद्धचारित्रि ५ असंविग्नचारित्रि ६ साधुसदृशवेषमात्रधारि ७ द्वादशव्रतधारिश्रावक ८ निष्केवलसम्यक्त्वधारि ९ जिनप्रतिमानां १० दर्शनेन भव्यजीवानां भावग्राममोक्षज्ञानादिलाभो जायमानो निगदितोऽस्ति, तथाहि–"तित्थयरा १ जिण २ चउदस ३, भिन्ने ४ संविग्ग ५ तह य असंविग्गो ६। सारूविअ ७ वय ८ दंसण ९–पडिमाओ १० भावगामाओ॥ १ ॥" इति ॥ २४ ॥ पुनः श्रीबृहत्कल्पच्छेदग्रन्थे साधोः प्रायश्चित्ताधिकारे एवं प्रोक्तं अस्ति, कोऽपि महात्मा काऽपि ग्रामादौ जिनप्रासादं दृष्ट्वा चैत्यं नमस्कर्तुं मध्ये गतः, तत्र कथंचित् असमार्ज्यमाणे चैत्ये भगवत्प्रतिमाया उपरिष्टात् लूताकौलिकजालकचवरीगृहादिकं दृष्ट्वा च यदि उपेक्षां कुर्यात्, कोऽर्थो यदि स्वयं तत् न दूरीकुर्यात्, तदा गुरुप्रायश्चित्तं प्राप्नोति, तत्करणे तु लघुप्रायश्चित्तम्, तत्राऽर्थे तत्रत्या गाथा यथा–

"लूआ कोलिगजालिग–कोत्थलहारी अ चवरिगोहे अ। साहतमसाहते, लहुगा गुरुगा य भत्तीए ॥१॥" इति ॥ २५ ॥

उदायनस्य राज्ञः प्रभावत्या देव्याः सत्का देवदत्ताऽभिधाना दासी अभूत्, सा च देवनिर्मिता गोशीर्षचन्दनमयीं श्रीमन्महावीरप्रतिमां राजमन्दिरान्तर्वर्तिचैत्यभवनव्यवस्थिता प्रतिचरति स्म, तद्वन्दनार्थं च श्रावकः कोऽपि देशान् संचरन् समायातः, तत्र च आगतोऽसौ रोगेण अपटुशरीरो जातः, तया च सम्यक् परिचरित, तुष्टेन च तेन सर्वकामिक आराधितदेवतावितीर्णं गुटिकाशत अदायि, तया च "अह कुब्जा विरूपा सुरूपा भूयास" इति मनसि विभाव्य एका गुटिका भक्षिता, तत्प्रभावात् सा सुवर्णवर्णा जाता, इति सुवर्णगुलिका इति नाम्ना प्रसिद्धिं उपगता, ततोऽसौ चिन्तितवती–"जाता मे रूपसपदा एतया च किं भर्तृविहीनया? तत्र तावद् अय राजा पितृतुल्यो न कामयितव्य, शेपास्तु पुरुपमात्र अतः किं तै?" ततः उज्जयिन्याः पतिं चण्डप्रद्योतराज मनसि आधाय गुटिका भक्षिता, ततोऽसौ देवतानुभावात् ता विज्ञाय तदानयनाय हस्तिरत्न आरुह्य तत्राऽऽयातः, आकारिता च तेन सा, तया उक्त आगच्छामि यदि प्रतिमा नयसि, तेन उक्त–"तर्हि श्वो नेष्यामि।" ततोऽसौ स्वनगरीं गत्वा तद्रूपा प्रतिमा कारयित्वा ता आदाय तथैव रात्रौ आयात', स्वकीयप्रतिमा देवतानिर्मितप्रतिमास्थाने विमुच्य ता सुवर्णगुलिका च गृहीत्वा गतः, प्रभाते चण्डप्रद्योतगन्धहस्तिविमुक्तमूत्रपुरीपगन्धेन विमदान् स्वहस्तिनो विज्ञाय ज्ञातचण्डप्रद्योतागमोऽवगतप्रतिमासुवर्णगुलिकानयनोऽसौ उदायनराजा पर कोप उपगतो दशभि महाबले राजभिः सह उज्जयिनीं प्रति प्रस्थितः, अन्तरा पिपासाबाधितसैन्य त्रिपुष्करकरणेन देवतया निस्तारितसैन्य अक्षेपेण उज्जयिन्याः बहिः प्राप्तो रथारूढश्च धनुर्वेदकुशलतया सन्नद्धहस्तिरत्नारूढ चण्डप्रद्योत प्रजिहीर्षु मण्डल्या

पन्नत्ता त जहा–"अवट्ठिए" इत्यादि + + + तत्र जलथलयभासुरपभूएण विंटट्ठाइणा दसद्धवन्नेण कुसुमेण जाणुस्सेहप्पमाणमित्ते पुप्फोवयारे किज्जइ" इति ॥ ३१ ॥ पुन' आवश्यकचूर्णि: (२५७ पत्रे) यथा "सघलोए अरिहतचेइआइ वदणवत्तिआए" इत्यादि, अस्य व्याख्या–"न केवल चउवीसाए (जेवि) जाव सघलोए सिद्धादी अरिहता चेइआणि अ तेर्सि चेव प्रतिकृतिलक्षणानि, 'चिती संज्ञाने', संज्ञान उत्पद्यते काष्ठकर्मादिषु प्रतिकृतिं दृष्ट्वा यथा अरिहतपडिमा एसा इति, अण्णे भणति अरहता–तित्थगरा तेर्सि चेइआणि अरहंतचेइआणि आर्हत्प्रतिमा इत्यर्थः, तेर्सि वन्दनादिप्रत्यय 'ठामि काउस्सग्ग' इति योगः, तत्र वन्द्यत्वात् तेषां वन्दनार्थं कायोत्सर्गं करोमि" इत्यादि ॥ ३२ ॥ श्रीदशाश्रुतस्कन्धनिर्युक्तौ २४२ पत्रेऽपि यथा–"वोहिण पडिमा उदयण–पभावई उप्पायदेवदत्ताहे। मरणुववायतावस–नयण तह भीसणा समणी ॥ १ ॥ गधारगिरी–देवय–पडिमा गुलिआगिलाण पडिअरणे। पज्जोअहरणपुक्खर–करण गहणामओ सयणा ॥ २ ॥" इति ॥ ३३ ॥ पुन श्रूयता ( श्रीप्रश्नव्याकरणसूत्रे ८५ पत्रे )—

"विपुलमोहाभिभूअसन्ना, मेहुणमूल च सुवए तत्थ तत्थ वत्तपुव्वा सगामा जणक्खयकरा सीआए १ दोवईए २ रुप्पिणीए ३ पउमावईए ४ ताराए ५ कचणाए ६ रत्तसुभद्दाए ७ अहिल्लिआए ८ सुवण्णगुलिआए ९ किन्नरीए १० सुरुवविज्जुमईए ११ रोहिणीए १२ य, अन्नेसु अ एवमाइएसु बहवो महिलाकएसु सुव्वति" इति श्रीप्रश्नव्याकरणसूत्रसन्दर्भात्, प्रभावत्या' दास्याः देवदत्ताभिधानाया' सुवर्णगोलका इति नाम जात, तत्र प्रतिमाव्यतिकर एव पूर्वदशाश्रुतस्कन्धनिर्युक्तिलिखितो हेतुः, नाऽन्यः, तत्सम्बन्धः तद्वृत्तिगतो (८९ पत्रे) विस्तरेण यथा–"सिन्धुसौवीरेषु जनपदेषु विदर्भकनगरे

यथा श्रीउपदेशमालासूत्रे[प्रकरणे]–"गाहाण सवग, पञ्चसया चेव चालीसा" इति उक्त, पर प्रान्त्यगाथा तद्व्यतिरिक्ताऽस्ति एव अत्राऽपि ज्ञेय ॥ १९ ॥

॥ इति जिनप्रतिमापूजाधिकारः ॥ १९ ॥

ननु–पूजनीया जगति ज्ञानाद्यो गुणाः, तद्योगात् तद्वानपि विद्यमानतीर्थङ्करवत्, पर जिनप्रतिमा तु काष्ठपाषाणादिमयी अचेतना च, ततो ज्ञानादिगुणराहित्येन कथङ्कार पूजार्हा जिनप्रतिमा काष्ठादिपुत्तलकवत् ? अत्र उच्यते—सत्य, परं श्रूयता परमार्थः–

"नामजिणा जिणनामा १, ठवणजिणा जिणवरिंदपडिमाओ २ । दव्वजिणा जिणजीवा ३, भावजिणा समवसरणत्था[त्था] ४ ॥ १ ॥ इति श्रीआवश्यकनिर्युक्तौ श्रीभद्रबाहुस्वामीवचनात् जिनप्रतिमास्थापनाजिन, तद्दर्शने च सति समवसरणादिस्थो भावजिनः स्मृतिं आयाति, तत्स्मृतौ च तद्गुणचिन्तने चाऽनन्तो लाभः सम्प्रविपद्यते, सद्य दुर्गतिनाश सुगतिप्राप्तिश्चाऽपि भवेतामिति, अत्राऽर्थे दृष्टान्तो यथा–भगवता उक्त–'भो साधो! त्व चित्रलिखितनारीं मा द्राक्षीः, तद्दर्शने नारी स्मृतिं आयास्यति, तत्स्वरूपचिन्तने च दुर्गतौ पात स्यात्, यदुक्त श्रीदशवैकालिकसूत्रे ( २३६ पत्रे )–

"चित्तभित्तिं न निज्झाए, नारिं वा सुअलंकिअं । भक्खर पिव दट्ठूण, दिट्ठिं पडिसमाहरे ॥ ५५ ॥" इति ।' ततो यथा चित्रनारीदर्शने अशुभपरिणाम प्रादुर्भवति तथा जिनप्रतिमादर्शने शुभपरिणामो जायते समानयुक्तित्वात् सगतिं अङ्गति च एतत्, पुनरपि श्रूयता उपासकदशादौ ( १२ पत्रे ), "अन्नउत्थियदेवयाणि वा" इत्यादि उक्तत्वात्, हरिहरप्रमुखमिथ्यात्विदेव–

श्रमन्त चलनतलशरव्यथितहस्तिनो भुवि निपातनेन वशीकृतवान्, 'दासीपतिः' इति ललाटपट्टे मयूरपिच्छेन अङ्कितवान् इत्यादि ॥ ३४ ॥ पुनः भक्तप्रतिज्ञाप्रकीर्णके ( २१ पत्रे ) जिनभवनजिनबिम्बप्रतिष्ठा प्रतिपादिताऽस्ति, तथाहि–

"अनियाणोदारमणो, हरिसवसविसट्टकञ्चुयकरालो । पूएइ गुरु सघ, साहम्मिअमाइ भत्तीए ॥ ३० ॥ निअदव्वम-पुव्वजिणि–दभवणजिणबिंबवरपइट्ठासु । विअरइ पसत्थपोत्थय–सुतित्थतित्थयरपूआसु ॥ ३१ ॥" न च इद वक्तव्य अत्र–

अहो ! (३१ पत्रे) "सत्तरिसय जिणाण, व गाहाण समयखित्तपन्नत्त । आराहतो विहिणा, सासयसुक्ख लहइ मुक्ख ॥ १ ॥" इति उक्तत्वेन अत्र प्रकीर्णके सप्ततिगाथासख्या उक्ताऽस्ति, अनिआणेत्यादिगाथाद्वये सति द्वासप्ततिगाथा भवन्ति, तत इद गाथाद्वय केनाऽपि नव्य कृत्वा मध्ये क्षिप्त अस्तीति न मानयामि इति, युक्तियुक्तत्वात्, कथ इत्याह–अरे ! शृणु, इद गाथाद्वय प्रतिमोत्थापकमतप्रादुर्भावात् पूर्वं कृतं पश्चाद्वा ? न तावत्पूर्वं, प्रयोजनमन्तरेण पूर्वं तत्करणस्य असगतत्वात् नाऽपि पश्चात्, यतः प्रतिमोत्थापकमत त्रिंशदधिकपञ्चदशशत १५३० वर्षे प्रादुर्भूत, तन्मतसवत्प्राक्लिखितासु भक्त-प्रतिज्ञाप्रकीर्णकप्रतिषु ( २४ पत्रे ) सर्वत्र तद्गाथाद्वयस्य दर्शनात्, अपि चाऽस्मिन्नेव भक्तप्रज्ञाप्रकीर्णके–

"अरिहतसिद्धचेइअ–पवयणआयरिअसव्वसाहूसु । [तिव] तित्थकरेसु भत्तिं, तिगरणसुद्धेण भावेण ॥ १ ॥" इति गाथा वर्तते, तस्याः का वार्ता ? अत्राऽपि चैत्यभक्तिः प्रतिपादिताऽस्ति, पुनः सख्यासकलनविचार' श्रूयता—अत्र गाथा-द्वयवर्धनेऽपि न सख्या विघटेत, यत. प्रथमान्त्यगाथयोः तद्विचाराभावात्, तद्विचारप्रतिपादिका गाथा सप्तति एव,

यथा श्रीउपदेशमालासूत्रे[प्रकरणे]–"गाहाण सवग, पचसया चेव चालीसा" इति उक्त, पर प्रान्त्यगाथा तद्व्यतिरिक्ताऽस्ति एव अत्राऽपि ज्ञेय ॥ ३९ ॥

॥ इति जिनप्रतिमापूजाधिकारः ॥ ३९ ॥

ननु–पूजनीया जगति ज्ञानादयो गुणाः, तद्योगात् तद्वानपि विद्यमानतीर्थङ्करवत्, पर जिनप्रतिमा तु काष्ठपाषाणादिमयी अचेतना च, ततो ज्ञानादिगुणराहित्येन कथङ्कार पूजार्हा जिनप्रतिमा काष्ठादिपुत्तलकवत् ? अत्र उच्यते—सत्य, पर श्रूयता परमार्थः–

"नामजिणा जिणनामा १, ठवणजिणा जिणवरिंदपडिमाओ २ । दव्वजिणा जिणजीवा ३, भावजिणा समवसरणत्था[त्था] ४ ॥ १ ॥ इति श्रीआवश्यकनिर्युक्तौ श्रीभद्रबाहुस्वामीवचनात् जिनप्रतिमास्थापनाजिनः, तद्दर्शने च सति समवसरणादिस्थो भावजिनः स्मृतिं आयाति, तत्स्मृतौ च तद्गुणचिन्तने चाऽनन्तो लाभः समुत्पद्यते, सद्यः दुर्गतिनाश सुगतिप्राप्तिश्चाऽपि भवेतामिति, अत्राऽर्थे दृष्टान्तो यथा–भगवता उक्त–'भो' साधो ! त्व चित्रलिखितनारीं मा द्राक्षी , तद्दर्शने नारी स्मृतिं आयास्यति, तत्स्वरूपचिन्तने च दुर्गतौ पातः स्यात्, यदुक्त श्रीदशवैकालिकसूत्रे ( २३६ पत्रे )–

"चित्तभित्तिं न निज्झाए, नारिं वा सुअलकिअ । भक्खर पिव दट्ठूण, दिट्ठिं पडिसमाहरे ॥ ५५ ॥" इति ।' ततो यथा चित्रनारीदर्शने अशुभपरिणाम प्रादुर्भवति तथा जिनप्रतिमादर्शने शुभपरिणामो जायते समानयुक्तित्वात् सगतिं अञ्चति च एतत्, पुनरपि श्रूयता उपासकदशादौ ( १२ पत्रे ), "अन्नउत्थियदेवयाणि वा" इत्यादि उक्तत्वात्, हरिहरप्रमुखमिथ्यात्विदेव–

भ्रमन्त चलनतलशरन्यपितहस्तिनो भुवि निपातनेन वशीकृतवान्, 'दासीपतिः' इति ललाटपट्टे मयूरपिच्छेन अङ्कितवान् इत्यादि ॥ ३४ ॥ पुनः भक्तप्रतिज्ञाप्रकीर्णके ( २१ पत्रे ) जिनभवनजिनबिम्बप्रतिष्ठा प्रतिपादिताऽस्ति, तथाहि–

"अनियाणोदारमणो, हरिसवसविसट्टकचुयकरालो । पूएइ गुरु सघ, साहम्मिअमाइ भत्तीए ॥ ३० ॥ निअदव्वम-पुव्वजिणिं–दभवणजिणबिंबवरपइट्ठासु । विअरइ पसत्यपोत्यय–सुतित्थतित्थयरपूआसु ॥ ३१ ॥" न च इद वक्तव्य अत्र—अहो ! (२१ पत्रे) "सत्तरिसय जिणाण, व गाहाण समयखित्तपन्नत्तं । आराहतो विहिणा, सासयसुक्ख लहइ मुक्ख ॥ १ ॥" इति उक्तत्वेन अत्र प्रकीर्णके सप्ततिगाथासख्या उक्ताऽस्ति, अनिआणेत्यादिगाथाद्वये सति द्वासप्ततिगाथा भवन्ति, तत इदं गाथाद्वय केनाऽपि नव्य कृत्वा मध्ये क्षिप्त अस्तीति न मानयामि इति, युक्तियुक्तत्वात्, कथ इत्याह–अरे ! शृणु, इद गाथाद्वय प्रतिमोत्थापकमतप्रादुर्भावात् पूर्व कृत पश्चाद्वा ? न तावत्पूर्व, प्रयोजनमन्तरेण पूर्व तत्करणस्य असगतत्वात् नाऽपि पश्चात्, यतः प्रतिमोत्थापकमत त्रिंशदधिकपञ्चदशशत १५३० वर्षे प्रादुर्भूत, तन्मतसवत्प्राक्लिखितासु भक्त-प्रतिज्ञाप्रकीर्णकप्रतिषु ( २४ पत्रे ) सर्वत्र तद्गाथाद्वयस्य दर्शनात्, अपि चाऽस्मिन्नेव भक्तप्रज्ञाप्रकीर्णके–

"अरिहतसिद्धचेइअ–पवयणआयरिअसव्वसाहूसु । [तिव्व] तित्थकरेसु भत्तिं, तिगरणसुद्धेण भावेण ॥ १ ॥" इति गाथा वर्तते, तस्याः का वार्ता ! अत्राऽपि चैत्यभक्तिः प्रतिपादिताऽस्ति, पुन सख्यासकलनविचार' श्रूयता—अत्र गाथा-द्वयवर्धनेऽपि न सख्या विघटेत, यतः प्रथमान्त्यगाथयोः तद्विचाराभावात्, तद्विचारप्रतिपादिका गाथा सप्तति एव,

यथा श्रीउपदेशमालासूत्रे[प्रकरणे]–"गाहाण सवग, पचसया चेय चालीसा" इति उक्त, परं प्रान्त्यगाथा तद्व्यतिरिक्ताऽस्ति एष अत्राऽपि ज्ञेय ॥ ३९ ॥

॥ इति जिनप्रतिमापूजाधिकारः ॥ ३९ ॥

ननु–पूजनीया जगति ज्ञानादयो गुणाः, तद्योगात् तद्वानपि विद्यमानतीर्थङ्करवत्, पर जिनप्रतिमा तु काष्ठपाषाणाविमयी अचेतना च, ततो ज्ञानादिगुणराहित्येन कथङ्कार पूजार्हा जिनप्रतिमा काष्ठादिपुत्तलकवत् ? अत्र उच्यते—सत्य, पर श्रूयतां परमार्थः–

"नामजिणा जिणनामा १, ठवणजिणा जिणवरिंदपडिमाओ २। दव्वजिणा जिणजीवा ३, भावजिणा समवसरणत्था[त्था] ४ ॥ १ ॥ इति श्रीआवश्यकनिर्युक्तौ श्रीभद्रबाहुस्वामीवचनात् जिनप्रतिमास्थापनाजिन, तद्दर्शने च सति समवसरणादिस्थो भावजिनः स्मृतिं आयाति, तत्स्मृतौ च तद्गुणचिन्तने चाऽनन्तो लाभः सम्प्रतिपद्यते, सद्य दुर्गतिनाश सुगतिप्राप्तिश्चाऽपि भवेतामिति, अत्राऽर्थे दृष्टान्तो यथा–भगवता उक्त–'भो साधो! त्व चित्रलिखितनारीं मा द्राक्षीः, तद्दर्शने नारी स्मृतिं आयास्यति, तत्स्वरूपचिन्तने च दुर्गतौ पात स्यात्, यदुक्त श्रीदशवैकालिकसूत्रे (२३९ पत्रे)–

"चित्तभित्तिं न निज्झाए, नारिं वा सुअलंकिअं। भक्खर पिव दट्ठूण, दिट्ठिं पडिसमाहरे ॥ ५५ ॥" इति।' ततो यथा चित्रनारीदर्शने अशुभपरिणाम प्रादुर्भवति तथा जिनप्रतिमादर्शने शुभपरिणामो जायते समानयुक्तित्वात् सगतिं अङ्गति च एतत्, पुनरपि श्रूयता उपासकदशादौ (१२ पत्रे), "अन्नउत्थियदेवयाणि वा" इत्यादि उक्तत्वात्, हरिहरप्रमुखमिथ्यात्विदेव–

प्रयच्छन्ति, तृषितस्य पानीय पाययन्ति, न च साधवः, तेषा भगवता निवारितत्वात् । अन्यद् दूरे तिष्ठतु, कोऽपि धीवरः वदति "भोः साधो ! यदि त्व मम रोट्टिकां ( अपूपिकां )ददासि तदाऽहं मत्स्यजालं मुञ्चामि" तथापि साधवः [illegible] तन्मोचयेत्, अपि च पुष्पादिभिः साधवः पूजा न कुर्वन्ति, सचित्तस्पर्शने तेषा अनधिकारात्, परं पुष्पादिभि भगवत्पूजातो यत् पुण्य जायते तद् इच्छन्ति, यदुक्त "वंदणवत्तिआए पूअणवत्तिआए सक्कारवत्तिआए सम्माणवत्तिआए" इत्यादि, तथा पुन' श्रीआचाराङ्गद्वितीयश्रुतस्कन्धे प्रान्ते तृतीयचूलायां ( ३८५ पत्रे ) भगवता महता महेना जन्मादिस्थान-भुवोऽपि वन्द्यत्वेन उक्ता' सन्ति, तथाहि–

"जम्माभिसेअनिक्खम–ण चरणनाणुप्पया य निव्वाणे । दिअलोअभवणमंदर–नंदीसरभोमनगरेसु ॥ ३३४ ॥ अट्ठा-वयमुज्जिंते, गयग्गपयए अ धम्मचक्के अ । पासरहावत्तनगं, चमरुप्पायं च वंदामि ॥ ३३५ ॥" व्याख्या–"तीर्थंकृता जन्मभूमिषु तथा निष्क्रमण–चरण–ज्ञानोत्पत्तिनिर्वाणभूमिषु तथा देवलोकभवनेषु मन्दरेषु तथा नन्दीश्वरद्वीपादौ भौमेषु च पातालभवनेषु यानि शाश्वतानि चैत्यानि तानि वन्देऽहं इति द्वितीयगाथाया अन्ते क्रिया इति, एव अष्टापदे तथा श्रीमदुज्जयन्तगिरौ, गजाग्रपदे दशार्णकूटवर्तिनि तथा तक्षशिलायां धर्मचक्रे, तथा अहिच्छत्रायां पार्श्वनाथस्य धर-णेन्द्रमहिमास्थाने, एव रथावर्ते पर्वते वैरस्वामिना यत्र पादोपगमन कृत, यत्र च श्रीमद्वर्धमान आश्रित्य चमरेन्द्रेण उत्प-तनं कृत, एतेषु स्थानेषु यथासंभव अभिगमनवन्दनपूजनोत्कीर्तनादिकाः क्रियाः कुर्वतो दर्शनशुद्धि' भवति इति"। यथा भगवतीसूत्रे ( ३ पत्रे ) आदौ एव श्रीसुधर्मस्वामिगणधरदेवेन अचेतनाया अपि ब्राह्मीलिपे प्रणाम कृतोऽस्ति,

तथाहि-"नमो अरिहंताणं नमो सिद्धाणं नमो आयरियाणं नमो उवज्झायाणं नमो लोए सव्वसाहूणं (५ पत्रे) णमो बंभीए लिवीए" इति, अर्थोऽपि अयं श्रीअभयदेवसूरिकृतवृत्तिगतः-लिपिः पुस्तकादौ अक्षरविन्यासः, सा च अष्टादश-प्रकाराऽपि श्रीमन्नाभेयजिनेन स्वसुताया ब्राह्मीनामिकाया दर्शिता, ततो ब्राह्मी इति अभिधीयते, आह च-"लेहं लिवी-विहाणं, जिणेण बंभीइ दाहिण करेणं" इति, अतो 'ब्राह्मी' इति स्वरूपविशेषणं लिपेः इति, तदाऽत्र ब्राह्मीलिपेः यो वेत्ता तस्मै नमस्कारो भविष्यति इति अर्थान्तरं कार्यं, तस्य सर्वथाविरुद्धत्वात्, कथं ? इत्याह-श्रूयतां, नमो ब्राह्मीलिपेः यो वेत्ता तस्मै इति अर्थे क्रियमाणे दूषणत्रयं, कथं ? एकं तु वेत्तीति पदं सूत्रे नाऽस्ति, अर्थकरणे कुतः आनीतं ? १, द्वितीयं तु व्याकरणादिषु असंगतिः २, तृतीयं तु तस्याः वेत्ता कः साधुः श्रावको वा ? नाऽऽद्य पक्षः, यतः तस्य अर्हदादिपञ्च-कान्यतरत्वेन पूर्वं उक्तत्वात् पुनरुक्तदोषपोषस्य प्रसंगात्, नाऽपि श्रावकः, तस्य नमस्कारकरणे सुधर्मस्वामिनोऽनुचि-तत्वेन असंभवात्, तत उभयथाऽपि विरुद्धत्वात् इदं नमस्कारकरणं न श्रेयस्करं इति। पुनः 'नमो बंभीए' इति वाक्यस्य अर्थे व्यक्तिः, श्रीसमवायाङ्गसूत्रतो ज्ञेया। पुनः श्रीभद्रबाहुस्वामिना दशधा स्थापना श्रीओघनिर्युक्तिसूत्रे (१२८ पत्रे) प्रोक्ताऽस्ति, तत्र गाथा-

'अक्खे १ वराडए वा २ कट्ठे ३ पोत्थे ४ य चित्तकम्मे वा ५। सब्भावमसब्भावा, ठवणापिंडं वियाणाहि ॥ ३३४ ॥ व्याख्या-स्थापना द्विविधा-सद्भावस्थापना असद्भावस्थापना चेति, तत्र अक्षविषया सद्भावस्थापना असद्भावस्थापना च भवति। कथं ? यदा एक एव अक्षः पिण्डकल्पनया बुद्ध्या कल्प्यते तदा असद्भावस्थापना, यत्र पुनः

ते एव अक्षाः त्रिप्रभृतय एकत्र स्थाप्यन्ते तदा सद्भावस्थापना, एव वराटकेषु १ कपर्दकेषु २ तथा काष्ठकर्मणि ३ वा इति । यदा एक एव काष्ठ पिण्डः एष इत्येवं कल्प्यते तदा असद्भावस्थापना, यदा तु एकत्र बहूनि मिलितानि पिण्डत्वेन कल्प्यन्ते तदा सद्भावस्थापना, एव 'पुस्ते' [ पीठछिकादौ ] पुत्तलिकादिषु अपि, एव चित्रकर्मणि अपि, यदा एकचित्रकर्मणि पुत्तलपिण्ड इति स्थाप्यते तदा असद्भावपिण्डस्थापना, यदा त्रिप्रभृतिपिण्डबुद्ध्या कल्प्यते तदा सद्भावस्थापना, एव सद्भावपिण्ड असद्भावपिण्ड च जानीहि । इत्यादि स्थापनापिण्डाधिकारे । पुनः श्रीअनुयोगद्वारसूत्रे ( १२ पत्रे ) स्थापनावश्यक यथा ॥

"से किं तं ठवणावस्सय ? ठवणावस्सय २ जण्ण कट्ठकम्मे वा १ चित्तकम्मे वा २ पोत्थकम्मे वा ३ लेप्पकम्मे वा ४ गंथिमे वा ५ वेढिमे वा ६ पूरिमे वा ७ संघाइमे वा ८ अक्खे वा ९ वराडए वा १० एगो वा अणेगो वा सब्भावठवणा वा असब्भावठवणा वा आवस्सएत्ति ठवणा ठविज्जइ से त ठवणावस्सय ( सूत्र १० )" इति, एतद्व्याख्या-एतवृत्तितो ज्ञेया, पुनः विचार्यता मनोमते रे ! तव नूतनम् मत त्रिंशदधिकपञ्चदशशतवर्षे १५३० प्रवर्तित, पर काऽपि वा अतिपुरातनाः सन्ति, तत्र तत्र लिखितप्रशस्तिसंवत् एव प्रतिभूः । पुना रामसैन्यग्रामे अपि अतिजीर्णा श्रीऋषभदेवप्रतिमा प्रादुर्भूताऽस्ति, एवं शतशः स्थाने स्थाने शतशः प्रतिमा इति । पुन श्रीदशाश्रुतस्कन्धे स्थविरावल्यां श्रीभद्रबाहुस्वामिना देवर्द्धिगणिक्षमाश्रमणपर्यन्ता भाविनः साधवो वन्दिताः सन्ति, यस्मिन् अवसरे वन्दिताः तदवसरे ते छद्मस्थाः

तीर्थे श्रूयते श्रीवत्स्वामिप्रतिमा, पुनः घङ्खाणीनामग्रामे सांप्रतमेव भूमिगृहाद् बह्व्यो पुरातन्यो जिनप्रतिमाः प्रकटीबभूवुः

चतुर्गतिवर्तमाना। । ननु–भावश्रमणाः काऽभूवन् ? ततो भाविजिना अपि द्रव्यजिना इति हेतोः नमस्कारार्हा, तथा स्थापनायाः रूपार्हत्वात् भावार्हद्वत् जिनप्रतिमाऽपि पूजनीया इति रहस्य, पुनरपि पिण्डनिर्युक्तौ तद्वृत्तौ च ( ५ पत्रे ) पिण्डस्थापनाया एव स्वरूपं, तथाहि–"ठवणापिंड अतो वोच्छ" तत्समर्थयमानः स एव आह–

"अक्खे १ वराडए वा २, कट्ठे ३ पोत्थे ४ व चित्तकम्मे वा ५। सब्भाव ६ मसब्भाव ७, ठवणापिंड वियाणाहि ॥ ७ ॥" व्याख्या–सत इव=विद्यमानस्य इव भावः सत्ता=सद्भावः, किं उक्तं भवति ?–स्थाप्यमानस्य इन्द्रादेः अनुरूपाङ्गोपाङ्गचिह्नवाहनप्रहरणादिपरिकररूपो य आकारविशेषो यद्दर्शनात् साक्षाद् विद्यमान इव इन्द्रादिः लक्ष्यते स सद्भावः, तदभावो असद्भावः, तत्र सद्भाव असद्भाव च आश्रित्य अक्षे–चन्दनके वराटके–कपर्दके, वाशब्दोऽङ्गुलीयकादिसमुच्चयार्थः, उभयत्राऽपि च जातौ एकवचन, तथा काष्ठे–दारुणि पुस्ते=ढिगल्लिकादौ, वाशब्दो लेप्यपाषाणसमुच्चये, चित्रकर्मणि वा या पिण्डस्य स्थापना साऽक्षादिः, काष्ठादिषु आकारविशेषो वा पिण्डत्वेन स्थाप्यमान स्थापनापिण्ड, इय अत्र भावना–यदा काष्ठे लेप्ये उपले चित्रकर्मणि वा प्रभूतद्रव्यसश्लेषरूपः पिण्डाकार साक्षाद् विद्यमान इव आलिख्यते, यद्वा अक्षाः कपर्दकाः अङ्गुलीयकादयो वा एकत्र सश्लेष्यपिण्डत्वेन स्थाप्यन्ते यथा एष पिण्ड स्थापित इति, तदा तत्र पिण्डाकारस्य उपलभ्यमानत्वात् सद्भावतः पिण्डस्थापना, यदा तु एकस्मिन् अक्षे वराटके अङ्गुलीयके वा पिण्डत्वेन स्थापना एष पिण्डो मया स्थापित इति, तदा तत्र पिण्डाकारस्य अनुपलभ्यमानत्वात्, अक्षादिगतपरमाणुसङ्घातस्य च अविवक्षणाद् असद्भावतः पिण्डस्थापना, चित्रकर्मणि अपि यदा एकबिन्द्वालिखनेन पिण्डस्थापना, यथा एष पिण्ड

आलिखित इति विवक्षा तदा प्रभूतद्रव्यसंश्लेषाकारादर्शनात् असद्भावपिण्डस्थापना, यदा पुनः एकबिन्द्वालिखनेऽपि एष मया गुडपिण्डः ओदनपिण्डः सक्तुपिण्डो वा आलिखित इति विवक्षा तदा सद्भावतः पिण्डस्थापना ॥ अमुं एव सद्भावासद्भावस्थापनाविभाग भाष्यकृद् उपदर्शयति—

"इक्को व असब्भावे, तिण्ह ठवणा उ होइ सब्भावे । चित्तेसु असब्भावे, दारुमलेप्पोवले सियरो ॥ ७ ॥"

व्याख्या—एकोऽक्षो वराटकोऽङ्गुलीयकादिः वा यदा पिण्डत्वेन स्थाप्यते तदा सा पिण्डस्थापना, 'असद्भावे' असद्भावविषया, असद्भाविकी इत्यर्थः ॥

तत्र पिण्डाकृतेः अनुपलभ्यमानत्वात्, अक्षादिगतपरमाणुसङ्घातस्य च अविवक्षणात् । यदा तु त्रयाणा अक्षाणा वराटकानां अङ्गुलीयकादीना वा परस्परं एकत्र संश्लेषकरणेन पिण्डत्वेन स्थापना तदा सा पिण्डस्थापना, 'सद्भावे' सद्भाविकी, तत्र पिण्डाकृतेः उपलभ्यमानत्वात्, त्रयाणां चेति उपलक्षणं, तेन द्वयोः अपि बहूना च इत्यपि द्रष्टव्य । तथा 'चित्रेषु'—चित्रकर्मसु यदा एकबिन्द्वालिखनेन पिण्डस्थापना तदा साऽपि असद्भावे, यदा तु चित्रकर्मसु अपि अनेकबिन्दुसंश्लेषालिखनेन प्रभूतद्रव्यसङ्घातात्मकपिण्डस्थापना तदा सा सद्भावस्थापना, पिण्डाकृते तत्र दर्शनात् । तथा दारुकलेप्योपलेषु पिण्डाकृतिसंपादनेन या पिण्डस्य स्थापना स 'इतरः' सद्भावस्थापनापिण्डः, तत्र पिण्डाकारस्य दर्शनात् ॥ तद् एवं उक्तः स्थापनापिण्डः इति ॥ ४० ॥

॥ इति जिनप्रतिमास्थापना जिन-इत्यधिकारः ॥ ४० ॥

ननु-जिनप्रतिमापूजायाः फलं किं? का च जिनप्रतिमापूजकस्य गतिः?, तद् आगमाक्षरैः दर्शयतु, उच्यते—यदेव विद्यमानतीर्थङ्करस्य वन्दनपूजादिफलं तदेव जिनप्रतिमापूजाया अपि फलं सा एव गतिश्चाऽपि, श्रीराजप्रश्नीयोपाङ्गे ( १७ पत्रे ) विद्यमानतीर्थङ्करस्य वन्दनादिफलं यथा "तं महाफलं खलु देवाणुप्पियाणं तहारूवाणं अरहंताणं भगवंताणं नामगोअस्स वि सवणयाए? किमंग! पुण अभिगमणवंदणनमंसणपडिपुच्छणपज्जुवासणयाए! तं सेयं खलु एगस्स वि आयरिअस्स धम्मिअस्स सुवयणस्स सवणयाए किमंग! पुण विउलस्स अट्ठस्स गहणयाए? तं गच्छामि [ गच्छामो ] णं देवाणुप्पिय समणं भगवं महावीरं वंदामि नमंसामि सक्कारेमि सम्माणेमि कल्लाणं मंगलं चेइयं देवयं पज्जुवासामि, एअं मे पिच्चा हिआए सुहाए खमाए निस्सेयसाए आणुगामियत्ताए भविस्सति त्तिकट्टु एवं संपेहेइ' इत्यादि ॥ १ ॥ एवमेव श्रीविपाकसूत्रे चम्पानगर्यां श्रीमहावीरसमवसरणे श्रीमहावीरदेवस्य वन्दनादिफलं, तथाहि-"एतेणं पेच्चभवे हिआए सुहाए खमाए निस्सेयसाए आणुगामिअत्ताए भविस्सति त्तिकट्टु" इत्यादि ॥ २ ॥ इत्थमेव श्रीभगवतीसूत्रादौ सर्वत्र ज्ञेयं। अथ जिनप्रतिमापूजायाः फलं श्रीराजप्रश्नीयोपाङ्गे ( ९८ पत्रे ) प्रोक्तं तन्निशम्यतां, तथाहि-"तए णं तस्स सूरिआभस्स देवस्स पंचविहाए पज्जत्तीए पज्जत्तीभावं गयस्स समाणस्स इमेयारूवे [ अज्झत्थिए ] अब्भत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुपज्जित्था-किं मे पुव्विं करणिज्जं? किं मे पच्छा करणिज्जं? किं मे पुव्विं सेयं? किं मे पच्छा सेयं? किं मे पुव्विं पि पच्छावि करणिज्जं? किं मे पुव्विं पि पच्छा वि हिआए सुहाए खमाए निस्सेयसाए आणुगामिअत्ताए भविस्सइ? तए णं तस्स सूरिआभस्स देवस्स सामाणिअपरिसोववण्णगा देवा सूरिआभस्स

आलिखित इति विवक्षा तदा प्रभूतद्रव्यसंश्लेषाकारादर्शनात् असद्भावपिण्डस्थापना, यदा पुनः एकबिन्द्वालिखनेऽपि एष मया गुडपिण्डः ओदनपिण्डः सक्तुपिण्डो वा आलिखित इति विवक्षा तदा सद्भावतः पिण्डस्थापना ॥ अमुं एव सद्भावासद्भावस्थापनाविभाग भाष्यकृत् उपदर्शयति—

"इक्को उ असब्भावे, तिण्ह ठवणा उ होइ सब्भावे । चित्तेसु असब्भावे, दारुअलेप्पोवले सियरो ॥ ७ ॥"

व्याख्या-एकोऽक्षो वराटकोऽङ्गुलीयकादिः वा यदा पिण्डत्वेन स्थाप्यते तदा सा पिण्डस्थापना, 'असद्भावे' असद्भावविषया, असद्भाविकी इत्यर्थः ॥

तत्र पिण्डाकृतेः अनुपलभ्यमानत्वात्, अक्षादिगतपरमाणुसङ्घातस्य च अविवक्षणात् । यदा तु त्रयाणां अक्षाणां वराटकानां अङ्गुलीयकादीनां वा परस्परं एकत्र संश्लेषकरणेन पिण्डत्वेन स्थापना तदा सा पिण्डस्थापना, 'सद्भावे' सद्भाविकी, तत्र पिण्डाकृतेः उपलभ्यमानत्वात्, त्रयाणां चेति उपलक्षण, तेन द्वयो अपि बहूना च इत्यपि द्रष्टव्य । तथा 'चित्रेषु'-चित्रकर्मसु यदा एकबिन्द्वालिखनेन पिण्डस्थापना तदा साऽपि असद्भावे, यदा तु चित्रकर्मसु अपि अनेकबिन्दुसंश्लेषालिखनेन प्रभूतद्रव्यसङ्घातात्मकपिण्डस्थापना तदा सा सद्भावस्थापना, पिण्डाकृतेः तत्र दर्शनात् । तथा दारुकलेप्योपलेषु पिण्डाकृतिसंपादनेन या पिण्डस्य स्थापना स 'इतरः' सद्भावस्थापनापिण्डः, तत्र पिण्डाकारस्य दर्शनात् ॥ तद् एवं उक्तः स्थापनापिण्डः इति ॥ ४० ॥

॥ इति जिनप्रतिमास्थापना-जिन-इत्यधिकारः ॥ ४० ॥

ननु–जिनप्रतिमापूजायाः फल किं? का च जिनप्रतिमापूजकस्य गतिः ?, तद् आगमाक्षरैः दर्शयतु, उच्यते—यदेव विद्यमानतीर्थङ्करस्य वन्दनपूजादिफलं तदेव जिनप्रतिमापूजाया अपि फल सा एव गतिश्चाऽपि, श्रीराजप्रश्नीयोपाङ्गे ( १७ पत्रे ) विद्यमानतीर्थङ्करस्य वन्दनादिफल यथा "त महाफल खलु देवाणुप्पियाण तहारूवाण अरहंताण भगवंताणं नामगोअस्स वि सवणयाए ? किमंग ! पुण अभिगमणवंदणनमंसणपडिपुच्छणपज्जुवासणयाए ! त सेय खलु एगस्स वि आयरिअस्स धम्मिअस्स सुवयणस्स सवणयाए किमंग ! पुण विउलस्स अट्ठस्स गहणयाए ? त गच्छामि [ गच्छामो ] णं देवाणुप्पिय समण भगव महावीरं वदामि नमसामि सक्कारेमि सम्माणेमि कल्लाण मंगल चेइयं देवय पज्जुवासामि, एअ मे पिच्चा हिआए सुहाए खमाए निस्सेयसाए आणुगामियत्ताए भविस्सति त्तिकट्टु एवं संपेहेइ' इत्यादि ॥ १ ॥ एवमेव श्रीविपाकसूत्रे चम्पानगर्यां श्रीमहावीरसमवसरणे श्रीमहावीरदेवस्य वन्दनादिफल, तथाहि–"एतेण पेच्चभवे हिआए सुहाए खमाए निस्सेयसाए आणुगामिअत्ताए भविस्सति त्तिकट्टु" इत्यादि ॥ २ ॥ इत्थमेव श्रीभगवतीसूत्रादौ सर्वत्र ज्ञेय । अथ जिनप्रतिमापूजाया फलं श्रीराजप्रश्नीयोपाङ्गे ( ९८ पत्रे ) प्रोक्तं तन्निशम्यता, तथाहि–"तए णं तस्स सूरिआभस्स देवस्स पंचविहाए पज्जत्तीए पज्जत्तीभावं गयस्स समाणस्स इमेयारूवे [ अज्झत्थिए ] अब्भत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुपज्जित्था–किं मे पुव्विं करणिज्ज ? किं मे पच्छा करणिज्ज ? किं मे पुव्विं सेयं ? किं मे पच्छा सेय ? किं मे पुव्विं पि पच्छावि करणिज्जं ? किं मे पुव्विं पि पच्छा वि हिआए सुहाए खमाए निस्सेयसाए आणुगामिअत्ताए भविस्सइ ? तए ण तस्स सूरिआभस्स देवस्स सामाणिअपरिसोववण्णगा देवा सूरिआभस्स

देयस्स इमेआरूवमज्मस्थिअं जाव समुप्पन्नं समभिजाणित्ता जेणेव सूरिआभे देवे तेणेव उवागच्छति, सूरिआभ देव करयलपरिग्गहिअं सिरसावत्तं मत्थए अञ्जलिं कट्टु जएण विजएणं वद्धावेति, वद्धावित्ता एव वयासी–एव खलु देवाणुप्पिआण सूरिआभे विमाणे सिद्धायतणंसि जिणपडिमाण जिणुस्सेहपमाणमित्ताणं अट्ठसय सन्निखित्त चिट्ठति, सभाए ण सुहम्माए माणवए चेइए खंभे वइरामएसु गोलवट्टसमुग्गएसु बहूओ जिणसकहाओ सन्निखित्ताओ चिट्ठति, ताओ ण देवाणुप्पिआणं अण्णेसिं च बहूण वेमाणियाणं देवाण य देवीण य अच्चणिज्जाओ जाव पज्जुवासणिज्जाओ, त एय णं देवाणुप्पिआणं पुव्विं करणिज्ज, त एय णं देवाणुप्पिआण पच्छा करणिज्ज तं एय ण देवाणुप्पियाण पुव्विं सेय, त एय ण देवाणुप्पियाणं पच्छा सेय, त एय ण देवाणुप्पिआण पुव्विं पि पच्छा वि हिआए सुहाए खमाए निस्सेयसाए आणुगामिअत्ताए भविस्सति"। पुनः श्रूयता देवपूजाफलं साधोः पञ्चमहाव्रतपालनस्य श्रीस्थानाङ्गे तृतीयस्थाने चतुर्थोद्देशके ( १७६ पत्रे ) मोक्षं, तदेव फल जिनप्रतिमापूजनस्याऽपि मोक्ष, तथाहि–

"तओ ठाणा अववसितस्स अहिताते असुभाते अखमाते अणिस्सेसाते अणाणुगामिअत्ताते भवति, तं–से णं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारिअं पव्वतिते निग्गथे पावयणे संकिते कंखिते वितिगिच्छिते भेदसमावन्ने कलुससमावन्ने निग्गथ पावयण णो सद्दहति णो पत्तियति णो रोएति, त परिस्सहा अभिजुंजिअ अभिजुंजिअ अभिभवति, नो से परिस्सहे अभिजुंजिअ अभिजुंजिअ अभिभवति" से णं मुंडे भवित्ता अगारातो अणगारितं पव्वतिते पंचहिं महव्वएहिं संकिते जाव कलुससमावन्ने पंचमहव्वताई नो सद्दहति जाव णो से परिस्सहे अभिजुंजिअ अभिजुंजिअ अभिभवति।

से णं मुंडे भवित्ता आगारातो अणगारिअं पव्वतिते छर्हि जीवनिकाएहिं निस्संकए [ किते ] जाय परिसहे अभिजुजिअ अभिजुंजिअ अभिभवति । णो त परिसहा अभिभवति ३ ॥"

व्याख्याऽपि यथा—अनन्तर मरणमुक्तं, मृतस्य तु जन्मान्तरे यथाविधस्य यद्वस्तु त्रय यस्मै संपद्यते तस्य तत्तस्मै दर्शयितु-माह—'तओ ठाणा इत्यादि' त्रीणि स्थानानि—प्रवचनमहाव्रतजीवनिकायलक्षणानि अव्यवसितस्य—अनिश्चयवतोऽपराक्रमवतो वाऽहिताय अपथ्याय—असुखाय—दु:खाय अक्षमाय—असंगतत्वाय अनिःश्रेयसाय—अमोक्षाय अननुगामिकत्वाय—अशुभानुबं-धाय भवन्ति। 'से ण'ति यस्य त्रीणि स्थानानि अहितादित्वाय भवन्ति। स शकितो—देशत' सर्वतो वा सशयवान्, काङ्क्षितस्त-थैव मतान्तरस्यापि साधुत्वेन मन्ता विचिकित्सितः—फल प्रति शङ्कोपेतः अत एव भेदसमापन्नो—द्वैधीभावमापन्न एवमिद न चैवमितिमतिकः, कलुषसमापन्नो—नैतदेवमितिप्रतिपत्तिकः । ततश्च निर्ग्रन्थानामिद नैर्ग्रन्थक, प्रशस्त प्रगत प्रथम वा वच-नमिति प्रवचन—आगमो दीर्घत्व प्राकृतत्वात्, न श्रद्धत्ते सामान्यतो न प्रत्येति—न प्रतीतिविषयी करोति न रोचयति—न चिकीर्षाविषयी करोति 'त'मिति य एवंभूतस्तं प्रव्रजिताभास परिसह्यन्ते इति परीषहा—क्षुधादय अभियुज्य अभि-युज्य—सम्बन्धमुपगत्य प्रतिस्पर्ध्य वा अभिभवन्ति—न्यक्कुर्वन्ति इति, शेष सुगम । उक्तविपर्ययसूत्र प्राग्वत्, किन्तु हित—प्रदोपकरं इह परत्र च आत्मनः परेषा च पथ्यान्नभोजनवत्, सुखं आनन्दः तृषितस्य शीतलपानमिव, क्षम उचित तथाविधव्याधिव्याघातकौषधपानमिव, निःश्रेयसं निश्चित श्रेय—प्रशस्य भावतः पचनमस्कारकरणमिव अनुगामिक अनु-गमनशीलं भास्वरद्रव्यजनितच्छायेवेति ॥ ४ ॥

पुनः श्रीपाक्षिकसूत्रेऽपि, तथाहि–"एस खलु पाणाइवायस्स वेरमणे हिए सुहे खमे निस्सेयसिए आणुगामिए" इत्यत्र इद रहस्य—पंचमहाव्रतपालनस्य यत् "हिआए सुहाए खमाए निस्सेसिआए आणुगामिआए" इत्यनेन फलमुक्त तदेव जिनप्रतिमापूजाया अपि फलमुक्त, पुनश्चैत्यस्य जिनप्रतिमारूपस्य वैयावृत्तिकरणे कर्म निर्जरारूपं फल श्रीमश्नव्याकरणे सवरद्वारे ( १२२ पत्रे ) प्रोक्तं, तथाहि–

"अथंत-बाल–दुबल–गिलाण वुड्ढखमके पवत्ति–आयरिअ–उवज्झाए सेहे साहम्मिए तवस्सी कुलगण संघ चेइअट्ठे अ निज्जरट्ठी वेयावच्चं अणिस्सियं दसविह बहुविह करेइ अ" अथ जिनप्रतिमापूजकस्य सूर्याभदेवस्य श्रीराजप्रश्नीयोपाङ्गे ( ४४ पत्रे ) श्रीमहावीरदेवेन या गतिरुक्ता ता श्रूयता, तथाहि–

"तए ण से सूरिआमे देवे समणस्स भगवओ महावीरस्स अतिए धम्मं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठ जाव हयहियए उट्ठाए उट्ठवि, उट्ठित्ता समणं भगवं महावीर वंदइ, नमसइ वंदित्ता नमसित्ता एव वयासी–अह णं भते ! सूरिआमे देवे किं भवसिद्धिए किं अभवसिद्धिए १ सम्मदिट्ठी मिच्छदिट्ठी ! २ परित्तसंसारिए अणंतससारिए ! ३ सुलभबोहिए दुलभबोहिए ! ४ आराहए विराहए ! ५ चरिमे अचरिमे ! ६ तए णं समणे भगवं महावीरे सूरिआभ देव एव वयासी–सूरिआभा ! तुमं णं भवसिद्धिए नो अभवसिद्धिए १ सम्मदिट्ठी नो मिच्छदिट्ठी २ परित्तससारी नो अणंतससारी ३ सुलभबोही नो दुलभबोही ४ आराहए नो विराहए ५ चरिमे नो अचरिमे ६ । तए णं से सूरिआमे देवे समणेणं भगव-

या महावीरेणं एवं वुत्ते समाणे हट्ठतुट्ठचित्तमाणंदिए परमसोमणस्से" इत्यादि । पुनः श्रीबृहत्कल्पे जिनप्रतिमादर्शनात् ज्ञानदर्शनचारित्रलाभरूपो भावग्रामः कथितोऽस्ति, तथाहि–

"तित्थयरा १ जिन २ चउदस ३ भिन्ने ४ संविग्ग ५ तह य असंविग्गे ६ सारूविय ७ वय ८ दंसण ९ पडिमाओ १० भावगामाओ ११ ॥ ४१ ॥"

॥ इति जिनप्रतिमापूजाफलाधिकारः ॥ ४१ ॥

ननु–प्रतिमायाः पूजने षट्कायवधेन महानारम्भो जायते, कथ ? पूर्वं पाषाणादिघटने सचित्तपाषाणच्छेदादिना पृथ्वीकायवधः १ प्रतिमायाः स्नानकारापणे एकस्मिन् जलबिन्दौ केवलिनाऽसंख्याता जीवा दृष्टाः प्रतिपादिताश्चेति हेतोरप्कायवधः २ धूपोत्क्षेपे दीपप्रज्वालने चाऽग्निकायवधः ३ शङ्खादिवाद्यवादने वायुकायवधः ४ कुसुममालादीना कण्ठादिपरिधापने वनस्पतिकायवध ५ दीपादौ पतङ्गादिजीवमरणेन त्रसकायवधः ६ इति । जैनधर्मस्तु जीवदयामयः, तत्कथ मानयामि जिनप्रतिमापूजाम् ?, इत्यत्र उच्यते—ननु–जिनधर्मो निःकेवल जीवदयारूपो वाऽऽज्ञासहितदयारूपो वा ? नाऽऽद्यः पक्ष कक्षीकार्यः, भगवदुक्तागमपक्षेण सम प्रत्यक्ष विरोधस्य लक्ष्यमाणत्वात् । कथ यदि श्रीवीतरागदेवेन निःकेवल जीवदयारूपो धर्मः प्ररूपितोऽभविष्यत् तदा साधूना नदीलङ्घनादिकं कर्तव्यं भगवान् नाऽकथयिष्यत् ?, तत्रापि पृथिव्यादिजीवाना वधस्य प्रत्यक्ष जायमानत्वात् । नदीलङ्घनं च श्रीस्थानाङ्गसूत्रे पञ्चमस्थाने द्वितीयोद्देशके प्रथमालापके ( २०८ पत्रे ), तथाहि–"नो कप्पइ निग्गथाण वा निग्गथीण वा इमाओ उद्दिट्ठाओ गणिआओ वितजिता-

वो पच मह्ण्णमातो महानदीओ अंतो मासस्स दुक्खुत्तो वा तिक्खुत्तो वा उत्तरित्तए वा सतरित्तए वा, त जहा—गंगा १ जउणा २ सरऊ ३ एरावती ४ मही, ५ पंचहिं ठाणेहिं कप्पति, त जहा—भतसि वा १ दुब्भिक्खसि वा २ पवहेज्ज व ण कोई ३ दओघसि वा एज्जमाणसि महता वा ४ अणारितेसु य" इत्यादि । पुन: श्रीआचाराङ्गसूत्रे द्वितीयश्रुतस्कन्धे तृतीयाध्ययने ईर्यायाः प्रथमोद्देशके ( ३४६ पत्रे ) "से भिक्खू वा भिक्खुणी वा पुव्वामेव तिरिच्छसपातिम नाव जाणिज्जा, जाणित्ता से तमायाए एगतमवक्कमिज्जा २ भडग पडिलेहिज्जा २ एगओ भोअणमडग करिज्जा २ ससी—सोपरिअ काय पाए पमज्जिज्जा २ सागार मत्त पच्चक्खाइज्जा, एगं पाय जले किच्चा एग पाय थले किच्चा ततो सजयामेव नावं दुरुहिज्जा ॥ ( सूत्र १४१ ) । से भिक्खू वा भिक्खुणी वा नाव दुरुहमाणे नो नावाओ पुरतो दुरुहिज्जा, नो नावाओ मग्गओ दुरूहिज्जा, नो नावाओ मज्झओ दुरूहिज्जा, नो बाहाओ पगिज्झिय २ अगुलिआए उद्दिसिअ २ ओणमिअ २ उन्नमिअ २ निज्झाइज्जा । से ण परो नावागओ नावागयं वइज्जा—आउसतो ! समणा ! एय ता तुम नाव उक्कसाहिज्जा वा वुक्कसाहि वा खिवाहि वा रज्जूआए वा गहाय आकसाहि, नो से त परिन्न परिजाणिज्जा, तुसिणीओ उवेहिज्जा । से ण परो नावागओ नावाग० वइज्जा आउसंतो ! समणा ! नो संचाएसि तुमं नावं उक्कसित्तए वा वुक्कसित्तए वा खिवित्तए वा रज्जूयाए वा गहाय आकसित्तए वा, आहर, एतं नावाए रज्जूअ सयं चेव ण वयं नाव उक्कसिस्सामो । वा जाव रज्जूए वा गहाय आकसिस्सामो, णो से तं प० तुसिणीओ वइज्जा, से ण परो नावागओ नावा गय वइज्जा । आउसंतो ! समणा ! एतं ता तुमं नाव आलित्तेण वा पीढएण वा वंसेण वा वलएण वा अवलुएण वा वाहेहि, नो से तं प० तुसि० ।

से णं परो० एय ता तुमं नावाए उदय हत्थेण वा पाएण वा मत्तेण वा पडिग्गहेण वा नावाउस्सिंचणेण वा उस्सिंचाहि, णो से त। से ण परो आउसंतो ! समणा ! एयं तुम नावाए उत्तिंग हत्थेण वा पाएण वा वाहुणा वा ऊरुण वा उदरेण वा सीसेण वा काएण वा उस्सिंचणेण वा चेलेण वा मट्टियाए वा कुसपत्तएण वा कुविंदएण वा पिहेहि, नो से त। से भिक्खू वा भिक्खुणी वा नावाए उत्तिंगेण उदय आसवमाण पेहाए उवरुवरिं नाव कज्जवावेमाणिं पेहाए नो पर उवसकमित्तु एव बूया–आउसतो ! गाहावई एय ते नावाए उदय उत्तिंगेण आसवइ उवरुवरिं नावा वा कज्जलावेइ, एयप्पगार मण वा वाय वा नो पुरओ कट्टु विहरिज्जा, अप्पुस्सुए अवहिलेसे एगतगएण अप्पाण विउसेज्जा समाहीए, तओ० सं०, नावासतारिमे य उदए आहारिय रीइज्जा, एय खलु सया जइज्जासित्तिबेमि × × × × से ण परो णावा० आउसतो ! समणा ! एय ता तुम छत्तग वा जाव चम्मछेयणग वा गिण्हाहि, एआणि तुम विरूवरूवाणि सत्यजायाणि धारेहि, एय ता तुम दारग वा दारिग वा पज्जेहि णो से त × × × × से ण परो नावागए नावागय वएज्जा–आउसतो ! एस ण समणे नावाए भडभारिए भवति, से ण वाहाए गहाय नावाओ उदगसि पक्खिविज्जा, एयप्पगार निग्घोस सुच्चा निसम्म से अ चीवरधारी सिया खिप्पामेव चीवराणि उव्वेढिज्ज वा निवेढिज्ज वा उप्फेस वा करिज्जा, अह पुण एव जाणिज्जा अभिक्कतकूरकम्मा खलु वाला वाहाहिं गहाय नावाओ उदगंसि पक्खिविज्जा से पुव्वामेव वइज्जा–आउसतो ! गाहावती मा मेत्तो वाहाए गहाय नावओ उदगसि पक्खिवह, सय चेव ण अह नावाओ उदगसि ओगाहिस्सामि से णेव वयत परो सहसा वलसा वाहाहिंग० नावाओ उदगसि पक्खिविज्जा, त णो सुमणे सिआ, नो दुम्मणे सिआ, नो

उद्धायय मण नियछिज्जा, णो तेसिं वालाणं घयाए वहाए समुट्ठिज्जा, अप्पुस्सुए जाव समहीए तओ सजयामेव उदगसि पविज्जा × × × × से भिक्खू वा भिक्खुणी वा उदगंसि पवमाणे नो हत्थेण हत्थ पाएण पाय काएण काय आसाइज्जा, से अणासायणाए अणासायमाणे तओ संजयामेव उदगंसि पविज्जा । से भिक्खू वा भिक्खुणी वा उदगसि पवमाणे नो उम्मुग्गनिमुग्गिअ करिज्जा, मामेय उदगं कन्नेसु वा अच्छीसु वा नक्कसि वा मुहसि वा परिआवज्जिज्जा, तओ, सजयामेव उदगसि पविज्जा । से भिक्खू वा उदगसि पवमाणे दुब्बलिअ पाउणिज्जा, खिप्पामेव उवहिं विगिंचिज्ज वा विसोहिज्ज वा, नो णेव ण साइज्जिज्जा, अह पुण जाणिज्जा पारए सिआ उदगाओ तीर पाउणित्तए, तओ सजयामेव उदउल्लेण वा ससिणद्धेण वा काएण उदगतीरे चिट्ठिज्जा । से भिक्खू वा भिक्खुणी वा उदउल्ल वा काय वा ससिणद्ध वा काय नो आमज्जिज्जा वा, णो पमज्जिज्जा वा संलिहिज्जा वा निल्लिहिज्जा वा उव्वलिज्जा वा उवट्टिज्जा वा आयाविज्ज वा पयाविज्ज वा अह पुण एव जाणिज्जा विगओदओ मे काए छिन्नसिणेहे काए तहप्पगार काय आमज्जिज्ज वा पयाविज्ज वा, तओ सजयामेव गामाणुगामं दूइज्जमाणे णो परेहिं सद्धिं परिजविअ २ गामाणुगाम दूइज्जिज्जा ।" पुनरत्रैव तृतीयाऽध्ययनस्य द्वितीयोद्देशके ( ३४९ पत्रे ) एव जङ्घाप्रमाणनदीजललङ्घनविधिमाह, तथाहि—"से भिक्खू वा भिक्खुणी वा गामाणुगामं दूइज्जमाणे अंतरा से जघासंतारिमे उदग [गे] सिआ, से पुव्वामेव ससीसोवरिय काय पाए य पमज्जिज्जा २ एग पाय जले किच्चा एग पाय थले किच्चा ततो संजयामेव जंघासंतारिमे उदगसि आहारिअ रीएज्जा" इत्यादि ॥ पुनः श्रीकल्पसूत्रेऽपि तृतीयसामाचार्यां ( २५१ पत्रे ) नदीलङ्घन उक्त आहारार्थे, तथाहि—"वासावास पज्जोसवियाण

कप्पइ निग्गथाण वा निग्गथीण वा सव्वओ समंता सक्कोसं जोयण भिक्खायरिआए गतु, पडिनियत्तए × × × × एरावई कुणालाए जत्थ चक्किआ सिआ, एग पाय जले किच्चा, एग पाय थले किच्चा, एव चक्किआ, एव ण कप्पइ सव्वओ समता सक्कोस जोयण भिक्खायरियाए गतु पडिनियत्तए" इत्यादि । तथा पुनरपि श्रीकल्पे त्रयोदशसामाचार्यां ( २६३ पत्रे ) अल्पवृष्टौ जायमानायामपि निग्रन्थाना निग्रन्थीना च भक्तपानार्थं गमन अनुज्ञात श्रीमहावीरदेवेन, तथाहि—

"वासावासं पज्जोसविअस्स पडिग्गहधारिस्स भिक्खुस्स नो कप्पइ वग्घारिअवुट्ठिकायसि गाहावइकुल भत्ताए वा पाणाए वा निक्खमित्तए वा पविसित्तए वा । कप्पइ से अप्पवुट्ठिकायसि सतरुत्तरसि गाहावइकुल भत्ताए वा पाणाए वा निक्खमित्तए वा पविसित्तए वा" इति वर्षत्यपि मेघे अनस्तमिते सूर्ये साधो वसतौ आगमने एव आराधकत्व उक्त, तत्र स्थितौ तु विराधकत्व, अत्र आज्ञा एव प्रमाण । निष्केवल जीवदयापक्षे तु अनागमन श्रेयस्कर, आगमनादिना जाताया अप्कायविराधनायाः तत्राऽभावात्, तत्सामाचारीपाठोऽपि तत्रैव यथा—

"वासावास पज्जोसविअस्स निग्गथस्स निग्गथीए वा गाहावइकुल पिंडवायपडिआए अणुपविट्ठस्स निगिज्झिय निगिज्झिय वुट्ठिकाए निवइज्जा, कप्पइ से अहे आरामसि वा अहे उवस्सयंसि वा, अहे विअडगिहसि वा अहे रुक्खमूलसि वा उवागच्छित्तए", ( पुन २६४ पत्रे ) "नो से कप्पइ पुव्वगहिएण भत्तपाणेणं वेलं उवायणावित्तए, कप्पइ से पुव्वामेव विअडग भुच्चा पिच्चा पडिग्गहग सलिहिअ सलिहिअ सपमज्जिय सपमज्जिय एगायय भडग कट्टु सावसेसे सूरे जेणेव उवस्सए तेणेव उवागच्छित्तए, नो से कप्पइ त रयणिं तत्थेव उवायणावित्तए" इति । पुन श्रूयता—श्रावकाणा साधूना

उच्चावयं मण नियच्छिज्जा, णो तेसिं बालाण घयाए वहाए समुट्ठिज्जा, अप्पुस्सुए जाव समहीए तओ सजयामेव उदगसि पविज्जा × × × × से भिक्खू वा भिक्खुणी वा उदगसि पवमाणे नो हत्येण हत्थ पाएण पाय काएण काय आसाइज्जा, से अणासायणाए अणासायमाणे तओ सजयामेव उदगसि पविज्जा। से भिक्खू वा भिक्खुणी वा उदगसि पवमाणे नो उम्मुग्गनिमुग्गिअ करिज्जा, मामेय उदगं कन्नेसु वा अच्छीसु वा नक्कसि वा मुहसि वा परिआवज्जिज्जा, तओ, सजयामेव उदगसि पविज्जा। से भिक्खू वा उदगसि पवमाणे दुब्बलिअ पाउणिज्जा, खिप्पामेव उवहिं विगिंचिज्ज वा विसोहिज्ज वा, नो चेव ण साइज्जिज्जा, अह पुण जाणिज्जा पारए सिआ उदगाओ तीर पाउणित्तए, तओ सजयामेव उदउल्लेण वा ससिणद्धेण वा काएण उदगतीरे चिट्ठिज्जा। से भिक्खू वा भिक्खुणी वा उदउल्ल वा काय वा ससिणद्ध वा कायं नो आमज्जिज्जा वा, णो पमज्जिज्जा वा संलिहिज्जा वा निल्लिहिज्जा वा उव्वलिज्जा वा उवट्टिज्जा वा आयाविज्ज वा पयाविज्ज वा अह पुण एव जाणिज्जा विगओदओ मे काए छिन्नसिणेहे काए तहप्पगार काय आमज्जिज्ज वा पयाविज्ज वा, तओ संजयामेव गामाणुगाम दूइज्जमाणे णो परेहि सद्धिं परिजविअ २ गामाणुगाम दूइज्जिज्जा।" पुनरत्रैव तृतीयाऽध्ययनस्य द्वितीयोद्देशके (३४९ पत्रे) एव जङ्घाप्रमाणनदीजललङ्घनविधिमाह, तथाहि—"से भिक्खू वा भिक्खुणी वा गामाणुगामं दूइज्जमाणे अतरा से जघासंतारिमे उदग [गे] सिआ, से पुव्वामेव ससीसोवरिय काय पाए य पमज्जिज्जा २ एगं पाय जले किच्चा एग पाय थले किच्चा ततो संजयामेव जंघासतारिमे उदगसि आहारिअ रीएज्जा" इत्यादि॥

पुन श्रीकल्पसूत्रेऽपि तृतीयसामाचार्यां (२५१ पत्रे) नदीलङ्घन उक्त आहारार्थे, तथाहि—"वासावास पज्जोसवियाण

महावीरं वंदति नमंसंति वंदित्ता नमसित्ता पसिणाइं पुच्छंति पसिणाइं पुच्छित्ता अट्ठाइं परिआदिअंति अ० २ उट्ठाए उट्ठेति उ० २ समणस्स भ० महा० अंतियाओ कोट्ठयाओ चेइयाओ पडिनि० प० २ जेणेव सावत्थी नगरी तेणेव पहारेत्थ गमणाए। तए णं से संखे समणोवासए ते समणोवासए एव वयासी–तुज्झे ण देवाणुप्पिया! विउल असण पाण खाइम साइमं उवक्खडावेह, तए ण अम्हे त विउल असण पाण खाइम साइम आसाएमाणा विसाएमाणा परिभुजेमाणा परिभाएमाणा पक्खिय पोसहं पडिजागरमाणा विहरिस्सामो, तए ण ते समणोवासगा संखस्स समणोवासगस्स एअमट्ठं विणएण पडिसुणति, तए ण तस्स संखस्स समणोवासगस्स अयमेयारूवे अब्भत्थिए जाव समुप्पज्जित्था–नो खलु मे सेय त विउल असण पाण जाव साइम आसाएमाणस्स जाव ४ पक्खिअ पोसह पडिजागरमाणस्स विहरित्तए, सेअ खलु मे पोसहसालाए पोसहियस्स बंभचारिस्स उम्मुक्कमणिसुवन्नस्स ववगयमालावन्नगविलेवणस्स निक्खित्तसत्थमुसलस्स एगस्स अबिइयस्स दब्भसंथारोवगयस्स पक्खिअ पोसह पडिजागरमाणस्स विहरित्तए त्तिकट्टु एव संपेहेति २ जेणेव सावत्थी नगरी जेणेव सए गिहे जेणेव उप्पला समणोवासिआ तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता उप्पल समणोवासियं आपुच्छइ, आपुच्छित्ता जेणेव पोसहसाला तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पोसहसाल अणुपविसइ, अणुपविसित्ता पोसहसालं पमज्जइ, प० २ उच्चारपासवणभूमिं पडिलेहेइ, उ० पडि० २ दब्भसंथारग संथरति, दब्भ० सं० २ दब्भसंथारगं दुरूहइ, दु० २ पोसहसालाए पोसहिए बंभचारी जाव पक्खिअ पोसह पडिजागरमाणे विहरइ। तए णं ते समणोवासगा जेणेव सावत्थी नयरी जेणेव साइं गिहाइं तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता विउल असण पाण खाइमं साइम उवक्ख-

च सर्वधर्मकर्तव्य पृथिव्याद्यारम्भपूर्वकमेव दृश्यते, यतो यद् त्वं श्रेणिककोणिकतुङ्गिकानगरीवास्तव्यश्रावकादीनां भगवद्वन्दनार्थं गमनाऽऽगमने पृथिव्यप्वनस्पतिकुन्थुपिपीलिकादिजीवाना उपमर्दन जात न वा? जातमेव, न च वक्तव्य जीवोपमर्दे तेषा पुण्यमपि जातं न भविष्यतीति। तेषां हि–

"आए सुहाए खमाए निस्सेअसाए अणुगामिअत्ताए भविस्सइ" इति फलस्योक्तत्वात्। अपि च पुष्कलिश्रावकेण पाक्षिकपर्वण्यपि साधर्मिकाणा भोजनाविना साधर्मिकवात्सल्यं चक्रे, तत्र तस्यारम्भो लग्नो न वा? न च वाच्यं तस्याऽऽरम्भ एव लग्नः, न शुभ फलं भावि इति। यतस्तत्रैव तस्य पुण्यपुष्टेः फलस्योक्तत्वात्। यदुक्तं श्रीभगवतीसूत्रे द्वादशशतके प्रथमोद्देशके (५५२ पत्रे) तथाहि–

"तेण कालेण तेणं समएण सावत्थी नाम नगरी होत्था, वण्णओ कोट्ठए चेइए वण्णओ, तत्थ ण सावत्थीए नगरीए बहवे संखप्पामोक्खा समणोवासगा परिवसति, अड्ढा जाव अपरिभूया अभिगयजीवाजीवा जाव विहरति, तस्स णं संखस्स समणोवासगस्स उप्पलानामं भारिआ होत्था, सुकुमाल जाव सुरूवा समणोवासिया अभिगयजीवाजीवा जाव विहरति। तत्थ णं सावत्थीए नगरीए पोक्खलीनाम समणोवासए परिवसइ अड्ढे अभिगयजाव विहरइ, तेण कालेणं तेण समएणं सामी समोसढे परिसा निग्गया जाव पज्जुवासति, तए ण ते समणोवासगा इमीसे जहा आलभियाए जाव पज्जुवासइ, तएण समणे भगव महावीरे तेसिं समणोवासगाण तीसे य महति० धम्मकहा जाव परिसा पडिगया, तए ण ते समणोवासगा समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिय धम्म सोच्चा निसम्म हट्ठ तुट्ठ० समणं भगव

महावीर वंदति नमसंति ववित्ता नमसित्ता पसिणाइं पुच्छंति पसिणाइं पुच्छित्ता अट्ठाइ परिआदिअंति अ० २ उट्ठाए उट्ठेति उ० २ समणस्स भ० महा० अतियाओ कोट्ठयाओ चेइयाओ पडिनि० प० २ जेणेव सावत्थी नगरी तेणेव पहारेत्थ गमणाए। तए णं से सखे समणोवासए ते समणोवासए एव वयासी–तुम्हे णं देवाणुप्पिया! विउल असण पाण खाइम साइम उवक्खडावेह, तए ण अम्हे त विउल असण पाण खाइम साइम आसाएमाणा विसाएमाणा परिभुजेमाणा परिभाएमाणा पक्खिय पोसह पडिजागरमाणा विहरिस्सामो, तए ण ते समणोवासगा संखस्स समणोवासगस्स एअमट्ठं विणएण पडिसुणति, तए ण तस्स सखस्स समणोवासगस्स अयमेयारूवे अब्भत्थिए जाव समुप्पज्जित्था–नो खलु मे सेय त विउल असण पाण जाव साइमं आसाएमाणस्स जाव ४ पक्खिअ पोसह पडिजागरमाणस्स विहरित्तए, सेअ खलु मे पोसहसालाए पोसहिअस्स बभचारिस्स उम्मुक्कमणिसुवण्णस्स ववगयमालावन्नगविलेवणस्स निक्खित्तसत्थमुसलस्स एगस्स अविइयस्स दब्भसथारोवगयस्स पक्खिअ पोसहं पडिजागरमाणस्स विहरित्तए त्तिकट्टु एव सपेहेति २ जेणेव सावत्थी नगरी जेणेव सए गिहे जेणेव उप्पलासमणोवासिआ तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता उप्पल समणोवासिय आपुच्छइ, आपुच्छित्ता जेणेव पोसहसाला तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पोसहसाल अणुपविसइ, अणुपविसित्ता पोसहसाल पमज्जइ, पो० प २ उच्चारपासवणभूमीं पडिलेहेइ, उ० पडि० २ दब्भसथारग सथरति, दब्भ० सं० २ दब्भसथारग दुरुहइ, दु० २ पोसहसालाए पोसहिए बभयारी जाव पक्खिअ पोसह पडिजागरमाणे विहरइ। तए ण ते समणोवासगा जेणेव सावत्थी नयरी जेणेव सयाइ गिहाइ तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता विउल असण पाण खाइमं साइम उवक्ख-

सावेंति उ० २ अण्णमण्णे सद्दावेंति अ० स० २ एवं वयासी—एवं खलु देवाणुप्पिया ! अम्हेहिं से विउले असणपाणखाइमसाइमे उवक्खडाविए, संखे य ण समणोवासए नो हव्वमागच्छइ, त सेय खलु देवाणुप्पिया ! अम्ह सख समणोवासग सद्दावेत्तए । तए ण से पोक्खली समणोवासए ते समणोवासए एव वयासी—अच्छह ण तुब्भे देवाणुप्पिया ! सुणिव्वुया वीसत्था अहण्ण सख समणोवासग सद्दावेमित्तिकट्टु तेसिं समणोवासगाणं अतिआओ पडिनिक्खमइ प० २ सावत्थीए नगरीए मज्झमज्झेण जेणेव सखस्स समणोवासगस्स गिहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सखस्स समणो वासगस्स गिह अणुपविट्ठे । तए ण सा उप्पला समणोवासिआ पोक्खलिं समणोवासग एज्जमाणं पासइ पासित्ता हट्ठतुट्ठ० आसणाओ अब्भुट्ठेइ, अभुट्ठित्ता सत्तट्ठ पयाइ अणुगच्छइ अणुगच्छित्ता पोक्खलिं समणोवासग वदति नमसति, वदित्ता नमसित्ता आसणेण उवनिमतेइ, आ० २ एव वयासी—संदिसंतु ण देवाणुप्पिया ! किमागमणप्पयोअण ? तए णं से पोक्खली समणोवासए उप्पल समणोवासियं एव वयासी—कहिन्न देवाणुप्पिये ? सखे समणोवासए ? तए ण सा उप्पला समणोवासिआ पोक्खल समणोवासग एव वयासी—एव खलु देवाणुप्पिया ! सखे समणोवासए पोसहसालाए पोसहिए बभयारी जाव विहरइ । तए ण से पोक्खली समणोवासए जेणेव पोसहसाला जेणेव सखे समणोवासए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता गमणागमणाए पडिक्कमइ, ग० २ संख समणोवासग वदति नमंसति, वदित्ता नमसित्ता एव वयासी—एव खलु देवाणुप्पिया ! अम्हेहिं से विउले असण जाव साइमे उवक्खडाविए त गच्छामोण देवाणुप्पिया ! त विउल असण जाव साइम आसाएमाणा जाव पडिजागरमाणा विहरामो । तए ण से संखे समणोवासए पोक्खलिं समणोवासग एव वयासी—नो खलु कप्पति

देवाणुप्पिया ! त विउल असण पाणं खाइमं साइमं आसाएमाणस्स जाव पडिजागरमाणस्स विहरित्तए, कप्पइ मे पोसहसालाए पोसहिअस्स जाव विहरित्तए, त छंदेण देवाणुप्पिया ! तुब्भे त विउल असण पाण खाइम साइम आसाएमाणा जाव विहरह, तए णं से पोक्खली समणोमासए सखस्स समणोवासगस्स अतियाओ पोसहसालाओ पडिनिक्खमति, पडिनिक्खमित्ता । सावत्थि नगरिं मज्झमज्झेण जेणेव ते समणोवासगा तेणेव उवागच्छइ" इत्यादि। अपि च श्राद्धाना साधुवन्दनार्थं सामायिकपौषधग्रहणार्थं धर्मशालाया गमनागमने, तथा क्षुधितस्य भोजनप्रदाने, तृषितस्य पानीयपाने आरभो जायते न वा ? तथा साधवे अश्र [दान] ददता उष्णधान्यस्याच्युद्घाटने उष्णबाष्पादिना वायुकायस्य सर्वत्र भ्रमत्सूक्ष्मत्रसजीवाना च घातो भवति न वा ? । तथा कश्चिच्छिकाशाटने बादरवायुकायादिवधो भवति न वा ? । तथा धान्यादिना सर्पादिजीवमोचने आरम्भो जायते न वा ? । सर्वत्र भवत्येव इति रहस्य, तस्य प्रत्यक्षं दृश्यमानत्वेन अपलपितु अशक्यत्वात् । पुनर्वद सामायिकपौषधादिकधर्मकर्तव्यकरणार्थं धर्मशाला कार्यते तत्र तु प्रकट पद्गयोपमर्दो दरीदृश्यते, ततस्तद्धर्मशालाकारापणे पुण्य पाप वा जायते ? । न च पुण्यमिति वक्तव्य, स्वपक्षक्षते । नाऽपि पाप, न च धर्मार्थं पाप कर्तव्यमिति भवन्मत, तदा कुत्र यास्यति ? । पुनः पाप चेत्, तदा धर्मशालानामस्थाने पापशालेति कथ्यताम् । तत उभयथाऽपि तव सकटे पातो जात इतो व्याघ्र इतस्तटी । एव साधूनामपि गोचरी(र्या)भ्रमणे १ गुरुवन्दनार्थं गमने २ विहारकरणे ३ वस्त्रपात्रादिप्रतिलेखनादिक्रियाकरणे ४ प्रतिक्रमणादौ क्षमाश्रमण दाने ५ च सर्वत्र पदे पदे आरम्भपूर्विकैव धर्मप्रवृत्ति दृश्यते । अत्राऽऽह मनोमति शिष्य, ननु यदि आरम्भपूर्विका प्रवृत्ति एषा, तर्हि

द्दावेंति उ० २ अण्णमण्णे सद्दावेंति अ० स० २ एव वयासी—एवं खलु देवाणुप्पिया! अम्हेहिं से विउले असणपाणखा-इमसाइमे उवक्खडाविए, सखे य णं समणोवासए नो हव्वमागच्छइ, त सेय खलु देवाणुप्पिया! अम्ह संख समणोवा-सग सद्दावेत्तए। तए ण से पोक्खली समणोवासए ते समणोवासए एव वयासी—अच्छह ण तुज्झे देवाणुप्पिया! सुणिव्वुया वीसत्था अहन्न संख समणोवासग सद्दावेमित्तिकट्टु तेसिं समणोवासगाणं अतिआओ पडिनिक्खमइ प० २ सावत्थीए नगरीए मज्झमज्झेण जेणेव सखस्स समणोवासगस्स गिहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सखस्स समणो वासगस्स गिह अणुपविट्ठे। तए ण सा उप्पला समणोवासिआ पोक्खलिं समणोवासग एज्जमाण पासइ पासित्ता हट्ठतुट्ठ० आसणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठित्ता सत्तट्ठ पयाइ अणुगच्छइ अणुगच्छित्ता पोक्खलिं समणोवासग वदति नमसति, वदित्ता नमसित्ता आसणेण उवनिमतेइ, आ० २ एव वयासी—सदिसतु णं देवाणुप्पिया! किमागमणप्पयोअण? तए ण से पोक्खली समणोवासए उप्पल समणोवासियं एव वयासी—कहिन्न देवाणुप्पिये! सखे समणोवासए? तए ण सा उप्पला समणोवासिआ पोक्खल समणोवासग एव वयासी—एव खलु देवाणुप्पिया! सखे समणोवासए पोसहसालाए पोसहिए बभयारी जाव विहरइ। तए ण से पोक्खली समणोवासए जेणेव पोसहसाला जेणेव सखे समणोवासए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता गमणागमणाए पडिक्कमइ, ग० २ संख समणोवासग वदति नमंसति, वदित्ता नमसित्ता एव वयासी—एव खलु देवाणुप्पिया! अम्हेहिं से विउले असण जाव साइमे उवक्खडाविए तं गच्छामोण देवाणुप्पिया! त विउल असण जाव साइम आसाए-माणा जाव पडिजागरमाणा विहरामो। तए ण से संखे समणोवासए पोक्खलिं समणोवासग एव वयासी—नो खलु कप्पति

देवाणुप्पिया ! त विउलं असण पाण खाइमं साइमं आसाएमाणस्स जाव पडिजागरमाणस्स विहरित्तए, कप्पइ मे पोसह-सालाए पोसहिअस्स जाव विहरित्तए, त छन्देण देवाणुप्पिया ! तुब्भे त विउलं असण पाणं खाइम साइमं आसाएमाणा जाव-विहरह, तए णं से पोक्खली समणोवासए सखस्स समणोवासगस्स अतियाओ पोसहसालाओ पडिनिक्खमति, पडिनिक्ख-मित्ता । सावत्थिं नगरिं मज्झमज्झेण जेणेव ते समणोवासगा तेणेव उवागच्छइ" इत्यादि । अपि च श्राद्धाना साधुवन्दनार्थं सामायिकपौषधग्रहणार्थं धर्मशालाया गमनागमने, तथा क्षुधितस्य भोजनप्रदाने, तृषितस्य पानीयपाने आरम्भो जायते न वा ? तथा साधवे अन्न [दान] ददता उष्णधान्यस्थाल्युद्घाटने उष्णबाष्पादिना वायुकायस्य सर्वत्र भ्रमत्सूक्ष्मत्रसजीवाना च घातो भवति न वा ? । तथा कडिच्छिकाझाटने बादरवायुकायादिवधो भवति न वा ? । तथा धान्यादिना सर्पादिजीवमोचने आरम्भो जायते न वा ? । सर्वत्र भवत्येव इति रहस्य, तस्य प्रत्यक्ष दृश्यमानत्वेन अपलपितु अशक्यत्वात् । पुनर्वद सामायिकपौषधादिकधर्मकर्तव्यकरणार्थं धर्मशाला कार्यते तत्र तु प्रकट पदार्थोपमर्दो दरीदृश्यते, ततस्तद्धर्मशाला-कारापणे पुण्य पाप वा जायते ? । न च पुण्यमिति वक्तव्य, स्वपक्षक्षतेः । नाऽपि पाप, न च धर्मार्थं पाप कर्तव्यमिति भवन्मत, तदा कुत्र यास्यति ? । पुनः पाप चेत्, तदा धर्मशालानामस्थाने पापशालेति कथ्यताम् । तत उभयथाऽपि तव सकटे पातो जात इतो व्याघ्र इतस्तटी । एव साधूनामपि गोचरी(र्या)भ्रमणे १ गुरुवन्दनार्थं गमने २ विहारकरणे ३ वस्त्र-पात्रादिप्रतिलेखनादिक्रियाकरणे ४ प्रतिक्रमणादौ क्षमाश्रमण दाने ५ च सर्वत्र पदे पदे आरम्भपूर्विकैव धर्मप्रवृत्ति दृश्यते । अत्राऽऽह मनोमतिः शिष्यः, ननु यदि आरम्भपूर्विका प्रवृत्तिः एषा, तर्हि आरम्भस्य अशुभगतिहेतुत्वेन

किमर्थं धर्मार्थिभिः सा क्रियते ? उच्यते—तीर्थङ्करदेवस्य आज्ञात्वात्, सा च निर्वाणफलेति । ततो निर्वाणसुखफलार्थिभिः अवश्यं कर्तव्या इति । अत्रार्थे श्रीस्थानांगवृत्तिगतं गाथाद्वयं ( ११० पत्रे ) यथा—

"भण्णइ जिणपूआए, कायवहो जइवि होइ उ कहिंचि । तहवि तई परिसुद्धा, गिहीण कूवाहरणजोगा ॥ १ ॥
असदारंभपवत्ता, जं च गिही तेण तेसिं विन्नेआ । तन्निविित्तिफलच्चिअ, एसा परिभावणीअमिद ॥ २ ॥"

ननु—तर्हि सर्वत्र धर्मकर्तव्ये आरम्भकरणे सत्यपि किं पाप न लगति ? उच्यते—सत्य, सत्यारम्भेऽपि पृथिव्यादित्रसजीवानामुपरि तेषा मारणाध्यवसायो नास्ति, किं तु रक्षणाध्यवसायः । पापं तु दुष्टमनसि आध्याते भवेद्, यदुक्तं श्रीपिण्डनिर्युक्तौ ( १७८ पत्रे )—

"जा जयमाणस्स भवे, विराहणा सुत्तविहिसमग्गस्स । सा होइ निज्जरफला, अज्झत्थविसोहिजुत्तस्स ॥ ६७१ ॥"

पुनरत्रार्थे श्रीभगवतीसूत्र प्रतिभूः, तथाहि— ( २८८ पत्रे )

"समणोवासगस्स णं भंते पुव्वामेव तसपाणसमारंभे पच्चक्खाए भवति पुढविसमारंभे अपच्चक्खाए भवति से अ पुढविं खणमाणे अण्णयरं तसं पाणं विहिंसेज्जा से णं भंते ! त वय अतिचरति गो० नो तिणट्ठे समट्ठे णो खलु से तस्स अइवायाए आउट्टति ।" पुनस्तत्रैवोक्तं—

"समणोवासगस्स णं पुव्वामेव वणस्सइसमारंभे पच्चक्खाए से अ पुढविं खणमाणे अण्णयरस्स रुक्खस्स मूलं छिंदेज्जा से णं भंते ! त वयं अतिचरति ? नो तिणट्ठे समट्ठे णो खलु से तस्स अइवायाए आउट्टति इति ।" एवमेव यद्यपि पूजाकरणे

जलाग्निपुष्पादीनां उपमर्दो जायते पर पूजाकर्तुस्तेषां जलाग्निपुष्पादीना उपमर्दे मनो नाऽस्ति, प्रत्युत तद्रक्षणे यतना क्रियमाणा अस्ति, मनस्तु निष्केवलं भगवद्भक्तिविशिष्ट वर्तते, तदिद आगतं–सत्यपि आरम्भे यत्तीर्थङ्करदेवेन अनुज्ञातं तत्सत्यमेव । तत आज्ञासहितो जीवदयारूपो, न तु निष्केवल जीवदयारूपोऽपि आज्ञारहित इति ॥

॥ इति आज्ञासहितदयाधर्माधिकारः ॥ ४२ ॥

ननु–श्रीभगवतीसूत्रे देवा अधर्मिण उक्तास्तर्हि काऽऽगमे जिनप्रतिमापूजाया फल ? उच्यते–रे मनोमतिन् ! शास्त्रमत्या विचारय, 'अधर्मिण' इति कोऽर्थः ? तथाविधया कयाचिद् भवस्थित्या विरतिरूपो धर्मो नाऽस्ति तेषा, पर अन्यो धर्मो विरतिव्यतिरिक्त सर्वोऽप्यस्ति, तथाहि–सर्व सूर्याभदेवाधिकारे पश्य विमुक्तं "धम्मिअ ववसायमि गिण्हइ" कोऽर्थ ? सूर्याभदेवेन धर्म कर्तु इच्छता पूर्व जिनप्रतिमापूजा व्यधायि, एव विजयदेवादिभिरपि विदधे, तथा देवाः केऽपि सम्यक्त्वधर्ममपि पालयन्ति तत् सम्यक्त्व सवरमध्ये प्रोक्त, यदुक्त श्रीस्थानागे पचमस्थाने द्वितीयोद्देशके सवराधिकारे ( ३११ पत्रे ), तथाहि–

"पच आसवदारा पन्नत्ता, त जहा–मिच्छत्त अविरती पमादे कसाया जोगा ५ । पच सवरदारा पन्नत्ता, त जहा सम्मत्त विरती अपमादो अकसातित्तमजोगित्त" इत्यत्र । इद रहस्य—ये देवा सम्यक्त्ववन्तस्ते सवरवन्त उक्ता , तत कथं अधर्मिणः ? १ । पुनः श्रोतव्य–देवाः शाश्वतरत्नादिमयपुस्तकवाचनपूर्व परस्पर देवगुरुधर्मसम्बन्धिनं विचार कुर्वन्ति स धर्मो न वा ? २ । तथा जिनाना पचकल्याणकेषु मनुष्यक्षेत्रे समागत्य तीर्थङ्कराणा भक्तिं वितन्वते, स धर्मो न वा ? ३ ।

किमर्थं धर्मार्थिभिः सा क्रियते ? उच्यते—तीर्थङ्करदेवस्य आज्ञात्वात्, सा च निर्वाणफलेति । ततो निर्वाणसुखफलार्थिभिः अवश्य कर्तव्या इति । अत्रार्थे श्रीस्थानांगवृत्तिगत गाथाद्वयं ( ११० पत्रे ) यथा–

"भण्णइ जिणपूआए, कायवहो जइवि होइ उ कहिंचि । तहवि तई परिसुद्धा, गिहीण कूवाहरणजोगा ॥ १ ॥

असदारंभपवत्ता, जं च गिही तेण तेसिं विन्नेआ । तन्निमित्तिफलचिअ, एसा परिभावणीअमिद ॥ २ ॥"

ननु–तर्हि सर्वत्र धर्मकर्तव्ये आरम्भकरणे सत्यपि किं पाप न लगति ? उच्यते–सत्य, सत्यारम्भेऽपि पृथिव्यादित्रस-जीवानामुपरि तेषा मारणाध्यवसायो नास्ति, किं तु रक्षणाध्यवसायः । पापं तु दुष्टमनसि आध्याते भवेद्, यदुक्तं श्रीपि-ण्डनिर्युक्तौ ( १७८ पत्रे )–

"जा जयमाणस्स भवे, विराहणा सुत्तविहिसमग्गस्स । सा होइ निज्जरफला, अज्झत्थविसोहिजुत्तस्स ॥ ६७१ ॥"

पुनरत्रार्थे श्रीभगवतीसूत्र प्रतिभूः, तथाहि– ( २८८ पत्रे )

"समणोवासगस्स णं भंते पुव्वामेव तसपाणसमारंभे पच्चक्खाए भवति पुढविसमारंभे अपच्चक्खाए भवति से अ पुढविं खणमाणे अण्णयरं तसं पाणं विहिंसेज्जा से णं भंते ? त वय अतिचरति गो० नो तिणट्ठे समट्ठे णो खलु से तस्स अइवायाए आउट्टति ।" पुनस्तत्रैवोक्तं—

"समणोवासगस्स णं पुव्वामेव वणस्सइसमारंभे पच्चक्खाए से अ पुढविं खणमाणे अण्णयरस्स रुक्खस्स मूलं छिंदेज्जा-से णं भंते ? त वयं अतिचरति ? नो तिणट्ठे समट्ठे णो खलु से तस्स अइवायाए आउट्टति इति ।" एवमेव यद्यपि पूजाकरणे

ठिते धम्म चेव उवसपज्जित्ताण विहरति, असंयतजाव पावकम्मे अधम्मे ठिए अधम्म चेव उवसपज्जित्ताण विहरइ, सजयासंजए धम्माधम्मे ठिते! धम्माधम्म उवसपज्जित्ताण विहरति, से तेणट्ठेण जाव ठिए॥ जीवा ण भते! किं धम्मे ठिआ अधम्मे ठिआ धम्माधम्मे ठिआ गोयमा! जीवा धम्मेवि ठिआ अधम्मेवि ठिआ धम्माधम्मेवि ठिआ, नेरइआण पुच्छा! गोयमा! नेरइआ नो धम्मे ठिआ अधम्मेठिआ नो धम्माधम्मे ठिआ, एव जाव चउरिंदियाण, पचिंदियतिरिक्खजोणियाण पुच्छा, गोयमा! पचिंदियतिरिक्खजोणिआ नो धम्मे ठिआ अधम्मे ठिआ धम्माधम्मेवि ठिआ, मणुस्सा जहा जीवा, वाणमतरजोइसिअवेमाणिया जहा नेरइया × × × × अन्नउत्थिया ण भते! एव आइक्खति जाव परूवेंति–एव खलु समणा पडिआ समणोवासया बालपडिआ जस्स ण एगपाणाएवि दडे अणिक्खित्ते से ण एगतबालेत्ति वत्तव सिआ, से कहमेय भते! एव गोयमा! जण्ण ते अण्णउत्थिया एव आइक्खति जाव वत्तव सिआ, जे ते एवमाहसु मिच्छ ते एवमाहसु, अह पुण गोयमा! एवमाइक्खामि जाव परूवेमि एव खलु समणा पडिआ समणोवासगा बालपडिआ जस्स ण एग पाणाएवि दडे निक्खित्ते से ण नो एगतबालेति वत्तव सिआ॥ जीवा ण भते! किं बाला पडिआ बालपडिआ? गोयमा? जीवा बालावि पडिआ वि बालपडिआ वि, नेरइयाण पुच्छा, गोयमा! नेरइया बाला नो पडिआ नो बालपडिआ, एव जाव चउरिंदियाण। पचिंदिअतिरिक्खजोणिया पुच्छा गोयमा? पचिंदियतिरिक्खजोणिया बाला नो पडिआ बालपडिआ वि, मणुस्सा जहा जीवा, वाणमतरजोइसियवेमाणिया जहा नेरइया"
अत्राऽय परमार्थ —देवाना असयतत्व १ अविरतत्व २ अप्रत्याख्यानपापकर्मकत्वं ३ च प्रतिपादित, तेन चारित्रमाश्रित्य

पुनस्तीर्थङ्कराणा साधूनां च वन्दनां कुर्वन्ति, तदग्रे व्याख्यानं च शृण्वन्ति, स धर्मो न वा ४ । पुनर्नन्दीश्वरादौ अष्टाह्निकामहिमा देवा कुर्वन्ति स धर्मो न वा ? ५ । अयमेवाऽर्थः सिद्धान्तालापकैः अग्रे प्रपञ्चयिष्यते । पुनर्देवाना राजप्रश्नीयोपाङ्गे ( २९ पत्रे ) धर्मत्व उक्तमस्ति । तथाहि–

"तए ण ते सूरिआभविमाणवासिणो बहवे वेमाणिया देवा देवीओ य पायत्ताणिआहिवइस्स देवस्स अंतिए एअमट्ठ सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठ जाव हियया अप्पेगइआ वंदणवत्तिया अप्पेगइया पूयणवत्तियाए अप्पेगइया सक्कारवत्तियाए एय समाणवत्तियाए अप्पेगइया कोउहल्लवत्तियाए अप्पेगइया असुआइ सुणिस्सामो, सुआइ अट्ठाइ हेऊइ पसिणाइ कारणाइ वागरणाइ पुच्छिस्सामो अप्पेगइया सूरियाभस्स देवस्स वयण–मणुअत्तमाणा अप्पेगइया अन्नमन्नमणुअत्तमाणा अप्पेगइया जिणभत्तिरागेण अप्पेगइआ धम्मोत्ति अप्पेगइया जीअमेअति कट्टु" इत्यादि । अत्रालापके अप्पेगइआ जिणभत्तीए अप्पेगइआ धम्मो इति पदद्वयेऽपि प्रोक्त । केचिद्देवा धर्मनिमित्त, केचिद्देवा जिनभक्तिनिमित्त वीतरागदेवान् वन्दन्ति, तर्हि कथ न धर्मिणः ? । पुन श्रीभगवतीसूत्रे सप्तदशशतके द्वितीयोद्देशके [ ७२२ पत्रे ], तथाहि–

"से णूण भंते ! संजयविरयपडिहयपच्चक्खायपावकम्मे धम्मे ठिए असंजयअविरयअपडिहयअपच्चक्खायपावकम्मे अहम्मे ठिए संजयासंजए धम्माधम्मे ठिते ? हंता गोयमा ! संजयविरयजाव धम्माधम्मे ठिए, एतेसि ण भंते ! धम्मंसि वा अधम्मंसि वा धम्माधम्मंसि वा चक्किआ केइ आसइत्तए वा जाव तुअट्टित्तए वा गोयमा ! णो तिणट्ठे समट्ठे, से केण खाइ अट्ठेणं भंते ? एवं वुच्चति जाव धम्माधम्मे ठिए ? गोयमा ! संजतविरतजाव पावकम्मे धम्मे

ठिते धम्म चेव उवसपज्जित्ताण विहरति, असंयतजाव पावकम्मे अधम्मे ठिए अधम्म चेव उवसपज्जित्ताण विहरइ, संजयासजए धम्माधम्मे ठिते ! धम्माधम्म उवसपज्जित्ताण विहरति, से तेणट्ठेण जाव ठिए ॥ जीवा ण भते ! किं धम्मे ठिआ अधम्मे ठिआ धम्माधम्मे ठिआ गोयमा ! जीवा धम्मेवि ठिआ अधम्मेवि ठिआ धम्माधम्मेवि ठिआ, नेरइआण पुच्छा ! गोयमा ! नेरइआ नो धम्मे ठिआ अधम्मेठिआ नो धम्माधम्मे ठिआ, एव जाव चउरिंदियाण, पर्चिदियतिरिक्खजोणियाण पुच्छा, गोयमा ! पर्चिदियतिरिक्खजोणिआ नो धम्मे ठिआ अधम्मे ठिआ धम्माधम्मेवि ठिआ, मणुस्सा जहा जीवा, वाणमतरजोइसिअवेमाणिया जहा नेरइया × × × × अन्नउत्थिया ण भते ! एव आइक्खति जाव परूवेंति–एव खलु समणा पडिआ समणोवासया वालपडिआ जस्स ण एगपाणाएवि दडे अणिक्खित्ते से ण एगंतवालेत्ति वत्तव सिआ, से कहमेय भते ! एव गोयमा ! जण्ण ते अण्णउत्थिया एव आइक्खति जाव वत्तव सिआ, जे ते एवमाहसु मिच्छ ते एवमाहसु, अह पुण गोयमा ! एवमाइक्खामि जाव परूवेमि एव खलु समणा पडिआ समणोवासगा वालपडिआ जस्स ण एग पाणाएवि दडे निक्खित्ते से ण नो एगतवालेति वत्तव सिआ ॥ जीवा ण भते ! किं वाला पडिआ वालपडिआ ? गोयमा ? जीवा वालावि पडिआ वि वालपडिआ वि, नेरइयाण पुच्छा, गोयमा ! नेरइया वाला नो पडिआ नो वालपडिआ, एव जाव चउरिंदियाण। पर्चिदिअतिरिक्खजोणिया पुच्छा गोयमा ? पर्चिंदियतिरिक्खजोणिया वाला नो पडिआ वालपडिआ वि, मणुस्सा जहा जीवा, वाणमतरजोइसियवेमाणिया जहा नेरइया" अत्राऽयं परमार्थ —देवाना असयतत्व १ अविरतत्व २ अप्रत्याख्यानपापकर्मकत्व ३ च प्रतिपादित, तेन चारित्रमाश्रित्य

पुनस्तीर्थङ्कराणा साधूनां च वन्दनां कुर्वन्ति, तदग्रे व्याख्यान च शृण्वन्ति, स धर्मो न वा ४ । पुनर्नन्दीश्वरादौ अष्टाह्निकामहिमा देवाः कुर्वन्ति स धर्मो न वा ? ५ । अयमेवाऽर्थः सिद्धान्तालापकैः अग्रे प्रपञ्चयिष्यते । पुनर्देवाना राजप्रश्नीयोपाङ्गे ( २६ पत्रे ) धर्मत्व उक्तमस्ति । तथाहि–

"तए ण ते सूरिआभविमाणवासिणो बहवे वेमाणिया देवा देवीओ य पायत्ताणिआहिवइस्स देवस्स अतिए एअमट्ठ सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठ जाव हियया अप्पेगइआ वंदणवत्तिया अप्पेगइया पूयणवत्तियाए अप्पेगइया सक्कारवत्तियाए एय समाणवत्तियाए अप्पेगइया कोउहल्लवत्तियाए अप्पेगइया असुआइ सुणिस्सामो, सुआइ अट्ठाइ हेऊइ पसिणाइं कारणाइ वागरणाइ पुच्छिस्सामो अप्पेगइया सूरियाभस्स देवस्स वयण-मणुअत्तमाणा अप्पेगइया अन्नमन्नमणुअत्तमाणा अप्पेगइया जिणभत्तिरागेण अप्पेगइआ धम्मोत्ति अप्पेगइया जीअमेअति कट्टु" इत्यादि । अत्रालापके अप्पेगइआ जिणभत्तीए अप्पेगइआ धम्मो इति पदद्वयेऽपि प्रोक्त । केचिद्देवा धर्मनिमित्त, केचिद्देवा जिनभक्तिनिमित्त वीतरागदेवान् वन्दन्ति, तर्हि कथ न धर्मिणः ? । पुनः श्रीभगवतीसूत्रे सप्तदशशतके द्वितीयोद्देशके [ ७२२ पत्रे ], तथाहि–

"से णूण भते ! सजयविरयपडिहयपच्चक्खायपावकम्मे धम्मे ठिए असजयअविरयअपडिहयअपच्चक्खायपावकम्मे अहम्मे ठिए सजयासंजए धम्माधम्मे ठिते ? हता गोयमा ! सजयविरयजाव धम्माधम्मे ठिए, एतेसि ण भते ! धम्मसि वा अधम्मसि वा धम्माधम्मसि वा चक्किआ केइ आसइत्तए वा जाव तुअट्टित्तए वा गोयमा ! णो तिणट्ठे समट्ठे, से केण खाइ अट्ठेण भते ? एव वुच्चति जाव धम्माधम्मे ठिए ? गोयमा ! सजतविरतजाव पावकम्मे धम्मे

...मक मेथुनसेवामपि सदाशातनाभीत्या न कुर्वन्तीति एवं तेषां सामर्थ्य,
असुरिंदे असुरकुमारराया चमरचंचाए रायहाणीए सभाए चमरंसि सीहासणंसि तुडिएणं सद्धिं
भुंजमाणे विहरित्तए, नो तिणट्ठे समट्ठे, से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ नो पभू चमरे असुरिंदे चमरचंचाए रायहाणीए
ए विहरित्तए, ? अज्जो चमरस्स णं असुरिंदस्स असुरकुमाररन्नो चमरचंचाए रायहाणीए सभाए सुहम्माए माणवए
चेइयखंभे वइरामएसु गोलवट्टसमुग्गएसु बहूओ जिणसकहाओ संनिक्खित्ताओ चिट्ठंति, जाओ णं चमरस्स असु-
रिंदस्स असुरकुमाररन्नो अन्नेसिं च बहूणं असुरकुमाराणं देवाण य देवीण य अच्चणिज्जाओ वंदणिज्जाओ नम-
सणिज्जाओ नमंसणिज्जाओ सक्कारणिज्जाओ सम्माणणिज्जाओ कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं पज्जुवासणिज्जाओ भवंति तेसिं
पणिहाए नो पभू, से तेणट्ठेणं अज्जो ! एवं वुच्चइ–नो पभू चमरे असुरिंदे जाव राया चमरचंचाए जाव विहरि-
त्तए। पभू णं अज्जो ! चमरे असुरिंदे असुरकुमारराया चमरचंचाए रायहाणीए सभाए सुहम्माए चमरंसि सीहा-
सणंसि चउसट्ठीए सामाणियसाहस्सीहिं तायत्तीसाए जाव अन्नेहिं य बहूहिं असुरकुमारेहिं देवेहि य देवीहि य सद्धिं
संपरिवुडे महयाहय जाव भुंजमाणे विहरित्तए केवलं परियारिद्धीए नो चेव णं मेहुणवत्तियं" इति। पुनः [illegible]
सूत्रे तृतीयस्थानके तृतीयोद्देशके ( १५४ पत्रे ) [illegible]
[illegible] तत्र तेषां विशेषतो भणितं. [illegible]
तिष्ठि [illegible] देवो परितप्येत्, [illegible]

अधर्मत्व समागत, पर "ज्ञानदर्शनचारित्राणि मोक्षमार्गः" इत्युक्तत्वात्, न तु मोक्षमार्गमाश्रित्य । पुनः श्रीस्थानांगे तृतीय-
स्थाने चतुर्थोद्देशके ( १५९ पत्रे ), तथाहि—

"तिविहा आराहणा पन्नत्ता, तं जहा नाणाराहणा दंसणाराहणा चरित्ताराहणा" इत्युक्तत्वात् देवेषु ज्ञानाराधना
दर्शनाराधना २ चेति आराधनाद्वय विद्यते ततः कथमधर्मित्वम् ? १ ॥

पुनः श्रूयतां-श्रीस्थानांगतृतीयस्थानके चतुर्थोद्देशके ( १७३ पत्रे ), "तिविहे धम्मे भगवया पन्नत्ते, तं जहा सुअधि-
ज्झिते सुज्झातिते सुतवस्सिते, जया सुअधिज्झितं भवति तदा सुज्झातितं भवति, जया सुज्झातितं भवति तदा सुतव-
स्सितं भवति, से सुअधिज्झिते सुज्झातिते सुतवस्सिए सुतक्खाते णं भगवया धम्मे पन्नत्ते," इत्युक्तत्वाद्देवाना वीतराग-
वन्दनादिशुभध्यानवता धर्मित्वमेव । पुनः श्रीजम्बूद्वीपप्रज्ञप्त्या ( १५८ पत्रे ) प्रोक्त, केऽपि देवा जिनभक्त्या केऽपि देवा
धर्म इति कृत्वा जिनदंष्ट्रा गृह्णन्ति, तेषु धर्म एवाऽऽख्यो, तत्पाठो यथा—

"तए णं से सक्के देविंदे देवराया भगवओ तित्थगरस्स उवरिल्लं दाहिणं सकहं गेण्हइ, ईसाणे देविंदे देवराया
उवरिल्लं वामं सकहं गिण्हति, चमरे असुरिंदे असुरराया हिट्ठिल्लं दाहिणं सकहं गिण्हति, बली वइरोअणिंदे वइरो-
अणराया हिट्ठिल्लं वामं सकहं गिण्हति, अवसेसा भवणवइ जाव वेमाणिआ देवा जहारिहं अवसेसाइं [ अगमंगाइं ]
अगुवगाइ, केई जिणभत्तीए केई जिअमेअतिकट्टु केई धम्मोत्ति कट्टु गिण्हंति ।" पुनः श्रीभगवतीसूत्रे दशम-
शतके चतुर्थोद्देशके ( ५०२ पत्रे ), चमरेन्द्रादय ईशानेन्द्रान्ता देवा माणवकचैत्यस्थितसमुद्गकान्तर्वर्तिजिनदंष्ट्रा-

"पचहिं ठाणेहिं जीवा दुल्लभवोधि–अत्ताए कम्म पकरेंति, त जहा–अरहताणं अवण्ण वयमाणे १ अरहतपन्नत्तस्स धम्मस्स अवण्ण वयमाणे २ आयरिअउवज्झायाण अवण्ण वयमाणे ३ चाउवन्नस्स सघस्स अवण्णं वयमाणे ४ विपक्कतव मभचेराण देवाण अवण्ण वयमाणे ५"। पुनरपि तादृशाना धर्मवता देवाना श्लाघा कुर्वन्तस्तु निज वोधिवीज सुलभ कुर्वन्ति यदुक्त तत्रैव, तथाहि–"पचहिं ठाणेहिं जीवा सुलभवोधियत्ताए कम्म पकरेंति, त जहा–अरिहताण वण्ण वयमाणे १ अरिहतपन्नत्तस्स धम्मस्स वण्ण वयमाणे २ आयरिअ–उवज्झायाण–वण्ण वयमाणे ३ चाउवण्णस्स सघस्स वण्ण वयमाणे ४ विवक्कतवबभचेराण देवाण वण्ण वयमाणे ५" इति। पुनः श्रीजीवाभिगमसूत्रे नन्दीश्वरद्वीपवक्तव्यताया चतुरञ्जनपर्वताधिकारे (३५७ पत्रे) प्रोक्तमस्ति भवनपत्यादयो देवाश्चातुर्मासिकसावत्सरिकदिनेषु अष्टाह्निका प्रमुदितमनस्का सन्तोऽष्टौ दिवसान् यावत्कुर्वन्ति, अहो तेषा दृढो धर्मरागो वीतरागोपरि, तस्मात् कथ न ते धर्मवन्त ?, तत्पाठो यथा–

"तत्थ णं वहवे भवणवइवाणमतरजोइसियवेमाणिया देवा चाउमासियापडिवएसु सवच्छरिएसु वा अण्णेसु वहूसु जिणजम्म[ण]–निक्खमण–नाणुप्पत्ति–परिनिवाणमाइएसु य देवकज्जेसु य देवसमुदएसु य देवसमिईसु य देवसमवाएसु य देवपओअणेसु य एगतओ सहिता समुवागता सभाणा पमुइअपक्कीलिआ अट्ठाहितारूवाओ महामहिमाओ करेमाणा पालेमाणा सुहंसुहेण विहरति" इत्यादि। अतो विरतिरूपधर्ममन्तरेण सम्यक्त्वधारका देवाः स्वभावतोऽपि धर्मवन्तोऽपि जिनप्रतिमापूजाया विशेषतो धर्मभाजो ज्ञेयाः ॥ ४२ ॥

॥ इति देवाना विरतिधर्मं विना सर्वे धर्माः ॥ ४२ ॥

म्सासि आयरिअउवज्झाएहिं विज्जमाणेहिं कल्लसरीरेण णो बहुए सुए अहीए १, अहो ण मते इहलोकपडियद्धेण परलो गपरमुहेण विसयतिसिएण णो दीहे सामन्नपरिआए अणुपालिए २ अहो णं मए इड्डिरससायगरुएण भोगामिसगिद्धेण णो विसुद्धे चरित्ते फासिए ३" इति । पुनर्देवानां धर्मित्वप्रतिपादक औपपातिकसूत्रे ( ४३ पत्रे ), तथाहि—

"धम्मज्झाणे चउव्विहे चउप्पडोआरे पन्नत्ते, त जहा आणाविजए १ अवायविजए २ विवागविजए ३ सठाणविजए ४, धम्मस्स ण झाणस्स चत्तारि लक्खणा पन्नत्ता, त जहा—आणारुई १ निसग्गरुई २ उवदेसरुई ३ सुत्तरुई ४, धम्मस्स ण झाणस्स चत्तारि आलबणा पन्नत्ता, त जहा—वायणा १ पुच्छणा २ परिअट्टणा ३ धम्मकहा ४, धम्मस्स ण झाणस्स चत्तारि अणुप्पेहाओ पन्नत्ताओ तजहा—अणिच्चाणुप्पेहा १ असरणाणुप्पेहा २ एगत्ताणुप्पेहा ३ ससाराणुप्पेहा ४", इत्यत्र आलापकचतुष्टये ये आज्ञारुच्युपदेशरुचिप्रमुखा धर्मध्यानप्रकारा धर्मलक्षणानि धर्मानुप्रेक्ष्याश्चेति, तत्सर्वं देवेषु वेविद्यते ततो धर्मभाजस्ते इह च आर्तरौद्रे परिहार्यतया साधुविशेषणे धर्मशुक्ले तु आसेव्यतया इति "चउप्पडोयारे"त्ति चतुर्षु भेदलक्षणालम्बनानुप्रेक्षालक्षणेषु पदार्थेषु प्रत्यवतारः—समवतारो वक्ष्यमाणस्वरूपो यस्य तच्चतुष्प्रत्यवतारमिति, 'आणाविजए'त्ति आज्ञा—जिनप्रवचन तस्या विचयो—निर्णयो यत्र तदाज्ञाविचय, प्राकृतत्वात् आणाविजय आज्ञागुणानुचिन्तन इत्यर्थः, एव शेषपदानि अपि, नवरं अपायाः—रागद्वेषादिजन्या अनर्थाः, विपाकः—कर्मफल, सस्थानानि—लोकद्वीपसमुद्राद्याकृतयः । पुनरेतादृशेषु धर्मिषु देवेषु सत्सु ये देवा अधर्मिण इति पूत्कुर्वन्ति ते स्वकीय बोधिबीज दुर्लभ कुर्वन्तीति ज्ञेय, यदुक्त श्रीस्थानाङ्गसूत्रे पञ्चमस्थाने द्वितीयोद्देशके ( ३२१ पत्रे ), तथाहि—

"पचहिं ठाणेहिं जीवा दुल्लभबोधि–अत्ताए कम्म पकरेंति, त जहा–अरहताणं अवण्ण वयमाणे १ अरहतपन्नत्तस्स धम्मस्स अवण्ण वयमाणे २ आयरिअउवज्झायाण अवण्ण वयमाणे ३ चाउवन्नस्स सघस्स अवण्णं वयमाणे ४ विवक्कतव बभचेराण देवाण अवण्ण वयमाणे ५"। पुनरपि तादृशाना धर्मवता देवाना श्लाघा कुर्वन्तस्तु निज बोधिबीज सुलभ कुर्वन्ति यदुक्त तत्रैव, तथाहि–"पंचहिं ठाणेहिं जीवा सुलभबोधियत्ताए कम्म पकरेंति, त जहा–अरिहताण वण्ण वयमाणे १ अरिहतपन्नत्तस्स धम्मस्स वण्ण वयमाणे २ आयरिअ–उवज्झायाण–वण्ण वयमाणे ३ चाउवण्णस्स संघस्स वण्ण वयमाणे ४ विवक्कतवबभचेराण देवाण वण्ण वयमाणे ५" इति। पुनः श्रीजीवाभिगमसूत्रे नन्दीश्वरद्वीपवक्तव्यताया चतुरञ्जनपर्वताधिकारे ( ३५७ पत्रे ) प्रोक्तमस्ति भवनपत्यादयो देवाश्चातुर्मासिकसावत्सरिकदिनेषु अष्टाहिका प्रमुदितमनस्का सन्तोऽष्टौ दिवसान् यावत्कुर्वन्ति, अहो तेषा दृढो धर्मरागो वीतरागोपरि, तस्मात् कथ न ते धर्मवन्त ?, तत्पाठो यथा–

"तत्थ ण बहवे भवणवइवाणमतरजोइसियवेमाणिया देवा चाउमासियापडिवएसु संवच्छरिएसु वा अण्णेसु बहूसु जिणजम्म[ण]–निक्खमण–नाणुप्पत्ति–परिनिव्वाणमाइएसु य देवकज्जेसु य देवसमुदएसु य देवसमिईसु य देवसमवाएसु य देवपओअणेसु य एगतओ सहिता समुवागता समाणा पमुइअपक्कीलिआ अट्ठाहितारूवाओ महामहिमाओ करेमाणा पालेमाणा सुहसुहेण विहरति" इत्यादि । अतो विरतिरूपधर्ममन्तरेण सम्यक्त्वधारका देवा स्वभावतोऽपि धर्मवन्तोऽपि जिनप्रतिमापूजाया विशेषतो धर्मभाजो ज्ञेयाः ॥ ४३ ॥

॥ इति देवाना विरतिधर्म विना सर्वे धर्माः ॥ ४३ ॥

ज्ञत्ति आयरिअउवज्झाएहिं विज्जमाणेहिं कल्लसरीरेण णो बहुए सुए अहीए १, अहो ण मते इहलोकपडिबद्धेण परलोगपरम्मुहेण विसयतिसिएण णो दीहे सामन्नपरिआए अणुपालिए २ अहो ण मए इड्डिरससायगरुएण भोगामिसगिद्धेण णो विसुद्धे चरित्ते फासिए ३" इति । पुनर्देवानां धर्मित्वप्रतिपादक औपपातिकसूत्रे ( ४३ पत्रे ), तथाहि—

"धम्मज्झाणे चउव्विहे चउप्पडोआरे पन्नत्ते, तं जहा आणाविजए १ अवायविजए २ विवागविजए ३ सठाणविजए ४, धम्मस्स ण झाणस्स चत्तारि लक्खणा पन्नत्ता, त जहा—आणारुई १ निसग्गरुई २ उवदेसरुई ३ सुत्तरुई ४, धम्मस्स ण झाणस्स चत्तारि आलंबणा पन्नत्ता, तं जहा—वायणा १ पुच्छणा २ परिअट्टणा ३ धम्मकहा ४, धम्मस्स ण झाणस्स चत्तारि अणुप्पेहाओ पन्नत्ताओ तजहा—अणिच्चाणुप्पेहा १ असरणाणुप्पेहा २ एगत्ताणुप्पेहा ३ ससाराणुप्पेहा ४", इत्यत्र आलापकचतुष्टये ये आज्ञारुच्युपदेशरुचिप्रमुखा धर्मध्यानप्रकारा धर्मलक्षणानि धर्मानुप्रेक्ष्याश्चेति, तत्सर्व देवेषु सेविद्यते ततो धर्मभाजस्ते इह च आर्त्तरौद्रे परिहार्यतया साधुविशेषणे धर्मशुक्ले तु आसेव्यतया इति "चउप्पडोयारे"त्ति चतुर्षु भेदलक्षणालम्बनानुप्रेक्षालक्षणेषु पदार्थेषु प्रत्यवतारः—समवतारो वक्ष्यमाणस्वरूपो यस्य तच्चतुष्प्रत्यवतारमिति, 'आणाविजए'त्ति आज्ञा—जिनप्रवचन तस्या विचयो—निर्णयो यत्र तदाज्ञाविचय, प्राकृतत्वात् आणाविजय आज्ञागुणानुचिन्तन इत्यर्थः, एव शेषपदानि अपि, नवर अपायाः—रागद्वेषादिजन्या अनर्था', विपाक'—कर्मफल, सस्थानानि—लोकद्वीपसमुद्राद्याकृतयः । पुनरेतादृशेषु धर्मिषु देवेषु सत्सु ये देवा अधर्मिण इति फूत्कुर्वन्ति ते स्वकीय बोधिबीज दुर्लभ कुर्वन्तीति शेष, यदुक्त श्रीस्थानाङ्गसूत्रे पञ्चमस्थाने द्वितीयोद्देशके ( ३२१ पत्रे ), तथाहि—

'बारस्से'ति द्वादशवार्षिकस्य तथा कालपर्यायेण अरुणोपपातादीनि पचाध्ययनानि, तद्यथा अरुणोववाए १ वरुणोववाए २ गरुलोववाए ३ वेलधरोववाए ४ वेसमणोववाए ५, । त्रयोदशवार्षिकस्य तथोत्थानश्रुतादीनि चत्वारि, तद्यथा— उट्ठाणसुअ १ समुट्ठाणसुअ २ देवेंदोववाओ ३ नागपरिआवणिआओ त्ति ४ गाथार्थ ॥ ८५ ॥ 'चउ' चतुर्दशवर्षस्य तथा पर्यायेण आशीविषभावनां जिना ब्रुवते, नारतः, पचदशवर्षस्य तु पर्यायेणैव दृष्टिविषभावना तथैव ब्रुवते इति गाथार्थ ॥ ८६ ॥ 'सोलसेति' षोडशवर्षादिषु च पर्यायेषु एकोत्तरवर्धितेषु 'यथासख्य' यथाक्रम चारणभावना १ महास्वप्नभावना २ तेजोनिसर्ग ३ इत्येतानि त्रीणि भवन्तीति गाथार्थ ॥ ८७ ॥ 'एगू' एकोनविंशतिकस्य तु पर्यायेण दृष्टिवादो द्वादशमग, अत एव शेषलाभो ज्ञेयः इति, सपूर्ण विंशतिवर्षपर्यायेणाऽनुपाती योग्य सर्वस्य सूत्रस्य विन्दुसारादेरिति गाथार्थः ॥ ८८ ॥ ववहारं पुण आय-विलाइ जं जस्स भणिअ सुत्ते । त तेणेव उदेअ, इहरा आणाइआ दोसा ॥ ५८९ ॥ एवं दशाश्रुतस्कन्धेऽपि, तथाहि–

"तिवासपरिआयस्स निग्गथस्स कप्पइ आयारकप्प नामज्झयण, चउवासपरिआयस्स कप्पइ सूअगड नामज्झयण, दसकप्पववहारा सवच्छरपणगदिक्खिअस्से वा कप्पति, ठाणं समवायगे अ अट्ठवासपरिआयस्स, दसवासपरिआयस्स विवाहो कप्पइ, एव जाव सपुन्नवीसवरिसपरिआओ सव्वसुत्तस्स अणुवाई हवइ" इति । तथा श्रावकाणा तु श्रीसूत्रकृताङ्गनवमाध्ययने ( १८५ पत्रे ) श्रुतज्ञानलाभाभाव प्रोक्तोऽस्ति, तर्हि कुत सिद्धान्तभणन ?, तत् पाठो यथा–

"गिहे दीवमपासता, पुरिसादणिआ नरा । ते वीरा बधणुम्मुक्का, नावकखति जीविअ ॥ ३४ ॥" व्याख्या–'गृहे'

"कालक्कमेण पत्त, संवच्छरमाइणा उ जं जंमि । त तम्मि चेव धीरो, वाएज्ज सो अ कालोऽय ॥ ५८१ ॥ तिवरिसपरिआगरस उ, आयारपकप्पनाममज्झयण । चउवरिसस्स उ सम्म, सूअगड नाम अगति ॥ ५८२ ॥ अत्राऽऽचारप्रकल्पो निशीयाभिधानमध्ययन–"दसकप्पववहारा, सवच्छरपणगदिक्खिअस्सेव ठाणं समवाओत्ति अ अगेए अट्ठवासस्स ॥ ५८३ ॥ दसवासस्स विआहो, एक्कारसवासयस्स य इमे उ । खुड्डिअविमाणमाई, अज्झायणा पच नायव्वा ॥ ५८४ ॥ बारसवासस्स तहा, अरुणुववायाइ पच अज्झयणा । तेरसवासस्स तहा, उट्ठाणसुआइआ चउरो ॥ ५८५ ॥ चोद्दसवासस्स तहा, आसीविसभावण जिणा बिंति । पन्नरसवासगस्स य, दिट्ठीविसभावण तह य ॥ ५८६ ॥ सोलसवासाईसु अ, इक्कुत्तरवड्डिएसु जहसख । चारणभावण महसुवि-णभावणा तेअगनिसग्गा ॥ ५८७ ॥ एगुणवीसगस्स उ दिट्ठीवाओ दुवालसममगं । सपुण्णवीसवरिसो, अणुवाई सव्वसुत्तस्स ॥ ५८८ ॥" पचवस्तुकवृत्तौ ( ९५ पत्रे ) श्रीहरिभद्रसूरिभिः एता एव गाथा व्याख्याता सन्ति । तथाहि–'ति०' त्रिवर्षपर्यायस्यैव नारतः आचारप्रकल्पनाम निशीथाऽभिधानमध्ययन वाच्यते इति क्रिया योजनीया, चतुर्वर्षस्य तु सम्यगस्खलितस्य 'सूत्रकृत'–नामाग द्वितीयमिति गाथार्थः ॥ ८२ ॥'दसेति' दशाश्रुतकल्पव्यवहाराः त्रयोऽपि पचसवत्सरदीक्षितस्यैव, स्थान समवाय इति च अगे एते द्वे अपि अष्टवर्षस्येति गाथार्थः ॥ ८३ ॥ 'दसे' दशवर्षस्य व्याख्येति व्याख्या–प्रज्ञप्तिर्भगवती, एकादशवार्षिकस्य चाऽमूनि इति हृदयस्थो निर्देश', क्षुल्लिकाविमानादीनि अध्ययनानि कालयोग्यतामगीकृत्य पच ज्ञातव्यानि, तद्यथा खुड्डिआविमाणपविभत्ती १ महल्लिया–विमाणपविभत्ती २ अगचूलिआ ३ वगचूलिआ ४ विवाहचूलिय त्ति ५ इति गाथार्थ ॥ ८४ ॥

'बारस्से'ति द्वादशवार्षिकस्य तथा कालपर्यायेण अरुणोपपातादीनि पचाध्ययनानि, तद्यथा अरुणोववाए १ वरुणोववाए २ गरुलोववाए ३ वेलधरोववाए ४ वेसमणोववाए ५, । त्रयोदशवार्षिकस्य तथोत्थानश्रुतादीनि चत्वारि, तद्यथा— उट्ठाणसुअ १ समुट्ठाणसुअ २ देविंदोववाओ ३ नागपरिआवणिआओ त्ति ४ गाथार्थ ॥ ८५ ॥ 'चउ' चतुर्दशवर्षस्य तथा पर्यायेण आशीविषभावना जिना ब्रुवते, नारतः, पचदशवर्षस्य तु पर्यायेणैव दृष्टिविषभावना तथैव ब्रुवते इति गाथार्थः ॥ ८६ ॥ 'सोलसेति' षोडशवर्षादिषु च पर्यायेषु एकोत्तरवर्धितेषु 'यथासख्य' यथाक्रम चारणभावना १ महास्वप्नभावना २ तेजोनिसर्ग ३ इत्येतानि त्रीणि भवन्तीति गाथार्थः ॥ ८७ ॥ 'एगू' एकोनविंशतिकस्य तु पर्यायेण दृष्टिवादो द्वादशमग, अत एव शेषलाभो ज्ञेय इति, सपूर्ण विंशतिवर्षपर्यायेणाऽनुपातो योग्यः सर्वस्य सूत्रस्य विन्दुसारादेरिति गाथार्थ ॥ ८८ ॥ उवहाण पुण आय–विलाइ जं जस्स वन्निअ सुत्ते । त तेणेव उदेअ, इहरा आणाइआ दोसा ॥ ५८९ ॥ एव दशाश्रुतस्कन्धेऽपि, तथाहि–

"तिवासपरिआयस्स निग्गथस्स कप्पइ आयारकप्प नामज्झयण, चउवासपरिआयस्स कप्पइ सूअगड नामज्झयण, दसकप्पववहारा सवच्छरपणगदिक्खिअस्से वा कप्पति, ठाण समवायगे अ अढवासपरिआयस्स, दसवासपरिआयस्स विवाहो कप्पइ, एव जाव सपुन्नवीसवरिसपरिआओ सव्वसुत्तस्स अणुवाई हवइ" इति । तथा श्रावकाणा तु श्रीसूत्रकृताङ्गनवमाध्ययने ( १८५ पत्रे ) श्रुतज्ञानलाभाभाव' प्रोक्तोऽस्ति, तर्हि कुतः सिद्धान्तभणन ?, तत् पाठो यथा–

"गिहे दीवमपासंता, पुरिसादणिआ नरा । ते वीरा बधणुम्मुक्का, नावकखति जीविअ ॥ ३४ ॥" व्याख्या–'गृहे'

इयाण अत्थिताण वायावेइ तत्थत्थवेत्ति अप्पाणए वा गच्छे ठितया गिलाणइ ताण व गच्छे वायावेइ अह तेसिं आयरियाण मोत्तु अन्नो नत्थि वायणसमत्थो ते अ अघाडजोगवाही ताहे भणइ, कालं सोहेज्जह जत्तिआणि दिवसाणि दिणाणि फालो सोहिओ तत्तिआणि दिवसाणि उद्देसणकालो एगदिवसेण उद्दिस्सिस्सामो जत्तिआणि दिवसाणि पमाओ कालग्गहणे कओ, तत्तिआणि दिवसाणि उद्देसणकाला नो उद्दिसिज्जति, जे पुण अणागाढइ ता तेसिं निक्खिप्पइ" तथा समवायाङ्गसूत्रेऽपि उपासकदशाङ्गस्वरूपप्ररूपणाधिकारे साक्षादेव श्रावकाणा उपधानानि उक्तानि, तथाहि-"उवासगाण च सीलव्वयवेरमणपच्चक्खाणपोसहोववासपडिवज्जणयाओ सुअपरिग्गहो तवोवहाणाइ पडिमाओ" इति । अत्र वृत्त्येकदेशो यथा-श्रुतं-परिग्रहः, तप-उपधानानि प्रतीतानि उपलक्षणाद् व्यवहारवृत्तौ अपि यथाश्रुतग्रहण उपधान कार्यमिति ॥

॥ इति योगोपधानवहनाधिकारः ॥ ४५ ॥

ननु-दण्डकः कुत्राप्यस्ति?, किं वा एवमेव गृह्यते? उच्यते-श्रीप्रश्नव्याकरणसूत्रे ( १२२ पत्रे ) एतस्य प्रकट प्रतिपादनाद् युक्तमेव साधुना तद् ग्रहण, तथाहि-"न य अचिअत्तभत्तपाण अचियत्तपीढफलगसेज्जासथारगवत्थपत्तकम्बलदण्डगरयहरणनिसेज्जचोलपट्टगमुहपोत्तियपायपुछणाइ भायणभण्डोवहिउवगरणं॥" व्याख्या-( १२६ पत्रे ) 'न च' नैव च 'अचिअत्तस्स'त्ति अप्रीतिकारिणो गृह प्रविशति, न च-नैव च 'अचियत्तस्स'त्ति अप्रीतिकारिण सत्क गृह्णाति भक्तपानं, न च 'अचियत्तस्स'त्ति अप्रीतिकर्तुः सेवते-भजते, पीठफलकशय्यासस्तारकवस्त्रपात्रकम्बलदण्डकरजोहरणनिषद्याचोलपट्टकमुखपोतिकापादप्रोञ्छनादिभाजनभाण्डोपध्युपकरण" इति श्रीप्रश्नव्याकरणे तृतीयसवरद्वारे । पुन

श्रीप्रश्नव्याकरणप्रथमसंवरद्वारे पञ्चमभावनाद्वारे ( १०१ पत्रे ) साधो रजोहरणादिवत् दण्डकस्याऽपि संयमोपकरणत्वेन प्रोक्तत्वात्, तथाहि "पंचमं आयाणनिक्खेवण समिई, पीढ १ फलग २ सिज्जा ३ संथारग ४ वत्थ ५ पत्त ६ कंबल ७ दंडग ८ रयहरण ९ चोलपट्टग १० मुहपोत्तिग ११ पायपुछणादी १२ दुवालसविहं एयंपि संजमस्स उववूहणट्ठयाए वातातवदंसमसगसीअपरिरक्खणट्ठाए उवगरणं रागदोसरहिअं परिहरितव्वं", व्याख्या–( ११२ पत्रे )–'पंचमं'ति पंचमं भावनावस्तु आदाननिक्षेपसमितिलक्षणं, एतदेवाह–पीठादि द्वादशविधं उपकरणं प्रसिद्धं, 'एयंपी'ति एतदपि अनन्तरोदितं उपकरणं, अपिशब्दादन्यदपि संयमस्य उपबृंहणार्थतया–संयमपोषणाय तथा वाताऽऽतपदंशमशकशीतपरिरक्षणार्थतया, उपकरणं–उपकारकं उपधिं रागद्वेषरहितं क्रियाविशेषणमिदं 'परिहरिअव्व'ति परिभोक्तव्यं, न विभूषादिनिमित्तमिति भावना । एवं श्रीदशवैकालिकसूत्रेऽपि ( १५५ पत्रे ) "से भिक्खू वा भिक्खुणी वा संजयविरयपडिहयपच्चक्खायपावकम्मे दिआ वा राओ वा एगओ वा परिसागओ वा सुत्ते वा जागरमाणे वा से कीडं वा पयगं वा कुंथुं वा पिपीलियं वा हत्थंसि वा पायंसि वा बाहुंसि वा ऊरुंसि वा उदरंसि वा सीसंसि वा वत्थंसि वा पडिग्गहंसि वा कंबलंसि वा पायपुछणंसि वा रयहरणंसि वा गोच्छगंसि वा उंडगंसि वा दंडगंसि वा पीढगंसि वा फलगंसि वा सेज्जंसि वा संथारगंसि वा अन्नयरंसि वा तहप्पगारे उवगरणजाए तओ संजयामेव पडिलेहिअ पडिलेहिअ पमज्जिअ पमज्जिअ एगंतमवणेज्जा नो णं संघायमावज्जेज्जा ॥ ७ ॥ एवं श्रीभगवतीसूत्रेऽपि दण्डग्रहणं साधूनामुपदिष्टं । इत्थमेव श्रीओघनिर्युक्तिसूत्रवृत्तावपि, ( ८७ पत्रे ) "भत्तट्ठिअ आवस्सग, सोहेउं तो अइंति अवरण्हे । अब्भुट्ठाणं दंडा–इआण गहणेक्क

इत्ताण अत्थिताण वायावेइ तत्थत्थवेसि अप्पाणए वा गच्छे ठितया गिलाणइ ताण व गच्छे वायावेइ अह तेसिं आयरियाणं मोत्तु अन्नो नत्थि वायणसमत्थो ते अ अघाढजोगवाही ताहे भणइ, कालं सोहेज्जह जत्तिआणि दिवसाणि दिणाणि कालो सोहिओ तत्तिआणि दिवसाणि उद्देसणकालो एगदिवसेण उद्दिस्सिस्सामो जत्तिआणि दिवसाणि पमाओ कालग्गहणे कओ, तत्तिआणि दिवसाणि उद्देसणकाला नो उद्दिसिज्जंति, जे पुण अणागाढइ ता तेसिं निक्खिप्पइ" तथा समवायाङ्गसूत्रेऽपि उपासकदशाङ्गस्वरूपप्ररूपणाधिकारे साक्षादेव श्रावकाणां उपधानानि उक्तानि, तथाहि-"उवासगाण च सीलव्वयवेरमणपच्चक्खाणपोसहोववासपडिवज्जणयाओ सुअपरिग्गहा तवोवहाणाइं पडिमाओ" इति । अत्र वृत्त्येकदेशो यथा-श्रुत-परिग्रह', तप-उपधानानि प्रतीतानि उपलक्षणात् व्यवहारवृत्तौ अपि यथाश्रुतग्रहण उपधान कार्यमिति ॥

॥ इति योगोपधानवहनाधिकारः ॥ ४५ ॥

ननु-दण्डकः क्वाप्यस्ति?, किं वा एवमेव गृह्यते? उच्यते-श्रीप्रश्नव्याकरणसूत्रे (१२२ पत्रे) एतस्य प्रकट प्रतिपादनात् युक्तमेव साधुना तत् ग्रहण, तथाहि-"न य अचिअत्तभत्तपाण अचियत्तपीढफलगसेज्जासंथारगवत्थपत्तकंबलदंडगरयहरणनिसेज्जचोलपट्टगमुहपोत्तियपायपुंछणाइ भायणभंडोवहिउवगरण॥" व्याख्या-(१२६ पत्रे) 'न च' नैव च 'अचिअत्तस्स'त्ति अप्रीतिकारिणो गृह प्रविशति, न च-नैव च 'अचियत्तस्स'त्ति अप्रीतिकारिण सत्क गृह्णाति भक्तपान, न च 'अचियत्तस्स'त्ति अप्रीतिकर्तुः सेवते-भजते, पीठफलकशय्यासंस्तारकवस्त्रपात्रकम्बलदण्डकरजोहरणनिषद्याचोलपट्टकमुखपोतिकापादप्रोञ्छनादिभाजनभाण्डोपध्युपकरण" इति श्रीप्रश्नव्याकरणे तृतीयसंवरद्वारे । पुनः

श्रीप्रश्नव्याकरणप्रथमसवरद्वारे पञ्चमभावनाद्वारे ( १०१ पत्रे ) साधो रजोहरणादिवत् दण्डकस्याऽपि सयमोपकरणत्वेन प्रोक्तत्वात्, तथाहि "पचम आयाणनिक्खेवण समिई, पीढ १ फलग २ सिज्जा ३ संथारग ४ वत्थ ५ पत्त ६ कनल ७ दडग ८ रयहरण ९ चोलपट्टग १० मुहपोत्तिग ११ पायपुछणादी १२ दुवालसविह एयपि सजमस्स उववूहणट्ठयाए वातातवदसमसगसीअपरिरक्खणट्ठाए उवगरण रागदोसरहिअ परिहरितव", व्याख्या-( ११२ पत्रे )-'पचम'ति पचम भावनावस्तु आदाननिक्षेपसमितिलक्षण, एतदेवाह-पीठादि द्वादशविध उपकरण प्रसिद्ध, 'एयपी'ति एतदपि अनन्तरोदित उपकरण, अपिशब्दादन्यदपि सयमस्य उपबृहणार्थतया-सयमपोषणाय तथा वाताऽऽतपदशमशकशीतपरिरक्षणार्थतया, उपकरण-उपकारक उपधिं रागद्वेपरहित क्रियाविशेपणमिद 'परिहरिअव'ति परिभोक्तव्य, न विभूपादिनिमित्तमिति भावना । एव श्रीदशवैकालिकसूत्रेऽपि ( १५५ पत्रे ) "से भिक्खू वा भिक्खुणी वा सजयविरयपडिहयपच्चक्खायपावकम्मे दिआ वा राओ वा एगओ वा परिसागओ वा सुत्ते वा जागरमाणे वा से कीड वा पयग वा कुथु वा पिपीलिय वा हत्थसि वा पायसि वा बाहुसि वा ऊरुसि वा उदरसि वा सीसंसि वा वत्थसि वा पडिग्गहसि वा कबलसि वा पायपुछणसि वा रयहरणसि वा गोच्छगसि वा उडगसि वा दडगसि वा पीढगसि वा फलगसि वा सेज्जसि वा संथारगसि वा अन्नयरसि वा तहप्पगारे उवगरणयाए तओ सजयामेव पडिलेहिअ पडिलेहिअ पमज्जिअ पमज्जिअ एगतमवणेज्जा नो ण सघायमावज्जेज्जा ॥ ७ ॥ एव श्रीभगवतीसूत्रेऽपि दण्डग्रहण साधूनामुपदिष्ट । इत्थमेव श्रीओघनिर्युक्तिसूत्रवृत्तावपि, ( ८७ पत्रे ) "भत्तट्ठिअ आवस्सग, सोहेउ तो अइति अवरण्हे । अब्भुट्ठाण दडा-इआण गहणेक

इत्ताण अत्थिताण धायावेइ तत्थत्थवेत्ति अप्पाणए वा गच्छे ठितया गिलाणइ ताण घ गच्छे वायावेइ अह तेसिं आयरियाण मोसु अन्नो नत्थि घायणसमत्थो ते अ अघाढजोगवाही ताहे भणइ, काल सोहेज्जह जत्तिआणि दिवसाणि दिणाणि फाळो सोहिओ तत्तिआणि दिवसाणि उद्देसणकालो एगदिवसेण उद्दिस्सिस्सामो अत्तिआणि दिवसाणि पमाओ कालग्गहणे कओ, तत्तिआणि दिवसाणि उद्देसणकाला नो उद्दिसिज्जति, जे पुण अणागाढइ ता तेसिं निक्खिप्पइ" तथा समवायाङ्गसूत्रेऽपि उपासकदशाङ्गस्वरूपप्ररूपणाधिकारे साक्षादेव श्रावकाणा उपधानानि उक्तानि, तथाहि—"उवासगाण च सीलव्वयवेरमणपच्चक्खाणपोसहोववासपडिवज्जणयाओ सुअपरिग्गहो तवोवहाणाइ पडिमाओ" इति। अत्र वृत्त्येकदेशो यथा—श्रुत—परिग्रह', तप—उपधानानि प्रतीतानि उपलक्षणाद् व्यवहारवृत्तौ अपि यथाश्रुतग्रहण उपधान कार्यमिति ॥

॥ इति योगोपधानवहनाधिकार' ॥ ४५ ॥

ननु—दण्डक' कुत्राप्यस्ति?, किं वा एवमेव गृह्यते? उच्यते—श्रीप्रश्नव्याकरणसूत्रे ( १२२ पत्रे ) एतस्य प्रकट प्रतिपादनाद् युक्तमेव साधुना तद् ग्रहण, तथाहि—"न य अचिअत्तभत्तपाण अचियत्तपीढफलगसेज्जासंथारगवत्थपत्तकंबलदंडगरयहरणनिसेज्जचोलपट्टगमुहपोत्तियपायपुंछणाइ भायणभंडोवहिउवगरणं॥" व्याख्या—( १२६ पत्रे ) 'न च' नैव च 'अचिअत्तस्स'त्ति अप्रीतिकारिणो गृह प्रविशति, न च—नैव च 'अचियत्तस्स'त्ति अप्रीतिकारिणः सत्क गृह्णाति भक्तपान, न च 'अचियत्तस्स'त्ति अप्रीतिकर्तुः सेवते—भजते, पीठफलकशय्यासंस्तारकवस्त्रपात्रकम्बलदण्डकरजोहरणनिषद्याचोलपट्टकमुखपोतिकापादप्रोञ्छनादिभाजनभाण्डोपध्युपकरण" इति श्रीप्रश्नव्याकरणे तृतीयसंवरद्वारे । पुन

श्रीप्रश्नव्याकरणप्रथमसंवरद्वारे पञ्चमभावनाद्वारे ( १०१ पत्रे ) साधो रजोहरणादिवत् दण्डकस्याऽपि सयमोपकर-
पीढ १ फलग २ सिज्जा ३ सथारग ४ वत्थ ५ पत्त ६
णत्वेन प्रोक्तत्वात्, तथाहि "पचम आयाणनिक्खेवण समिई,
कवल ७ दडग ८ रयहरण ९ चोलपट्टग १० मुहपोत्तिग ११ पायपुछणादी १२ दुवालसविह एयपि सजमस्स उववूह-
णट्ठयाए वातातवदसमसगसीअपरिरक्खणट्ठाए उवगरण रागदोसरहिअ परिहरितव", व्याख्या-( ११२ पत्रे )-'पंचम'ति
पचम भावनावस्तु आदाननिक्षेपसमितिलक्षण, एतदेवाह-पीठादि द्वादशविध उपकरण प्रसिद्ध, 'एयपी'ति एतदपि
अनन्तरोदित उपकरणं, अपिशब्दादन्यदपि सयमस्य उपबृहणार्थतया-सयमपोषणाय तथा वाताऽऽतपदशमशकशीत-
परिरक्षणार्थतया, उपकरण-उपकारक उपाधिं रागद्वेपरहित क्रियाविशेषणमिद 'परिहरिअव'ति परिभोक्तव्य, न विभू-
पादिनिमित्तमिति भावना। एव श्रीदशवैकालिकसूत्रेऽपि ( १५५ पत्रे ) "से भिक्खू वा भिक्खुणी वा सजयविरयपडि-
हयपच्चक्खायपावकम्मे दिआ वा राओ वा एगओ वा परिसागओ वा सुत्ते वा जागरमाणे वा से कीड वा पयग वा
कुथु वा पिपीलिय वा हत्थसि वा पायसि वा बाहुसि वा ऊरुसि वा उदरसि वा सीससि वा वत्थसि वा पडिग्गहसि वा
कबलसि वा पायपुछणसि वा रयहरणसि वा गोच्छगसि वा उडगसि वा दडगसि वा पीढगसि वा फलगसि वा सेज्जसि वा
संथारगसि वा अन्नयरसि वा तहप्पगारे उवगरणजाए तओ सजयामेव पडिलेहिअ पडिलेहिअ पमज्जिअ पमज्जिअ एगत-
मवणेज्जा नो ण संघायमावज्जेज्जा ॥ ७॥ एव श्रीभगवतीसूत्रेऽपि दण्डग्रहण साधूनामुपदिष्ट । इत्थमेव श्रीओघ-
निर्युक्तिसूत्रवृत्तावपि, ( ८७ पत्रे ) "भत्तट्ठिअ आवस्सग, सोहेउ तो अइति अवरण्हे । अब्भुट्ठाण दडा-इआण गहणेक

ययणेण ॥ २११ ॥ व्याख्या-इदानीं ते साधर्मिकसमीपे प्रविशन्तः, 'भवद्भिअ त्ति' भुक्त्वा तथा 'आवस्सग सोहेउं'ति आवश्यक च-कायिकोच्चारादि 'शोधयित्वा' कृत्वेत्यर्थः, अतो अपराह्णसमये आगच्छन्ति, येन वास्तव्याना भिक्षाटनाद्याकुलत्व न भवति, वास्तव्या अपि कुर्वन्ति, किं इत्यत आह 'अब्भुट्ठाण'ति तेषा प्रविशता अभ्युत्थानादि कुर्वन्ति, 'दण्डादिताण-गहण'ति दण्डकादीना ग्रहणं कुर्वन्ति, कथ ? 'एगवयणेण'ति एकेनैव वचनेन उक्ताः सन्तः पात्रकादीन् समर्पयन्ति, वास्तव्येनोक्ते मुञ्चस्वेति ततश्च मुञ्चन्ति, अथ न मुञ्चति एकवचनेन ततो न गृह्यन्ते, मा भूत् प्रमादः इति। श्रीआवश्यकबृहद्वृत्तौ हारिभद्र्यामपि ( ५१२ पत्रे ) यथा-

"जे तुम्ह भाइणिज्जा ते आगया विआलोच्चि न पविट्ठा, तेण कहिअ तुट्ठो, इमेसिंपि रत्तिं सुभेण अज्झवसाणेण चउण्हवि केवलनाण समुप्पन्नं। पभाए आयरिआ दिसाव पलोएइ एत्ताहे मुहुत्तेण एहिंति, पोरिसिसुत्त मण्णे करेंति अच्छति, उग्घाडाए अत्थपोरिसित्ति, अतिच्चिराविते य ते देवकुलिअ गया, ते वीअराया न आढायति, दण्डओ अणेण ठविओ पडिक्कंतो आलोइए भणति-कओ वदामि ? भणति-जओ मे पडिहायति, सो चिंतेइ-अहो दुट्ठसेहा निल्लज्जत्ति" इत्यादि। एवं श्रीआवश्यकचूर्णावपि, तथाहि-उग्घाडाए अत्थ पोरसिं त अतिचरावि ते देवलिअ गया ते वीयरागाणा ढायति दंडड ठविओ पडिक्कतो" इत्यादि। एवमेव श्रीदशाश्रुतस्कन्धचूर्णावपि भिक्षुप्रतिमाऽधिकारे, तथाहि-

एगस्स आयरियस्स सयासे एगो सेहिसुओ पवइओ, सेहो पचण्ह सजयसयाण जो जो साहू एति तस्स दण्डग गहाय ठवेइ, एवं तस्स उट्ठिविगस्स अच्छतस्स अन्नो एति अन्नो जाति, तहावि सो भयव ! अतुरिअ अचवलं उवरिं दिट्ठा य

पमज्जित्ता ठवेइ, एवं बहुएण वि कालेणं न परितप्पई" इति आदान-निक्षेपणासमितौ दृष्टान्तः। इत्थमेव व्यवहारचूर्णौ अष्टमोद्देशकेऽपि यथा-दडगगाहा सुत्तपयाणि गहिआणि थेरो नाम जराए जिणो अट्ठावणानिमित्त छण्हा परितायणा पत्राणार्थं छत्तय गिण्हति दडस्स कारण पुण वत्तति दशादीण गहणकारण निसीहे कप्पे अ भणिअ, सो पुणकारण उवगरण ठवेइ एसा पुच्छा उच्यते सो दीहो दंडओ थूगेरो अ सो त दुग्गोवग्घाइचारणा निमित्त परिघहति सेसाउ गाहा उ कठा" इत्यादि। पुनर्विस्तरार्थिना श्रीनिशीथश्रीअनुयोगद्वारश्रीप्रवचनसारोद्धारादयो ग्रन्था द्रष्टव्या । ननु साधूना चतुर्दशोपकरणानि प्रतिपादितानि, तन्मध्ये दण्डकस्तु नाऽस्ति किमिति गृह्यते ? सत्य, यद्यपि तु उपधिश्चतुर्दशधा एव पर औपग्रहीकोपधिः बहुधाऽस्ति, तत्र दण्डकस्य प्रतिपादनात्। यदुक्त श्रीपचवस्तुकस्वोपज्ञवृत्तौ ( १२८ पत्रे ) श्रीहरिभद्रसूरिभिः तथाहि-उक्त ओघोपधिः औपग्रहिकमाह-"पीढग निसज्ज दडग, पमज्जणी घट्टए डगलमाई। पिप्पलग सूई नहरणि, सोहणगदुग जहण्णो उ ॥ ८१४ ॥" व्याख्या-पीठक काष्ठछगणात्मक लोकसिद्धमान, त्रेहवत्या वसतौ वर्षाकाले वा ध्रियते इति औपग्रहिक, संयतीना तु आगताभ्यागतसाधुनिमित्तमिति, निषद्या पादपुञ्छन प्रसिद्धप्रमाण, जिनकल्पिकादीना न भवति, निषीदनाभावात्, दण्डकोऽप्येवमेव, नवर निवारणाऽभावात् एषः, प्रमार्जनी वसतेर्दण्डकपुञ्छनाभिधाना एव, 'घट्टक' पात्रमुखादिकरणाय लोहमयः, 'सूची' शीवनादिनिमित्त वेण्यादिमया, नखरदनी प्रतीता लोहमय्येव, शोधनकद्वय कर्णशोधनकदन्तशोधनकाभिधान लोहमयादि, जघन्यस्तु अय जघन्य औपग्रहिक खलु उपधिरिति गाथार्थ इति वृत्तौ॥

॥ इति साधूना दण्डकग्रहणाधिकारः ॥ ४६ ॥

यपणेण ॥ २११ ॥ व्याख्या–इदानीं ते साधर्मिकसमीपे प्रविशन्त', 'भत्तट्ठिअ त्ति' भुक्त्वा तथा 'आवस्सग सोहेउ'त्ति आवश्यक च–कायिकोच्चारादि 'शोधयित्वा' कृत्वेत्यर्थः, अतो अपराह्णसमये आगच्छन्ति, येन वास्तव्याना भिक्षाटनाद्याकुलत्व न भवति, वास्तव्या अपि कुर्वन्ति, किं इत्यत आह 'अब्भुट्ठाण'ति तेषा प्रविशता अभ्युत्थानादि कुर्वन्ति, 'दण्डादिताण–गहण'ति दण्डकादीना ग्रहणं कुर्वन्ति, कथ ? 'एगवयणेण'ति एकेनैव वचनेन उक्ता सन्तः पात्रकादीन् समर्पयन्ति, वास्तव्येनोक्ते मुञ्चस्वेति ततश्च मुञ्चन्ति, अथ न मुञ्चति एकवचनेन ततो न गृह्णन्ते, मा भूत् प्रमाद इति। श्रीआवश्यकबृहद्वृत्तौ हारिभद्र्यामपि ( ५१२ पत्रे ) यथा–

"जे तुम्ह माइणिज्जा ते आगया विआलोत्ति न पविट्ठा, तेण कहिअ तुट्ठो, इमेसिंपि रत्तिं सुभेण अज्झवसाणेण चउण्हवि केवलनाण समुप्पन्नं। पभाए आयरिआ दिसाउ पलोएइ एत्ताहे मुहुत्तेणं एहिंति, पोरिसिसुत्त मण्णे करेंति अच्छति, उग्घाडाए अत्थपोरिसित्ति, अतिचिराविते य ते देवकुलिअ गया, ते वीअराया न आढायंति, दंडओ अणेण ठविओ पडिक्कंतो आलोइए भणति–कओ वदामि ? भणाति–जओ मे पडिहायति, सो चिंतेइ–अहो दुट्ठसेहा निल्लज्जत्ति" इत्यादि। एव श्रीआवश्यकचूर्णावपि, तथाहि–उग्घाडाए अत्थ पोरसिं त अतिचरावि ते देउलिअ गया ते वीयरागाणा ढायति दडउ ठविओ पडिक्कंतो" इत्यादि। एवमेव श्रीदशाश्रुतस्कन्धचूर्णावपि भिक्षुप्रतिमाऽधिकारे, तथाहि–

एगस्स आयरियस्स सयासे एगो सेट्ठिसुओ पव्वइओ, सेहो पचण्ह सजयसयाण जो जो साहू एति तस्स दंडग गहाय ठवेइ, एवं तस्स उट्ठितिगस्स अच्छतस्स अन्नो एति अन्नो जाति, तहावि सो भयवं! अतुरिअ अचवलं उवरिं दिट्ठा य

जिनप्रतिमावन्दनपूजादीना श्रावकाणा प्रत्याख्यान कार्यते तत् कस्मिन्० ? । २४ । चैत्राश्विनमासयोः अस्वाध्यायो गण्यते सूत्रपठनादौ तत् कस्मिन्० ? । २५ । निन्धनिपिद्धकुले साधुभिः आहारो गृह्यते तत् कस्मिन्० ? । २६ । श्रावका एकादश-प्रतिमा विना भिक्षा याचन्ते तत् कस्मिन्० ? । २७ । श्रावकाः प्रतिक्रमणादि कुर्वन्तः प्रथममीर्यापथिकीं प्रतिक्रमन्ति तत् कस्मिन्० ? । २८ । श्रावकैः करेमि भन्ते ! इत्यादि दण्डकोच्चारण क्रियते तत् कस्मिन्० ? । २९ । ईर्यापथिकी तस्सोत्तरी-लोकस्योद्योतकरवन्दनकप्रभृतीनां पाठः कथ्यते तत् कस्मिन्० ? । ३० । प्रत्याख्याने आकाराः कथ्यन्ते तत् कस्मिन्० ? । ३१ । श्रावकैः यदित्तुसूत्र प्रतिक्रमणे कथ्यते तत् कस्मिन्० ? । ३२ । प्रतिक्रमणादिक्रिया कुर्वद्भिः श्रावकैः उपवेशनोत्था-नादिकायचेष्टा क्रियते तत् कस्मिन्० ? । ३३ । उच्छिष्टाश्च गृह्यते तत् कस्मिन्० ? । ३४ । श्रावकैश्चोलपट्टको ध्रियते तत् कस्मिन्० ? । ३५ । शेषकाले पीठफलकपट्टिकादिपरिभोगः क्रियते तत् कस्मिन्० ? । ३६ । साधुश्राद्धाना आलोचनादि प्राय-श्चित्त च प्रदीयते तत् कस्मिन्० ? । ३७ । पौषधादिग्रहणपारणविधिः साम्प्रत विधीयते तत् कस्मिन्० ? । ३८ । सामायिक-दण्डके दुविह तिविहेणमित्येवाऽस्ति सिद्धान्ते, न तु मणेणमित्यादियुक्तिः पर साम्प्रत क्रियते तत् कस्मिन्० ? । ३९ । काय-मुखवस्त्रिकादीना पञ्चविंशतिः २५ प्रतिलेखनाः क्रियते तत् कस्मिन्० ? । ४० । साधर्मिकाणा हस्ते गृहे वा खण्डपुटकाः प्रदीयन्ते द्रम्मादीना वा लम्भनिका क्रियते तत् कस्मिन्० ? । ४१ । श्रीपर्युषणापर्वणि लोकसमक्ष छेदग्रन्थरूप श्रीकल्प-सूत्र वाच्यते तत् कस्मिन्० ? । ४२ । लौकिकटिप्पनकोपरि दीक्षादिमुहूर्त गण्यते, द्वादशमासवृद्धौ पर्युषणापर्व क्रियते तत् कस्मिन्० ? । ४३ । नव्योपाश्रया कार्यते तत् कस्मिन्० ? । ४४ । अन्यगच्छाद् उद्ग्राह्य यदाऽऽत्मीयः श्रावक. क्रियते तदा

ननु—ये एकत्रिंशद् द्वात्रिंशद्वा सिद्धान्तान् मानयन्ति, न पञ्चचत्वारिंशत् ते स्वमानितसिद्धान्ताऽनुक्तान्यपि कर्तव्यानि कुर्वन्ति न वा? उच्यते—शतशः कुर्वन्ति, ततस्तेषा प्रत्यक्ष वचनोक्तौ विरोध, तत्रार्थे ते प्रष्टव्या इत्थ—भोः! श्रावका नमस्कारान् गुणयन्ति तत् कस्मिन् सिद्धान्ते प्रोक्तमस्ति ? । १ । श्रावकाणां साम्प्रत क्रियमाणप्रतिक्रमणादिविध्यनुक्रम क्रियते तत् कस्मिन्० ?। २ । श्रावकैर्मुखवस्त्रिका गृह्यते तत् कस्मिन्० ?। ३ साधुभिः पुस्तकादीनि रक्ष्यन्ते तत् कस्मिन्० ? । ४ । ओघ १ कल्प २ चोलपट्टक ३ मुखवस्त्रिका ४ मान क्रियते तत् कस्मिन्० ? । ५ । पात्रकाणा लेपन क्रियते तत् कस्मिन्० ?। ६ । अलसेलरोगानादिकूपिका रक्ष्यते तत् कस्मिन्० ? । ७ । त्रिपणे दवरको दीयते तत् कस्मिन्० ? । ८ । झोलिकायां ग्रन्थिः प्रदीयते तत् कस्मिन्० ? । ९ । गोचरीगमने वामबाहौ झोलिका स्थाप्यते तत् कस्मिन्० ? । १० । साध्वादिभिर्मुखवस्त्रिका पाशकदवरकाभ्यां कर्णयोर्धार्यते तत् कस्मिन्० ? । ११ । श्रावका यदा वन्दन्ते तदा साधुभिर्हुङ्कारः क्रियते तत् कस्मिन्० ? । १२ । पटीप्रावरणे वामस्कन्धे आद्रियते, दक्षिण उद्घाटितो रक्ष्यते तत् कस्मिन्० ? । १३ । ओघे ऊर्णादिदशिका बध्यन्ते तत् कस्मिन्० ? । १४ । त्रिपणे कण्ठको बध्यते तत् कस्मिन्० ?। १५ । कटौ साधुभिर्दवरको बध्यते तत् कस्मिन्० । १६ । मषीभाजन रक्ष्यते तत् कस्मिन्० । १७ । गोचरीं कुर्वता [ पर्यटतां ] साधूना पश्चाद् गृहस्था भ्रमन्ति तत् कस्मिन्० ? । १८ । आर्याः साधून् आपृच्छ्य विहरणार्थं यान्ति तत् कस्मिन्० ? । १९ । आर्याणामुपकरणानि मानोपेतानि क्रियन्ते तत् कस्मिन्० ? । २० । पानीय प्रासुक कियत् काल तिष्ठति तत् कस्मिन् ? । २१ । पक्वान्न कियत्कालमविनष्ट सत्तिष्ठति तत् कस्मिन्० ? । २२ । छिम्पकादिधौतवस्त्रधावन गृह्यते तत् कस्मिन् ? । २३ ।

कार्यते तत् कस्मिन्० ? । २४ । चैत्राश्विनमासयो अस्वाध्यायो गण्यते
जिनप्रतिमावन्दनपूजादीना श्रावकाणा प्रत्याख्यान कार्यते तत् कस्मिन्० ? । २५ । निन्द्यनिपिद्धकुले साधुभिः आहारो गृह्यते तत् कस्मिन्० ? ।२६। श्रावका एकादश-
सूत्रपठनादौ तत् कस्मिन्० ? । २५ । निन्द्यनिपिद्धकुले साधुभिः आहारो गृह्यते तत् कस्मिन्० ? ।२६। श्रावका एकादश-
प्रतिमा विना भिक्षा याचन्ते तत् कस्मिन्० ? । २७ । श्रावकाः प्रतिक्रमणादि कुर्वन्तः प्रथममीर्यापथिकीं प्रतिक्रमन्ति तत्
कस्मिन्० ? । २८ । श्रावकैः करेमि भन्ते ! इत्यादि दण्डकोच्चारण क्रियते तत् कस्मिन्० ? ।२९। ईर्यापथिकी तस्सोत्तरी-
लोकस्योद्योतकरवन्दनकप्रभृतीनां पाठः कथ्यते तत् कस्मिन्० ? । ३० । प्रत्याख्याने आकाराः कथ्यन्ते तत् कस्मिन्० ?
। ३१ । श्रावकै' यवित्तुसूत्र प्रतिक्रमणे कथ्यते तत् कस्मिन्० ? ।३२। प्रतिक्रमणादिक्रिया कुर्वद्भिः श्रावकैः उपवेशनोत्था-
नादिकायचेष्टा क्रियते तत् कस्मिन्० ? । ३३ । उच्छिष्टाम्र गृह्यते तत् कस्मिन्० ? । ३४ । श्रावकैश्चोलपट्टको ध्रियते तत्
कस्मिन्० ? । ३५ । शेपकाले पीठफलकपट्टिकादिपरिभोगः क्रियते तत् कस्मिन्० ? । ३६। साधुश्राद्धाना आलोचनादि प्राय-
श्चित्त च प्रदीयते तत् कस्मिन्० ? ।३७। पौपधादिग्रहणपारणविधिः साम्प्रत विधीयते तत् कस्मिन्० ? ।३८। सामायिक-
दण्डके दुविह तिविहेणमित्येवाऽस्ति सिद्धान्ते, न तु मणेणमित्यादियुक्तिः पर साम्प्रत क्रियते तत् कस्मिन्० ? ।३९। काय-
मुखवस्त्रिकादीना पचविंशतिः २५ प्रतिलेखनाः क्रियते तत् कस्मिन्० ? । ४० । साधर्मिकाणा हस्ते गृहे वा खण्डपुटकाः
प्रदीयन्ते ब्रम्मादीना वा लम्मनिका क्रियते तत् कस्मिन्० ? । ४१ । श्रीपर्युषणापर्वणि लोकसमक्ष छेदग्रन्थरूप श्रीकल्प-
सूत्र वाच्यते तत् कस्मिन्० ? । ४२ । लौकिकटिप्पनकोपरि दीक्षादिमुहूर्त गण्यते, द्वादशमासवृद्धा पर्युषणापर्व क्रियते तत्
कस्मिन्० ? ।४३। नव्योपाश्रया कार्यते तत् कस्मिन्० ? ।४४। अन्यगच्छात् उद्ग्राह्य यदाऽऽत्मीयः श्रावकः क्रियते तदा

पूर्वं देवपूजाशत्रुंजयादियात्राकरणस्य मिथ्यादुष्कृत दाप्यते तत् कस्मिन्० ? । ४५ । तैलचूर्णादिमध्ये वस्त्रादि मलिनानि क्रियन्ते तत् कस्मिन्० ? । ४६ । एवं शतशः कर्तव्यानि क्रियमाणानि दृश्यन्ते, अत्रेदं रहस्यम्—येषु आगमेषु एतानि सन्ति ते आगमास्तैर्न मन्यन्ते, मन्यमानागमेषु न सन्ति तानि, ततो यदि एतानि तैः क्रियन्ते, तदा एतद्गर्भिता आगमा अपि माननीयाः, नो चेदेतानि कार्याणि न करणीयानि, तथा यानि दुष्टाचरणानि क्रियन्ते तानि कस्मिन् ग्रन्थे प्रोक्तानि सन्ति ? ॥

॥ इति पञ्चचत्वारिंशदागममाननाधिकारः ॥ ४७ ॥

ननु—वार्तमानिकेषु गच्छेषु [अजातेषु] निर्विरोधैः आत्मगवेषकैः पापभीरुभिः पूर्वसूरिभिः प्राक्तनग्रन्थेषु जिनप्रतिमा-पूजा तत्फलादिकं च प्रतिपादितमस्ति ?, उच्यते—शतशः स्थानेषु तन्निरूपितमस्ति, तत्रार्षे—श्रीमहानिशीथसूत्रे द्रव्यपूजा-फल यथा—"काउं पि जिणाययणेहिं मंडिअं सव्वमेइणीपीठं दाणाइ चउक्केण सुट्ठु वि गच्छिज्ज अच्चुअं न परओ ॥ १ ॥" तथा श्रीपञ्चचैत्ये गाथात्रयं चैत्यभेदपञ्चकनिरूपकं यथा—

"भत्ती १ मंगलचेइअ २ निस्सकड ३ अनिस्सचेईए वावि ४ । सासयचेइअ ५ पंचम—मुवइट्ठं जिणवरिंदेहिं ॥ १ ॥ गिह जिणपडिमाभत्ती, चेईअ १ उत्तरगपडिअम्मि । जिणबिंबे मंगलचेईयति २ समयन्नुणो बिंति ॥ २ ॥ निस्स-कडगच्छस्स य निस्सिअ ३ तदियर अनिस्सकड ४ सिद्धायणं च इम ५ चेइअपणगं विणिद्दिट्ठं ॥ ३ ॥ इति । पुनः—श्रीनिशीथमध्यलघ्वे १५ उद्देशे धूपकुसुमाञ्जलिपूजा यथा—"तओ विहिणा न्हाओ परमसुरभिधपोत्तियजुगल-

परिहिओ । सुसुराईसु अणुगम्ममाणेसु महयाधूवकुसुमवलिगघोवहारेसु कालागुरुपवरधूयसुस्सरादेअअगीअवाइअरवेणं अह्नो जिणाययणं"ति, तथा आवश्यकचूर्णौ ( ३९६ पत्रे ) श्रीवज्रस्वामिभिरपि दशपूर्वधरैः स्वयं आकाशमुत्पत्य हुताशनात् पुष्पाणि आनीय श्रावकाणां दत्त्वा जिनप्रतिमायाः पूजा पर्युषणापर्वणि कारिता, तथाहि-"एव पच्छा उप्पइओ भगवं, पत्तो पुरियं नयरिं, तत्थ सुभिक्खं तत्थ य सावगा बहुगा, एव तत्थ उह्लाहा, तत्थ य राया तच्च-उप्पइओ भगवं, पत्तो पुरियं नयरिं, तत्थ सुभिक्खं तत्थ य सावगा बहुगा, एव तत्थ उह्लाहा, तत्थ य राया तच्चण्णियसड्ढा पराजी-णिअसड्ढो, तत्थ य अम्हसयाणं सड्ढाण तेसिं च वरुड्डएण मह्लारुभणाणि वट्टंति, सयत्थ तच्चण्णियसड्ढा पराजी-यती, ताहे तेहिं राया पुप्फाणि वाराविओ, पज्जोसवणाए सड्ढा अद्दण्णा, जतो पज्जोसवणाए पुप्फाणि नत्थित्ति, ताहे सबालवुड्ढा वयरसामिं उवट्ठिआ, तुब्भे जाणह जइ तुब्भेहिं जाणएहिं पवयणं ओहामिज्जइ, एव बहुप्पगार भणिए ताहे उप्पइओ माहेसरिं गओ, तत्थ य हुयासणगिह नाम वाणमंतर, तत्थ कुंभो पुप्फाण उट्ठेइ, तत्थ भगवओ पितुमित्तो तडितु, तत्थ गतो, सो समतो भणइ-किमागमणपयोअण ?, भगवता भणित-पुप्फेहिं पयोअण, सो भणइ अणुग्गहो, ता तुब्भे गहेह जाव एमि, पच्छा चुह्लहिमवते सिरिसगास गओ, सिरीए चेइअअच्चणिया-निमित्त पउम छिण्णग, ताहे सिरीए वदित्ता निमतिओ, तं गहाय अग्गिहर एति, तत्थ कुंभ पुप्फाण छोढूण अण्णाणि तु सारियाणि, एव जंभगग-णप[रि]वुडो दिव्वेण गीअगधव्वनिनाएण आगतो आगासेण, तस्स य पउमस्स वेंटे वइरसामी, तत्थ तच्चण्णिया भणंति-अम्हं एतं पाडिहेर, अग्घ गहाय निग्गया, त विहार मोलेत्ता अरिहतघर गया, तत्थ देवेहिं महिमा कया, तत्थ लोगस्स

पूर्वं देयपूजाशत्रुंजयादियात्राकरणस्य मिथ्यादुष्कृत दाप्यते तत् कस्मिन्० ? । ४५ । तैलचूर्णादिमध्ये वस्त्रादि मलिनानि क्रियन्ते तत् कस्मिन्० ? ।४६। एवं शतशः कर्तव्यानि क्रियमाणानि दृश्यन्ते, अत्रेद रहस्यम्—येषु आगमेषु एतानि सन्ति ते आगमास्तैर्न मन्यन्ते, मन्यमानागमेषु न सन्ति तानि, ततो यदि एतानि तैः क्रियन्ते, तदा एतद्गर्भिता आगमा अपि माननीयाः, नो चेदेतानि कार्याणि न करणीयानि, तथा यानि दुष्टाचरणानि क्रियन्ते तानि कस्मिन् ग्रन्थे मोक्तानि सन्ति ?॥

॥ इति पञ्चचत्वारिंशदागममाननाधिकारः ॥ ४७ ॥

ननु—वार्तमानिकेषु गच्छेषु [अज्ञातेषु] निर्विरोधैः आत्मगवेषकैः पापभीरुभिः पूर्वसूरिभि प्राक्तनग्रन्थेषु जिनप्रतिमा-पूजा तत्फलादिक च प्रतिपादितमस्ति ?, उच्यते—शतशः स्थानेषु तन्निरूपितमस्ति, तत्रार्थे—श्रीमहानिशीथसूत्रे द्रव्यपूजा-फल यथा—"काउं पि जिणायतणेहिं मंडिअ सव्वमेइणीपीठ दाणाइ चउक्केण सुट्ठु वि गच्छिज्ज अच्चुअ न पुरओ ॥ १ ॥" तथा श्रीपञ्चचैत्ये गाथात्रय चैत्यभेदपञ्चकनिरूपक यथा—

"भत्ती १ मंगलचेइअ २ निस्सकड ३ अनिस्सचेईए वावि ४ । सासयचेइअ ५ पचम—मुवइट्ठं जिणवरिंदेहिं ॥ १ ॥ गिह जिणपडिमाभत्ती, चेईअ १ उत्तरगपडिअमि । जिणबिंबे मंगलचेईयति २ समयन्नुणो बिंति ॥ २ ॥ निस्स-कडगच्छस्स व निस्सिअ ३ तदिअर अनिस्सकड ४ सिद्धाययण च इम ५ चेइअपणग विणिदिट्ठ ॥ ३ ॥ इति । पुनः—श्रीनिशीथमध्यलघ्वे १५ उद्देशे धूपकुसुमभलिपूजा यथा—"तओ विहिणा न्हाओ परमसुरभिधपोत्तियजुगल—

"सिज्जंभव गणहरं, जिणपडिमादंसणेण पडिबुद्धं । सिरिमणगपिअ दसकालियस्स निज्जूहगं वंदे ॥ १ ॥ इति ।" श्रीऋषिमण्डलसूत्रे तथा आवश्यकचूर्णावपि (२२१ पत्रे) अष्टापदप्रासादाधिकारे यथा "भरहो य तत्थ चेइयघर करेइ वड्ढइरयणेण जोअणायाम तिगाउतुस्सेह सीहनिसादि सिद्धायतणपडिभाग अणेगखंभसयसंनिविट्ठं । एवं जहा वेयड्ढसिद्धायतण जंबूदीवपन्नत्तीए जाव झायाइ" इत्यादि । पुनः श्रीआचाराङ्गबृहद्वृत्तौ ( ८२ पत्रे ), तथाहि "अर्हत्सिद्धचैत्यतपःश्रुतगुरुसाधुसङ्घप्रत्यनीकतया दर्शनमोहनीयं कर्म बध्नाति, येन चाऽसौ अनन्तससारसमुद्रान्तःपात्या इवाऽवतिष्ठते ।" औपपातिकसूत्रे (२५) उचितप्रदान यथा "तए ण कोणीए राया तस्स पवत्तिवाइ[उ]यस्स अद्धुत्तरसयसहस्सं पिइदाण दलइ" इति । निरयावलिकाश्रुतस्कन्धे पुष्पिकाया चतुर्थाध्ययने बहुपुत्रिकाऽग्रिमभवे साधर्मिकभोजनाधिकारो यथा "तए णं रट्ठकूडे विउलअसण-पाण-खाइमसा-इमं उवक्खडावेइ, उवक्खडाविता तहेव जाव पुव्वभवे सुभद्दा जाव अज्जा जाया" इति । अत्रेदं रहस्यम्—पूर्वोक्तपूर्वाचार्यैः निजपूर्वप्रतिपादितशास्त्रेषु जिनप्रतिमापूजा—जिनप्रतिमाप्रतिष्ठा—जिनभवनकारापणसप्तदशभेदपूजा—दीपपूजौचित्यदानसाधर्मिकवात्सल्यादयो धर्माः प्ररूपिताः । पुनः श्रीपादलिप्ताचार्य—श्रीउमास्वातिवाचकादिभिः प्रतिष्ठाकल्पाः कृताः सन्ति, स्वय तु ते संविग्ना महानुभावाः शुद्धप्ररूपकाश्चासन्, ततस्तेषामपि ग्रन्थसम्मतिः मान्याः, कदाग्रह अपास्य धर्मार्थिभिरिति ॥ ४८ ॥

॥ इति जिनप्रतिमापूजाया जिनप्रतिमापूजाफलस्य चाऽधिकारः ॥ ४८ ॥

अतीव वड्ढमाणो जाओ रायावि आउट्टावितो समणोवासगो जाओ" इति । श्री आवश्यकवृत्तौ हारिभद्र्यां एवमेव सम्बन्धो, नन्दीवृत्तौ अपि। इत्थमेव श्रीआवश्यकचूर्णावपि अर्हत्प्रतिमाधिकारे यथा—"चिती सञ्ज्ञाने" सञ्ज्ञान उत्पद्यते काष्ठ-कर्मादिषु प्रकृतिं दृष्ट्वा "जहा अरिहंतपडिमाएसु इति, अरिहंता तित्थगरा तेसिं च तेसिं चेइआणि अरिहंत चेइआणि" अरिहंतप्रतिमा इत्यर्थः । तथा क्षेत्रविचारप्रकरणे—साधर्मिकभक्ति १ जिनबिम्बप्रतिष्ठा २ पुस्तकभक्ति ३ तीर्थयात्रादिक ४ सर्वं प्रकटतयाऽस्ति, तथाहि "अह दुज्ज देसविरओ, सम्मत्तरओ रओ अ जिणवयणे। तस्स वि अणुव्वयाइं, आरोविज्जंति सुद्धाइं ॥ २९ ॥ अनिआणोदारमणो, हरिसवसविसट्टकंचुयकरालो । पूएइ गुरुं संघ, साहम्मियमाइ भत्तीए ॥ ३० ॥ निअदव्वमउव्व जिणिंदभवण, जिनबिंबवरपइट्ठासु । विअरइ पसत्थपोत्थयसुतित्थतित्थयरजत्तासु ॥ ३१ ॥ अरिहंतसिद्धचेइ-अपवयणआयरिअसव्वसाहूसु । निच्च करेइ भत्तिं, तिगरणसुद्धेण भावेण ॥ ७० ॥" तथा पुनः श्रीउत्तराध्ययनचूर्णौ पुष्पपूजा, तथाहि "तित्थयरो अरिहंतो तस्स चेव भत्ती कायव्वा, सा च पूआवंदणाईहिं हवइ, पूअ च पुप्फामिसथुइ—पडिवत्तिभे-एण चउविह पि जहासत्तीए कुज्जा इति, जो सो सोच्चा धम्म पवयति सो आयरिएण भणइ—संदिसह किं मए कायव्व ? आयरिआ तस्स सार नाउण भणइ—चेइआणं विउलपूअ करेहि, समणसंघस्स य णं वयगुउणारासिं पूअ करेहि", इत्यादि। एव कल्पचूर्णौ चैत्यपूजासाधर्मिकभक्तिः प्रतिपादिता, तथाहि "भण्णइ जिणपूआए, कायवहो जइवि होइ उ कहिंवि । तहवि भत्ती[तई] परिसुद्धा, गिहीण कूवाहरणयोगा ॥ १ ॥ असदारभपवित्ता ज च गिही तेण तेसिं विन्नेया । तन्निवित्ति फलच्चिअ एसा परिभावणायमिम ॥ २ ॥" इति गाथाद्वय श्रीस्थानाङ्गवृत्तौ ( ११० पत्रे ) श्रीअभयदेवसूरिभिः प्रोचे ।

"से किं त लोगुत्तरिअ भावावस्सयं ? भावावस्सय अण्णं इमे समणे वा समणी वा सावओ वा साविआ वा तच्चित्ते तम्मणे तल्लेसे तदज्झवसिए तत्तिव्वज्झवसाणे तदट्ठोवउत्ते तदप्पियकरणे तब्भावणाभाविए अन्नत्थ कत्थइ मण अकरेमाणे उभओकाल आवस्सय करेंति" इत्येतत् सूत्रैकदेशो यथा 'तदर्पितकरणः' करणानि—तत्साधकतमानि देहरजोहरणमुखवस्त्रिकादीनि, तस्मिन्नावश्यके यथोचितव्यापारनियोगेन अर्पितानि—नियुक्तानि तानि येन स तथा, सम्यक् यथास्थानन्यस्तोपकरण इत्यर्थः। एकार्थिकानि वा विशेषणानि एतानि प्रस्तुतोपयोगप्रकर्षप्रतिपादनपराणि, अमूनि च लिङ्गविपरिणामतः श्रमणीश्राविकयोरपि योज्यानि, तस्मात् तच्चित्तादिविशेषणविशिष्टाः श्रमणादयः 'उभयकाल' उभयसन्ध्य यदावश्यक कुर्वन्ति तल्लोकोत्तरिक, भावमाश्रित्य भावश्चासौ आवश्यकं चेति वा भावावश्यकं, अत्राऽपि अवश्यकरणादावश्यकत्व तदुपयोगपरिणामस्य च सद्भावाद् भावत्व मुखवस्त्रिकाप्रत्युपेक्षणरजोहरणव्यापारादिक्रियालक्षणदेशस्य अनागमत्वात् नोआगमत्व भावनीयं" इति। पुन श्रीअनुयोगद्वारवृत्तौ श्रीवीरनिर्वाणात् सहस्रवर्षसमयसंजाते श्रीहरिभद्रसूरिभिः कृतायां २० पत्रे। एव श्रीअनुयोगद्वारचूर्णावपि (१४ पत्रे) तथाहि "तस्साहणे जाणि सरीररजोहरमुहणंतगादि यानि दव्वाणि ताणि किरिआकरणत्तणतो अप्पिआणि" इति, तथैव मलधारि—हेमचन्द्रसूरिकृताया अनुयोगद्वारवृत्तावपि (३० पत्रे), तथाहि "तदर्पितकरणः" करणानि—तत्साधकतमानि देहरजोहरणमुखवस्त्रिकादीनि तस्मिन्नावश्यके यथोचितव्यापारनियोगेन अर्पितानि नियुक्तानि करणानि येन स तथा, अमूनि च तच्चित्तादिविशेषणानि लिङ्गविपरिणामतः श्रमणीश्रावकयोरपि योज्यानि। अत्र वृत्तिद्वये चूर्णौ च तदर्पितकरण

"वासत्ताणावरिया, निक्कारण ठंति कज्जि जयणाए। हत्थच्छ[त्थ]गुलिसन्ना, पुत्तावरिआ व भासंति ॥ १२३० ॥" इति। वृत्तिर्यथा—निष्कारणे-कारणाभावे वर्षात्राण कम्बलमयः कल्पः, तेन सौत्रिककल्पान्तरितेन सर्वात्मना आवृताः तिष्ठन्ति, न कामपि लेशतोऽपि चेष्टां कुर्वन्ति, कार्ये तु समापतिते यतनया हस्तसंज्ञया अक्षिसंज्ञया अङ्गुलिसंज्ञया वा व्यवहरन्ति, 'पोत्तावरिआ' वा भाषन्ते, ग्लानादिप्रयोजने वर्षाकल्पावृता गच्छन्ति इति ॥ श्रीव्यवहारभाष्यवृत्तौ सप्तमोद्देशे (१९० पत्रे) "पुनरिह प्रमार्जनं भूम्यादेः आसेवनकाले वस्त्रोपान्तादिना आवश्यकवृत्तौ अत्र पोतशब्देन मुखवस्त्रिका प्रोच्यते नतु वस्त्रं। तथैव श्रीहरिभद्रसूरिभिर्व्याख्यातत्वात् इति विचारसारग्रन्थे लिखितमस्ति। पुनर्विवाहचूलिकाया "दयवणे पविर्ति, करेइ अह काउ वत्थसणुसुद्धी। भावखणंपि कुज्जा, तह इरिआए विमलचित्ता ॥ १ ॥ दवहि कुसुम-सेहर-भुज्जाइ वमाहिगारमज्झमि। ठवणायरिय ठविउं, पोसहसालाइ सो सीसो ॥ २ ॥ उम्मुक्कभूसणो सो, इरिआ य पुरस्सर य मुहपत्तिं। पडिलेहिऊण तत्तो, चउविहं पोसहं कुणइ ॥ ३ ॥ पुनर्व्यवहारचूर्णौ यथा [वत्ते] "वसुअणुवसुवा वि, पुत्ति पेहण पुव्वय। सामाइअ करेमाणो भणिओ कम्म निज्जरी ॥ १ ॥ पापारम पमुत्तूण, घित्तूण मुहणतर। सत्यकायविसुद्धीए, सीहो गिण्हइ पोसह ॥ २ ॥" इत्येवं। वन्दनकभाष्येऽपि, तथाहि—"वामकरगिहिअ पोत्ती, एगदेसेण वामकण्णाओ। आर-भिऊण निलाडपमज्जिआ दाहिणो कण्णो ॥ १ ॥ तह विच्छिन्न वामगजाणुं निसिऊण तत्थ। मुहपत्तिं रयहरणमज्झभागमि ठावए पुञ्जपायजुगं ॥ २ ॥ एवं सुसावओ वि हु दुवालसावत्तवंदणं दिज्जो। मुहपत्ति मज्झभागमि ठावए पुञ्जपाय-जुग ॥ ३ ॥" पुनरत्रार्थे श्रीअनुयोगद्वारसूत्रे (३० पत्रे), तथाहि—

"से किं तं लोगुत्तरिअ भावावस्सयं ? भावावस्सय जण्ण इमे समणे वा समणी वा सावओ वा साविआ वा
तच्चित्ते तम्मणे तल्लेसे तदज्झवसिए तत्तिव्वज्झवसाणे तदट्ठोवउत्ते तदप्पियकरणे तब्भावणाभाविए अन्नत्थ कत्थइ
मण अकरेमाणे उभओकाल आवस्सय करेंति" इत्येतद् सूत्रैकदेशो यथा 'तदर्पितकरणः' करणानि–तत्साधक-
तमानि देहरजोहरणमुखवस्त्रिकादीनि, तस्मिन्नावश्यके यथोचितव्यापारनियोगेन अर्पितानि–नियुक्तानि तानि येन
स तथा, सम्यक् यथास्थानन्यस्तोपकरण इत्यर्थः । एकार्थिकानि वा विशेषणानि एतानि प्रस्तुतोपयोगप्रकर्षप्रतिपादन-
पराणि, अमूनि च लिङ्गविपरिणामत' श्रमणीश्राविकयोरपि योज्यानि, तस्मात् तच्चित्तादिविशेषणविशिष्टा श्रमणा-
दयः 'उभयकालं' उभयसन्ध्य यदावश्यकं कुर्वन्ति तल्लोकोत्तरिक, भावमाश्रित्य भावश्चासौ आवश्यकं चेति वा
भावावश्यक, अत्राऽपि अवश्यकरणादावश्यकत्व तदुपयोगपरिणामस्य च सद्भावाद् भावत्व मुखवस्त्रिकाप्रत्युपेक्षणर-
जोहरणव्यापारादिक्रियालक्षणदेशस्य अनागमत्वात् नोआगमत्वं भावनीय" इति । पुन श्रीअनुयोगद्वारवृत्तौ श्रीवी-
रनिर्वाणात् सहस्रवर्षसमयसजातैः श्रीहरिभद्रसूरिभिः कृताया २० पत्रे । एव श्रीअनुयोगद्वारचूर्णावपि ( १४ पत्रे )
तथाहि "तस्साहणे जाणि सरीररजोहरमुहणतगादि यानि दव्वाणि ताणि किरिआकरणत्तणतो अप्पिआणि" इति, तथैव
मलधारि–हेमचन्द्रसूरिकृताया अनुयोगद्वारवृत्तावपि ( ३० पत्रे ), तथाहि "तदर्पितकरण" करणानि–तत्साधकतमानि
देहरजोहरणमुखवस्त्रिकादीनि तस्मिन्नावश्यके यथोचितव्यापारनियोगेन अर्पितानि नियुक्तानि करणानि येन स तथा,
अमूनि च तच्चित्तादिविशेषणानि लिङ्गविपरिणामतः श्रमणीश्रावकयोरपि योज्यानि । अत्र वृत्तिद्वये चूर्णौ च तदर्पितकरण

इति विशेषणस्य श्रमणश्रावकादिसम्बन्धिनः सहत्वमेव व्याख्यानं कृतं त्रिभिरपि ग्रन्थकृद्भिः । सूत्रे च करणशब्दस्य रजोहरण मुखवस्त्रिकादिरूप एवाऽर्थः प्रदर्शितः । पुनः श्रीआवश्यके वन्दननिर्युक्तौ (५४२ पत्रे), तथाहि—

"अवणामा दुन्नहाजाय, आवत्ता बारसेव उ । सीसा चत्तारि गुत्तीओ, तिन्नि दो अ पवेसणा ॥ १२०३ ॥
एग निक्खमणं चेव, पणवीसं विआहिआ । आवस्सगेहिं परिसुद्ध, किइकम्म जेहिं कीरइ ॥ १२०४ ॥
किइकम्मपि करिंतो, न होइ किइकम्मनिज्जराभागी । पणवीसामन्नयर, साहू ठाणं विराहिंतो ॥ १२०५ ॥"

इह आवश्यकचूर्णौ (४२ पत्रे) यथा—"दुओणतं जाए वेलाइ पढम वंदइ तहेव निप्फेडिऊण पुणो वंदइ अहाजाते सामन्ने ओणिनिक्खमणे अ सामन्ने रयहरणं मुहपोत्तिया चोलपट्टो अ ओणिनिक्खमणे अजली सीसे काऊण णीति ।" एवं श्रीअनुयोगद्वारेषु षड्विधा आवश्यकक्रिया मुखवस्त्रिका-रजोहरणादिव्यापारपूर्विका प्रोक्ता । वन्दननिर्युक्तौ च इह यथाजातावश्यक रजोहरणमुखवस्त्रिकाऽविनाभूतं दर्शितं, तच्च साधूनां श्रावकाणां च शेषचतुर्विंशत्यावश्यकवत् प्रायः समानमेव युज्यते । भावान् एव केवलानाश्रित्य वन्दनकविधेः क्वाऽपि सिद्धान्तेऽनुपलम्भात् । नन्वेवं श्रावकाणां चोलपट्टोऽपि प्रसज्यते, इति न वाच्यं, यतो यथाजातावश्यकं सामान्येन उक्तमपि पूर्वाचार्यसम्प्रदायात् किंचिद्विशेषणमेव ज्ञेयं । अन्यथा श्रमण्या अपि मुखवस्त्रिकावत् चोलपट्टः अपि प्रसज्येत । कश्चिदाह श्रावकाणां सर्वानुष्ठानेषु उत्तरासङ्गमुद्रा एव इति, तदयुक्तं, आगमे सम्प्रदाये च तथाऽनुपलम्भात्, तथाहि—

"तुंगियाए नयरीए मज्झं मज्झेणं निगच्छति, निगच्छित्ता जेणेव पुप्फवईए चेइए तेणेव उवागच्छति, उवाग-

च्छित्ता थेरे भगवंते पंचविहेण अभिगमेण अभिगच्छति, त जहा–सचित्ताण दवाणं विउसरणयाए १ अचित्ताण दवाणं अविउसरणयाए २ एगसाडिएणं उत्तरासगकरणेण ३ चक्खुप्फासे अजलिप्पगहेण ४ मणसो एगत्तीकरणेण ५ जेणेव थेरा भगवतो तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता तिक्खुत्तो आयाहिण पयाहिण करेइ, करित्ता जाव तिविहाए पज्जुवासणाए पज्जुवासति" इति श्रीभगवतीसूत्रे द्वितीयशतके पंचमोद्देशके ( १३७ पत्रे )—

अभिसेक्काओ हत्थिरयणाओ पच्चोरुहति, पच्चोरुहित्ता अवहट्टु पंच रायककुहाइ, त जहा–खग्ग १ छत्त २ उप्फेस ३ वाहणाओ ४ वालवीअणं ५, जेणेव समणे भगव महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समण भगव महावीर पचविहेण अभिगमेण अभिगच्छति, त जहा–सचित्ताण दवाण विउसरणयाए १ अचित्ताण दवाण अविउसरणयाए २ एगसाडिय उत्तरासगकरणेणं ३ चक्खुफासे अजलिपग्गहेण ४ मणसो एगत्तभावकरणेण ५ समण भगव महावीर तिक्खुत्तो आयाहिण पयाहिण करेइ, करित्ता वदति नमसति, वदित्ता नमसित्ता तिविहाए पज्जुवासणाए पज्जुवासति, त जहा–काइआए वाइआए माणसिआए, इति श्रीऔपपातिके ( १४१ पत्रे ), इत्यादि ग्रन्थेषु श्रावकाणा साधूपाश्रयादिप्रवेशे उत्तरासग साक्षादुक्तोऽस्ति । ननु नामग्राह प्रवेशानन्तरविधेयकृत्येषु श्राविकाणा तु प्रवेशेऽपि उत्तरासगो नाऽस्ति, यदुक्त श्रीभगवतीसूत्रे नवमशतके ३३ उद्देशे ( ४५७ पत्रे )—

"तए णं सा देवाणदा माहणी धम्मिआओ जाणप्पवराओ पच्चोरुहति २ बहूहिं खुज्जाहिं जाव महत्तरगवदपरिक्खित्ता समणं भगवं महावीर पचविहेण अभिगमेण अभिगच्छति, त जहा–सचित्ताण दवाण विउसरणयाए, अचि-

त्ताण दव्वाणं अविमोअणयाए विणयोणयाए गायलट्ठीए चक्खुफासे अञ्जलिपग्गहेणं मणस्स एगत्तीभावकरणेणं जेणेव समण भगव महावीरे तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता समणं भगव महावीर तिक्खुत्तो आयाहिण पयाहिण करेइ, करित्ता वदति नमसति" इति ॥

पुन –श्रीऔपपातिकसूत्रे ( १४५ पत्रे ) कोणिकभार्याः सुभद्राप्रमुखाः, तथाहि "समण भगव महावीर पचविहेण अभिगमेण अभिगच्छति, त जहा–सच्चित्ताण दव्वाण विउसरणयाए, अचित्ताण दव्वाण अविउसरणयाए, विणओणताए गायलट्ठीए चक्खुफासे अञ्जलिपग्गहेण मणसो एगत्तकरणेण समण भगव महावीर तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिण करेंति, करित्ता वदति नमसंति" इत्यादि । अत्रेद रहस्यम्–श्रावकाणा साधूपाश्रयादिप्रवेशे उत्तरासगः प्रतिपादितोऽस्ति, श्राविकाणा तु तत्रापि तदभावः, ततः कथ सामायिकादिक्रियायां उत्तरासग ?, प्रत्युत सामायिकादौ उत्तरासगोत्तारण सर्वत्र प्रतिपादितमस्ति । यदुक्त उपासकदशाया षष्ठाध्ययने ( ३७ पत्रे ), तथाहि "तए ण से कुडकोलिए समणोवासए अन्नया कयाइ पुव्वावरण्हकालसमयंसि जेणेव असोगवणिआ जेणेव पुढविसिलापट्टए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता नाममुद्दग च उत्तरिज्जग च पुढविसिलापट्टए ठवेइ, ठवित्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स अतिय धम्मपण्णत्तिं उवसपज्जित्ता ण विहरइ" 'धम्मपण्णत्तीति' श्रुतधर्मप्ररूपणादर्शनगतसिद्धान्त इत्यर्थः, इति श्रीउपासकवृत्तौ षष्ठाध्ययने । पुनरत्रैवाऽधिकारे ( ३७ पत्रे ) देवपरीक्षाऽनन्तर "तेण कालेण तेणं समएण सामी समोसढे, तए ण से कुंडकोलिए समणोवासए इमीसे काहाए लद्धट्ठे समाणे हट्ठ जहा कामदेवो तहा निग्गच्छइ जाव पज्जुवासइ" ॥ इति श्रीउपासकदशाया

पद्माध्ययने । कामदेवश्चाऽत्रैव द्वितीयाध्ययने ( २७ पत्रे ) एव निर्गतो यथा "तए ण से कामदेवे समणोवासए इमीसे कहाए आव लद्धट्ठे समाणे एव खलु समणो भगव महावीरे जाव विहरति त सेअ खलु मम समण भगव महावीर वंदित्ता नमसित्ता तओ पडिनियत्तस्स पोसह पारित्तपत्तिकट्टु एव सपेहेइ" इत्यादि । इह कुण्डकोलिकेन तदैव अन्यदा वा प्रतिपन्नपोपधेन परिमुक्तोत्तरीयेण श्रुतधर्मप्ररूपणारूपानुष्ठानं कृत । तथा—"एव सामाइअ काउ पडिक्कतो वंदित्ता पुच्छइ, सो अ किर सामाइअ करितो मउड अवणेइ, कुण्डलाणि नाममुद्द पुप्फतवोल पावारणगमादी वोसिरति" इत्यावश्यकवृत्तौ पद्माध्ययने ( ८३२ पत्रे ) प्रावारशब्दश्च सलोमपटोत्तरासंगवाचकत्वात् द्व्यर्थः, तथाहि—

"पण्हवि १ कोयव २ पवार ३ नवतए ४ तहय दाढिगाली ५ य । दुप्पडिलेहिअदूसे, एयं वितिअ भवे पणग ॥ १ ॥" इति, निशीथभाष्ये १२ उद्देशके—

"खरडो तह पूरट्ठी, सलोमपडओ तहा हवइ जीण । सदस वत्थ पल्हविमाईणमिमे उ पज्जाया ॥ १ ॥" इति प्रवचनसारोद्धारे, 'वैकक्ष्ये प्रावारोत्तरासगो बृहतिकाऽपि च', इति श्रीहेमनाममालाया, एव प्रावारशब्दस्य अर्थद्वये सति य एव वृत्तिगतप्रावरणे मादीयतिपाठानुकूलः, बहुश्रुतैराचीर्णः स एव आचरणीयतया प्रमाणं, आदिशब्दाच्च, सलोमपटादीना परिहारो भविष्यति, इत्याद्यनेकेषु स्थानेषु श्रावकाणा मुखवस्त्रिका भणिताऽस्ति, अञ्चलेन वन्दन न क्वाऽपि दृश्यते, यश्च कृष्णवासुदेवदृष्टान्तः कैश्चित्कथ्यते तत्राऽपि यथा मुखवस्त्रिकया वन्दन न भणित, तथा अञ्चलेनाऽपि नोक्त । 'यत्तु असइ पुत्तस्स अतेणं ति' आवश्यकचूर्ण्यक्षराणि दृष्ट्वा पुत्तशब्देन भ्रान्ताः सन्तस्ते अञ्चलेन वन्दनं वन्दन्ति,

त्ताण दयाणं अविमोअणयाए विणयोणयाए गायलट्ठीए चक्खुफासे अजलिपग्गहेणं मणस्स एगत्तीभावकरणेणं जेणेव समण भगव महावीरे तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता समणं भगव महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिण पयाहिण करेइ, करित्ता वदति नमसति" इति ॥

पुनः–श्रीऔपपातिकसूत्रे ( १४५ पत्रे ) कोणिकभार्याः सुभद्राप्रमुखा , तथाहि "समणं भगव महावीर पचविहेण अभिगमेण अभिगच्छति, त जहा–सच्चित्ताणं दव्वाण विउसरणयाए, अचित्ताण दव्वाणं अविउसरणयाए, विणओणताए गायलट्ठीए चक्खुफासे अञ्जलिपग्गहेण मणसो एगत्तकरणेण समण भगव महावीर तिक्खुत्तो आयाहिण पयाहिण करेंति, करित्ता वदति नमसति" इत्यादि । अत्रेद रहस्यम्–श्रावकाणा साधूपाश्रयादिप्रवेशे उत्तरासगः प्रतिपादितोऽस्ति, श्राविकाणा तु तत्रापि तदभाव', ततः कथं सामायिकादिक्रियाया उत्तरासग' ?, प्रत्युत सामायिकादौ उत्तरासगोत्तारण सर्वत्र प्रतिपादितमस्ति । यदुक्त उपासकदशाया षष्ठाध्ययने ( ३७ पत्रे ), तथाहि "तए ण से कुडकोलिए समणोवासए अन्नया कयाइ पुव्वावरण्हकालसमयसि जेणेव असोगवणिआ जेणेव पुढविसिलापट्टए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता नाममुद्दग च उत्तरिज्जंग च पुढविसिलापट्टए ठवेइ, ठवित्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स अतिय धम्मपण्णत्तिं उवसपजित्ता ण विहरइ" 'धम्मपण्णत्तीति' श्रुतधर्मप्ररूपणादर्शनगतसिद्धान्त इत्यर्थं, इति श्रीउपासकवृत्तौ षष्ठाध्ययने । पुनरत्रैवाऽधिकारे ( ३७ पत्रे ) देवपरीक्षाऽनन्तर "तेण कालेण तेण समएण सामी समोसढे, तए णं से कुडकोलिए समणोवासए इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे हट्ठ जहा कामदेवो तहा निग्गच्छइ जाव पज्जुवासइ" ॥ इति श्रीउपासकदशाया

पष्ठाध्ययने । कामदेवश्राऽत्रैव द्वितीयाध्ययने ( २७ पत्रे ) एव निर्गतो यथा "तए ण से कामदेवे समणोवासए इमीसे कहाए जाव लद्धट्ठे समाणे एव खलु समणो भगव महावीरे जाव विहरति त सेअ खलु मम समण भगव महावीर वंदित्ता नमसित्ता तओ पडिनियत्तस्स पोसह पारित्तएत्तिकट्टु एवं सपेहेइ" इत्यादि । इह कुण्डकोलिकेन तदेव अन्यदा वा प्रतिपक्षपोषणेन परिमुक्तोत्तरीयेण श्रुतधर्मप्ररूपणारूपानुष्ठान कृत । तथा–"एव सामाइअ काउ पडिक्कतो वदित्ता पुच्छइ, सो अ किर सामाइअ करिंतो मउड अवणेइ, कुंडलाणि नाममुद्द पुप्फतबोल पावारणगमादी वोसिरति" इत्यावश्यकवृत्तौ षष्ठाध्ययने ( ८३२ पत्रे ) प्रावारशब्दश्च सलोमपटोत्तरासगवाचकत्वात् द्व्यर्थ , तथाहि—

"पण्हवि १ कोयव २ पवार ३ नवतए ४ तहय दाढिगाली ५ य । दुप्पडिलेहिअदूसे, एय वितिअ भवे पणग ॥ १ ॥" इति, निशीथभाष्ये १२ उद्देशके—

"खरडो तह पूरडी, सलोमपडओ तहा हवइ जीण । सदस वत्थ पल्हविमाईणमिमे उ पज्जाया ॥ १ ॥" इति प्रवचनसारोद्धारे, 'वैकक्ष्ये प्रावारोत्तरासगो बृहतिकाऽपि च', इति श्रीहेमनाममालाया, एव प्रावारशब्दस्य अर्थद्वये सति य एव सुविहितप्राचरणे मादीयतिपाठानुकूल', बहुश्रुतैराचीर्णः स एव आचरणीयतया प्रमाण, आदिशब्दाच्च, सलोमपटादीना परिहारो भविष्यति, इत्याद्यनेकेषु स्थानेषु श्रावकाणा मुखवस्त्रिका भणिताऽस्ति, अञ्चलेन वन्दन न क्वाऽपि दृश्यते, यश्च कृष्णवासुदेवदृष्टान्तः कैश्चित्कथ्यते तत्राऽपि यथा मुखवस्त्रिकया वन्दन न भणित, तथा अञ्चलेनाऽपि नोक्त । 'यत्तू अणइ पुत्तस्स अतेण ति' आवश्यकचूर्ण्यक्षराणि दृष्ट्वा पुत्तशब्देन भ्रान्त्वा सन्तस्ते अञ्चलेन वन्दनं वन्दन्ति,

त्ताण दव्वाण अविमोअणयाए विणयोणयाए गायलट्ठीए चक्खुफासे अजलिपग्गहेण मणस्स एगत्तीभावकरणेणं जेणेव समण भगव महावीरे तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता समण भगव महावीर तिक्खुत्तो आयाहिण पयाहिण करेइ, करित्ता वदति नमसति" इति ॥

पुनः–श्रीऔपपातिकसूत्रे ( १४५ पत्रे ) कोणिकभार्याः सुभद्राप्रमुखाः, तथाहि "समण भगव महावीर पंचविहेण अभिगमेण अभिगच्छति, त जहा–सच्चित्ताण दव्वाण विउसरणयाए, अच्चित्ताण दव्वाणं अविउसरणयाए, विणओणताए गायलट्ठीए चक्खुफासे अजलिपग्गहेण मणसो एगत्तकरणेणं समण भगव महावीर तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिण करेंति, करित्ता वदति नमसंति" इत्यादि । अत्रेद रहस्यम्–श्रावकाणां साधूपाश्रयादिप्रवेशे उत्तरासग प्रतिपादितोऽस्ति, श्राविकाणा तु तत्रापि तदभावः, ततः कथ सामायिकादिक्रियायां उत्तरासग ?, प्रत्युत सामायिकादौ उत्तरासगोत्तारण सर्वत्र प्रतिपादितमस्ति । यदुक्त उपासकदशाया षष्ठाध्ययने ( ३७ पत्रे ), तथाहि "तए ण से कुडकोलिए समणोवासए अन्नया कयाइ पुव्वावरण्हकालसमयसि जेणेव असोगवणिआ जेणेव पुढविसिलापट्टए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता नाममुद्दग च उत्तरिज्जगं च पुढविसिलापट्टए ठवेइ, ठवित्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स अतिय धम्मपन्नत्तिं उवसपजित्ता ण विहरइ" 'धम्मपन्नत्तीति' श्रुतधर्मप्ररूपणादर्शनगतसिद्धान्त इत्यर्थ, इति श्रीउपासकसूत्रे षष्ठाध्ययने । पुनरत्रैवाऽधिकारे ( ३७ पत्रे ) देवपरीक्षाऽनन्तर "तेण कालेण तेणं समएण सामी समोसढे, तए ण से कुंडकोलिए समणोवासए इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे हट्ठ जहा कामदेवो तहा निग्गच्छइ जाव पज्जुवासइ" ॥ इति श्रीउपासकदशाया

ननु–केषाचिद् गच्छे "होइ मगलं" इति पठंति, आत्मना गच्छे तु "हवइ मगल" इति तत्कथम्? उच्यते—सत्य, यद्यपि 'हवइ' 'होइ' इत्येतयो पाठयोः अत्रार्थं प्रति न कश्चिद्विशेषः, होइ मंगलमिति च पाठे प्रत्युत श्लोको नाऽधिकाक्षरो भवति, तथापि हवइ मगलमित्येव पठनीय महानिशीथाद्यनेकागमेषु अस्यैव पाठस्य प्रतिपादितत्वात्, नमस्कारपटलनमस्कारपजिकादिषु ग्रन्थेषु च इत्थमेव श्रेयोहेतुत्वेन समर्थितत्वात्, बहुश्रुतैः आदृतत्वाच्च प्रयोगः। होइ मगलमिति पाठो मिथ्या विसवादवत्त्वात् यथा शुक्तिकाशकले च रजतज्ञान। ननु–आवश्यके नमस्कारनिर्युक्तौ 'पढम होइ मगल' इति पाठेन संवादसद्भावात्, विसवादवत्त्वादिति असिद्ध, सत्य, किन्तु अयं नमस्कारनिर्युक्तिपाठो न नमस्कारपाठनियामकोऽव्यभिचारात्, तथाहि–तत्रैव 'बीअ हवइ मगल' इत्युक्त। ननु–'पढम हवइ मगलं' इति पाठो न उक्तः छन्दोभगहेतुत्वात्, छन्दो ह्यत्र श्लोकः, स चाऽष्टाक्षरप्रमाणपाद एव भवति नाऽन्यथा। अय च नवाक्षरपाद इति चेत्, सत्यं, किन्तु आर्षश्लोकेषु बहुशो नवाक्षरस्याऽपि पादस्य दर्शनात्, तथाहि–दशवैकालिके 'भमरो आवियइ रसं' १ तथा 'न य कोइ उवहम्मइ' २ 'छत्तस्स य धारणट्ठाए' ३ तथा 'अह च भोगरायस्स त चसि अधगवण्हिणो' ४ तथैव श्रीउत्तराध्ययने (३४८ पत्रे) एकादशाध्ययनेऽपि, तथाहि—

"जहा से कम्बोयाण, आइन्ने कथए सिया। आसे जवेण पवरे, एव हवइ बहुस्सुए॥ १६ इत्यादि पूर्वश्रुतधरवचनानुयायित्वात्, 'हवइ मगल' इति अयमेव पाठः सर्वामुपादेय इति स्थितम्। एव विचारामृतसंग्रहेऽपि (७७ पत्रे) हवइ मगलमिति पाठः समर्थितस्तथा च तत्पाठलेशः। अपर च–आवश्यकादर्शेषु 'हवइ' 'होइ' इति पाठद्वयमपि दृश्यते,

उग्गकुलाणि वा खत्तियकुलाणि वा इक्खागकुलाणि वा हरिवंसकुलाणि वा एसिअकुलाणि वा वेसिअकुलाणि वा गंडागकुलाणि वा कोट्टागकुलाणि वा गामरक्खकुलाणि वा बुक्कासकुलाणि वा अण्णयरेसु वा तहप्पगारेसु वा कुलेसु वा अदुगुंछिएसु अगरहिएसु असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा फासुअं जाव पडिग्गाहिज्जा" । व्याख्या–स भिक्षुर्भिक्षार्थं प्रवेष्टुकामो यानि पुनरेवंभूतानि कुलानि जानीयात् तेषु प्रविशेदिति सम्बन्धः, तद्यथा–उग्रा–आरक्षिकाः १ भोगा–राज्ञः पूज्यस्थानीयाः २ राजन्याः–सखिस्थानीयाः ३ क्षत्रिया–राष्ट्रकूटादयः ४ इक्ष्वाकवः–ऋषभस्वामिवंशिकाः ५ हरिवंशा–हरिवंशजा अरिष्टनेमिप्रशस्थानीयाः ६ 'एसिअ'त्ति गोष्ठाः ७ वैश्या–वणिजः ८ गण्डको–नापितो यो हि ग्रामे उद्घोषयति ९ कोट्टागाः–काष्ठतक्षकाः वर्धकिन इत्यर्थः १० बोक्कशालियाः तन्तुवायाः ११ कियन्तो वा वक्ष्यन्ते इत्युपसंहरति, अन्यतरेषु वा तथाप्रकारेषु अजुगुप्सितेषु कुलेषु नानादेशविनेयसुखप्रतिपत्त्यर्थं पर्यायान्तरेण दर्शयति, अगर्ह्येषु यदि वा जुगुप्सितानि–चर्मकारकुलादीनि गर्ह्याणि–दास्यादिकुलानि, एतद्विपर्ययभूतेषु कुलेषु, लभ्यमानमाहारादिकं प्रासुकमेषणीयमिति मन्यमानो गृह्णीयादिति ।" पुनर्निशीथचूर्णौ भक्तपानग्रहणादौ एते निषिद्धाः, तथाहि–"कालावधीए जे ठप्पा कया ते निज्जूढा" भक्तपानग्रहणादौ निषिद्धाः, "जे कुला जत्थ विसए वि जुगिआ ते दुगंछिआ" अभोज्या इत्यर्थः, कम्मेण १ सिप्पेण वा २ जाइए वा ३ कम्मे न्हाविआइणो १ सप्पे वि छारन्हाविआइणो छिंडान्हाविआ तेरिमाजाइए पाणाइणो २ । पुनरत्रार्थे जातमृतकसूतकपिण्डनिषेधाऽधिकाररूपं एकविंशतितमं प्रश्नोत्तरं विलोक्यम् ॥ ५१ ॥

॥ इति साधूनां भक्तपानग्रहणाय योग्यायोग्याधिकारः ॥ ५१ ॥

मगलमहासुअखधस्स वक्खाण त महया य पबधेण अणतगमपज्जवेहिं सुत्तस्स पिहुब्भूयाहिं निज्जुत्तिभासचूणीहिं जहेव अणतनाणदसणधरेहिं तित्थयरेहिं वक्खाणिअ तहेय समासओ वक्खाणिज्जत आसि, अहऽन्नया कालपरिहाणि दोसेण तओ निज्जुत्तिभासचूणीओ वुच्छिन्नाओ, इओ अ वच्चतेण कालेण तेण समएण महड्ढीपत्ते पयाणुसारी वइरसामी नाम [ दुवालसग सुअहरे ] पुबदसंगसुअहरो समुप्पन्नो, तेणेसो पचमगलमहासुअखधस्स उद्धारो मूलसुत्तस्स मज्झे लिहिओ" इति महानिशीये । तथा नमस्कारपंजिका–सिद्धचक्रादौ "पचपयाण पणतीस वण्ण चूलाइ वण्ण तित्तीस । एव इमो समप्पति फुडमक्खरमट्ठसट्ठीए ॥ १ ॥ तथा अष्टप्रकाश्या आग्नेयादिविदिग्व्यवस्थितेषु दलेषु पादचतुष्क "एसो पच नमुक्कारो, सबपावप्पणासणो । मगलाण च सवेसिं, पढम हवइ मगल" ॥१॥ इति ध्यायेत्, तथा वृहन्नमस्कारफले "सत्त पण सत्त सत्त य, नवक्खर पमाण पयडपचपय । तित्तीसक्खरमूल, सुमरह नवकारवरमत ॥ १ ॥" इत्याद्यनेकानि स्थानानि अष्टषष्टिवर्णात्मकनमस्कारदर्शकानि । इति नमस्कारस्याऽष्टषष्ठ्यक्षरप्रमाणत्व, एव श्रीसघाचारबृहद्वृत्तौ ( २१० पत्रे ) श्रीदेवेन्द्रसूरिभिरपि हवइ मगलमेव पाठः समर्थित । तथा च तत्पाठ —सिद्धान्तेऽपि स्फुटाक्षरै हवइ मगलमिति भणित, तथाहि महानिशीयचतुर्थाध्ययनसूत्र–"तहेव तदवत्थाणुगमिअ इक्कारसपयपरिच्छिन्न तिआलावग तित्तीसक्खरपरिमाण एसो पचनमुक्कारो, सबपावप्पणासणो । मगलाण च सवेसिं, पढम हवइ मगल ॥ १ ॥" इम चूलति अहिज्जतीति प्रकृत । तदैव हवइ मगलमित्यस्य साक्षादागमे भणितत्वात् प्रभुश्रीवज्रस्वामिप्रभृति सुवहुश्रुतसुविहितसविग्नपूर्वाचार्यसमतत्वाच्च पढम हवइ मगलमिति पाठेन अष्टषष्ठ्यक्षरप्रमाण एव नमस्कार पठनीय । तथा च महानिशीये—

तथा उपागछेद-ग्रन्थकर्म-ग्रन्थाद्यनेकागमानुयोगसूत्रधरैः श्रीमलयगिरिभि आवश्यक विवृणद्भि, "अरिहंतनमुक्कारो" इत्यादिका "एसो पंचे"ति पर्यन्ताः षड्गाथाः "हवइ मंगल"मिति पाठत एव लिखिता सन्ति, एव प्रवचनसारोद्धारवृत्तौ अपि हवइ मंगलमिति पाठः समर्थितोऽस्ति, तथाहि—यद्यप्यत्र 'हवइ' 'होइ' इत्यनयो पाठयोरर्थे न कश्चिद्विशेषः, तथापि अष्टषष्ठ्यक्षरार्थे नवकारे हवइ इति पठितव्य, ततो नमस्कारावलिकादिग्रन्थेषु यन्त्रपञ्चे उक्तमस्ति, विशेषकार्योत्पत्तौ चूलिकाध्यान यदा क्रियते तदा द्वात्रिंशद्दलकमले द्वात्रिंशद्दलेषु द्वात्रिंशदक्षराणि स्थापयित्वा त्रयस्त्रिंशत्तम अक्षर मध्यकर्णिकाया स्थाप्यते, ततो ध्यान क्रियते, ततो 'होइ' पाठे द्वात्रिंशद्भिरक्षरैः द्वात्रिंशत्कमलदलान्येव पूर्यन्ते पर मध्यकर्णिका शून्यैव तिष्ठति, ततो हवइ मंगलमिति पाठो युक्त, तथा चैतत्सवादि पूर्वाचार्यकृतप्रकरणवचन "अडसट्ठि अक्खरपरमाणू, जिणसासननवकारपहाणू। अंतिमचूला तिन्नि पसिद्धा, सोलसअट्ठनवकार सिद्ध ॥ १ ॥" न च पाश्च नमस्कारसूत्रे नमस्कारस्य सप्तषष्ठ्यक्षरवत्त्व प्रोक्तमस्ति, यतः 'एसो पंचनमुक्कारो' इत्यादिगाथाऽपि नमस्कारसूत्रसम्बन्धिनी नाऽस्ति, किं तु निर्युक्तिसत्का, ततो "ग्रामो नाऽस्ति, कुतः सीमा ?" इति न्यायात् कथ सप्तषष्ठ्यक्षरवत्त्व नमस्कारस्य ! मूलसूत्रनिर्युक्तिभाष्यचूर्णिवृत्तिटिप्पनकादिषु क्वाऽपि निर्दिष्ट न दृश्यते न श्रूयते च। अष्टषष्ठ्यक्षरप्रमाणत्व च महानिशीथादिषु स्पष्टमेव उद्दिष्ट, तथाहि—

"तहेव तयत्थाणुगमिअ इक्कारसपयपरिच्छिन्न तिआलावग तित्तीसक्खरपरिमाण एसो पंचनमुक्कारो, सव्वपावप्पणासणो। मंगलाणं च सव्वेसिं, पढम हवइ मंगलं इयचूल ति "अहिज्जति" महानिशीथे तथा—'एअ तु ज पंच-

अचिंतचिंतामणिकप्पभू-अस्स पचमगलमहासुअखधस्स ण सुत्तत्थं पन्नत्त । त जहा–जे ण पचमगलमहासुअखधे से ण सयलागमतरोववत्ती तिलतिल्ल १ कमलमयरंद २ सव्वलोगपचत्थिकायमिव ३ जहत्थ किरियाणुवायसम्भूय गुणुकित्तणे जहिच्छियफलपसाहगे चेव परमथुइवाए सा य परमथुई केसिं कायवा सव्वजगुत्तमाण सव्वजगुत्तमे अ जे केइ भूए जे केइ भवति जे केइ भविस्सति, ते सव्वेवि, अरिहतादओ चेव, नो ण अन्नेति, ते अ पचहा–अरिहंते १ सिद्धे २ आयरिए ३ उवज्झाए ४ साहुणो अ ५, तत्थ एएसिं चेव गच्छस्स सब्भाओ इमो, त जहा–सनरामरासुरस्स ण सव्वस्स चेव जगस्स अट्ठमहापाडिहेराइपूआइउवलक्खिय अण्णन्नसरिसमचिंतमप्पमेअ केवलाहिट्ठिअ, पवरुत्तमतत्त अरिहति त्ति अरहंता अरिहता ११। एव अतए एएसिं नमुकारो 'एसो पचनमुक्कारो' किं करिज्जा ? सव्वं पाव नाणावरणीआइकम्म निस्सेस त पयरिसेण दिसो दिसिं नासइ 'सव्वपावप्पणासणो' एस चूलाए पढमो उद्देसो "एसो पचनमुक्कारो, सव्वपावप्पणासणो" किंविहो उ ? मग्गे निव्वाणसुहसाहणिक्खमो सम्मदसणाइआराहओ, अहिंसालक्खणो धम्मो त मे लाइज्जति मगल मम भवाओ ससाराओ गमिज्जाओ तारिज्ज वा मंगल २ बद्धपुट्ठनिकाइअट्ठपयार कम्मरासिं मे गालिज्जा विज्जविज्जत्ति मगल, १ एएसिं सव्वेसिं अन्नेसिं च मगलाण किं ? पढम आइए अरिहताईण थुई चेव मगलत्ति समासत्थुत्ति" सघाचारवृत्तौ ( २१८ पत्रे ) ॥

॥ इति "होइ मगल" इति पाठनिषेधाधिकारः ॥ ५२ ॥

ननु–अशन-पान-खादिम-स्वादिमाना आहाराणा विवेचन कथं ज्ञायते ?। उच्यते—शास्त्रसम्मत्या तदवबोधात्, का शास्त्रसम्मतिः ?, इत्याह–श्रीमत्खरतरगच्छाधिराज–श्रीजिनभद्रसूरिपट्टपूर्वाचलप्रभाकरश्रीजिनचन्द्रसूरिशिष्य–श्रीमेरुसु-

"एअ तु ज पचमगलमहासुअखधस्स वक्खाणं त महया पबंधेण अणतगमपज्जवेहिं सुत्तस्स य पि हु भूआहिं निज्जुत्तिभासचूण्णीहिं जहेव अणतनाणदसणधरेहिं तित्थयरेहिं वक्खाणित तहेव समासओ वक्खाणिज्जत आसि, अह अन्नया कालपरिहाणिदोसेण ताओ निज्जुत्तिभासचूण्णीओ वुच्छिन्नाओ, इओ अ वच्चतेण कालसमएण महड्ढीपत्ते पयाणुसारी वइरसामी नाम दुवालसगसुअहरे समुप्पन्ने, तेणसो पचमगलसुयखधस्स उद्धारो मूलसुत्तस्स मज्झे लिहिओ, मूलसुत्त पुण सुत्तत्ताए गणहरेहिं अत्थत्ताए अरिहतेहिं भगवतेहिं धम्मतित्थयरेहिं तिलोयमहिएहिं वीरजिणिंदेहिं पन्नवि अति २। एस वुड्ढसंपयाओ, इत्थ जत्थ जत्थ पय पएणाणुलग्ग सुत्तालावग न संभज्झइ तत्थ तत्थ सुअहरेहिं कुलिहिअदोसो न दायव्वो किं तु जो सो एअस्स अचिंतचिंतामणिकप्पभूअस्स महानिसीहसुअखधस्स पुव्वायरिसो आसि, तहिं चेव खडाखडीए उद्देहिआएहिं हेऊहिं महवे पत्तगा परिसाडिआ तहावि अच्चतसुमहत्थाइसय इम महानिसीहसुअखध कसिणपवयणस्स परमसारभूयं, परं तत्त महत्थतिकलिऊण पवयणवच्छल्लत्तणेण तहा भवसत्तोवयारअ च काउ, तहा य आयहिअट्ठाए आयरिअहरिभद्देणं ज तत्थायरिसे दिट्ठ त सव्व समईए सोहिऊण लिहिअति, अन्नेहिं पि सिद्धसेणदिवायरवुड्ढवाईजक्खसेणदेवगुत्तजसवद्धणखमासमणसीसरविगुत्तनेमिचदजिणदासगणिखमगसच्चसिरिपमुहेहिं जुगप्पहाणसुअहरेहिं बहुमन्निअमेण ति"। अत्र सूत्रं व्याख्यायते, अस्य व्याख्यान—यदेव श्रीवज्रस्वामिना छेदग्रन्थमध्ये लिखित तदेव भक्तिबहुमानातिशयतो विशेषतश्च बहुभव्यसत्त्वोपकारकमिति कृत्वा दर्श्यते। तथाहि—

"से भयव किमेयस्स अचिंतचिंतामणिकप्पभूअस्स पचमगलमहासुअखधस्स सुत्तत्थं पन्नत्त ? गोयमा ! इय एयस्स

अचिंतचिंतामणिकप्पभू-अस्स पचमगलमहासुअखधस्स णं सुचत्थं पवच्च । तं जहा—जे ण पचमगलमहासुअखधे से ण सयलागमतरोववत्ती तिलतिल्ल १ कमलमयरद २ सबलोगपचत्थिकायमिव ३ जहत्थ किरियाणुवायसब्भूय गुणुक्कित्तणे जहिच्छियफलपसाहगे चेव परमथुइवाए सा य परमथुई केसिं कायवा सबजगुत्तमाण सबजगुत्तमे अ जे केइ भूए जे केइ भवति जे केइ भविस्सति, ते सवेवि, अरिहतादओ चेव, नो ण अन्नेति, ते अ पचहा—अरिहते १ सिद्धे २ आयरिए ३ उवज्झाए ४ साहुणो अ ५, तत्थ एएसिं चेव गच्छस्स सब्भाओ इमो, त जहा—सनरामरासुरस्स ण सबस्स चेव जगस्स अट्ठमहापाडिहेराइपूआइवलक्खिय अण्णन्नसरिसमचिंतमप्पमेअ केवलाहिट्ठिअ, पवरुत्तमतत्त अरिहति त्ति अरहंता अरिहता ११। एय अतए एएसिं नमुक्कारो 'एसो पचनमुक्कारो' किं करिज्जा ? सब पाव नाणावरणीआइकम्म निस्सेस त पयरिसेण दिसो दिसिं नासइ 'सबपावप्पणासणो' एस चूलाए पढमो उद्देसो "एसो पचनमुक्कारो, सबपावप्पणासणो" किंविहो ऊ ? मग्गे निघाणसुहसाहणिक्खमो सम्मदसणाइआराहओ, अहिंसालक्खणो धम्मो त मे लाइज्जति मंगल मम भवाओ ससाराओ गमिज्जाओ तारिज्ज वा मगल २ बद्धपुट्ठनिद्धत्तनिकाइअट्ठपयार कम्मरासिं मे गालिज्जा विज्जविज्जत्ति मगल, १ एएसिं सवेसिं अन्नेसिं च मगलाण किं ? पढम आइए अरिहताईण थुई चेव मगलंत्ति समासत्थुत्ति" सघाचारवृत्तौ ( २१८ पत्रे ) ॥

॥ इति "होइ मगल" इति पाठनिषेधाधिकारः ॥ ५२ ॥

ननु—अशन-पान-खादिम-स्वादिमाना आहाराणा विवेचन कथं ज्ञायते ?। उच्यते—शास्त्रसम्मत्या तदवबोधात्, का शास्त्रसम्मतिः ?, इत्याह—श्रीमत्खरतरगच्छाधिराज—श्रीजिनभद्रसूरिपट्टपूर्वाचलप्रभाकरश्रीजिनचन्द्रसूरिशिष्य—श्रीमेरुसु-

"एअ तु ज पचमगलमहासुअखधस्स वक्खाणं त महया पबंधेण अणतगमपज्जवेहिं सुत्तस्स य पि हु भूआहिं निज्जुत्ति-भासचूण्णीहिं जहेव अणतनाणदसणधरेहिं तित्थयरेहिं वक्खाणित तहेव समासओ वक्खाणिज्जत आसि, अह अन्नया कालपरिहाणिदोसेण ताओ निज्जुत्तिभासचूण्णीओ वुच्छिन्नाओ, इओ अ वच्चतेण कालसमएण महड्ढीपत्ते पयाणुसारी वइरसामी नाम दुवालसगसुअहरे समुप्पन्ने, तेणसो पचमंगलसुयखधस्स उद्धारो मूलसुत्तस्स मज्झे लिहिओ, मूल-सुत्त पुण सुत्तत्ताए गणहरेहिं अत्थत्ताए अरिहंतेहिं भगवतेहिं धम्मतित्थयरेहिं तिलोयमहिएहिं वीरजिणिंदेहिं पन्नवि अति २। एस वुड्ढसपयाओ, इत्थ अत्थ जत्थ पय पएणाणुलग्ग सुत्तालावग न सवज्झइ तत्थ तत्थ सुअहरेहिं कुलिहिअदोसो न दायवो किं तु जो सो एअस्स अचिंतचिंतामणिकप्पभूअस्स महानिसीहसुअखधस्स पुवायरिसो आसि, तहिं चेव खडाखंडीए उद्देहिआएहिं हेउहिं बहवे पत्तगा परिसाडिआ तहावि अच्चतसुमहत्थाइसय इम महानिसीहसुअखध कसि-णपवयणस्स परमसारभूयं, परं तत्त महत्थतिकलिऊण पवयणवच्छल्लत्तणेण तहा भवसत्तोवयारअ च काउ, तहा य आयहिअट्ठाए आयरिअहरिभद्देणं ज तत्थायरिसे दिट्ठ त सव समईए सोहिऊण लिहिअति, अन्नेहिं पि सिद्धसेणदिवायर-वुड्ढवाईजक्खसेणदेवगुत्तजसवद्धणखमासमणसीसरविगुत्तनेमिचदजिणदासगणिखमगसच्चसिरिपमुहेहिं जुगप्पहाणसुअहरेहिं बहुमन्निअमेअ ति"। अत्र सूत्रं व्याख्यायते, अस्य व्याख्यान—यदेव श्रीवज्रस्वामिना छेदमन्थमध्ये लिखित तदेव भक्तिबहुमानातिशयतो विशेषतश्च बहुभव्यसत्त्वोपकारकमिति कृत्वा दर्श्यते। तथाहि—

"से भयवं किमेअस्स अचिंतचिंतामणिकप्पभूअस्स पचमगलमहासुअखधस्स सुत्तत्थं पन्नत्त? गोयमा! इय एयस्स

भ्रमेद दूग्ध दधि सूरणा मडकादिक जाणवो, तथा च भणित–"असण भोअण सत्तूग, मुगाजगराइखज्जग विहीय। खीरणाई सूरणाई, मडग पमिई अ विन्नेअ ॥ १ ॥" आछण जवोदक तुषोदक तदुलोदक उष्णोदक शुद्धविकट अप्काय समग्र पनक जाणवु, तद्यथा–"पाण सोवीरजवो–दगाइ चित्त सुराइअं चेव । आउकाओ सव्वो, कक्कडगज लाइअ च तहा ॥ २ ॥ अत्र चित्त सुराइअमिति चित्र नानाप्रकार काष्ठ पिष्टजातिभेदभिन्न सुरामधु आदिशब्दतो द्राक्षा शर्करा पानकादि अप्काय सगलउ कर्कटी चिर्भटी प्रमुखनो जल तथा कालिंग जलादिक सगलु जाणवु ॥ २ ॥ नालिकेर खर्जूर द्राक्षा भृष्टधान्यादिक आम्रफल रंभाफल कर्कटी फणसादिक पलुसुपुणि सगलो खादिम जाणवु, तथा च भणित च "भत्तो सदताई, खर्जूर नालिकेरदक्खाई। कक्कडअवगपणसाइ, वहुविह खाइम नेय ॥ १ ॥ दतवण तंबोल, सुठि पिप्पली मिरच हरितकी विभीतकतुलसी प्रमुख स्वादिम जाणवु, तथा च भणित–"दतवण तबोल, चित्त तुलसी यहेडमाई अ। महु पिप्पली सुठाई, अणेगहा साइम नेय ॥ १ ॥" एव तपागच्छनायकश्रीसोमसुन्दरसूरिपट्टपूर्वाचल-भास्करश्रीमुनिसुन्दरसूरिकृतषडावश्यकबालावबोधेऽपि, तथाहि–

चिहु प्रकारे आहारस्यु असण वा पाण वा खाइम वा साइम वा अशन कहता–शालि ज्वारि वरटी प्रमुख सर्व ओदन मुग्नादिक सर्व कठउल सातुयादिक सर्व लोट पेयादिक सर्व तिमज मोदकादिक सर्व पकवान सूरणादिक सर्वकद मडकादिक सर्व केलवी वस्तु ए सर्व अशन कहिउ, वली वेसण विरहाली आमला सैंधव कचठिपत्र लींबुइ लूण हींग ए अशन मांहि आवइ १ । पान कहता पाणी काजिक जव गोधूम ज्वारि चोखा काकडी आदि-

न्दरोपाध्यायविनिर्मितश्रीषडावश्यकबालावबोधे पञ्चानामपि निर्णयप्रतिपादनात्, तथाहि–असन कहता अन्न–चोखा ज्वारि परटी मुग प्रमुख सर्वधान, सात सत्तु गिहु [ आदि ]ना सर्व लोट सर्वराब सालणा लाडु प्रमुख सर्व पकान्न, सूरणादि सर्व कंद दूध दही मंडादिक सर्वकेलवी वस्तु, हींग वेसण विरयाली लूण सैंधवादिक ए सर्व असन माहि जाणिवा ।१। हिवे पानक कहतां आछण जवोदक तुषोदक तंदुलोदक उष्णोदक शुद्धोदक कहता वर्णाढ्य प्रमुखसर्वअप्काय पानक जाणिवा, अथवा काष्ठज पिष्टज सुरादि आसनापाणी साकर आविलपाणी इक्षुरसादि काकडी चीभडा कालिंगना जल इत्यादि सर्व पानक जाणवा । २ । हिवे खादिम कहतां सुखडी नालेर खजूर द्राख बिदाम सेक्यु धान आंबा केळा फाकडी अखोड सारेक प्रमुख सर्व मेवो इत्यादिक खादिम ॥ ३ ॥ हिवे स्वादिम कहता तंबोल सुठ मिरी पिंपल हरडे बहेडा तुलसी कसेलो कायो जेठीमध तमालपत्र एलची लवींग बीडंग काठी अजमो अजमोद कुलिंजण चीणीकबोला कचूरो कांटासेलीयो मोथ हरडे कुंभठउ पान सोपारी पोकरमूल जवासामूल चावची बालउछाली धवछालि सयरसार रोजउछालि रोहणी पीपलामूल वज्र धमासउ नाहिं रींगणी एलीयो चिणोठी कयर बोरनामूल कथारियउ कुंआरि इत्यादि अणाहार ॥ ५ ॥ पिणि ए अणाहार जउ इच्छा पासइ अनिष्ट पणइ लीजे तो, अने जउ भावता लीजे तो आहारमाही पडइ इति । श्रीतरुणप्रभसूरिकृतबालावबोधे तु एवं, तथाहि—

चतुर्विध आहार असन पान खादिम स्वादिम तत्र अशन–ओदन राध्या चोखा सत्तु मुग राब खडखाद्यादि पका-

भमेद दुग्ध दधि सूरणा मंडकादिक जाणवो, तया च भणित–“असण भोअण सत्तुग, मुगाजगराइखजग विहीय।
सीरणाई सूरणाई, मडग पमिई अ विन्नेअ ॥ १ ॥” आछण अयोदक तुषोदक तंदुलोदक उष्णोदक शुद्धविकट
अप्काय समग्र पनक जाणवु, तद्यथा–“पाण सोवीरजवो–दगाइ चित्त सुराइअ चेव । आउकाओ सव्वो, कक्कडगज
छाइअ च तहा ॥ २ ॥ अत्र चित्त सुराइअमिति चित्र नानाप्रकार काष्ठ पिष्टजातिभेदभिन्न सुरामधु आदिशब्दतो
द्राक्षा शर्करा पानकादि अप्काय सगलउ कर्कटी चिर्भटी प्रमुखनो जल तथा कालिंग जलादिक सगलु जाणवु ॥ २ ॥
नालिकेर खर्जूर द्राक्षा भृष्टधान्यादिक आम्रफल रंभाफल कर्कटी फणसादिक पलुसुपुणि सगलो खादिम जाणवु, तथा
च भणित च “भत्तो सदताई, खर्जूर नालिकेरदक्खाई। कक्कडअवगपणसाइ, बहुविह खाइम नेय ॥ १ ॥ दंतवण तंबोल,
सुंठि पिप्पली मिरच हरितकी विभीतकतुलसी प्रमुख स्वादिम जाणवु, तथा च भणित–“दंतवण तंबोल, चित्त तुलसी
महुडमाई अ । महु पिप्पली सुठाई, अणेगहा साइम नेय ॥ १ ॥” एव तपागच्छनायकश्रीसोमसुन्दरसूरिपट्टपूर्वाचल-
भास्करश्रीमुनिसुन्दरसूरिकृतषडावश्यकबालावबोधेऽपि, तथाहि–
चिहु प्रकारे आहारस्तु असण वा पाण वा खाइम वा साइम वा अशन कहता–शालि ज्वारि वरटी प्रमुख
सर्व ओदन मुद्गादिक सर्व कठउल सातुयादिक सर्व छोट पेयादिक सर्व तिमज मोदकादिक सर्व पकवान सूर-
णादिक सर्वकंद मंडकादिक सर्व केलवी वस्तु ए सर्व अशन कहिउ, वली वेसण विरहाली आमला सँगरा कउठिपत्र
लींबुइ लूण हींग ए अशन माहि आवइ १। पान कहता पाणी कांजिक जव गोधूम ज्वारि धोवण कोकडी आदि-

फनु धोवण, अनइ सर्व जलाशय तणो अप्काय, ए पान कहिजइ, साकरपाणी द्राखपाणी आवलपाणी इक्षुरसपाणी प्रमुख सर्व सरस पाणी पान कहतां आवइ, पिणि व्यवहारइ अशन, जिनु जिनु खाइम स्वादिम कहिजइ सुखडी सेक्यु धान सर्व खारिक टोपरा द्राक्षा विदाम अखोड खजूर प्रमुख सर्व मेवो, काकडी आम्र फलसादिक सर्व फल स्वादिम कहिजइ, स्वादिम कहतां सुंठि हरडइ पींपरी मिरी अजमव कायफल कसेल काथो खयरसार जेठीमध वज तमालपत्र एलची लवग विडग काठी विडलवण अजमोद कुलिंजन पीपलीमूल चीणीकबाला कचूर मोथ कटासेरीयो कपुर सचल हरडा वहेडा आमला कुमठउ पान पुगी हिंगुलाष्टक हींग त्रेवीसउ पुष्करमूल जवासामोथ ... मूल घावघी घावल छालि खेजडछालि ए स्वादिम कहिजइ, गुडस्वादिम कहिजइ, पिणि व्यवहारइ अशन, जीफु फुनीर ... साकर घासिव सुठनो पाणी हरडेनो पाणी ए छीजे नीतारनइ गल्यो हुवे तो, न गल्यो हुइ तो नहि, तिविहार पचक्खाणि जे सूझइ इहांइ स्वादिमजि, बीरो प्रवचनसारोद्धारमाहि स्वादिम कह्यु छइ, अनइ श्रीकल्पवृत्तौ खादिम कह्यु छइ, ए चार आहारनो विचार नींबनी छालि मूलाना पादडा सीली गोमूत्र गिलो कडूकिरियातु अतिविष कडुओ सुकडराख हलद्रा रोहणि उपलोट वज त्रिफला पचमूलनिंच धमासउ नाहि आसगंधि रींगणी एलीयो गूगल हरडा छालि धउणमूल बोरीमूल कंथारीमूल कयरडानुंमूल पुमाडी आछी मजीठ बोल बीयुत्त कुयारी इत्यादिक चीजुइं जे अनिष्ट पणइ इच्छा पाखइ लीजइ ते चिहु आहारमांहि एकइ भागइ नहि, अणाहार जाणयो। विचारग्रंथे अनाहारगाथा यथा–"अभयक्स फलामज्झ भूनिंबाकडु अगिलोअ रखाई। जोगोनिंबाइण तयाइ पत्ताणि अणाहारो ॥१॥" इति, श्रीपि-

शेपकल्पचूर्णौ पञ्चमोद्देशकेऽपि यथा–"अणाहार गाहीमो" अकाइअ छल्ला निंबाईणं मूल पचमूलादिफल अहामलय हरीतगवहेडगादि से सति, अणाहार मुक्त्वा ज अणत आहारमिति । पुनर्भणित–अणाहारो मोअछली मूल च फल च होइ अणाहारो पूर्वार्धं, 'मोक' कायकी, 'छली' निंबादित्वक् 'मूल' च पचमूलादिकं 'फल' च आमलकविभीतकादिकं एतत् सर्वं अनाहारो भवतीति चूर्णिः । निशीथचूर्णौ तु या, निंबादीना छल्लि –त्वक्, यच्च तेपामेव निंबोलिकादिफल, यच्च तेपामेव मूल एवमादिक सर्वमनाहार इति । अत्र श्रीमेरुसुन्दरोपाध्यायकृत-बालावबोधात् श्रीमुनिसुन्दरसूरिकृतबालावबोधे स्वादिममध्ये एतानि नव ९ वस्तूनि अधिकानि सन्ति, तथाहि–"कायफल १ बिडलवण २ पीपलीमूल ३ कपूर ४ सचल ५ वहेडा ६ आमला ७ हिंगुलाष्टक ८ हिंगुलीत्रेविसउ ९ । पुनरेतस्माद् एतस्मिन् अनाहारकमध्येऽप्ययं ११ विशेषः तथाहि–"हलद १ उपलोट २ त्रिफला ३ आसगध ४ गूगल ५ हरडेछालि ६ वउणिमूलि ७ पुमाड ८ आछीमजीठ ९ थोल १० चीयउ ११ । तथा श्रीमेरुसुन्दरसूरिकृत-बालावबोधे पीपलीमूल अनाहारमध्ये प्रोक्तमस्ति । श्रीमुनिसुन्दरसूरिकृत बालावबोधे पीपलीमूल स्वादिममध्ये प्रोक्तमस्ति । तथा तपागच्छीयरत्नशेखरसूरिणाऽपि श्राद्धविधिकौमुदीग्रन्थे अशनादीनामेव विवेचन लिखितमस्ति, तथाहि–अशनादिविभागश्चेत्थ—"अन्न-पक्वान्न-मंडक-सक्तुकादि–क्षुधोपशमनसमर्थम् अशन १ तक्रोदक-मद्यादि पान २ फलेक्षुपृथुकसुखभक्षिकादि खाद्य ३ स्वाद्य शुठी-हरितकी-पिप्पली मरिच-जीरक-अजमक जातिफल-जावत्री-कसेल्लक-कच्छकखदिरवटिका-ज्येष्ठीमधु-तज-तमालपत्र एलची-लवंग-काठी-विडंग बिडलवण-अजाक-

अजमोद-कुलिंजण पिप्पलीमूल चिणीक-बाळा कच्चूरक-मुस्ता-कंटासेलियो-कर्पूर-सचल हरडा विभीतक-कुंभटन-बन्नूलपर-
खदिर-खेजडादिछल्लीपत्र-पूग-हिंगुलाष्टक-हिंगत्रेवीसो-पचमूल-पुष्करमूल जवासकमूल-चावची-तुळसी-कपूरी-कदारिक जीरक
स्वभाष्यं ४ । प्रवचनसारोद्धाराभिप्रायेण स्वाद्यं, कल्पवृत्त्यभिप्रायेण तु स्वाद्य, अजमकं स्वाद्यमिति, केचित्
सर्व स्वाद्य एला-कर्पूरादिजलवत् तत् द्विविधाहारप्रत्याख्याने कल्पन्ते । वेसण विरयाली सोया-कउठरडी-गामळागांठी-
आंबागोळी-कवठीय लीमूई-पत्र-प्रमुखखाद्यत्वादिना द्विविधाहारे न कल्पते, त्रिविधाहारे तु जलमेव कल्पते, नयादि
तुफानीर साकरी-कपूर-एला-कच्छक-खदिरचूर्ण-कसेल्लक-पाडलादिजल च नीवरितं गालित वा नाऽन्यथा, नाम्येतु
मधु-गुडशर्करा-खण्डाद्यपि खाद्यतया, द्राक्षा-शर्करादिजल तकादि च पानकतया उक्त, परं द्विविधाहारादौ न कल्पते ।
उक्त च तपागपुरीयगच्छप्रत्याख्यानभाष्ये—

"दक्खापाणाईअ, पाण तह साइम गुडाईअ । पढिअ सुअमि तहवि हु, तित्तीजणगति नायरिय ॥ १ ॥"
स्त्रिया संभोगे चतुर्विधाहारो न भज्यते, बालादीना ओष्ठादिचुम्बने तु भज्यते । द्विविधाहारे तु तदपि कल्पते,
प्रत्याख्यान हि कावलिकाहारविषयमेव, न तु लोमाद्याहारविषयमपि । अन्यथा उपवासाचाम्लादेः वपुरभ्यङ्ग-गडुकरमर्द-
बन्धनादिनाऽपि भङ्गप्रसङ्गात्, न चैव व्यवहारो लोमाहारस्य निरन्तर सभवेन प्रत्याख्यानाभावप्रसंगात् ४ अना-
हारतया व्यवह्रियमाणानि यथा—पचांग निंब १ मूल २ गडूची ३ कडू ४ किरिआतड ५ अतिविष ६ कुडा ७

चीड ८ सूकवी ९ रक्षा १० हरिद्रा ११ रोहिणी १२ उपलोट १३ वज १४ त्रिफला १५ वावलछली १६ इति, अन्ये धमासउ १७ नाहि १८ आसगंधि १९ रींगणी २० एलियो २१ गूगल २२ हरडाबहेडा २३ वउणि २४ वदरी २५ कंथेरि २६ करीरमूल २७ पुमाड २८ बोथरी २९ आछीमजीठ ३० बोल ३१ बीयउ ३२ कूंयारी ३३ चित्रक ३४ कदुरु ३५ प्रभृति अनिष्टस्वाद रोगाद्यापदि चतुर्विधाहारेऽप्येतानि कल्पन्ते ॥ ५२ ॥

॥ इति अनाहारादिनिर्णयाधिकारः ॥ ५२ ॥

ननु केचित् शृंगाटकानां अभक्ष्यत्वं अनन्तकायत्वं च प्रतिपादयन्ति तत्सत्यं असत्यं वा ? उच्यते—ये तेषां अभक्ष्यत्वं अनन्तकायत्वं च प्रतिपादयन्ति ते सर्वे सिद्धान्तानभिज्ञा एव, यतः उक्तं श्रीखरतरगच्छाधिराज-श्रीजिनभद्रसूरिपट्टालङ्कार-श्रीजिनचन्द्रसूरिविजयराज्ये श्रीमुनिमेरुसुन्दरोपाध्याये सधार्म्यर्थनया कृतवार्तिकसार्धशतकप्रश्नोत्तरे ४९ प्रश्ने, तथाहि—

सिंघोडादिजीवा वनस्पतिसत्तरीमाहि कह्या छइ अनै अभक्ष्य अनन्तकाय कहै ते किम ? तत्रार्थे सिंघोडा अभक्ष्य अनन्तकाय न हुवे, जे अभक्ष्य अनन्तकाय कहै ते सिद्धान्तना जाण नहीं, यतः प्रज्ञापनासूत्रे ( ३४ पत्रे )—

"सिंघाडगस्स गुच्छो, अणेगजीवो उ होइ नायव्वो। पत्ता पत्तेअजीवा, दुन्नि य जीवा फले भणिआ ॥५१॥" इणि कारणि बिहु जीवनो फल साधारण अनन्तकाय न थायइ, जेह भणी प्रज्ञापना वृत्तिमाहि कह्यो छइ, "साधारणस्तु नियमादन-

अजमोद-कुलिंजण-पिप्पलीमूल-चिणीक-माला कच्चूरक-मुस्ता-कंटासेलियो-कर्पूर-सचल हरडा विभीतक-कुंभटउ-बब्बूलधव-खदिर-खेजडादिछल्लीपत्र-पूग-हिंगुलाष्टक-हिंगत्रेवीसो-पंचमूल-पुष्करमूल जवासकमूल-बावची-तुलसी-कपूरी-कन्दादिक जीरक स्वभाष्यं ४ । प्रवचनसारोद्धाराभिप्रायेण स्वाद्यं, कल्पवृत्त्यभिप्रायेण तु स्वाद्य, अजमकं खाद्यमिति, केचित् सर्वं स्वाद्य एला-कर्पूरादिजलवत् तत् द्विविधाहारप्रत्याख्याने कल्पन्ते । वेसण विरयाली सोया-कउठवडी-आमलागाटी-आंबागोली-कवठीय लीबूई-पत्र-प्रमुखखाद्यत्वादिना द्विविधाहारे न कल्पते, त्रिविधाहारे तु जलमेव कल्पते, तत्रापि शुद्धनीरं साकरी-कपूर-एला-कच्छक-खदिरचूर्ण-कसेल्लक-पाडलादिजल च नीतरिव गालित वा नाऽन्यथा, शास्त्रेषु मधु-गुडशर्करा-खण्डापि स्वाद्यतया, द्राक्षा-शर्करादिजल तक्रादि च पानकतया उक्त, पर द्विविधाहारादौ न कल्पते । उक्त च तपागपुरीयगच्छप्रत्याख्यानभाष्ये—

"दक्खापाणाईअ, पाणं तह साइम गुडाईअ । पढिअ सुअमि तहवि हु, तित्तीजणगति नायरिय ॥ १ ॥"

स्त्रिया सभोगे चतुर्विधाहारो न भज्यते, बालादीना ओष्ठादिचुम्बने तु भज्यते । द्विविधाहारे तु तदपि कल्पते, प्रत्याख्यान हि कावलिकाहारविषयमेव, न तु लोमाद्याहारविषयमपि । अन्यथा उपवासाचाम्लादेः वपुरभ्यङ्ग-गडुकरम्भ-मन्थनादिनाऽपि भङ्गप्रसङ्गात्, न चैव व्यवहारो लोमाहारस्य निरन्तरं सभवेन प्रत्याख्यानाभावप्रसङ्गात् ४ अना-हारतया व्यवह्रियमाणानि यथा—पञ्चांग निंब १ मूल २ गडूची ३ कडु ४ किरिआतड ५ अतिविष ६ कुडा ७

श्रीचन्द्राचार्यैरपि स्वकृतयोगविधौ सम्यक्त्वारोपणानन्तर श्रावकवर्जनीयद्वाविंशत्यभक्ष्यप्रतिपादक गाथाद्वय प्रत्यपादि, तथाहि "पचुंबर चउविगई, अनायफल कुसुमहीमविसकरगे। मज्जं राईभोयण, घोलवडा रींगणी चेव ॥ १ ॥ पपोटय सधाडय, धायगण काइवणे य तह चेव। बावीस दव्वाणि, अभक्खणीयानि सड्ढाण ॥ २ ॥" एव श्रीजिनपतिसूरिशिष्य-श्रीपूर्णभद्रकृते श्रीकृतपुण्यकचरित्रेऽपि शृङ्गाटकानामभक्ष्यत्व, तथाहि—"मद्य १ मास २ नवनीत ३, मधू ४ तुम्बरपञ्चकम् ९। अनन्तकाय १० मज्ञात-फलं ११ रात्रौ च भोजनम् १२ ॥ १ ॥ आमगोरससपृक्त, द्विदल १३ पुष्पितौदनम् १४। दध्यहर्द्वितयातीत १५, सन्धान १६ कुथिताम्नकम् १७ ॥ २ ॥ वहुवीज यच्च फल १८, शृगाटकान् १९ सर्वमृत्तिका २० करकान् २१। हिम २२ विष २३ वृन्ताकीफल २४, घोलवटान् २५ वर्जयेत् शश्वत् ॥ ३ ॥" अत्राऽय परमार्थः—श्रीप्रवचनसारोद्धारादौ शृगाटकानि द्वाविंशत्यभक्ष्यमध्ये नाऽऽनीतानि, पर श्रीचन्द्रसूरिकृत-योगविधिग्रन्थे, श्रीपूर्णभद्रकृत—श्रीकृतपुण्यकचरित्रे च प्रोक्तत्वात् १ मोहोदयकारित्वात् २ जीवद्वययुक्तत्वात् ३ विफलमामतुल्यत्वेन गणितत्वात् ४ धर्मार्थिना श्राद्धादीना अभक्ष्याणि अग्राह्याणि ज्ञेयानि ॥ ५४ ॥

॥ इति शृङ्गाटकानामभक्ष्यत्वाधिकार ॥ ५४ ॥

ननु—लवण १ हरिताल २ मन शिला ३ पीप्पली ४ खर्जूर ५ द्राक्षा ६ हरीतकी ७ पत्र ८ पुष्प ९ फल १० प्रभृतीनां प्रासुकत्व भवति न वा ?, उच्यते—भवति, कथमित्याह—श्रीबृहत्कल्पसूत्रवृत्तिषु योजनशतागमनाद्धिकारगं तेषाम-

न्तकाय पयेति, कामदीपकद्रव्य भणी जउ टालइ तो जिम दूध न ल्यै प्रवाहै, तिमतेही न ल्यौ पणि अभक्ष्य अनन्तकाय नही इति। ननु–तर्हि तद्भक्षणे न दोषः? न एतद्वक्तु युक्तं, धर्मार्थिनां श्रावकादीनां तेषा अभक्ष्यत्वेन अग्राह्यत्वेन प्रतिपादनात्। यदुक्त श्रीजिनवल्लभसूरिभिः श्राद्धकुलके श्रावकाणां अभक्ष्यनियमाधिकारे, तथाहि "महु १ मक्खण २ सघाडग ३ गोरसजुअविदल ४ जाणिअमणंत ५। अणायफलं ६ वयगण ७ पचुवरि ८ मवि न भुंजतिति ॥ १ ॥" तथा "कह नु फुज्जा सामन्न, जो कामे न निवारए।" इति पदद्वयस्य व्याख्यां कुर्वद्भिः श्रीहरिभद्रसूरिभिरपि ( ८५ पत्रे ) शृंगाटकाना द्रव्यकामत्व विकटमांसतुल्यत्व च प्रतिपादितमस्ति, तथाहि "शब्दरूपरसगन्धस्पर्शाः मोहोदयाभिभूतैः सत्त्वैः काम्यन्त इति कामाः, मोहोदयकारीणि च यानि द्रव्याणि शृंगाटकविकटमासादीनि तान्यपि मदनकामाख्यभावकामहेतुत्वाद्द्रव्य-कामा इति"। एवं श्रीप्रज्ञापनासूत्रवृत्त्योरपि प्रथमपदे–तथाहि–शृङ्गाटकफले जीवद्वय मत्यपादि, तथाहि—

"सिंघाडगस्स गुच्छो, अणेगजीवो उ होइ नायव्वो। पत्ता पत्ते अजिआ, दोन्नि य जीवा फले भणिआ ॥ ५१ ॥"

व्याख्या–"सिंघाडगस्से"त्यादि शृङ्गाटकस्य यो गुच्छः सोऽनेकजीवो भवति ज्ञातव्यः, स्वकृशाखादीना अनेकजीवात्मकत्वात्, केवल तत्रापि यानि पत्राणि तानि प्रत्येकजीवानि, फले पुनः प्रत्येक एकैकस्मिन् द्वौ द्वौ जीवौ भणितौ इति। पुनः "दुन्निजिआ सिंघाडग–फलंमि जे केइ नालिआ वद्धा। पुप्फा संखिज्जजिआ, थोहरिमाइणंतजिआ ॥ १ ॥" इत्यादि गाथाचतुष्टय दर्शनसप्ततिकायामस्ति। एवमेव वनस्पतिसप्ततिकायामपि। तथैव

निषीदन्ति, तेषां गवादीनां च यः कोऽपि पृष्ठादिगात्रोष्मा तेन वा परिणामो भवति, तथा यो यस्य भौमादिकः पृथिव्यादिकः आहारस्तद्व्यवच्छेदे तस्य परिणाम उपक्रमः शस्त्र, "उपक्रम्यते जीवादीना आयूषि अनेन" इति व्युत्पत्तेः, तच्च शस्त्र त्रेधा, स्वकायशस्त्र परकायशस्त्रं तदुभयशस्त्र चेति, तत्र स्वकायशस्त्रं यथा–लवणोदक मधुरोदकस्य, कृष्णभौम वा पाण्डुरा भौमस्येति, परकायशस्त्र यथा–अग्नि उदकस्य, उदक चाऽग्नेरिति २ तदुभयशस्त्र यथा–उदकमृत्तिका शुद्धोदकस्येत्यादि । एवमादीनि सचित्तवस्तुना परिणमनकारणानि मन्तव्यानि, गतं क्षेत्रतो लक्षणम् ।

अथ कालत आह—

"उप्पलपउमाई पुण, उण्हे दिन्नाइ जाम न धरती । मुग्गरगजूहिआओ, उण्हे छूढा चिर हुंति ॥ १ ॥ मगदंतीपुप्फाइ, उदए छूढाइ जाम न धरती । उप्पलपउमाइ पुण, उदए छूढा चिर हुति ॥ २ ॥" उत्पलानि पद्मानि च उदकयोनिकत्वात्, उष्णे आतपे दत्तानि याम–प्रहरमात्र काल न म्रियन्ते न अवतिष्ठन्ते, किंतु प्रहरादर्वागेव अचित्तीभवन्ति, मुद्गराणि मगदंतिपुष्पाणि–यूथिकापुष्पाणि च उष्णयोनिकत्वात्, उष्णे क्षिप्तानि चिरमपि काल भवन्ति सचित्तानि एव तिष्ठन्तीति भावः । मगदन्तिकापुष्पाणि उष्णे [ उष्णोदके ] क्षिप्तानि याम–प्रहरमात्रमपि न म्रियन्ते, उत्पलपद्मानि पुनः उदके क्षिप्तानि चिरमपि भवन्ति, गत कालतो लक्षणम् ॥

अथ भावत आह,–"पत्ताण पुप्फाण, सरडुफलाण तहेव हरिआण। विट्ठमि मिलाणंमि, नायव जीवविप्पजढ ॥ १ ॥" पत्राणा पुष्पाणा सरडुफलाना अबद्धास्थिकफलाना तथैव हरिताना वा स्थूलादीना सामान्यत तरुणवनस्पतीना वा

चित्तत्व प्रतिपादनात्, तथाहि–अथ क्षेत्रतस्तु आह–"जोयणसयं तु गंता अणहारेणं तु भंडसंकंती। वायागणिधूमेण य, विद्धत्थ होइ लोणाई ॥ १ ॥" लवणादिक वस्तु स्वस्वस्थानात् गच्छत् प्रतिदिन बहुबहुतरादिक्रमेण विध्वस्यमान योजनशतात् परतो गत्वा सर्वथैव विध्वस्त–अचित्त भवति। अहो! शस्त्राभावे योजनशतगमनमात्रेणैव कथं अचित्तीभवति? इत्याह–"अनहारेण" यस्य यदुत्पत्तिदेशादिक साधारणं ततो व्यवच्छिन्न, स्वोपष्टम्भकाहारविच्छेदात् विध्वस्यते, तच्च लवणादिक भाण्डसंक्रान्त्या पूर्वस्मात् भाजनात् अपरभाजनेषु यद्वा पूर्वस्या भण्डशालाया अपरस्यां भण्डशालाया चक्रम्यमाण विध्वस्यते, तथा वातेन वा अग्निना वा महानसादौ धूमेन वा लवणादिक विध्वस्त भवति। "लोणाई" इत्यत्र आदिशब्दात् अमी द्रष्टव्या। स्थानाङ्गसूत्रे ( ५४ पत्रे )—

"हरियाल १ मणोसिल २ पिप्पली य ३ खज्जूर ४ मुद्दिआ ५ अभया ६। आइण्णमणाइण्णा तेऽवि हु एमेव नायव्वा ॥ १ ॥

व्याख्या–हरिताल–मनःशिला–पिप्पली–खर्जूरा–एते प्रतीताः, मुद्रिका–द्राक्षा, अभया हरीतकी, एतेऽप्येवमेव लवणवत् योजनशतगमनादिभिः कारणैः अचित्तीभवन्तो द्रष्टव्याः, परं एके अत्र आचीर्णा अपरे अनाचीर्णाः, तत्र पिप्पलीहरीतकीप्रभृतय आचीर्णा इति कृत्वा गृह्यन्ते, खर्जूरमुद्रिकादयः पुनरनाचीर्णा इति न गृह्यन्ते, अत्र सर्वेषा सामान्येन परिणमनकारणमाह—

"आरुहणे, ओरुहणे निसिअण गोणाईणं च गाउम्हा। भुमाहारच्छेए, उवक्कमेणेव परिणामो ॥ ११ ॥" शकटे गवादिपृष्ठे च लवणादीना भूयोभूय आरोहणमवरोहण च तथा यस्मिन् शकटादौ लवणादिभारोपरि मनुष्या

एव श्रीनिशीथचूर्णिपञ्चदशोद्देशकेऽपि, तथाहि—चोअग आह इन्धनाभावे कथमचित्त भवति ? आचार्य आह—"अणाहारेणति जस्स ज साधारण, त ततो वुच्छिन्न आहारविच्छेदु विध्वस आगच्छति । जहा पुढवी उ वुच्छिन्न लोणाइ च लोणाइ, जोयणसयमगयपि सठाणे, अन्तरे वा विद्धसइ, जोयणसया उ परेण अचित्त सव्वहा भवइ, भडसकतीए पुव्वभायणाओ अन्न पि भायण सकामिज्जइ, भडसालाओ वा अन्न भड सकामइ, वातेण आतवेण भत्तघरे वा अगणिनिरोहेण धूमेण आइसद्दाओ, इमा हरिआल गाहा—हरिताल मणोसिला जहा लोण अभयत्ति, हरियडे पिप्पलीमाइणो जोयणसतातो आगयादि, जे हरितकीमाइणो आइण्णा ता घेप्पंति, खर्जूरादयो अण्णाइण्णत्ति न घेप्पति, इम सव्वेसिं सामेण्ण परिणामकारण । आरुहणे गाहा इति ॥ लवण १ हरिताल २ मन शिला ३ पिप्पली ४ खर्जूर ५ द्राक्षा ६ हरितकी ७ प्रमुखाणा प्रासुकविचार ॥ ५५ ॥

॥ इति लवणादिसमाना प्रासुकाधिकार• ॥ ५५ ॥

ननु—चूर्णस्य सचित्तत्व १ अचित्तत्व २ ग्राह्यत्व ३ अग्राह्यत्व च ४ कथ ज्ञेयम् ? उच्यते—विचारसारग्रन्थोक्तगाथाभिः स्पष्ट तदवबोधात्, तथाहि—"पण पहुर माह फग्गुणि, पहुरा चचारि चित्त वेसा हे । जिट्ठासाढे तिण्णि य तेण पर होइ सचित्तो ॥ १ ॥ पणदिणमी सो लुट्टो, अचालिओ सावणे अ भद्दवए । चउदिण आसोए कत्तिय—मिगसर—पोसेसु तिण्णि दिणा ॥ २ ॥"

पृन्ते मूलनाले म्लाने सति ज्ञातव्यं यथा जीवविप्रमुक्तमेतद् पत्रादिकं, उक्त भावलक्षणम् । तदुक्तौ च समर्थित चतुर्विध सचित्ताचित्तज्ञानद्वार इति । एवमेव श्रीस्थानाङ्गे द्वितीयस्थानके प्रथमोद्देशके ( ५२ पत्रे ), तथाहि—

"दुविहा पुढविकाइया पन्नत्ता, त जहा सुहुमा चेव बायरा चेव १, एव जाव दुविहा वणस्सइकाइया पन्नत्ता, त जहा सुहुमा चेव बायरा चेव ५ दुविहा पुढविकाइया पन्नत्ता, तं जहा पज्जत्तगा चेव अपज्जत्तगा चेव ९ एव जाव वणस्सइ-काइआ १० दुविहा पुढविकाइया पन्नत्ता, त जहा परिणया चेव अपरिणया चेव ११ ॥ दुविहा पुढवी इत्यादिपट्सूत्री-परिणताः, स्वकायपरकायशस्त्रादिना परिणामान्तर आपादिता —अचित्तीभूता इत्यर्थः । तत्र द्रव्यत क्षेत्रादिना मिश्रेण द्रव्येण, कालतः पौरुष्यादिना [ मिश्रेण ] कालेन भावतो वर्णगन्धरसस्पर्शान्यथात्वेन परिणता , क्षेत्रतस्तु "जोयणसय तु गता अणहारेण तु भडसंकंती । वायागणिधूमेणय, विद्धत्थ होइ लोणाइ ॥ १ ॥ हरिआल मणोसिल पिप्पली अ खज्जूर मुद्दिआ अभया । आइन्नमणाइन्ना, तेऽवि हु एमेव नायव्वा ॥ २ ॥ आरुहणे ओरुहणे, निसिअण गोणाइण च गाउम्हा । भूमाहारच्छेदे, उवक्कमेणेव परिणामो ॥ ३ ॥"

'अणहारेण'ति स्वदेशजाहाराभावेन इति, 'भडसक्ती'ति भाजनाद् भाजनान्तरसङ्क्रान्त्या खर्जूरादयोऽनाचरिता , अभयादयस्तु आचरिता इति, परिणामान्तरेऽपि पृथिवीकायिका एव ते, केवल अचेतना इति, कथ अन्यथा अचेतन-पृथिवीकायपिण्डप्रयोजनाभिधानमिद स्यात् ?, यथा "घट्टगडगलगलेवो एमादि पयोयण बहुहा" इति 'एव' इत्यादि भागिव, तदेव पञ्चैतानि सूत्राणि ॥

श्रीजिनभद्रसूरिपट्टालङ्कारश्रीजिनचन्द्रसूरिविजयराज्ये श्रीमेरुसुन्दरोपाध्यायकृतवार्तिकप्रश्नोत्तरशतके, तथाहि—वडा वासी अग्राह्य कहइ छइ ते किम ? तत्रार्थे पहिलु कोरा घडा जे घणो राखिजइ तिहां लालापातादिक दोप प्रत्यक्ष दीसे छे, ते भणी उकाली छाशि—माहि तत्काल जे मुक्या हुवइ घडा ते वासी लेता दोप नहिं, ए अक्षर श्रीआचारांगने छेहडइ छे तिहांथी जो ज्यो ९२ प्रश्ने इति । दिनद्वयानन्तर अभक्ष्य दधि । तत्रार्थे श्रीहेमचन्द्रसूरयोऽपि स्वोपज्ञयोगशास्त्रबृहद्वृत्तौ ( १७१ पत्रे ) प्रोचुः, तथाहि—

"आमगोरससपृक्त—द्विदलादिषु जन्तवः । दृष्टाः केवलिभि' सूक्ष्मा—स्तस्मात् तानि विवर्जयेत् ॥ ७१ ॥" इह हि इय स्थितिः—केचिद्भावा हेतुगम्याः, केचित्तु आगमगम्याः, तत्र ये यथा हेत्वादिगम्यास्ते तथैव प्रवचनधरै' प्रतिपादनीया , आगमगम्येषु हेतून्, हेतुगम्येषु तु आगममात्र प्रतिपादयन् आज्ञाविराधक स्यात्, यदाह—

"जो हेउवायपक्खमि हेउओ आगमे अ आगमिओ । सो ससमयपन्न[व]याओ, सिद्धातविराहओ अन्नो ॥ १ ॥" इति आगोरससपृक्तद्विदलादौ न हेतुगम्यो जीवसद्भावः, किन्तु आगमगम्य एव, तथाहि—आमगोरससपृक्ते द्विदले आदिशब्दात् पुष्पितौदने, अहर्द्वितीयातीते दध्नि, कथिताम्ने च, ये जन्तवः ते केवलज्ञानिभिर्दृष्टा इति, जन्तुमिश्र गोरसमिश्रद्विदलादिभोजन वर्जयेत्, तद्भोजनाद्धि प्राणातिपातलक्षणो दोप', न च केवलिना निर्दोपत्वेन आप्ताना च तानि वचनानि विपरियन्ति, ननु पक्वान्नस्य ग्राह्यत्वे कियद्दिनानि ?, इत्याह—

लिफसूत्रे, तथाहि–"वण्णरसगंधएण, परिणय फरसेण वा । अजीव फासुय नच्चा, पडिगाहेज्ज सजए ॥ १ ॥" इति, पुनस्तच्चूर्णोपि ( २४ पत्रे ) तथाहि–'वत्तानिवुडभोइ'त्ति, तत्त पाणीय पुणो सीतलीभूत अनिवुडं भण्णइ, त च गिम्हे रत्तिपज्जुवसिय सचित्तीभवति, हेमतवासासु पुव्वण्हे कय अवराण्हे सचित्तीभवति, एव सचित्त जो भुजइ सो तत्तानिवुडभोइ भवति, अथवा तत्तमपि जाहे तिण्णिवाराओ तत्त भवति ताहे त अनिवुड सचित्त निवुत्त भवति, त जो अपरिणय भुजइ सो तत्तानिवुडभोइत्ति" इति ॥ ५७ ॥

॥ इति प्रासुकमपि पानीय इयता कालेन सचित्त भवतीति विचारः ॥ ५७ ॥

ननु–अगरी १ घृष्टि २ तक्र ३ करम्बको ४ दन ५ दधि ६ प्रभृतीना कति प्रहरान् यावत् ग्राह्यत्व ? कियत्प्रहरानन्तर च तेषा अभक्ष्य अग्राह्यत्व च ? उच्यते—अगरेति गाथाया प्रवर्तमानायाः सकाशाद्विज्ञेय, तथाहि—

"अगरा य चार पहरा, वीस चिसितक करवको गिण्हइ । पच्छा निगोअजतू, उपज्जइ तप्पदेसेसु ॥ १ ॥" इति ओदनस्य चतुर्विंशतिप्रहरानन्तर अग्राह्यत्व, दध्नस्तु षोडशप्रहरानन्तर अग्राह्यत्व, दध्नस्तु षोडशप्रहरानन्तर अग्राह्यत्व यदुक्त तत् तपागच्छीय श्रीमुनिसुन्दरसूरिकृत-श्रीषडावश्यकबालावबोधे । श्राद्धप्रतिक्रमणसूत्रे "मज्जमि य मसमि य"इत्यादिगाथाव्याख्यानाधिकारे, तथाहि—चलितरस जे कुथो अन्न १ चउवीस पहुर उपरु ओदनादिक २ सोलपहुर उपहरु दही ३ इत्यादि अभक्ष्य तेहमाहि जीव उपजे ते भणी इति । पर्युषित घोलवडा अभक्ष्यमाहि, यदुक्त—श्रीखरतरगच्छीय-

आवश्यकचूर्णिकारोऽप्याह–प्रहरदिवसोऽर्धरात्रप्रहरं यावत् दिवसो वइ०, रात्रिप्रहरार्धदिवसप्रहर यावत् राइ अय०, पादोसिए जाव पोरिसी न उग्घाडेति ताव देवसिअं भण्णइ, पुव्वण्हे जाव पोरिसी न उग्घाडेइ ताव राइअति।" एवं विचारसारग्रन्थेऽपि, तथाहि "देवसिअपडिक्कमण, सुज्झइ रयणीइ जाव पढम पहर। राइअमह उग्घाडा–पोरिसिमुत्र जाय पुरिमड्ढ ॥ १ ॥" इत्यादि। एवमेव ओघनिर्युक्तिसूत्रवृत्तौ ॥

॥ इति दैवसिकरात्रिकप्रतिक्रमण कियत् काल यावच्छुध्यतीति [अधिकार] विचार ॥ ५९ ॥

ननु–पञ्चम्याः पर्वत्व क्व प्रोक्तमस्ति ?, येन तत्र विशेषतः पुण्यकर्तव्यानि क्रियमाणानि सन्ति, उच्यते–पर्युषणाचूर्णौ तस्याः पर्वत्वेनोक्तत्वात्, तथाहि–"इत्थ उ पणग पणग, कारणिअ जा सवीसईमासो। सुद्धदसमीठिआण व आसाढी पुण्णिमोसरण॥ १ ॥ आसाढपुण्णिमाए, ठिआणं जदि डगलाईणि गहियाणि पज्जोसवणाकप्पो अ कहिओ तो सावणबहुलप चमीए पज्जोसवति। असति खित्ते सावणबहुलदसमीए, असति खित्ते सावणबहुलस्य पन्नरसीए। एव पच पच ओसारिंतेण जाव असति भद्दवयसुद्धपचमीए, अओ परेण न वट्टइ। असइक्कमेउ आसाढपुण्णिमाओ आढत्त मग्गताण जाव भद्दवयजोण्हस्स पचमीए। इत्यतरे जइ न लद्ध ताहे जइ रुक्खाहे ठितो तोऽवि पज्जोसवेअव्व। एएसु पव्वेसु जहा लभे पज्जोसवेअव्व अप्पव्वे न वट्टइ, कारणिआ चउत्थीवि अज्जकालगायरिएहिं पवत्तिआ।" इति ( ३२ पत्रे ) एव श्रीनिशीथचूर्णौ दशमोद्देशके ३१७ पत्रेऽपि, तथाहि—

"वासासु पनरदिवसं, सित्तउण्हकालेसु मास–वीसदिणा। ओगाहिम जहीण, कप्पइ आरम्भ पढमदिण ॥ १ ॥"
॥ इति जर्गरी १ सृष्टि २ तक्र ३ करम्बक ४ ओदन ५ दधि ६ पक्वान्नप्रमुखाणां भक्ष्याभक्ष्यत्वविचारः ॥ ५८॥
ननु–दैवसिक रात्रिकं च प्रतिक्रमण केनाऽपि प्रमादेन कार्यव्यग्रत्वादिना कारणेन या कालवेलायां न चक्रे, तर्हि कालवेलातोऽग्रतः कति प्रहरान् यावत् कृतं शुध्यति ?, उच्यते–अपवादतो दैवसिक प्रतिक्रमणं दिवसतृतीयप्रहरादारभ्य अर्धरात्रं यावत्, रात्रिकं प्रतिक्रमणं तु अर्धरात्रादारभ्य मध्याह्न यावत् शुध्यते १। यदुक्तं तपागच्छीय–श्रीरत्नशेखरसूरिकृत–श्राद्धविधिकौमुद्या, तथाहि–"तच्च प्रतिक्रमणं पञ्चभेदं–दैवसिक १ रात्रिक २ पाक्षिक ३ चातुर्मासिक ४ सांवत्सरिक ५ चेति।" एतेषां कालस्तु उत्सर्गेण एवमुक्तः, "अद्धनिबुड्डे बिंबे, सुत्तं कड्ढति गीअत्था। इयवयण–पमाणेण, देवसिआवस्सए कालो ॥ १ ॥ रात्रिकस्य चैव–आवस्सयस्स समये निद्दामुद्दं चयति आयरिया। तह त कुणति जह दस (दिसि) पडिलेहणंतरं सूरो॥ २ ॥" अपवादतस्तु दैवसिक दिवसतृतीयप्रहरादारभ्य अर्धरात्रं यावत् इति उक्तं, रात्रिक चार्धरात्रादारभ्य मध्याह्न यावत् इति, उक्तं च "उग्घाडपोरिसं जाव राइयमावस्सयस्स चुण्णीए चेव। ववहाराभिप्पाया, भणति पुण जाव पुरिमड्ढं ॥१॥" पाक्षिकचातुर्मासिकसांवत्सरिकानि तु पक्षाद्यन्तेषु स्युः, एवं श्रीजिनप्रभसूरिकृतविधिप्रपायामपि, तथाहि–"तत्थ देवसियपडिक्कमणं रयणीपढमपहरं जाव सुज्झइ, राइय पुण आवस्सयचुण्णिअभिप्पाएणं उग्घाडपोरिसिं जाव, ववहाराभिप्पाएण पुण पुरिमड्ढं जाव सुज्झइ" इति (५१ पत्रे)

छट्ठमे न करिज्ञा तो पायच्छित्त इति", ननु-एव सति पञ्चमी १ अष्टमी २ पूर्णिमा ३ अमावास्या २ अन्यतरा चेति गणनाया पक्षमध्ये त्रिपर्वी स्यात्, चतुःपर्वी-पञ्चपर्व्यावपि च ग्रन्थान्तरे प्रोच्येते, एवमत्र पर्वणामनियतत्वात् त्रिपर्वी १ चतुःपर्वी २ पञ्चपर्वी ३ वाक्यात् तपःशीलाविना आराध्यते ? इति चेदुच्यते-स्वशक्त्यपेक्ष सर्वा द्वे एका वा, तामाराधयतो न कश्चिद्दोषः । पुनः पञ्चम्याः पर्वत्वप्रतिपादका एकोनविंशतिपञ्चाशकवृत्त्यादि-अनेकग्रन्था सन्तीति तदर्थिना ते विलोकनीयाः ॥ ६० ॥

॥ इति पञ्चम्याः पर्वत्वम् ॥ ६० ॥

ननु-"सवीसए राइमासे वइक्कते पज्जोसवती"ति श्रीकल्पसूत्रवचनात् "जाव भद्दवयसुद्धपचमीए अओ परेणं न वट्टइ अइक्कमित्त आसाढपुन्निमाओ आढत्त, मग्गताण जाव भद्दवयजोण्हस्स पचमीए" इति श्रीपर्युषणाचूर्णिवचनाच्च भाद्रपदसुदिपञ्चम्यामेव श्रीपर्युषणापर्वकरणमुचितम् । अन्यगच्छेष्वपि केषुचित् साम्प्रत भाद्रपदसुदिपञ्चम्यामेव पर्युषणापर्व क्रियमाण दृश्यते, परम्-आत्मीयगच्छे भाद्रपदसुदिचतुर्थ्यां तत् क्रियते तत्कथम् ? इति, उच्यते-सत्य भो शिष्य ! पूर्वमेवं आसीत्, पर श्रीवीरात् त्रिनवत्यधिकेषु नवशतवर्षेषु ( ९९३ ) गतेषु सत्सु श्रीशालिवाहनराजाग्रहात् श्रीकालिकाचार्यैः, "अतरावि अ से कप्पइ" इति श्रीकल्पसूत्राक्षरदर्शनबलेन पञ्चमीत चतुर्थ्यां श्रीपर्युषणापर्व प्रवर्तित, तद्वशेन च चातुर्मासमपि चतुर्दश्या जात, अन्यथा आगमोक्त पञ्चदश्यामासीत्, तत् इदानींतनसमस्तसघेनाऽपि प्रमाणीकृत,

"इत्थ उ पणग पणग, कारणिअं आ सवीसईमासो । सुद्धदसमीठिआण य आसाढी पुण्णिमोसरण ॥ १ ॥ तथाच– आसाढपुण्णिमाए पविट्ठा डगलाइअं गिण्हति पज्जोसवणकप्प कहिंति, पचदिणा ताहे सावणबहुलपचमीए पज्जोसवंति, खित्ताऽभावे कारणेण पणगे संवुढे दसमीए पज्जोसवति, एवं पन्नरसीए, एय पणगवुड्ढि ताव कज्जति जाव सवीसतिमासो पुन्नो इत्यादि सवीसइराए मासे पुन्ने जदि वासखित्त न लब्भइ तो रुक्खहेठेवि पज्जोसविअव । त च पुण्णिमाए पचमीए दसमीए, एवमादिएसु पवेसु पज्जोसविअव नो अपवेसु । सीसो पुच्छइ–इआर्णि कहिं च चउत्थीए अपवे पज्जोसविज्जत्ति । आयरिओ भणइ–कारणिआ चउत्थी अज्जकालगायरिएहिं पवत्तिआ" इति । अत्र पूर्वचूर्णिद्वयेऽपि "एतेसु पवेसु जहा लभ पज्जोसवेअव अपवे न वट्टइ, इत्यनेन पुण्णिमाए १ पचमीए २ दसमीए ३ एवमाइएसु पवेसु पज्जोसवेअव नो अपवेसु ।" इत्यनेन वचनेन पूर्णिमावत् पञ्चम्याः पर्वत्व सिद्धम् । अत्राऽऽह कोऽपि कोपितमाय'–चर्चाचक्षुर्विपश्चित्–ननु एतैरक्षरैर्द- शम्या अपि पर्वत्व पञ्चमीवन्माननीय स्यात् ? इति चेदुच्यते–सिद्धान्ताक्षरसिद्धेऽर्थे का नाम विचारणा ?। नन्वेव दशम्या तपोऽपि विधीयते ?, इति चेदुच्यते–पञ्चम्याः पर्वत्व तावत् सिद्धान्ताक्षरैः सिद्ध, अथ केवल दशमीतपोविषये विवा- दोऽवतिष्ठते, तत्र चेदमुत्तरम्–दशम्याः पर्वत्वे सत्यपि पूर्वाचार्यपरम्पराया महानिशीथे च दशम्या तपसः करणस्य अद- र्शनात् । तत्र तपो न क्रियते इति महानिशीथ–भाष्यपाठो यथा–

"संते बलवीरिअपुरिसायारपरक्कमे अट्ठमि १ चउद्दसी २ नाणपचमी ३ पज्जोसवणाओ ४ चाउम्मासिएसु चउत्थ,

छट्ठट्ठमे न करिज्जा तो पायच्छित्त इति", ननु–एवं सति पञ्चमी १ अष्टमी २ पूर्णिमा ३ अमावास्या २ अन्यतरा चेति गणनाया पक्षमध्ये त्रिपर्वी स्यात्, चतुःपर्वी–पञ्चपर्व्यावपि च ग्रन्थान्तरे प्रोच्येते, एवमत्र पर्वणामनियतत्वात् त्रिपर्वी १ चतुःपर्वी २ पञ्चपर्वी ३ वाक्यात् तपःशीलादिना आराध्यते? इति चेदुच्यते–स्वशक्त्यपेक्ष सर्वा द्वे एका वा, तामाराधयता न कश्चिद्दोषः । पुनः पञ्चम्या पर्वत्वप्रतिपादकाः एकोनविंशतिपञ्चाशकवृत्त्यादि–अनेकग्रन्थाः सन्तीति तदर्थिना ते विलोकनीयाः ॥ ६० ॥

॥ इति पञ्चम्याः पर्वत्वम् ॥ ६० ॥

ननु–"सवीसए राइमासे वइक्कंते पज्जोसवती"ति श्रीकल्पसूत्रवचनात् "जाव भद्दवयसुद्धपचमीए अओ परेण न वट्टइ अइक्कमित्त आसाढपुण्णिमाओ आढत्त, मग्गताण जाव भद्दवयजोण्हस्स पचमीए" इति श्रीपर्युषणाचूर्णिवचनाच्च भाद्रपदसुदिपञ्चम्यामेव श्रीपर्युषणापर्वकरणमुचितम् । अन्यगच्छेष्वपि केषुचित् साम्प्रत भाद्रपदसुदिपञ्चम्यामेव पर्युषणापर्व क्रियमाण दृश्यते, परम्–आत्मीयगच्छे भाद्रपदसुदिचतुर्थ्यां तत् क्रियते तत्कथम्? इति, उच्यते–सत्य भो शिष्य! पूर्वमेव आसीत्, पर श्रीवीरात् त्रिनवत्यधिकेषु नवशतवर्षेषु (९९३) गतेषु सत्सु श्रीशालिवाहनराजाग्रहात् श्रीकालिकाचार्यैः, "अतरावि अ से कप्पइ" इति श्रीकल्पसूत्राक्षरदर्शनबलेन पञ्चमीत चतुर्थ्यां श्रीपर्युषणापर्व प्रवर्तित, तद्वशेन च चातुर्मासमपि चतुर्दश्या जात, अन्यथा आगमोक्त पञ्चदश्यामासीत्, तत् इदानींतनसमस्तसघेनाऽपि प्रमाणीकृतं,

यदुक्तं श्रीतीर्थोद्गालिप्रकीर्णके, तथाहि–"तेणउयनवसएहिं (९९३), समइक्कतेहिं वद्धमाणाओ। पज्जोसवण चउत्थी, कालगसूरिहिं तो ठविआ ॥ १ ॥ वीसहिं दिणेहिं कप्पो, १ पंचगहाणीय कप्पठवणा य। नवसयतेणउएहिं, वुच्छिन्ना संघआणाए ॥ २ ॥ सालाहणेण रन्ना, संघाएसेण कारिओ भयव।। पज्जोसवणचउत्थी, चाउम्मासं चउद्दसिए ॥ ३ ॥ चउमासयपडिकमणं, पक्खियदिवसंमि चउविहो संघो। नवसयतेणउएहिं, आयरण त पमाणंति ॥ ४ ॥"

पुनरपि श्रीस्थानाङ्गसूत्रावपि तथैव प्रत्यपादि, तथाहि–"एवं च कारणेण अज्जकालगायरिएहिं चउत्थीए पज्जोसवणा पवत्तिय सम्मत्तं संघेण य अणुमन्निअं तव्वसेण य पक्खिआईणि वि चउद्दसीए आयरिआणि, अन्नहा आगमुत्ताणि पुण्णिमाए त्ति", एव पर्युषणाचूर्णावपि, तथाहि–'कारणिया चउत्थी वि अज्जकालएहिं पवत्तिअ' त्ति। पुनरेवमेव निशीथ दशमोद्देशकेऽपि, तथाहि–"सिसो पुच्छइ इयाणिं कह च चउत्थीए अपव्वे पज्जोसविज्जत्ति? आयरिओ भणइ–कारणिया चउत्थी अज्जकालगायरिएहिं पवत्तिअ इति।' न च वाच्य तस्मिन्नेव वर्षे शालिवाहनजीवनावधि वा तत्पर्युषणापर्व चतुर्थ्यां कृत, पश्चात् पुनरपि पञ्चम्यामेव जातं भविष्यतीति, तदनन्तरमपि चतुर्थ्यामेव क्रियमाणमासीत्, यदुक्तं श्रीनिशीथचूर्णौ दशमोद्देशके, तथाहि–"इआणि कहं अपव्वे चउत्थीए पज्जोसविज्जइ?" इति शिष्यपृच्छाया गुरुवचनावसरे–"एवं च जुगप्पहाणेहिं चउत्थी कारणे पवत्तिआ, सच्चेव अणुमया सव्वसाहूणं" इति। ततः श्रीकालिकाचार्यानन्तर पश्चात् चिरत्नाऽभावी निशीथचूर्णिकारः–उक्तवचनप्रामाण्यात् ज्ञायते श्रीकालिकाचार्यात् पश्चादपि श्रीपर्युषणापर्व भाद्रपदचतुर्थ्यामेव

— २ —

अस्माभिरपि चतुर्थ्यामेव श्रीपर्युषणापर्व विधीयते इति न दोषः कोऽपि ॥

क्रियमाणमासीत्, ततस्तत्परम्पराऽऽयातैः असाभिरपि चतुर्थ्यामेव श्रोपर्युषणापर्व विधीयते इति न दोषः कोऽपि ॥ समस्तसंघेण य अणुमन्निअ",

नतु–यदि एव च–"एव च कारणेण अज्जकालगेहिं चउत्थीए पज्जोसवणं पवत्तिअं समस्तसंघेण य अणुमन्निअ", तत्करणं कुतः ? ॥

इति स्थानाङ्गवृत्तौ भणितं। तदा समस्तसंघेन चतुर्थ्यां तस्याऽङ्गीकरणात्। सांप्रतं केषुचिद्गच्छेषु पञ्चम्यां तत्करणं कुतः ? ॥

उच्यते–श्रीकालिकाचार्यपरम्परां न ते मन्यन्ते इति संभाव्यते। ननु तर्हि असढेण समाइन्न' इत्याद्युक्तत्वेन कथं न

दोषभाजः ? ॥

उच्यते–तत्रार्थे त एव प्रष्टव्याः, वयं च न कांश्चिदपि निन्दाम। ननु–आत्मगच्छे पञ्चम्यां केवलं श्रीकल्पसूत्रं पाठमात्रतः

उच्यते–तत्रार्थे त एव प्रष्टव्याः, वयं च न कांश्चिदपि निन्दाम। ननु–आत्मगच्छे पञ्चम्यां केवलं श्रीकल्पसूत्रं पाठमात्रतः सांवत्सरिकप्रतिक्रमणानन्तरिककल्पाष्टमाध्ययनपाठादनु–"कप्पस-

ीसघामे वाच्यते न वा ? न वाच्यम्–इति उत्तरं, यतः सांवत्सरिकप्रतिक्रमणानन्तरिककल्पाष्टमाध्ययनपाठादनु–"कप्पस-

ज्जावणियं करेमि काउसग्गं" इति वाक्येन कल्पसमाप्तिनैमित्तिककायोत्सर्गस्य तच्चूर्ण्यादौ प्ररूपणात्, सांवत्सरिकप्रति-

मणस्य चतुर्थ्यामेवाचरितत्वात्, चतुर्थ्यामेव तद्वाचनं यौक्तिकं, न पञ्चम्यां, अतश्चतुर्थ्यां सांवत्सरिककृत्यसमाप्तिकार-

णा पञ्चमी षष्ठीवद्दोषकृत् ज्ञेया। पुनर्यथा श्रीकल्पसूत्रे–"नो से कप्पइ तं रयणिं उवाइणावित्तए" इति पञ्चमीमा-

ना पोक्त, तथा चतुर्थीमानकानां चतुर्थीमाश्रित्यापि ज्ञेयं, ततश्चतुर्थीमानकानां पञ्चम्यां श्रीकल्पसूत्रस्य संघसमक्षं पाठ-

खरतरगच्छाधीशा, जिनचन्द्रयुगप्रधानगुरुराजाः । श्रीपातिशाहिमान्याः, समभूवन् भूमिविख्याताः ॥ १ ॥
श्रीपूज्यमुख्यशिष्या, वृद्धाः श्रीसकलचन्द्रनामानः । मद्गुरवो गुणगुरव—स्तेषामेष प्रसादो मे ॥ २ ॥
त्रयोदशभिरित्येष, पूर्णं प्रश्नोत्तरैर्व्यधात् । तृतीयक प्रकाश श्री-समयादिमसुन्दर ॥ ३ ॥
इति श्रीसमयसुन्दरोपाध्यायविरचिते श्रीसामाचारीशतके पञ्चमप्रकाशे तृतीयः प्रकाशः सम्पूर्णः ॥ ३ ॥

इति श्रीसमयसुन्दरोपाध्यायविरचिते सामाचारीशतके
पञ्चमप्रकाशे तृतीयः प्रकाशः समाप्तः ॥ ३ ॥

# ॥ अथ चतुर्थः प्रकाशः ॥

॥ श्रीमत्स्थमणपार्श्वनाथाय नमः ॥

ननु–श्रीजिनवल्लभसूरीणा परमसविग्नाना कठोरसत्क्रियापात्राणां का सामाचारी प्रवर्तते ?, यदुपरि सर्वोऽपि श्रीखरतरगच्छसघः प्रतिक्रमणादिक्रिया कुर्वाणोऽस्ति ? उच्यते–श्रूयताम्, एषा चत्वारिंशद्गाथारूपा तेषा सामाचारी, तथाहि—

"सम्म नमिउ देव, देविंदवंदिअपय महावीर। पडिक्कमणसमाचारीं, भणामि जह सभरामि अह ॥ १ ॥ पचविहायारविसु–ज्झिहेउमिह साहु सावगो वावि। पडिक्कमण सह गुरुणा, गुरुविरहे कुणइ इक्को वि ॥ २ ॥ वदित्त चेइआइ, दाउ चउराइए खमासमणे। भूनिहियसिरो सयला–ऽइआरमिच्छुक्कड देइ ॥ ३ ॥ सामाइअपुव्वमिच्छा–मि ठाइउ काउसग्गमिच्चाइ। सुत्त भणिअ पलबिअभूयकुप्परधरिअपहिरणओ ॥ ४ ॥ सजइ १ कविट्ठ २ घण ३ लय ४ लवुत्तर ५ खलिण ६ सवरि ७ वहु ८ पेहा ९। वारुणि १० भमुह ११ गुलि १२ सीस १३ मूअ १४ हय १५ काय १६ निहलु १७ द्धी १८ ॥ ५ ॥ थभाइ १९ [घोडगमाई] दोसरहिय, तो कुणइ दुद्धसिओ तणुस्सग्ग। नाभिअहो जाणुद्ध, चतुरगुलठविअकडिपट्टो ॥ ६ ॥ तत्थ य धरेइ हिअए, जहक्कम दिणकए अईआरे। पारेत्तु नमुक्कारेण पढइ चउवीसत्थयदड ॥ ७ ॥ सडासगे पमज्जिय, उवविसिय अलग्गविअयबाहुजुओ। मुहणतग च काय, पेहए पचवीसइहा ॥ ८ ॥ उट्ठियट्ठिओ सविणय,

विहिणा गुरुणो करेइ किइकम्म । बत्तीसदोसरहिय, पणवीसावस्सगविसुद्ध ॥ ९ ॥ यद्ध १ पविद्ध २ मणाढिअ ३ परि-
पिंडिअ ४ मकुसं ५ समुवत्त ६ । कच्छवरिंगिअ ७ टोलगइ–८ दद्धुर ९ चेइ–आवद्ध १० ॥ १० ॥ मणदुट्ठ ११ रुट्ठ १२
तज्जिय १३ सढ १४ हीलिअ १५ तिणिअ १६ भडणीमं च १७ । दिट्ठमदिट्ठ १८ सगं १९ कर २० मोगण २१ मूण २२
मूअं च २३ ॥ ११ ॥ मय २४ मित्ती २५ गारव २६ कारणेहिं २७ पलिओवि । [चि]अ २८ भयत च २९ । आलिद्ध ३०
मणालिद्ध ३१ चूलिअ ३२ चुडुलिंत्ति बत्तीसा ॥ १२ ॥ उपवेसमहाजाय, दुहोणय पयडवारसावत्त । एगनिरामणातिगुत्त,
चउसिर न भणंति पणवीसा ॥ १३ ॥ अह सम्ममवणअगो, करजुअविहिधरिअपोत्तिरयहरणो । परिचिंतिय अइआरे,
जहकम गुरुपुरो विअडे ॥ १४ ॥ अह उवविसित्तु सुत्त, सामाइअमाइअ पढीअ पयओ । अब्भुट्ठिओ म्मि इच्चा–इ पढइ
दुह ट्ठिओ विहिणा ॥ १५ ॥ दाऊण वदण तो, पणगाइसु जइसु खामए तिन्नि । किइकम्म किरियाठिओ, मज्झो गाहा-
तिगं भणई ॥ १६ ॥ अह [इय] सामाइअउस्सग्गसुत्तमुच्चरिअ काउसग्गठिओ । चिंतइ उज्जोयदुग, चरित्तअइआरसुद्धि-
कए ॥ १७ ॥ विहिणा पारिअ सम्म–त्तसुद्धिहेउ च पढिअ उज्जोअ । तह सयलोयअरिह–चेइआरोहणुस्सग्गं ॥ १८ ॥
काउ उज्जोयगरं, चिंतिय पारेइ सुद्धसम्मत्तो । पुक्खरवरदीवड्ढं, कड्ढइ सुयसोहणनिमित्त ॥ १९ ॥ पुण पणवीसोस्सासा
उस्सग्गं कुणइ पारए विहिणा । तो सयलकुसलकिरिआ, फलाण सिद्धाण पढइ थय ॥ २० ॥ अह सुअसमिद्धिहेउ, सुय
देवीए करेइ उस्सग्ग । चिंतेइ नमुक्कारं, सुणइ वदेइ व तीइ थुइ ॥ २१ ॥ एव खेत्तसुरीए, उस्सग्ग कुणइ सुणइ देइ थुइं ।
पढिअ च पचमगलं उवविसइ पमज्ज संडासे ॥ २२ ॥ पुव्वविहिणेव पेहिअ [illegible] दाऊण वदणं गुरुणो । इच्छामो अणु-

सड्ढिं,–ति भणिअ जाणूहिंठो ठाइ ॥ २३ ॥ गुरुथुइगहणे थुइ तिन्नि, वड्ढमाणक्खरस्सरो पढइ। सक्कत्थय थयं पढिअ कुणइ पच्छित्तउस्सग्ग ॥ २४ ॥ एव ता देवसिअं, राइअमवि एवमेव नवरि तहिं। पढम दाउ मिच्छा–मि दुक्कड पढइ सक्कत्थय ॥ २५ ॥ उट्ठिय करेइ विहिणा, उस्सग्ग चिंतए अ उज्जोय। बीअ दंसणसुद्धीए चिंतए तत्थ इममेव ॥ २६ ॥ तइए निसाअइयारे, जहक्कम्म चिंतिऊण पारेइ। सिद्धत्थय पढित्ता, पमज्ज संडासमुवविसइ ॥ २७ ॥ पुव्वं च पोत्तिपेहण–वंदण-मालोयसुत्तपढण च। वंदणखामणवंदण–गाहातिगपढणमुस्सग्गो ॥ २८ ॥ तत्थ वि चिंतए संयम–योगाण न जेण होइ मे हाणी। त पडिवज्जामि तव, छम्मासं ता न काउमल ॥ २९ ॥ एगाइगुणतीसूणय अ पि न सहो न पचमासमवि। एय चउ ति दुमासं, न समत्थो एगमास पि ॥ ३० ॥ जा त पि तेरसूण, चउतीसइमाइअ दुहाणीए। जाव चउत्थ तो आय-विलाइ जा पोरसि नमो वा ॥ ३१ ॥ जो सक्क त हिअए, धरित्तुं पारेत्तु पेहए पोत्तिं। दाऊ वंदणमसढो, त चिअ पच्चक्खए विहिणा ॥ ३२ ॥ इच्छामो अणुसट्ठिं, ति भणइ उववसिअ पढइ तिन्नि। थुई मिउसद्देण सक्कत्थयाइ तो चेइए वंदे ॥ ३३ ॥ अह पक्खिय चउद्दसि–दिणम्मि पुव्व व तत्थ देवसिअ। सुत्तत पडिक्कमिउ, तो सम्ममिम कम कुणइ ॥ ३४ ॥ मुहपोत्तिय वंदणय, संबुद्धाखामण तहालोए। वंदण पत्तेयखामणाणि च वंदणयमह सुत्त च ॥ ३५ ॥ सुत्त अब्भु ट्ठाण, उस्सग्गो पोत्ति वंदण तह य। पज्जतिअखामण, तह चउरो थोभवंदणया ॥ ३६ ॥ पुव्वविहिणेव सव्व, देवसिय वंदणाइ तो कुणइ। सिज्जसुरी उस्सग्गे, भेओ सतित्थयपढणे अ ॥ ३७ ॥ एव चि अ चउमासे, वरिसे अ जहक्कम्म विहि णेयो। पक्खचउमास–वरिसेसु नवरि नाममि नाणत्त ॥ ३८ ॥ तह उस्सग्गोज्जोया, बारस वीसा सम्म गलिगचत्ता।

सवुद्धासामण ति–पण सत्त साहूण जइसंस ॥ ३९ ॥ इअ जिणवल्लहगणिणा, लिहिअं ज सुमरिअं च भइणावि । तस्सु-
समणाइस्सं, ज मिच्छामि दुक्कडं तस्स ॥ ४० ॥"

॥ इति श्रीजिनवल्लभसूरिसामाचार्यधिकार ॥ ६२ ॥

ननु–श्रीजिनदत्तसूरीणा युगप्रधानगुरूणामपि अनायतनचैत्य–स्त्रीकृतमूलप्रतिमापूजा–प्रमुखनिषेधकवाक्यानि सामाचारीरूपाणि काऽपि सकलितानि सन्ति ? सन्तीति ब्रूम, स्वकृतोत्सूत्रपदोद्घाटनकुलके तैः सविस्तर प्ररूपितत्वात् तथाहि, तत्कुलक—

"लिंगी जत्थ गिहिव्व देवनिलए निच्च निवासी सय, सुत्तेऽणायतण न तत्थ व जओ नाणाइवुड्ढी भवे । निस्सानिस्सजिणिंदमंदिरदुग तल्लाभ हेउ तय, सिद्धतमि पसिद्धमेव वहवी खिंसति ही बालिसा ॥ १ ॥ चेइअमढेसु जइवेसधारया निच्चमेव निवसति । तमणायणण अइसायगेहिं सलु पसणिज्जति ॥ २ ॥ तस्सुत्तदेसणाकारएहिं केहिं तु वसइवासीहिं । पडिमोहिअसावयचेइय पुणो होइऽणायणण ॥ ३ ॥ एयमि सुस्सुत्त पुण, जुवइपवेसो निसाइ चेइहरे । रयणीइ जिणपइट्ठा, न्हाण नेवेज्जदाणं च ॥ ४ ॥ पूयइ मूलपडिमपि साविया चिइनिवासिसम्मत्त । गन्भापहारकल्लाण पि न हु होइ वीरस्स ॥ ५ ॥ कीरइ मासविहारोऽणुणाऽवि साहूहिं नत्थि किर दोसो । पुरिसित्थीओ पडिमा, वहति तत्था–इमा पवरो ॥ ६ ॥ कसुअसगरिमाओ, न हुति बिंदलति विरुद्दगाऽणत । न य सिंचियचेराइ, सच्चित्त सिंधवो दक्खा ॥ ७ ॥ इरियावहिय पडिकमिअ ओ सीणाईण पूअणाइ पुणो । कुज्जा इरिय पडिकमिअ कुणइ किइ[य]कम्मदाणाई ॥ ८ ॥ चिहि-

चेइअ नाम पि हु न जुत्तमेअ जमागमेणुत्तं । निस्साकडाइ जिणचेइआइ, लिंगीहि विजुआइ ॥ ९ ॥ तित्तियमित्तं कुज्जा, जित्तियमित्त जलाइ मुजिज्जा । अजियजलाहारगिही, पाणागारे समुच्चरइ ॥ १० ॥ उग्गय[ए]सूरे सूरुग्गमे अ भणिअमि नत्थि किर दोसो । एगजुगे जुगपवरा, दस पच हवंति न हु एगो ॥ ११ ॥ बत्तीस देविंदा, चउसट्ठी नेअ हुति जिणपयडा । पूआ अट्ठविअप्पा, पाससुपासा न नव ति फणा ॥ १२ ॥ खीरघएहिं ण्हाणं, जिणपडिमाण न काउ जुत्तमिण । दवत्थओत्ति काउ, गिहीणमुचिआ जिणपइट्ठा ॥ १३ ॥ कत्तियऽमावासाए, पच्छिमरयणीइ वीरपडिमाए । कीरइ न्हाण पूआ, वाइअ मद्दनट्टगीअं च ॥ १४ ॥ लउडारसो वि विज्जइ, विहि–जिणभवणमि सावएहिं पि । सासणसुराणमदो–लण च तत्थेव जलकील ॥ १५ ॥ माहे मालारोवण–मिह कीरत च साहए सिद्धिं । मालग्गहणे न्हाणे, जिणाण रयणीइ [ए] को दोसो ? ॥ १६ ॥ न्हवणयरसिहावधो, मुद्दाकलसेसु वासखेवाइ । सूरी विणा पइट्ठ, कुणइ अ उस्सुत्तमाईअ ॥ १७ ॥ गिहिणोऽवि विसावधो, कीरंतो धम्मसाहगो होइ । चेइवसहिनिवासीवि साहुवेसट्ठिया पुज्जा ॥ १८ ॥ जिणबिंबमणाययणं, न होइ निवसंति ते जहिं स मढो । सो सुविहियसाहूहिं, परिहरिणिज्जो न य गिहीहिं ॥ १९ ॥ मेरुगिरिंमि तिअसाहि–वेहिं जिणजम्मन्हाणमवि किरिय । आरत्तिअमुत्तारिय, मगलदीव कय नट्ट ॥ २० ॥ आरत्तिअमेगजिणिं–दपडिमपुरओ कय न निम्मल्लं । परिह्राविज्जइ जेण, वत्थेण तमवि निम्मल ॥ २१ ॥ आरत्तियमुवरिजलं, भामिज्जइ तह पयत्तओ पूअ । तमि अ जमुत्तरते, तदुवरि कुसुमंजलिक्खेवो ॥ २२ ॥ आरत्तिय धरिज्जइ, जयंतराले वि उत्तरतं तु । कीरइ नट्ट गीअ, वाइअमुअगीअ नट्टं च ॥ २३ ॥ जिणपुरओऽवि फलक्खय–पमुह ज ढोइअ तु पूअट्ठा । तमवि न कप्पइ

पडिक्कमणाइ मोणेण कुणति ॥३०॥ गोयमपडिग्गह १ मुक्सदंडग २ मउडसत्तमी माणिकपत्थारिआइ तव अकरण ॥ ३१ ॥
सपइकाले सामयपडिमाओ न वहिज्जति ॥३२॥ देवस्स गाम १ गोउल २ आराम ३ कूवाइ ४ न कीरइ ॥३३॥ चेइअहराइसु
अजुउचय पडिसेहो ॥३४॥ राईमई विरहगीआई परिहारो ॥३५॥ जहभओ वि पारुत्थय विणा न न्हवण ॥ ३६ ॥ रयणीए
नदि १ बलि २ पइट्ठा ३ रहजत्ता ४ न्हवणाई ५ समणा १ समणी २ सावय ३ साविआण ४ चेइअ पवेसो न मंगलदीवस्स
न भामण ॥ ३७ ॥ न य आरत्तिए विसेस पूआ ॥ ३८ ॥ लवणस्स जलस्स य उत्तारिम जलणे खिवण ॥ ३८ ॥ न य थाल
विणा आरत्ति अ मगळदीवा ॥ ४० ॥ न पेईए वेसा नच्चण ॥ ४१ ॥ न य लउडारसदाण ॥ ४२ ॥ लोण १ जल २
आरत्तिआइ ३ जिणस्स सकेण न कय किंतु गीयत्थेहिं आइण्णं सहारेण य सजुत्त ॥ ४३ ॥ अट्ठाहिआओ वहा आर-
भिअवाओ जहा सत्तमी अट्ठमी नवमीओ अट्ठाहिआ मज्झे इति ॥ ४४ ॥ परिग्गहप्पमाणटिप्पणए मूलगुरुपासे इम
गहिमति लिहिअइ न उण अन्नेहिं वि आयरिय उवज्झाय वायणायरिएहिं विसे परिग्गहप्पमाणे स नाम लिहिअय ॥ ४५ ॥
मूलगुरुपत्थाण काउ जाव विवक्खिसय ठाणं न संपत्तो ताव धोवणीया सवठाणेसु साहूहिं न कायवा ॥ ४६ ॥ कंपक-
पलियाए असमप्पिआए दडगो न अप्पेअवो आयरियउवज्झायाण गिण्हवेहिं पढम दडओ घेतवो पच्छा कयकम
लिआ ॥ ४७ ॥ आयरिय-उवज्झायाणं कयकवली विहारभूमिए वेयावच्चगरेण घेतवा न पुण वायणायरिअस्स ॥ ४८ ॥
परो तिप्पाओ घेतवा न पुण तिम्मि ॥ ४९ ॥ अपडिक्कमत वदणदायारो सावया जहा पभाए तहा सझाए वि दोहिं

छदणेहिं कमेण आलोयण खामण पच्चक्खाणं करेंति, न पुण सझाए पढम छदणदुगेण पच्चक्खाण ततो दो दो छदणेहिं आलोयण खामणया ॥ ५० ॥ सावय-पडिक्कमणसुत्तते तस्स धम्मस्स केवलिपन्नत्तस्सत्ति न भणंति ॥ ५१ ॥ पडिक्कमणे साहुणो सावया य काउस्सग्गे आइआर मुक्कलं चिंतति न पुण गाहारूव ॥ ५२ ॥ वक्खाणवायणेवि रागझुणी न कायव्वो ॥ ५३ ॥ सामाइअदंडग मुहपोत्तिआ पडिलेहणपुव्व भणिअ तओ इरिआवहिआ पडिक्कमिज्जइ न पुण इरिअ पडिक्कमित्ता तओ सामाइअग्गहण ॥ ५४ ॥ पक्खियपडिक्कमणे पुढोकय आलोयण मुत्तु परोप्पर एगमडलीए न छंदणा दोसो अओ मुहपोत्ति पडिलेहिज्जइ ॥ ५५ ॥ अट्ठमीचउद्दसीसु उववासकरण सइ सामत्थे बीआपचमीएगारसीसु निव्विगयं अभया एगभत्तमयिंजण आय खुड्डिय गिलाणाइ मोत्तु ॥ ५६ ॥ पइदिण सपुण्णचियवंदणा देवालए ॥ ५७ ॥ रत्तिए गुरुणो सोअत्थं दुप्परिआए जलोल्लिय चीवरसडठावण अइसाराइसु लूहणयाइ धोवण भडए धारेअव्व ॥ ५८ ॥ चउमासिया घोषणी ॥ ५९ ॥ वासा चउमासए सूरिण दुकयला निसिज्झा उवज्झायस्स एग कव्वला वायणायरिअस्स य ॥ ६० ॥ जेट्ठउवज्झाया मह-उवज्झाया इति भणति न पुण अन्ने ॥ ६१ ॥ आयरिय नाम लेहाइसु अमुग आयरिय इय लिहिअव्व न पुण सूरित्ति ॥ ६२ ॥ सघाडयबाहिरे मए तस्स अतिय वत्थ पत्त पुत्थआइ पडआसण कबलसहिअ मूलगुरुणो दिज्जइ ॥ ६३ ॥ साहुसु कणिट्ठो भोयणमंडलिं समुद्धरइ ॥ ६४ ॥ ओमरायणीआ जलं विहरति सो सामत्ताइअ ॥ ६५ ॥ बीसओसिरिमाल-ओसवाल-पोरवाड-कुलसभूओ चेव आयरिओ ठाविज्जइ उवज्झाओवि तहेव न पुण दसाजातिओ महुत्तीयाणो ठाविज्जइ, वायणागुरू जो वा सो वा ठाविज्जइ महत्तरी सिरिमाला चेव ठाविज्जइ ॥ ६६ ॥

पडिक्कमणाइ मोणेण कुणंति ॥३०॥ गोयमपडिग्गह १ मुक्खदडग २ मउडसत्तमी माणिक्कपत्थारिआइ तव अकरण ॥ ३१ ॥ सपइकाले सावयपडिमाओ न पडिज्जति ॥३२॥ चेयस्स गाम १ गोउल २ आराम ३ कूवाइ ४ न कीरइ ॥३३॥ चेइअहराइसु अट्ठडपय पडिसेहो ॥३४॥ राईमई विरहगीआई परिहारो ॥३५॥ जइअओ वि पारुत्थय विणा न न्हवण ॥ ३६ ॥ रयणीए नदि १ बलि २ पट्टा ३ रहसत्ता ४ न्हवणाई ५ समणा १ समणी २ सावय ३ साविआण ४ चेइअ पवेसो न मगलदीवस्स न भामण ॥ ३७ ॥ न य आरत्तिए विसेस पूआ ॥ ३८ ॥ लवणस्स जलस्स य उत्तारिअ जलणे खिवण ॥ ३८ ॥ न य थाल विणा आरत्ति अ मगलदीवा ॥ ४० ॥ न चेईए वेसा नच्चण ॥ ४१ ॥ न य लउडारसदाण ॥ ४२ ॥ लोण १ जल २ आरत्तिआइ ३ जिणस्स सव्वेण न कय किंतु गीयत्थेहिं आइण्णं सद्धारेण य सजुत्त ॥ ४३ ॥ अट्ठाहिआओ तहा आर-भिअवाओ अहा सत्तमी अट्ठमी नवमीओ अट्ठाहिआ मज्झे इति ॥ ४४ ॥ परिग्गहप्पमाणटिप्पणए मूलगुरुपासे इम गहिअति लिहिज्जइ न उण अन्नेहिं वि आयरिय उवज्झाय वायणायरिएहिं विसे परिग्गहप्पमाणे स नाम लिहिअव ॥ ४५ ॥ मूलगुरुपत्थाण काउ जाव विवक्खिय ठाणं न संपत्तो ताव धोवणीया सव्वठाणेसु साहूहिं न कायवा ॥ ४६ ॥ कंधक-बलियाए असमप्पिआए दंडगो न अप्पेअव्वो आयरियउवज्झायाण गिण्हतेहिं पढम दडओ घेतव्वो पच्छा कंधकंब-लिआ ॥ ४७ ॥ आयरिय-उवज्झायाणं कंधकंबली विहारभूमिए वेयावच्चगरेण घेतवा न पुण वायणायरिअस्स ॥ ४८ ॥ पवरो तिप्पाओ घेतवा न पुण तिन्नि ॥ ४९ ॥ अपडिक्कमत वदणदायारो सावया जहा पभाए तहा सझाए वि दोहिं

छदणेहिं कमेण आलोयण खामण पच्चक्खाण करेंति, न पुण सझाए पढमं छदणदुगेण पच्चक्खाण ततो दो दो छदणेहिं आलोयण खामणया ॥ ५० ॥ सावय–पडिक्कमणसुत्ते तस्स धम्मस्स केवलिपन्नत्तस्सत्ति न भणंति ॥ ५१ ॥ पडिक्कमणे साहुणो सावया य काउस्सग्गे आइआर मुक्कलं चिंतति न पुण गाहारूवं ॥ ५२ ॥ वक्खाणवायणेवि रागझुणी न कायव्वो ॥ ५३ ॥ सामाइअदंडग मुहपोत्तिआ पडिलेहणपुव्व भणिअ तओ इरिआवहिआ पडिक्कमिज्जइ न पुण इरिअ पडिक्कमित्ता तओ सामाइअग्गहण ॥ ५४ ॥ पक्खियपडिक्कमणे पुढोकय आलोयण मुत्तु परोप्पर एगमंडलीए न छंदणा दोसो अओ मुहपोत्ति पडिलेहिज्जइ ॥ ५५ ॥ अट्ठमीचउद्दसीसु उववासकरण सइ सामत्थे बीआपंचमीएग्गारसीसु निव्विगय अहवा एगभत्तमविजण जाय खुड्डिय गिलाणाइ मोत्तु ॥ ५६ ॥ पइदिण सपुण्णचियवंदणा देवालए ॥ ५७ ॥ रत्तिए गुरुणो सोअत्थं दुप्परिआए जलोल्लिय चीवरखंडठावण अइसाराइसु लूहणयाइ धोवण भंडए धारेअव्व ॥ ५८ ॥ चउमासिया धोवणी ॥ ५९ ॥ वासा चउमासए सूरिण दुकंबला निसिज्जा उवज्झायस्स एग कंबला वायणायरिअस्स य ॥ ६० ॥ जेट्ठउवज्झाया मह–उवज्झाया इति भणति न पुण अन्ने ॥ ६१ ॥ आयरिय नाम लेहाइसु अमुग आयरिय इय लिहिअव्व न पुण सूरित्ति ॥ ६२ ॥ संघाडयबाहिरे मए तस्स अतिय वत्थ पत्त पुत्थआइ पडआसण कवलसहिअ मूलगुरुणो दिज्जइ ॥ ६३ ॥ साहुसु कणिट्ठो भोयणमंडलिं समुद्धरइ ॥ ६४ ॥ ओमरायणीआ जल विहरति सो सा भत्ताइस ॥ ६५ ॥ वीसओसिरिमाल-ओसवाल-पोरवाड-कुलसमूओ चेव आयरिओ ठाविज्जइ उवज्झाओवि तदेव न पुण दसाजातिओ महुत्तीयाणो ठाविज्जइ, वायणागुरू जो वा सो वा ठाविज्जइ महत्तरी सिरिमाला चेव ठाविज्जइ ॥ ६६ ॥

पडिक्कमणाइ मोणेण कुणति ॥३०॥ गोयमपडिग्गह १ मुक्खदडग २ मउडसत्तमी माणिक्कपत्थारिआइ तव अकरण ॥३१॥
सपइकाले सावयपडिमाओ न धारिज्जति ॥३२॥ देवस्स गाम १ गोचल २ आराम ३ कूवाइ ४ न कीरइ ॥३३॥ चेइअहराइसु
अणुसवय पडिसेहो ॥३४॥ राईमई विरहगीआई परिहारो ॥३५॥ जइअओ वि पारुत्थय विणा न न्हवण ॥ ३६ ॥ रयणीए
नदि १ बलि २ पइट्ठा ३ रहजत्ता ४ न्हवणाई ५ समणा १ समणी २ सावय ३ साविआण ४ चेइअ पवेसो न मगलदीवस्स
न भामण ॥ ३७ ॥ न य आरत्तिए विसेस पूआ ॥ ३८ ॥ लवणस्स जलस्स य उत्तारिअ जलणे खिवण ॥ ३८ ॥ न य थाल
विणा आरत्ति अ मगलदीवा ॥ ४० ॥ न चेईए वेसा नच्चण ॥ ४१ ॥ न य लउडारसदाण ॥ ४२ ॥ लोण १ जल २
आरत्तिआइ ३ जिणस्स सवेण न कय किंतु गीयत्थेहिं आइण्णं संहारेण य सजुत्त ॥ ४३ ॥ अट्ठाहिआओ तहा आर-
भिअवाओ जहा सत्तमी अट्ठमी नवमीओ अट्ठाहिआ मज्झे इति ॥ ४४ ॥ परिग्गहप्पमाणटिप्पणए मूलगुरुपासे इम
गहिअति लिहिज्जइ न उण अन्नेहिं वि आयरिय उवज्झाय वायणायरिएहिं दिन्ने परिग्गहप्पमाणे स नाम लिहिअए ॥ ४५ ॥
मूलगुरुपत्थाण काउ जाव विधक्खिय ठाणं न संपत्तो ताव घोषणीया सव्वठाणेसु साहूहिं न कायव्वा ॥ ४६ ॥ कंधक-
बलियाए असमप्पिआए दंडगो न अप्पेअव्वो आयरियउवज्झायाण गिण्हतेहिं पढम दडओ घेतव्वो पच्छा कधकव
लिआ ॥ ४७ ॥ आयरिय-उवज्झायाणं कधकबली विहारभूमिए वेयावच्चगरेण घेतवा न पुण वायणायरिअस्स ॥ ४८ ॥
घउरो तिप्पाओ घेतव्वा न पुण तिन्नि ॥ ४९ ॥ अपडिक्कमतं वदणदायारो सावया जहा पभाए तहा सझाए वि दोहिं

किमपि न आनाय्य किं तु सघाटक प्रति पृष्ट्वा । ८ । विंशति वर्षपर्यायं विना योगपट्टादि न ग्राह्यं । ९ । साभा[illegible]
मर्जनं । १० । संस्तारके सामान्यतपोधनस्य कम्बलिका निषिद्धा ग्लानवर्जं । ११ । क्रीतादिना वस्त्रादि अपूर्वं न आनाय्य
। १२ । सागारिकसमक्षं गाढकलहे आचाम्लं अज्ञाते निर्विकृतिक । १३ । सागारिकेभ्यो याचकेभ्यश्च निजान्नपानादि
न देय । १४ । उपाध्यायवाचनाचार्ययोः मण्यक्षपूजानिषेधः । १५ । गुरोराज्ञया विहारो गमनागमनादिक । १६ ।
उपाध्यायवाचनाचार्याणां प्रावृतानामेव उपयोगकरण आचार्यवत् । १७ । उपाध्यायवाचनाचार्याणां आरात्रिकावतारणं
न । १८ । प्रथमदिने आचार्योपाध्यायवाचनाचार्यैः यथाज्येष्ठ रात्रिकं पादशौचं कार्यं । १९ । उपाध्यायवाचनाचार्याणां
पृष्ठपट्टे कम्बल वस्त्र च नाऽस्ति । २० । भोजनकाले आचार्योपाध्यायाग्रे पट्टक धार्यं, न वाचनाचार्याग्रे । २१ । व्याख्या-
नारम्भे गच्छाधिपतेः नमस्कारकथन प्रतिक्रमणे तन्नाम कथन च । २२ । दीक्षादान मूलगुरोस्तदाज्ञया आचार्याणा च
। २३ । सागारिकदृष्टौ उच्छोञ्छनाभ्यगनिषेधोऽन्यत्र हस्तपादमुखशौचात् । २४ । वर्षाचतुर्मास्यां एका विकृतिः चीरक-
ल्पाके च बालग्लानवर्जं । २५ । राजकाचरनिषेधः । २६ । देवस्य ज्ञानस्य च न क्वाऽपि व्यापार्यं देवकार्यादन्यत्र । २७ ।
पूर्णिमाऽमावास्यो नन्दीश्वरदेववन्दन । २८ । कार्तिकचातुर्मासिक पारण बहिर्विधेय यतनया । २९ । गुरुरूपद्रव्यमपि
देवस्व-ज्ञानस्ववत् । ३० । अकाले संज्ञायां यथा उपवासः प्रवेश्यः । ३१ । अष्टमीचतुर्दश्योः पादशौचवर्जं उच्छोलना-
दिदोषः करणे उपवासः । ३२ । तत्सर्गेण दुग्धनिषेध य कश्चित् लोपयिष्यति तस्याज्ञाभंगः इति ॥ ३३ ॥

॥ इति व्यवस्थापत्राधिकारः ॥ ६५ ॥

पथे सज्झाय दुप्पडिलेहण गोअरचरिमभंगेसि अहा—जेहं साहूणो विस्सामिअ विस्सामिअ सुह विहारो पुच्छिअतो ॥ ५७॥ साहूण पढमो-पहाये वुड्ढे उत्तरज्झयणाइ ओगा वोढवा ॥ ५८ ॥ वीरस्स छ कल्लाणा य ॥ ५९ ॥"

॥ इति श्रीजिनपतिसूरिसामाचार्यधिकारः ॥ ५४ ॥

ननु—श्रीखरतरगच्छे एतत्सामाचारीत्रयातिरिक्त व्यवस्थापत्रमपि किमपि वर्तते न वा ? उच्यते—वर्तते एव साधूनां शिक्षारूपं, तथाहि—

सर्व पक्षपाक्षादि विहृत्य मूलगुरुभ्यो निवेदनीय । १ । प्राभृतकादिपरिष्ठापने आचाम्ल, अन्यत्र चातुर्मासिक—सांवत्सरिकपारणात् । २ । पात्रक्षालने कल्पपरिष्ठाने निर्विकृतिकं । ३ । गुरुणासह सस्तारक—मुखवस्त्रिकाऽप्रतिलेखने निर्विकृतिक मार्गश्रमम्लानत्वादिकारण विना । ४ । गुरोरनापृच्छया साधुभ्यो वस्त्रादिदान न कार्यम् । अन्यत्र पृथक् सघाटकात् । ५ । पात्र त्रैप्यक भङ्गे आचाम्ल । ६ । चेतणी ढांकणी प्रभृतिभगे निर्विकृतिकं । ७ । आत्मकृष्या गृहस्थपार्श्वात्

---

१ मच्छराः समकीः सावत्रि । सूरिमंत्र आराधति । मलाई हिमवसूरिमभजपं करोति । खरतरश्राद्धगृहे अमकाकसतकार्ये [ गुरुनं ] खरतर-श्राद्धा सदा किमपी २००० गुरुजीवा । श्राद्धः समूहे मासमध्ये आचाम्लद्वयं कार्यं । सति सामर्थ्ये खरतरसाधुभिः प्रकाशनं कार्यं । एते सप्त वरा श्रीजिनदत्तसूरिभिः पार्श्वे चोसियीनगरीतः । चोसिकीसूनाः पुत्रे । मतिमासं एक आद्वो दीक्षा । मायसः खरतरश्राद्धो निर्धनो न । खरतरश्राद्धाः कुमारेण न म्रियते । साध्वी धीमर्भे न । खरतरश्राद्धः शाकिनी न छलति । जिनदत्तसूरिनाम्ना विद्युद्भयं न । खरतरश्राद्धाः सिन्धुदेशे गत्वा क्षमवान् भविष्यति । इति जिनदत्तसूरीनां सप्त वरा चोसिकीसूनाः इति जीर्ण-पत्रे ॥

ननु-श्राविका श्रावको वा यदा मुखवस्त्रिकोपरि वन्दनक दद्ते तदा एकपट्टाया मुखवस्त्रिकाया उपरि तद् दान घटामाटीकते ?, किंवा द्विपट्टाया उपरि ? उच्यते—एकपट्टायाः, न द्विपट्टायाः, यतो वन्दनकावसरे पूज्यपादयुग्मकल्पना मुखवस्त्रिकाया मध्यभागे कथिताऽस्ति। द्विपट्टायास्तस्या उपरि वन्दनकदाने मुखवस्त्रिकाया मध्यभागो न भवति किन्तु चतुर्थभागः, स तु विरुद्धो ग्रन्थेऽप्रतिपादनात्, तस्या मध्यभागे वन्दनकदान तु श्रीअभयदेवसूरिकृतवन्दनकभाष्ये प्रोक्तमस्ति, तथाहि—

"तह वि छिन वामयजाणु नमिऊण तत्थ मुहपुत्तिं। रयहरणमज्झभागमि ठावए पुज्जपायजुग ॥ १ ॥

एव सुसावओ वि हु दुवालसावत्तवंदणं दिंतो। मुहपुत्तिमज्झभार्गमि ठावए पुज्जपायजुग ॥ २ ॥

॥ इत्येकपट्टमुखवस्त्रिकोपरि वन्दनकदानाधिकारः ॥ ९८ ॥

ननु-श्रीखरतरगच्छे पदस्थानां व्यवस्थाविधिः कोऽपि प्राक्तनोऽस्ति न वा ? उच्यते—अस्तीति। तथाहि—

श्रीयुगप्रधानाचार्यस्य गच्छाधिपतेः पाञ्चजन्यशङ्खवादनाविना प्रवेशः क्रियते, निउछन च क्रियते, मङ्गलकलशः सम्मुखमागच्छति [ आनीयते ], व्याख्याने कृते सति श्राविका गीत गायन्ति, इति सक्षेपेण श्रीयुगप्रधानाचार्यस्य प्रतिपतिः ॥ १ ॥

०२४ द्वितीयस्थानीय-सामान्याचार्यस्य नगरप्रवेशे चतुर्विधसघः सम्मुख आगच्छति, शङ्खो वाद्यते, श्राविकाश्च गीत

ननु—देववन्दनाऽनन्तर श्रीमाचार्यमिश्र—इत्यादि क्षमाश्रमणचतुष्टयादारभ्य क्षेत्रदेवतास्तुतिपूर्वकवन्दनद्वयदानेन नमोऽर्हत्सिद्धा इत्यादिपर्यन्त आन्तरणीनामकः छन्दनादोपः प्रतिपादितोऽस्ति, अतः पाक्षिकप्रतिक्रमणे क्षामणाकाले परस्पर आतरणीदोषो न गण्यमानोऽस्ति, तत् क्वाऽपि प्रतिपादितमस्ति न वा ? उच्यते—श्रीजिनपतिसूरिसामाचार्यां स्पष्ट तदक्षराणि सन्ति, तथाहि—"पक्खियपडिक्कमणे पुढोकय आलोयणं मोत्तु परोप्पर एग मडलीए न छदणा दोसो अओ मुहपत्ति पडिलेहिज्जइ" १ एवं श्रीजिनप्रभसूरिकृतविधिप्रपायामपि, तथाहि—"पक्खियपडिक्कमणे पत्तेअसामणकुणताण पुढोकय आलोयण मोत्तु नत्थि छदणादोसो अओ चेव अम्ह सामाचारीए मुहपत्तिआ पत्तेअ खामणानन्तर पडिलेहिज्ज इत्ति २ एव तरुणप्रभसूरिकृत—षाडावबोधेऽपि ज्ञेयम् ३ ॥

॥ इति पाक्षिकप्रतिक्रमणे क्षामणाया न आन्तरीणानामक छन्दना—दोपाधिकारः ॥ ६६ ॥

ननु—देवसिय पडिक्कंतं कियन्त काल कथ्यते ?, कियन्त काल च राइय वइक्कत पठ्यते ? उच्यते—प्रादोषिके प्रतिक्रमणे रात्रिप्रथम प्रहर यावत् देवसिय कथ्यते, पूर्वाह्णे तु दिवसप्रथमप्रहर यावत् राइय कथ्यते, यदुक्त श्रीआवश्यकचूर्णौ (५१ पत्रे) तृतीयाध्ययने, तथाहि—"एव देवसिओ वंदणग विहाणं भणिय । रत्तिमाइसुवि जेसु ठाणेसु दिवसग्गहण तत्थ राईगादी वि भाणियव्वा । पादोसिए जाव पोरसी न उग्घाडेइ ताव देवसिअ भण्णइ, पुव्वण्हे जाव पोरिसी न उग्घाडेइ ताव राइयअ" इत्यादि ॥ ६७ ॥

॥ इति देवसिअ राइयं पाठकालाधिकार ॥ ६७ ॥

ननु–श्राविका श्रावको वा यदा मुखवस्त्रिकोपरि वन्दनक ददते तदा एकपट्टाया मुखवस्त्रिकाया उपरि तत् दान घटामाटीकते ?, किंवा द्विपट्टाया उपरि ? उच्यते—एकपट्टायाः, न द्विपट्टायाः, यतो वन्दनकावसरे पूज्यपादयुग्मकल्पना मुखवस्त्रिकाया मध्यभागे कथिताऽस्ति । द्विपट्टायास्तस्या उपरि वन्दनकदाने मुखवस्त्रिकाया मध्यभागो न भवति किन्तु चतुर्थभागः, स तु विरुद्धो ग्रन्थेऽप्रतिपादनात्, तस्या मध्यभागे वन्दनकदान तु श्रीअभयदेवसूरिकृतवन्दनकभाष्ये प्रोक्तमस्ति, तथाहि—

"तह वि छिन्न थामयजाणु नमिऊण तत्थ मुहपुत्तिं । रयहरणमज्झभागमि ठावए पुज्जपायजुगं ॥ १ ॥

एव सुसावओ वि हु दुवालसावत्तवंदण दिंतो । मुहपुत्तिमज्झभागंमि ठावए पुज्जपायजुग ॥ २ ॥

॥ इत्येकपट्टमुखवस्त्रिकोपरि वन्दनकदानाधिकार ॥ ६८ ॥

ननु–श्रीखरतरगच्छे पदस्थाना व्यवस्थाविधिः कोऽपि प्राक्तनोऽस्ति न वा ? उच्यते—अस्तीति । तथाहि–

श्रीयुगप्रधानाचार्यस्य गच्छाधिपतेः पाञ्चजन्यशङ्खवादनादिना प्रवेश क्रियते, निउछन च क्रियते, मङ्गलकलशः सम्मुखमागच्छति [ आनीयते ], व्याख्याने कृते सति श्राविका गीत गायन्ति, इति सक्षेपेण श्रीयुगप्रधानाचार्यस्य प्रतिपत्तिः ॥ १ ॥

द्वितीयस्थानीय–सामान्याचार्यस्य नगरप्रवेशो चतुर्विधसघः सम्मुख आगच्छति, शङ्खो वाद्यते, श्राविकाश्च गीत

अनुयोगपडिग्गहणत्थं करेमि काउस्सग्ग" इत्यादि भणित्वा कायोत्सर्गं क्रियते, लोगस्स उज्जोअगरे एको चिन्त्यते पार्यते च लोगस्स १ कथ्यते, यदा उद्देशका अध्ययनानि च परिपूर्णानि भवन्ति, तदा वन्दनकद्वय दीयते, समाप्तौ प्रारम्भे च वन्दनकद्वय दीयते। इत्यनुयोगविधिः, उद्देशो वाचनासूत्रप्रदानमित्यर्थ १, समुद्देशो व्याख्याया अर्थप्रदानमिति २, अनुज्ञा सूत्रार्थयो' अन्यप्रदान प्रति अनुमनन ३, मुखवस्त्रिका प्रतिलेख्य वन्दनकद्वय दीयते, पश्चात् क्षमाश्रमणदान-पूर्वमनुयोग विसर्जः। अनुयोगविसर्जनार्थं काउस्सग्गं करेह। अनुयोगविसर्जनार्थं करेमि काउस्सग्गमित्यादि भणित्वा कयोत्सर्गे नमस्कार एकश्चिन्त्यते पार्यतेऽपि एकः कथ्यते पश्चाद् विश्रामण्य कृत्वा मिथ्या दुष्कृत दीयते ॥ ७१ ॥

॥ इत्यनुयोगदानविसर्जनविधिरधिकारः ॥ ७० ॥

ननु–पाक्षिक–चातुर्मासिकप्रतिक्रमणे यथा भवनदेवतायाः कायोत्सर्गं स्तुतिश्च कथ्यते—तथा सावत्सरिकप्रतिक्रमणेऽपि कथ्यते न वा ? उच्यते पाक्षिक–चातुर्मासिक–सांवत्सरिकप्रतिक्रमणे भवनदेवता थुई अधिकी कहिजइ इति श्रीतरुणप्रभ-सूरिकृतबालावबोधवचनप्रामाण्यात् कथ्यते एव, यत्तु श्रीविधिप्रपाया श्रीजिनप्रभसूरिभिः प्रोक्त "सायच्छरिए भवन-देवता काउस्सग्गो न कीरइ, न य थुई असज्झायकाउस्सग्गोवि न कीरइ" इति तत्परमार्थं तु त एव जाणन्ति। ननु श्रीतरुणप्रभसूरिवचनोक्तिसम्मतिः कुत्राऽप्यस्ति जीर्णग्रन्थे ? उच्यते–हेतुगर्भे तथैव प्रतिपादनात्, तथाहि–श्रुतदेवतायाः प्रत्यह स्मृत्या तु आराध्यत्वेन तद्दिने-तत्कायोत्सर्गस्थाने भवनदेवताकायोत्सर्गः, क्षेत्रदेवतायाः प्रत्यह स्मृतौ भवनस्य

क्षेत्रान्तर्गतत्वात् भवनदेव्या अपि स्मृतिः कृतैव, तथापि पर्वदिने तस्या अपि बहुमानार्हत्वात् कायोत्सर्गः साक्षात् क्रियते, स्तवस्थाने अजितशान्तिस्तव पाठ्य । उक्त च—

"पुष विहिणेव सव, देवसिअ वदणाइतो कुणइ । सिज्झसुरी उस्सग्गो, भेओ सतिथयपढणे य ॥ १ ॥"

इत्यादि पाक्षिकप्रतिक्रमणविधि । चातुर्मासिक—सावत्सरिकप्रतिक्रमणयोरपि क्रम एप एव, नवर नाम्नि विशेपः, कायोत्सर्गे च चातुर्मासिकप्रतिक्रमणे चतुर्विंशतिस्तवविंशतिः चिन्तन । सावत्सरिकप्रतिक्रमणे च चत्वारिंशच्चतुर्विंशतिस्तव, तदन्ते एको नमस्कारश्च चिन्त्यते । क्षामणक च पाक्षिकचातुर्मासिकयोः पञ्चाना, सावत्सरिके च सप्ताना, श्रीगुर्वादीना यदि द्वौ शेपौ तिष्ठतः ॥ उक्त च—

"एव चिअ चउम्मासे, वरिसे अ जहक्कम विही नेओ । पक्खियचउमासवरिसे—सु नवरि नाममि नाणत्त ॥ १ ॥
तह उस्सग्गो ज्जोया, वारस वीसा सम गलिगचत्ता । संबुद्धखामण ति—पण—सत्त साहूण जह सख ॥ २ ॥"

इत्थमेव श्रीप्रवचनसारोद्धारवृत्तौ, तथाहि—

"पाक्षिकादिषु त्रिषु श्रुतदेवताकायोत्सर्गस्थाने भवनदेवताकायोत्सर्ग क्रियते" इत्यादि । एव श्रीदेवेन्द्रसूरिविरचित पडावश्यकवन्दारकवृत्तावपि (८५ पत्रे) पाक्षिक—चातुर्मासिक—सावत्सरिक—प्रतिक्रमणत्रयेऽपि भवनदेवताकायोत्सर्गः प्रति-
२५ पादितोऽस्ति, तथाहि—तथा पाक्षिकादीनि—

अनुयोगपडिग्गहणत्थं करेमि काउस्सग्ग" इत्यादि भणित्वा कायोत्सर्गं क्रियते, लोगस्स उज्जोअगरे एको [illegible] च लोगस्स १ कथ्यते, यदा उद्देशका अध्ययनानि च परिपूर्णानि भवन्ति, तदा वन्दनकद्वय दीयते, [illegible] वन्दनकद्वय दीयते। इत्यनुयोगविधिः, उद्देशो वाचनासूत्रप्रदानमित्यर्थ १, समुद्देशो [illegible] २, अनुज्ञा सूत्रार्थयो' अन्यप्रदान प्रति अनुमनन ३, मुखवस्त्रिका प्रतिलेख्य वन्दनकद्वय दीयते, पश्चात् [illegible] पूर्वमनुयोगं विसर्जः । अनुयोगविसर्जनार्थं काउस्सग्ग करेह। अनुयोगविसर्जनार्थं करेमि काउस्सग्गमित्यादि [illegible] कयोत्सर्गे नमस्कार एकश्चिन्त्यते पार्यतेऽपि एकः कथ्यते पश्चात् विश्रामण्य कृत्वा शिष्या गुरूणां दीयते ॥ ७१ ॥

॥ इत्यनुयोगदानविसर्जनविधिरधिकारः ॥ ७० ॥

ननु–पाक्षिक–चातुर्मासिकप्रतिक्रमणे यथा भवनदेवताया कायोत्सर्गं स्तुतिश्च कथ्यते—तथा [illegible] कथ्यते न वा? उच्यते पाक्षिक–चातुर्मासिक–सांवत्सरिकप्रतिक्रमणे भवनदेवता थुई अधिकी कहिवाइ इति [illegible] परिकृतवालावबोधवचनप्रामाण्यात् कथ्यते एव, यत्तु श्रीविधिप्रपाया श्रीजिनप्रभसूरिभिः प्रोक्त "[illegible] भवन देवया काउस्सग्गो न कीरइ, न य थुई असज्झायकाउस्सग्गोवि न कीरइ" इति तत्परमार्थं तु त एव जानन्ति। [illegible] श्रीतरुणप्रभसूरिवचनोक्तिसम्मतिः कुत्राऽप्यस्ति जीर्णग्रन्थे? उच्यते–हेतुगर्भे तथैव प्रतिपादनात्, तथाहि–श्रुतदेवतायाः प्रत्यहं स्मृत्या तु आराध्यत्वेन तद्दिने-तत्कायोत्सर्गस्थाने भवनदेवताकायोत्सर्गः, क्षेत्रदेवतायाः प्रत्यहं स्मृतो भवनस्य

क्षेत्रान्तर्गतत्वात् भवनदेव्या अपि स्मृतिः कृतैव, तथापि पर्वदिने तस्या अपि बहुमानार्हत्वात् कायोत्सर्गः साक्षात् क्रियते, स्तवस्थाने अजितशान्तिस्तव पाठश्च । उक्त च—

"पुव विहिणेव सव, देवसिअ वदणाइतो कुणइ । सिज्झसुरी उस्सग्गो, भेओ सतिथयपढणे य ॥ १ ॥"

इत्यादि पाक्षिकप्रतिक्रमणविधि । चातुर्मासिक–सांवत्सरिकप्रतिक्रमणयोरपि क्रम एप एव, नवर नाम्नि विशेषः, कायोत्सर्गे च चातुर्मासिकप्रतिक्रमणे चतुर्विंशतिस्तवविंशतिः चिन्तन । सावत्सरिकप्रतिक्रमणे च चत्वारिंशच्चतुर्विंशतिस्तवः, तदन्ते एको नमस्कारश्च चिन्त्यते । क्षामणक च पाक्षिकचातुर्मासिकयो पञ्चाना, सावत्सरिके च सप्ताना, श्रीगुर्वादीना यदि द्वौ शेषौ तिष्ठतः ॥ उक्त च—

"एवं चिअ चउम्मासे, वरिसे अ जहक्कम विही नेओ । पक्खियचउमासवरिसे–सु नवरि नामम्मि नाणत्त ॥ १ ॥
तह उस्सग्गो ज्जोया, बारस वीसा समं गलिगचत्ता । संबुद्धखामण ति–पण–सत्त साहूण जह सखं ॥ २ ॥"

इत्थमेव श्रीप्रवचनसारोद्धारवृत्तौ, तथाहि—

"पाक्षिकादिषु त्रिषु श्रुतदेवताकायोत्सर्गस्थाने भवनदेवताकायोत्सर्गः क्रियते" इत्यादि । एव श्रीदेवेन्द्रसूरिविरचित-षडावश्यकवन्दारुकवृत्तावपि (८५ पत्रे) पाक्षिक–चातुर्मासिक–सावत्सरिक–प्रतिक्रमणत्रयेऽपि भवनदेवताकायोत्सर्गः प्रतिपादितोऽस्ति, तथाहि–यथा पाक्षिकादीनि—

अनुयोगपडिग्गंहणत्थ करेमि काउस्सग्गं" इत्यादि भणित्वा कायोत्सर्ग क्रियते, लोगस्स उज्जोअगरे एको चिन्त्यते पार्यंते च लोगस्स १ कथ्यते, यदा उद्देशका अध्ययनानि च परिपूर्णानि भवन्ति, तदा वन्दनकद्वय दीयते, समाप्तौ प्रारम्भे च वन्दनकद्वय दीयते। इत्यनुयोगविधिः, उद्देशो वाचनासूत्रप्रदानमित्यर्थ १, समुद्देशो व्याख्याया अर्थप्रदानमिति २, अनुज्ञा सूत्रार्थयो' अन्यप्रदान प्रति अनुमनन ३, मुखवस्त्रिका प्रतिलेख्य वन्दनकद्वय दीयते, पश्चात् क्षमाश्रमणदान-पूर्वमनुयोगं विसर्जेः । अनुयोगविसर्जनार्थं काउस्सग्गं करेह । अनुयोगविसर्जनार्थं करेमि काउस्सग्गमित्यादि भणित्वा कयोत्सर्गो नमस्कार एकश्चिन्त्यते पार्यतेऽपि एकः कथ्यते पश्चाद् विश्रामणथ कृत्वा मिथ्या दुष्कृत दीयते ॥ ७० ॥

॥ इत्यनुयोगदानविसर्जनविधिरधिकारः ॥ ७० ॥

ननु-पाक्षिक-चातुर्मासिकप्रतिक्रमणे यथा भवनदेवतायाः कायोत्सर्गः स्तुतिश्च कथ्यते—तथा सावत्सरिकप्रतिक्रमणेऽपि कथ्यते न वा ? उच्यते पाक्षिक-चातुर्मासिक-सांवत्सरिकप्रतिक्रमणे भवनदेवता थुई अधिकी कहिजइ इति श्रीवरुणप्रभ-सूरिकृतबालावबोधवचनप्रामाण्यात् कथ्यते एव, यत्तु श्रीविधिप्रपाया श्रीजिनप्रभसूरिभिः प्रोक्त "साचच्छरिए भवन-देवया काउस्सग्गो न कीरइ, न य थुई असज्झायकाउस्सग्गोवि न कीरइ" इति तत्परमार्थ तु त एव जाणन्ति । ननु श्रीवरुणप्रभसूरिवचनोक्तिसम्मतिः कुत्राऽप्यस्ति जीर्णग्रन्थे ? उच्यते-हेतुगर्भे तथैव प्रतिपादनात्, तथाहि-श्रुतदेवतायाः प्रत्यहं स्मृत्या तु आराध्यत्वेन तद्दिने तत्कायोत्सर्गस्थाने भवनदेवताकायोत्सर्गः, क्षेत्रदेवतायाः प्रत्यह स्मृतौ भवनस्य

क्षेत्रान्तर्गतत्वात् भवनदेव्या अपि स्मृतिः कृतैव, तथापि पर्वदिने तस्या अपि बहुमानार्हत्वात् कायोत्सर्गः साक्षात् क्रियते, स्तवस्थाने अजितशान्तिस्तव पाठश्च । उक्तं च—

"पुव विहिणेव सव्वं, देवसिअं वंदणाइतो कुणइ । सिज्झसुरी उस्सग्गो, भेओ संतिथयपढणे य ॥ १ ॥"

इत्यादि पाक्षिकप्रतिक्रमणविधिः । चातुर्मासिक—सांवत्सरिकप्रतिक्रमणयोरपि क्रम एष एव, नवरं नाम्नि विशेषः, कायोत्सर्गे च चातुर्मासिकप्रतिक्रमणे चतुर्विंशतिस्तवविंशतिः चिन्तन । सांवत्सरिकप्रतिक्रमणे च चत्वारिंशच्चतुर्विंशतिस्तव, तदन्ते एको नमस्कारश्च चिन्त्यते । क्षामणकं च पाक्षिकचातुर्मासिकयोः पञ्चाना, सांवत्सरिके च सप्ताना, श्रीगुर्वादीना यदि द्वौ शेषौ तिष्ठतः ॥ उक्तं च—

"एवं चिअ चउम्मासे, वरिसे अ जहक्कम विही नेओ । पक्खियचउमासवरिसे-सु नवरि नाममि नाणत्त ॥ १ ॥

तह उस्सग्गो ज्जोया, बारस वीसा समं गलिगचत्ता । संबुद्धखामण ति—पण—सत्त साहूण जह सख ॥ २ ॥"

इत्थमेव श्रीप्रवचनसारोद्धारवृत्तौ, तथाहि—

"पाक्षिकादिषु त्रिषु श्रुतदेवताकायोत्सर्गस्थाने भवनदेवताकायोत्सर्गः क्रियते" इत्यादि । एवं श्रीदेवेन्द्रसूरिविरचित-पडावश्यकवन्दारुकवृत्तावपि (८५ पत्रे) पाक्षिक—चातुर्मासिक—सांवत्सरिक—प्रतिक्रमणत्रयेऽपि भवनदेवताकायोत्सर्गः प्रतिपादितोऽस्ति, तथाहि—तथा पाक्षिकादीनि—

अनुयोगपडिगाहणत्थं करेमि काउस्सग्ग" इत्यादि भणित्वा कायोत्सर्गं क्रियते, लोगस्स उज्जोअगरे एको चिन्त्यते पार्यते च लोगस्स १ कथ्यते, यदा उद्देशका अध्ययनानि च परिपूर्णानि भवन्ति, तदा वन्दनकद्वय दीयते, समाप्तौ प्रारम्भे च वन्दनकद्वय दीयते। इत्यनुयोगविधिः, उद्देशो वाचनासूत्रप्रदानमित्यर्थः १, समुद्देशो व्याख्याया अर्थप्रदानमिति २, अनुज्ञा सूत्रार्थयो' अन्यप्रदान प्रति अनुमनन ३, मुखवस्त्रिका प्रतिलेख्य वन्दनकद्वय दीयते, पश्चात् क्षमाश्रमणदान-पूर्वमनुयोग विसर्जः। अनुयोगविसर्जनार्थं काउस्सग्गं करेह। अनुयोगविसर्जनार्थं करेमि काउस्सग्गमित्यादि भणित्वा कयोत्सर्गे नमस्कार एकश्चिन्त्यते पार्यतेऽपि एकः कथ्यते पश्चात् विश्रामण्य कृत्वा मिथ्या दुष्कृत दीयते ॥ ७० ॥

॥ इत्यनुयोगदानविसर्जनविधिरधिकारः ॥ ७० ॥

ननु-पाक्षिक-चातुर्मासिकप्रतिक्रमणे यथा भवनदेवताया कायोत्सर्गः स्तुतिश्च कथ्यते—तथा सावत्सरिकप्रतिक्रमणेऽपि कथ्यते न वा? उच्यते पाक्षिक-चातुर्मासिक-सांवत्सरिकप्रतिक्रमणे भवनदेवता थुई अधिकी कहिजइ इति श्रीतरुणप्रभसूरिकृतबालावबोधवचनप्रामाण्यात् कथ्यते एव, यत्तु श्रीविधिप्रपाया श्रीजिनप्रभसूरिभिः प्रोक्त "सावच्छरिए भवनदेवता काउस्सग्गो न कीरइ, न य थुई असज्झायकाउस्सग्गोवि न कीरइ" इति तत्परमार्थं तु त एव जाणन्ति। ननु श्रीतरुणप्रभसूरिवचनोक्तिसम्मतिः कुत्राऽप्यस्ति जीर्णग्रन्थे? उच्यते—हेतुगर्भे तथैव प्रतिपादनात्, तथाहि—श्रुतदेवतायाः प्रत्यहं स्मृत्या तु आराध्यत्वेन तद्दिने- तत्कायोत्सर्गस्थाने भवनदेवताकायोत्सर्गः, क्षेत्रदेवतायाः प्रत्यह स्मृतौ भवनस्य

पच्छिम छट्ठि चउद्दसि, सत्तमि पडिपुन्न वायवे कूणे । दसमी विइआ उत्तर, अट्ठमि अमावसाइ ईसाणे ॥ २ ॥ इइ गाह-क्कमेण जोगिणि उ यामे पिट्ठिउ वा काउ, बुहसोमवारेसु चदबलाइ भावे सुक्कगुरुसु वि, पुस्स १ पुण्णवसु २ रेवइ ३ चित्ता ४ सवण ५ धनिट्ठा ६ मिअसिर ७ अस्सिणि ८ हत्थेसु ९ कित्तिआ १ विसाहा २ महा ३ भरणी ४ वज्जेसु । अन्नेसु वा रिक्खेसु उववसिअ सम्ममहिआ संतो लोअं कारिअ लोअगारयाहु विस्सामिअ । इरिअ पडिक्कमिअ सक्कथय भणिअ गुरु समीवमागस्स समासमण दुगेण मुहपोत्तिं पडिलेहिअ, दुवालसावत्तवंदण दाउ, पढमखमासमणे भणइ इच्छाकारेण सदिसह लोअ पवेएमि, गुरू भणइ पवेह, बीए खमासमणे सदिसह किं भणामो, गुरू भणइ वंदित्ता पावेअह, तइएख० केसा मे पज्जुवासिआ तओ दुक्कर कय, अगिणी साहियत्ति गुरुणा वुत्ते, इच्छामो अणुसट्ठिं ति भणइ, चउत्थे तुम्हाण पवेइअ सदिसह साहूण, पवेएमि पचमे नमुक्कार भणइ, छट्ठे तुम्हाण पवेइअ साहूण पवेइअ सदिसह काउस्सग्ग करेमि, सत्तमे केसेसु पज्जुवासिज्जमाणेसु सम्म ज न अहिआसिअ कुइअ कक्कराइअ छीअ जभाइअ तस्स उहडावणिअ करेमि काउस्सग्ग अन्नत्थूससिएणमिच्चाइणा, सत्तावीसूस्सास काउस्सग्ग करेइ, चउवीसत्थय भणित्ता जहारायणिय साहू वदइ पाइअ विस्सामेइ । जो पुण सय चिय लोअ करेइ सो सदिसावण पवेयणाइ न करेइ ॥ ७२ ॥

॥ इति लोचकारापणविधिरधिकारः ॥ ७२ ॥

ननु—श्रावका अतिचारकायोत्सर्गे कथ काश्च अतिचारान् आलोचयन्ति ? उच्यते—श्रीतरुणप्रभसूरिकृतषडावश्यकवाला-

आरो कओ" इत्यादि कही करी तस्सुत्तरी कही, शक्तिसंभवइ सवइ काउस्सग्ग कीजइ । एक श्रावक श्रीआचार्यमिश्र आगे आवी एक खमासमण देइ करी भणइ, इच्छाकारेण संदिसह भगवन् सुत्त संदिसाहु ? गुरु संदिसावेह इसु भणियइ हुवइ, बीजुं खमासमण देई करी भगवन् सुत्त कढु ? इसुं भणइ, गुरु भणइ कढ इस्यु कह्ये, छतइ इच्छं इसु भणी करी उभउयकउ–हाथ जोडिकरि मुहे मुहपत्ती देइ तिण्ह नमुक्कार कही मधुरस्वर व्यक्ताक्षर सावधानचित्त सूत्रार्थ मनचिंतव्य तउ हुवउ पडिक्कमणासुत्त गुणइ, बीजा काउस्सग्गे वर्त्तमान सावधान थका सांमलइ । साधुसरसा पडिक्कमता हुता तिण्हसयसाठि पक्खियसूत्र सांभळइ शक्ति अभावे बइठा सांभळइ सूत्र प्रति सवे काउस्सग्ग करेइ सपूर्णसूत्रं भणियइ नमुक्कारेण पारिसा उभा थका तिण्ह नवकार कही बेसी करी इत्यादि ॥ ७२ ॥

॥ इति पाक्षिकसूत्रभणने श्रुतौ च पूर्वपाठक्रमाधिकारः ॥ ७२ ॥

ननु–लोचकारापणविधिः कस्मिन् ग्रन्थे निवेदितोऽस्ति ? उच्यते–श्रीविधिप्रपाया श्रीजिनप्रभसूरिभि समीचीनतया भणितोऽस्ति, तथाहि—

पचइएण लोओ कायव्वो अओ तविही भण्णइ, गुरुसमीवे खमासमण मुहपोत्तिं पडिलेहिअ, दुवालसावत्तवंदण दाउ पढमखमासमणेण इच्छाकारेण संदिसह भगवन् लोअं संदिसावेमि, बीए लोअ करेमि, तईए उच्चासण संदिसावेमि चउत्थए उच्चासणं ठामि, तओ लोअगारं खमासमणपुव्वं भणइ इच्छकार लोअ करेह, मत्थया रक्खधारिणो य इच्छाकार देइ तओ "पुव्वं पडिवय नवमी, बइआ इक्कारसीइ अभीए । दाहिण पंचमी तेरसि, बारसि चउत्थीए नेरईए ॥ १ ॥

पच्छिम छट्ठि चउद्दसि, सत्तमि पडिपुष वायवे कूणे। दसमी विइज्जा उत्तर, अट्ठमि अमावसाइ ईसाणे ॥ २ ॥ इइ गाह- क्कमेण जोगिणि उ वामे पिट्ठिउ वा काउ, बुहसोमवारेसु चंदबलाइ भावे सुक्कगुरुसु वि, पुस्स १ पुण्णवसु २ रेवइ ३ चित्ता ४ सवण ५ धनिट्ठा ६ मिअसिर ७ अस्सिणि ८ हत्थेसु ९ कित्तिआ १ विसाहा २ मघा ३ भरणी ४ वज्जेसु। अन्नेसु वा रिक्खेसु उववसिअ सम्ममहिआ संतो लोअ कारिअ लोअगारबाहु विस्सामिअ। इरिअ पडिक्कमिअ सक्कथय भणिअ गुरु समीवमागस्स खमासमण दुगेण मुहपोत्तिं पडिलेहिअ, दुवालसावत्तवंदण दाउं, पढमखमासमणे भणइ इच्छाकारेण सदिसह लोअ पवेएमि, गुरू भणइ पवेह, बीए खमासमणे संदिसह किं भणामो, गुरू भणइ वदित्ता पावेअह, तइएख० केसा मे पज्जुवासिआ तओ वुक्कर कय, अगिणी साहियत्ति गुरुणा वुत्ते, इच्छामो अणुसट्ठंति भणइ, चतुत्थे तुम्हाण पवेइअ सदि- सह साहूण, पवेएमि पचमे नमुक्कार भणइ, छट्ठे तुम्हाण पवेइअ साहूण पवेइअ सदिसह काउस्सग्ग करेमि, सत्तमे केसेसु पज्जुवासिज्जमाणेसु सम्म ज न अहिआसिअ कुइअ कक्कराइअ छीअ जभाइअ तस्स उहडावणिअ करेमि काउस्सग्ग अन्नत्थूससिएणमिच्चाइणा, सत्तावीसूस्सास काउस्सग्ग करेइ, चउवीसत्थय भणित्ता जहारायणिय साहू वदइ पाइअ विस्सा- मेइ। जो पुण सय चिय लोअ करेइ सो सदिसावण पवेयणाइ न करेइ ॥ ७३ ॥

॥ इति लोचकारापणविधिरधिकारः ॥ ७३ ॥

ननु—श्रावका अतिचारकायोत्सर्गे कथं काश्च अतिचारान् आलोचयन्ति ? उच्यते—श्रीतरुणप्रभसूरिकृतषडावश्यकबाला-

आरो कमो" इत्यादि कही करी तस्सुत्तरी कही, शक्तिसंभवइ सवह काउस्सग कीजइ । एक श्रावक श्रीआचार्यमिश्र आगे आवी एक खमासमण देइ करी भणइ, इच्छाकारेण संदिसह भगवन् सुत्त सदिसाहु ? गुरु सदिसावेह इसु भणियइ हुतइ, बीजुं खमासमण देई करी भगवन् सुत्त कड्ढु ? इसुं भणइ, गुरु भणइ कढ इस्यु कह्यो, छतइ इच्छं इसु भणी करी उभउयकव-हाथ जोडिकरि मुहे मुहपत्ती देइ तिण्ह नमुकार कही मधुरस्वर व्यक्ताक्षर सावधानचित्त सूत्रार्थ मनचिंत-व तउ हुवउ पडिकमणासुत्त गुणइ, बीजा काउस्सग्गे वर्धमान सावधान थका सांभलइ । साधुसरसा पडिकमता हुता तिण्हसंयसाठि पक्खियसूत्र सांभलइ शक्ति अभावे बइठा सांभलइ सूत्रं प्रति सवे काउस्सग करेइ सपूर्णसूत्र भणियइ नमुक्कारेण पारित्ता उभा थका तिण्ह नवकार कही बेसी करी इत्यादि ॥ ७२ ॥

॥ इति पाक्षिकसूत्रभणने श्रुतौ च पूर्वपाठक्रमाधिकारः ॥ ७२ ॥

ननु-लोचकरापणविधिः कस्मिन् ग्रन्थे निवेदितोऽस्ति ? उच्यते-श्रीविधिप्रपाया श्रीजिनप्रभसूरिभि समीचीनतया भणितोऽस्ति, तथाहि—

पव्वईएण लोओ कायव्वो अओ तव्विही भण्णइ, गुरुसमीवे खमासमण मुहपोत्तिं पडिलेहिअ, दुवालसावत्तवंदण दाउ पढमखमासमणेण इच्छाकारेण सदिसह भगवन् लोअ सदिसावेमि, बीए लोअ करेमि, तईए उच्चासण सदिसावेमि चउत्थए उच्चासणं ठामि, तओ लोअगारं खमासमणपुव्वं भणइ इच्छकार लोअं करेह, मत्थया रक्खधारिणो य इच्छाकार देइ तओ "पुव्वं पक्खिस नवमी, तइआ इक्कारसीइ अग्गीए । दाहिण पंचमी तेरसि, बारसि चउत्थीए नेरईए ॥ २ ॥

पच्छिम छट्ठि चउद्दसि, सत्तमि पडिपुश्च वायवे कूणे । दसमी विइआ उत्तर, अट्ठमि अमावसाइ ईसाणे ॥ २ ॥ इइ गाहक्रमेण जोगिणि उ थामे पिट्ठिउ वा काउ, बुहसोमवारेसु चदबलाइ भावे सुक्कगुरुसु वि, पुस्स १ पुणव्वसु २ रेवइ ३ चित्ता ४ सवण ५ धनिट्ठा ६ मिअसिर ७ अस्सिणि ८ हत्थेसु ९ कित्तिआ १ विसाहा २ महा ३ भरणी ४ वज्जेसु । अन्नेसु वा रिक्खेसु उववसिअ सम्ममहिआ संतो लोअ कारिअ लोअगारयाउ विस्सामिअ । इरिअ पडिक्कमिअ सक्कथय भणिअ गुरु समीवमागस्स खमासमण दुगेण मुहपोत्ति पडिलेहिअ, दुवालसावत्तवदण दाउ, पढमखमासमणे भणइ इच्छाकारेण संदिसह लोअ पवेएमि, गुरू भणइ पवेह, वीए खमासमणे सदिसह किं भणामो, गुरू भणइ वदित्ता पावेअह, तइएख० केसा मे पज्जुवासिआ तओ दुक्कर कय, अगिणी साहियत्ति गुरुणा वुत्ते, इच्छामो अणुसट्ठिंति भणइ, चतुत्थे तुम्हाण पवेइअ सदिसह साहूण, पवेएमि पचमे नमुक्कार भणइ, छट्ठे तुम्हाण पवेइअ साहूण पवेइअ सदिसह काउस्सग्ग करेमि, सत्तमे केसेसु पज्जुवासिज्जमाणेसु सम्म ज न अहिआसिअ कुइअ कक्कराइअ छीअ जभाइअ तस्स उहडावणिअ करेमि काउस्सग्ग अन्नत्थूससिएणमिच्चाइणा, सत्तावीसूस्सासं काउस्सग्ग करेइ, चउवीसत्थय भणित्ता जहारायणिय साहू वदइ पाइअ विस्सामेइ । जो पुण सय चिय लोअ करेइ सो संदिसावण पवेयणाइ न करेइ ॥ ७२ ॥

॥ इति लोचकारापणविधिरधिकारः ॥ ७२ ॥

ननु—श्रावका अतिचारकायोत्सर्गे कथ काश्च अतिचारान् आलोचयन्ति ? उच्यते—श्रीतरुणप्रभसूरिकृतषडावश्यकबाला-

स्तोकामपि मंडलीं लघते तदा किं तद्दोषनिवारणकर्तव्यं ? अत्रोच्यते—अत्रार्थे विधिप्रपाया श्रीजिनप्रभसूरिवाक्य प्रमाण, तथाहि तत्पाठः—"जया य मज्जारिआ छिंदइ तया जा–सा कालीकम्बली । अक्खलहिककडियारि मडलमाहि सचरी हय पडिहय मज्जारिति ॥ १ ॥ घत्तत्यपय वारतिग भणिआ खुद्दोपद्दवउड्डावणत्थ काउस्सग्गो कायव्वो, सिरिसतिनाह नमो- क्कारो घोसेअव्वो इति प्रतिक्रमणविधिः ।" छुटकपत्रे तु वार्तिकरूपेऽयमनुक्रमः । देवसिकादिप्रतिक्रमणपञ्चकेऽपि यदि मार्जारीमण्डलीं स्तोकामपि लघते तदा अपशकुनादि कायोत्सर्गत्रय पूर्ववत्प्रतिक्रमणकरणानन्तर क्रियते, ततो "जा सा कालीति" गाथा वारत्रयं पठ्यते, वामपादेन वारत्रयं भूमिराहन्यते च ॥ ७७ ॥

॥ इति मार्जारीमण्डलीप्रवेक्षनदोषनिवारणविधिरधिकारः ॥ ७७ ॥

ननु–सामायिकग्रहणक्रियाया श्राद्धाना कति क्षमाश्रमणानि ? उच्यते—तत्रार्थे श्रीविधिप्रपापाठ प्रमाण, तथाहि— अगीकय सामाइएण य उभयसंझ सामाइय गहेअव, तस्स एसो विहि—पोसहसालाए साहू समीवे गिहे वा एगदेसे वा, खमास- मणदुगपुव सामाइय मुहपोत्ति पडिलेहिअ २ पढमखमासमणेण सामाइय सदिस्सावेमि ३ बीअखमासमणेण सामाइय ठाएमित्ति ४ भणिऊण पुणो वदिअ ५ अद्धोनयगात्र हुतो नमुक्कारतिगपुव करेमि भते सामाइअ इच्चाइ दडग वोसिरामि पज्जत वारतिग कड्ढिअ, खमासमणेण इरियावहियं पडिक्कमिअ ६ खमासमणदुगेण वासासु कट्ठासण उउबद्धे पाउछण ८, खमासमणदुगेणं सज्झाय च संदिस्साविअ सज्झायं करेमि १० पुणो वदिअ नवकारडुगं भणइ ११ तओ सीअकाले पगुरण संदिसावेइ पगुरणं पडिग्गहेमि १२ सज्झायाणतर कट्ठासण संदिसावेइ त्ति । एवं तरुणप्रभसूरिकृतषडावश्यकबालाव

बोधेऽपि, तथाहि–इच्छामीत्यादि भणी एक खमासमणु देइ १ सामायिक मुहपत्तिं पडिलेहमि इसु कही ऊभा थइ इच्छामि खमासमणो भणी खमासमणु देइ करी २ उतकूथको वेदिकामा हि माहुकरी मुहपत्ति पडिलेही एकखमा समणे सामाइय संदिसावेमि ३ इसु भणी बीअखमासमणे सामाइअ ठापमि ४ इसो भणी तइअ खमासमण देइ करी ५ अर्धावनतगात्र हुतो तिण्ह नमस्कार कही तिन्नवार करेमि भते इसु सामायिकसूत्र तिन्न वार कहइ गुरुवचनतणी अनु-भापणा करतउ हुंतो सामाइकारोपण विधि नदी सिद्धान्तमाहे तिण्ह नमस्कारभणनपूर्वक सामायिक दंडकरहइ भणनइ तो पाछइ इरियावही पडिक्कमीयइ । आवश्यकचूर्णीवृत्तिमांही इम भणियइ छइ यथा–"करेमि भते सामाइअ सा० जाव साहू पज्जुवासेमि त्ति काऊण पच्छा इरियावहिय पडिक्कमइ" तओ पाछइ विस्तरतो द्वादशावर्तवंदनक देइ करी प्रत्याख्यान कीजइ, सखेपइ, तओ खमासमण वदणापूर्वक प्रत्याख्यान कीजइ तो पाछइ एक खमासमण सज्झा० ७ बीअ खमासमण सज्झायकरुं कही ८ सज्झाय, तइअ खमासमण दानपूर्वक ९ आठ नमस्कार कही पाछइ एक खमा-समणे कट्ठासण संदिसावेमि १० कही बीअ खमासमणे कट्ठासण पडिगाहेमि कही ११ तइअ खमासमणे पांगुरण संदि-सावेमि १२ कही, चउत्थ खमासमणे पांगुरण पडिगाहेमि १३ कही करी बइसइ, अत्राऽय विशेषः—प्रभाते सामायिक-ग्रहणे त्रयोदशक्षमाश्रमणानि, अथ च सायन्तनसामायिकग्रहणे यदि मुखवस्त्रिका प्रतिलेख्य वन्दनकानि दत्त्वा प्रत्याख्यानं करोति तदा चतुर्दश, अन्यथा तु त्रयोदशैव ॥ ७८ ॥

॥ इति सामायिकग्रहणे त्रयोदश-क्षमाश्रमणाधिकारः ॥ ७८ ॥

ननु—कदा कियत्काल अस्वाध्यायो भवति ? उच्यते—सूक्ष्म रज आकाशात् यावत्पतति तावद् अस्वाध्याय । १ । तथा धूमरी यावत्काल पतति तावद् अस्वाध्यायः । यस्माद्धूमरीपाते सकलक्षेत्र अप्कायमय स्यात्, तदा साधु कम्बल-प्रावृतसर्वाङ्गोपाङ्गोऽपवरकमध्ये स्थितो भवति, मुखमपि नोद्घाटयति, किमप्यङ्गोपाङ्गं न इतस्ततो विक्षिपति, एवं जीवदयापालनाय धूमर्यां निपतितायां समस्तक्रिया कार्या । २ । तथा आकाशे गन्धर्वनगर देवताकृत दृश्यते, तथा उल्कापातो भवति, तथा कणकाः पतन्ति, तत्रोल्कापाते रेखा भवति उद्योतश्च, यत्र च रेखा उद्योतश्च न भवति, स कणक । तथा दिग्दाहो दशदिशा उज्ज्वलन्त्यो दृश्यते, चतुर्दिशा रक्तत्व वह्निसदृश स्याद्, एतेषु सत्सु विद्युत्पाते च अस्वाध्यायनिवर्तितेषु प्रहरमेकमस्वाध्यायः । तत्र सर्वतो सप्त कणकाः, शीतकाले पञ्च ५ उष्णकाले त्रय ३ कणका - पतति तदाऽस्वाध्यायः प्रहरमेकं यावत्, तदा अस्वाध्यायो निर्वृते—तेषु प्रहरद्वय यावत् अस्वाध्याय । ४ । अकाल गर्जिते प्रहरद्वयं यावदस्वाध्यायः । ५ । अकालविद्युज्झात्कारे प्रहरमेक यावदस्वाध्याय । ६ । आषाढकार्तिकचा-तुर्मासिकप्रतिक्रमणानन्तर अध्ययन प्रतिपदं यावत्, द्वितीयाया शुध्यते, श्रीस्थानाङ्गे चतुर्थस्थाने द्वितीयोद्देश-केऽप्युक्तं (२१३ पत्रे)—"नो कप्पइ निग्गथाण वा निग्गंथीण वा चउहिं महापडिवएहिं सज्झाय करित्तए त जहा—आसाढपाडिवए १ इंदमहपाडिवए २ कत्तियपाडिवए ३ सुगिम्हपाडिवए" ४ इति । ६ । आश्विनशुक्लपञ्चमी-मध्याह्नादारभ्य कार्तिककृष्णप्रतिपदं यावत् अस्वाध्यायकाल उपरि शुध्यते । ७ । चैत्रशुक्लपञ्चमीमध्याह्नादारभ्य वैशाख-कृष्णप्रतिपद यावदस्वाध्यायः, परं अत्राऽय विशेषः—चैत्रशुक्लैकादशीत आरभ्य मध्ये पूर्णिमाया यद् दिनत्रय 'अचित्तरज

उद्दावणियं करेमि काउस्सग्ग' लोगस्स ४ चिंत्यते, यदि एकादशीदिने न स्मर्यते तदा द्वादशीत्रयोदशीदिनेषु कायोत्सर्गः क्रियते, यदि द्वादशीदिने न स्मर्यते, तदा त्रयोदशी चतुर्दशी पूर्णिमाया यावत् कायोत्सर्गः क्रियते, यदि त्रयोदशीदिनेऽपि नो स्मर्यते, तदाऽऽगामिनं चैत्र यावद्धूलिर्नोड्डीयते तावदस्वाध्यायः । अयमर्थश्च एव—शुक्लैकादशीदिनात् "सचित्तरज उद्दावणत्थ करेमि काउस्सग्ग" इत्यादिना दिनत्रयं यावत् कायोत्सर्गं क्रियते । विस्मृते तु पूर्णिमा यावदन्यथा वर्षमप्यस्वाध्यायः । ८ । द्वयो राज्ञोः कलहे म्लेच्छादिभये उपाश्रयासन्नवासिस्त्रीपुरुषयुद्धे होलक्या भस्मोड्डयने चैतानि यावन्त काल वर्तन्ते तावदस्वाध्याय । ९ । राज्ञो मृत्युकाले जाते यावत् नवीनो राजा पट्टे नोपविशति तावदस्वाध्याय , स्थापितेऽपि राज्ञि यावदसमञ्जस न निवर्तते तावदस्वाध्याय' । १० । नगरप्रधानपुरुषे मृते प्रहराष्टक यावदस्वाध्यायः । ११ । उपाश्रयात् सप्तगृहमध्ये कोऽपि प्रसिद्धपुरुषो म्रियते तदाऽहोरात्र यावदस्वाध्याय' । १२ । तथाऽनाथसामान्यपुरुषमरणे कलेवरोत्थानानन्तर शुध्यते, एव तिर्यग्मरणेऽपि । १३ । अथाऽऽचार्य १ महर्द्धिक २ कृतानशनमहातपस्वि ३ बहुस्वजनवल्लभ ४ मरणे दिनत्रयमस्वाध्याय एकदिनमुपवास , अन्येषा मरणे द्वयमपि न । १४ । तिर्यग् रुधिरे पतिते अण्डके स्फुटिते, गवि च प्रसूतायां, जरायुपतने शतहस्तमध्ये प्रहरत्रय यावदस्वाध्याय । अण्डके पतिते तिलकाचार्यकृतावश्यकवृत्तौ अयं विशेष —वसतेरन्तर्बहिर्वा अण्डक भिन्नमुज्झित वा यतिकल्पोपरि तदा हस्तपट्टे परतः त्यक्त्वा कल्पं क्षालयन्ति, तत' शुद्ध, भूमौ तु भिन्नेन भूमिं खनन्ति यतस्ता खनित्वाऽपि छर्दितेन शुध्यति, केवल पौरुषीत्रय परिह्रियते । १५ । मनुष्यरुधिरे पतिते उद्धृतानन्तरमपि अहोरात्रमस्वाध्यायः, तथा बहुवृष्टिपतनेन भूमिः सिक्ता जायते

तर्हि स्वल्पवेलयाऽपि शुध्यति, घटिमात्ररात्रिशेषे मनुष्यसम्बन्धि रुधिर पतितमुत्सृत च ततः सूर्योद्गमे शुद्धिः। १६। तथा मनुष्यास्थि निपतिते द्वादशवर्षाणि अस्वाध्यायः। १७। तथा दन्तो वा दंष्ट्रा वा पतिता बह्वायासेन विलोकिताऽपि चेन्न लब्धा, "तदा वत उड्डावणिअं करेमि काउस्सग्ग" इत्युक्त्वा कायोत्सर्गः क्रियते, तत्र नमस्कार एकश्चिन्त्यते पारायित्वा कथ्यते च, तदनन्तर अस्वाध्यायो न भवति। १८। तथा यदि मार्जारी जीवित मूषक गृहीत्वा याति तदा नाऽस्वाध्यायः, अथ विनाश्य नयति तदाऽहोरात्रमस्वाध्यायः। १९। तिर्यगवयवाः तद्रुधिर च षष्टिहस्तमध्येनाऽस्वाध्याय कुर्वन्ति। २०। मनुष्यावयवरुधिरपाते हस्तशतमध्येऽस्वाध्यायो, यद्यन्तरे उभयदिग्गामी शकटस्य मार्गो न भवति। २१। तथा स्त्रिया मासि मासि ऋतुधर्मः समायाति, तदनन्तर दिवसत्रयं यावदस्वाध्यायः। तथा कस्याश्चित्प्रदररोगोदयाद्दिवसत्रिकस्योपर्यपि रुधिरं पतति तदा 'असज्झाय उड्डावणिय' कायोत्सर्ग कृते पश्चात् शुध्यति। २२। तथा आर्द्रानक्षत्रादारभ्य स्वातिनक्षत्रपर्यन्तगर्जित विद्युत्पातश्च न स्वाध्याय उपघ्नन्ति। तारकादर्शनमपि यावत् स्वातिनक्षत्रे आदित्यस्य गमन भवति, शेषकाले पुनरवश्य तारकादिकदर्शने शुध्यते, अथ केषांचित् साधूनां तथाविधनक्षत्रपरिज्ञान न भवति, तत आषाढचातुर्मासिकादारभ्य कार्तिकचातुर्मासिकं यावद् विद्युद्गर्जितेष्वपि नाऽस्वाध्यायः, उल्का तु सदाऽपि स्वाध्यायमुपघ्नन्ति प्रहर यावत्। २३। तथा सशब्दो महाशब्दरहितो भूकम्पः तयोर्जातयोः प्रहराष्टक यावदस्वाध्यायः। २४। तथा प्रदीपने लग्ने यावन्नोपशमः तावदस्वाध्यायः। २५। तथा वर्षाकाल बुदबुदवृष्टिः अहोरात्रोपरि यावद्वर्षति तावदस्वाध्याय। २६। विधिप्रपायां २५ पत्रे एवं पाठः—

उद्दपि जइ वरिसइ तो असज्झाओ, वुन्वुअ
"संपयवुठ्ठी असज्झाओ वारससु वि मासेसु वुन्वुअवरिसे अहोरत्ताओ उद्दपि जइ वरिसइ तो असज्झाओ, वुन्वुअ वज्जवरिसे दोण्हमहोरत्ताणमुवरि जाव पडइ ताव असज्झाओ"त्ति वुद्बुदवर्जे वर्षे वर्षति द्वाभ्यामहोरात्राभ्याम् उपरिष्टाद् यावद्वर्षति तावदस्वाध्यायः । २७ । फुसारमात्रवर्षणे सप्ताहोरात्रोपरि यावद्वर्षति तावदस्वाध्याय · २८ । सूर्येऽनुद्गते, मध्याह्ने २ सन्ध्यायां ३ अर्धरात्रे च ४ सन्ध्याचतुष्टयेऽप्यस्वाध्याय · । २९ । पुत्रे जाते शतहस्तमध्ये दिनसप्तक यावद-स्वाध्यायः, पुत्र्यां जातायां तु दिनाष्टकमस्वाध्यायः, स्त्रियारक्तोत्कटत्वात् । ३० । शुक्लपक्षे प्रतिपदाया द्वितीयाया तृतीयाया वा आरभ्य दिनत्रय यावत् यूपकनामाऽस्वाध्यायो भवति, रात्रिप्रथमप्रहरं यावत् तत्र प्रादोपिककालो न शुध्यति, एवं पाक्षिकदिनेऽपि, श्रीतिलकाचार्यकृत–आवश्यकवृत्तौ यूपकनिरूपणमेव, तथाहि–"जुअओ सुक्कदिण तिन्नि" सन्ध्याप्रभा चन्द्रप्रभा च युगपद् भवतः स युगपद्भावः, शुक्लपक्षे हि दिनत्रय सन्ध्याप्रभाया चन्द्रप्रभावृतत्वात् सन्ध्या-छेदो न ज्ञायते, तत्र शुक्लप्रतिपदा–द्वितीया–तृतीयासु कालवेलानवबोधात्, प्रादोपिककालाऽग्रहणे सूत्रपौरुपि अकरण, तथा "केसिं च होइ मोहाओ जूवओ ताव होइ आइन्नो । जेसिं तु अणाइन्ना, तेसिं किर पोरिसी तिन्नि ॥ २ ॥" व्याख्या–केषाञ्चिद्भवति अमोहात्–अमूढत्वात् यूपक–वुर्दिन पुष्योपरागमुदये अस्ति एव, आदित्य–आताम्रः कृष्ण श्यामः शक-टोद्धिसस्थितो वा जगतामुत्पातरूपः तावत् तत्र पौरुषीं अनध्यायत्वेन आचीर्ण । उत्तरार्ध स्पष्ट नवर "पोरिसि तिन्नि" पौरुषीत्रय अनध्यायः । ३१ ।

अथ चन्द्रग्रहणास्वाध्यायो लिख्यते–चन्द्रग्रहणस्योत्कृष्टतो द्वादश प्रहरान् अस्वाध्यायः, कथमित्याह–कदापि काले उत्पा-

तर्हि स्वल्पवेलयाऽपि शुध्यति, घटिमात्ररात्रिशेषे मनुष्यसम्बन्धि रुधिर पतितमुद्धृत च ततः सूर्योद्गमे शुद्धि । १६ । तथा मनुष्यास्थि निपतिते द्वादशवर्षाणि अस्वाध्यायः । १७ । तथा दन्तो वा दंष्ट्रा वा पतिता बह्वायासेन विलोकिताऽपि येन्न लब्धा, "तदा दत उड्डावणिअं करेमि काउस्सग्ग" इत्युक्त्वा कायोत्सर्गः क्रियते, तत्र नमस्कार एकश्चिन्त्यते पारयित्वा कथ्यते च, तदनन्तर अस्वाध्यायो न भवति । १८ । तथा यदि मार्जारी जीवितं मूषक गृहीत्वा याति तदा नाऽस्वाध्यायः, अथ विनाश्य नयति तदाऽहोरात्रमस्वाध्यायः । १९ । तिर्यगवयवाः तद्रुधिर च षष्टिहस्तमध्येनाऽस्वाध्याय कुर्वन्ति । २० । मनुष्यावयवरुधिरपाते हस्तशतमध्येऽस्वाध्यायो, यद्यन्तरे उभयदिग्गामी शकटस्य मार्गो न भवति । २१ । तथा स्त्रिया मासि मासि ऋतुधर्मः समायाति, तदनन्तर दिवसत्रय यावदस्वाध्यायः । तथा कस्याश्चित्प्रदररोगोदयाद्दिवसत्रिकस्योपर्यपि रुधिरं पतति तदा 'असज्झाय उड्डावणिय' कायोत्सर्गे कृते पश्चात् शुध्यति । २२ । तथा आर्द्रानक्षत्रादारभ्य स्वातिनक्षत्रपर्यन्तगर्जित विद्युत्पातश्च न स्वाध्याय उपघ्नन्ति । तारकादर्शनमपि यावत् स्वातिनक्षत्रे आदित्यस्य गमन भवति, शेषकाले पुनरसत्त्व तारकादिकदर्शने शुध्यते, अथ केषाचित् साधूनां तथाविधनक्षत्रपरिज्ञान न भवति, तत आषाढचातुर्मासिकादारभ्य कार्तिकचातुर्मासिकं यावद् विद्युद्गर्जितेष्वपि नाऽस्वाध्यायः, उल्का तु सदाऽपि स्वाध्यायमुपहन्ति प्रहर यावत् । २३ । तथा सघस्त्रो घडहडशब्दरहितो भूकम्पः तयोर्जातयो प्रहराष्टक यावदस्वाध्यायः । २४ । तथा प्रदीपने उप्रे यावन्नोपशमः तावदस्वाध्यायः । २५ । तथा वर्षाकाल बुद्बुदवृष्टि अहोरात्रोपरि यावद्वर्षति तावदस्वाध्याय । २६ । विधिप्रपायां २५ पत्रे एष पाठः—

"*संपयवुड्ढी असज्झाओ बारससु* वि मासेसु बुब्बुअवरिसे अहोरत्ताओ उड्ढपि जइ वरिसइ तो असज्झाओ, बुब्बुअ वज्जवरिसे दोण्हमहोरत्ताणमुवरि जाव पडइ ताव असज्झाओ"त्ति बुद्बुदवर्जं वर्षं वर्षति द्वाभ्यामहोरात्राभ्याम् उपरिष्टाद् यावद्वर्षति तावदस्वाध्यायः । २७ । फुसारमात्रवर्षणे सप्ताहोरात्रोपरि यावद्वर्षति तावदस्वाध्याय २८ । सूर्येऽनुद्गते, मध्याह्ने २ सन्ध्यायां ३ अर्धरात्रे च ४ सन्ध्याचतुष्टयेऽप्यस्वाध्यायः । २९ । पुत्रे जाते शतहस्तमध्ये दिनसप्तक यावद-स्वाध्याय , पुत्र्या जातायां तु दिनाष्टकमस्वाध्यायः, स्त्रियारक्तोत्कटत्वात् । ३० । शुक्लपक्षे प्रतिपदाया द्वितीयाया तृतीयाया वा आरम्य दिनत्रय यावत् यूपकनामाऽस्वाध्यायो भवति, रात्रिप्रथमप्रहर यावत् तत्र प्रादोषिककालो न शुध्यति, एव पाक्षिकदिनेऽपि, श्रीतिलकाचार्यकृत-आवश्यकवृत्तौ यूपकनिरूपणमेव, तथाहि-"जुअओ सुक्कदिण तिन्नि" सन्ध्याप्रभा चन्द्रप्रभा च युगपद् भवतः स युगपद्भावः, शुक्लपक्षे हि दिनत्रय सन्ध्याप्रभाया चन्द्रप्रभावृतत्वात् सन्ध्या-छेदो न ज्ञायते, तत्र शुक्लप्रतिपदा-द्वितीया-तृतीयासु कालवेलानवबोधात्, प्रादोषिककालाऽग्रहणे सूत्रपौरुषि अकरण, तथा "केसिं च होइ मोहाओ जूवओ ताव होइ आइच्चो । जेसिं तु अणाइन्ना, तेसिं किर पोरिसी तिन्नि ॥ २ ॥" व्याख्या-केषाञ्चिद्भवति अमोहात्-अमूढत्वात् यूपक-दुर्दिन पुष्योपरागमुदये अस्ति एव, आदित्य-आताम्र कृष्णः श्यामः शक-टोद्धिसस्थितो वा जगतामुत्पातरूपः तावत् तत्र पौरुषीं अनध्यायत्वेन आचीर्णः । उत्तरार्धं स्पष्ट नवर "पोरिसि तिन्नि" पौरुषीत्रय अनध्यायः । ३१ ।

अथ चन्द्रग्रहणास्वाध्यायो लिख्यते-चन्द्रग्रहणस्योत्कृष्टतो द्वादश प्रहरान् अस्वाध्यायः, कथमित्याह-कदापि काले उत्पा-

स्तवभणन, ततो दशनमस्कार–कथनानन्तर श्रीशत्रुञ्जयपुण्डरीकाराधनार्थं "करेमि काउस्सग्ग"मित्यादि विधिपूर्वं कायोत्सर्गः स्तत्र दशलोगस्स चिन्त्यते पारिते लो० १ दशगाथाप्रमाण स्तोत्र च, एवमेका पूजा जाता १ इत्थमेव द्वितीया २ तृतीया ३ चतुर्थी ४ पञ्चमी च ५ पूजा कार्या, विशेषतस्तु तत्र अयम्–द्वितीया पूजा जाता २ तस्या द्वितीयपूजाया विंशतिनमस्कारा· विंशतिपुष्पमाला विंशतिवस्तुढौकन च कार्य, पूर्वविधिना कायोत्सर्गकरण लोगस्स २० चिन्तन पारिते च एक १ लोग० विंशति २० गाथास्तोत्र चेति द्वितीया पूजा जाता २। तृतीयपूजाया त्रिंशत् नमस्कारा ३० त्रिंशत् ३० पुष्पाणि ३० त्रिंशद्वस्तु ढौकन त्रिंशल्लोगस्स ३० कायोत्सर्गः पूर्ववत्त्रिंशद्गाथास्तोत्र ३० चेति तृतीयपूजा जाता ३। चतुर्थपूजाया चत्वारिंशत् नमस्कारा·, चत्वारिंशत् पुष्पाणि, चत्वारिंशद् वस्तुढौकन कायोत्सर्गे चत्वारिंशत् लोगस्स चिन्तन पारिते एकलोगस्स चत्वारिंशद्गाथास्तोत्र इति चतुर्थीपूजा जाता ४। पञ्चमपूजाया पञ्चाशन्नमस्कारा· ५० पञ्चाशत्पुष्पाणि ५० पञ्चाशद्वस्तु ५० ढौकन पञ्चाशल्लोगस्स ५० कायोत्सर्ग पारिते एक १ लोगस्स पञ्चाशद्गाथास्तोत्र ५० चेति पञ्चमीपूजा जाता ५। पूजायां पूजाया प्रान्ते काऽपि देशैः कैरपि दशादिजुत्कृतयोऽपि कार्यन्ते तथा पूजा पञ्चकानन्तर एकैकपूजानन्तरं वा यथाशक्ति यथासम्भवं महाध्वजारोपः संघाधिपेन कार्यः, तत्राऽऽरात्रिक १ मङ्गलप्रदीप २ गुरुभक्ति ३ संघभक्ति ४ साधर्मिकवात्सल्य ५ संघपतितिलक ६ कर्तव्यानि कार्याणि, प्रान्ते धर्मोपदेशे शत्रुञ्जयमाहात्म्यवर्णन ॥

॥ इति चैत्रपूर्णिमादेववन्दनविधिरधिकार· ॥ ८० ॥

ननु–गुरुणा स्तूपस्य प्रतिमायाश्च प्रतिष्ठा क्रियते, तत्र को विधिः प्रतिपादितोऽस्ति ? उच्यते—अत्र गुरुपरम्परागत-

स चाऽय शुभदिने शुभनक्षत्रे शुभवेलायां च गुरूणा स्तूप–प्रतिमाप्रतिष्ठा क्रियते, तत्र रात्रिजा-पत्रलिखितविधि प्रमाण, स चाऽय शुभदिने शुभनक्षत्रे शुभवेलायां च गुरूणा स्तूप–प्रतिमाप्रतिष्ठा क्रियते, तत्र रात्रिजागरणमहोत्सवपूर्वक प्रातः संघसमक्ष सपुत्रकलत्रा पवित्रा कृतस्नानाः परिहितधौतवस्त्राः चत्वार श्रावकाः समागच्छन्ति, तत्करेषु चतुरङ्गुलाः श्राविकाः सधवाः कङ्कणं बध्नन्ति, तद्भाले च कुङ्कुमतिलक कुर्वन्ति, अथ ते चत्वारोऽपि पुरुषाः उत्कृष्टतोऽष्टोत्तरशततीर्थजलौषधीभृतान् तदभावे एकविंशतितिलकतीर्थजलौषधीभृतान् कलशान् लात्वा ऊर्ध्वीभूय तिष्ठन्ति, ततो दशदिक्पालस्थापना क्रियते, सा चैवं कार्या, ओं ह्रीँ इन्द्राय सायुधाय सवाहनाय सपरिजनाय अस्मिन् जम्बुद्वीपे दक्षिणभरतार्धक्षेत्रे अमुकनगरे, अमुकजिनचैत्ये इह प्रतिष्ठाया आगच्छ आगच्छ बलिं गृहाण बलिं गृहाण उदय अभ्युदय च कुरु कुरु स्वाहा १ एव अग्नये २ यमाय ३ नैर्ऋताय ४ वरुणाय ५ वायवे ६ कुवेराय ७ ईशानाय ८ ब्रह्मणे ९ नागाय १० इति । एव ९ नव ग्रहस्थापनाऽपि कार्या, सर्वत्रोपरि बलिबाकुलक्षेपनश्रीमोचन वासक्षेपश्च कार्याः, ततो दशदिक्षु बलिबाकुलोच्छालन कार्यं, ततस्तेषु पुरुषा पादुके पञ्चामृतेन स्नपयन्ति, तत स्तूपपूजा कार्या, ततः सधवा स्त्री कुङ्कुमहस्तौ ददाति, ततः कर्पूरकस्तूरीमिश्रितकेसरचन्दनाभ्यां पादुकापूजा कार्या, ततो "वर्धमानविद्यया" वासक्षेपः कार्यः, ततस्तदग्रे अक्षतपुञ्जत्रयं कार्यं, तदुपरि पूगीफलत्रय मोच्य, चतुर्दिक्षु नालिकेरचतुष्टय भङ्क्त्वा सर्वेषा देय, ततो धूपः कार्यः, तत सधवाः स्त्रियो गायन्ति, वादित्राणि वाद्यन्ते, दान च दीयते, गुरुभक्तिश्च क्रियते साधर्मिकवात्सल्य च विस्तरेण कार्यं, ततो गीतगानवाद्यवादनपुरस्सर श्रीसघेन सम धर्मशालाया आगत्य श्रीगुरुपार्श्वे प्रति-

स्तवभणन, ततो दशनमस्कार–कथनानन्तर श्रीशत्रुञ्जयपुण्डरीकाराधनार्थं "करेमि काउस्सग्ग"मित्यादि विधिपूर्वं कायोत्सर्गस्तत्र दशलोगस्स चिन्त्यते पारिते लो० १ दशगाथाप्रमाण स्तोत्र च, एवमेका पूजा जाता १ इत्थमेव द्वितीया २ तृतीया ३ चतुर्थी ४ पञ्चमी च ५ पूजा कार्या, विशेषतस्तु तत्र अयम्–द्वितीया पूजा जाता २ तस्या द्वितीयपूजाया विंशतिनमस्कारा विंशतिपुष्पमाला विंशतिवस्तुढौकन च कार्यं, पूर्वविधिना कायोत्सर्गकरण लोगस्स २० चिन्तन पारिते च एक १ लोग० विंशति २० गाथास्तोत्र चेति द्वितीया पूजा जाता २। तृतीयपूजाया त्रिंशत् नमस्कारा ३० त्रिंशत् ३० पुष्पाणि ३० त्रिंशद्वस्तु ढौकन त्रिंशल्लोगस्स ३० कायोत्सर्गः पूर्ववत्त्रिंशद्गाथास्तोत्र ३० चेति तृतीयपूजा जाता ३। चतुर्थपूजाया चत्वारिंशत् नमस्कारा, चत्वारिंशत् पुष्पाणि, चत्वारिंशद् वस्तुढौकन कायोत्सर्गे चत्वारिंशत् लोगस्स चिन्तन पारिते एकलोगस्स चत्वारिंशद्गाथास्तोत्र इति चतुर्थीपूजा जाता ४। पञ्चमपूजाया पञ्चाशन्नमस्काराः ५० पञ्चाशत्पुष्पाणि ५० पञ्चाशद्वस्तु ५० ढौकन पञ्चाशल्लोगस्स ५० कायोत्सर्गः पारिते एक १ लोगस्स पञ्चाशद्गाथास्तोत्र ५० चेति पञ्चमीपूजा जाता ५। पूजायां पूजाया प्रान्ते काऽपि देवैः कैरपि दशादिजुत्कृतयोऽपि कार्यन्ते तथा पूजा पञ्चकानन्तर एकैकपूजानन्तरं वा यथाशक्ति यथासंभव महाध्वजारोपः संघाधिपेन कार्यः, तत्राऽऽरात्रिक १ मङ्गलप्रदीप २ गुरुभक्ति ३ संघभक्ति ४ साधर्मिकवात्सल्य ५ संघपतितिलक ६ कर्तव्यानि कार्याणि, प्रान्ते धर्मोपदेशो शत्रुञ्जयमाहात्म्यवर्णन ॥

॥ इति चैत्रपूर्णिमादेववन्दनविधिरधिकारः ॥ ८० ॥

ननु–गुरूणां स्तूपस्य प्रतिमायाश्च प्रतिष्ठा क्रियते, तत्र को विधिः प्रतिपादितोऽस्ति ? उच्यते—अत्र गुरुपरम्परागत-

कुव्यसनैर्नामेरधो यद्धृतम् । स्पृष्टं दुष्टजनैर्घनैरभिहतं यत् दूषितं कीटकै-स्त्याज्यं तत् कुसुमं दलं फलमथो भक्तैर्जिनप्रीतये ॥ १२ ॥ नैकं पुष्पं द्विधा कुर्या-न्न छिन्द्यात् कलिकामपि । चम्पको दलभेदेन, यतिहत्यासमं भवेत् ॥ १३ ॥ गन्धधूपाक्षतैः स्रग्भिः, प्रदीपैर्बलिवारिभिः । प्रधानैश्च फलैः पूजा, विधेया श्रीजिनेशितुः ॥ १४ ॥ शान्तौ श्वेतं जये श्यामं, भद्रे रक्तं भये हरित् । पीतं धान्यादिके लाभे, पञ्चवर्णं तु सिद्धये ॥ १५ ॥ खण्डिते सन्धिते छिन्ने, रक्ते रौद्रे च वाससि । दानं पूजा तथा होमः, स्वाध्यायो निष्फलं भवेत् ॥ १६ ॥ वर्जयेदर्हतः पृष्ठ-मग्रतः शिवसूर्ययोः । पार्श्वतो ब्रह्मविष्णोश्च, चण्डी सर्वत्र वर्जयेत् ॥ १७ ॥ गणं नाडीं तथा राशिं, तारां राशिं शमेव च । योनिवर्गं रिपुलभ्ये, प्रतिमाया विलोकयेत् ॥ १८ ॥

॥ इति प्रतिमाऽधिकारः ॥

अतीताब्दशतं यच्च, यच्च स्थापितमुत्तमैः । तद्व्यङ्गमपि पूज्यं स्याद्, बिम्बं तन्निष्फलं नहि ॥ १ ॥ आरभ्यैकाङ्गुलाद्-द्वयं, यावदेकादशाङ्गुलम् । गृहेषु बिम्बं तत्पूज्यं, प्रासादार्हं तदूर्ध्वकम् ॥ २ ॥ एकं गुणे भवेत् श्रेष्ठं, द्व्यङ्गुलं धननाशनम् । त्र्यङ्गुलेन भवेत् सिद्धि-र्वर्जयेच्चतुरङ्गुलम् ॥ ३ ॥ पञ्चाङ्गुलं भवेद्वित्त-मुद्वेगं तु षडङ्गुलम् । सप्ताङ्गुलेन गोवृद्धि-स्त्यजेदष्टाङ्गुलं सदा ॥ ४ ॥ नवाङ्गुलं तु पुत्राय, द्रव्यहानिर्दशाङ्गुलम् । एकादशाङ्गुलं बिम्बं, सर्वकामार्थसिद्धिदम् ॥ ५ ॥ ऊर्ध्वदृग् द्रव्यनाशाय, तिर्यग्दृग् भोगदा जये । श्रेयस्करी समदृष्टिः, कुलनाशे त्वधोमुखी ॥ ६ ॥ पद्मासनसमासीनो, नासाग्रन्यस्तलोचनः । मौनी वस्त्रावृतास्योऽयं, पूजां कुर्याज्जिनेशितुः ॥ ७ ॥ स्नान १ विलेपन २ विभूषण ३ पुष्प ४

छालाभोपदेशं च श्रुत्वा सर्वेऽपि स्वस्थानं व्रजन्ति, ततो दिनदशक यावत् स्तूपपूजा कार्या नैवेद्यो मुच्यते, भोगश्चोत्क्षिप्यते, प्रतिष्ठाकारकश्च दशदिनानि एकाशनं करोति, शीलव्रत च पालयति ॥ ८१ ॥

॥ इति गुरुस्तूपप्रतिष्ठाविधिरधिकारः ॥ ८१ ॥

ननु-श्रावकाणां गृहे देवतासरः कुत्र स्थाप्यते?, केन विधिना श्रावकाः पूजा कुर्वन्ति? उच्यते—तत्राऽर्थे श्रीउमास्वातिवाचककृत पूजाप्रकरणमेव प्रमाण, तथेदं—"स्नानं पूर्वोन्मुखीभूय, प्रतीच्यां दन्तशोधनम्। उदीच्यां श्वेतवस्त्राणि, पूजा पूर्वोत्तरामुखी ॥ १ ॥ गृहे प्रविशतां वाम-भागे स्वल्पविवर्जिते। देवतावसर कुर्यात्, सार्धहस्तोर्ध्वभूमिके ॥ २ ॥ नीचैर्भूमिस्थितिं कुर्यात्, देवतावसर यदि। नीचैर्नीचैस्ततोऽवश्य, सन्तत्याऽपि सम भवेत् ॥ ३ ॥ तथाऽर्चकः स्यात्पूर्वस्या, उत्तरस्या च संमुखम्। दक्षिणस्या दिशो वर्ज्यो, विदिग्वर्जक एव च ॥ ४ ॥ पश्चिमाभिमुखः कुर्यात्, पूजा च जिनमूर्तये। तदा स्यात् सन्ततिच्छेदो, दक्षिणस्यामसन्ततिः ॥ ५ ॥ आग्नेय्या तु यदा पूजा, धनहानिर्दिने दिने। वायव्यां सन्ततिर्नैव नैर्ऋत्या च कुलक्षयः ॥ ६ ॥ ऐशान्या संमुखः किंचित्, सन्ततिर्नैव जायते। अङ्घ्रिजानुकरांसेषु, मूर्ध्नि पूजा यथाक्रमम् ॥७॥ भाले कण्ठे हृदम्भोजे, उदरे तिलक तथा। [तथा] नवभिस्तिलकैः पूजा, करणीया निरन्तरम् ॥ ८ ॥ श्रीचन्दन विना नैव, पूजा कुर्यात् कदाचन। प्रभाते प्रथम वास-पूजा कार्या विचक्षणैः ॥ ९ ॥ मध्याह्ने कुसुमैः पूजा, सन्ध्यायां दीपधूपयुक्। वामाङ्गे धूपदाहः स्या-दग्रपूजाऽत्र समुखी ॥ १० ॥ अर्हतो दक्षिणे भागे, दीपस्य च निवेशनम्। ध्यान तु दक्षिणे भागे, चैत्यानां वन्दन तथा ॥ ११ ॥ हस्तात्प्रस्खलितं क्षितौ निपतितं लग्नं क्वचित् पादयो-र्यन्मूर्ध्वोर्ध्वगतं धृतं

यत् दूषित कीटकै–स्त्याज्य तत् कुसुम दल फलमथो भक्तैर्जिनप्रीतये
कुव्यसनैर्नाभेरधो यच्च धृतम् । स्पृष्टं दुष्टजनैर्घनैरभिहत
॥ १२ ॥ नैकं पुष्पं द्विधा कुर्या–न्न छिन्द्यात् कलिकामपि । चम्पको दलभेदेन, यतिहत्यासमं भवेत् ॥ १३ ॥ गन्ध-
धूपाक्षतैः स्रग्भिः, प्रदीपैर्बलवारिभिः । प्रधानैश्च फलैः पूजा, विधेया श्रीजिनेशितुः ॥ १४॥ शान्तौ श्वेतं जये श्यामं, भद्रे
रक्तं भये हरित् । पीतं धान्यादिके लाभे, पञ्चवर्णं तु सिद्धये ॥ १५ ॥ खण्डिते सन्धिते छिन्ने, रक्ते रौद्रे च वाससि ।
दान पूजा तथा होमः, स्वाध्यायो निष्फलं भवेत् ॥ १६ ॥ वर्जयेदर्हतः पृष्ठ–मग्रत शिवसूर्ययोः । पार्श्वतो ब्रह्म-
विष्णोश्च, सण्डी सर्वत्र वर्जयेत् ॥ १७ ॥ गण नाडीं तथा राशिं, तारा राशिं शमेव च । योनिवर्गं रिपुलभ्ये, प्रति-
माया विलोकयेत् ॥ १८ ॥

॥ इति प्रतिमाऽधिकारः ॥

अतीताब्दशतं यच्च, यच्च स्थापितमुत्तमैः । तद्व्यङ्गमपि पूज्यं स्याद्, विम्बं तन्निष्फलं नहि ॥ १ ॥ आरभ्यैकाङ्गुलाद्-
द्व्य, यावदेकादशाङ्गुलम् । गृहेषु विम्बं तत्पूज्यं, प्रासादार्हं तदूर्ध्वकम् ॥ २ ॥ एकं गुणे भवेत् श्रेष्ठं, द्व्यङ्गुलं धननाश-
नम् । त्र्यङ्गुलेन भवेत् सिद्धि–र्वर्जयेच्चतुरङ्गुलम् ॥ ३ ॥ पञ्चाङ्गुलं भवेद्वित्त–मुद्वेगं तु षडङ्गुलम् । सप्ताङ्गुलेन गोवृद्धि–स्त्य-
जेदष्टाङ्गुलं सदा ॥ ४ ॥ नवाङ्गुलं तु पुत्राय, द्रव्यहानिर्दशाङ्गुलम् । एकादशाङ्गुलं विम्बं, सर्वकामार्थसिद्धिदम् ॥ ५ ॥
ऊर्ध्वदृग् द्रव्यनाशाय, तिर्यग्दृग् भोगदा जये । श्रेयस्करी समदृष्टिः, कुलनाशे त्वधोमुखी ॥ ६ ॥ पद्मासनसमासीनो,
नासाग्रन्यस्तलोचनः । मौनी वस्त्रावृतास्योऽय, पूजां कुर्याज्जिनेशितुः ॥ ७ ॥ स्नान १ विलेपन २ विभूषण ३ पुष्प ४

वास ५, धूप ६ प्रदीप ७ फल ८ तन्दुल ९ पत्र १० पूगैः ११ । नैवेद्य १२ वारि १३ वसनै १४ श्चमरा १५ तपत्र, १६ वादित्र १७ गीत १८ नटन १९ स्तुति २० कोषवृद्ध्या २१ ॥ ८ ॥ इत्येकविंशतिविधा जिनराजपूजा, ख्याता सुरासुरगणैश्च कृता सदैव । खण्डीकृता कुमतिभि कलिकालयोगाद्, यद्यत् प्रिय तदिह भाववशेन योज्यम् ॥ ९ ॥"

॥ इति श्रावकाणा देवतावसरस्थापनापूजाविधिरधिकार' ॥ ८२ ॥

ननु–कल्पत्रेपोच्चारणं किमर्थं प्रतिपादितमस्ति ?, कुत्र च तद्विधिः ? उच्यते–कल्पत्रेपस्य आसेवनाशिक्षारूपत्वात् उक्त तद्विधान यदुक्त—

"सा पुण दुविहा सिक्खा, गहणे आसेवणे य नायव्वा । गहणे सुत्ताहिज्जण, आसेवण कप्पतिप्पाई ॥ १ ॥ इति" पुनरपि 'कयकप्पतिप्पकरिय'त्ति वचन च ततः सति शास्त्रोक्ते कल्पत्रेपविधौ श्रीजिनप्रभसूरिविनिर्मितविधिप्रपोक्तानुक्रमेण कर्तव्यतापाठो लिख्यते, तथाहि–"जोगा य कप्पतिप्प विणा न वहिज्जति, कयकप्पतिप्पकरिय त्ति वयणाओ अओ संपय कप्पतिप्पविहि भण्णइ, तत्थ–वरिसाइ–कत्तियचउलपाडिवयाणतर पसत्थदिणे चउथाइअरिक्खे गुरुसोमवारे सुनिमित्तोयरत्तेहिं सयसवत्थवेढिअगिहत्थभायणेणं कप्पवाणिय माणित्ता जोइणीओ पिट्ठउ वामउ वा काउ मुहहत्थपाय तले काऊण अहारायणियाए छम्मासिअ कप्पो उच्चारिज्जइ, पविस्समाणस्स आसदसिआइय कय आउत्तजलेण पढम चउरो तिप्पाउ मुहे घिप्पति तओ पायसु इत्थ हत्थ विण्णासो सपदाया नेतओ छम्मासिअकप्पे परदिआउ चेव तिप्पाउ घेप्पति इयरकप्पे दसिया पुण चलकोप्परेहिं परदिआउ वा, तहा छम्मासिअ कप्पुत्तारणे उद्धट्ठिअस्स उद्धट्ठिओ तिप्पाउ दिज्जा,

उवविट्ठस्स उवविट्ठो सामन्न कप्पे नत्थि नियमो तओ वसहीमडुवगरण च नाणोवगरणवज्ज सव्वपि ते पिज्जइ नवर मडलिट्ठाण गोमयलेवेकए ति पिज्जइ, कप्पमज्झे वा वरिअ पत्तमढ मल्लग उच्चरणी च्छाइ पमज्जणिआ तलिया लोहरत्थाइ अलेण कप्पिओ तिप्पिज्जइ, एव कप्पे उत्तारिए वसहि सोहितु हडकेसाइ परिट्ठविअ इरिअ पडिक्कमिय पढम गुरुणा सज्झाए उक्खिविए मुहपोत्तिं पडिलेहिअ दुवालसावत्तवदण दाउं खमासमणेण भणति, सज्झाय उक्खिवामो बीअ खमासमणेण सज्झाय उक्खिवणत्थ काउस्सग्ग करेमि तओ अन्नत्थूससीएणमिच्चाइ पढिअ नवकार चउवीसत्थय वा विचिंतिअ मुहेण त भणिअ काउस्सग्गतिग कुणंति, पढम असज्झाइअ अणाउत्तउहडावणिअ, बीअ खुद्दोवद्दवउहडावणिअ, तइयं सक्काइवेयावच्चगरआराहणत्थ तिसु वि चउरुज्जोअ चिंतण उज्जोअ भणण च तओ खमासमणदुगेण सज्झाय संदिसावेमि सज्झाय करेमि इति भणिअ जाणुठिएहिं पचमगलपुव्व धम्मो मगलाइअमज्झयणतिअ सज्झाओ कीर- इत्ति सज्झाय उक्खिवणविही ॥ ८२ ॥

॥ इति कल्पत्रेपोत्तारणविधिरधिकारः ॥ ८२ ॥

ननु–श्रीबृहत्खरतरगच्छे कोऽनुक्रमः प्रतिक्रमणविधे ?, कुत्र च सविधिः प्रतिपादितोऽस्ति ? उच्यते–अत्रानुक्रमः कोऽपि श्रीविधिप्रपा १ श्रीतरुणप्रभसूरिकृत–षडावश्यकबालावबोध २ श्रीजिनवल्लभसूरिकृत–सामाचारी ३ श्रीयोगशास्त्रवृतीयप्रकाशवृत्ति ४ श्रीप्रतिक्रमणहेतुगर्भ ५ प्रमुखग्रन्थानुसारेणाऽपि च स्वगच्छीयपरम्परातो ज्ञेयः, तत्र प्रथम साधुर्गोचरीं प्रतिक्रम्य श्रावको वा सामायिकं लात्वा, गुर्वादेशेन 'जयति हुयणनमस्कार' कथयित्वा सर्वे सम "जयमहायसेत्यादि"

पूगीः ११। नैवेद्य १२ वारि १३ वसनं १४ चमरा १५ तपत्र, १६
वास ५, धूप ६ प्रदीप ७ फल ८ तन्दुल ९ वस्त्र १० पूगीः ११। इत्येकविंशतिविधा जिनराजपूजा, ख्याता सुरासुर-
यावित्र १७ गीत १८ नटन १९ स्तुति २० कोषवृद्धया २१ ॥ ८ ॥ यद्यत् प्रिय तदिह भाववशेन योज्यम् ॥ ९ ॥"
गणैश्च कृता सदैव। खण्डीकृता कुमतिभिः कलिकालयोगात्,

॥ इति श्रावकाणां देवतावसरस्थापनापूजाविधिरधिकारः ॥ ८२ ॥

ननु–कल्पत्रेपोत्तारण किमर्थं प्रतिपादितमस्ति ?, कुत्र च तद्विधिः ? उच्यते–कल्पत्रेपस्य आसेवनाशिक्षारूपत्वात् उक्त तद्विधान यदुक्त—

"सा पुण दुविहा सिक्खा, गहणे आसेवणे य नायव्वा। गहणे सुत्ताहिज्जण, आसेवण कप्पतिप्पाई ॥ १ ॥ इति"
पुनरपि 'कयकप्पतिप्पकरिय'त्ति वचन च ततः सति शास्त्रोक्ते कल्पत्रेपविधौ श्रीजिनप्रभसूरिविनिर्मितविधिप्रपोक्तानुक्रमेण कर्तव्यतापाठो लिख्यते, तथाहि–"जोगा य कप्पतिप्प विणा न वहिज्जति, कयकप्पतिप्पकरिय त्ति वयणाओ अओ सपय कप्पतिप्पविहि भण्णइ, तत्थ–चउसाह–कत्तियबहुलपाडिवयाणंतर पसत्थदिणे चउवाइअरिक्खे गुरुसोमवारे सुनिमित्तोवउत्तेहिं सदसवत्थवेढिअगिहत्थभायणेणं कप्पवाणिय माणित्ता जोइणीओ पिट्ठउ वामउ वा काउ मुहहत्थपाय तले काऊण अहारायणियाए छम्मासिअ कप्पो उत्तारिज्जइ, पविस्समाणस्स आसंदसिआइय कय आवत्तजलेण पढम चउरो तिप्पाउ मुहे खिप्पंति तओ पाएसु इत्थ हत्थ विण्णासो सपदाया नेतव्वो छम्मासिअकप्पे परदिआउ चेव तिप्पाउ घेप्पति इयरकप्पे दसिया पुत्त चलकोप्परेहिं परदिआउ वा, तहा छम्मासिअ कप्पुत्तारणे उद्धट्ठिअस्स उद्धट्ठिओ तिप्पाउ दिज्जा,

श्रमणेन श्रीआचार्यमिश्र १ द्वि० श्रीउपाध्यायमिश्र २ तृती० भट्टारकवर्तमान अमुकसूरि ३ चतुर्थ० सर्वसाधुवन्दना ४ पश्चात् भून्यस्तमस्तको मुखवस्त्रिकां मुखे दत्त्वा करद्वयं योजयित्वा "सव्वस्सवि देवसिअ" इत्यादि पठति, परं इच्छाकारेण संदिसहेति पद न पठति, इद च सकलातिचारवीजकभूत अन्यत्राऽपि च ग्रन्थादौ वीजकस्य दर्शनात् 'जय जंतु कप्पपायवे' इत्यादाविव, अत्राऽवसरे श्राद्धस्तु साधुरिव पूर्ववत् क्षमाश्रमणचतुष्टयेन श्रीआचार्यादीन् वन्दित्वा इच्छकारि-समस्तश्रावका वांदु इति भणति, श्रीहेतुगर्भे इत्थमेव भणनात् । अत्राऽऽह शिष्य', ननु-प्रतिक्रमणप्रारम्भे प्रथम कथ श्रीआचार्यादि वन्दनं विहितं ? उच्यते-प्रधानादि स्थानीयानां श्रीआचार्यादीना बहुमाननेन स्वसमीहितसिद्धिर्भवतीति हेतोः यदुक्तं श्रीहेतुगर्भे लोकेऽपि हि-राज्ञः प्रधानादीना च बहुमाननादिना स्वसमीहितकार्यसिद्धिर्भवति । अत्र राज स्थानीयः तीर्थङ्कराः प्रधानादिस्थानीया' श्रीआचार्यादय इति, तत उत्थाय द्रव्यतो वपुषा भावतश्च शुद्धपरिणामेन चारि-त्राचारविशुद्ध्यर्थं "करेमि भंते सामाइय" इत्यादि सूत्रं पठित्वा प्रलम्बितभुज कूर्परधृतनाभ्यधोवर्ति जानूर्ध्वचतुरङ्गुल-स्थापितकटिपट्टः "सजय खलिणे य वायस कविट्टेत्यादि" १९ दोपरहितं कायोत्सर्गं कुर्यात् । यदुक्त हेतुगर्भे—सामाइअ-पुव्वमिच्छामि काउस्सग्गमिच्चाइ सुत्त भणिअ पलंबिअभुअ कुप्परधरिअ परिहणओ ॥ १॥ इत्यस्मिन् कायोत्सर्गे च प्रातस्तत प्रतिलेखनायाः प्रभृति दिवसातिचारान् चिन्तयति, मनसा प्रधारयेच्च "सयणासण्णपाणे" त्यादिगाथा अचिन्तयत। श्राद्धस्तु आजुका चउप्रहर दिवसमांहि जिके जीव विराध्या हुवइ" इत्यादि अतिचारान् श्रीतरुणप्रभसूरिलिखितान् चिन्तयति । तदनागमने गच्छप्रवृत्त्या अष्टौ नमस्काराश्चिन्तयति, एतदतिचारचिन्तन मनसा सकथन च श्रीगुरुसमक्षमालोचनार्थं

गाथा पठति, ततः शक्रस्तव जावंति चेइआइंति गाथाद्विकवर्जं कथयित्वा देवान् वन्दते, अन्यगच्छे तु जयति भुवणस्थाने नमस्कारा एव कथ्यन्ते, श्रीखरतरगच्छे तु नवाङ्गीवृत्तिकारकस्तम्भनकपार्श्वनाथप्रकटक-श्रीअभयदेवसूरिस्वगच्छीयत्वेन तत्कृतेस्तु तेषां सातिशयत्वाच्च सुतरां प्रतिक्रमणप्रारम्भे आदेयता, अत्र च आवश्यकप्रारम्भे साधुः श्रावकश्चादौ देव-गुरुवन्दनं विदधे, यतः सर्वमप्यनुष्ठानं श्रीदेवगुरुवन्दनविनयबहुमानादिभक्तिपूर्वकं सफलं भवतीत्याह च—

"विणया हीणा विज्जा, दींति फलं इह परे अ लोगम्मि । न फलंति विणयहीणा, सस्साणिव तो अहीणाणि ॥ १ ॥ भत्तीइ जिनवराणं, खिज्जति पुव्वसंचिअं कम्मं । आयरिय नमुक्कारेण विज्जमंता य सिज्झंति ॥ २ ॥" अत्र पूर्वं देववन्दने द्वादशाधिकारा ज्ञेयाः । यदुक्तं श्रीचैत्यवन्दनकभाष्ये (४ पत्रे)—"पढमहिगारे वंदे भावजिणे १ बीअए य दव्वजिणे २ इगचेइअ ठवणजिणे तइय ३ चउत्थम्मि नामजिणे ४ ॥ १ ॥ तिहुअणठवणजिणे पुण, पंचमए ५ विहरमाणजिण छट्ठे ६ सत्तमए सुअनाणं ७ अट्ठमए सव्वसिद्धथुई ८ ॥ २ ॥ तित्थाहिववीरथुई नवमे ९ दसमेअ उज्जयंतथुई १० । अट्ठावय इगदिसि ११, सुदिट्ठि-सुरसमरणा चरमे ॥ १२ ॥ ३ ॥ अथाऽधिकारप्रथमपदानि द्वादश यथा—

"नमु १ जे अइ २ अरिह ३ लोगे ४ सव्व ५ पुक्ख ६ तम ७ सिद्ध ८ जो देवा ९ उज्जिं १० चत्ता ११ वेआवच्चग १२ अहिगार पढमपया ॥ १ इति ततो वंदित्तु चेइआइं, दाउ चउराइए खमासमणो । भूनिहिअसिरो सयला-इ आरंभिच्चुक्क देइ ॥ १ ॥" इति श्रीजिनवल्लभसूरिवचनात् चतुरादिक्षमाश्रमणैः श्रीगुरु वन्दते, इति हेतुगर्भसम्मत्या च क्षमाश्रमणचतु-ष्टयेन प्रतिक्रमणं स्थापयन्ति, क्षमाश्रमणचतुष्टयदानानुक्रमश्च श्रीतरुणप्रभसूरिकृतबालावबोधे ... [illegible]

इअ मुहणंतगपडिलेहणाइ कमसो विचिंतिज्जा ॥ २ ॥ हासो १ रई अ २ अरई ३, भय ४ सोग ५ दुगंछाय ६ वज्जिज्जा । भुअजुअल पेहतो, सीसो सुपसत्थलेसतिग ९ ॥ ३ ॥ गारवतिग च वयणे १२, उरिसल्लतिग १५ कसायचउपिट्ठे (सचे) १९ । पयजुगिछजीववह २५, तणुपेहाए विजाणमिण ॥ ४ ॥ जइ वि पडिलेहणाए, हेऊ जिअरक्खण जिणाणाय । तहवि इम मणमक्कडनिज तणत्थ मुणी विंति ॥ ५ ॥" इत्यत्र सामायिके "साविआ पुण पिट्ठि ४ सिर ७ हियय १० वज्ज पनरस कुणइ" इति विधिप्रपाया श्रीजिनप्रभसूरिवचनात् श्राविका देहस्य पञ्चदशैव प्रतिलेखना करोति, तदनु वन्दनके दद्यात् वन्दनक च द्वात्रिंशद्दोषरहितं पञ्चविंशत्यावश्यकविशुद्ध च विधेय, एतद् वन्दनक च कायोत्सर्गातिचारालोचनार्थं एव विधिना वन्दन प्रदाय, सम्यगवनताङ्ग पूर्वं कायोत्सर्गे स्वमनोवधारितान् दैवसिकातिचारान् इच्छाकारेण "सदिसह भगवन् देवसिअ आलोएमि" इत्यादि सूत्र चारित्रविशुद्धिहेतुक उच्चारयन् श्रीगुरुसमक्षमालोचयेत्, आह च—श्रीजिनवल्लभसूरिभिः तथैव उक्तत्वात् ॥

"अह सम्ममवणयंगो करजुअविहिधरिअपोत्तिरयहरणो । परिचिंतिय अइआरे, जहक्कम गुरुपुरो विअडे ॥ १४ ॥"

ततः तरुणप्रभसूरिवचनात् 'ठाणेक्कमणे' त्यादि कथयति साधुः, पौषधमध्ये श्रावकोऽप्येव दैवसिकातिचारालोचनानन्तर मनोवचनकायसकलातिचारसंग्राहक "सव्वस्सवि देवसिए" त्यादि पठेत् इच्छाकारेण सदिसह इत्यनेन अन्तरालोचितातिचार प्रायश्चित्त च मार्गयेत् गुरुवचश्च "पडिक्कमह" इति प्रतिक्रमणरूप प्रायश्चित्तमुपदिशन्ति, इद च—

"आलोयण १ पडिक्कमणे २, मिस ३ विवेगे ४ तहा वि उस्सग्गे ५ । तव ६ छेअ ७ मूल ८ अणवट्ठाया अ ९ पार

अन्यथा तत् सम्यक् न स्यात्, लोकेऽपि हि राजादीनां किमपि विज्ञाप्य मनसा सम्प्रधार्य कागदादौ लिखित्वा विज्ञप्यते, ततश्च नमस्कारपूर्वं कायोत्सर्गं पारयित्वा चतुर्विंशतिस्तव पठेत् आह च—

"काउस्सग्गमि ठिओ, नीरेयकाओ निरुद्धवयपसरो । जाणइ सुहमेगमणो, [ मुणि ] पुण देवसिआइ अइयार ॥ १ ॥ परिजाणिऊण य तओ, सम्म गुरुजणपगासणेण तु । सो होइ अप्पगसो, जम्हा य जिणेहिं सो भणिउ ॥ २ ॥ काउस्सग्गं मुक्खपह देसिअ जाणिऊण तो धीरो । दिवसाइआर जाणण, ठाए ठायति उस्सग्गो ॥ ३ ॥ सयणासणन्नपाणे, चेइअ जइसज्झकायउच्चारे । समिई भावणगुत्ती, वि तहायरणे अ अइयारो ॥ ४ ॥ गोसमुहणतगाई, आलोए देसिएअ अइयारे । सवे समाणइत्ताहि मणदोसे ठविआहि ॥ ५ ॥ काउ हि अप्पदोसे, जहक्कम जानता व पारिंति । ताव सुहुमाण पाणू, धम्म सुक्क च झाइज्जा ॥ ६ ॥ इति हेतुगर्भे । ननु–ज्ञानादिषु सत्सु प्रथम चारित्राचारकायोत्सर्गं कथ क्रियते ? उच्यते–ज्ञानादेश्चारित्रस्य गरिष्ठत्वज्ञापनार्थं आह च–"जम्हा दसणनाणा, सपुन्नफल न दिंति पत्तेअ । चारित्तजुआ दिंति, अविस्सिस्सए तेण चारित्त ॥ १ ॥ इति ततश्च जानुपाश्चात्यभागपिण्डिकादि प्रमृज्य उपविश्य च श्रीगुरूणा वन्दनकदानार्थं मुखवस्त्रिकां कायं च द्वावपि प्रत्येक पञ्चविंशतिधा प्रतिलिखेत् । यदाह–"सडासगे पमज्जिय, उववसिअ अलग्गविअमबाहु जुओ । मुहणतय च काय, च पेहए पचवीस इह ॥ १ ॥" इति मुखवस्त्रिकाकायप्रतिलेखनाया मनसः स्थिरीकरणार्थमेव चिन्तयेत्, यदुक्त हेतुगर्भे—"सुत्तत्थतत्तदिट्ठी १, दसणमोहतिअग च ४ रागतिग ७ । देवाइ ततति अगं १०, तहा अदेवाइ तत्तिग १३ ॥ १ ॥ नाणाइ तिग १६ तह तव्विराहणा १९ तिन्निगुत्ति २२ दंडतिअ २५ ।

चारविशुद्धिहेतु कायोत्सर्गं च पारयित्वा दर्शनाचारविशुद्ध्यर्थं चतुर्विंशतिस्तव पठेत्, ततः "सव्वलोए अरिहंतचेइआण" इत्यादि सूत्र च पठित्वा तदर्थमेव कायोत्सर्गमेकचतुर्विंशतिस्तवचिन्तनरूप कुर्यात्, त च तथैव पारयित्वा श्रुतज्ञानाचारविशुद्ध्यर्थं 'पुक्खरवरदीवड्ढे' इत्यादि सूत्र "सुअस्स भगवओ करेमि काउस्सग्ग" इत्यादि च पठित्वा एकचतुर्विंशतिस्तवचिन्तनरूप कायोत्सर्गं कुर्यात्, पारयित्वा च ज्ञान-दर्शन-चारित्राचारनिरतिचरणसमाचरणफलभूताना सिद्धाना, "सिद्धाण बुद्धाणं" इति सिद्धस्तव पठति। आह च—

"विहिणा पारिअ सम्मत्तसुद्धिहेउ च पढिअउज्जोअ। तह सव्वलोअअरिह-तचेइआरोहणुस्सग्ग ॥ १८ ॥ काउ उज्जोयगर, चिंतिय पारेइ सुद्धसम्मत्तो। पुक्खरवरदीवड्ढ, कड्ढइ सुयसोहणनिमित्त ॥ १९ ॥ पुण पणवीसोस्सास, उस्सग्गं कुणइ पारए विहिणा। तो सयलकुसलकिरिआ, फलाणसिद्धाण पढइ थय ॥ २० ॥" इह चतुर्विंशतिस्तवद्वयचिन्तनरूपो द्वितीयश्चारित्रविशुद्धिहेतुकः कायोत्सर्ग अस्मिंश्च पूर्वोक्तयुक्त्या चारित्राचारस्य ज्ञानाद्याचारेभ्यो वैशिष्ट्यादिना चतुर्विंशतिस्तवद्वयचिन्तन समाम्यते, नाऽनेतनयोः तृतीयो दर्शनाचारविशुद्धिहेतुकः चतुर्थो ज्ञानाचारविशुद्धिहेतुः। आह च—

"नमुक्कार चउवीसग, किइकम्मालोयण पडिक्कमणं। किइकम्मपुरा लोइअ, दुप्पडिकंते अ उस्सग्गो ॥ १ ॥ एस चरित्तुस्सग्गो, दसणसुद्धीइ तइओ होई। सुअनाणस्स चउत्थो, सिद्धाणथुई अ किइकम्म ॥ २ ॥" दिवसातिचारचिन्तनार्थः प्रथमश्चारित्राचारहेतुः कायोत्सर्गो द्वितीयोऽपि चतुर्विंशतिस्तवद्वयचिन्तनरूप तद्धेतुरेव कायोत्सर्गः।

यात् प्रतिक्रमणमनुकुर्वन्निव पश्चात्पदैः अवग्रहात् बहिर्निःसृत्य 'आयरिय उवज्झाए' सूत्रं पठति, अन्यगच्छेषु केषुचिद् 'आयरिय उवज्झाए' इत्यादि गाथात्रिकं साधवोऽपि पठन्ति, न चैतत् संगतिमङ्गति, श्रीयोगशास्त्रवृत्तौ–हेतुगर्भे–श्रीजिनवल्लभसूरि–श्रीजिनपतिसूरिप्रमुखनिर्मितग्रन्थेषु सर्वत्र 'सड्ढो गाहातिगं पढइ' इत्येवं नामग्राहं श्राद्धस्यैव एतत् पठनमुक्तत्वात् न साधोः, न च वाच्य–श्राद्ध इति कोऽर्थः ?, श्रद्धावानिति व्युत्पत्त्या द्वयोरपि ग्रहणं क्वाऽपि ग्रन्थे, अत्राधिकारे एतदर्थकरणाऽदर्शनात्, नाऽपि च सर्वोऽपि प्रतिक्रमणसूत्रपाठो द्वयोरपि समान इति । सामायिकसूत्र–प्रतिक्रमणसूत्रादिषु द्वयोरपि भिन्नभिन्नपाठात् । विस्तरवार्तार्थिना अस्मिन्नेव ग्रन्थे पञ्चम प्रश्नोत्तरं द्रष्टव्यं, कायोत्सर्गे च चारित्राचारविशुद्ध्यर्थं चतुर्विंशतिस्तवद्वयं चिन्तयति, आह च—

"इय सामाइयउस्सग्गसुत्तमुच्चरिअ काउस्सग्गठिओ । चिंतइ उज्जोअदुगं, चरित्तअइयार सुद्धीए कए ॥ १७ ॥

इह चाऽऽह ननु–करेमि भंते सामाइयमिति सूत्रमादौ प्रतिक्रमणसूत्रकथनक्षणे द्वितीयं तृतीयं पुनरिह तदुच्चारणं किमर्थं ? उच्यते–सर्वमपि धर्मानुष्ठानं समतापरिणामे स्थितस्य सफलं भवतीति, प्रतिक्रमणस्यादौ मध्येऽवसाने च पुनः पुनस्तस्य स्मृत्यर्थं तदुच्चारणं, आह च—

"आइमकाउस्सग्गे, पडिक्कमंतो य काउ सामइयं । तो किं करेइ बीअं, तइअं च पुणोवि उस्सग्गे ॥ १ ॥ समभावम्मि ठिअप्पा, उस्सग्गं करिअ तो पडिक्कमइ । एमेव य समभावे, ठिअस्स तइअं पि उस्सग्गे ॥ २ ॥ सज्झाय १ झाण २ तव ३ ओसहेसु ४ उवएस ५ थुइपयाणेसु ६ । संतगुणकित्तणेसु य ७, न हुंति पुणरुत्तदोसा उ ॥ ३ ॥" इति चारित्रा-

मग्रे दास्यते, इत्यनेन दैवसिकप्रतिक्रमणं सपूर्णं जातं । अत्र प्रतिक्रमणे 'जयतिहुयण' कथने गच्छाचारेण आन्तरणीदोषो गण्यते, देववन्दन विना कायोत्सर्गं तद्दोषो न भवति, ततः 'सव्वस्सवि देवसिअ' कथनादारभ्य 'इच्छामो अणुसट्ठिं' यावदान्तरणीदोषो भवेत् ततः पर न स्यात्, सर्वमपि धर्मानुष्ठान श्रीदेवगुरुभक्तिबहुमानमादिपुरःसर सफल भवतीति, प्रतिक्रमणस्य प्रारम्भे सपूर्णीभवने च श्रीदेवगुरुवन्दन इति । आद्यन्तग्रहणेन मध्यस्याऽपि ग्रहणमिति न्यायेन तद्भक्ति सार्वत्रिकी ज्ञेया, यथा शक्रस्तवे नमुत्थुणमित्यादौ, नमो जिणाणमिति अन्ते च नमो इत्यस्य स्थापनेन शक्रस्तवे प्रतिपद तत्पाठज्ञापन, ततः 'कुणइ पच्छित्तउस्सग्गमिति' श्रीजिनवल्लभसूरिविरचितप्रतिक्रमणसामाचारीवचनप्रामाण्यात् चतुर्थक्षमाश्रमणदानपूर्वं इच्छाकारेण सदिसह भगवन् 'देवसिअपायच्छित्तविसोहणत्थ' करेमि काउस्सग्गमिति, श्रीतरुणप्रभसूरिवचसा अन्नत्थूससिएणमि त्यादि भणित्वा कायोत्सर्गं कुर्यात्, तन्मध्ये चतुश्चतुर्विंशतिस्तवचिन्तन कुर्यात्, पारिते चैक चतुर्विंशतिस्तव मङ्गलार्थं पठेत्, हेतुगर्भेऽप्युक्त, पूर्वं प्रतिक्रमणे चारित्रदर्शनज्ञानाचारशुद्ध्यर्थं कायोत्सर्गेषु कृतेष्वपि पुनरिह 'द्विर्बद्ध सुबद्ध' भवतीति न्यायेन प्राणातिपातादिविरमणातिचारविशुद्ध्यर्थं चतुर्थं चतुश्चतुर्विंशतिस्तवचिन्तनरूप देवसिकप्रायश्चित्तविशुद्ध्यर्थं कायोत्सर्गं कुरुते, उक्तं च—

"गुरुथुइगहणे थुइ तिन्नि वद्धमाणक्खरस्सरो पढइ । सक्कत्थय थय पढिअ कुणइ पच्छित्तउस्सग ॥ २४ ॥

पाणवह मुसावाए, अदत्तमेहुणपरिग्गह चेव । सयमे गंतु अणूण, उस्सासाण हविज्जाहिं ॥ २ ॥"

अथ च कायोत्सर्गः कैश्चित् सामाचारीवशेन प्रतिक्रमणस्य अन्ते क्रियते । कैश्चित्तु आदौ एव क्रियते, श्रीखरतरगच्छी-

"बालस्त्रीमन्दमूर्खाणां, नृणां चारित्रकाङ्क्षिणाम् । अनुग्रहार्थं तत्त्वज्ञैः, सिद्धान्तः प्राकृत कृतः ॥ १ ॥"

इत्याद्युक्तिभिः स्त्रीणा संस्कृतेऽनधिकारित्वसूचनात्, नाटकादिष्वपि प्रायः स्त्र्यालापाना प्राकृतादिभाषयैव दर्शनात् साध्व्यः श्राविकाश्च नमोऽर्हत्सिद्धेत्यादि सूत्र न पठन्ति, नमोऽस्तु वर्धमानेत्यादिस्थाने 'ससारदावानले' त्यादिरूप स्तुतित्रय च पठन्ति, यच्च श्रीगुरुकथनावसरे प्रतिस्तुतिप्रान्ते नमो खमासमणाणमिति गुरुनमस्कार' साधुसाध्व्यादिभिर्भण्यते । तत् नृपाद्या लास्येषु प्रतिवार्ता प्रान्ते जीवेत्यादि भणनवत् श्रीगुरुवचःप्रतीच्छादिरूप सभाव्यते, इद नमो खमासमणाणमिति पद विधिप्रपा–तरुणप्रभबालावबोधादौ नाऽस्ति, परं हेतुगर्भेऽस्ति, तथेद श्रीवर्धमानस्वामिनस्तीर्थं तस्याऽऽज्ञया चेद प्रतिक्रमणादिकरण निर्विघ्न च तत्सपूर्णीभवने हर्षेण मङ्गलार्थं च श्रीवर्धमानस्तुतिपाठोऽय कृतज्ञाना व्यवहारो यत्स्वसमीहितशुभकार्यनिर्विघ्नभवने श्रीगुरुदेवबहुमाननादिवर्धमानस्वरेण स्तुतित्रयपाठश्च हर्षातिरेकादयं च न्यायो लोकेऽपि दृश्यते, यथा राज्ञः शत्रुजयादौ विवाहादौ वा हर्षेण विचित्रवादित्रवादनोच्चैःस्वरगीतगाननृपपूजनादि', स्तुतित्रयपाठानन्तर शक्रस्तवपाठः, ततो गुर्वाज्ञया एकः श्राद्धो यतिर्वा इच्छाकारेण सदिसह भगवन् स्तोत्रमणु ? इति क्षमाश्रमणदानपूर्वकमधुरस्वरेण सद्भूतगुणगर्भितश्लोकाद्येकादशकादारभ्य अष्टोत्तरशत यावत् श्रीवीतरागस्य बृहत्स्तवन पठति, अन्ये तु जानुभ्या स्थित्वा सावधानमनसः कृताञ्जलिपुटाः शृण्वन्ति । ततः सपूर्णस्तोत्रकथनानन्तर चतुर्भि क्षमाश्रमणै श्रीगुर्वादीन् वन्दते इति श्रीहेतुगर्भवचनप्रामाण्यात्, क्षमाश्रमणचतुष्टय दत्ते श्रीतरुणप्रभसूरिबालावबोधानुक्रमेण स चाऽय प्रथम० क्ष० श्रीआचार्यमिश्र १ द्वितीयक्षमाश्रमण० श्रीउपाध्यायमिश्र २ तृतीयक्षमाश्रमण० सर्वसाधु ३ चतुर्थक्षमाश्रमण-

भवनवशात् देवा न वन्दिताः तदाऽपवादमार्गेण बृहत्स्तोत्रकथनसमये स वन्दते इति स्वगच्छप्रवृत्तिर्दृश्यते, परं
विचार्यमाणा न तादृक् ।

ननु-प्रतिक्रमण पञ्चविधाचारशुद्धिनिमित्त क्रियते, यदुक्तं—
"पञ्चविहायारविसुद्धिहेउमिह साहु सावगो वा वि । पडिक्कमणं सह गुरुणा, गुरुविरहे कुणइ इक्कोवि ॥ २ ॥"
तत्र पञ्चविधाचारे कस्याऽऽचारस्य प्रतिक्रमणे केन सूत्रेण शुद्धिः स्यात्? इति, उच्यते-प्रतिक्रमणशब्द आवश्यकविशे-
षवाच्यपि अत्र सामान्ये आवश्यके रूढस्तथाऽऽवश्यकं षडध्ययनात्मकं तानि चाऽमूनि "सामाइयं चउवीसत्थउ वंदणयं
पडिक्कमण काउस्सग्गो पच्चक्खाणंति" एतेषां च षड्णां अधिकारा अमी यथाक्रमम्—
सावज्जजोगविरइ, १ उक्कित्तण २ गुणवओ—अपडिवत्ति ३ । खलिअस्स निंदणा ४ व णतिगिच्छा ५ गुणधारणा ६ चेव ॥ १ ॥
तत्र सामायिकेन चारित्राचारस्य शुद्धिः क्रियते १ चतुर्विंशतिस्तवेन दर्शनाचारस्य २ वन्दनकेन ज्ञानाद्याचाराणां ३
प्रतिक्रमणेन तेषामतिचाराऽपनयनरूपा ४ प्रतिक्रमणेनाऽशुद्धानां तदतिचाराणां कायोत्सर्गेण ५ तप आचारस्य प्रत्या-
ख्यानेन ६ वीर्याचारस्य पुनिः सर्वैरपि । उक्तं च—
"चरित्तस्स विसोही, कीरइ सामाइयेण किल इहयं । सावज्जे अरजोगाण वज्जणा सेवणत्तणउ ॥ १ ॥" दंसणयारवि-
सोही, चउवीसाइत्थ एण किज्जइ य । अच्चब्भुयगुणकित्तण, रूवेणं जिणवरिंदाणं ॥ २ ॥ नाणाईआ उ गुणा, तस्स पण्ण
पडिवत्तिकरणाओ । वंदणएण विहिणा, कीरइ सोही अ तेसिं तु ॥ ३ ॥ खलिअस्स य तेसिं पुणो, विहिणा जं निंद

येस्तु प्रतिक्रमणप्रान्ते क्रियते, तथा श्रीजिनवल्लभसूरिणा प्रतिक्रमणसामाचार्यां श्रीजिनप्रभसूरिणा च विधिप्रपायां देवसिकप्रतिक्रमणं देवसिकप्रायश्चित्तकायोत्सर्गपर्यन्तमेव लिखितं, तदानीं तत्प्रमाणस्य एव करणात्। अथ श्रीतरुणप्रभसूरिकृतषडावश्यकबालावबोधे प्रान्ततोऽग्रेतनः प्रतिक्रमणानुक्रमेण अनुक्रमो लिख्यते, तथाहि—ततो गीतार्थाऽऽधारणावशेन "इच्छाकारेण संदिसह भगवन् खुद्दोवद्दवओहडावणत्थं करेमि काउस्सग्गं अन्नत्थूससिएणं" इत्यादि भणित्वा कायोत्सर्गं करोति, तत्र चतुर्विंशतिस्तवचतुष्टयचिन्तनं पारिते चैकं चतुर्विंशतिस्तवं पठेत्, ततो जानुभ्यां स्थित्वा साधुः पौषधकः श्रावकश्च "सज्झाय संदिस्सावेमि सज्झायं करेमि" इति भणित्वा नमस्काराणां त्रयं पञ्चकं वा कथयेत्। ततः श्रीपार्श्वनाथसंबन्धि स्तोत्रं कथयेत्, ततः शक्रस्तवः "जावंति चेइआइं" इत्यादि भणित्वा क्षमाश्रमणदानपूर्वं 'जावंत केवि साहू नमोऽर्हत् सिद्धे'त्यादिकथनपूर्वकं श्रीपार्श्वनाथलघुस्तवनं भणित्वा जयवीरायेति पठति, ततो भूतलन्यस्तमस्तको मुखे मुखवस्त्रिकां दत्त्वा "सिरि-थंभणयट्ठियपाससामिणो" इत्यादि गाथायुगलं 'वंदणवत्तिआए' इत्याद्युक्तिपूर्वं कायोत्सर्गं कुर्यात्, तन्मध्ये चतुर्विंशतिस्तवचतुष्टयचिन्तनं पारिते चैकश्चतुर्विंशतिस्तवः। ततः क्षमाश्रमणदानेन "भट्टारकश्रीजिनदत्तसूरि-आराधनानिमित्तं करेमि काउस्सग्गं" इत्याद्युक्तिपूर्वं चतुर्विंशतिस्तवचतुष्टयकायोत्सर्गं करोति, पारिते चैकं, अस्मिन् देवसिकप्रतिक्रमणे विना पदस्थसाधुं सर्वैरेकीभूय प्रतिक्रमणं स्थापनीयं। अथ कदापि कोऽपि श्रावकादिः पश्चादागच्छति, तदा न शुध्यति तस्य तैः समं प्रतिक्रमणकरणं किंतु स तेभ्यः पृथग् भूत्वा करोति, प्रतिक्रमणं अथ मुख्यसाधुर्यदि वाचनाचार्यादिपदस्थो भवति, तदा आप्रतिक्रमणसूत्रं यावत् पश्चादप्यागच्छति। अथ केनाऽपि कारणेन

भवनवशात् देवा न वन्दिताः तदाऽपवादमार्गेण बृहत्स्तोत्रकथनसमये स वन्दते इति स्वगच्छप्रवृत्तिर्दृश्यते, परं विचार्यमाणा न तादृक् ।

ननु-प्रतिक्रमण पञ्चविधाचारशुद्धिनिमित्त क्रियते, यदुक्त—

"पञ्चविहायारविसुद्धिहेउमिह साहु सावगो वा वि । पडिक्कमणं सह गुरुणा, गुरुविरहे कुणइ इक्कोवि ॥ १ ॥"

तत्र पञ्चविधाचारे कस्याऽऽचारस्य प्रतिक्रमणे केन सूत्रेण शुद्धिः स्यात्? इति, उच्यते-प्रतिक्रमणशब्द आवश्यकविशेषवाच्यपि अत्र सामान्ये आवश्यके रूढत्वाच्चाऽऽवश्यक षडध्ययनात्मकं तानि चाऽमूनि "सामाइय चउवीसत्थउ वंदणय पडिक्कमण काउस्सग्गो पच्चक्खाणंति" एतेषा च षण्णां अधिकारा अमी यथाक्रमम्—

सावज्जजोगविरई, १ उक्कित्तिण २ गुणवओ-अपडिवत्ति ३ । खलिअस्स निंदणा ४ य विगिच्छा ५ गुणधारणा ६ चेव ॥ १ ॥

तत्र सामायिकेन चारित्राचारस्य शुद्धिः क्रियते १ चतुर्विंशतिस्तवेन दर्शनाचारस्य २ वन्दनकेन ज्ञानाद्याचाराणा ३ प्रतिक्रमणेन तेषामतिचाराऽपनयनरूपा ४ प्रतिक्रमणेनाऽशुद्धाना तदतिचाराणा कायोत्सर्गेण ५ तप आचारस्य प्रत्याख्यानेन ६ वीर्याचारस्य एभिः सर्वैरपि । उक्त च—

"चरित्तस्स विसोही, कीरइ सामाइयेण किल इह य । सावज्जे आरजोगाण वज्जणा सेवणत्तणउ ॥ १ ॥" दसणयारविसोही, चउवीसाइत्थ एण किज्जइ अ । अच्चुज्जयगुणकित्तण, रूवेणं जिणवरिंदाणं ॥ २ ॥ नाणाईआ उ गुणा, तस्स प्पन्नपडिवत्तिकरणाओ । वंदणएण विहिणा, कीरइ सोही अ तेसिं तु ॥ ३ ॥ खलिअस्स य तेसिं पुणो, विहिणा ज निंद-

येस्तु प्रतिक्रमणप्रान्ते क्रियते, तथा श्रीजिनवल्लभसूरिणा प्रतिक्रमणसामाचार्यां श्रीजिनप्रभसूरिणा च विधिप्रपाया
देवसिकप्रतिक्रमणं देवसिकप्रायश्चित्तकायोत्सर्गपर्यन्तमेव लिखित, तदानीं तत्प्रमाणस्य एव करणात्। अथ श्रीतरुण-
प्रभसूरिकृतषडावश्यकबालावबोधे प्रान्ततोऽमेतनः प्रतिक्रमणानुक्रमेण अनुक्रमो लिख्यते, तथाहि—ततो गीतार्थाऽऽचा-
रणावशेन "इच्छाकारेण संदिसह भगवन् खुद्दोवद्दवओहडावणत्थ करेमि काउस्सग्ग अन्नत्थूससिएण" इत्यादि भणित्वा
कायोत्सर्गं करोति, तत्र चतुर्विंशतिस्तवचतुष्टयचिन्तनं पारिते चैक चतुर्विंशतिस्तव पठेत्, ततो जानुभ्या स्थित्वा साधु
पौषधकः श्रावकश्च "सज्झायं संदिस्सावेमि सज्झाय करेमि" इति भणित्वा नमस्काराणा त्रय पञ्चक वा कथयेत् । तत
श्रीपार्श्वनाथसंबन्धि स्तोत्रं कथयेत्, ततः शक्रस्तव "जावंति चेइआइं" इत्यादि भणित्वा क्षमाश्रमणदानपूर्वं 'जावत केवि
साहू नमोऽर्हत् सिद्धे'त्यादिकथनपूर्वक श्रीपार्श्वनाथलघुस्तवन भणित्वा जयवीरायेति पठति, ततो भूतलन्यस्तमस्तको
मुखे मुखवस्त्रिकां दत्त्वा "सिरि–थंभणयट्ठियपाससामिणो" इत्यादि गाथायुगल 'वंदणवत्तिआए' इत्याद्युक्तिपूर्वं कायोत्सर्गं
कुर्यात्, तन्मध्ये चतुर्विंशतिस्तवचतुष्टयचिन्तन पारिते चैकश्चतुर्विंशतिस्तवः । ततः क्षमाश्रमणदानेन "भट्टारकश्रीजिन-
दत्तसूरि–आराधनानिमित्त करेमि काउस्सग्ग" इत्याद्युक्तिपूर्वं चतुर्विंशतिस्तवचतुष्टयकायोत्सर्गं करोति, पारिते चैक,
अस्मिन् देवसिकप्रतिक्रमणं विना पदस्थसाधु सर्वैरेकीभूय प्रतिक्रमण स्थापनीय। अथ कदापि कोऽपि श्राद्धादिः
पश्चादापतति, तदा न शुद्ध्यति तस्य तैः सम प्रतिक्रमणकरण किंतु स तेभ्यः पृथग् भूत्वा करोति, प्रतिक्रमण अथ
मुख्यसाधुर्यदि वाचनाचार्यादिपदस्थो भवति, तदा आप्रतिक्रमणसूत्रं यावत् पश्चादप्यापतति। अथ केनाऽपि चत्सूरता

दर्शनज्ञानातिचारविशुद्ध्यर्थं कायोत्सर्गत्रय करोति, प्रथमकायोत्सर्गे एक चतुर्विंशतिस्तव चिन्तयति, द्वितीयेऽप्येकं 'साय सयं गोसद्ध ति' वचनात् चिन्तयति, 'साये'ति अत्र अनुस्वारलोपः प्राकृतत्वात् कृतः। ततः साय-सन्ध्याया, प्रतिक्रमणे शत पादाना, तत्र श्लोकस्य चतुष्पादरूपत्वात् पञ्चविंशतिश्लोकानां चतुर्भिर्गुणने शत पादाना भवति। 'गोसे' ति प्राभातिकोद्द्योतकरद्वये अर्धं शतस्य भवति, पादानां पञ्चाशदित्यर्थः। इति श्रीप्रवचनसारोद्धारे (४३ पत्रे) १८५ गाथावृत्तौ। तृतीये तु निशातिचारान् चिन्तयति, इह पूर्वोक्तयुक्त्या चारित्रातिचारस्य ज्ञानाद्याचारेभ्यो वैशिष्ट्येऽपि यदेकस्यैव चतुर्विंशतिस्तवनचिन्तनं तद्रात्रौ प्रायोऽल्पव्यापारत्वेन चारित्रातिचाराणा स्वल्पत्वादिना सभाव्यते। ततः कायोत्सर्गं पारयित्वा सिद्धस्तवं पठित्वा सडासकप्रमार्जनपूर्वं उपविशति, उक्त च—

"उड्डिय करेइ विहिणा, उस्सग्गं चिंतए अ उज्जोअ। बीअ दंसणसुद्धीए चिंतए तत्थवि तमेव ॥ २६ ॥
तइए वि निसाइआरे, जहक्कम चिंतिऊण पारेइ। सिद्धत्थय पढित्ता, पमज्ज संडासमुववसइ ॥ २७ ॥"

ननु-प्रथमे चारित्राचारविशुद्धिकायोत्सर्गे निशातिचारचिन्तन कस्मान्न क्रियते? उच्यते-'निद्दामत्तो न सरइ' इत्यादि हेतुभिः, उक्त च—

"एत्थ पढमो चरित्ते, दसणसुद्धीए बीअओ होइ। सुअनाणस्स अ तइओ, नवर चिंतति अ तत्थ इम ॥१५२३॥" तइए निसाइयार" इत्यादि ततः पूर्वं च मुखवस्त्रिकादिप्रतिलेखनापूर्वं वन्दनकदानादिविधिं विधत्ते तावत् यावत् प्रतिक्रमणसूत्रानन्तरः कायोत्सर्गः। उक्तं च-"पुव्वं च पोत्तिपेहण, वंदणमालो अ सुत्तपढण च। वदणखामणवदण, गाहातिगपढणमु-

णाइ पडिक्कमणं । तेण पडिक्कमणेणं, तेसिं पि कीरई सोही ॥ ४ ॥ चरणाइआयाण, जइक्कम वणविगच्छरूवेण । पडि-
कमणा सुद्धाण, सोही तह काउसग्गेण ॥ ५ ॥ गुणधारणरूवेण, पच्चक्खाणेण तवइआरस्स । विरियायारस्स पुणो,
सव्वे हिं वि कीरए सोही ॥ ६ ॥" इति दैवसिक प्रतिक्रमण सहेतुक स्वसामाचारीक संपूर्ण ॥ १ ॥

इदानीं रात्रिप्रतिक्रमणानुक्रमः कोऽप्युच्यते, तथाहि–पाश्चात्यनिशायामे निद्रां परित्यज्य ईर्यापथिकीं प्रतिक्रम्य क्षमा-
श्रमणदानपूर्वं "कुसुमिण दुसुमिण राइपायच्छित्तविसोहणत्थ करेमि काउस्सग्गमि"त्यादि भणित्वा चतुर्विंशतिस्तव-
चतुष्कचिन्तनरूपं कायोत्सर्गं कुर्यात्, श्रावकस्तु सामायिकोच्चारपूर्वक कायोत्सर्गं करोति, एष च कायोत्सर्गो दैवसिकप्रा-
यश्चित्तविशोधनार्थं च संभाव्यते । इह च सर्वं श्रीदेवगुरुवन्दनपूर्वं सफलमिति चैत्यवन्दनां विधाय स्वाध्यायकायोत्सर्गादि-
धर्मव्यापारं विधत्ते, यावत्प्रामातिकप्रतिक्रमणवेला, तदनु चतुरादिक्षमाश्रमणैः प्रतिक्रमणं स्थापयति, क्षमाश्रमणचतुष्टय श्रीत-
रुणप्रभसूरिवचनप्रामाण्यात्, एव प्रथमक्षमाश्रमणेन श्रीआचार्यमिश्र १ द्वितीय क्ष० श्रीउपाध्यायमिश्र २ तृतीय क्ष० वर्तमा-
नगुरु श्रीअमुकसूरि ३ चतुर्थ क्ष० सर्वसाधु, ततो भूतलन्यस्तमस्तको मुखे मुखवस्त्रिका दत्त्वा 'सव्वस्सवि राइये'त्यादिसूत्र
सकलरात्रिकालाचारबीजकभूतं भणति, अत्राऽधिकारे 'इच्छाकारेण संदिसहे'ति पद न वाच्य, ततः शक्रस्तव पठति, उक्त च–

"एव ता देवसिअं, राइअमवि एवमेव नवरि तहिं । पढम दाउं मिच्छामि दुक्कड पढइ सक्कथय ॥ १ ॥"

इह च शक्रस्तवपाठेन संक्षेपदेववन्दन पूर्वं कृतवन्दनत्वेऽपि श्रीदेवभक्तिः सर्वत्र कार्या इति स्मरणार्थं इत्यादि कार-
णानि यथाऽऽगम स्वय भाव्यानि, ततो द्रव्यतो भावतश्च उत्थाय 'करेमि भंते सामाइयमि' त्यादि सूत्रपाठपूर्वं चारित्र-

॥ ४८ ॥ पडिकमिउ निस्सल्लो, वदित्ताण तओ गुरु । काउस्सग्ग तओ कुज्जा, सव्वदुक्खविमुक्खणं ॥ ४९ ॥ किं तव पडिवज्जामि ?, एव तत्थ विचिंतए । काउस्सग्ग तु पारित्ता, करिज्जा जिणसथव ॥ ५० ॥ पारियकाउस्सग्गो, वदित्ताण तओ गुरु । तव सपडिवज्जित्ता, करिज्ज सिद्धाण संथव ॥ ५१ ॥ पारिअकाउस्सग्गो वदिताण । तओ गुरू सपडिवजित्ता करिज्ज सिद्धाण सथव ॥ ५१ ॥" इति ॥

अथ पाक्षिक–चातुर्मासिक–सावत्सरिक–प्रतिक्रमणानुक्रमः कथ्यते, तत्र पाक्षिकप्रतिक्रमणमाचरणा चतुर्दश्या—तत्र साधवः सूक्ष्मबादरातिचारजातस्य विशोधनार्थं सदा दिवसनिशावसानेषु प्रतिक्रमण विदधाना अपि पक्षचतुर्माससवत्सरेषु विशेषेण प्रतिक्रमण कुर्वन्ति, उत्तरकरणविधानार्थं, तथाहि—यथा कश्चित् तैलादिभिः कृतवपु सस्कारोऽपि धूपविलेपनभूषणादिभि· उत्तरकरण विधत्ते, तथा साधवोऽपि शुद्धिविशेष कुर्वन्तीति । किं वा "जह गेह पइदिवस, पि सोहिओ तह वि पक्खसधीसु । सोहिज्जइ सविसेस, एव इहय पि नायव ॥ १ ॥" तथा नित्यप्रतिक्रमणे कश्चिदतिचारो विस्मृतः स्यात् स्मृतो वा भयादिना गुरुसमक्ष न प्रतिक्रान्त स्यात् परिणाममान्द्याद् असम्यक् प्रतिक्रान्तोच्चारणाद् अतः पाक्षिकादिषु त प्रतिक्रामन्ति । तत्र पाक्षिके पूर्ववत् दैवसिक प्रतिक्रमणसूत्रान्त श्रीतरुणप्रभसूरिवचनेन "वदामि जिणे चउवीसमि" ति पर्यन्त भणित्वा प्रथमक्षमाश्रमणेन इच्छाकारेण "सदिसह भगवन् पक्खियमुहपत्तिं पडिलेहेमि, चतुर्मासिके चउमासी मु०, सवच्छरिए संवच्छरिय मु०" इत्युक्त्वा द्वितीयक्षमाश्रमण दत्त्वा मुखवस्त्रिका प्रतिलेख्य वन्दनक दत्ते । अत्रान्तरे वृद्धसाधुः वक्ति—"पुण्यवन्तो देवसिने" स्थानके पाक्षिक–चातुर्मासिक–सांवत्सरिक भणिज्यो छींक राखज्यो

वमेऽध्ययने कोऽपि स्वल्पः प्रतिक्रमणानुक्रमः ( ५४० पत्रे ) प्रतिपादितो नाऽन्यत्र क्वाऽपि, तत्राऽपि साधुमुद्दिश्य न श्राद्ध । सांप्रत क्रियमाणप्रतिक्रमणानुक्रम इयान् विस्तर'—कोऽपि पूर्वधरादिप्राक्तनसूरिविनिर्मितग्रन्थानुसारी कोऽपि च स्वगच्छसमवायगम्य' । श्रीउत्तराध्ययने प्रतिक्रमणानुसारेण क्रम एव, तथाहि—

"पोरसिए चउब्भागे, वंदित्ता ण तओ गुरु । पडिक्कमित्ता कालस्स, सिज्जं तु पडिलेहए ॥ ३७ ॥ पासवणुच्चारभूमिं च, पडिलेहिज्ज जय जई । काउस्सग्ग तओ कुज्जा, सव्वदुक्खविमुक्खण ॥ ३८ ॥ देसिय च अईयार, चिंतिज्ज अणुपुव्वसो । नाणंमि दसणे चेव, चरित्तमि तहेव य ॥ ३९ ॥ पारियकाउस्सग्गो, वंदित्ता य तओ गुरु । देसिअ तु अइयारं, आलोइज्ज अहक्कम ॥ ४० ॥ पडिक्कमित्ताण निस्सल्लो, वंदित्ताण तओ गुरु । काउस्सग्ग तओ कुज्जा, सव्वदुक्खविमुक्खण ॥ ४१ ॥ सिद्धाण संथवं किच्चा, वंदित्ताण तओ गुरु । थुईमगल च काऊण, काल सपडिलेहए ॥ ४२॥"

इति दैवसिकप्रतिक्रमणानुक्रमः ।

"पढमं पोरिसिं सज्झाय, बीअ झाणं झियायई । तईयाए निद्दमुक्ख तु, चउत्थी भुज्जोवि सज्झाय ॥ ४३ ॥ पोरिसीए चउत्थीए, काल तु पडिलेहए । सज्झाय तु तओ कुज्जा, अबोहतो असंजए ॥ ४४ ॥ पोरिसीए चउब्भाए, वंदित्ता ण तओ गुरु । पडिक्कमित्तु कालस्स, काल तु पडिलेहए ॥ ४५ ॥ आगए कायवुस्सग्गे, सव्वदुक्खविमुक्खणे । काउस्सग्ग तओ कुज्जा, सव्वदुक्खविमुक्खणं ॥ ४६ ॥ राईय च अईयार, चिंतिज्ज अणुपुव्वसो । नाणमि दंसणमि अ, चरित्तमि तवमि अ ॥ ४७ ॥ पारिअकाउस्सग्गो, वंदित्ताण तओ गुरु । राईय तु अईयारं, आलोइज्ज अहक्कमं

मणेण अब्भुट्ठिओमि अब्भिंतर पक्खिय—चउम्मासिअं—संवच्छरिअं वा खामेमि" इत्यादि, ततो वन्दनकद्वय ददाति, ततो "देवसिअं आलोइअ पडिक्कंतं पक्खिअं—चाउम्मासिअ—संवच्छरिअं वा पडिक्कमावेह" गुरुर्ब्रूते "सम्म पडिक्कमह त्ति ।" तत इच्छमिति भणित्वा यः पाक्षिकसूत्र भणति स सामायिकसूत्र "इच्छामि पडिक्कमिउ जो मे पक्खिओ चउम्मासिओ संवच्छरिओ अइयारो कओ" इत्यादि सूत्र भणित्वा एकक्षमाश्रमणेन "पक्खियसुत्त संदिसावेमि द्वि० क्षमा० पक्खियसुत्त कड्ढेमि त्ति" भणित्वा नमस्कारत्रय पठित्वा पाक्षिकसूत्र पठति । ये च साधुश्रावका शृण्वन्ति ते तदा किं कुर्युरित्याह— सामायिकसूत्र उत्सर्गसूत्र तस्सुत्तरीसूत्र च पठित्वा कायोत्सर्गं कुर्वन्ति, कायोत्सर्गकरणशक्त्यभावे उपविष्टा अपि शृण्वन्ति, पर प्रान्ते सर्वेऽप्युत्थाय कायोत्सर्गं कुर्वन्ति । यदुक्त श्रीविधिप्रपाया, तथाहि–"वदण दाऊ भणइ देवसिअ आलोइअ पडिक्कत पक्खिय पडिक्कमावेह, तओ गुरुणा सम्म पडिक्कमहेति भणिय सामाइयसुत्त उस्सग्गसुत्त च भणिय खमासमणेण पक्खियसुत्त सदिसावेमि पुणो खमासमणेण पक्खियसुत्त कड्ढेमि त्ति भणितवा नमुक्कारतिग कड्ढिय पक्खियसुत्त भणइ जे य सुत्त सुणति ते उस्सग्गसुत्ताणतरं तस्सुत्तरीकरणेणं ति दडग कड्ढिय काउस्सग्गे ठति" इति । तरुणप्रभसूरिकृतबालावबोधे तु ये कायोत्सर्गं कृत्वा शृण्वन्ति तेषामयमेवाऽनुक्रम प्रोक्तोऽस्ति, अथ च यः सूत्र भणति तस्य कर्तव्यताऽनुक्रमो न उक्तोऽस्ति । अथ ये श्राद्धाः श्रीगुरु विना प्रतिक्रामन्ति ते तु एव कुर्वन्ति, तथाहि—एकः श्रावकः श्रीस्थापनाचार्याग्रे समागत्य एकक्षमाश्रमणदानेन वक्ति इच्छाकारेण "सदिसह भगवन् सूत्र सदिसाहु" गुर्वोक्ति "सदिसावेह" पुनर्द्वि० क्ष० भगवन् सूत्रं कढु, गुर्वोक्ति भणहे ति, तत इच्छमिति भणित्वा ऊर्ध्वीभूय हस्तद्वय सयोज्य मुखे मुखवस्त्रिका

मधुरस्वरे पडिक्कमज्यो, अन्ये भणन्ति तदपि, इदं वार्तिकवाक्य गच्छप्रवृत्त्या कथ्यमानमस्ति, पर विधिप्रपावरूणप्रभसूरि-बालावबोधादौ लिखित नाऽस्ति। तत सबुद्धान् श्रीगुर्वादीन् क्षमयितु क्षमाप्रधान च सर्वमनुष्ठान मफलमिति ज्ञापयितु "संबुद्धा खामणेण अब्भुट्ठिओह अब्भितरपक्खिय खामेमि" चातुर्मासिकप्रतिक्रमणे "चाउम्मासिअ खामेमि" सांवत्सरिक-प्रतिक्रमणे "संवच्छरिअं खामेमि" इति पाठमूर्ध्वस्थित एव मस्तके हस्तद्वय निवेशयन् कथयित्वा ततो जानुभ्या स्थित्वा भूतलन्यस्तमस्तको मुखे मुखवस्त्रिका दत्त्वा पाक्षिकप्रतिक्रमणे "पन्नरसण्ह राइंण"मित्यादि, चातुर्मासिकप्रतिक्रमणे "चउण्ह मासाण"मित्यादि, सांवत्सरिकप्रतिक्रमणे "दुवालसण्ह मासाण"मित्यादिपाठेन श्रीगुर्वादीन् क्षमयति। तत्र पाक्षिके त्रीन्, चातुर्मासिके पञ्च, सांवत्सरिके सप्त क्षामणकानि कार्याणि, पर त्रिषु अपि स्थानेषु साधुद्वय शेष रक्षणीय। अत्र श्रीआ-वश्यकबृहद्वृत्तिः ( ७९४ पत्रे )—

"एव सेसाणवि साहूण खामणावंदण करेंति, अह विआलो वाघाओ वा ताहे सत्तण्ह पचण्ह तिण्ह वा, पच्छा देवसिअ पडिक्कमंति" इति, तत उत्थाय इच्छाकारेण "संदिसह भगवन् पक्खिय चउम्मासिअ संवच्छरिअ वा आलोएमि इच्छं आलो एमि जो मे पक्खिओ जो मे चउमासिओ जो मे संवच्छरिओ वा" इत्यादि सूत्र भणित्वा संक्षेपेण विस्तरेण वा पाक्षिकान् चातुर्मासिकान् सांवत्सरिकान् वाऽतिचारा नालोचयति "सव्वस्स वि पक्खिय चउम्मासिअ संवच्छरिअ" इत्यादि भणित्वा उपवासादिरूप प्रायश्चित्तं प्रतिपद्यते, अत्र गच्छप्रवृत्त्या गुरुर्वक्ति—"चउत्थेण छट्ठेणं अट्ठमेण वा पडिक्कमह" इति ततो वन्दनकदानपूर्वकं प्रत्येक क्षामणकानि कुरुते, तत्पाठस्तरुणप्रभसूरिणोक्तो यथा—"देवसिअआलोइअ पडिक्कंत प्रत्येकखा-

मणेण अब्भुट्ठिओमि अब्भिंतर पक्खिय—चउम्मासिअ—संवच्छरिअ वा खामेमि" इत्यादि, ततो वन्दनकद्वय ददाति, ततो
"देवसिअं आलोइअ पडिक्कंत पक्खिअ—चाउम्मासिअ—संवच्छरिअ वा पडिक्कमावेह" गुरुर्ब्रूते "सम्म पडिक्कमह त्ति ।" तत
इच्छमिति भणित्वा यः पाक्षिकसूत्र भणति स सामायिकसूत्र "इच्छामि पडिक्कमिउ जो मे पक्खिओ चउम्मासिओ
संवच्छरिओ अइयारो कओ" इत्यादि सूत्र भणित्वा एकक्षमाश्रमणेन "पक्खियसुत्त सदिसावेमि द्वि० क्षमा० पक्खियसुत्त
कड्ढेमि त्ति" भणित्वा नमस्कारत्रय पठित्वा पाक्षिकसूत्र पठति । ये च साधुश्रावका शृण्वन्ति ते तदा किं कुर्युरित्याह—
सामायिकसूत्र उत्सर्गसूत्र तस्सुत्तरीसूत्र च पठित्वा कायोत्सर्ग कुर्वन्ति, कायोत्सर्गकरणशक्त्यभावे उपविष्टा अपि
शृण्वन्ति, पर प्रान्ते सर्वेऽप्युत्थाय कायोत्सर्ग कुर्वन्ति । यदुक्त श्रीविधिप्रपाया, तथाहि—"वदण दाऊ भणइ देवसिअ आलो-
इअ पडिक्कत पक्खिय पडिक्कमावेह, तओ गुरुणा सम्म पडिक्कमहेति भणिय सामाइयसुत्त उस्सग्गसुत्त च भणिय खमासम
णेण पक्खियसुत्त सदिसावेमि पुणो खमासमणेण पक्खियसुत्त कड्ढेमि त्ति भणित्वा नमुक्कारतिग कड्ढिय पक्खियसुत्त भणइ
जे य सुत्त सुणति ते उस्सग्गसुत्ताणतरं तस्सुत्तरीकरणेण ति दडग कड्ढिय काउस्सग्गे ठति" इति । तरुणप्रभसूरिकृत-
बालावबोधे तु ये कायोत्सर्ग कृत्वा शृण्वन्ति तेषामयमेवाऽनुक्रमः प्रोक्तोऽस्ति, अथ च य' सूत्र भणति तस्य कर्तव्य-
ताऽनुक्रमो न उक्तोऽस्ति । अथ ये श्राद्धा श्रीगुरु विना प्रतिक्रामन्ति ते तु एव कुर्वन्ति, तथाहि—एक श्रावकः श्रीस्था-
पनाचार्याग्रे समागत्य एकक्षमाश्रमणदानेन वक्ति इच्छाकारेण "सदिसह भगवन् सूत्र सदिसाहुं" गुरुर्वक्ति "सदिसावेह"
पुनर्द्वि० क्ष० भगवन् सूत्रं कढु, गुरुर्वक्ति भणहे ति, तत इच्छमिति भणित्वा ऊर्ध्वीभूय हस्तद्वय सयोज्य मुखे मुखवस्त्रिका

दत्त्वा नमस्कारत्रय कथयित्वा मधुरस्वरेण व्यक्ताक्षर सावधानचित्त' सूत्रार्थं मनसि चिन्तयन् यदित्तुसूत्र गुणयति श्रोतारश्च पूर्वोक्तविधिना कायोत्सर्गं कृत्वा शृण्वन्ति । ततः सूत्रसमाप्तौ नमस्कारेण पारयित्वा सर्वेऽप्यूर्ध्वं स्थित्वैव नमस्कारत्रय पठित्वा उपविश्य नमस्कारत्रय-सामायिकसूत्रत्रयपूर्वं, "इच्छामि पडिक्कमिउ जो मे पक्खिओ अइयारो कओ" इत्यादि-दण्डक पठित्वा, साधुः साधुप्रतिक्रमणसूत्र, श्राद्धः श्राद्धप्रतिक्रमणसूत्र भणति । श्रावकस्तु एको गुर्वादेशेन कथयति अन्ये शृण्वन्तीति गच्छप्रवृत्ति', तत उत्थाय "अब्भुट्ठिओमि आराहणाए" दण्डक पठित्वा क्षमाश्रमणदानेन कथयति "इच्छाकारेण संदिसह भगवन् मूलगुण-उत्तरगुणातिचारविशुद्धिनिमित्त करेमि काउस्सग्ग", गुरुर्ब्रूते "करेह तत इच्छ करेमि भते इच्छामि ठामि काउस्सग्ग अन्नत्थूससिएण" मित्यादि भणित्वा प्रतिक्रमणेन न शुद्धाना अतिचाराणा विशुद्ध्यर्थं द्वादशचतुर्विंशतिस्तवचिन्तनरूप कायोत्सर्गं कुर्यात् । चातुर्मासिके कायोत्सर्गे विंशतिचतुर्विंशतिस्तवचिन्तन कुर्यात्, तथा सांवत्सरिके कायोत्सर्गे च चत्वारिंशच्चतुर्विंशतिस्तवान् नमस्कारमेकमधिक च चिन्तयेत्, तत पारयित्वा चतुर्विंशतिस्तवमेक कथयित्वा उपविश्य मुखवस्त्रिका प्रतिलेख्य वन्दनकद्वय दत्त्वा, इच्छाकारेण संदिसह भगवन् समत्तखामणेणं अब्भुट्ठिओमि अब्भिंतर पक्खिय चउमासियं संवच्छरिय खामेउ इत्यादिना समाप्तक्षामणक विधत्ते, अत्र गच्छप्रवृत्त्या गुरुर्वक्ति पुण्यवन्त त्रीणि त्रीणि नमस्कार कही च्यार खमासमण देइ पक्खिय चउमासिय संवच्छरिय खामणा खामह, तत साधवः क्षामणासूत्रालापकैः वारचतुष्टय क्षामयन्ति । श्राद्धस्तु चतुर्भिश्छोभवन्दनैः भूतलन्यस्तमस्तको वारचतुष्टयं त्रीन् त्रीन् नमस्कारान् भणति, उक्तं च हेतुगर्भे—

"सुय अब्भुट्ठाणं, उस्सग्गो पुत्तिवंदण तह य । पज्जंते अ खामणय, तह चउरो छोमवंदणाया ॥ १ ॥"

तदन्ते गुरवो भणन्ति 'नित्थारगपारगाहोह'त्ति ततः सर्वे भणन्ति 'इच्छ इच्छामो अणुसट्ठिं' इति हेतुगर्भे । तरुणप्रभसूरिबालावबोधे तु पूर्वं सर्वेऽपि 'इच्छामो अणुसट्ठिं'मिति भणन्ति, ततो गुरुर्ब्रूते 'नित्थारगपारगाहोह'त्ति । अत्रान्तरे इद 'पाखीनइ लेखइ' इत्यादिकं वाक्यं श्रीतरुणप्रभसूरिबालावबोधविधिप्रपादौ लिखितं नाऽस्ति, तथापि आचारदिनकरे लिखितमस्ति, तथाहि—"पाखिनइ एक उपवासु अथवा बी आंबिल अथवा तिण्ह नीवी च्यार एकासणां अथवा वीसहस्ससज्झाय एतलइ तपश्चर्याणि करी यथा शक्ति पक्षदिवसमाहे प्रवेश करिज्यो, ततो गुरुर्ब्रूते पुण्यवन्तो पाखिने लेखइ एक उपवास बी—आंबिल तिण्हि नीवी च्यार एकासणा अथवा वीसहस्ससज्झाय करी एक उपवासलउ पूरपूरिज्यो, पाखिनइ थानके देवसिक भणिज्यो, ततः सर्वेऽपि भणन्ति तहत्ति । चातुर्मासिकप्रतिक्रमणे एतत्सर्वं द्विगुण वाच्यं, सांवत्सरिकप्रतिक्रमणे त्रिगुण वाच्य, परमेतद्वार्तिकविधिः तरुणप्रभसूरिकृतबालावबोधादौ लिखितो नाऽस्ति, ततो वन्दनकं दत्त्वा दैवसिकप्रतिक्रमण पूर्ववत्कार्यं, नवरं भवनदेवतास्तुतिरधिका कथ्यते, तत्र हेतुगर्भे हेतुर्यथा—क्षेत्रदेवतायाः प्रत्यह स्मृतौ भवनस्य क्षेत्रान्तरगतत्वेन भवनदेव्या अपि स्मृति कृतैव, तथापि पर्वदिने तस्या अपि बहुमानार्हत्वात् कायोत्सर्गं साक्षात् क्रियते, पाक्षिकादिपर्वत्रयेऽपि । विधिप्रपाया तु प्रोक्त "संवच्छरिए भवणदेवया काउस्सग्गो न कीरइ न य थुई, असज्झाइ काउस्सग्गो वि न कीरइ" इति । पर्वत्रयेऽपि गुरुणा वर्धमानस्तुतित्रये कथिते चाऽन्ये वर्धमानस्तुतिं भणन्ति । श्रीखरतरगच्छे सति तद्गोत्रीयादिश्रावके जयतिहुयणनमस्कार बोहित्थरागोत्रीयः

दत्त्वा नमस्कारत्रय कथयित्वा मधुरस्वरेण व्यक्ताक्षर सावधानचित्तः सूत्रार्थं मनसि चिन्तयन् वंदित्तुसूत्र गुणयति श्रोतारश्च पूर्वोक्तविधिना कायोत्सर्गं कृत्वा शृण्वन्ति । ततः सूत्रसमाप्तौ नमस्कारेण पारयित्वा सर्वेऽप्यूर्ध्वं स्थित्वैव नमस्कारत्रय पठित्वा उपविश्य नमस्कारत्रय–सामायिकसूत्रत्रयपूर्वं, "इच्छामि पडिक्कमिउ जो मे पक्खिओ अइयारो कओ" इत्यादिदण्डक पठित्वा, साधुः साधुप्रतिक्रमणसूत्र, श्राद्धः श्राद्धप्रतिक्रमणसूत्र भणति । श्रावकस्तु एको गुर्वादेशेन कथयति अन्ये शृण्वन्तीति गच्छप्रवृत्तिः, तत उत्थाय "अब्भुट्ठिओमि आराहणाए चि" दण्डक पठित्वा क्षमाश्रमणदानेन कथयति "इच्छाकारेण संदिसह भगवन् मूलगुण–उत्तरगुणातिचारविशुद्धिनिमित्त करेमि काउस्सग्ग", गुरुर्ब्रूते "करेह तत इच्छं करेमि भंते इच्छामि ठामि काउस्सग्गं अन्नत्थूससिएण" मित्यादि भणित्वा प्रतिक्रमणेन न शुद्धाना अतिचाराणा विशुद्ध्यर्थं द्वादशचतुर्विंशतिस्तवचिन्तनरूप कायोत्सर्गं कुर्यात् । चातुर्मासिके कायोत्सर्गे विंशतिचतुर्विंशतिस्तवचिन्तन कुर्यात्, तथा सांवत्सरिके कायोत्सर्गे च चत्वारिंशच्चतुर्विंशतिस्तवान् नमस्कारमेकमधिक च चिन्तयेत्, तत पारयित्वा चतुर्विंशतिस्तवमेक कथयित्वा उपविश्य मुखवस्त्रिकां प्रतिलेख्य वन्दनकद्वय दत्त्वा, इच्छाकारेण संदिसह भगवन् समत्तखामणेण अब्भुट्ठिओमि अब्भिंतर पक्खिय चउमासिय संवच्छरिय खामेउ इत्यादिना समाप्तक्षामणक विधत्ते, अत्र गच्छप्रवृत्त्या गुरुर्वक्ति पुण्यवन्त त्रीणि त्रीणि नमस्कार कही च्यार खमासमण देइ पक्खिय चउमासिय संवच्छरिय खामणा खामह, ततः साधव क्षामणासूत्रालापकैः वारचतुष्टयं क्षामयन्ति । श्राद्धस्तु चतुर्भिश्छोभवन्दनैः भूतलन्यस्तमस्तको वारचतुष्टय त्रीन् त्रीन् नमस्कारान् भणति, उक्त च हेतुगर्भे—

दुगइ आवस्सिय करिअ साहुव ववत्तो निज्जीवथंडिले गतुं अणुजाणइ–जस्सावग्गहोत्ति भणिऊण दिसिपवणगामसूरियाए समयविहिणा उच्चारपासवणे वोसिरिअ फासुअजलेण आयमिय पोसहसालाए आगतूण निसिहीआइ पुव पविसिअ इरियावहियं पडिक्कमिअ खमासमणपुव भणति, इच्छाकारेण संदिसह भगवन् गमणागमण आलोयह इच्छ आवस्सिअ करिअ अवरदक्खिणप्पमुहदिसाए गच्छिअ दिसालोअ करिअ सडासए थंडिल घ पडिलेहिअ उच्चारपासवण वोसिरिअ निसीहिअ करिअ पोसहसाल पविट्ठा आवतजतेहिं ज खडिअ ज विराहिअ तस्स मिच्छामि दुक्कड", तओ सज्झाय ताव करेइ जाव पच्छिमपहरो जाए अ, तम्मि खमासमणपुव पडिलेहण करेमि, पुणो पोसहसाल पमज्जेमि त्ति पुव च अग पडिलेहण काऊ पोसहसाल दडपुच्छणेण पमज्जिअ कज्जेअ उद्धरिअ परिट्ठविअ इरिय पडिक्कमिअ ठवणायरिअ पडिलेहिअ ठवेइ । तओ गुरुसमीवे ठवणायरीय समीवे वा खमासमणदुगेण मुहपोत्तिं पडिलेहिअ पढमखमासमणे इच्छाकारेण संदिसह भगवन् सज्झाय संदिसावेमि बीअ, खमासमणे सज्झाय करेमि त्ति भणिअ सज्झाय वदणय दाऊण गुरुसक्खिय पच्चक्खाइ, तओ खमासमणदुगेण ववहि थंडिलपडिलेहण संदिसावीय ववहि पडिलेहण करेमि खमासमणदुगेण वइसण संदिसावेमि वइसण ठाएमि त्ति भणिय वत्थकमलाइ पडिलेहेइ । इत्थ जो अभत्तट्ठी स सवोवहि पडिलेहाणतर कडिपट्टय पडिलेहेइ, जो पुण भत्तट्ठी सो कडिपट्टय पडिलेहिअ, ववहिं पडिलेहि इति विसेसो । तओ सज्झाय ताव करेइ जाव कालवेला, आयाए अतीए उच्चारपासवण थंडिले चउवीस पडिलेहिअ, जइ तम्मि दिणे चउद्दसीए पक्खियं चाउम्मासं

तत्र भवसिन्धुकुलगुरुपादमूले द्वादशावर्तवन्दना दियइ, शक्तिसंभवइ चउविहार उपवास प्रत्याख्यान करइ, शक्ति असंभवइ सुगुरूपदिष्टतिविहारोपवास प्रत्याख्यान करइ, पछे एक खमासमणे इच्छाकारेण संदिसह भगवन् बहुवेल संदिसावेमि भणी । बीय खमासमणे भगवन् बहुवेल करेमि पाछइ एक खमासमणे इच्छाकारेण संदिसह भगवन् सज्झाय संदिसावेमि ३ चउत्थ खमासमणे इच्छाकारेण संदिसह भगवन् सज्झाय करेमि इसु भणि ४ पाचमइ खमासमणे इच्छा० सं० भ० बइसण संदिसावेमि ५ छट्ठइ खमासमणे इच्छा० सं०, भ० बइसण ठाएमि इसु भणइ ६ पछइ उपधान तप तणउ द्वादशावर्त्त वादणा देइ करी मुहपत्ति मुखे देइ करी मधुरस्वरइ सज्झाय करइ इति । तओ जायाए पऊण पोरिसिए खमासमणदुगेण पडिलेहण संदिसाविअ मुहपत्तिं य पडिलेहिय भोयणपाणभायणाइ पडिलेहइ, तओ पुणो सज्झाय करेइ जाव कालवेला ताहे आवस्सिआइ पुव्वं चेइहरे गतु देवे वदेइ, उवहाणवाही पुण पचहिं सक्कत्थएहिं देवे वदेइ तओ जइ पारणाइ तओ पच्चक्खाणे पुव्वं खमासमणदुगपुव्व मुहपत्तिं पडिलेहिअ भणइ भातपाणी पारावेह उवहाणी नवकारसहिओ चउविहारो इयरो भणइ पोरिसो पुरिमड्ढो वा तिविहाहारं चउविहाहार वा एकासण नीवी आंबिल वा जाव काइवेलातीए भत्तपाणं परावेमित्ति, तओ सक्कत्थय भणिय खण सज्झाय च काऊ जहा संभव अतिहिसंविभाग काऊ मुह हत्थे पडिलेहिअ नमुक्कारपुव्व अरत्त दुट्ठो असुरसुर अचवचव अदुअम विलविअ अपरिसाडिअ जेमेइ, त पुण निअघरे अहाप्पवत्त फासुअति पोसहसालाए वा पुव्वसंदिट्ठसयणोवणीयं न य भिक्ख हिंडइ, तओ आसणाओ अचलिओ चेव दिवसचरिमं पच्चक्खइ तओ इरियावहिय पडिक्कमिअ सक्कत्थय भणइ, जइ पुण सरीरचिंताए अट्ठो तो नियमा

वुग्गइ आवस्सिय करिअ साहुव उवउत्तो निज्जीवथडिले गंतु अणुजाणह—जस्सावग्गहोत्ति भणिऊण दिसिपवणगामसूरियाए समयविहिणा उच्चारपासवणे वोसिरिअ फासुअजलेण आयमिय पोसहसालाए आगतूण निसिहीआइ पुव्व पविसिअ इरियावहिय पडिक्कमिअ खमासमणपुव्व भणति, इच्छाकारेण संदिसह भगवन् गमणागमण आलोयह इच्छं आवस्सिअ करिअ अवरदक्खिणप्पमुहदिसाए गच्छिअ दिसालोअ करिअ सडासए थडिल च पडिलेहिअ उच्चारपासवण वोसिरिअ निसीहिअ करिअ पोसहसाल पविट्ठा आवतजंतेहिं ज खडिअ ज विराहिअ तस्स मिच्छामि दुक्कड", तओ सज्झाय ताव करेइ जाव पच्छिमपहरो जाए अ, तम्मि खमासमणपुव्व पडिलेहण करेमि, पुणो पोसहसाल पमज्जेमि त्ति पुव्व च अग पडिलेहण काऊ पोसहसाल दडपुच्छणेण पमज्जिअ कज्जेअ उद्धरिअ परिट्ठविअ इरिय पडिक्कमिअ ठवणायरिअ पडिलेहिअ ठवेइ। तओ गुरुसमीवे ठवणायरीय समीवे वा खमासमणदुगेण मुहपोत्तिं पडिलेहिअ पढमखमासमणे इच्छाकारेण सदिसह भगवन् सज्झाय सदिसावेमि बीअ, खमासमणे सज्झायं करेमि त्ति भणिअ सज्झाय वदणयं दाऊण गुरुसक्खिय पच्चक्खाइ, तओ खमासमणदुगेण उवहि थडिलपडिलेहण सदिसावीय उवहि पडिलेहण करेमि खमासमणदुगेण बइसण सदिसावेमि बइसण ठाएमि त्ति भणिय वत्थकबलाइ पडिलेहेइ। इत्थ जो अभत्तट्ठी स सव्वोवहि पडिलेहाणतर कडिपट्टय पडिलेहेइ, जो पुण भत्तट्ठी सो कडिपट्टय पडिलेहिअ, उवहिं पडिलेहि इति विसेसो। तओ सज्झाय ताव करेइ जाव कालवेला, जायाए अतीए उच्चारपासवण थडिले चउवीसं पडिलेहिअ, जइ तम्मि दिणे चउद्दसीए पक्खियं चाउम्मासं

तउ भवसिन्धुकुलगुरुपादमूले द्वादशावर्तवन्दना दियइ, शक्तिसभवइ चउविहार उपवास प्रत्याख्यान करइ, शक्ति असंभवइ सुगुरूपदिष्टतिविहारोपवास प्रत्यास्यान करइ, पछे एक खमासमणे इच्छाकारेण सदिसह भगवन् बहुवेल सदिसावेमि भणी । बीय खमासमणे भगवन् बहुवेल करेमि पाछइ एक खमासमणे इच्छाकारेण सदिसह भगवन् सज्झाय संदिसावेमि ३ चउत्थ खमासमणे इच्छाकारेण संदिसह भगवन् सज्झाय करेमि इसु भणि ४ पाचमइ खमासमणे इच्छा० स० भ० बइसण संदिसावेमि ५ छठ्ठइ खमासमणे इच्छा० स०, भ० बइसण ठापमि इसु भणइ ६ पछइ उपधान तप तणउ द्वादशावर्त वादणा देइ करी मुहपत्ति मुखे देइ करी मधुरस्वरइ सज्झाय करइ इति । तओ जायाए पऊण पोरिसिए खमासमणदुगेण पडिलेहण संदिसाविअ मुहपत्ति य पडिलेहिय भोयणपाणभायणाइ पडिलेहइ, तओ पुणो सज्झायं करेइ जाव कालवेला ताहे आवस्सिआइ पुव्वं चेइहरे गतु देवे वदेइ, उवहाणवाही पुण पचहिं सक्कत्थएहिं देवे वदेइ तओ जइ पारणाइ तओ पच्चक्खाणे पुन्ने खमासमणदुगपुव्व मुहपत्ति पडिलेहिअ भणइ भातपाणी पारावेह उवहाणी नवकारसहिओ चउविहारो इयरो भणइ पोरिसो पुरिमड्ढो वा तिविहाहार चउविहाहार वा एकासण नीवी आबिल वा जाव काइवेलातीए भत्तपाण परावेमित्ति, तओ सक्कत्थय भणिय खण सज्झाय च काऊ जहा सभव अतिहिसंविभाग काऊ मुह हत्थे पडिलेहिअ नमुक्कारपुव्व अरत्त दुट्ठो असुरसुर अचवचव अदुअम विलविअ अपरिसाडिअ जेमेइ, त पुण निअघरे अहाप्पवत्त फासुअति पोसहसालाए वा पुव्वसंदिट्ठसयणोवणीय न य भिक्ख हिंडइ, तओ आसणाओ अचलिओ चेव दिवसचरिमं पच्चक्खइ तओ इरियावहिय पडिक्कमिअ सक्कत्थय भणइ, जइ पुण सरीरचिंताए अट्ठो तो नियमा

चुग्गइ आयस्सिय करिअ साहुष रवरत्तो निञ्जीवथडिले गंतु अणुजाणह—जस्सावग्गहोत्ति भणिऊण दिसिपवणगामसूरियाए समयविहिणा उच्चारपासवणे वोसिरिअ फासुअजलेण आयमिय पोसहसालाए आगतूण निसिहीआइ पुव पविसिअ इरियावहियं पडिक्कमिअ खमासमणपुव भणति, इच्छाकारेण संदिसह भगवन् गमणागमण आलोयह इच्छ आवस्सिअ करिअ अवरदक्खिणप्पमुहदिसाए गच्छिअ दिसालोअ करिअ संडासए थडिल च पडिलेहिअ उच्चारपासवण वोसिरिअ निसीहिअ करिअ पोसहसाल पविट्ठा आवतजतेहिं ज खडिअ जं विराहिय तस्स मिच्छामि दुक्कड", तओ सज्झाय ताव करेइ जाव पच्छिमपहरो जाए अ, तम्मि खमासमणपुव पडिलेहण करेमि, पुणो पोसहसाल पमज्जेमि त्ति पुव च अग पडिलेहण काऊ पोसहसाल दडपुच्छणेण पमज्जिअ कज्जेअ उद्धरिअ परिट्ठविअ इरिय पडिक्कमिअ ठवणायरिअ पडिलेहिअ ठवेइ । तओ गुरुसमीवे ठवणायरीय समीवे वा खमासमणदुगेण मुहपोत्तिं पडिलेहिअ पढमखमासमणे इच्छाकारेण सदिसह भगवन् सज्झाय सदिसावेमि बीअ, खमासमणे सज्झाय करेमि त्ति भणिअ सज्झाय वदणय दाऊण गुरुसक्खिय पच्चक्खाइ, तओ खमासमणदुगेण उवहि थडिलपडिलेहण संदिसावीय उवहि पडिलेहण करेमि खमासमणदुगेण वइसण सदिसावेमि वइसण ठाएमि त्ति भणिय वत्थकम्बलाइ पडिलेहेइ । इत्थ जो अभत्तट्ठी स सव्वोवहि पडिलेहणाणंतरं कडिपट्टय पडिलेहेइ, जो पुण भत्तट्ठी सो कडिपट्टय पडिलेहिअ, उवहिं पडिलेहि इति विसेसो । तओ सज्झायं ताव करेइ जाव कालवेला, जायाए अतीए उच्चारपासवण थडिले चउवीस पडिलेहिअ, जइ तम्मि दिणे चउद्दसीए पक्खियं चाउम्मासं

प्रपचः श्रीजिनवल्लभसूरिविरचितपौषधविधिप्रकरणादवसेयः । तया अत्र श्रीतरुणप्रभसूरिबालावबोधे पूर्वं परिधान प्रतिलेख्यः पश्चात् स्थापनाचार्य प्रतिलेखयतीत्युक्त, अत्र च विधिप्रपाया स्थापनाचार्य प्रतिलेख्य पश्चात् परिधान प्रतिलेखयतीत्युक्त १ तथा 'इयरो भणइ' इत्यत्र उपधानपौषध विना पौषधमध्ये भक्तपानीयपारणविधिरुक्त २ तथा तृतीयप्रहरप्रतिलेखनायां स्थापनाचार्यप्रतिलेखनानन्तर श्रावकैस्तु साधुवत् स्वाध्यायकरण उपदिष्ट ३ पुन तत्रैव स्वाध्यायानन्तर प्रत्याख्याननिमित्त वन्दनकदान पौषधिकस्य प्रतिपादित ४ तथा तरुणप्रभसूरिबालावबोधे प्रोक्तमिद, यदुत श्रावको गोदोहनवेलायां साधुसमीपे समागत्य १ अगप्रतिलेखना १ वस्त्रप्रतिलेखना २ उच्चारभूमिप्रतिलेखना ३ च कृत्वा ईर्यापथिकीं प्रतिक्रम्य पश्चात् पौषध करोति इति, तत्र रात्रौ कथ तेषा त्रयाणा प्रतिलेखना शुद्ध्यति ? तथा प्रवृत्तिरपि नो दृश्यते ५ तथा सायमप्रतिलेखितोऽपकरणैः पाश्चात्यरात्रौ पौषधकरण निगदितम् ६ इति । शब्दपद्ध नियवादिप्राय दृश्यते, गच्छप्रवृत्त्या सम, पुन तदभिप्राय ग्रन्थकर्तारोऽन्येऽपि च बहुश्रुता विदन्तीति नाऽस्माकमभिनिवेशो, यथाऽस्ति तथा प्रमाणम् ॥ ८५ ॥

॥ इति पौषधकरणानुक्रमाधिकार ॥ ८५ ॥

ननु–दीक्षा–दानविधि कुत्र प्रतिपादितोऽस्ति ? उच्यते—श्रीविधिप्रपाया, अत्र शिष्याणा सुखावबोधार्थं स एव पाठ सस्कृतीकृत्य लिख्यते, श्रावकः कदाचित् चारित्रमोहनीयकर्मक्षयोपशमेन प्रव्रज्यापरिणामे जाते दीक्षा प्रतिपद्यते, अत

तस्या विधिर्भण्यते, प्रव्रज्यादिनात् पूर्वदिने सन्ध्यासमये व्रतग्राहिसत्त्वो यथा विभूत्या मङ्गलतुर्यसहितो रजोहरणादिवेषसगत-च्छब्बकेन सधवाशुचिनारीशिरसि न्यस्तेन सम समागत्य गुरुवसत्यां समवसरणादि पूजासत्कारा-क्षतावर्तनालिकेरसहितो कृत्वा गुरूणा पादौ वन्दते, ततो गुरुर्वासचन्दनाक्षतानभिमन्त्र्य शिष्यशिरसि वासक्षेपं कुर्याद्, वर्धमानविद्यादिभिः । अट्टा [आट्टी] अधिवास्य कुसुम्भरक्तदशिकाया वस्त्राच्छयति चन्दनमक्षताश्च शिरसि ददाति, ततो रजोहरणादिवेषमधिवास्य तस्य मध्ये पूगीफलानि पञ्च सप्त नव पञ्चविंशतिर्वा प्रक्षेपयति, भूतिपोट्टिका च, ततो वेषछब्बकेन सधवानारीशिरोन्यस्तेन सम उभयपार्श्वस्थितयोः हस्तगृहीतनिष्कोशखड्गयो द्वयोः पुरुषयोः सतोर्गृह गत्वा जिनबिम्बानि पूजयित्वा तेषा पुरस्तात् शासनदेवताया वा पुरस्तात् छब्बक स्थापयित्वा रात्रिजागरण कुर्वन्ति श्रावकाः, श्राविकाश्च देवगुरूणां चतुर्विधसघस्य च गीतानि गायन्त्यस्तिष्ठन्ति यावत् प्रभातवेला । तत प्रभाते गुरूणां चतुर्विधसघसहिताना गृहमागताना पूजा कृत्वा अमारिघोषणपूर्व दान ददाति यथोचित स्वजनादिवर्ग सन्मानयति, तत तस्य मातृपितृबन्धुवर्गो गुरूणा पादौ वन्दयित्वा भणति-"इच्छाकारेण सचित्त भिक्ख पडिग्गहेह" गुरुर्भणति-"इच्छामो वट्टमाणजोगेण" ततो सघसहितेन यानादिषु समारूढो मङ्गलतुर्यरवेण स्वयमेव दान ददन् जिनभवन समागच्छति, लग्नादिकारणे पश्चाद्वलितो जिनाना पूजा करोति, ततोऽक्षतैर्नालिकेरसहितैः अञ्जलिं भृत्वा नमस्कारपूर्व प्रदक्षिणात्रयं ददाति, तत पूर्वोक्तविधिना पुष्पाणि अक्षताश्च क्षिपति दीक्षानिमित्त, तत पश्चात् ईर्यापथिकीं प्रतिक्रम्य क्षमाश्रमणपूर्व पूर्वप्रतिपन्नसम्यक्त्वादिगुण शिष्यो

प्रपञ्चः श्रीजिनवल्लभसूरिविरचितपौषधविधिप्रकरणादवसेयः । तथा अत्र श्रीतरुणप्रभसूरिबालावबोधे पूर्वं परिधानं प्रतिलेख्य पश्चात् स्थापनाचार्यं प्रतिलेखयतीत्युक्तं, अत्र च विधिप्रपाया स्थापनाचार्यं प्रतिलेख्य पश्चात् परिधानं प्रतिलेखयतीत्युक्तं १ तथा 'इयरो भणइ' इत्यत्र उपधानपौषधं विना पौषधमध्ये भक्तपानीयपारणविधिरुक्तः २ तथा तृतीयप्रहरप्रतिलेखनायां स्थापनाचार्यप्रतिलेखनानन्तरं श्रावकैस्तु साधुवत् स्वाध्यायकरणं उपदिष्टं ३ पुनः तत्रैव स्वाध्यायानन्तरं प्रत्याख्याननिमित्तं वन्दनकदानं पौषधिकस्य प्रतिपादितं ४ तथा तरुणप्रभसूरिबालावबोधे मोक्तमिदं, यदुत श्रावको गोदोहनवेलायां साधुसमीपे समागत्य १ अंगप्रतिलेखना १ वस्त्रप्रतिलेखना २ उच्चारभूमिप्रतिलेखना ३ च कृत्वा ईर्यापथिकीं प्रतिक्रम्य पश्चात् पौषधं करोति इति, तत्र रात्रौ कथं तेषां त्रयाणां प्रतिलेखना शुद्ध्यति ? तथा प्रवृत्तिरपि नो दृश्यते ५ तथा सायमप्रतिलेखितोऽपकरणैः पाश्चात्यरात्रौ पौषधकरणं निगदितम् ६ इति । शब्दसङ्घ विमवादिप्राय दृश्यते, गच्छप्रवृत्त्या समं, पुनः तदभिप्रायं ग्रन्थकर्तारोऽन्येऽपि च बहुश्रुता विदन्तीति नाऽस्माकमभिनिवेशो, यथाऽस्ति तथा प्रमाणम् ॥ ८५ ॥

॥ इति पौषधकरणानुक्रमाधिकार ॥ ८५ ॥

ननु—दीक्षा—दानविधिः कुत्र प्रतिपादितोऽस्ति ? उच्यते—श्रीविधिप्रपाया, अत्र शिष्याणां सुखावबोधार्थं स एव पाठः संस्कृतीकृत्य लिख्यते, श्रावकः कदाचित् चारित्रमोहनीयकर्मक्षयोपशमेन प्रव्रज्यापरिणामे जाते दीक्षां प्रतिपद्यते, अत

तस्या विधिर्भण्यते, प्रव्रज्यादिनात् पूर्वदिने सन्ध्यासमये व्रतग्राहिसत्त्यो यथा विभूत्या मङ्गलतुर्यसहितो रजोहरणादिवेषसंगत–च्छब्बकेन सधवाशुचिनारीशिरसि न्यस्तेन सम समागत्य गुरुवसत्या समवसरणादि पूजासत्कारा–क्षतावर्तनालिकेरसहितो कृत्वा गुरूणा पादौ वन्दते, ततो गुरुर्वासचन्दनाक्षतानभिमन्त्र्य शिष्यशिरसि वासक्षेपं कुर्याद्, वर्धमानविद्यादिभिः । अट्टा [आट्टी] अधिवास्य कुसुम्भरक्तदशिकाया उद्ग्राहयति चन्दनमक्षताश्च शिरसि ददाति, ततो रजोहरणादिवेषमधिवास्य तस्य मध्ये पूगीफलानि पञ्च सप्त नव पञ्चविंशतिर्वा प्रक्षेपयति, भूतिपोट्टिका च, ततो वेषछब्बकेन सधवानारीशिरोन्यस्तेन सम उभयपार्श्वस्थितयोः हस्तगृहीतनिष्कोशखड्गयो द्वयोः पुरुषयो सतोर्गृह गत्वा जिनबिम्बानि पूजयित्वा तेषा पुरस्तात् शासनदेवताया वा पुरस्तात् छब्बक स्थापयित्वा रात्रिजागरण कुर्वन्ति श्रावकाः, श्राविकाश्च देवगुरूणां चतुर्विधसघस्य च गीतानि गायन्त्यस्तिष्ठन्ति यावत् प्रभातवेला । तत प्रभाते गुरूणा चतुर्विधसघसहिताना गृहमागताना पूजा कृत्वा अमारिघोषणपूर्वं दान ददाति यथोचित स्वजनादिवर्ग सन्मानयति, ततः तस्य मातृपितृबन्धुवर्गो गुरूणा पादौ वन्दयित्वा भणति–“इच्छाकारेण सचित्त भिक्ख पडिगाहेह” गुरुर्भणति–“इच्छामो वट्टमाणजोगेण” ततो सघसहितेन यानादिषु समारूढो मङ्गलतुर्यरवेण स्वयमेव दान ददन् जिनभवन समागच्छति, लग्नादिकारणे पश्चाच्चलितो जिनाना पूजा करोति, ततोऽक्षतैर्नालिकेरसहितैः अञ्जलिं भृत्वा नमस्कारपूर्वं प्रदक्षिणात्रय ददाति, तत पूर्वोक्तविधिना पुष्पाणि अक्षताश्च क्षिपति दीक्षानिमित्त, तत पश्चात् ईर्यापथिकीं प्रतिक्रम्य क्षमाश्रमणपूर्वं पूर्वप्रतिपन्नसम्यक्त्वादिगुण शिष्यो

भणति "इच्छाकारेण तुब्भे अम्ह सव्वविरइसामाइय आरोवणत्थं चेइआइ वदावेह", य पुन पूर्वाऽप्रतिपन्नसम्यक्त्वादिगुण स "सम्मत्तसामाइय १ सुअसामाइय २ सव्वविरइसामाइय ३ आरोवणत्थ ति" भणति, गुरुराह "वदावेमो" पुनरपि क्षमाश्रमण दत्त्वा गुरुपुरतो जानुभ्या तिष्ठति गुरुरपि तस्य शीर्षे वास क्षिपति, ततो गुरुणा सह चैत्यानि वन्दते, गुरुरपि स्वयमेव शान्तिनाथ–शान्तिदेवतादिस्तुतीर्ददाति शासनदेवताकायोत्सर्गे उद्द्योतकरचतुष्क चदेसुनिम्मलयरा पज्जत चिन्तयति, गुरुरपि पारयित्वा स्तुतिर्ददाति, शेषाः कायोत्सर्गस्थिता शृण्वन्ति, पश्चात् सर्वेऽपि उद्द्योतकर पठन्ति, ततो नमस्कारत्रिक कथयन्ति, ततो जानुभ्यां स्थित्वा शक्रस्तव पञ्चपरमेष्ठिस्तवं च भणन्ति, ततो गुरुर्वेष अभिमन्त्रयति पश्चात् क्षमाश्रमण दत्त्वा शिष्यो भणति "इच्छाकारेण सदिसह [भगवन्] तुब्भे अम्ह रयहरणाइ वेस समप्पेह", ततो नमस्कारपूर्वं सुगृहीत करेहत्ति भणन् शिष्यो दक्षिणबाहुसमुख रजोहरणदसिका कुर्वन् पूर्वाभिमुख उत्तराभिमुखो वा वेष समर्पयति, पुनः क्षमाश्रमण दत्त्वा रजोहरणादिवेषं गृहीत्वा ईशानदिशि गत्वा आभरणाद्यलङ्कार उन्मुञ्चति वेष च परिदधाति, प्रदक्षिणावर्त चतुरङ्गुलोपरि कर्तितकेशो गुरुपार्श्वमागत्य क्षमाश्रमण दत्त्वा भणति "इच्छाकारेण तुम्हे अम्ह अट्ट गिण्हह" पुनः क्षमाश्रमण दत्त्वा ऊर्ध्वस्थितस्य ईषद् अवनतकायस्य नमस्कारत्रिक उच्चरयित्वा ऊर्ध्वस्थितो गुरुः प्राप्ताया लग्नवेलाया समकालनाडीद्विकप्रवाहवर्जं अभ्यन्तर प्रविश्य श्वास अस्खलित अट्टात्रिक गृण्हाति, तत् समीपस्थितसाधुः सदशावलेण अट्टाः प्रतीच्छति, ततः क्षमाश्रमणं दत्त्वा शिष्यो भणति "इच्छाकारेण तुब्भे अम्ह सव्वविरइसामाइयआरोवणत्थ

काउस्सग्ग करावेह, खमासमणपुव्व सव्वविरइसामाइय आरोवणत्थ करेमि काउस्सग्गं अन्नत्थूससिएण"मित्यादि पठित्वा उद्योतकर सागरवरगम्भीरा पर्यन्त शिष्यो गुरुश्च द्वावपि चिन्तयत पारयित्वा उद्योतकर भणतः, तत क्षमाश्रमण दत्त्वा शिष्यो भणति, इच्छाकारेण तुब्भे अम्ह सव्वविरइसामाइयसुत्त उच्चरावेह, गुरुराह, उच्चरावेमो। पुनः क्षमाश्रमण दत्त्वा ईषदयनतकायो गुरुवचन अनुवदन् नमस्कारत्रिकपूर्व सव्वविरइसामाइयसूत्र वारत्रिक उच्चरति, ततो गुरुर्मन्त्रोच्चारपूर्व प्रणाम कृत्वा लोकोत्तमाना पादेषु वास क्षिपति, अक्षतानभिमन्त्र्य सघाय ददाति। ततः क्षमाश्रमण दत्त्वा शिष्यो भणति "सदिसह- किं भणामो" गुरुर्भणति "वदित्ता पवेयह", पुनः क्षमाश्रमण दत्त्वा भणति "इच्छाकारेण तुम्हे अम्ह सव्वविरइसामा- इअ आरोवेह गुरुर्वासक्षेपपूर्व भणति" आरोवियं २ खमासमणेण हत्थेणं सुत्तेण तदुभएण सम्म धारणीय चिर पालनीय नित्थारगपारगाहोहि, गुरुगुणेहिं वुड्ढाहिं, सीसो, इच्छामो अणुसट्ठित्ति भणित्वा क्षमाश्रमण दत्त्वा भणति तुम्हाण पवेइय सदिसह साहूणं पवेएमि, ततः क्षमाश्रमण दत्त्वा नमस्कारमुच्चरन् प्रदक्षिणां ददाति, वारत्रय सघश्च तच्छिरसि अक्षत- निक्षेप करोति, ततः क्षमाश्रमण दत्त्वा भणति "तुम्हाण पवेइय साहूण पवेइय संदिसह काउस्सग्ग करेमि", गुरुर्भणति करेह। पुन क्षमाश्रमण दत्त्वा "सव्वविरइ आरोवणत्थ करेमि काउस्सग्ग अन्नत्थूससिएण"मित्यादि पठित्वा सागरवरगम्भी- रा पर्यन्त उद्योतकर चिन्तयित्वा पारयित्वा उद्योतकर पठति, ततः क्षमाश्रमणपूर्व भणति "इच्छाकारेण तुब्भे अम्ह सव्वविरइ सामाइयथिरीकरणकाउस्सग्ग करावेह, सव्वविरइसामाइयथिरीकरणत्थ करेमि काउस्सग्ग" तत्र सागरवरगम्भी-

रापर्यन्त उद्द्योतकर चिन्तयित्वा पारयित्वा उद्द्योतकरं पठति । तत' क्षमाश्रमण दत्त्वा "इच्छाकारेण तुब्भे अम्ह नाम-ठवणं करेह गुरुर्भणति "करेमो ।" ततो वासं क्षिप्यन् रविशशिगुरुसोमगोचरशुद्ध्या यथोचित नाम करोति, तत कृत-नामा शिष्यः सर्वसाधून् वन्दते, आर्यिकाः श्रावका' श्राविका अपि त वन्दन्ते । ततः क्षमाश्रमणपूर्वं शिष्यो गुरु भणति "तुब्भे अम्ह धम्मोवएस देह" "पुनः क्षमाश्रमण दत्त्वा जानुभ्या स्थितः शिष्यः शृणोति गुरुर्भणति" "चत्तारि परमगाणि इत्याद्युत्तराध्ययनाना तृतीयमध्ययनं "पवज्जा विहाण वा जयं चरे जय चिट्ठे" इत्यादि वा सोऽपि च सवेगातिशयतस्तया पुणोति यथाऽन्योऽपि कोऽपि पवज्जति, अत्र संग्रहगाथा—

"चिइवदणवेसप्पण–समचरगुलग अट्ठ[ट्ठी]गहो । सामाइअ तिअकड्ढण–तिपयाहिण वास उस्सग्गो ॥ १ ॥"

॥ इति दीक्षादानविधिरधिकारः ॥ ८६ ॥

ननु–सप्तसु उपधानेषु श्राद्धाना कस्मिन् उपधाने कति उपवासा ?, १ कति पौषधा ?, २ किं नाम ?, ३ क उपधानप्रवेश-विधिः ?, ४ का प्रभाते क्रिया ?, ५ का तृतीयप्रहरे क्रिया ?, ६ को वाचनाकरणविधिः ?, ७ क उत्क्षेपविधिः ?, ८ को निक्षेपविधिः ?, ९ का कर्तव्यता नित्य ? १० का च पडिपुन्नाविगइपारणा कर्तव्यता ?, ११ ? अत्रोच्यते—एतेषा एकादशप्रश्नाना उत्तरस्वरूप किंचिद्विधिप्रपा–तरुणप्रभसूरिबालावबोधानुसारेण किंचित् संप्रदायानुसारेण, किंचिच्च सांप्रत श्रावकक्रियमाण-क्रियानुसारेण शिष्यसुखावबोधार्थं प्राकृत–संस्कृत–वार्तिकरूपतया लिख्यते । तत्र प्रथम प्रत्युपधान उपवाससंख्या १ पौष

घसंख्या २ नामानि ३ चाऽऽह—पचमगलमहासुअखधे पढम दुवालसं तओ पंचण्ह अज्झयणाण नमोअरिहंताण इत्यत आरम्य नमो लोए सवसाहूण यावत् एगा वायणा दिज्जइ १। इत्य पुण अज्झयणा अट्ठ तओ आयविल अट्ठग अट्ठमं च ३ तओ तिण्हं अज्झयणाण एसो पच नमुक्कारो इत्यत आरम्य हवइ मगल यावत् बीया वायणा दिज्जइ २ अत्रोपवासा सार्धद्वादश, पौपधार्विशतिः, विधिना वहनेतु उपवासा द्वादश पौपधाश्च षोडश, इद पचमगलमहासुअखंध नमुक्कारतपः विसढेति नाम इद प्रथमोपधान ।१। इरियावहिआ–सुअखधे वि अट्ठ अज्झयणा तिणि चरमाणि चूला भिन्नइ, तत्थ दुवालसमे तवे पुण्णे "इच्छाकारेण सविसह" इत्यत आरम्य जे मे जीवा विराहिया "यावत्" पढमा वायणा दिज्जइ १ तओ आयविल अट्ठमे अट्ठमे च कए एगिंदिया इत्यत आरम्य ठामि काउस्सग यावत् बीआ वायणा दिज्जइ २ अत्राऽपि उपवासाः सार्धद्वादश पौषधार्विशतिर्विधिना वहने तु उपवासा द्वादश पौपधाः षोडश, इद इरियावहियातप विसढेति नाम इद द्वितीयमुपधान । २ । "भावारिहतत्थए पढम अट्ठम तओ नमुत्थुण" इत्यत आरम्य "गधहत्थीणं" यावत् पढमा वायणा दिज्जइ १ "तओ सोलसएहिं अविलेहिं गएहिं लोगुत्तमाण" इत्यत आरम्य धम्मवरचाउरंतचक्कवट्टीण यावत् बीया वायणा दिज्जइ २ "पुणो तओ सोलसहिं अविलेहिं गएहिं अप्पडिहयवरनाणदसणधराण इत्यत आरम्य सवे तिविहेण वदामि यावत् तइया वायणा दिज्जइ ३ अत्रोपवासा द्वाविंशति पौपधाः पञ्चत्रिंशत्, विधिना वहने तु उपवासा एकोनविंशति पौपधाः पञ्चत्रिंशदेव ३५ इद नमुत्थुण तपः पात्रीसढेति नाम तृतीयमुपधानं । ३ । "ठवणारिहतत्थए पुर्वि चउत्थ तओ

रापर्यन्त उद्योतकर चिन्तयित्वा पारयित्वा उद्योतकरं पठति । ततः क्षमाश्रमण दत्त्वा "इच्छाकारेण तुम्भे अम्ह नामठवण करेह गुरुर्भणति "करेमो ।" ततो वास क्षिप्यन् रविशशिगुरुसोमगोचरशुद्धा यथोचित नाम करोति, ततः कृतनामा शिष्यः सर्वसाधून् वन्दते, आर्यिका श्रावका श्राविका अपि त वन्दन्ते । तत क्षमाश्रमणपूर्वं शिष्यो गुरु भणति "तुम्भे अम्ह धम्मोवएसं देह" "पुनः क्षमाश्रमण दत्त्वा जानुभ्यां स्थितः शिष्यः शृणोति गुरुर्भणति" "चत्तारि परमगाणि इत्याद्युत्तराध्ययनाना तृतीयमध्ययन "पवज्जा विहाणं वा जय चरे जय चिट्ठे" इत्यादि वा सोऽपि च सवेगातिशयतस्तथा पुणोति यथाऽन्योऽपि कोऽपि पवज्जति, अत्र संग्रहगाथा—

"चिइवदणवेसप्पण–संमचचरंगुलग अट्ट[ट्ठी]गहो । सामाइअ तिअकड्ढण–तिपयाहिण वास उस्सग्गो ॥ १ ॥"

॥ इति दीक्षादानविधिरधिकार ॥ ८६ ॥

ननु–सप्तसु उपधानेषु श्राद्धाना कस्मिन् उपधाने कति उपवासाः ?, १ कति पौषधाः ?, २ किं नाम ?, ३ क उपधानप्रवेशविधिः ?, ४ का प्रभाते क्रिया ?, ५ का तृतीयप्रहरे क्रिया ?, ६ को वाचनाकरणविधिः ?, ७ क उत्क्षेपविधिः ?, ८ को निक्षेपविधिः ?, ९ का कर्तव्यता नित्य ? १० का च पडिपुन्नाविगइपारणा कर्तव्यता ?, ११ ? अत्रोच्यते—एतेषा एकादशप्रश्नाना उत्तरस्वरूप किंचिद्विधिप्रपा–तरुणप्रभसूरिबालावबोधानुसारेण किंचित् संप्रदायानुसारेण, किंचिच्च सांप्रत श्रावकक्रियमाणक्रियानुसारेण शिष्यसुखावबोधार्थं प्राकृत–संस्कृत–वार्तिकरूपतया लिख्यते । तत्र प्रथम प्रत्युपधान उपवाससंख्या १ पौष

अमुग उवहाणतवे पवेसह गुरुर्भणति पवेसेमो नवकारसी करिज्यो, अगपडिलेहण संदिसावजो, उवहाणवाही भणति तहत्ति, तृतीयाद्युपधानप्रवेशे कालवेला पौषधग्रहणे तु नवकारसी करिज्यो, अगपडिलेहण संदिसावज्यो उपधानवाही भणति तहत्ति, अत्र क्षमाश्रमणदानानन्तर चतुर्विधाहार करोतु पानीय वा पिबतु भोजन वा करोतु विचारो व्यवस्था वा नास्ति, अथ केनाऽपि कारणेन सन्ध्याया क्षमाश्रमण न दत्त, तदा पाश्चात्यरात्रौ अपि प्रतिक्रमणवेलात प्राक् पूर्वरीत्या क्षमाश्रमणदान कार्य, कालवेलाया प्रतिक्रमण कार्य नवकारसीप्रत्याख्यान च मालिकपार्श्वे कार्य। ततो वाचकादिपदस्थसमीपे समागन्तव्य १ तत्र यदि प्रथमोपधानद्वयं भवेत् तदाऽवश्यं नन्दी कर्तव्या, नन्दीमध्ये एव च तदुपधानस्य उत्क्षेपो विधेयो अथ यदि शेषोपधानानि तदा नन्दीनियमो नाऽस्ति। ततः प्रात' प्रथम तदुत्क्षेपः कार्यः, ततः पौषधसामायिकयोर्ग्रहण ततो वन्दनकपट्टदानपूर्व सुखतपोवन्दनक, ततः सुखतपःपृच्छा च इति उपधानप्रवेशनविधिः ।४। अथोपधानवाहिनः प्राभातिकक्रियामाह, उपधानवाही प्रातः पदस्थसमीपे समागत्य, गुर्वादेशेन ईर्यापथिकीं प्रतिक्रम्या आगमनं आलोच्य पौषध सामायिक च गृहीत्वा क्षमाश्रमणद्वयदानपूर्व प्रतिलेखना करोति, ततः क्षमाश्रमणद्वयदानपूर्व अङ्गप्रतिलेखना करोति, ततो मुखवस्त्रिकां प्रतिलेख्य प्रथमक्षमाश्रमणेन ओहि पडिलेहण संदिसावेमि द्वितीयक्षमाश्रमणेन ओहि पडिलेहण करेमि इति भणति, ततो मुखवस्त्रिका प्रतिलेख्य पदस्थपदे वन्दनपट्ट ददाति, ततो गुर्वदति "पवेयणं पवेयह" उपधानवाही च क्षमाश्रमण दत्त्वा अर्धावनतकायः शृणोति, गुरुर्भणति 'अमुगउवहाण-

तिन्नि अविलाणी तओ तिण्ह अज्झयणाण अरिहतचेइयाण" इत्यत आरम्य वोसिरामि यावत् एगा वायणा दिज्जइ १ अत्रोपवासाः सार्धौ द्वौ पौषधः चत्वारः इदं अरिहतचेइआणं तपः चउकडेति नाम चतुर्थमुपधान । ४ । "नामारिहत चउवीसत्थए पढम अट्ठम तओ लोगस्स उज्जोअगरे" इत्यत आरम्य चउवीसपि केवली इति यावत् पढमा वायणा दिज्जइ १ "पुणो बारसहिं आयविलेहिं गयहिं उसममजिअ च वंदे" इत्यत आरम्य वद्धमाण चेति यावत् वीआ वायणा दिज्जइ २ "पुणो तेरसहिं आयविलेहिं एगहिं "एवं मए" इत्यत आरम्य प्रान्त यावत् तइया वायणा दिज्जइ ३ अत्रोपवासा' सार्धसप्तदश, पौषधा अष्टाविंशतिः, विधिना वहते तु उपवासाः सार्धपञ्चदश पौषधास्तु अष्टाविंशतिरेव, इद चउवीसत्थयतपः अट्ठावीसडेति नाम पञ्चममुपधानं । ५ । "दसारिहतत्थए पढम चउत्थ तओ पच आयविलाणि अते पुक्खरवरदीवड्ढे" इत्यत आरम्य सुअस्स भगवओ इति यावत् एगा वायणा दिज्जइ, अत्र उपवासा' सार्धत्रयः पौषधा षट्, इद पुक्खरवरदीवड्ढे तपः छक्कडेति नाम षष्ठ उपधान ॥६॥ सिद्धत्थय–सुयखंधे "सिद्धाण बुद्धाण" इत्यत आरम्य तारेइ नर वा नारिं वा इति यावत् एगा वायणा दिज्जइ, अत्र उपवास' एकः स च चतुर्विधाहार एव पौषधोऽपि एक, इद सिद्धाण बुद्धाण तपोमालेति नाम सप्तम उपधान ॥ ७ ॥ १ अथोपधानप्रवेशनविधिः प्राह—यदि बहवः श्रावकाः श्राविकाश्च उपधाने प्रविशन्ति तदा संघनाम्ना चन्द्रबलं प्राह्यं, संघस्य कुम्भराशिः ज्ञेयः, तदभावे यो या वा प्रविशति तन्नाम्ना चन्द्रबलं प्राह्य २ तया उपधानवाही सम्याया वाचकादिपदस्थसमीपे समागत्य ईर्यापथिकीं प्रतिक्रमति, ततः क्षमाश्रमणं दत्वा भणति

पडिलेहण करेमि २ सज्झाय स० ३ सज्झाय क० ४ बइसण स०५ वइसण क० ६ पांगुरण स० ७ पागुरण पडिग्गहेमि ८ कट्ठासण सदि० ९ कट्ठासण पडिग्गहेमि १० पुनर्मुखवस्त्रिका प्रतिलिख्य वन्दनकद्वय दत्त्वा सुखतपेति पृच्छा, उपधानवाहि भणति तुम्हारइ प्रसादइ । ततः सर्वोपकरणानि प्रतिलिखति मात्रकादिकमपि सर्वं प्रतिलिख्यते । तथा यस्मिन् दिने भुक्त तस्मिन् दिने पउणपहरप्रतिलेखनाया स्थालीकचोलादिक सर्वमपि भुज्यमान प्रतिलिखति, उपवासदिने तु न, इति उपधाने तृतीयप्रहरसंबन्धी विधिः । ६ ।

अथ वाचनाविधिर्लिख्यते—सन्ध्याया प्रथम चतुर्विधाहार कृत्वा ईर्यापथिकीं प्रतिक्रम्य मुखवस्त्रिका प्रतिलिख्य वन्दनकद्वय दत्त्वा पहिलइ उपधानि पचमगलमहासुअखधस्स पढमवायणापडिगहणत्थ काउस्सग करावेमो, पहिलइ उपधानि पचमगलमहासुयखधपढमवायणानिमित्त करेमि काउस्सग अन्नत्थू० इत्यादि भणनपूर्वं कायोत्सर्गे सागरवरगभीरा यावत् लोगस्स १ चिन्त्यते, पारिते च सपूर्ण लो० भणित्वा, ततः क्षमाश्रमणपूर्वं इच्छाकारेण पचमंगलमहासुयखंधस्स पढमवायणा पडिगहणत्थ चेइआइ वदावेह गुरुर्भणति वदावेमो, वासक्षेप करावेह गुरुर्भणति करावेमो ततो वासक्षेपः कार्य , ततश्चैत्यवन्दनं ततः क्षमाश्रमणपूर्वं इच्छाकारेण सदिसह भगवन् वायण सदिसावेमि वीये खमासमणे वायण पडिगहेमि, ततः क्षमाश्रमण दत्त्वा उपधानवाहिन करद्वयगृहीतमुखवस्त्रिकाच्छादितमुखस्य अधोवनतगात्रस्य नमस्कारत्रयपूर्वं गुरुर्वारत्रय तत्तत्सूत्रालापकस्य वाचनां ददाति, ततो वायणामाहि मिच्छामि दुक्कडमिति वाक्य प्रान्ते, एव इरियावहियसुअखधादिनामोद्देशेन सर्वेषा उपधानाना वाचनाविधिः कार्य इति वाचनाविधि । ७ ।

निरुद्धनिमित्तं वा तव करइ इत्युक्त्वा उपवासं, आयंबिल, एगासण वा, प्रत्याख्यान कारयति, उपवासे गायच्छित्ते निरुद्धत्ति वक्तव्यं, एकाशने निर्विकृतिके च निमित्तेति वक्तव्य । तत प्रथमक्षमाश्रमणेन बहुवेल संदिसावेमि द्वितीयक्षमाश्रमणेन बहुवेल करेमि तृ० क्ष० बइसण संदिसावेमि च० क्ष० बइसण ठापमि प० क्ष० सज्झाय संदिसावेमि प० क्ष० सज्झाय करेमि सप्त० क्ष० पागुरण संदिसावेमि अष्टम० क्ष० पागुरण पडिगाहेमि नवम० क्ष० कट्ठासण संदिसावेमि दशम० क्ष० कट्ठासण पडिग्गहेमि । ततो मुखवस्त्रिकां प्रतिलेख्य वन्दनकद्वय ददाति, गुरुवंदति सुखतप उपधानवाही वदति तुम्ह पसावइ इति प्रभातसंबन्धी उपधानविधिः । ५ ।

अथ उपधाने तृतीय-प्रहर-संबंधिविधिर्लिख्यते, तथाहि—तृतीयप्रहरस्य प्रतिलेखनायां जातायां स्थापनाग्रे गुरुनादेशेन ईर्यापथिकीं प्रतिक्रम्य प्रथमक्षमाश्रमणेन पडिलेहणं करेमि द्वितीय क्ष० पोसहसाल पमज्जेमि, इत्युक्त्वा मुखवस्त्रिकां प्रतिलिखति, एव क्षमाश्रमणद्वयदानपूर्वं अङ्गप्रतिलेखना मुखवस्त्रिका प्रतिलिखति, ततो वसति प्रमार्जयति तत्र यदि तस्मिन् दिने भोजन कृत भवति, तदा पदस्थसमीपे क्रियाकरणादर्वाक् परिधानवेष एक प्रतिलिखति न शेषाणि, अथ यदि तस्मिन् दिने उपवासो भवति, सर्वेक वेषमपि न प्रतिलिखति, ततः पदस्थसमीपे समागत्य ईर्यापथिकीं प्रतिक्रम्य प्रतिलेखनां अङ्गप्रतिलेखनां च पुनर्गुरुसमक्ष करोति, ततो मुखवस्त्रिकां प्रतिलिख्य वन्दनकद्वयं ददाति च - चतुर्विधाहार त्रिविधाहारं वा प्रत्याख्यानं कृत्वा, क्षमाश्रमणद्वयं ददाति तथा—भोडि पडिले

पडिलेहण करेमि २ सज्झाय सं० ३ सज्झाय क० ४ वइसण स०५ वइसण क० ६ पांगुरण सं० ७ पागुरण पडिग्गहेमि ८ कट्ठासण सदि० ९ कट्ठासण पडिग्गहेमि १० पुनर्मुखवस्त्रिका प्रतिलिख्य वन्दनकद्वय दत्त्वा सुखतपेति पृच्छा, उपधानवाहि भणति तुम्हारइ प्रसादइ । ततः सर्वोपकरणानि प्रतिलिखति मात्रकादिकमपि सर्वं प्रतिलिख्यते । तथा यस्मिन् दिने भुक्त तस्मिन् दिने पच्चणपहरप्रतिलेखनाया स्थालीकच्चोलादिकं सर्वमपि भुज्यमान प्रतिलिखति, उपवासदिने तु न, इति उपधाने तृतीयप्रहरसंबन्धी विधिः । ६ ।

अथ वाचनाविधिर्लिख्यते—सन्ध्याया प्रथम चतुर्विधाहार कृत्वा ईर्यापथिकीं प्रतिक्रम्य मुखवस्त्रिका प्रतिलिख्य वन्दनकद्वय दत्त्वा पहिलइ उपधानि पचमगलमहासुअखधस्स पढमवायणापडिगहणत्थ काउस्सग करावेमो, पहिलइ उप, धानि पचमगलमहासुयखधपढमवायणानिमित्त करेमि काउस्सग्गं अन्नत्थू० इत्यादि भणनपूर्वं कायोत्सर्गे सागरवर-गभीरा यावत् लोगस्स १ चिन्त्यते, पारिते च सपूर्ण लो० भणित्वा, ततः क्षमाश्रमणपूर्वं इच्छाकारेण पचमगलमहासु-यखधस्स पढमवायणा पडिगहणत्थ चेइआइ वदावेह गुरुर्भणति वदावेमो, वासक्षेप करावेह गुरुर्भणति करावेमो ततो वास-क्षेपः कार्यः, ततश्चैत्यवन्दनं ततः क्षमाश्रमणपूर्वं इच्छाकारेण सदिसह भगवन् वायण सदिसावेमि वीये खमासमणे वायण पडिगहेमि, ततः क्षमाश्रमण दत्त्वा उपधानवाहिनः करद्वयगृहीतमुखवस्त्रिकाच्छादितमुखस्य अर्धावनतगात्रस्य नमस्कारत्रयपूर्वं गुरुर्वारत्रय तत्तत्सूत्रालापकस्य वाचनां ददाति, ततो वायणामांहि मिच्छामि दुक्कडमिति वाक्य प्रान्ते, एवं इरियावहियसुअखधादिनामोद्देशेन सर्वेपा उपधानाना वाचनाविधिः कार्यं इति वाचनाविधि । ७ ।

निरुद्धनिमित्त वा तव करइ इत्युक्त्वा उपवासं, आयंबिलं, एगासण वा, प्रत्याख्यान कारयति, उपवासे आयंबिले निरुद्धत्ति वक्तव्य, एकाशने निर्विकृतिके च निमित्तेति वक्तव्य । ततः प्रथमक्षमाश्रमणेन बहुवेल संदिसावेमि द्वितीयक्षमाश्रमणेन बहुवेल करेमि तृ० क्ष० वइसण संदिसावेमि च० क्ष० वइसण ठाएमि प० क्ष० सज्झाय संदिसावेमि ष० क्ष० सज्झाय करेमि सप्त० क्ष० पांगुरणं संदिसावेमि अष्टम० क्ष० पांगुरण पडिगाहेमि नवम० क्ष० कट्ठासण संदिसावेमि दसम० क्ष० कट्ठासण पडिगहेमि । ततो मुखवस्त्रिका प्रतिलेख्य वन्दनकद्वय ददाति, गुरुर्वदति सुखतप उपधानवाही वदति तुम्हारइ प्रसादइ इति प्रभातसंबन्धी उपधानविधिः । ५ ।

अथ उपधाने तृतीय-प्रहर-सत्कविधिर्लिख्यते, तथाहि—तृतीयप्रहरस्य प्रतिलेखनाया जाताया स्थापनाग्रे मालिकादेशेन ईर्यापथिकीं प्रतिक्रम्य प्रथमक्षमाश्रमणेन पडिलेहणं करेमि द्वितीय क्ष० पोसहसाल पमज्जेमि, इत्युक्त्वा मुखवस्त्रिकां प्रतिलिखति, एव क्षमाश्रमणद्वयदानपूर्वं अङ्गप्रतिलेखना मुखवस्त्रिकां प्रतिलिखति, ततो वसति प्रमार्जयति तत्र यदि तस्मिन् दिने भोजन कृत भवति, तदा पदस्थसमीपे क्रियाकरणादर्वाक् परिधानवेषं एक प्रतिलिखति न शेषवस्त्राणि, अथ यदि तस्मिन् दिने उपवासो भवति, तदैक वेषमपि न प्रतिलिखति, ततः पदस्थसमीपे समागत्य ईर्यापथिकीं प्रतिक्रम्य प्रतिलेखना अङ्गप्रतिलेखना च पुनर्गुरुसमक्ष करोति, ततो मुखवस्त्रिका प्रतिलिख्य वन्दनकद्वय ददाति ततश्चतुर्विधाहार त्रिविधाहार वा प्रत्याख्यान कृत्वा, क्षमाश्रमणदशकं ददाति, तथा—ओहि पडिलेहण संदिसावेमि १ ओहि

पडिलेहण करेमि २ सज्झाय स० ३ सज्झाय क० ४ वइसण स०५ बइसण क० ६ पागुरण स० ७ पागुरण पडिग्गहेमि ८ कट्ठासण संदि० ९ कट्ठासण पडिग्गहेमि १० पुनर्मुखवस्त्रिका प्रतिलिख्य वन्दनकद्वय दत्त्वा सुखतपेति पृच्छा, उपधानवाहि भणति तुम्हारइ प्रसादइ । ततः सर्वोपकरणानि प्रतिलिखति मात्रकादिकमपि सर्वं प्रतिलिख्यते । तथा यस्मिन् दिने भुक्तं तस्मिन् दिने पउणपहरप्रतिलेखनाया स्थालीकच्चोलादिक सर्वमपि भुज्यमान प्रतिलिखति, उपवासदिने तु न, इति उपधाने तृतीयप्रहरसंबन्धी विधिः । ६ ।

अथ वाचनाविधिर्लिख्यते—सन्ध्याया प्रथम चतुर्विधाहार कृत्वा ईर्यापथिकीं प्रतिक्रम्य मुखवस्त्रिका प्रतिलिख्य वन्दनकद्वय दत्त्वा पहिलइ उपधानि पचमगलमहासुअखधस्स पढमवायणापडिगहणत्थ काउस्सग करावेमो, पहिलइ उपधानि पचमगलमहासुयखधपढमवायणानिमित्त करेमि काउस्सग अन्नत्थू० इत्यादि भणनपूर्वं कायोत्सर्गे सागरवरगमीरा यावत् लोगस्स १ चिन्त्यते, पारिते च सपूर्ण लो० भणित्वा, ततः क्षमाश्रमणपूर्वं इच्छाकारेण पचमगलमहासुयखधस्स पढमवायणा पडिगहणत्थ चेइआइ वदावेह गुरुर्भणति वदावेमो, वासक्षेप करावेह गुरुर्भणति करावेमो ततो वासक्षेपः कार्यः, ततश्चैत्यवन्दनं तत क्षमाश्रमणपूर्वं इच्छाकारेण सदिसह भगवन् वायण सदिसावेमि वीये खमासमणे वायण पडिगहेमि, ततः क्षमाश्रमण दत्त्वा उपधानवाहिन करद्वयगृहीतमुखवस्त्रिकाच्छादितमुखस्य अर्धावनतगात्रस्य नमस्कारत्रयपूर्वं गुरुर्वारत्रय तत्तत्सूत्रालापकस्य वाचना ददाति, ततो वायणामाहि मिच्छामि दुक्कडमिति वाक्य प्रान्ते, एव इरियावहियसुअखधादिनामोद्देशेन सर्वेषा उपधानाना वाचनाविधिः कार्य इति वाचनाविधि । ७ ।

अथ उत्क्षेपविधिमाह—प्रथम ईर्यापथिकीं प्रतिक्रम्य मुखवस्त्रिका प्रतिलिख्य वन्दनकद्वय दत्त्वा क्षमाश्रमणपूर्वं उपधानवाही भणति—"पहिलइ उपधानि पचमगलमहासुअखंधतव उक्खिवह" गुरुर्भणति—उक्खिवामो, पहिलइ उपधानि पचमगलमहासुअखंध उक्खेवावणि अ नदिपवेसावणीय करेमि काउस्सग अन्नत्थूससिएण"मित्यादि पूर्वं कायोत्सर्गे चदेसु निम्मलयरापर्यन्त चतुर्विंशतिस्तवमेकं चिन्तयित्वा पारिते च सपूर्णं कथयित्वा, क्षमाश्रमणदानपूर्वं भणति, पहिलइ उपधानि पचमगलमहासुअखंध—उक्खिवावणीय चेइआइ वदावेह, गुरुर्भणति वदावेमो वासक्षेप करावेह गुरुर्भणति करावेमो, ततो वासक्षेपपूर्वं संपूर्णं चैत्यवन्दनं क्रियते । एव सर्वत्रोपधानेषु उत्क्षेपो ज्ञेयो, नवर प्रथमोपधानद्वये नदिमध्ये कार्यते उत्क्षेप । शेषोपधानेषु तु न नन्दिमध्ये कार्यते । अथ यद्दिने न नन्दि तदा प्रातः प्रवेशदिने उत्क्षेप कार्यते, पर निजनिजोपधाननामादिभिः आलापेन कार्यः इति उत्क्षेपविधिः । ८ । अथ निक्षेपविधिमाह—

तपोऽवसानदिने सन्ध्याया कृतचतुर्विधाहारः प्रातर्वा ईर्यापथिकीं प्रतिक्रम्य मुखवस्त्रिका प्रतिलिख्य वन्दनकद्वयं दत्त्वा उपधानतपोवाही भणति "इच्छाकारेण संदिसह भगवन् अमुगतव निक्खिवेह" गुरुर्भणति "निक्खिवामो", तत इच्छ ति भणित्वा क्षमाश्रमणं दत्त्वा भणति "इच्छाकारेण सदिसह भगवन् अमुगतवनिक्खिवणत्थ काउस्सग करावेह" गुरुर्भणति "करावेमो, इच्छामि खमासमणो० अमुगतवनिक्खिवणत्थं करेमि काउस्सग अन्नत्थ्" इत्यादि भणित्वा कायोत्सर्गे नमस्कारमेक चिन्तयित्वा पारितेऽपि नमस्कारमेक कथयित्वा क्षमाश्रमण दत्त्वा "अमुगतवनिक्खिवणत्थ चेइआइ वदावेह" गुरुर्भणति "वदावेमो" ततः संपूर्णा चैत्यवन्दना करोतीति निक्षेपविधिः । ९ ।

अथ नित्यकर्तव्यतामाह—सा नित्यकर्तव्यता काऽपि शास्त्रोक्ता काऽपि साम्प्रत दृश्यमानपरम्परागम्या, तथाहि—उपधाने श्रावकैर्विकृतिमध्ये एक घृतमेव ग्राह्य नाऽन्या काऽपि विकृतिः १। उपधाने त्रिंशन्निर्विकृतिकाना मध्ये एकमपि निर्विकृतिक न ग्राह्य, तथाविधकारणे तु सति खण्डादिग्रहण यतनया कार्य २। उत्कटद्रव्याणि अपि न ग्राह्याणि ३। आर्द्रहरितशाकोऽपि न ग्राह्यः ४। घृततैलादि व्याघारितशाकोऽपि न ग्राह्यो, धूमितस्तु ग्राह्य ५। तलितपर्पटसीरावटिकादिकमपि न ग्राह्य ६। अन्नादिपरिवेपिका स्त्री कृतरात्रिप्रायश्चित्ता शुद्ध्यति नाऽन्यथा ७। अन्नादिपरिवेपिकाया वस्त्राणि दण्डितखण्डितादिकानि न शुद्ध्यन्ति ८। जेमनादिभूमिस्थानमपि कृतरात्रिप्रायश्चित्तया दण्डितखण्डितादिवस्त्ररहितया प्रमार्जित शुद्ध्यति ९। यावन्ति च वस्त्राद्युपकरणानि तपःप्रवेशप्रथमदिने गृहीतानि भवन्ति तानि सर्वाण्यपि भोग्याभोग्यानि उभयकाल प्रतिलेख्यानि १०। जेमनस्थालीकच्चोलकादीनि तु जेमनदिने पादोनप्रहरप्रतिलेखनासमये प्रतिलेखनीयानि नाऽन्यदा भोजनाभावात् ११। कदाचित् हारकुण्डलादिक गृहीत स्वदेहादुत्तार्य स्वगृहादौ मोच्य भवेत् तदा विना उपधान यया स्त्रिया अहोरात्रपौषधो गृहीतोऽभवेत् तस्या हस्ते रात्रौ, न तु दिने उपधानवाहिन्या देय, सा च प्रातः तदुक्तस्थाने मुञ्चति १२। उपधाने सर्वाणि वस्त्राणि स्वय वा मालिकया वा प्रतिलेखितानि शुद्ध्यन्ति १३। सर्व क्रियानुष्ठान आदेशनिर्देशादिक मालिकादेशेन शुद्ध्यति १४। क्रियानुष्ठानकारिका मालिकाऽप्युभयकाल प्रतिक्रमण करोति, रात्रिप्रायश्चित्त करोति, सप्तवाराश्च देवान् वन्दते तदा शुद्ध्यते नाऽन्यथा १५। रजस्वला दिनत्रय तपसि न पतति १६। महाअ-

स्वाध्यायसत्क ७।८।९ सप्तम्यादिदिनत्रय तपसि न पतति १७। प्रतिक्रमणमध्ये प्रभाते नमस्कारप्रत्याख्यानमेव कार्यं, ततो गुरुसमीपे क्रियावसरे उपवास आचाम्ल निर्विकृतिकं एकाशनं वा कार्यं १८ । प्रत्याख्यानपारणसमये पूर्वं नमस्कार-प्रत्याख्यान पारयति, ततः उपवासादिक १९। प्रथमोपधानद्वयप्रवेशदिने मालादिने च यदि नन्द्याडम्बरेण उत्सूरता भवति पौषधादि कर्तुं न शक्यते, तदा तृतीयप्रहरप्रतिलेखनानतर सर्वोपकरणानि प्रतिलिख्य रात्रिपौषधोऽवश्य ग्राह्यः २०। प्रातरुपधानवाही गुरुसमीपे समागत्य ईर्यापथिकीं प्रतिक्रम्य पौषध सामायिक च लात्वा प्रतिलेखना अङ्गप्रतिलेखनां च करोति, ततो मुखवस्त्रिकां प्रतिलिख्य उवहि पडिलेहण सदिसावेमि उवहि पडिलेहण करेमीति क्षमाश्र-मणद्वय ददाति, ततो वन्दनकपट्टदानानन्तर क्षमाश्रमणदशक ददाति, तत्क्रमश्चायं—बहुवेल सदि० १ बहुवेल करेमि० २ बइसण स० ३ बइसण ठाएमि ४ सज्झाय संदि० ५ सज्झाय क० ६ पांगुरण सदि० ७ पांगुरण पडिग्गहेमि ८ कट्ठा-सण सदि०९ कट्ठासण पडिग्गहेमि १०। ततो वन्दनकद्वयदानपूर्वं सुखतपःपृच्छा २१। सन्ध्यायामपि एवमेव क्रिया करण, नवर पूर्वं प्रतिलेखना अङ्गप्रतिलेखना च करोति, न उवहि प्रतिलेखना । ततो गुरोर्वन्दनकपट्टदानानन्तर क्षमाश्रमणदशकदानमिव उवहि पडिलेहण सदि० उवहि पडिलेहण करेमि २ सज्झायं सदि० ३ सज्झाय क० ४ बइ-सणं सं० ५ बइसण ठा० ६ शेष पूर्ववत् १०। २२। पृथक् प्रतिक्रमणसद्भावत पाक्षिकवन्दनकानि सुखतपःपृच्छा-पर्यन्तां क्रिया सर्वामपि कृत्वा देयानि २३। मालापरिधाने सन्ध्यायां माला अभिमन्त्रयित्वा स्वगृहे रात्रिजागरण कृत्वा

प्रातर्गच्छाधिपतिपार्श्वे माला परिधातव्या, तदनु तत् दिनात् दिनदशक दशाह्निका कार्या, तत्र पौषधग्रहणाभावेऽपि त्रिविधाहारमेकाशनं कुर्वन् उपधानवाही च निरारम्भस्तिष्ठति २४ । सर्वाण्यपि उपधानानि उत्कृष्टविधिना वहनीयानि तदभावे श्रावकैः एकान्तरोपवासैः, साधुभिस्तु उपवासाचाम्लनिर्विकृतिकैकाशनै कृत्वा तावन्त उपवासाः पूरणीया न दिनसंख्या नियमोऽस्ति २५ । इति नित्यकर्तव्यता ॥ १० ॥

अथ पडिपुन्ना विगइ पारणाविधिमाह—प्रातर्गुरो समीपे समागत्य पृथक् प्रतिक्रमणे कृते च मुखवस्त्रिका प्रतिलिख्य वन्दनकषट्क ददाति, गुरुभिः सम प्रतिक्रमणे कृते वन्दनकद्वयमेव ददाति, ततो गुरुर्भणति "पवेयण पवेयह" इति भणित्वा भणति पडिपुन्नाविगइपारण करेहत्ति, ततः किंचित् स्वेप्सित प्रत्याख्यान करोति, ततो भणति—गुरुसमक्ष समग्र उपधानमांहे अभक्ति आशातना कीधी हुवे ते मिच्छामि दुक्कड । इति पडिपुन्नाविगइपारणाविधि । ११ । ॥ ८७ ॥

॥ इति सप्तोपधानक्रिया–विधिरधिकारः ॥ ८७ ॥

ननु श्रावक–श्राविकाणा निर्विकृतिकप्रत्याख्यानेन उत्कटद्रव्याणि यानि त्याज्यानि सन्ति तानि कानि ? उच्यन्ते—

"खीरी खड खज्जूर सक्करादक्खदाडिमाई य । तिलवट्टी वडिवाइ, करवओ चूरिम च तहा ॥ ९६ ॥
नालिअर मोईअ, मडिअ सतलिय भज्जियाचणए । आसुरिअविलिआ, पणगाइ फिल्लाडियाइ तहा ॥ ९७ ॥
तंदुलकट्ठिअ दुद्ध, घोल एयाइ भूरिमेयाइ । उक्कोसगदवाइ, वज्जिज्जा निविगइअमि ॥ ९८ ॥"

इति श्रीसन्देहदोलावली ( पत्रे ११० ) सूत्रगाथात्रयवृत्त्यनुसारेण क्रियते—

तन्नामानि शृणु क्षैरेयी १ दुग्धराद्धसेविका २ खण्डः ३ खजूरः ४ शर्करा ५ द्राक्षा ६ दाडिमकुलिका ७ सहकार ८ राजादन ९ कदलीफल १० नागरङ्गजातिफलानि ११ द्राक्षादीनि नागरङ्गादिफलपर्यन्तानि सच्चित्तान्यपि उपायेन प्रासुकीकृतानि अत्र ज्ञेयानि, अन्यथा तद्भक्षणासम्भवः, गुडपर्पटिका १२ गुडधाना १३ कर्करीयकः १४ फाणित १५ इक्षुरस १६ कसार १७ वर्षोपलाः १८ शर्करातिलकाखण्डकतलीपर्यायाः १९ अमृतिका २० तिलकुट्टी २१ साऽपि सच्चित्ततिलाना चेत्तदा पर्युषिता अग्नितापतप्ता तदा सद्यस्काऽपि अपिसाना तदापि सद्यस्काऽपि कल्पते, वटकानि काञ्जिकमिश्रानि अमिश्रानां पक्वान्नविकृतित्वेन घोलमिश्राना जीवसंसक्तिमत्त्वेन निर्विकृतिके अभक्ष्यत्वात् २२ करम्बो–दधिकृतो दुग्धकृतो वा ज्ञेयः, नतु तक्रकृतः तस्य बदरचूर्णवत् नीरसत्वेनाऽनुत्कृष्टत्वात् २३ चूरिम घृतखण्डादि[गुड]मिश्रित मोदकादिचूर्णं २४ स्नेहमार्चिः २५ तथाकुग २६ कुक्कारि २७ सिद्धपडिका २८ घृततैलाद्येकतरम्रक्षितमण्डका २९ रोट्टिका ३० आस्तानक ३१ आम्लिका ३२ व्याघारिते पूरिका ३३ पूरणादि तेमनानि ३४ व्याघारित राजप्रहेलिका ३५ नालिकेरगरिका ३६ मोदकामण्डितस्नेहमिश्रिता कणिक्कानिष्पन्ना ३७ अग्नितापगलितपुटद्वयान्तर्न्यस्तगुडमिश्रा रोट्टिका घृताद्यतिम्रक्षितरोट्टिका वा ३८ भर्जिका वत्थुलादिशाकः, सापि उत्कालिते घृते तैले वा पक्वा ज्ञेया ३९ अपक्वचणकाः तेऽपि घृते तैले वा पक्वा ग्राह्याः ४० अन्यान्यपि छमकितघालनकानि ४१ आसुरिका–राजिका संस्कृतघोलद्रव्याद्यन्तर्निक्षिप्तखण्डीकृतसर्षपशाकादिः इय च सिन्धादिदेशे आसुरिति नाम्ना, जालन्धरे आसुरमिति नाम्ना, अन्यत्र राजिका तिक्तमिति नाम्ना च प्रसिद्धा पुना

च दधिकृता कृता ज्ञेया। यदुक्तं योगविधौ—'तद्दिवसकया दहीकया आसुरी न कप्पइ जोगवाहीणमिति' अतः काञ्जिकवटकपानीयभक्षणेऽपि न दोषः ४२ आम्लिकापानक चिंचापानक तद् आदिः यस्य तद् तथा, आदिशब्दात् ४३ द्राक्षापानक ४४ नालिकेरपानक ४५ खर्जूरपानक ४६ गुडपानक ४७ किलाटिका फेदहडिनामिका ४८ दुग्धसिद्धद्राक्षा ४९ खुडुहुडी ५० खारिक ५१ मल ५२ वटकादिव्यञ्जनानि ५३ तन्दुलक्वथित दुग्ध पेया इत्यर्थं । अल्पै षष्टिकादितन्दुलैः सम पक्वमित्यर्थः। इद तु तलस्थितसहपक्व तन्दुलादीनामुपरि चत्वारि अङ्गुलानि यावत् मृद्ध ज्ञेय, तदूर्ध्वं वर्धमानं विकृतिरेव, क्षैरेयी तु सान्द्रा भवतीति न तया पौनरुक्त्य ५४ हस्तविलोडितो निर्जलो दधिघोल', स तु विकृतिरेव, पर यो हस्तविलोडित सजलो दधिघोल स उत्कृष्टद्रव्य ५५ गुडमाधुरा ५६ शिखरणी ५७ निर्भञ्जनानि ५८ इत्यादीनि ज्ञेयानि । अत्र पूर्वं नामग्राह अनेकानि उत्कृष्टद्रव्याणि उक्तानि । अथ एषामेय विकृतिनिष्पन्नाना नानादेशजत्वेन दुर्लक्षाणा सुखाववोधार्थं व्यापकलक्षणमाह—

"विगई दवेण हया, जात उक्कोसिअ भवे दव।" 'विकृति ' क्षीरादिका द्रव्येण तन्दुलादिना हता भग्ना, मोरिता निर्वीर्यीकृतेति यावत्, या काचन पायसादि उत्कर्षित उत्कर्षितसञ्ज्ञ भवेत् ॥ 'द्रव्यम्' उत्पन्नरसवीर्यविपाकान्तरत्वात् यथा मथित खण्डादिरसेन हतं शिखरणी १ घृत कणिक्कादिना मिश्रित कूळरिः, चूरिम वा २ वटकादि पक्वान्न काञ्जिकादिनोपहत काञ्जिकवटिकादीनि, पर्पटसुकुमारिकादिरसेणोपहत तैल घृत वा निर्भञ्जन ४ शुण्ठीचूर्णरसेन हतो गुडपाको गुडपर्पटिका ५ इत्यर्थः ॥ पुनरुक्तद्रव्यविस्तराधिकारमिच्छता सन्देहदोलावली-सूत्रवृत्तिप्रमुखा ग्रन्था द्रष्टव्या ॥ ८८ ॥

॥ इति उत्कटद्रव्याधिकार ॥ ८८ ॥

खरतरगच्छाधीशा, जिनचन्द्रयुगप्रधानगुरुराजाः । श्रीपातिसाहिमान्याः, समभूवन् भूमिविख्याता ॥ १ ॥
श्रीपूज्यमुख्यशिष्याः, दक्षाः श्रीसकलचन्द्रनामानः । मद्गुरवो गुणगुरव–स्तेषामेष प्रसादो मे ॥ २ ॥
इत्येव सप्तदशभि–स्तुर्यं प्रश्नोत्तरैः स्फुटम् । प्रकाश कृतवान् पूर्णं, गणि समयसुन्दर ॥ ३ ॥

इति श्रीसमयसुन्दरोपाध्यायविरचिते सामाचारीशतके पञ्चमप्रकाशे चतुर्थः प्रकाशः समाप्तः ॥ ४ ॥

## ॥ अथ पञ्चमः प्रकाशः ॥

॥ श्रीमत्स्थम्भणपार्श्वनाथाय नमः ॥

---

ननु–साध्वीभिर्दशाश्रुतस्कन्धादिच्छेदग्रन्था वाच्यन्ते न वा ? उच्यते–स्वत एव पर न सभाबन्धेन, निषिद्धत्वात् , स्वतो वाचनं तु संगतिमङ्गति । यतः तत्तपोवहन तासां निर्दिष्टमस्ति, अन्यथा तत् तपोवहन अपार्थक स्यात् अपि च 'अम्सेसिं च पवेयणीअमि ति' ता न भणन्ति, अत एव स्वतो वाच्यते, न वाचना अनुज्ञाता तासाम् ॥ ८९ ॥

॥ इति साध्वीना स्वत कल्पसूत्रादिवाचनाधिकारः ॥ ८९ ॥

ननु–प्रतिक्रमणद्वय करणे षडावश्यकाना कुत्र कुत्र आद्यन्तौ व्यवस्थापितौ ? उच्यते–अत्र वृद्धसप्रदाय एव, तत्र सायन्तनप्रतिक्रमणे 'करेमि भते' इत्यत आरम्य अतिचारकायोत्सर्गपारण यावत् सामायिकावश्यक प्रथम १ । ततश्चतुर्विंशतिस्तवप्रान्ते चतुर्विंशतिस्तवआवश्यकं द्वितीय २ । ततो मुखवस्त्रिकाप्रतिलेखनपूर्वं वन्दनक आदितः कृत्वाऽऽलोचनासूत्रं यावत् तृतीय वन्दनावश्यक ३ । तत प्रतिक्रमणसूत्रत आरम्य क्षामणावन्दनपूर्वं आयरियउवज्झाए गाथात्रयप्रान्त यावत् चतुर्थं प्रतिक्रमणावश्यक ४ । ततः चारित्रदर्शनज्ञानाना कायोत्सर्गत्रयकरणेन पञ्चम कायोत्सर्गावश्यक ५ । षष्ठ तु प्रत्याख्यानरूप आवश्यक ६ पूर्वं कृतमिति। प्राभातिकप्रतिक्रमणे तु षडावश्यकानि अनुक्रमेण भवन्ति, तथाहि—करेमि भते

इत्यत आरभ्य चारित्रदर्शनज्ञानकायोत्सर्गपर्यन्त प्रथम सामायिक आवश्यक १। ततो लोकोद्द्योतकरसपूर्णभणनरूप द्वितीय चतुर्विंशतिस्तवावश्यक २। ततो वन्दनालोचनपर्यन्त तृतीय वन्दनावश्यक ३। तत प्रतिक्रमणसूत्रमारभ्य आयरिय उवज्झाए गाथात्रयपर्यन्त यावत् चतुर्थ प्रतिक्रमणावश्यक ४। ततः कायोत्सर्गकरणपूर्व लोकोद्द्योतकरभणनपर्यंत पञ्चम कायोत्सर्गावश्यक ५। ततो वन्दनकदानपूर्व प्रत्याख्यान क्रियते तत् प्रत्याख्यानावश्यक षष्ठ ६ ॥ ९० ॥

॥ इति षडावश्यकाना आद्यन्तव्यवस्थाधिकारः ॥ ९० ॥

ननु-विंशतिस्थानकतपस का गाथा ?, तत् तपसि च किं गुणन ? तत्रोच्यते—

"अरिहंत-सिद्ध [ चेइय ] पवयण-गुरु-थेर-बहुस्सुए तवस्सीसु। वच्छलया य तेसिं, अभिक्ख नाणोवओगे य ॥ १ ॥
दंसण-विणए आवस्सए अ सीलवए निरइयार। खणलव-तव-च्चिआए, वेयावच्चे समाही अ ॥ २ ॥
अपुव्वनाणग्गहणे, सुअभत्ती पवयणे पभावणया। एएहिं कारणेहिं, तित्थयरत्त लहइ जीवो ॥ ३ ॥"

गुणन इद प्रथमस्थानके तपसि नमो अरिहंताण २००० गुणन अर्हता अष्टप्रकारपूजा क्रियते १। द्वितीयस्थानके नमो सिद्धाणं २००० गुणन पुण्डरीकादिसिद्धभक्तिः क्रियते २। तृतीये नमो पवयणस्स २००० गुणन सघस्स पुस्तकस्य वा भक्तिः क्रियते ३। चतुर्थे नमो आयरियाण २००० गुणन वन्दनादिगुरूणा भक्ति क्रियते ४। पञ्चमे नमो थेराण २००० गुणनं वृद्धस्थविराणां विश्रामणादि भक्ति क्रियते ५। षष्ठे नमो उवज्झायाण २००० गुणनं बहुश्रुतानां भक्तिः क्रियते ६। सप्तमे नमो लोए सव्वसाहूण २००० गुणनं तपस्विनां भक्तिः क्रियते ७। अष्टमे नमो नाणस्स २०००

गुणन पूर्वपठितपाठो गुण्यते ८ । नवमे नमो दसणस्स २००० गुणन निरतिचार शुद्धं सम्यक्त्व पाल्यते ९ । दशमे नमो
विणयसंपन्नाण २००० गुणन देवगुरुवृद्धाना विनयभक्ति क्रियते १० । एकादशे नमो चारित्तस्स २००० गुणन कालवे-
लाया प्रतिक्रमणद्वयं क्रियते ११ । द्वादशे नमो वंभवयधारिणं २००० गुणन द्वादशव्रतपालन विशेषतः क्रियते १२ । त्रयो-
दशे नमो किरिआण २००० गुणन सामायिकादिक्रियाया प्रमादो न क्रियते १३ । चतुर्दशे नमो तवस्सीण २००० गुणन
विशेषतस्तपः क्रियते १४ । पञ्चदशे नमो गोयमस्स २००० गुणन सुपात्राय दान दीयते १५ । षोडशे नमो जिणाण २०००
गुणन देवाना वृद्धाना च वैयावृत्य क्रियते १६ । सप्तदशे नमो चारित्तधारिण २००० गुणन पौषधपूर्व मन समाधिना स्थात-
व्य १७ । अष्टादशे नमो नाणस्स २००० गुणन नवीन श्रुताभ्यास क्रियते १८ । एकोनविंशे नमो सुअस्स २००० गुणन
वेष्टनकदवरकादिना पुस्तकपूजा क्रियते १९ विंशे नमो पवयणस्स २००० गुणन जिनशासनोन्नति प्रभावना क्रियते २०
सर्वत्र स्थानकेषु उत्कृष्टतः त्रिकालदेववन्दन १ भूमिसस्तारके शयन २ त्रिकाल देवपूजन ३ उभयकाल प्रतिक्रमण
कर्तव्य ४, एतत्सर्वं सयोगाभावेऽपि च पञ्चशक्रस्तवै देववन्दन कर्तव्यमेव, तप पूर्ते च विंशतिमोदकादिसर्वपक्वान्नढौक-
नपूर्व देवगृहे स्नात्र विधाय सघभक्तिः क्रियते ॥ ९१ ॥

॥ इति विंशतिस्थानकतपोविधिरधिकारः ॥ ९१ ॥

ननु-भोजनानन्तर संवरणे वन्दनकानि दीयन्ते-क्रियते तानि किं भुक्तै अभुक्तैर्वा दीयन्ते ? उच्यते—भुक्तैरेव नाऽभुक्तै
यतो वन्दनकचूर्णौ अभुक्ताना नियतानि चतुर्दशवन्दनानि अहोरात्रमध्ये प्रोक्तानि, भुक्ताना तु पञ्चदशेति तथा च—

तत्पाठः—एआणि पुवण्हे सत्त एवं अवरण्हे वि सत्त भवन्ति, अणुण्णा वदणगानि सज्झायवंदणगेसु पविसति त्ति काऊ सज्झायवंदणगाणि तिन्नि पडिक्कमणवंदणगाणि चत्तारि पसिद्धाणि चेवत्ति सत्त एव चउद्दस हवति अब्भत्तट्ठिअस्स, भत्तट्ठिअस्स पुण पच्चक्खाणवंदणगेण सहिआणि पणरस भवति त्ति १ एव श्रीप्रवचनसारोद्धारे पञ्चसप्ततिद्वारेऽपि ( १८४ पत्रे ) तथाहि—

"चत्तारि पडिक्कमणे, किइकम्मा तिण्णि हुंति सज्झाए । पुवह्णे अवरह्णे, किइकम्मा चउदस हवति ॥ ६४८ ॥"

व्याख्या—चत्वारि प्रतिक्रमणे कृतिकर्माणि—वन्दनकानि भवन्ति, तत्र आलोचनवन्दनक प्रथम १ क्षामणकवन्दनक द्वितीय २ आचार्यप्रभृति—सर्वसघस्य क्षमणपूर्वमाश्रयणाय वन्दनकं तृतीय ३ प्रत्याख्यानवन्दनक चतुर्थ ४ तथा स्वाध्याये त्रीणि वन्दनकानि, तत्र स्वाध्यायप्रस्थापने एक वन्दनक १ स्वाध्यायप्रवेदने द्वितीय २ स्वाध्यायकरणानन्तर च तृतीय ३ एव पूर्वाह्णे—प्रत्युषसि सप्तवन्दनकानि, अपराह्णे अपि एतानि एव सप्त, कालग्रहणोद्देश १ समुद्देशा २ अनुज्ञादि ३ वन्दनकाना स्वाध्यायवन्दनेषु एव अन्तर्भावात्, सदैव एतानि ध्रुवाणि कृतिकर्माणि प्रतिदिवस चतुर्दश भवन्ति १, अभक्तार्थिकस्य । भक्तार्थिकस्य तु अपराह्णे प्रत्याख्यानवन्दनकेनाऽभ्यधिकानि इति पञ्चदश भवन्तीति २ ॥ एव श्रीआवश्यकचूर्णावपि ( ४० पत्रे )

पभाए पुण संझाए चत्तारि—पडिक्कमणे वदित्ता अलोएति एक, बितिअं जं अब्भुट्ठियतावसाणे मज्झे वंदति, मज्झवंदणए कति वदितव्वा ?, जहण्णेणं तिण्णि मज्झिमेण पच वा सत्त वा उक्कोसेणं सव्वेवि, जदि वारका बहवो वा तो

एगेण ऊणगो दोहिं तिहिं जाव तिण्णि अवस्स वदितवा, एवं देवसिए वि। पक्खिए पच अवस्स, चातुम्मासिए सवत्सरिए य सत्त अवस्स, ते वदितूण ज आयरिअस्स अल्लिविज्जति तं ततिअ किइकम्म, पच्चक्खाणे चउत्थ किइ-कम्मं। तिण्णि सज्झाए–वदित्ता पट्ठवेति पढम, पट्ठविते पवेयतस्स वितिय, पच्छा पढति, ततो जाहे चउब्भागावसेसा, पोरिसी ताहे पादे पडिलेहिति, जदि न पढति तो वदति, अह पढति तो अवदित्ता पात पडिलेहेतूण पच्छा पढति, काल-वेलाए वदितु पडिक्कमति, अह उग्घाडकालिअ न पढति ताहे वदितु पादे पडिलेहिति, एत ततिय, एव पुव्वण्हे सत्त अवरण्हे वि एते चेव सत्त, एताणि अब्भत्तट्ठिअस्स नियमा, भत्तट्ठिअस्स पच्चक्खाणं अब्भहिअ एताणि अवस्स चोद्दस, इत्यादि ३ इत्यमेव श्रीबृहत्कल्पभाष्ये तद्वृत्तौ ( तृतीये उद्देशे ) च तथाहि—

"दुगसत्तगकिइकम्मस्स अकरणे होइ मासिय लहुग। आवासगविवरीए, ऊणऽहिए चेव लहुओ उ[त्ति] ॥ ४४६९ ॥

वृत्तिः–'दुगसत्तग'त्ति द्वे सप्तके चतुर्दश भवन्तीति कृत्वा पूर्वाह्णाऽपराह्णयोः चतुर्दश वन्दनकानि भवन्ति, कथमिति चेदुच्यते–इह रात्रि–प्रतिक्रमणे चत्वारि वन्दनकानि, तत्रैक आलोचनाया १, द्वितीय क्षामणके २, तृतीयं षाण्मासिक-तपश्चिन्तनकायोत्सर्गार्थं ३, चतुर्थं प्रत्याख्यानग्रहणार्थं इति ४ तथा स्वाध्याये त्रीणि वन्दनकानि, तत्र वृद्धसम्प्रदाय, सज्झाए वदित्ता पट्ठवेइ, एय पढम १, पवेयं तस्स बीइयं २, पच्छा उद्दिट्ठ समुद्दिट्ठ पढइ, उद्देस–समुद्देस–वदणाण–मिहेव तब्भावो तओ जाहे चउभागावसेसा पोरिसी ताहे पाए पडिलेहेइ जइ न पढिउकामो तो वदइ अह पढिउकामो ताहे अवदित्ता पाए पडिलेहेइ, पडिलेहित्ता पच्छा पढइ, कालवेलाए वंदिउ पाए [पडिलेहण पडिक्कमइ] एयं तइय ३। एत्र पूर्वाह्णे

सप्तवन्दनकानि, अपराह्णेऽपि एवमेव सप्त भवन्ति। तत्र चत्वारि दैवसिकप्रतिक्रमणे, त्रीणि स्वाध्याये अनुज्ञावन्दनाना स्वाध्यायवन्दनेषु अन्तर्भावादिति सर्वसङ्ख्यया चतुर्दश वन्दनकानि भवन्ति, एतच्चाऽभक्तार्थिकं अङ्गीकृत्योक्तं, यस्तु भक्तार्थिकस्तस्य भोजनानन्तरभाविप्रत्याख्यानवन्दनकसहितानि पञ्चदश भवन्ति इति, एतेषां मध्यात् एकतरस्याऽपि कृतिकर्मणोऽकरणे मासकं लघुकं प्रायश्चित्तं भवति ॥ ४४१९ ॥ एवं आचारदिनकरेऽपि नवाङ्गीवृत्तिकारक–श्रीअभयदेवसूरिसन्तानीयैः श्रीरुद्रपल्लीगच्छीयैः श्रीवर्धमानसूरिभिः प्रोक्तं, तथाहि—तत्र यः किलाऽऽहारग्राही भवति तदा स वन्दनकद्वयं ददाति, यो नाऽऽहारग्राही तस्य नेति, इत्यादिग्रन्थानुसारेणाऽभक्तार्थिकस्य चतुर्दश वन्दनकानि भवन्ति, भक्तार्थिकस्य च पञ्चदश वन्दनकानि ज्ञेयानि, पश्चात् गच्छरीतिरपि प्रमाणमिति संवरणे भुक्तैरेव वन्दनकानि देयानि नाऽभुक्तैरिति ॥ ९२ ॥

॥ भोजनानन्तर संवरणे वन्दनकानां अधिकारः ॥ ९२ ॥

ननु–चैत्राश्विनमासयोः अस्वाध्यायमेलनस्वाध्यायोच्चारणविधिः कः? उच्यते—चैत्राश्विनमासयो द्वितीयपक्षे प्रतिपदि द्वितीयां वा मुख्यविहारिसाधोः चन्द्रादिबले मुहूर्ते च शुभे सति कल्पत्रेपमेलनं क्रियते, तत्राऽयं विधिः—स्थापनाचार्याग्रे समागत्य ईर्यापथिकीं प्रतिक्रम्य मुखवस्त्रिकां प्रतिलेख्य वन्दनकद्वयं दत्त्वा "इच्छामि खमासमण" इत्यादि क्षमाश्रमणपूर्वं "सज्झाय निक्खिवित्तं" द्वितीयक्षमाश्रमणेन "सज्झायनिक्खिवणत्थं काउस्सग्गं करु", तृतीयक्षमाश्रमणेन "सज्झाय निक्खिवणत्थं करेमि काउस्सग्गं असस्सूसस्सिपण"मित्यादिपाठपूर्वं कायोत्सर्गं, तत्र नमस्कारं एकं चिन्तयित्वा पुनर्नमस्कारं एकं कथयित्वा अणुजाणिज्जो इति कथनं। अथोच्चारणविधिः—यथाहि, वैशाख–कार्तिकमासयोः प्रथमपक्षे द्वितीयायां [illegible]

चन्द्रादिबले सिद्धियोगे सति कल्पत्रेपोत्तारणा-
वारे बृहस्पतिवारे वा भरण्यादिवर्जिते चतुष्पादके नक्षत्रे मुख्यविहारिसाधो मुखवस्त्रिका प्रतिलेख्य वन्दनकद्वय च दत्त्वा
नन्तर मध्याह्नाद् परतः सायतनप्रतिक्रमणानन्तर वा ईर्यापथिकीं प्रतिक्रम्य "सज्झाय उक्खिवणत्थं काउस्सग्गं करु इच्छ सज्झाय उक्खिव-
प्रथमक्षमाश्रमणेन "सज्झाय उक्खिवऊ" द्वितीयक्षमाश्रमणेन सागरवरगम्भीरापर्यन्तं लोकोद्‌द्योतकर चिन्त-
णत्थं करेमि काउस्सग्ग अन्नत्थ०" इत्यादि कथनपूर्व कायोत्सर्ग कृत्वा तत्र कायोत्सर्ग क्रियते, तत्र लोको-
यित्वा पारिते च सपूर्णः कथ्यते १। पुनः क्षमाश्रमणदानपूर्व "असज्झाय–उहडावणत्थ" कायोत्सर्ग कृत्वा लोको
द्‌द्योतकरचतुष्टय चिन्त्यते, पारिते च सपूर्णः २। पुनः क्षमाश्रमणपूर्व "खुद्दोवद्दवउहडावणत्थ" शक्रादिसमस्तवेयावच्चगरदेवतानिमित्त कायोत्सर्गः
द्‌द्योतकरचतुष्टय चिन्तयित्वा पारिते सपूर्णः ३। पुनः क्षमाश्रमणदानपूर्व कथयित्वा, क्षमाश्रमणदानपूर्व "सज्झाय सदिसा-
क्रियते तत्राऽपि लोकोद्‌द्योतकरचतुष्टय चिन्तयित्वा पारिते सपूर्णमेक तत्र नमस्कारत्रयपूर्व "धम्मो-
वेमि सज्झायं करेमि निसीहिआए मत्थएण वदामि" इत्युक्ते पूर्वमुपविश्य स्वाध्याय क्रियते, साधुभि प्रत्येक वन्दना
मगलमुक्किट्ठमि"त्यादि षड्जीवनिकायाध्ययन यावत् मधुरस्वरेण स्वाध्याय कर्तव्य । ततोऽनुज्येष्ठ
कर्तव्या, मुख्यविहारिणा वाच्य च "सिद्धाव भणओ भणावओ तप वहओ वहडावओ" इत्यादि ॥ ९२ ॥
॥ इति अस्वाध्यायमेलनाऽस्वाध्यायोत्तारणविधिरधिकार ॥ ९२ ॥
ननु–द्वितीया–पञ्चम्यष्टम्येकादशी–चतुर्दशीरूपाः पञ्चतिथयो या विद्यन्ते तासु धर्मार्थिनो विशेषेणैकाशन–विकृतिमत्या-

सप्तवन्दनकानि, अपराह्णेऽपि एवमेव सप्त भवन्ति। तत्र चत्वारि दैवसिकप्रतिक्रमणे, त्रीणि स्वाध्याये अनुज्ञावन्दनानां स्वाध्यायवन्दनेषु अन्तर्भावादिति सर्वसङ्ख्यया चतुर्दश वन्दनकानि भवन्ति, एतच्चाऽभक्तार्थिकं अङ्गीकृत्योक्तं, यस्तु भक्तार्थिकस्तस्य भोजनानन्तरभाविप्रत्याख्यानवन्दनकसहितानि पञ्चदश भवन्ति इति, एतेषां मध्यात् एकतरस्याऽपि कृतिकर्मणोऽकरणे मासकं लघुकं प्रायश्चित्तं भवति ॥ ४४६९ ॥ एवं आचारदिनकरेऽपि नवाङ्गीवृत्तिकारक–श्रीअभयदेवसूरिसन्तानीये श्रीरुद्रपल्लीगच्छीये श्रीवर्धमानसूरिभिः प्रोक्तं, तथाहि—तत्र यः किलाऽऽहारग्राही भवति तदा स वन्दनकद्वयं ददाति, यो नाऽऽहारग्राही तस्य नेति, इत्यादिग्रन्थानुसारेणाऽभक्तार्थिकस्य चतुर्दश वन्दनकानि भवन्ति, भक्तार्थिकस्य च पञ्चदश वन्दनकानि ज्ञेयानि, पश्चात् गच्छरीतिरपि प्रमाणमिति संवरणे मुक्तैरेव वन्दनकानि देयानि नाऽमुक्तैरिति ॥ ९२ ॥

॥ भोजनानन्तरं संवरणे वन्दनकानां अधिकारः ॥ ९२ ॥

ननु–चैत्राश्विनमासयोः अस्वाध्यायमेलनऽस्वाध्यायोत्तारणविधिः कः? उच्यते–चैत्राश्विनमासयो द्वितीयपक्षे प्रतिपदि द्वितीयां वा मुख्यविहारिसाधोः चन्द्रादिबले मुहूर्ते च शुभे सति कल्यत्रेपमेलनं क्रियते, तत्राऽयं विधिः—स्थापनाचार्याग्रे समागत्य ईर्यापथिकीं प्रतिक्रम्य मुखवस्त्रिकां प्रतिलेख्य वन्दनकद्वयं दत्त्वा "इच्छामि क्षमाश्रमण" इत्यादि क्षमाश्रमणपूर्वं "सज्झाय निक्खिवउं" द्वितीयक्षमाश्रमणेन "सज्झायनिक्खिवणत्थं काउस्सग्गं करुं", तृतीयक्षमाश्रमणेन "सज्झाय निक्खिवणत्थं करेमि काउस्सग्गं अन्नत्थूससिएणं"मित्यादिपाठपूर्वं कायोत्सर्गं, तत्र नमस्कारं एकं चिन्तयित्वा पुनर्नमस्कारं एकं कथयित्वा अणुजाणिज्जो इति कथनं। अथोत्तारणविधिः—यथाहि, चैत्रा–कार्तिकमासयोः प्रथमपक्षे द्वितीयातः पश्चात् सोम-

वारे बृहस्पतिवारे वा भरण्यादिवर्जिते मृदुध्रुवक्षिप्रके नक्षत्रे मुख्यविहारिसाधोः चन्द्रादिबले सिद्धियोगे सति कल्पत्रेपोच्चारणानन्तरं मध्याह्नात् परतः सायतनप्रतिक्रमणानन्तरं वा ईर्यापथिकीं प्रतिक्रम्य मुखवस्त्रिकां प्रतिलेख्य वन्दनकद्वयं च दत्त्वा प्रथमक्षमाश्रमणेन "सज्झायं उक्खिवऊ" द्वितीयक्षमाश्रमणेन "सज्झाय उक्खिवणत्थं काउस्सग्गं करु इच्छं सज्झाय उक्खिवणत्थं करेमि काउस्सग्गं अन्नत्थ०" इत्यादि कथनपूर्वं कायोत्सर्गं कृत्वा तत्र सागरवरगम्भीरापर्यन्तं लोकोद्द्योतकरं चिन्तयित्वा पारिते च संपूर्णः कथ्यते १। पुनः क्षमाश्रमणदानपूर्वं "असज्झाय-उहडावणत्थं" कायोत्सर्गः क्रियते, तत्र लोकोद्द्योतकरचतुष्टयं चिन्त्यते, पारिते च संपूर्णः २। पुनः क्षमाश्रमणपूर्वं "खुद्दोवद्दवउहडावणत्थं" कायोत्सर्गं कृत्वा लोकोद्द्योतकरचतुष्टयं चिन्तयित्वा पारिते संपूर्णः ३। पुनः क्षमाश्रमणदानपूर्वं शक्रादिसमस्तवैयावृत्त्यकरदेवतानिमित्तं कायोत्सर्गं क्रियते तत्राऽपि लोकोद्द्योतकरचतुष्टयं चिन्तयित्वा पारिते संपूर्णमेकं कथयित्वा, क्षमाश्रमणदानपूर्वं "सज्झाय संदिसावेमि सज्झाय करेमि निसीहिआए मत्थएण वंदामि" इत्युक्ते पूर्वमुपविश्य स्वाध्यायः क्रियते, तत्र नमस्कारत्रयपूर्वं "धम्मो मंगलमुक्किट्ठमि"त्यादि षड्जीवनिकायाध्ययनं यावत् मधुरस्वरेण स्वाध्यायः कर्तव्यः। ततोऽनुज्येष्ठं साधुभिः प्रत्येकं वन्दना कर्तव्या, मुख्यविहारिणा वाच्यं च "सिद्धांतं भणओ भणावओ तप वहओ वहडावओ" इत्यादि ॥ ९२ ॥

॥ इति अस्वाध्यायमेलनाऽस्वाध्यायोच्चारणविधिरधिकारः ॥ ९२ ॥

ननु-द्वितीया-पञ्चम्यष्टम्येकादशी-चतुर्दशीरूपाः पञ्चतिथयो या विद्यन्ते तासु धर्मार्थिनो विशेषेणैकाशन-विकृतिमत्या-

स्यानादिकं प्रत्याख्यानं कुर्वन्तो दृश्यन्ते । तत्राऽष्टमी–चतुर्दश्यो तपोनियमः क्रियमाणः सगच्छते, तयोः पुण्यतिथित्वेन लोके प्रसिद्धत्वात्, पर्वत्वेन आगमेषु उक्तत्वाच्च, पर्वणि च तपो बहुगुणमेव भवति, यदुक्त—

"उत्तरकरणं एगग्गया य आलोय–चेइयवंदणया । मगलधम्मकहा वि अ, पवेसु तवो गुणा हुति ॥ १ ॥"

न पुनर्द्वितीयादिषु तद्विपरीतत्वात् अथवा सत्कृत्यत्वात् असौ अविशेषेण पञ्चदशस्वपि तिथिषु युज्यते, न पुन प्रतिनियतासु तासां अनागमिकत्वेन मिथ्यात्वहेतुत्वात्, इति चेत् सत्य, यद्यपि एताः पुण्यदिनत्वेन लोके न प्रसिद्धा, नाऽपि पर्वत्वेनाऽऽगमेऽपि उक्ता दृश्यन्ते, तथापि केनाऽपि कारणेन बहुश्रुतैः आद्दताः, तथाहि–श्रावकविधौ पण्डितराजपरमार्हतधनपालेनोक्तम्—

"पचविहविसयसुख, उवभुजइ परमिएसु दिवसेसु । तीवाभिलासविरओ, परिहरओ पंचसु तिहिसु ॥ १ ॥"

इत्येता एव पञ्च तिथयः पञ्चदशीसहिताः षड् भवन्ति ता अपि श्रुतधरैः आद्दताः, तथाहि दिनकृत्ये ( ७ पत्रे )—

"छण्हं तिहीण मज्झंमि का तिही अज्ज वासरे । किं वा कल्लाणग अज्ज–लोगनाहाण [ मतिय ] सति य ॥२१॥" इति ।

ननु–सामान्योक्तौ कथ ज्ञायते तैः एता एव विवक्षिता नाऽन्या ? इति चेदुच्यते–वृद्धव्यवहारात् तेषामेव ग्रन्थान्तरे उक्तत्वाच, तथाहि तद्ग्रन्थः—"चउद्दि १ ठमि २ चउद्दसीसुं ३ च पुन्निम ४ वी एगारसि ५ पचमी ६ दोगासणादि तवं १ इति आगमिकवद्बहुमाननीयाः श्रुतधरवचनस्य प्रायः श्रुतमूलत्वादिति श्रीसन्देहदोलावलीवृहद्वृत्तौ चतुश्चत्वारिं

शङ्गाथा ४४ व्याख्याने । पुनर्महानिशीथे सप्तमाध्ययने, "अट्ठमी १ चउद्दसी २ नाणपचमी ३ पज्जोसवण ४ चाउमासिए ५ चउत्थाट्ठमछट्ठे न करिज्जा खवण"मिति ॥ ९४ ॥

॥ इति पञ्चतिथीना नामाधिकारः ॥ ९४ ॥

ननु-प्राभातिक प्रतिक्रमणं कुत्र स्थाने पूर्णीभूत कस्मात् स्थानात् छन्दनादोषो न भवति ? उच्यते-देववन्दनानन्तर श्रीआचार्यादिवन्दनाक्षमाश्रमणत्रये दत्ते सति रात्रिकप्रतिक्रमण सपूर्ण, ततः पर आन्तरणीदोषो न भवति, तथैव प्रतिक्रमण प्रान्तता, श्रीजिनप्रभसूरिभिः श्रीविधिप्रपायां लिखिता, तथाहि—"अरिहतचेइआइ इच्चाइ पढिय थुइचउक्केण चेइए वदेइ, जावति चेइआइ इच्चाइ गाहादुगथुत्त पणिहाणगाहाओ न भणेइ, तओ आयरियाइं वदेइ तओ वेलाए पडिलेहणाइ करेइ"त्ति । एवमेव तरुणप्रभसूरिकृतषडावश्यकबालावबोधेऽपि, तथाहि—"एगखमासमणि आचार्यमिश्र वांदीयइ, बीजै खमासमणि उपाध्यायमिश्र वादीयइ, त्रीजै खमासमणि सर्वसाधु वादीयइ एतलै रात्रिप्रतिक्रमण सपूर्ण थयु, तउ पछै कम्मभूमि पढमसंघयणि इत्यादि नमस्कार श्रीऋषभवर्धमानक इत्यादि स्तवनप्रतिलेखनाकुलकादिक 'अट्ठावयमि उसभो' इत्यादि प्रभातमागलिक्य भावनाकुलकसज्झाय करइ ॥ ९५ ॥

॥ इति प्राभातिकप्रतिक्रमणप्रान्तताधिकारः ॥ ९५ ॥

ननु-सामायिकस्थ श्रावक उत्तरीय प्रावरण प्रावृणोति किं वा केवलपरिधानशाटक एव तिष्ठति ? उच्यते—नोत्तरीयप्रावरण प्रावृणोति, तस्य सतोऽपि सामायिकग्रहणसमये व्युत्सर्जनत्वोक्तत्वात्, यदुक्त श्रीआवश्यकचूर्णौ, तथाहि—"सो भ

फिर सामाइअ करितो मउडं अपणेइ १ कुंडलाणि २ नाममुद्द ३ तबोल ४ पावारगमाइ वोसरइ" इति । तत सामायिकस्य उत्सर्गतः अप्रावरण एव तिष्ठति, तदानीं तस्य यतिभूतत्वात्, यदुक्त 'हेमंतेसु अवाउडे ति, समणो इव सावओ हवइ जम्हा' इति वचनाच्च, अपवादतस्तु काष्ठदाहशीतादिकारणमाश्रित्य त्रीणि उत्तरीयाणि प्रावरितु कल्पन्ते नाऽधिकानि, तान्यपि कालप्रतिलेखितानि तस्य यतिवृत्तित्वात् यतीनां च शीताद्यपवादे कल्पत्रयस्य क्रमेण प्रावरणाना ग्रहणमुक्त, तथैव च ओघनिर्युक्तिभाष्ये भणितं, तथाहि–"जाहे तह वि न तरे ताहे निविङ्गेण पाउणे खोम । तेण वि असंथरतो दो खोमि पाउणे ताहे ॥१॥" तहवि असंथरतो तईअ ओण्णि पाउणे" इत्येवमेव श्रीसन्देहदोलावलीसूत्रे ( ६८ पत्रे ) प्रोक्त, तथाहि—

"उस्सग्गनयेणं सावगस्स परिहाण साडगादवर । कप्पइ पाउरणाइ, न सेसमववायओ तिन्नि ॥ ४६ ॥"

यत एव प्रावरणपरिभोगः अपवादिकोऽत एव असौ परिधानाद् अन्यवस्त्र शीतदंशमशकादिकारणत प्रतिसेवितुकाम एव सामायिकग्रहणक्षणे प्रावरणं संदेशयति नाऽन्यथा यथा उष्णकालादौ इति भाव । ननु–कृतसामायिकाया श्राविकाया उत्सर्गतः कति वस्त्राणि प्रतिपादितानि सन्ति ? उच्यते—परिधानशाटिका १ कञ्चुक २ उपरितनांशुक चेति ३ वस्त्रत्रय स्वदेहे यथास्थानोपयुक्त सत् कल्पते । अयमभिप्रायो यद्यपि सामायिकग्रहणवेलायां परिधानादन्यः सर्वोऽपि परिग्रह सावद्यव्यापारहेतुत्वात् व्युत्सृज्यतया उक्तः, इति अप्रतिलेख्यत्वात् अञ्चनवत् कञ्चुलिकागुणितशाटिके न सामायिके परिभोक्तुं अर्हतः, तथाऽपि स्वस्याऽन्येषां च अशुभभावहेतुः दर्शनस्तननेत्रजघनाद्यङ्गावयवाच्छादकतया बहुगुणा, कञ्चुलिका शाटिका प्रच्छदपटा इत्येतान् सामायिकेऽपि न व्युत्सृजन्ति, जिनवचनबहुमानात् महासत्त्वः श्राविकाः तत

कय अन्यदा व्युत्सृजन्ति, तथा च या गृहिण्यो नीरोगा अपि सम्यक्त्वप्रतिपत्त्यनन्तर स्वदेशानुरोधाद्वा १ धर्मादि-कारणाद्वा २ वस्त्रमालिन्यादि भयाद्वा ३ यूकापातादिशङ्कया वा ४ वैधव्यस्थित्या वा ५ अपरिहितकञ्चुका अस्थानविदीर्णपरिधाना अस्थगितशिरसः परिधानाऽञ्चलस्थगितशिरसो वा स्त्रीवृन्दमध्येऽपि चिर तिष्ठन्ति । किं पुनः पुरुषा–लोके ता विराधका एव बोद्धव्याः प्रवचनलाघवहेतुत्वादिति, एवमेव कृतसामायिकाया श्राविकाया उत्सर्गतो वस्त्रत्रयस्यैव ग्रहण श्रीसन्देहदोलावलीसूत्रे ( ६९ पत्रे ) युगप्रधानश्रीजिनदत्तसूरिमिर्लिखितमस्ति, तथाहि—

"एव कयसामइया, वि साविगा पढमनयमएणेह । कडिसाडगकचुयमु–त्तरीज्ज–वत्थाणि धारेइ ॥ ४७ ॥" गाथा ।

ननु–कृतसामायिकश्राविकाया यद् वस्त्रत्रय उत्सर्गतः प्रतिपादित तद् ज्ञात, पर अपवादतः सा कियन्ति वस्त्राणि बिभृयात् ? उच्यते—शीतादिकारणे सति प्रागुक्तपरिधानशाटक–कञ्चुकोत्तरीयरूपाणा औत्सर्गिकवस्त्राणामुपरि पुन प्रावरणवस्त्रत्रयेण अङ्गानि आच्छादयति, अत एव शरीरलग्नवस्त्रत्रयादधिक एक द्वे वा त्रीणि वा च वस्त्राणि प्रावरीतुकामाऽपि असौ प्रावरण संदिशति एव प्रावृणोति नाऽन्यथा । प्रतिक्रमणे तु षोढाऽऽवश्यककरणवेलाया पुनस्त्रिपद शीताद्यवाधापवादपरिगृहीत प्रावरणरूप वस्त्रस्थानत्रय परिहरति, स्वस्थानोपयुक्तैकशाटिकाकञ्चुकोत्तरीयेभ्योऽन्यत् प्रतिक्रमणकाले श्राविकाया न कल्पते इत्यर्थः । इत्यमेव कृतसामायिकायाः श्राविकायाः अपवादपदेन श्रीजिनदत्तसूरियुगप्रधानैरपि सन्देहदोलावलीसूत्रे ( ६९ पत्रे ) प्रतिपादितमस्ति । तथाहि—

"बीअपएण तिण्हुवरि तिहिं तु वत्थेहिं पाउअगी उ । सामाइअवय पालइ, तिपय परिहरइ पडिक्कमणे ॥ ४८ ॥"

ननु–अपवादे निर्ग्रन्थानां कल्पसप्तकं अनुज्ञातमस्ति, तथाहि कल्पभाष्ये तृतीयोद्देशे—

"अप्पा असधरतो, निवारिओ होइ तिही वत्थेहिं । गिण्हति गुरुविदिण्णे, पगासपडिलेहणे सत्त ॥ ३९८५ ॥

तिन्नि कसिणे जहन्ने, पंच य पडिपुण्णलाइँ गेण्हेज्जा । सत्त य पडिजुआइ, एय उक्कोसग गहण ॥ ३९८६ ॥" इति,

'निवारितो होइ'त्ति अग्न्यादिविराधनातो निवारितो भवतीत्यर्थः । तत्कथ सामायिकस्थत्वेन निर्ग्रन्थतुल्यस्याऽपि श्राद्धस्य अपवादतः त्रीणि एव उक्तानि, कथ वा सामायिकस्थत्वेन निर्ग्रन्थीसमानायाः श्राविकाया अपि त्रीण्येव उक्तानि ? इति चेत् उच्यते–यतीनां यावत् जीविकव्रतत्वेन विकृष्टतपःकारित्वेन शीतलाहारभोजित्वेन अनभ्यक्तशरीरत्वेन प्रायो मलिन-जीर्णवस्त्रत्वेन अनियतोपाश्रयत्वेन रूक्षवृत्तित्वेन च शीत प्रचुरं लगति, तेन च सोढेन अल्पसहननत्वेन ते घन आबाध्यन्ते इति तेषा सप्त उपदिष्टानि, श्राद्धास्तु मुहूर्तमात्रपाल्यसामायिकव्रतत्वादिना तद्विपरीता इति तेषा कियतापि शीतेन सोढेनाऽपि न कदाचित् आबाधा भवतीति त्रीणि एव उक्तानि, एव श्राविकाणामपि भाव्यं, अत्यन्तापवादे तु एव "जहा समाहिं बहूणि वि कप्पाइं पाउणइ" इति वचनात् साधूनामिव द्वयानामपि एषा बहूनि अपि प्रावरीतु कल्पन्ते । यदि वा विकृष्टतपःप्रतिपत्तिवशात् यदा एष सामायिके चिरकाल तिष्ठति, यथोपधानतपोवाही, तदा अस्य गृहस्थस्याऽपि तावन्ति प्रावरणानि कल्पन्ते, यावद्भिः प्रावृतै शीतघर्मादिना न आक्रम्यते, यद्यपि उपधानतपोवाही पौषधस्थ एवोच्यते न सामायिकस्थः, तथापि पौषधे सति अवश्यमेव सामायिकं भवतीति, तदीया एव सर्वाऽपि उपसर्गोपबाधादिव्यवस्था

तत्र भवति, केवल शयासंस्तारकादिविधिः एवाऽत्राऽधिकः । तन्मूलस्य शयनविधेः पौषधे एव उक्तत्वादिति । 'पुष्वं जाहे तह वि' इत्याद्योघनिर्युक्तिभाष्येण कल्पत्रयस्य प्रावरणमेव अपवादिक साधोः उक्त । ननु ग्रहण, यतः औघिको पकरणान्तर्गतत्वेन उत्सर्गेण साधु कल्पत्रयं गृह्णाति यदुक्त चतुर्दशउपकरणसख्याया, 'तिन्नेव य पच्छादगा' इति केवलमिदं संवर्त्तितमेव सत् उत्सर्गेण वामस्कन्धेन वहति शीतवातादिकारणेन पुन प्रावृणोति, अत्र तु 'गिण्हई गुरुव दिन्ने' इत्यादिना कल्पभाष्येण कल्पसप्तकस्य ग्रहणमेव अपवादिकं उक्त, ततो यतिः उत्सर्गेण तिस्रः प्रच्छादकाः सगृह्णाति अपवादतस्तु सप्त प्रावृणोति च, तिस्रोऽपि सप्ताऽपि अपवादतः एवेति न पूर्वापरविरोध इत्यर्थ', पुनरत्राऽर्थे विस्तरार्थिना युगप्रधानश्रीजिनदत्तसूरिविरचितं सन्देहदोलावलीसूत्र तद्वृत्तिश्च द्रष्टव्ये ॥

इति साधूनां उत्सर्गे वस्त्राणामेकं, अपवादे त्रय, अत्यन्तापवादे सप्तक ।

कृतसामायिकश्राद्धाना उत्सर्गे एक, अपवादे त्रयं, श्राविकाणा उत्सर्गे त्रय अपवादे षट्क इत्यधिकारः ॥ ९६ ॥

ननु–"गुरुविरहंमि अ ठवणा" इति वचनप्रामाण्यात् काष्ठादिस्थापना स्थाप्यते तत् युक्तं, पर सा स्थापना गुरो वा अर्हतो वा यदि गुरोः तदा प्रतिक्रमणादौ क्रियमाणे शक्रस्तवपाठ' तदग्रे न युक्तः, अथ यदि अर्हत' स्थापना तदा 'गुरुविरहमि अ ठवणा' इति वाक्य हृदि निधाय तत् स्थापन असगत इव स्यात्, ततः किं तत्त्व ? तत्रोच्यते—एका काष्ठादिस्थापना पञ्चानामपि परमेष्ठिना अस्ति, अत्र पञ्चाऽपि परमेष्ठिन स्थापिताः सन्ति । अथ कश्चित् प्रेरयिष्यति श्राविकाभिः गुरूणा संघट्टो रक्षणीयः, तर्हि कथ आर्यिकाः स्थापनाचार्य स्थापयन्ति ? अथ निजमहत्तरा कल्प्यते इति चेत् तत्र स्थापनाचार्य

पञ्चपरमेष्ठिनः स्थाप्यन्ते न साध्व्यः तथा च स्थापनायां संघट्टो भवतीति अचेतनत्वात् तीर्थंकरस्थापनावत् यथा श्राविकाणां तीर्थंकरप्रतिमासंघट्टो न भवति एवं स्थापनाचार्यस्याऽपि । यदुक्तं श्रीव्यवहारभाष्ये दशमोद्देशके, तथाहि—

"दसविहवेयावच्चं, इमं समासेण होइ नायव्वं [ विण्णेयं ] । आयरिय-उवज्झाए, थेरे अ तवस्सि सेहे य ॥ १२३ ॥
अंतरकुलगणे य संघे साहम्मि वेयावच्चे अ । एएसिं तु दसण्हं, कायव्व तेरसपएहिं ॥ १२४ ॥" इति ।

परः प्राह—नन्वत्र आचार्यस्य वैयावृत्त्यं उक्तं न तु अर्हतः ? उच्यते—अत्र 'आयरिये' ति पदेन तीर्थङ्करो व्याख्यातोऽस्ति, यदुक्तम्—

"तित्थयरवेयावच्चं न भणियमित्थं तु किं न कायव्वं । किं वा न होइ निज्जर, तहिअ अह भेइआयरिओ ॥ १ ॥
"आयरियग्गहणेणं, तित्थगरो तत्थ होइ गहिओ उ । किं वा न होआयरिओ, आयर उवदिसते अ ॥ १३२ ॥"

तत एकस्यामेव स्थापनायां आवश्यकादिकरणकाले स्थापनाचार्य इति व्यपदिश्यते, चैत्यवन्दनवेलायां तु स्थापनाऽर्हन्निति, "जिणविरहंमि अ जिणबिंब ठावणे" ति वचनात् । न वाच्यं एकत्रैव अर्हद्व्यपदेशा आचार्यव्यपदेशश्च विरुध्येत, तदभिन्नयोः अर्हत्त्व-गुरुत्वयो एकत्वसद्भावस्य आगमे सस्थापितत्वात्, तच्च प्राग्व्यवहारभाष्यगाथाया आयरियपदेन द्वयमपि दर्शितं, तीर्थङ्करस्य च आचार्यत्वं सर्वत्र सिद्धान्तादिषु प्रतिपादितमस्ति । तत्र श्रीभगवत्यां ( ११५ पत्रे ) श्रीगौतमस्वामिना श्रीमहावीरदेवस्य धर्माचार्यस्य उक्तमस्ति, तथाहि—

समणे भगवं महावीरे उप्पन्ननाणदंसणधरे अरहा जिणे केवली तियपडुप्पन्नमणागयवियाणए" इत्यादि । पुनः श्रीभगवत्यां
कोणिकसंग्रामे गाढप्रहारजर्जरिताङ्गो नागपौत्रो वरुणनामा पर्यन्ताराधनाऽभिमुख प्राह "नमुत्थुण समणस्स भगवओ महा-
वीरस्स आइगरस्स जाव संपाविउकामस्स मम धम्मायरियस्स त्ति", पुनः श्रीविशेषावश्यकगाथायामपि धर्माचार्यत्वे—
"ठवणा वि य निअगुरुणो, सुचे भते त्ति जेण गणहारी । आमतइ तित्थयरं, सेसा य अप्पणो य गुरु ॥ १ ॥" इति ।
पुनः श्रीउपदेशमालासूत्रे श्रीधर्मदासगणिनाऽपि प्रोक्त—
"आयरिय[भत्ति]धम्मरागो, कस्स सुनक्खत्तमहरिसीसरिसो । अवि जीविअ ववसिअ, न चेव गुरुपरिभवो सहिओ ॥१००॥"
पुनः श्रीपञ्चमाङ्गे सिंहानगारेण रेवत्यग्रेऽपि श्रीमहावीरदेवस्य अर्हतो धर्माचार्यत्व प्रोक्तमस्ति, एवमनेकेषु स्थानेषु अर्हतो
धर्माचार्यत्व निगदितमस्ति, अतो न कश्चिद्विरोधः । ननु-भवतु नाम एकस्यामेव अवस्थाया स्थापनाचार्यो वा स्थापनार्हन्
वा, परमसौ स्थाप्यप्रमाणमेव कर्तुमुचितो न लघुतरो महत्तरो वा, तावत्प्रमाणे हि तस्मिन् दृष्टे सोऽय इति अध्यवसन्ति
तत्रस्थाः, किं नाऽध्यवसितः कृतपुण्यप्रतिनिधिः कृतपुण्य इति तत्पुत्रै इति वाच्य । स्थापनाकल्पस्य आगमे अनियत-
मानस्यैव प्रतिपादितत्वात् तथाहि आवश्यके—
"अक्खे वराडए वा, कट्ठे पोत्थे य चित्तकम्मे अ । सब्भावमसब्भाव, ठवणाकप्प विआणाहि ॥ १ ॥" इति ।
अथ वराटकाना स्वभावतो एव लघुत्वात् काष्ठाना च याद‍ृच्छिकत्वेन अनियतत्वात्, किं च स्थाप्यप्रमाणा एव स्थापना
यदि अभविष्यत् तदाऽर्हत्स्थापनाऽपि तादृशेवाऽकारयिष्यत् अर्हश्च उत्कृष्टत पञ्चशतधनुःप्रमाणं एव, जघन्यतस्तु

सप्त हस्तमान एव भवति, तथा च सति तन्मानतो लघुतरार्हत्प्रतिमाः सर्वा अपि अप्रमाणता प्राप्स्यन्ति, साम्प्रत तु अर्हत् प्रतिमाः लघुतराः प्रतिग्रामं प्रतिनगरं प्रतिदेवगृह दृश्यन्ते, ततः तासा समाराधन अफलमेव स्यात् न च तदफल भवति संविग्नश्रुतधरैः आदृतत्वात्। तस्मात् यथा स्थाप्यमानात लध्व्यो लघुतरा–लघुतमाऽपि तीर्थकृत्प्रतिमा आराध्यन्ते तथा स्थापनाचार्योऽपि, तथा शीतलाचार्येणाऽपि श्रीआवश्यके गुरुस्थापना स्थाने दण्डकः स्थापितोऽस्ति। पुनर्विस्तरार्थिना श्रीसन्देहदोलावलीबृहद्वृत्तिः द्रष्टव्या॥ ९७॥

॥ इति स्थापनाया पश्चाऽपि परमेष्ठिन इत्यधिकारः॥ ९७॥

ननु–श्रुतदेवतादीनां कायोत्सर्गः प्रतिक्रमणे क्रियते, स सिद्धान्तोक्त्या आचरणया वा क्रियते? उच्यते–आचरणया, यदुक्त श्रीहरिभद्रसूरिभिः श्रीपञ्चवस्तुकवृत्तौ (८० पत्रे), तथाहि—

"पम्हट्ठमेरसारण, विणओ उ ण फेडिओ हवइ एव। आयरणा सुयदेवय–माईण होइ उस्सग्गो॥ ४९१॥"

वृत्तिः–आचरणया श्रुतदेवतादीनां भवति कायोत्सर्गः, आदिशब्दात् क्षेत्रभवनदेवतापरिग्रह इति। ननु इय आचरणा कदा जाता? उच्यते–पूर्वधरकाले समाप्यते—यतः श्रीवीरनिर्वाणाद्वर्षसहस्रे गते पूर्वश्रुत व्यवच्छिन्न, अथ च श्रीहरिभद्रसूरिस्तु वीरनिर्वाणात् पञ्चपञ्चाशदधिकवर्षसहस्रे व्यतीते दिव गताः, यदुक्त—"पचसयतिपन्नवरिसे ५५२, कालगगुरुणा सरिस्सई गहिआ। पचसयसत्तरिवरिसे ४७०, वीराओ विक्कमो जाओ॥ ११॥ तत—"पचसए पणतीए, विक्कमकालाओ झत्ति अत्थमिओ। हरिभद्दसूरिसूरो, निवुओ दिसओ सिवसुहं॥ २००॥" इति। श्रीहरिभद्रसूरिभ

तु पञ्चवस्तुके आचरणया श्रुतदेवतादिकायोत्सर्गकरण लिखित, ततः सा आचरणा श्रीहरिभद्रसूरितः प्राक् पूर्वधरकाले एव जातेति ॥

ननु—भवतु नाम श्रुतदेवतादिकायोत्सर्गकरण पूर्वधरकालेऽपि तस्य दृश्यमानत्वात्, पर श्रुतदेवतादिकायोत्सर्गकरण सम्यग्दृशा न युज्यते इति यत् कस्यचिद्वचनं, तद् अयुक्त, आगमे तस्य उपदिष्टत्वात्, तथाहि—( ८० पत्रे )

चाउमासिय वरिसे, उस्सग्गो खित्तदेवयाए उ । पक्खिय सिज्जसुराए, करिंति चउमासिए वेगे ॥ ४९२ ॥ इति श्रीआवश्यककायोत्सर्गनिर्युक्तौ ( पत्रे ७९४ ) पुन चाउम्मासिअ सवच्छरिएसु सवेऽवि मूलउत्तरगुणाणा आलोयण दाऊण पडिक्कमति, खेत्तदेवयाए उस्सग्ग करेंति, केई पुण चाउम्मासिगे सिज्जदेवयाएवि काउस्सग्ग करिंति, इति श्रीआवश्यकवृत्तौ । पुनरपि चाउम्मासिए एगो उवस्सयदेवयाए काउस्सग्गो कीरइ, संवच्छरिए खित्तदेवयाएवि कीरइ अब्भहिओ इति श्रीआवश्यकचूर्णौ । तथा श्रुतदेवतायाश्च आगमे महती प्रतिष्ठा दृश्यते, तथाहि—

सुयदेवयाए असायणाए सुतदेवता जाए सुयमहिड्डिअ तीए आसायणा, नत्थि सा, अकिंचित्करी वा एवमादि श्रीआवश्यकचूर्णौ—

"जा दिट्ठिदाणमित्तेण देइ पणयाण नरसुरसमिद्धिं । सिवपुररज्ज आणारयणा देवीइ तीइ नमो ॥ १ ॥"

श्रीआराधनापताकायाम्—

"यत्प्रभावादवाप्यन्ते, पदार्थाः कल्पना विना । सा देवी सवेदे नस्तादस्तकल्पलतोपमा ॥ २ ॥"

इति । श्रीउत्तराध्ययनबृहद्वृत्तौ—

सप्त हस्तमान एव भवति, तथा च सति तन्मानतो लघुतरार्हत्प्रतिमाः सर्वा अपि अप्रमाणता प्राप्स्यन्ति, साम्प्रत तु अर्हत् प्रतिमाः लघुतराः प्रतिग्राम प्रतिनगरं प्रतिदेवगृह दृश्यन्ते, ततः तासां समाराधन अफलमेव स्यात् न च तदफल भवति सविप्रश्रुतधरैः आदृतत्वात्। तस्मात् यथा स्थाप्यमानात लघ्व्यो लघुतरा—लघुतमाऽपि तीर्थंकृत्प्रतिमा आराध्यन्ते तथा स्थापनाचार्योऽपि, तथा शीतलाचार्येणाऽपि श्रीआवश्यके गुरुस्थापना स्थाने दण्डक स्थापितोऽस्ति। पुनर्विस्तरार्थिना श्रीसन्देहदोलावलीबृहद्वृत्तिः द्रष्टव्या ॥ ९७ ॥

॥ इति स्थापनाया पञ्चाऽपि परमेष्ठिन इत्यधिकारः ॥ ९७ ॥

ननु—श्रुतदेवतादीना कायोत्सर्गः प्रतिक्रमणे क्रियते, स सिद्धान्तोक्त्या आचरणया वा क्रियते ? उच्यते—आचरणया, यदुक्त श्रीहरिभद्रसूरिभि श्रीपञ्चवस्तुकवृत्तौ ( ८० पत्रे ), तथाहि—

"पम्हट्ठमेरसारण, विणओ उ ण फेडिओ हवइ एवं। आयरणा सुयदेवय—माईणं होइ उस्सग्गो ॥ ४९१ ॥"

वृत्तिः—आचरणया श्रुतदेवतादीनां भवति कायोत्सर्गः, आदिशब्दात् क्षेत्रभवनदेवतापरिग्रह इति। ननु इय आचरणा कदा जाता ? उच्यते—पूर्वधरकाले समाप्यते—यतः श्रीवीरनिर्वाणाद्वर्षसहस्रे गते पूर्वश्रुतं व्यच्छिन्न, अत्र च श्रीहरिभद्रसूरिस्तु वीरनिर्वाणात् पञ्चपञ्चाशदधिकवर्षसहस्रे व्यतीते दिव गतः, यदुक्तं—"पचसयतिपन्नवरिसे ४५३, कालगगुरुणा सरिस्सई गहिआ। चउसयसत्तरिवरिसे ४७०, वीराओ विक्कमो जाओ ॥ ११ ॥ तत्रः—"पचसए पणतीए, विक्कमकालाओ झत्ति अत्थमिओ। हरिभद्दसूरिसूरो, निवुओ दिसओ सिवसुक्ख ॥ २०० ॥" इति। श्रीहरिभद्रसूरिणा

श्रीहरिभद्रसूरित प्राक् पूर्व-
तु पञ्चवस्तुके आचरणया श्रुतदेवतादिकायोत्सर्गकरण लिखित, ततः सा आचरणा
धरकाले एव जातेति ॥

ननु–भवतु नाम श्रुतदेवतादिकायोत्सर्गकरण पूर्वधरकालेऽपि तस्य दृश्यमानत्वात्, पर श्रुतदेवतादिकायोत्सर्गकरण
सम्यग्दृशां न युज्यते इति यत् कस्यचिद्वचन, तद् अयुक्त, आगमे तस्य उपदिष्टत्वात्, तथाहि—( ८० पत्रे )
चाउमासिय वरिसे, उस्सग्गो खित्तदेवयाए उ । पक्खिय सिज्जसुराए, करिंति चउमासिए वेगे ॥ ४९२ ॥ इति श्रीआ-
वश्यककायोत्सर्गनिर्युक्तौ ( पत्रे ७९४ ) पुनः चाउम्मासिअ संवच्छरिएसु सव्वेऽवि मूलउत्तरगुणाणा आलोयणं दाऊण पडि-
क्कमंति, खेत्तदेवयाए उस्सग्ग करेंति, केई पुण चाउम्मासिगे सिज्जदेवयाएवि काउस्सग्ग करिंति, इति श्रीआवश्यकवृत्तौ ।
पुनरपि चाउम्मासिए एगो उवस्सयदेवयाए काउस्सग्गो कीरइ, संवच्छरिए खित्तदेवयाएवि कीरइ अब्भहिओ इति श्रीआ-
वश्यकचूर्णौ । तथा श्रुतदेवतायाश्च आगमे महती प्रतिष्ठा दृश्यते, तथाहि–
सुयदेवयाए असायणाए सुतदेवता जाए सुयमहिट्ठिअ तीए आसायणा, नत्थि सा, अकिंचित्करी वा एवमादि श्रीआवश्यकचूर्णौ–

"जा विड्ढिदाणमित्तेण देइ पणयाण नरसुरसमिद्धिं । सिवपुररज्ज आणारयणा देवीइ तीइ नमो ॥ १ ॥"

श्रीआराधनापताकायाम्—

"यत्प्रभावादवाप्यन्ते, पदार्थाः कल्पना विना । सा देवी संविदे नस्तादस्तकल्पलतोपमा ॥ २ ॥"

इति । श्रीउत्तराध्ययनबृहद्वृत्तौ—

सप्त हस्तमान एव भवति, तथा च सति तन्मानतो लघुतरार्हत्प्रतिमाः सर्वा अपि अप्रमाणता प्राप्स्यन्ति, साम्प्रत तु अर्हत् प्रतिमाः लघुतराः प्रतिग्राम प्रतिनगरं प्रतिदेवगृह दृश्यन्ते, तत· तासा समाराधन अफलमेव स्यात् न च तदफलं भवति सविभ्रश्रुतधरैः आदृतत्वात् । तस्मात् यथा स्थाप्यमानात लघ्व्यो· लघुतरा–लघुतमाऽपि तीर्थंकृत्प्रतिमा आराध्यन्ते तथा स्थापनाचार्योऽपि, तथा शीतलाचार्येणाऽपि श्रीआवश्यके गुरुस्थापना स्थाने दण्डकः स्थापितोऽस्ति । पुनर्विस्तरार्थिना श्रीसन्देहदोलावलीबृहद्वृत्तिः द्रष्टव्या ॥ ९७ ॥

॥ इति स्थापनाया पश्चाऽपि परमेष्ठिन इत्यधिकारः ॥ ९७ ॥

ननु–श्रुतदेवतादीना कायोत्सर्गः प्रतिक्रमणे क्रियते, स सिद्धान्तोक्त्या आचरणया वा क्रियते ? उच्यते–आचरणया, यदुक्त श्रीहरिभद्रसूरिभिः श्रीपञ्चवस्तुकवृत्तौ ( ८० पत्रे ), तथाहि—

"पम्हट्ठमेरसारण, विणओ च ण फेडिओ हवइ एवं । आयरणा सुयदेवय–माईण होइ उस्सग्गो ॥ ४९१ ॥"

वृत्ति–आचरणया श्रुतदेवतादीना भवति कायोत्सर्गः, आदिशब्दात् क्षेत्रभवनदेवतापरिग्रह इति । ननु इय आचरणा कदा जाता ? उच्यते–पूर्वधरकाले संभाव्यते—यतः श्रीवीरनिर्वाणाद्वर्षसहस्रे गते पूर्वश्रुत व्यच्छिन्न, अथ च श्रीह- रिभद्रसूरिस्तु वीरनिर्वाणात् पञ्चपञ्चाशदधिकवर्षसहस्रे व्यतीते दिव गतः, यदुक्त—"पणसमतिपन्नवरिसे ४५२, कालग- गुरुणा सरिस्सई गहिआ । चउसयसत्तरिवरिसे ४७०, वीराओ विक्कमो जाओ ॥ २१ ॥ ततः—"पचसए पणतीए, विक्कमकालाओ झत्ति अत्थमिओ । हरिभद्दसूरिसूरो, निवुओ दिसओ सिवसुक्ख ॥ २०० ॥" इति । श्रीहरिभद्रसूरिणा

सिअसुरी उस्सग्गे, नेओ संतिथयस्स पढणे य ॥ ३१ ॥ एव चिअ चउम्मासे, वरिसे अ जहक्कमं विही णेओ । पक्खिय-
चउमासवरिसेसु, नवरि नामस्स नाणत्त ॥ ३२ ॥ इति योगशास्त्रतृतीयप्रकाशवृत्तौ ( २४८ पत्रे ), एवं पाक्षिकवृत्तावपि
श्रुतदेवतास्तुतिः, तथाहि–"सुअदेवया–भगवई०" श्रुताधिष्ठात्री देवता भवति च श्रुताधिष्ठात्री देवता, यदुक्त कल्पभाष्ये—
"सव च लक्खणोवेय, समाहिं दिंति देवया । सुत्त व लक्खणोवेय, जिणसव्वण्णुभासिय ॥ १ ॥" भगवतीपूजा ज्ञानाव०
इत्यादि, ननु–कथ श्रुताधिष्ठातृदेव्या व्यन्तरादिप्रकारायाः कर्मक्षपणे सामर्थ्य ? उच्यते–तद्गोचरशुभध्यानस्याऽपि
स्मर्तुः कर्मक्षयहेतुत्वेन अभिहितत्वादिति । एवं निशीथभाष्यचूर्णौ षोडशोद्देशकेऽपि [भव] वनदेवतादीना कायोत्सर्गकरण
लिखितमस्ति, तथाहि—

"ताहे दिसाभाग अमुणता सबालवुड्ढगच्छस्स रक्खणट्ठा वणदेवयाए उस्सग्ग करिंति सा आकपिआ दिसभाग पथ
वा कहेज्ज, सम्मद्दिट्ठिदेवया अण्णववएसओ वइ आएतावि उवति ते साधू तं, वइय पासित्ता आसासिया ते साहू ता ते
देवयाए गोउलपरपरएण ता वाणीया जाव जणवद पत्ता ताहे सा देवता अतिमवइयाए उवगरणं विंटिय विस्सरावेइ,
तीए अट्ठा साहुणो नियत्ता गोउल न पेच्छति, वेंटिय घेत्तु पडिगया गुरुणो कहति नत्थि सा वइयत्ति, नाय जहा
देवयाए कयमिति । एत्थ सुद्धोवेय नत्थि पच्छित्त" इत्यादि । एवमेव श्रीदेवेन्द्रसूरिभिरपि श्रीसघाचारबृहद्वृत्तौ
( ३७० पत्रे ) सम्यग्दृष्टिदेवदेवीनां स्मरणीयत्वादिना व्यवस्थापन व्यधायि, तथाहि–"इह सुरा य सरणिज्जत्ति" इहशब्द
पूर्वद्वारे सयोजितोऽपि डमरुकमणिन्यायेन अत्राऽपि सबध्यते । ततश्च इहेति सपूर्णचैत्यवन्दनाया क्रियमाणाया सुराश्च

"यस्याः प्रसादमतुलं, संप्राप्य भवन्ति भव्यजननिवहाः । अनुयोगवेदिनस्ता, प्रयतः श्रुतदेवता वन्दे ॥ १ ॥" इति ।

श्रीअनुयोगद्वारवृत्तौ तथा—

"पचविहायारविसुद्धिहेउमिह साहु सावगो वावि । पडिकमणं सह गुरुणा, गुरुविरहे कुणइ इक्कोऽवि ॥ १ ॥ वंदित्तु चेइयाइ, दाउं चउराइए खमासमणे । भूनिहियसिरो सयलाइयारमिच्छुक्कड देइ ॥ २ ॥ सामाइअपुव्वमिच्छामि ठाइउं काउस्सग्गमिच्चाइ इत्यादि १३ पुण पणवीसुस्सासं, उस्सग्गं कुणइ पारए विहिणा । तो सयलकुसलकिरिआ—फलाण सिद्धाण पढइ थयं ॥ १४ ॥ अह सुअसमिद्धिहेउ, सुअदेवीए करेइ उस्सग्ग । चिंतेइ नमुक्कार, सुणइ य देइ य तीइ थुइ ॥ १५ ॥ एव खित्तसुरीए, उस्सग्गं कुणइ सुणइ देइ थुइं । पढिऊण पंचमंगल—मुवविसइ पमज्ज संडासे ॥ १६ ॥ पुव्व-विहिणेव पेहिअ, पुत्तिं दाऊणवंदण गुरुणो । इच्छामो अणुसट्ठिं, ति भणिय जाणूहिं तो ठाइ ॥ १७ ॥ गुरुथुइगहणे थुइ तिन्नि वद्धमाणक्खरस्सरो पढइ । सक्कत्थय थव पढिअ कुणइ पच्छित्तउस्सग्ग ॥ १८ ॥ एव ता देवसिअ, राइअमवि एवमेव नवरि तहिं । पढम दाउं मिच्छामि दुक्कडं पढइ सक्कथय ॥ १९ ॥ उट्ठिय करेइ विहिणा, उस्सग्ग इत्यादि गाथा ॥ २६ ॥ इच्छामो अणुसट्ठिं, ति भणिय उवविसिअ पढइ तिण्णि थुई । मिउसद्देण सक्क—त्थयाइ तो चेइए वंदे ॥ २७ ॥ अह पक्खियं चउद्दसि—दिणम्मि पुव्वं व तत्थ देवसिअ । सुत्तंत पडिक्कमिउ, तो सम्ममिम कम कुणइ ॥ २८ ॥ मुह-पोत्ती वंदणय, संबुद्धाखामण तहाऽऽलोए । वंदण पत्तेअं खामण च वंदणयमह सुत्त ॥ २९ ॥ सुत्तं अब्भुट्ठाणं, उस्सग्गो पुत्ति वंदणय तहय । पज्जंतियखामणए, तह चउरो छोभवंदणया ॥ ३० ॥ पुव्वविहिणेव सव्वं, देवसिअ वंदणाइ तो कुणइ ।

कायोत्सर्गादिक पारयिष्यामि इत्यादिना सुदर्शनप्रियामनोरमाया इव तत्र तत्र सघकृत्ये प्रवर्तयितव्याः। अत्र चायं निशीथ-चूर्ण्युक्तो विधिः "पुब्वं अणुसिट्ठी किज्जइ थुइत्ति भणिय होइ, अणुसिट्ठी थुइति एगट्ठेत्ति" भाष्यवचनात् "साहु कय ते एव, वुच्चइ, जहा चपाए सुभद्दा। नागरजणेण अणुसिट्ठा धन्ना सपुन्ना सत्ति ॥ १ ॥ तेओ उवालभो, दिज्जइ साणुण। ओव पसपयाण, कीरइ त्ति वुत्त भवति ॥ २ ॥ पच्छा सो उवग्गहो किज्जइ २ भणिय च—दाणे दवावणे करणे अ, करणे य कयम-णुण्णाए। उवहिअमणुवहिअ वा, जाणहि उवग्गह एअ ॥ ३ ॥ एवमेव तत्रैव ग्रन्थे (३९४) पत्रेऽपि तथा च तत्पाठः—चतु-र्थी स्तुतिः पुनर्वैयावृत्त्यकराणा—यक्षाम्बाप्रमृतीनां सम्यग्दृष्टिदेवतानां, किमर्थमित्याह—उपयोगार्थं स्वकृत्येषु तेषा सावधानता-निमित्त भवति च गुणोपबृंहणतः तत्तत्रावबृद्धिः। ततश्च स्वकार्यकारित्वोपयुक्तत्वाज्जगत् प्रसिद्ध एतयू यत्प्रशसातः सोत्साह सर्वकार्यकरणादर इति। 'तु' शब्दो विशेषक तेन याः श्रुताङ्गीशासनदेवतादिविषया स्तुतयः ताः सर्वा अपि चतु-र्थस्तुतौ निपतन्ति, गुणोपबृंहणद्वारेण तासामपि उपयुक्ततादिफलत्वादिति। स्तुति[युगलेषु]युगन्तेषु तथा निबन्धनात्, गुणोत्कीर्तनस्य द्वितीयस्तुतिरूपत्वात्, तथाहि—जिनज्ञानस्तुतिर्वन्दनाद्यात्मकत्वाद् एका गण्यते, वैयावृत्यकरादिस्तुतयस्तु द्वितीया गुणोत्कीर्तनादिरूपत्वात्, एवमेव युगलत्वसिद्धेः, भावित चैतत् पचमे वन्दनाद्वारे अत एव क्वचिद्युगले चतुर्था-स्तुति' सर्वे यक्षाम्बिकेत्यादि वैयावृत्यकराणां, क्वाऽपि च भूयासु'। सर्वदा देवा देवीभिरित्यादि सामान्यत सर्वदेवताना कुत्राऽपि "गौरी गैरिमेति" विद्यादेवताना अन्यत्र 'निष्पङ्कव्योमनीले' ति देवविशेषविषया एकत्र विकटदर्शने ति देव्या एव, कुत्रचिद् च "आमूलालोलधूली"त्यादि श्रुतदेवतायाः इत्यादि परिभावनीय। इद सूक्ष्मधिया कुग्रहादिपरिहारेण। कायोत्सर्ग-

सूर्यश्चेति 'पुरुषस्त्रियो'ऽपि एकशेषे सुराः ते चात्र यक्षाम्बाप्रभृतयः सम्यग्दृष्टिदेवता ज्ञातव्या, न तु अर्हन्त, तेषां प्राग् वन्दनीयत्वेन अभिहितत्वात् अनुशासकत्वात् स्मारकत्वाच्च, एते च किं इत्याह–'सरणिज्जत्ति' स्मरणीयास्तु तद्गुणानुचिन्तनोत्कीर्तनादिनोपबृंहणीयाः, स्तवनीया इत्यर्थः। श्लाघ्यश्च जिनप्रवचनस्थः स्वल्पगुणोऽपि, सम्यग्दृष्टिप्रशंसायाः कर्मक्षयकारणत्वात्। उक्तं च–"गुणपगरिसबहुमाणो, कम्मक्खयकारणं जेण त्ति"। नैव चेत्तदा उत्तरोत्तरसंयमस्थानवर्तिभिः साधुभिः जघन्यजघन्यतरादिसंयमस्थानवर्तिनः साधवोऽप्यनुपबृंहणीयाः स्युः, तैश्च नियमादिषु दृढाः श्रावका। न च एतदागमे दृष्टं इष्टं वा, यत् गुणिना गुणा न प्रशस्याः, दर्शनमालिन्याद्यवाप्तेः। आह च "नो खलु अप्परिवडिए निच्छयओऽभइऽपि व सम्मत्ते। होइ तओ परिणामो जत्तो अणुवबूहणाईय त्ति" ॥ १ ॥ देशविरताना वा अविरताना वाऽविरतसम्यग्दृष्टयः श्राद्धाः सत्काराद्यर्हा न स्युः, तथा च सति–

तम्हा सव्वपयत्तेण, जो नमुक्कारधारओ। सावओ सोऽवि दट्ठव्वो, जहा परमबंधवो ॥ १ ॥

इत्यादि अपार्थकं स्याद् एवं च सकलागमव्यवहारलोपात् विमर्शनीय इदं सूक्ष्मधिया इति। यद्वा स्मरणीया–स्मारणादिषु प्रेरणार्हाः, तत्र "पमुहे गाहा" अयमर्थः–वैयावृत्त्यादिकारका गीयन्ते, तत्र चाऽनादरवता भवतां तत् किं स्वकृत्यमपि विस्मृतं? न युक्तमत्र प्रमादयितुं, दुर्लभा हि पुनरियं सामग्री २, दुःखदः प्रमादारिः ३ दुरितो भवोदधिविनिपातः ४ स्वनामैव सत्यापयति इत्यादि व्यङ्ग्यार्थगर्भितविशेषणद्वारेण स्मारणादि क्रियते, अथवा स्मरणीयाः संघादिकृत्ये वैयावृत्त्यप्रभावनादौ उपयोगमुत्पादके प्रेरणार्हाः तत्स्वरूपशक्तियुक्तत्वात्तेषां। इदं उक्तं भवति–यदाऽमुकसंघे प्रभावनादि करिष्यथ तदाऽहं अमुकं

शुभदिने शुभवेलायां शुभमुहूर्ते सघस्य कारकस्य वा चन्द्रबले सति गुरूपदेशेन सघस्य समुदाय सर्वं मेलयित्वा देवगृहे समेत्य स्नात्रकरणानन्तरं देवाग्रत धौत पवित्र निश्चलं पट्टक स्थापयित्वा तदुपरि केशरादितिलकपूर्वं ज्ञान–दर्शन–चारित्राणा अनुक्रमेण तन्दुलपुञ्जिकारूपा स्थापना क्रियते, ततो मूलनायकस्य दक्षिणाङ्गे इन्द्र १ अग्नि २ यम ३ नैर्ऋत ४ वरुण ५ वायु ६ कुबेर ७ ईशान ८ ब्रह्म ९ नागाना १० दशदिक्पालाना पूर्ववत् स्थापना क्रियते, ततो मूलनायकवामाङ्गे आदित्य १ सोम २ मगल ३ बुध ४ बृहस्पति ५ शुक्र ६ शनैश्चर ७ राहु ८ केतु ९ नवग्रहस्थापना क्रियते, ततः तद्दिश्येव चैत्यदेवता १ क्षेत्रदेवता २ देशदेवता ३ स्थापनात्रय क्रियते, एव २५ पुञ्जिकाना स्थापना कार्या । तदनु सर्वासा पुञ्जिकानामुपरि वलिपुष्पधूपनैवेद्यवासादिप्रक्षेपः कार्य । तत —

पुञ्जिकासु च ये देवा, देव्योऽपि गुरुणोदिताः । वलिपूजां प्रतीच्छन्तु, सन्तु सघस्य शान्तये ॥ १ ॥

अनेन श्लोकेन सर्वासामुपरि अखण्डजलधारादान कार्य, तत सर्व गृहागते पर्पटादिमिश्रभाजन बृहत्तर भृत्वा एकस्य हस्ते दत्त्वा पूर्वदिक्संमुख भूत्वा जलधारादानपूर्वं पूर्वदिशि वलिः प्रक्षिप्यते, तत्र–श्लोकश्चाऽयम्—

ऐरावतसमारूढः, शक्रः पूर्वदिशि स्थितः । सघस्य शान्तये सोऽस्तु, वलिपूजा प्रतीच्छतु ॥ १ ॥

एवमाग्नेय्या दिशि–आग्नेय्याविदिश स्वामी, श्रीवह्निश्छागवाहन । सघस्य शान्तये सोऽस्तु, वलिपूजा प्रतीच्छतु ॥ २ ॥

एव दक्षिणस्या दिशि–दक्षिणस्या दिश स्वामी, यमो महिषवाहन । सघस्य शान्तये सोऽस्तु, वलिपूजा प्रतीच्छतु ॥ ३ ॥

एव नैर्ऋतदिशि–याम्यऽपातरालेऽसौ, नैर्ऋतिः शववाहन । सघस्य शान्तये सोऽस्तु, वलिपूजां प्रतीच्छतु ॥ ४ ॥

विपयेऽपि मनु विमर्शनीय, यतो देवसिकावश्यकमध्ये सामान्यतो वैयावृत्यकरान् विमुच्य केवलश्रुतदेवतादेः कायोत्सर्गकरण, पाक्षिकादौ तु भवनदेव्याः, दीक्षादौ तु शासनदेव्यादीनामपि, अल प्रसगेन, तत्त्व तु परमर्षयो विदन्ति ॥ ९८ ॥

॥ इति श्रुतदेवतादिकायोत्सर्गस्थापनाधिकारः ॥ ९८ ॥

ननु–श्रीखरतरगच्छीयसाधुसाध्व्यः सुविहितनामविख्याता अपि मृत्तिकाघटकेन पानीय विहरन्ति तत्र रक्षन्ति तत् किं तत्र जीवसंसक्तिसद्भावात् ? उच्यते, श्रीस्थानाङ्गे ( ११८ पत्रे ) तृतीयस्थाने तृतीयोद्देशके पानीयघटस्य साधुसाध्वीना उक्तत्वात् तथाहि–"कप्पइ निग्गथाण वा निग्गथीण वा तओ पायाइ धारित्तते वा परिहरित्तते वा त० लाउयपादे वा दारुपादे वा मट्टियापादे वा" (सूत्रं १७०) व्याख्या–अलाबुपात्रक–तुम्बक दारुपात्र–काष्ठमय मृत्तिकापात्र–मृण्मय शरावघटिकादि, शेषं सुगम, अत्र वार्घटिकाशब्देन पानीयलघुघटिका प्रोक्ताः । जीवोत्पत्तिपर्यन्त तु यतनावन्त साधवो रक्षन्त्येव न कथंचित् रक्षणे तु तत्रोत्पन्नपूतरकजीवपानीय ग्रन्थोक्तविधिना गृहस्थादिभ्यः प्रयच्छन्ति, प्रत्युत काष्ठलोष्टिकादिधारणे तु जीवदोषस्य साक्षात् दृश्यमानत्वात् बहुमूल्यत्वाच्च । न तद्धारणनियमो विचार्यमाण सयमसुखावहो मृत्तिकापानीयलघुघटिकाः तु अल्पमूल्यत्वात् सुखेन शुद्धत्वेन मिलनत्वात् संयमोपष्टम्भकारिणो भवतीति युक्तमेव तद्धारणम् ॥ ९९ ॥

॥ इति मृत्तिकापानीयघटिकारक्षणाधिकारः ॥ ९९ ॥

ननु–संघादीना विघ्नोपद्रवशान्त्यै शान्तिविधिः क्रियते स शान्तिविधिः कः ?, कुत्र प्रतिपादितश्च ? उच्यते–स विधिः कोऽपि प्राक्तनलिखितानुसारेण, कोऽपि च महेभ्यादौ [उत्सवे] विधिज्ञश्रावकक्रियमाणानुक्रमस्य स्वय दर्शनेन च लिख्यते, तथाहि–

शुभदिने शुभवेलायां शुभमुहूर्ते सघस्य कारकस्य वा चन्द्रबले सति गुरूपदेशेन सघस्य समुदाय सर्व मेलयित्वा देवगृहे समेत्य स्नात्रकरणानन्तर देवाग्रतः धौत पवित्र निश्चलं पट्टक स्थापयित्वा तदुपरि केशरादितिलकपूर्व ज्ञान–दर्शन–चारित्राणा अनुक्रमेण तन्दुलपुञ्जिकारूपा स्थापना क्रियते, ततो मूलनायकस्य दक्षिणाङ्गे इन्द्र १ अग्नि २ यम ३ नैर्ऋत ४ वरुण ५ वायु ६ कुबेर ७ ईशान ८ ब्रह्म ९ नागाना १० दशदिक्पालानां पूर्ववत् स्थापना क्रियते, ततो मूलनायकवामाङ्गे आदित्य १ सोम २ मगल ३ बुध ४ बृहस्पति ५ शुक्र ६ शनैश्चर ७ राहु ८ केतु ९ नवग्रहस्थापना क्रियते, ततः तद्दिग्स्थेषु चैत्यदेवता १ क्षेत्रदेवता २ देशदेवता ३ स्थापनात्रय क्रियते, एव २५ पुञ्जिकाना स्थापना कार्या। तदनु सर्वासा पुञ्जिकानामुपरि बलिपुष्पधूपनैवेद्यवासादिप्रक्षेप कार्यः। तत —

पुञ्जिकासु च ये देवा, देव्योऽपि गुरुणोदिता। वलिपूजां प्रतीच्छन्तु, सन्तु सघस्य शान्तये ॥ १ ॥

अनेन श्लोकेन सर्वासामुपरि अखण्डजलधारादान कार्य, तत सर्व गृहागते पर्पटादिमिश्रभाजन बृहत्तर भृत्वा एकस्य हस्ते दत्त्वा पूर्वदिक्सम्मुख भूत्वा जलधारादानपूर्व पूर्वदिशि बलि प्रक्षिप्यते, तत्र–श्लोकश्चाऽयम्—

ऐरावतसमारूढः, शक्रः पूर्वदिशि स्थितः। सघस्य शान्तये सोऽस्तु, वलिपूजा प्रतीच्छतु ॥ १ ॥

एवमाग्नेय्यां दिशि–आग्नेय्याविदिश स्वामी, श्रीवह्निश्छागवाहन। सघस्य शान्तये सोऽस्तु, वलिपूजा प्रतीच्छतु ॥ २ ॥

एव दक्षिणस्या दिशि–दक्षिणस्या दिशः स्वामी, यमो महिषवाहन। सघस्य शान्तये सोऽस्तु, वलिपूजा प्रतीच्छतु ॥ ३ ॥

एवं नैर्ऋतदिशि–याम्यऽपातरालेऽसौ, नैर्ऋति शववाहन। सघस्य शान्तये सोऽस्तु, वलिपूजां प्रतीच्छतु ॥ ४ ॥

विपयेऽपि बहु विमर्शनीयं, यतो दैवसिकावश्यकमध्ये सामान्यतो वैयावृत्यकरान् विमुच्य केवलश्रुतदेवतादे कायोत्सर्गकरण, पाक्षिकादौ तु भवनदेव्याः, दीक्षादौ तु शासनदेव्यादीनामपि, अल प्रसंगेन, तत्त्व तु परमर्षयो विदन्ति ॥ ९८ ॥

॥ इति श्रुतदेवतादिकायोत्सर्गस्थापनाधिकारः ॥ ९८ ॥

ननु–श्रीखरतरगच्छीयसाधुसाध्व्यः सुविहितनामविख्याणा अपि मृत्तिकाघटकेन पानीय विहरन्ति तत्र रक्षन्ति तत् किं तत्र जीवसंसक्तिसद्भावात्? उच्यते, श्रीस्थानाङ्गे ( १३८ पत्रे ) तृतीयस्थाने तृतीयोद्देशके पानीयघटस्य साधुसाध्वीना उक्तत्वात् तथाहि–"कप्पइ निग्गथाण वा निग्गथीण वा तओ पायाइ धारित्तते वा परिहरित्तते वा त० लाउयपादे वा दारुपादे वा मट्टियापादे वा" (सूत्र १७०) व्याख्या–अलाबुपात्रक–तुम्बक दारुपात्र–काष्ठमय मृत्तिकापात्र–मृण्मय शरावघार्घटिकादि, शेप सुगम, अत्र वार्घटिकाशब्देन पानीयलघुघटिका प्रोक्ताः। जीवोत्पत्तिपर्यन्त तु यतनावन्त साधवो रक्षन्त्येव न कथंचित् रक्षणे तु तत्रोत्पन्नपूतरकजीवपानीयं अन्योक्तविधिना गृहस्थादिभ्यः प्रयच्छन्ति, प्रत्युत काष्ठलोष्टिकादिधारणे तु क्रीतदोषस्य साक्षात् दृश्यमानत्वात् बहुमूल्यत्वाच्च। न तद्धारणनियमो विचार्यमाणः सयमसुखावहो मृत्तिकापानीयलघुघटिका तु अल्पमूल्यत्वात् सुखेन शुद्धत्वेन मिलनत्वात् संयमोपष्टम्भकारिणो भवतीति युक्तमेव तद्धारणम् ॥ ९९ ॥

॥ इति मृत्तिकापानीयघटिकारक्षणाधिकारः ॥ ९९ ॥

ननु–सघादीनां विघ्नोपद्रवशान्त्यै शान्तिविधिः क्रियते स शान्तिविधिः कः?, कुत्र प्रतिपादितश्च? उच्यते–स विधिः कोऽपि प्राक्तनलिखितानुसारेण, कोऽपि च महोत्सवादौ [तत्त्वे] विधिप्रभावकक्रियमाणानुक्रमस्य स्वयं दर्शनेन च लिख्यते, तथाहि–

क्रियन्ते, मङ्गलप्रदीपश्च घृतमयः कुसुम्भलवृत्तिकश्च तादृग्विधेयो यथा एकयैव वृत्त्या प्रज्वलन् सपूर्णशान्तिघोषणादिकृत्यं
यावत् न विध्याति [संपूर्ण]। पश्चात् चतुर्विधसंघसहितो गुरुः ईर्यापथिकीं प्रतिक्रम्य शकस्तव आदितः कृत्वा अष्टादशभिः
स्तुतिभिर्देवादीन् वन्दते, आन्तरणीदोषो न कर्तुं देयः, देवतायाश्च स्तुतय इमाः—यदग्रिनमनादेव, देहिनः सन्ति सुस्थिता ।
तस्मै नमोऽस्तु वीराय, सर्वविघ्नविघातिने ॥ १ ॥ सुरपतिनतचरणयुगा—न्नाभेयजिनादिजिनपतीन् नौमि । यद्वचनपालन-
परा, जलाञ्जलिं ददतु दुःखेभ्यः ॥ २ ॥ वन्दन्ति वन्दारुगणाग्रतो जिना, सदर्थतो यद्रचयन्ति सूत्रतः । गणाधिपास्तीर्थ-
समर्थनक्षणे, तदङ्गिनामऽस्तु मत नु मुक्तये ॥ ३ ॥ शक्र सुरासुरवरैः सहदेवताभिः, सर्वज्ञशासनसुखाय समुद्यताभिः ।
श्रीवर्धमानजिनदत्तमतप्रवृत्तान्, भव्यान् जनानवतु नित्यममङ्गलेभ्यः ॥ ४ ॥ ततः श्रीशान्तिनाथदेवाधिदेवाराधनार्थं
करेमि काउस्सग्ग अन्नत्थू इत्यादि । रोगशोकादिभिर्दोषै—रजिताय जितारये । नमः श्रीशान्तये तस्मै, विहितानत-
शान्तये ॥ ५ ॥ तत श्रीशान्तिदेवतानिमित्त करेमि काउस्सग्ग अन्नत्थू इत्यादि । श्रीशान्तिजिनभक्ताय, भव्याय सुख-
सम्पदम् । श्रीशान्तिदेवता देया—दशान्तिमपनीय [ते] मे ॥ ६ ॥ तत । श्रीश्रुतदेवतानिमित्त करेमि काउस्सग्ग अन्नत्थू
इत्यादि । सुवर्णशालिनी देयाद्, द्वादशाङ्गी जिनोद्भवा । श्रुतदेवी सदा मह्य—मशेषश्रुतसम्पदम् ॥ ७ ॥ ततः श्रीभवन-
देवतानिमित्त करेमि काउस्सग्ग अन्नत्थू इत्यादि । चतुर्वर्णाय सघाय, देवीभवनवासिनी । निहत्य दुरितान्येषा,
करोतु सुखमक्षतम् ॥ ८ ॥ तत क्षेत्रदेवतानिमित्तक करेमि काउस्सग्ग अन्नत्थू इत्यादि । यासा क्षेत्रगता सन्ति, साधवः
श्रावकादयः । जिनाज्ञां साधयन्तस्ता, रक्षन्तु क्षेत्रदेवताः ॥ ९ ॥ तत श्रीअम्बिकादेवतानिमित्त करेमि काउस्सग्ग अन्नत्थू

एवं पश्चिमदिशि—यः प्रतीच्या दिशो नाथो, वरुणो मकरस्थितः। संघस्य शान्तये सोऽस्तु, बलिपूजां प्रतीच्छतु ॥ ५ ॥ एवं वायव्यदिशि—हरिणो वाहनं यस्य, वायव्याधिपतिः स्मरः। संघस्य शान्तये सोऽस्तु, बलिपूजां प्रतीच्छतु ॥ ६ ॥ एवमुत्तरदिशि—निधाननवकारूढ, उत्तरस्या दिशः प्रभुः। संघस्य शान्तये सोऽस्तु, बलिपूजां प्रतीच्छतु ॥ ७ ॥ एवमीशानदिशि—सिते वृषेऽधिरूढः स—मीशानो विदितः प्रभुः। संघस्य शान्तये सोऽस्तु, बलिपूजां प्रतीच्छतु ॥ ८ ॥ एवमधोदिशि—पातालाधिपतिर्योऽस्ति, सर्वदा पद्मवाहनः। संघस्य शान्तये सोऽस्तु, बलिपूजां प्रतीच्छतु ॥ ९ ॥ एवमूर्ध्वदिशि—ब्रह्मलोकविभुर्योऽस्तु, राजहंससमाश्रितः। संघस्य शान्तये सोऽस्तु, बलिपूजां प्रतीच्छतु ॥ १० ॥ एवं दशस्वपि दिक्षु जलधारादानेन स्वस्वदिक्स्वामि श्लोकप्रतिपादेन च बलिः प्रक्षिप्यते, प्रथम प्रान्ते च श्लोकादौ नमोऽर्हत्सिद्धेति कथ्यते। एतस्मिन् विधौ कृतेऽत्र प्रस्तावे यदि संघसामुदायिकः शान्तिः तदा देवगृहसत्कः कलशो गृह्यते, यदि एकः कोऽपि कारयति तदा शान्तिकारकगृहात् चतुरश्चलसधवसुन्दरीशिरसि आरोप्य मङ्गलगीतगानतानमानदानपात्र-अन्यधवादिवादित्रे वाद्यमाने अन्तर्धवलितः पञ्चरत्नोपेतः मुखवेष्टितमुद्गलीसूत्र उपरि समाच्छादितकसुम्भलघुवस्त्रः कलशः समानीय पूर्वकृतस्वस्तिकोपरि स्थाप्यते कलशमध्ये श्रीशान्तिनाथप्रतिमा निर्मला सुसज्जिता कृत्वा मोच्या, कलशोपरिष्टात् ऊर्ध्वं तणीचतुष्कमध्ये उपर्युपरि प्रोतस्वाजिलीपकाश बध्यते, तणीमध्यतो मद्गुलीदवरको लम्बमानस्तथा बध्यते यथा कलशोपरि मुखमध्यभागे तिष्ठति, तत्र च संघसमुदायको मद्गुलीकञ्चुको बध्यते, कलशस्य पुष्पचन्दनपूजा कार्या। गुरुरपि वासक्षेपं करोति। ततः कलशाग्रे कुसुमाञ्जलि १ लवणपानीय २ परिधापनिका ३ आरात्रिका ४ मङ्गलप्रदीपा ५

अस्मिन् कायोत्सर्गे लोगस्स ४ पारिते लोगस्स १ तत उपविश्य नमस्कारशक्रस्तवादिकथनपूर्वं जयवीयरायपर्यन्त वाच्य । ततः सपूर्णाङ्गोपाङ्गाः सभार्याः सुशीला सपुत्रा समृद्धा बद्धहस्तमङ्गुलीदवरका गुणनभणनविचक्षणा अष्टौ इन्द्रस्थानीयाः परिहितधौतिका आकार्यन्ते, तत्र द्वौ हस्तयोः कलशं गृहीत्वा तिष्ठत, एको धूप ददाति, एकः कुसुमचन्दनवासक्षेप करोति, अन्ये चत्वारो मधुरस्वरेण शान्तिपूर्वक सप्तस्मरणादि गुणयन्ति । तथा द्वौ कलशधारकौ कुण्डिकात कलशान् भृत्वा सप्तनमस्कारपूर्वं सप्तजलधारा दत्तः पश्चात् नमोऽर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायेति पूर्वं अजितशान्तिस्तवः पठ्यते, पदे पदे जलधारादानं एवमग्रेतनस्मरणे अपि, भक्तामरशान्तिद्वयादीन्यपि । एवमन्योऽपि सर्वसंघ सप्तस्मरणादि गुणयति पश्चाद् भृते मूलकलशे पूर्वरक्षित श्रीपार्श्वनाथप्रक्षालनपानीयमपि कलशमध्ये क्षिप्यते, ततो मङ्गलप्रदीप भ्रामयित्वा—

चेलोत्क्षेपैः पुष्पधूपादिदानैः, सम्मान्यश्रीदिक्पतीना विसर्गम् ।

कृत्वा शेषान् शेषदिव्यावतारान्, प्राग्धानाराद् प्रेषयेत् स्वाधिवासान् ॥ १ ॥

अर्हदभिषेकदर्शित—सान्निध्यनिरस्तकल्मषोल्लाघाः । गच्छन्ति यथास्थाने, ये केचिदुपागता देवाः ॥ २ ॥

शक्राद्या लोकपाला दिशि विदिशि गताः शुद्धसद्धर्मसक्ता, आयाताः स्नात्रकाले कलशहुतिकृते तीर्थनाथस्य भक्त्या ।

न्यस्ता शेषाऽऽपदाद्या विहितशिवसुखाः स्वास्पद साम्प्रत ते, स्नात्रे पूजामवाप्य स्वमपि कृतमुदो यान्तु कल्याणभाज ॥ ३ ॥

अनेन पद्यत्रयेण दिक्पालविसर्जनं क्रियते, पश्चात् सर्वोऽपि सघो देवगृहे निकरादानपूर्वं शान्तिजल केन्दुकसत्कमङ्गुलीसूत्रं च लाति, मङ्गुलीसूत्रं हस्तादौ बध्यते, कलशमध्याच्छान्तिजलं गृहीत्वा सर्वत्र गृहादौ प्रक्षिप्यते, तत सघ-

इत्यादि । अम्बा निहितडिम्भा मे, सिद्धबुद्धसुतान्विता । सिते सिंहे स्थिता गौरी, वितनोतु समीहितम् ॥ १० ॥ तत श्रीपद्मावतीदेवतानिमित्त करेमि काउस्सग्गं अन्नत्थू इत्यादि । धराधिपतिपत्नीया, देवी पद्मावती सदा । क्षुद्रोपद्रवत सा मां, पातु फुल्लत्फणावली: ॥ ११ ॥ ततः श्रीचक्रेश्वरीदेवतानिमित्त करेमि काउस्सग्ग अन्नत्थू इत्यादि । चञ्चचक्रकरा चारु-प्रवालदलसन्निभा । चिरं चक्रेश्वरी देवी, नन्दतादवताच्च माम् ॥ १२ ॥ तत श्रीअच्छुप्तादेवतानिमित्त करेमि काउस्सग्गं अन्नत्थू इत्यादि । खड्गखेटककोदण्ड-बाणपाणितडिद्‌द्युति । तुरङ्गगमनाऽच्छुप्ता, कल्याणानि करोतु मे ॥ १३ ॥ ततः श्रीकुबेरादेवतानिमित्त करेमि काउस्सग्ग अन्नत्थू इत्यादि । मथुरापुरि सुपार्श्व-श्रीपार्श्वस्तूपरक्षिका । श्रीकुबेरा नरारूढा, सुताङ्काऽवतु वो भयात् ॥ १४ ॥ ततः श्रीब्रह्मशान्तिदेवतानिमित्त करेमि काउस्सग्ग अन्नत्थू इत्यादि । ब्रह्मशान्तिः स मां पाया-दपायाद्वीरसेवकः । श्रीमत्सत्यपुरे सत्या, येन कीर्ति कृता निजा ॥ १५ ॥ तत श्रीगोत्रदेवतानिमित्त करेमि काउस्सग्ग अन्नत्थू इत्यादि । या गोत्र पालयत्येव, सकलाऽपायत सदा । श्रीगोत्रदेवता रक्षां, सा करोतु नताऽङ्गिनाम् ॥ १६ ॥ ततः श्रीशक्रादिसमस्तदेवतानिमित्त करेमि काउस्सग्ग अन्नत्थू इत्यादि । श्रीशक्र-प्रमुखा यक्षाः, जिनशासनसंस्थिताः । देवदेव्यस्तदन्येऽपि, सङ्घ रक्षन्त्वपायतः ॥ १७ ॥ तत सिद्धायिका-श्रीशासनदेवतानिमित्तं करेमि काउस्सग्ग अन्नत्थू इत्यादि । श्रीमद्विमानमारूढा, यक्षमातङ्गसेविता । सा मां सिद्धायिका पातु, चक्र-चापेषु धारिणी ॥ १८ ॥

अस्मिन् कायोत्सर्गे लोगस्स ४ पारिते लोगस्स १ तत उपविश्य नमस्कारशक्रस्तवादिकथनपूर्वं जयवीयरायपर्यन्तं घाच्यं । ततः सपूर्णाङ्गोपाङ्गाः सभार्याः सुशीलाः सपुत्रा समृद्धा बद्धहस्तमङ्गुलीदवरका गुणनभणनविचक्षणा अष्टौ इन्द्रस्थानीयाः परिहितधौतिका आकार्यन्ते, तत्र द्वौ हस्तयोः कलश गृहीत्वा तिष्ठत, एको धूप ददाति, एकः कुसुमचन्दनवासक्षेप करोति, अन्ये चत्वारो मधुरस्वरेण शान्तिपूर्वक सप्तस्मरणादि गुणयन्ति । तथा द्वौ कलशधारकौ कुण्डिकातः कलशान् भृत्वा सप्तनमस्कारपूर्वं सप्तजलधारा दत्तः पश्चात् नमोऽर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायेति पूर्वं अजितशान्तिस्तवः पठ्यते, पदे पदे जलधारादानं एवमग्रेतनस्मरणे अपि, भक्तामरशान्तिद्वयादीन्यपि । एवमन्योऽपि सर्वसघः सप्तस्मरणादि गुणयति पश्चाद् भृते मूलकलशे पूर्वं रक्षित श्रीपार्श्वनाथप्रक्षालनपानीयमपि कलशमध्ये क्षिप्यते, ततो मङ्गलप्रदीप भ्रामयित्वा—

सेलोत्क्षेपैः पुष्पधूपादिदानैः, सम्मान्यश्रीदिक्पतीना विसर्गम् ।

कृत्वा शेपान् शेषदिव्यावतारान्, प्रासादारात् प्रेषयेत् स्वाधिवासान् ॥ १ ॥

अर्हदभिषेकदर्शित—सान्निध्यनिरस्तकल्मषोल्लासाः । गच्छन्ति यथास्थाने, ये केचिदुपागता देवा ॥ २ ॥

शक्राद्या लोकपाला दिशि विदिशि गताः शुद्धसद्धर्मसक्ताः, आयाताः स्नात्रकाले कलशहृतिकृते तीर्थनाथस्य भक्त्या ।

न्यस्ता शेषाऽऽपदाद्या विहितशिवसुखाः स्वास्पद साम्प्रतं ते, स्नात्रे पूजामवाप्य स्वमपि कृतमुदो यान्तु कल्याणभाज ॥ ३ ॥

अनेन पद्यत्रयेण दिक्पालविसर्जनं क्रियते, पश्चात् सर्वोऽपि संघो देवगृहे निकरादानपूर्वं शान्तिजल केन्दुकसत्कमङ्गुलीसूत्रं च लाति, मङ्गुलीसूत्र हस्तादौ बध्यते, कलशमध्याच्छान्तिजलं गृहीत्वा सर्वत्र गृहादौ प्रक्षिप्यते, तत• संघ-

मध्ये नगरमध्ये देशमध्ये सर्वत्र शान्तिर्भवति, ऋद्धिसमृद्धिवृद्धिसिद्धिसंपदो भवन्ति, आधिव्याधिरोगशोकक्षुद्रोपद्रवाश्च द्रुतं दूरतो यान्ति ॥ १०० ॥

॥ इति श्रीशान्तिकविधिरधिकारः संपूर्णः ॥ १०० ॥

खरतरगच्छाधीशा, जिनचन्द्रयुगप्रधानगुरुराजाः । श्रीपातिसाहिमान्या, समभूवन् भूमिविख्याताः ॥ १ ॥
श्रीपूज्यप्रभुशिष्याः, दक्षाः श्रीसकलचन्द्रनामानः । मद्गुरवो गुणगुरव–स्तेषामेव प्रसादो मे ॥ २ ॥
एव द्वादशभिः सम्यक्–पूर्णं प्रश्नोत्तरैः स्फुटम् । प्रकाश पञ्चम चक्रे, गणिः समयसुन्दरः ॥ ३ ॥

॥ इति श्रीसमयसुन्दरोपाध्यायविरचिते पञ्चमप्रकाशे श्रीसामाचारीशतके पञ्चमः प्रकाशः संपूर्णः ॥ ५ ॥

## ॥ ग्रन्थकृत्प्रशस्तिः ॥

सामाचारीशतकमिदमासूत्रित सूत्रगत्या, किंचित् वृत्तिप्रकरणवशात् सम्प्रदायाच्च किंचित् ।
चेद् ग्रन्थेऽस्मिन् भवति किमपि श्रीजिनाज्ञाविरुद्ध, सघाध्यक्ष मम जडधियो दुष्कृत स्याच्च [तस्य] मिथ्या ॥ १ ॥
जैना गच्छा जगति बहवो भिन्नभिन्नाभिधाना, भिन्नाचारा निजनिजमत स्थापयन्ति प्रमाणम् ।
गच्छाधीशा' श्रुतनिगदिता संमतिं दर्शयन्ति, [तद्व्यामोहो] तस्या मोहो न भवति कथ ? यज्जिनाज्ञैव सत्या ॥ २ ॥
प्रारब्ध किल सिन्धुदेशविषये श्रीसिद्धपुर्यामिद, मूलत्राणपुरे कियद्भिरचित वर्षत्रयात् प्रागूमया ।
सपूर्णं विदधे पुरे सुखकरे श्रीमेडतानामके, श्रीमद्विक्रमसवति द्वि–मुनि–षट्–प्रालेयरोचिर्मिते १६७२ ॥ ३ ॥
प्रवर्तमाने जिनवीरशासने, परम्पराया गणभृत्सुधर्मणः । श्रीवज्रशाखा सुकुले च चान्द्रे, गणे स्फुटे कौटिकनामधेये ४
श्रीपातिसाहिमान्ये, युगप्रधाने प्रधानसौभाग्ये । खरतरगच्छाधीशे, विजयि जिनसिंहसूरिगुरौ ॥ ५ ॥
अकब्बरसाहिस्तुमान्य , श्रीमज्जिनचन्द्रसूरिगुरुराजा । जाता युगप्रधाना–स्तच्छिष्य सकलचन्द्रगणि ॥ ६ ॥
तच्छिष्यसमयसुन्दर–सदुपाध्याया अकार्षुरिदमेवम् । सामाचारीशतक, सतत स्वपरोपकाराय ॥ ७ ॥
सुशिष्यो वाचनाचार्य,–स्तर्कव्याकरणादिवित् । हर्षनन्दनवादीन्द्रो, मम साहाय्यदायकः ॥ ८ ॥

इति श्रीसमयसुन्दरोपाध्यायविरचिते पञ्चमप्रकाशे श्रीसामाचारीशतक सपूर्णम् ॥

## ॥ लेखक—प्रशस्तिः ॥

श्रीमद्विक्रमतो धराङ्कगगनप्रालेयरोचिर्मिते, वर्षे लोद्रपुरे वरे यदुकुले भाटीसुगोत्रेऽभवत् ।
राजा श्रीसगरः प्रजासुखकरस्तत्सुन्दरी श्रीमती, सौख्य भुक्तवतोस्तयो समभवन्नेकादशोद्धाऽऽत्मजा ॥ १ ॥
अष्टौ तेषु मृताश्च मारिवशतो दुर्दैवतोऽनुक्रमे, दुःखार्त्तौ पितरौ वियोगविधुरौ जातौ च तस्मिन् क्षणे ।
कुर्वाणा विहृतिक्रमात् क्षितितले श्रीवर्धमानप्रभोः, शिष्या सूरिजिनेश्वराः खरतरा श्रीलोद्रपुर्यां गता ॥ २ ॥
राजाद्याः सपरिग्रहाः प्रमुदिता नन्तुं गताः सद्गुरून्, श्रुत्वा श्रीजिनधर्ममर्म सकल सन्तोषमापुस्तराम् ।
विज्ञप्तिं विदधे नृपः करयुग संयोज्य राज्ञाऽन्वितः, स्वामिन्नष्ट ममाऽङ्गजा मृतिमगुर्जीवत्यथो ते त्रय ॥ ३ ॥
तत्कार्यं च यथा परोपकृतिभिर्जीवेत् सुताना त्रयं, लाभो वो भविता स को नृपतिना प्रोक्त तदा मत्पदे ।
राजाऽय भविता सुतः कुलधरः श्रीजैनधर्मी पुनः, पुत्रौ श्रीधरनामराजधरकौ शुद्धास्तिकौ भाविनौ ॥ ४ ॥
ज्ञात्वा लाभममु तथैव गुरुभी रक्षाकृताम्नायतो, वासक्षेपवशेन तौ नृपसुतौ श्राद्धौ कृतौ स्वादरौ ।
ताभ्यां लोद्रपुरे जिनेन्द्रभवन प्रोच्चैस्तरं कारित, तद्गोत्र भणशालिनाम समभूद्ब्राह्मणादिप्रालापधारात् ॥ ५ ॥
श्रीधरश्रावकस्याऽऽसन्, पञ्च पुत्रा मनुक्रमात् । सीमसी १ भीमसीनामा २, जगसी ३ रूपसी ४ तथा ।
देवसी ५ च यथा ख्याताः, पाण्डवाः पाण्डुभूपतेः ॥ ६ ॥

सीमसीश्रावकस्याऽऽसीत्, कुलचन्द्रस्तनूरुहः तत्पुत्रो रामदेनामा, धनपालस्तदङ्गज ॥ ७ ॥
साधारणाख्यस्तत्पुत्रः पुण्यपालस्तदङ्गज । तत्सूः सच्चूस्ततोदेवू–स्तत्पुत्रस्तस्य गञ्जकः ॥ ८ ॥
ज्येताख्यो नन्दनस्तस्य, खेतानामा तदङ्गभू । आसकर्णश्च तत्पुत्र–स्तत्पुत्रो धस्तुपालक ॥ ९ ॥
पुञ्जानामा च तत्पुत्रः, श्रीयशोधवलस्तत । तत्पुत्रः पुञ्जसीनामा, श्रीमल्लस्तस्य नन्दनः ॥ १० ॥
श्रीमल्लाङ्गजथाहरू सुरतरुर्दानप्रदानेऽधिको, यो भाण्डारमवीभरच्छ्वनवै शास्त्रै स्वय लिखितैः ।
अर्हच्छासनमेकविंशतिसहस्राणीह वर्तिष्यते, तच्च प्रोज्ज्वलपुस्तकेष्वधिगत बुद्ध्या विचार्येति च ॥ ११ ॥
आपाढाश्विनचैत्रभाद्रपदमासाष्टाह्निकापर्वणि, श्रीमज्जेसलमेरुदुर्गनगरे चैत्येषु सप्तस्वपि ।
काश्मीराभिधकेशरेण भगवद्बिम्बानि यः पूजयेत्, सद्भक्त्या शतश सृजन् स्वपरयो सम्यक्त्वमत्युज्ज्वलम् ॥ १२ ॥
गुप्त दानमपि प्रयच्छति मुदा सद्धर्मिणा सीदता, दीनाना च ददाति सुन्दरतरा सो वर्डका नामत ।
चातुर्मासिकपाक्षिकाब्दिकमहाष्टम्यादिके पर्वणि, प्रातः पारणक ददाति सतत य पौषधाख्य कृताम् ॥ १३ ॥
यः श्रीलोद्रपुरे पुराणनगरे भूयिष्ठद्रव्यव्ययात्, चैत्योद्धारमुदारचित्तपरिणामोऽकारयत् सादरम् ।
श्रीचिन्तामणिपार्श्वमूर्तियुगल तत्रैव चाऽस्थापयत्, सोल्लास जिनराजसूरिगुरुभिर्हस्तप्रतिष्ठापितम् ॥ १४ ॥
यः कुण्डलाकृतिभृतां जयलब्धिकाना, कृत्वा च पुञ्जमतुल मनुजावपुषि ।

## ॥ लेखक–प्रशस्तिः ॥

श्रीमद्विक्रमतो धराङ्कगगनप्रालेयरोचिर्मिते, वर्षे लोद्रपुरे वरे यदुकुले भाटीसुगोत्रेऽभवत् ।
राजा श्रीसगर प्रजासुखकरस्तत्सुन्दरी श्रीमती, सौख्यं भुञ्जतोस्तयो समभवन्नेकादशोद्धाऽऽत्मजाः ॥ १ ॥
अष्टौ तेषु मृताश्च मारिवशतो दुर्दैवतोऽनुक्रमे, दुःखार्तौ पितरौ वियोगविधुरौ जातौ च तस्मिन् क्षणे ।
कुर्वाणा विहृतिक्रमात् क्षितितले श्रीवर्धमानप्रभोः, शिष्या सूरिजिनेश्वरा खरतरा श्रीलोद्रपुर्यां गता ॥ २ ॥
राजाद्याः सपरिग्रहाः प्रमुदिता नन्तुं गताः सद्गुरून्, श्रुत्वा श्रीजिनधर्ममर्म सकल सन्तोषमापुस्तराम् ।
विज्ञप्तिं विदधे नृपः करयुगं संयोज्य राज्ञाऽन्वित, स्वामिन्नष्ट ममाऽङ्गजा मृतिमगुर्जीवत्ययो ते त्रय ॥ ३ ॥
तत्कार्यं च यथा परोपकृतिभिर्जीवेत् सुताना त्रयं, लाभो वो भविता स कौ नृपतिना प्रोक्त तदा मत्पदे ।
राजाऽयं भविता सुतः कुलधरः श्रीजैनधर्मी पुनः, पुत्रौ श्रीधरनामराजधरकौ शुद्धास्तिको भाविनौ ॥ ४ ॥
ज्ञात्वा लाभममु तथैव गुरुभी रक्षाकृताम्नायतो, वासक्षेपवशेन तौ नृपसुतौ श्राद्धौ कृतौ भ्रातरौ ।
ताभ्यां लोद्रपुरे जिनेन्द्रभवन प्रोच्चैस्तर कारित, तत्रोत्र भणशालिनाम समभूद्भाण्डादिशालावशात् ॥ ५ ॥
श्रीधरश्रावकस्याऽऽसन्, पञ्च पुत्रा अनुक्रमात् । लीमसी १ भीमसीनामा २, जगसी ३ रूपसी ४ तथा ।
देवसी ५ च यथा ख्याताः, पाण्डवाः पण्डुभूपतेः ॥ ६ ॥

श्रीमसीश्रावकस्याऽऽसीत्, कुलचन्द्रस्तनूरुहः तत्पुत्रो रामदेनामा, धनपालस्तदङ्गजः ॥ ७ ॥
साधारणाख्यस्तत्पुत्रः पुण्यपालस्तदङ्गजः । तस्य सङ्कस्तवोदेद्र—स्तत्पुत्रस्तस्य गजकः ॥ ८ ॥
ज्येताख्यो नन्दनस्तस्य, सेतानामा तदङ्गभू । आसकर्णश्च तत्पुत्र—स्तत्पुत्रो धस्तुपालक ॥ ९ ॥
पुञ्जानामा च तत्पुत्र, श्रीयशोधवलस्ततः । तत्पुत्रः पुञ्जसीनामा, श्रीमल्लस्तस्य नन्दनः ॥ १० ॥
श्रीमल्लाङ्गजथाहरू सुरतरुर्दानप्रदानेऽधिको, यो भाण्डारमचीकरच्च वनवै शास्त्रैः स्वय लिखितै ।
अर्हच्छासनमेकविंशतिसहस्राणीह वर्तिष्यते, तत्तु प्रोज्वलपुस्तकेष्वधिगत बुद्ध्या विचार्येति च ॥ ११ ॥
आषाढाश्विनचैत्रभाद्रपदमासाष्टाह्निकापर्वणि, श्रीमज्जेसलमेरुदुर्गनगरे चैत्येषु समस्वपि ।
काश्मीराभिधकेशरेण भगवद्बिम्बानि य पूजयेत्, सद्भक्त्या शतशः सृजन् स्वपरयोः सम्यक्त्वमत्युज्वलम् ॥ १२ ॥
गुप्त दानमपि प्रयच्छति मुदा सद्धर्मिणा सीदता, दीनाना च ददाति सुन्दरतरा सो वर्डका नामत ।
चातुर्मासिकपाक्षिकाब्दिकमहाष्टम्यादिके पर्वणि, प्रात पारणक ददाति सतत यः पौषधाख्य कृताम् ॥ १३ ॥
यः श्रीलोद्रपुरे पुराणनगरे भूयिष्ठद्रव्यव्ययात्, चैत्योद्धारमुदारचित्तपरिणामोऽकारयत् सादरम् ।
श्रीचिन्तामणिपार्श्वमूर्तियुगल तत्रैव चाऽस्थापयत्, सोल्लास जिनराजसूरिगुरुभिर्हस्तप्रतिष्ठापितम् ॥ १४ ॥
यः कुण्डलाकृतिभृतां जयलब्धिकाना, कृत्वा च पुञ्जमतुल मनुजावपुपि ।

## ॥ लेखक–प्रशस्तिः ॥

श्रीमद्विक्रमतो धराङ्कगगनप्रालेयरोचिर्मिते, वर्षे लोद्रपुरे वरे यदुकुले भाटीसुगोत्रेऽभवत् ।
राजा श्रीसगरः प्रजासुखकरस्तत्सुन्दरी श्रीमती, सौख्य भुक्तवतोस्तयो समभवन्नेकादशोद्दाऽऽत्मजा॰ ॥ १ ॥
अष्टौ तेषु मृताश्च मारिवशतो दुर्दैवतोऽनुक्रमे, दुःखार्त्तौ पितरौ वियोगविधुरौ जातौ च तस्मिन् क्षणे ।
कुर्वाणा विहृतिक्रमात् क्षितितले श्रीवर्धमानप्रभोः, शिष्या सूरिजिनेश्वरा खरतरा श्रीलोद्रपुर्यां गता ॥ २ ॥
राजाद्याः सपरिग्रहाः प्रमुदिता नन्तु गताः सद्गुरून्, श्रुत्वा श्रीजिनधर्ममर्म सकल सन्तोषमापुस्तराम् ।
विज्ञप्तिं विदधे नृपः करयुग संयोज्य राज्ञाऽन्वितः, स्वामिन्नष्ट ममाऽङ्गजा मृतिमगुर्जीवत्ययो ते त्रय॰ ॥ ३ ॥
तत्कार्यं च यया परोपकृतिभिर्जीवेत् सुताना त्रय, लाभो यो भविता स कौ नृपतिना प्रोक्त तदा सत्पदे ।
राजाऽय भविता सुतः कुलधरः श्रीजैनधर्मी पुनः, पुत्रो श्रीधरनामराजधरकौ शुद्धास्तिकौ भाविनौ ॥ ४ ॥
ज्ञात्वा लाभममु तथैव गुरुभी रक्षाकृताम्नायतो, वासक्षेपवशेन तौ नृपसुतौ श्राद्धौ कृतौ भ्रातरौ ।
ताभ्या लोद्रपुरे जिनेन्द्रभवन प्रोत्तुस्तर कारित, तद्गोत्र भणशालिनाम समभूत्राण्डागिपालावशात् ॥ ५ ॥
श्रीधरश्रावकस्याऽऽसन्, पञ्च पुत्रा अनुक्रमात् । खीमसी १ भीमसीनामा २, जगसी ३ रूपसी ४ तथा ।
देवसी ५ च यथा ख्याताः, पाण्डवाः पाण्डुभूपतेः ॥ ६ ॥

पुण्यकर्तव्यता काऽपि, प्रत्यक्षं ददृशे मया । काऽपि श्रुता सतां वक्त्रात्, प्रशस्तिर्लिखिताऽस्ति तत् ॥ २३ ॥
सामाचारीशतकममुना याहरूशाहनाम्ना, पश्चादर्शोऽप्यमलमतिना लेखित पूर्वमेव ।
यावच्छ्रीमत्खरतरगणप्रोल्लसन्नाम तावन्, नन्दत्वेतच्चिरमनुपम सर्वकल्याणकारि ॥ २४ ॥

## ॥ इति श्रीसामाचारीशतकं संपूर्ण ॥

सूरीश्वरो विजयते सुकृपाविचन्द्रः, शिष्योऽस्ति यस्य सुखसागरपाठकस्तु ।
तस्याऽऽज्ञया लिखितवान् पुरि मोहमय्या, सुश्रावको विजयचन्द्र इमा प्रतिं तु ॥ १ ॥

---

Printed by Ramchandra Yesu Shedge, at the Nirnaya Sagar Press,
26–28, Kolbhat Street, Bombay

---

Published by Javeri Mulchand Hirachand Bhagat, Jinadattasuri Jain
Bhandar, Mahavir Swami's Temple, Pydhuni, Bombay

ताभिर्भृश प्रवरभक्तिभृतस्तथा यत्, सा विस्मरिष्यति कदापि न किंवदन्ती ॥ १५ ॥
प्रासादेषु त्रिभुवनगुरोरष्टसङ्ख्येषु सम्यक्, दादास्तूपे मुखमलकथीपादिचश्चत्पताकाः ।
कीर्त्युल्लासाद्दिशि दिशि समारोपयामास भक्त्या, यः श्रीदेवावसरजयिन शभय पूजयित्वा ॥ १६ ॥
य· सौवर्ण वरमक्षरफीनाणक भक्तितोऽदात्, पूर्व केनाऽपि न वितरित सर्वसाधर्मिकाणाम् ।
नित्य दत्ते सकलयतिनां वस्त्रपात्रान्नपान, कुर्वन् सामायिकजिनवच श्रुत्यमावश्यकादीन् ॥ १७ ॥
श्रीभाले तिलक पुनः श्रवणयोः सौवर्णसत्कुण्डले, ग्रीवाया मणिमौक्तिकादिजटित ग्रैवेयक भूषणम् ।
हस्ते श्रीफलमद्भुत शिवमभूवि[वे]वाहनैमित्तिक, मन्ये सर्वमिद चकार सुकृती श्रीपार्श्वनाथस्य यः ॥ १८ ॥
वस्भार्या निजभर्तृभक्तिकरणे दक्षा सुपक्षद्वया, शुद्धाचारवती सती गुणवती युक्ता विवेकश्रिया ।
बाह्याभ्यन्तरभूषणाऽस्ति कनकादेवी प्रसिद्धाऽभिधा, यत्पुत्रौ हरिराज उत्तमगुण श्रीमेघराजस्तथा ॥ १९ ॥
यः पूर्व भरतादिवश्च तिलक कारापयित्वा गृहे, भूत्वा संघपतिर्धभूव पुरतः कृत्वा रथ सत्वरम् ।
रुक्माणा निकर वर प्रतिपुर वर्षन् यशोऽप्यर्जयन्, श्रीशत्रुञ्जयतीर्थराजविलसद्यात्रा पवित्रा व्यधात् ॥ २० ॥
यत्सघे जिनराजसूरिगुरवो गच्छाधिराजेश्वरा, आचार्या जिनसागरा मुनिवरव्रातेन संशोभिता ।
मुख्यः संघपतिः शिवाख्य इतरे श्राद्धाः पुनर्गोचराः, अन्येऽपि व्यवहारिणो मरुधराः सर्का सुयात्रां व्यधुः ॥ २१ ॥
विधु-वर्षु-रस-शशि-वर्षे १६८१, राउलकल्याणदासनृपराज्ये । श्रीशत्रुञ्जयपर्वणो, विनिर्ममे भाहकेन ॥ २२ ॥

पुण्यकर्तव्यता काऽपि, प्रत्यक्ष ददृशे मया । काऽपि श्रुता सता वक्त्रात्, प्रशस्तिर्लिखिताऽस्ति तत् ॥ २३ ॥
सामाचारीशतकममुना थाहरूशाहनाम्ना, पश्चादर्शोऽप्यमलमतिना लेखित पूर्वमेव ।
यावच्छ्रीमत्खरतरगणप्रोल्लसन्नाम तावत्, नन्दत्वेतच्चिरमनुपम सर्वकल्याणकारि ॥ २४ ॥

## ॥ इति श्रीसामाचारीशतकं संपूर्ण ॥

सूरीश्वरो विजयते सुकृपादिचन्द्र', शिष्योऽस्ति तस्य सुखसागरपाठकस्तु ।
तस्याऽऽज्ञया लिखितवान् पुरि मोहमय्या, सुश्रावको विजयचन्द्र इमा प्रतिं तु ॥ १ ॥

---

Printed by Ramchandra Yesu Shedge, at the Nirnaya Sagar Press,
26–28, Kolbhat Street, Bombay

---

Published by Javeri Mulchand Hirachand Bhagat, Jinadattasuri Jain
Bhandar, Mahavir Swami's Temple, Pydhuni, Bombay

ताभिर्भूश प्रवरभक्तिभृतस्तथा यत्, सा विस्मरिष्यति कदापि न किंवदन्ती ॥ १५ ॥
प्रासादेषु त्रिभुवनगुरोरष्टसख्येषु सम्यक्, वादास्तूपे मुखमलकथीपादिचश्चत्पताकाः ।
कीर्त्युल्लासादिशि दिशि समारोपयामास भक्त्या, यः श्रीदेवायसरजयिन शभव पूजयित्वा ॥ १६ ॥
यः सौवर्ण वरमक्षरफीनाणक भक्तितोऽदात्, पूर्वं केनाऽपि न वितरित सर्वसाधर्मिकाणाम् ।
नित्य दत्ते सकलयतिना वस्त्रपात्रान्नपान, कुर्वन् सामायिकजिनवच श्रुत्यमावश्यकादीन् ॥ १७ ॥
श्रीभाले तिलक पुनः श्रवणयोः सौवर्णसत्कुण्डले, ग्रीवाया मणिमौक्तिकादिजटित ग्रैवेयक भूषणम् ।
हस्ते श्रीफलमङ्गुल शिववधूवि[वै]वाहनैमित्तिक, मन्ये सर्वमिद चकार सुकृती श्रीपार्श्वनाथस्य यः ॥ १८ ॥
तद्भार्या निजभर्तृभक्तिकरणे दक्षा सुपक्षद्वया, शुद्धाचारवती सती गुणवती युक्ता विवेकश्रिया ।
बाह्याभ्यन्तरभूषणाऽस्ति कनकादेवी प्रसिद्धाऽभिधा, यत्पुत्रौ हरिराज उत्तमगुण श्रीमेघराजस्तथा ॥ १९ ॥
य· पूर्वं भरतादिवत्स तिलक कारापयित्वा गृहे, भूत्वा संघपतिर्धमूव पुरतः कृत्वा रथ सत्वरम् ।
रुक्माणा निकर वर प्रतिपुर वपन् यशोऽप्यर्जयन्, श्रीशत्रुञ्जयतीर्थराजविलसद्यात्रा पवित्रा व्यधात् ॥ २० ॥
यत्सघे जिनराजसूरिगुरवो गच्छाधिराजेश्वरा, आचार्या जिनसागरा मुनिवरव्रातेन संशोभिताः ।
मुख्यः सघपति शिवाख्य इतरे श्राद्धाः पुनर्गोचराः, अन्येऽपि व्यवहारिणो मरुधराः सत्कां सुयात्रां व्यधु ॥ २१ ॥
विधु-वसु-रसे-शशि-वर्षे १६८१, राउलकल्याणदासनृपराज्ये । श्रीशत्रुञ्जयसंघो, विनिर्ममे बाहकेन ॥ २२ ॥

पुण्यकर्तव्यता काऽपि, प्रत्यक्ष दद्दशे मया । काऽपि श्रुता सता वक्रात्, प्रशस्तिर्लिखिताऽस्ति तत् ॥ २३ ॥
सामाचारीशतकममुना थाहरूशाहनाम्ना, पश्चादर्शोप्यमलमतिना लेखित पूर्वमेव ।
यावच्छ्रीमत्खरतरगणप्रोल्लसन्नाम तावन्, नन्दत्वेतच्चिरमनुपम सर्वकल्याणकारि ॥ २४ ॥

## ॥ इति श्रीसामाचारीशतकं संपूर्ण ॥

सूरीश्वरो विजयते सुकृपाविचन्द्र', शिष्योऽस्ति तस्य सुखसागरपाठकस्तु ।
तस्याऽऽज्ञया लिखितवान् पुरि मोहमय्यां, सुभावको विजयचन्द्र श्मा प्रति तु ॥ १ ॥

---

Printed by Ramchandra Yesu Shedge, at the Nirnaya Sagar Press,
26–28, Kolbhat Street, Bombay

---

Published by Javeri Mulchand Hirachand Bhagat, Jinadattasuri Jain
Bhandar, Mahavir Swami's Temple, Pydhuni, Bombay

श्री केसरीमलजी घीसीलालजी कोठारी,
की तरफ से सादर भेंट—



६५

## ॥ समाप्तमिदं सामाचारीशतकम् ॥

तया बालतया मूढत्वेन शिशुत्वेन वा मोहतया मिथ्यात्वादिमोहेन भण्डतया रागपरादिपारवश्येन क्लिष्टतया क्लेशकर्मत्वेन त्रिगौरवगुरुतया ऋद्धिरससातगौरवेण एतैः प्रकारैः अस्य धर्मस्य अतीचारैरिति योजना । कथम्भूतेन मयेत्याह—चतुःकषायोपगतेन पञ्चेन्द्रियवशार्तेन परिपूर्णतया सातासौख्यमनुपालयता तथा मया अस्य धर्मस्य अज्ञानतया अस्मिन्वा भवे वर्तमानजन्मनि अन्येषु वा भवग्रहणेषु अतीतानागतेषु प्राणातिपातः कृतो वा कारितो वा क्रियमाणो वा परैः समनुज्ञातः त निन्दामि गर्हे त्रिविध त्रिविधेन मनसा वाचा कायेन अतीत निन्दामि प्रत्युत्पन्न वर्तमान सवृणोमि अनागत प्रत्याख्यामि सर्व प्राणातिपात यावज्जीवमनिःश्रितोऽहं निश्रारहितो विप्रमुक्त इत्यर्थः । नैव स्वय प्राणान् अतिपातयेत् नैव अन्यैः प्राणान् अतिपातयेत् प्राणानतिपातयतोऽन्याश्च समनुजानीयात् । तद्यथा । अर्हत्साक्षिक सिद्धसाक्षिक साधुसाक्षिक देवसाक्षिक गुरुसाक्षिक । केचिदाहुः आत्मसाक्ष्यक । अत्र अर्हत्सिद्धसाधुदेवात्मसाक्ष्यत्वे यन्निषिद्ध तदकरणीयमेवेत्यर्थ । केवलावधिज्ञानेन्द्रियादीनां सर्वप्रत्यक्षत्वात् एव भवति । अहमितिकथने कः पालक इत्याह । भिक्षुर्वा भिक्षुकी वा साधुर्वा साध्वी वा सयतविरतप्रतिहतप्रत्याख्यातपापकर्मासयत नियमित विरत निवृत्त प्रतिहत शुभकर्मभिर्घातित प्रत्याख्यात निराकृत । कदा कर्मेत्याह । दिवा वा रात्रौ वा । कीदृशो भिक्षुर्भिक्षुकी च । एकको वा पर्षदि गतो वा सुप्तो वा जाग्रद्वा एतत्खलु प्राणातिपातस्य विरमण हित शुभ क्षम तारणसमर्थं निःशेषितं सपूर्णं पालित आत्मानुगामि आत्मसेवनीय परानुगामि परप्रतिपादनीय । पुनः क-

र्थमूतम् । एताभिर्युक्तिभिर्महार्थम् । कामिरित्याह । सर्वेषा प्राणाना सर्वेषा भूतानां पूर्वोक्ताना सर्वेषा जीवाना पूर्वोक्ताना सर्वेषा सत्वाना पूर्वोक्ताना अदुःखकरणतया अशापनया अजीर्णनया अखण्डनेन असीव्रतया सतोपकरणेन अपीडनया अपरितापनया अनुपद्रवनया महार्थं महागुण महानुभाव महापुरुषानुचीर्ण परमर्षिदेशित प्रशस्तं तत्प्राणातिपातात् विरमण । दुःखक्षयाय कर्मक्षयाय बोधिलाभाय ससारोत्तारणाय त्रिःकृत्वा त्रिःकरणशुद्ध्या त्रिवेल वा उपसयुज्य उपसपद्य वा व्रतेन सघटित्वा । णं इति वाक्यालकारे । विचरामि तिष्ठामि प्रथमे भदन्त महाव्रते उपस्थितोस्मि सर्वस्मात्प्राणातिपाताद्विरमण ॥ १ ॥ अहावरे दुच्चे भते महव्वए मुसावायाओ वेरमण सव्व भते मुसावाय पच्चक्खामि । से कोहा वा लोहा वा भया वा हासा वा नेव सय मुस वइज्जा । नेवन्नेहिं मुस वयाविज्जा मुसवयतेवि अन्ने न समणुजाणामि जाव० शेष पूर्ववत् । से मुसावाए चउव्विहे पन्नत्ते । त जहा । दव्वओ खित्तओ कालओ भावओ दव्वओण मुसावाए सव्वदव्वेसु खित्तओण मुसावाए लोए वा अलोए वा कालओण मुसावाए दिया वा राओ वा भावओण मुसावाए रागेण वा दोसेण वा ज पि० शेष० मुसावाओ भासिओ वा भासाविओ वा भासिज्जतो वा परेहिं समणुन्नाओ त नि० गरिहामि शेष पूर्ववत् । सव्व मुसावाय जाव० शेष० । नेव सय मुस वाइज्जा नेवन्नेहिं मुस वायाविज्जा मुस वयतेवि अन्ने न समणुजाणिज्जा । तजहा । शेष० । एस खलु मुसावायस्स वेरमणे शेष० । दुच्चे भते महव्वए उवट्ठिओमि सव्वाओ मुसावायाओ वेरमण ॥२॥ अथ अपरस्मिन् द्वितीये भदन्त महा-

तया बालतया मूढत्वेन शिशुत्वेन वा मोहतया मिथ्यात्वाविमोहेन मण्डतया रागपरादिपारवश्येन क्लिष्टतया क्लेशकर्मत्वेन त्रिगौरवगुरुतया ऋद्धिरससातगौरवेण एतैः प्रकारैः अस्य धर्मस्य अतीचारैरिति योजना। कथंभूतेन मयेत्याह—चतुष्कषायोपगतेन पञ्चेन्द्रियवशार्तेन परिपूर्णतया सातासौख्यमनुपालयता तथा मया अस्य धर्मस्य अज्ञानतया अस्मिन्वा भवे वर्तमानजन्मनि अन्येषु वा भवग्रहणेषु अतीतानागतेषु प्राणातिपातः कृतो वा कारितो वा क्रियमाणो वा परैः समनुज्ञातः त निन्दामि गर्हे त्रिविध त्रिविधेन मनसा वाचा कायेन अतीत निन्दामि प्रत्युत्पन्न वर्तमान संवृणोमि अनागत प्रत्याख्यामि सर्व प्राणातिपात यावज्जीवमनिश्रितोऽहं निश्रारहितो विप्रमुक्त इत्यर्थः। नैव स्वय प्राणान् अतिपातयेत् नैव अन्यै प्राणान् अतिपातयेत् प्राणानतिपातयतोऽन्यांश्च समनुजानीयात्। तद्यथा। अर्हत्साक्षिक सिद्धसाक्षिक साधुसाक्षिकं देवसाक्षिक गुरुसाक्षिक। केचिदाहुः आत्मसाक्ष्यक। अत्र अर्हत्सिद्धसाधुदेवात्मसाक्ष्यत्वे यन्निषिद्ध तदकरणीयमेवेत्यर्थः। केवलावधिज्ञानेन्द्रियादीनां सर्वप्रत्यक्षत्वात् एव भवति। अहमितिकथने कः पालक इत्याह। भिक्षुर्वा भिक्षुकी वा साधुर्वा साध्वी वा संयतविरतप्रतिहतप्रत्याख्यातपापकर्मासयत नियमित विरत निवृत्त प्रतिहत शुभकर्मनिर्घातित प्रत्याख्यात निराकृत। कदा कर्मेत्याह। दिवा वा रात्रौ वा। कीदृशो भिक्षुर्भिक्षुकी च। एकको वा पर्षदि गतो वा सुप्तो वा जाग्रद्वा एतत्खलु प्राणातिपातस्य विरमण हित शुभ क्षम तारणसमर्थं निःशेषितं सपूर्ण पालित आत्मानुगामि आत्मसेवनीय परानुगामि परप्रतिपादनीयं। पुनः क-

धमूतम्। एताभिर्युक्तिभिर्महार्थम्। कामिरित्याह । सर्वेषा प्राणानां सर्वेषां भूताना पूर्वोक्ताना सर्वेषा जीवाना पूर्वोक्ताना सर्वेषा सत्वानां पूर्वोक्ताना अदुःखकरणतया अशपनया अजीर्णनया अखण्डनेन अतीव्रतया सतोपकरणेन अपीडनया अपरितापनया अनुपद्रवनया महार्थं महागुण महानुभाव महापुरुषानुचीर्णं परमर्षिदेशित प्रशस्तं तत्प्राणातिपातात् विरमण। दुःखक्षयाय कर्मक्षयाय बोधिलाभाय ससारोत्तारणाय त्रिःकृत्वा त्रिःकरणशुद्ध्या त्रिवेल वा उपसयुज्य उपसपद्य वा व्रतेन सघटित्वा। ण इति वाक्यालकारे। विचरामि तिष्ठामि प्रथमे भदन्त महाव्रते उपस्थितोस्मि सर्वस्मात्प्राणातिपाताद्विरमण ॥ १ ॥ अहावरे दुच्चे भते महव्वए मुसावायाओ वेरमण सव्व भते मुसावाय पच्चक्खामि। से कोहा वा लोहा वा भया वा हासा वा नेव सय मुस वइज्जा। नेवन्नेहिं मुस वयाविज्जा मुसवयतेवि अन्ने न समणुजाणामि जाव० शेष पूर्ववत्। से मुसावाए चउव्विहे पन्नत्ते । त जहा। दव्वओ खित्तओ कालओ भावओ दव्वओण मुसावाए सव्वदव्वेसु खित्तओण मुसावाए लोए वा अलोए वा कालओण मुसावाए दिया वा राओ वा भावओण मुसावाए रागेण वा दोसेण वा ज पि० शेष० मुसावाओ भासिओ वा भासाविओ वा भासिज्जतो वा परेहिं समणुन्नाओ त नि० गरिहामि शेष पूर्ववत्। सव्व मुसावाय जाव० शेष० । नेव सय मुस वाइज्जा नेवन्नेहिं मुस वायाविज्जा मुस वयतेवि अन्ने न समणुजाणिज्जा। तजहा। शेष० । एस खलु मुसावायस्स वेरमणे शेप० । दुच्चे भते महव्वए उवट्ठिओमि सव्वाओ मुसावायाओ वेरमण ॥२॥ अथ अपरस्मिन् द्वितीये भदन्त महा-

शेष० । तन्मैथुन चतुर्विधं प्रज्ञप्त शेष० । द्रव्यतो रूपेषु वा आकृतिमयेषु रूपसुभगेषु वा रूपलावण्यादियुक्तेषु क्षेत्रत ऊर्ध्वलोके वा अधोलोके वा तिर्यग्लोके वा शेष० । मैथुन सेवित वा सेवयित वा सेव्यमान वा परैः न समनुजानीयात् शेष० । एतत् खलु मैथुनस्य विरमण शेष० चतुर्थे शेष० । मैथुनाद्विरमण ॥ ४ ॥ अहावरे पचमे भते महव्वए परिग्गहाओ वेरमण सव भते परिग्गह पच्चक्खामि से अप्प वा बहु वा अणु वा थूल वा चित्तमत वा अचित्तमत वा णेव सय परिग्गह परिगिण्हेज्जा णेवण्णेहिं परिग्गह परिगिण्हाविज्जा परिग्गह परिगिण्हतेवि अन्ने न समणुजाणामि० शेष० । से परिग्गहे च० शेष० । दव्वओण परिग्गहे सचित्ताचित्तमिस्सेसु दव्वेसु खित्तओण परिग्गहे गामे वा नयरे वा अरण्णे वा० शेष० । परिग्गहो गहिओ वा गाहाविओ वा घिप्पतो वा परेहिं समणुन्नाओ० शेष० । सव परिग्गह शेष० । नेव सय परिग्गह परिगिण्हिज्जा नेवण्णेहिं परिग्गह परिगिण्हाविज्जा परिग्गहं परिगिण्हतेवि अन्ने न समणुजाणिज्जा० शेष० । एस खलु परिग्गहस्स विरमण शेष० पचमे भते० शेष० परिग्गहाओ वेरमण ॥ ५ ॥ अथापरे पचमे भदन्त महाव्रते प्रथमान्तपदानि वा । परिग्रहाद्विरमण सर्वं भदन्त परिग्रह प्रत्याख्यामि तत् अल्प वा बहु वा अणु वा स्थूलं वा चित्तमद्वा अचित्तमद्वा नैव स्वय परिग्रह परिगृह्णीयात् नैवान्यैः परिग्रह परिग्राहयेत् परिग्रह परिगृह्णन्तमन्य न समनुजानामि शेष० स परिग्रहः शेष० । द्रव्यतः सचित्ताचित्तमिश्रितेषु द्रव्येषु क्षेत्रतो ग्रामे वा नगरे वा अरण्ये वा शेष० परिग्रहो गृहीतो वा ग्राहितो वा गृह्यमाणो वा परैः समनुज्ञातः शेष० सर्वं

परिग्रह शेष० । नैव स्वय परिग्रह परिगृह्णीयात् नैवान्यैः परिग्रह परिग्राहयेत् परिग्रह परिगृह्णतमन्य न सम-
नुजानीयात् शेष० एतत् खलु परिग्रहाद्विरमण शेष० पञ्चमे भदन्त० शेष० परिग्रहाद्विरमण ॥ ५ ॥ अहा-
वरे छट्ठे भते वए राइभोयणाओ वेरमण सव्व भंते राइभोयण पच्चक्खामि से असण वा पाण वा खाइम
वा साइम वा णेव सय राइ भुजिज्जा णेवण्णेहिं राइ भुजाइज्जा राइ य भुजतेवि अन्ने न समणुजाणामि
शेष० । से राइभोयणे चउव्वि० शेष० दव्वओण राइभोयणे असणे वा पाणे वा खाइमे वा साइमे वा खित्त-
ओण राइभोयणे समेयखित्तेसु कालओण दिवा वा राइभोयणे रत्तिं । भावओण राइभोयणे तित्ते वा क-
डुए वा कसाइले वा अंबिले वा महुरे वा लवणे वा जपि० शेष० । राइभोयण भुजिय वा भुजाविय वा
भुजिज्जत वा परेहिं समणुन्नाय शेष० सव्व राइभोयण० शेष० । नेव सय राइयं भुजिज्जा नेवन्नेहिं राइ भुजा-
विज्जा । राइ भुजतेवि अन्ने न समणुजाणिज्जा० शेष० । एस खलु राइभोयणस्स वेरमणे शेष० छट्ठे भंते०
शेष० राइभोयणाओ वेरमण ॥ ६ ॥ अथापरे षष्ठे भदन्त व्रते प्रथमान्तपदानि वा । रात्रिभोजनाद्विरमणं सर्वं
भदन्त रात्रिभोजन प्रत्याख्यामि तत् अशन वा पानं वा खादिम वा स्वादिम वा नैव स्वय रात्रौ भुञ्जीत
नैवान्यै रात्रौ भोजयेत् रात्रौ भुञ्जानमन्यं न समनुजानामि शेष० । तद्रात्रिभोजनं चतुर्विध प्रज्ञप्त० शेष० ।
द्रव्यतः अशन वा पान वा खादिम वा स्वादिम वा क्षेत्रतः समयक्षेत्रेषु कालोचितभूमिषु कालतः रात्रौ भा-
वतः तिक्त वा कटु वा कषाय वा अम्ल वा लवण वा मधुर वा० शेष पू० । रात्रिभोजन भुक्त वा भोजित वा

शेष० । तन्मैथुन चतुर्विध प्रज्ञप्त शेष० । द्रव्यतो रूपेषु वा आकृतिमयेषु रूपसुभगेषु वा रूपलावण्यादियु-क्तेषु क्षेत्रत ऊर्ध्वलोके वा अधोलोके वा तिर्यग्लोके वा शेष० । मैथुन सेवित वा सेवायित वा सेव्यमान वा परै न समनुजानीयात् शेष० । एतत् खलु मैथुनस्य विरमणं शेष० चतुर्थे शेष० । मैथुनाद्विरमण ॥ ४ ॥ अहावरे पचमे भते महव्वए परिग्गहाओ वेरमण सव भते परिग्गह पच्चक्खामि से अप्प वा बहु वा अणु वा थूल वा चित्तमत वा अचित्तमत वा णेव सय परिग्गह परिगिण्हेज्जा णेवण्णेहिं परिग्गह परिगिण्हाविज्जा परिग्गह परिगिण्हतेवि अन्ने न समणुजाणामि० शेष० । से परिग्गहे च० शेष० । दव्वओण परिग्गहे सचित्ता-चित्तमिस्सेसु दव्वेसु खित्तओण परिग्गहे गामे वा नयरे वा अरण्णे वा० शेष० । परिग्गहो गहिओ वा गाहा-विओ वा घिप्पतो वा परेहिं समणुन्नाओ० शेष० । सव परिग्गह शेष० । नेव सय परिग्गह परिगिण्हिज्जा नेवण्णेहिं परिग्गह परिगिण्हाविज्जा परिग्गह परिगिण्हतेवि अन्ने न समणुजाणिज्जा० शेष० । एस खलु परि-ग्गहस्स विरमण शेष० पचमे भते० शेष० परिग्गहाओ वेरमण ॥ ५ ॥ अथापरे पचमे भदन्त महाव्रते प्रथ-मान्तपदानि वा । परिग्रहाद्विरमण सर्वं भदन्त परिग्रह प्रत्याख्यामि तत् अल्प वा बहु वा अणु वा स्थूल वा चित्तवद्वा अचित्तवद्वा नैव स्वय परिग्रह परिगृह्णीयात् नैवान्यैः परिग्रह परिग्राहयेत् परिग्रह परिगृ-ह्णन्तमन्य न समनुजानामि शेष० स परिग्रहः शेष० । द्रव्यतः सचित्ताचित्तमिश्रितेषु द्रव्येषु क्षेत्रतो ग्रामे वा नगरे वा अरण्ये वा शेष० परिग्रहो गृहीतो वा ग्राहितो वा गृह्यमाणो वा परैः समनुज्ञातः शेष० सर्वं

रसगन्धस्पर्शानां प्रविचारणं शुभाशुभाविचिन्तनं मैथुनस्य चि० ॥ ४ ॥ इच्छा वांछा मूर्छा नितरां लोभः
प्राहिला सर्वसंग्रहबुद्धि काङ्क्षा परधनग्रहणबुद्धि प्रकोपश्च दारुणं इदं ग्रहीष्यामीति दृढं परिग्रहस्य चि०
॥ ५ ॥ अतिमात्र आहार मिशि क्षुत्प्रपेन विषेष पञ्चभोजन सूर्यास्तक्षितं चाक्षितं सूर्यास्ति मपेति चिम्ता
रात्रिभोजनस्य चि० ॥ ६ ॥ ॥ अथालापकावशकेन महाव्रतोच्चारण क्रिराह—'दंसणणाणचरित्तं० । वीर्य
क्रिता ठिओ मसणधम्मे । पढम वयमणुरक्खे विरियामो पाणाइवायाओ ॥ १ ॥ दंसणणाणचरि० ॥ १ ॥ दसणा० ब-
वयमणुरक्खे विरियामो मुसावायाओ ॥ २ ॥ दसण० तइयं० विरियामो अदिन्नादाणाओ ॥ ३ ॥ दसणा० च-
उत्थं वयमणुरक्खे विरियामो मेहुणाओ ॥ ४ ॥ दंसण० पंचमवयमणुरक्ख विरियामो परिग्गहाओ ॥ ५ ॥
रणा० छट्ठं० राइभोयणाओ ॥ ६ ॥' दर्शनज्ञानचारित्राण्यविराध्योपस्थित ...
मनुरक्षामि विरतोऽस्मि विरमामि वा प्राणातिपातात् ॥ १ ॥ दर्शनज्ञानचारित्राण्यविराध्य ...
में द्वितीय व्रतमनुरक्षामि विरमामि मृषावादात् चो० पू० ॥ २ ॥ तृतीय व्रतमनुरक्षामि ...
चो० ॥ ३ ॥ चतुर्थव्रतमनुरक्षामि विरमामि मैथुनात् चो० ॥ ४ ॥ पञ्चमं व्रतमनुरक्षामि ...
रात् चो० ॥ ५ ॥ षष्ठं व्रतमनुरक्षामि विरमामि रात्रिभोजनात् चो० ॥ ६ ॥ ...
तमिओ गुत्तो दत्तो ठिओ समणधम्मे । पढम ... विरयामो पाणाइवायाओ ॥ १ ॥ ...
प० मुसावायाओ ॥ २ ॥ ...

...सत्यापितः वाचा वचःसत्येन कायेन करणसत्येन त्रिविधेनापि सत्यापितः पचमहाव्रतानि र-

भुज्यमानं वा परैः समनुज्ञात शेपं० सर्वं रात्रिभोजन शेप० नैव स्वय रात्रौ भुञ्जीत नैवान्ये रात्रौ भोजयेत्
रात्रौ भुञ्जानानन्यांश्च समनुजानीयात् शेप० एतत्खलु रात्रिभोजनाद्विरमण शेप० षष्ठ भदन्त व्रते उपस्थि
तोस्मि शेप० रात्रिभोजनाद्विरमण ॥ ६ ॥ अथ सर्वेषा व्रताना समकालोच्चारमाह । इच्चेयाइं पञ्चमहव्वयाइं
राइभोयणवेरमणछट्ठाइं अत्तहियट्ठयाए उवसंपज्जित्ताणं विहरामि । इत्येतानि पञ्च महाव्रतानि रात्रिभोजन-
विरमणषष्ठानि आत्महितार्थं उपसपद्य सम्यक् प्रतिपद्य विहरामि ॥

अथ प्रकारान्तरेण महाव्रतव्युत्पत्तिमाह—'अप्पसत्था य जे जोगा परिणामा य दारुणा । पाणाइवायस्स
वेरमणे एस वुत्ते अइक्कमे ॥ १ ॥ तिव्वरागा य जा भासा तिव्वदोसा तहेव य । मुसावायस्स वेरमणे एस वुत्ते
अइक्कमे ॥ २ ॥ उग्गहं च अजाइत्ता अवदिन्ने य उग्गहे । अदिण्णादाणस्स वे० ॥ ३ ॥ सद्दा रूवा रसा गंधा
फासाण पवियारणे । मेहुणस्स० ॥ ४ ॥ इच्छा मुच्छा य गेहे य कलपओय दारुणे । परिग्गहस्स वे० ॥ ५ ॥
अइमित्ते थ आहारे सूरे खित्ते य संकिए । राइभत्तस्स वे० ॥ ६ ॥' अप्रशस्ता क्रोधपैशुन्यादिकरा परिणा-
माश्च दारुणाः हिंसाव्यवच्छेदादिकरा ये योगा मनोवाक्कायाः कर्मविशेषा वा प्राणातिपातस्य विरमणे एषो-
ऽतिक्रमोऽतिचार उक्त ॥ १ ॥ तीव्ररागाय प्रचुरानुरागजनना या भाषा तथैव च तीव्रद्वेषा या भाषा मृषा-
वादस्य विरमणे एषोऽतिक्रमोऽतिचार उक्त ॥ २ ॥ अवग्रह गुर्वाद्याज्ञाविशेषे दत्तेपि पूर्व व्रतयोग्य यद्यपि
तोपि कार्यकाले तस्य गुरोरवग्रह अयाचित्वा कार्यकरणमिति शेष । अदत्तादानस्य वि० ॥ ३ ॥ शब्दरूप-

रय धम्मपि य छविहं तवोकम्म उव० १३ ॥ ६ ॥ सत्त भयट्ठाणाइं सत्तविहं चेव नाणविब्भग । परि० १४ ॥ पिण्डेसण पाणेसण उग्गहसत्तकिया महज्झयणा । उव० १५ ॥७॥ अट्ठ भयट्ठाणाइं अट्ठय कम्माइ तेसिं बंध च । परि० १६ । अट्ठय पवयणमाया दिट्ठा अट्ठविहणिट्ठिअट्ठेहिं । उव० १७ ॥ ८ ॥ नवविहदसणवरण नवइ नियाणाइं अप्पसत्थाइं । परि० १८ । नवबमचेरगुत्तो दुनवविहं बमचेरपरिसुद्ध । उव० १९ ॥ ९ ॥ उवघाय च दसविहं असंवर तहय सकिलेस च । परि० २० ॥ दस चित्तसमाहिठाणा दस चेव दसाउ समणधम्मं च । उव० २१ ॥ १० ॥ आसायण च सव्व तिगुणएगारसविहं विवज्जतो । परि० २२ । एव तिदण्डविरओ तिगुत्तिगुत्तो तिसल्लनिसल्लो । तिविहेण पडिक्कतो रक्खामि० २३ ॥ ११ ॥' व्याख्या—त्रिविधेन मनोवाक्कायपोगेन अप्रमत्त. प्रमादरहितः पञ्चमहाव्रतानि रक्षामि परिपालयामि । एक सावद्ययोग एक मिथ्यात्व एक अज्ञान परिवर्जयन् गुप्तः त्रिगुप्तिगुप्तः पञ्चमहाव्रतानि रक्षामि । एक अनवद्ययोग एक सम्यक्त्व एक ज्ञान उपसपन्नः समासः युक्तः सयमयोगयुक्तः पञ्चमहाव्रतानि रक्षामि १ । द्वौ चैव रागद्वेषौ द्वे ध्याने आर्तरौद्रे च परिवर्जयन्० शेष० । द्विविध चारित्रधर्मं यतित्वगार्हस्थ्यरूप द्वे धर्मशुक्ले ध्याने उपसपन्नः० शेष० २ । कृष्णा नीला कापोता तिस्रो लेश्या अप्रशस्ताः परि० शेष० । तेजःपद्मशुक्लास्तिस्रो लेश्याः सुप्रशस्ताः उप० शेष० ३ । मनसा मनःसत्येन सत्यापितः वाचा वचःसत्येन कायेन करणसत्येन त्रिविधेनापि सत्यापितः पंचमहाव्रतानि रक्षामि ३ । चतस्रो दुःखशय्याः चतुरः कषायान् क्रोधमानमायालोभरूपान् चतस्रः सज्ञा आहारभयमैथुनपरिग्र ह-

णाओ ॥ ४ ॥ आल० पचम वय० परिग्गहाओ ॥ ५ ॥ आल० छट्ठ वयमणुरक्खे विरमामो राइभोयणाओ ॥ ६ ॥' प्रथम व्रतमनुरक्षामि विरमामि प्राणातिपातात् आलयविहारसमितः आलयः स्थिति' विहारो गमन तत्र समितः पञ्चसमितियुक्तः युक्तः सयमयोगभृत् गुप्तस्त्रिगुप्तिगुप्त' उपस्थितः श्रमणधर्मे ॥ १ ॥ द्वितीय व्रतम० मृषावादात् शेष० ॥ २ ॥ तृतीय व्रतम० अदत्तादानात् शेष० ॥ ३ ॥ चतुर्थं व्रतम० मैथुनात् शेष० ॥ ४ ॥ पचम व्रतम० परिग्रहात् शेष० ॥ ५ ॥ षष्ठ व्रतमनुरक्षामि विरमामि रात्रिभोजनात् शेष० ॥ ६ ॥ ॥ अथैकाद्येकादशान्तहेयोपादेयत्यागग्रहणद्वारेण पौनःपुन्येन महाव्रतरक्षणमाह—'तिविहेण अप्पमत्तो रक्खामि महव्वए पच । सावज्जजोगमेग मिच्छत्त एगमेव अन्नाण । परिवज्जतो गुत्तो रक्खामि महव्वए पच ॥ १ ॥ अणवज्जजोगमेगं सम्मत्तं एगमेव नाणओ । उवसपन्नो जुत्तो रक्खामि महव्वए पच ॥ २ ॥ दो चेव रागदोसे दोण्णिय झाणाइ अट्टरुद्दाइ । परि० ॥ ३ ॥ दुविह चरित्तधम्म दोण्णिय झाणाइ धम्मसुक्काइ । उव० ॥ ४ ॥ किण्हा नीला काऊ तिण्णियलेसाउ अप्पसत्थाओ । परि० ५ ॥ तेओ पम्हासुक्का तिण्णिय लेसाउ सुप्पसत्थाओ । उव० ६ ॥ २ ॥ मणसा मणसच्चविओ वायासच्चेण करणसच्चेण । तिविहेणवि सच्चविर । उव० ७ ॥३॥ चत्तारि य दुहसिज्जा चउरो सन्ना तहा कसायाउ । परि० ८ । चत्तारि य सुहसिज्जा चउविह सवर समाहिं च । उव० ९ ॥ ४ ॥ पंचेव य कामगुणे पचेव य निण्हवे महादोसे १० । पचिंदिय सवरण तत्तो पचविहमेव सज्झाय । उव० ११ ॥ ५ ॥ छज्जीवनिकायविह छव्विहभासाउ अप्पसत्थाओ । परि० १२ । छव्विह मब्भिंतर-

रवर्धमानस्वामिने नमोस्तु तुभ्यमर्हते । नमोस्तु तुभ्य भगवते । एव भगवन्त नमस्कृत्य तदग्रत एव कथितव-
क्ष्यमाणस्थापनमाह । त्रिःकृत्वस्त्रिवेल खलु महाव्रतोच्चारणा कृता । महव्वयउच्चारणा पचविहा पन्नत्ता इत्या-
रभ्य इच्चेइयाइं पचमहव्वयाइ इतिपर्यन्त एकवेल अप्पसत्थाय जे जोगा इत्यारभ्य आलयविहारसमिओ
जुत्तो गुत्तो उवट्ठिओ समणधम्मे इतिपर्यन्त द्विवेलं । तिविहेण अप्पमत्तो इत्यारभ्य एव तिदण्डविरओ
इतिपर्यन्त त्रिवेल ॥ अथ इच्छामः सूत्रकीर्तन कर्तुं श्रुताधाराणां मुनीना नमस्कारद्वारेण श्रुतनामकीर्तनमाह ॥
नमो तेसिं खमासमणाण जेहिं इम वाइय छव्विहमावस्सय भगवन्त । तजहा । सामाइय चउवीसच्छओ
वदण पडिक्कमण काउसग्गो पच्चक्खाण सव्वेसिंपि एवमि । छव्विहे आवस्सए भगवते ससुत्ते सअत्थे सग्गथे
सणिज्जुत्तिए ससगहणिए जे गुणा वा भावा वा अरहतेहिं भगवतेहिं पन्नत्ता वा परूविया वा ते भावे सद्द-
हामो पत्तियामो रोएमो फासेमो पालेमो अनुपालेमो ते भावे सद्दहतेणं पत्तियतेण रोयतेण फासि० तेण पा-
लितेण अणुपालितेण अतोपक्खस्स ज वाइय पढिय परियट्टिय पुच्छिय अणुपेहिय अणुपालिय त दुक्खक्ख
याए कम्मक्खयाए बोहिलाभाए ससारुत्तारणाए तिकट्टु उवसपज्जित्ताण विहरामि अतोपक्खस्स ज न वा-
इय न पढिय न पुच्छिय न परियट्टिय नाणुपालिय नाणुपेहिय सते बले सते वीरिए सते पुरिसक्कारपडिक्कमे ।
तस्स आलोएमो पडिक्कमामो निंदामो गरिहामो विउट्टेमो विसोहेमो अकरणयाए अब्भुट्ठेमो । अहारिह
तवोकम्म पायच्छित्त पडिवज्जामो तस्स मिच्छामि दुक्कडं ॥ नमो तेसिं खमासमणाण जिहिं इम वायाइं ( वा-

महव्वयउच्चारणा कया। कायथिरत्त सल्लुद्धरणं धिइबलं ववसाओ। पडागाहरण णिज्जूहणाराहणा गुणाण संव-रजोगो पसत्थज्झाणोवगतता जुत्तताधझाणे परमट्ठे उत्तमट्ठे अ। एस खलु तित्थंकरेहिं रयरागदेसमहणेहिं देसिओ पवयणस्स सारो छज्जीवनिकायसंजमो उवइसिओ तिलुक्कस्स कय ठाण। अब्भुवगया नमुत्थु ते सिद्धबुद्धमुत्तनीरयनिस्संगनिस्सल्लमाणमूरण गुणरयणसायरमण तमहप्पमेय नमुत्थुते समणस्स भगवओ महइ महावीरवद्धमाणसामिस्स नमुत्थुते अरहओ नमुत्थुते भगवओ त्तिकट्टु एसा खलु महव्वयउच्चारणा कया इच्छामो सुत्तकित्तण काउ॥ व्याख्या—इत्येषा खलु महाव्रतोच्चारणा कृता क' प्रभावो महाव्रताना-मित्याह। कायस्थिरत्व धर्मशरीरस्य स्थैर्यं, शल्योद्धरण मायामिथ्यात्वनिदानशल्यापगमः, धृतिबल धीबल वा, व्यवसायो विगतविषादान्तःसयमोपक्रमो वा, पताकाहरण सयमयशसोद्भावनास्थापनाराधनागुणाना सवरयोगः प्रसिद्ध' प्रशस्तध्यानोपगतताशुभध्यानस्थितिरूपसपत्र प्रसिद्धा, युक्तताधझाने परमार्थ उत्तमा-र्थश्च प्रसिद्धपर्यायाः। एतत् खलु तीर्थकरैः रजोरागद्वेषमथनैः देशित प्रवचनस्य सार षड्जीवनिकायसयम उपदिष्टः। पञ्चमहाव्रतपालनेपि परमार्थतः षड्जीवनिकायरक्षैवेत्यर्थः। त्रैलोक्यस्य कृत स्थान सुख स्थिति-हितहेतुत्वात्। अतएव तान् जिनान् नमस्करोति। तत्रापि वर्तमानतीर्थत्वात् भगवत श्रीवर्धमानस्वामिन नमस्करोति। यथा नमोस्तु तुभ्य अरहन्त भगवन्त ससारतीर्ण सिद्धबुद्धमुक्तनीरजोनिस्सङ्गनिःशल्यमानह-रण गुणरत्नसागर अनन्ताप्रमेय। एतेषा पर्यायाः प्रसिद्धाः। नमोस्तु तुभ्य श्रमणाय भगवते महते महावी-

एव भगवन्त नमस्कृत्य तदग्रत एव कथितच-
रवर्धमानस्वामिने नमोस्तु तुभ्यमर्हते । नमोस्तु तुभ्य भगवते । महव्वयउच्चारणा पचविहा पन्नत्ता इत्या-
क्ष्यमाणख्यापनमाह । त्रिःकृत्वस्त्रिवेल खलु महाव्रतोच्चारणा कृता । आलयविहारसमिओ
रम्य इच्चेइयाइ पचमहव्वयाइ इतिपर्यन्त एकवेलं अप्पसत्थाय जे जोगा इत्यारम्य एव तिदण्डविरओ
जुत्तो गुत्तो उवट्ठिओ समणधम्मे इतिपर्यन्त द्विवेल । तिविहेण अप्पमत्तो इत्यारभ्य एव
इतिपर्यन्त त्रिवेल ॥ अथ इच्छामः सूत्रकीर्तन कर्तुं श्रुताधाराणा मुनीना नमस्कारद्वारेण श्रुतनामकीर्तनमाह ॥
नमो तेसिं खमासमणाण जेहिं इम वाइय छव्विहमावस्सय भगवन्त । तजहा । सामाइय चउवीसच्छओ
वदण पडिक्कमण काउसग्गो पच्चक्खाण सव्वेसिंपि एवमि । छव्विहे आवस्सए भगवते ससुत्ते सअत्थे सग्गथे
सणिज्जुत्तिए ससगहणिए जे गुणा वा भावा वा अरहतेहिं भगवतेहिं पन्नत्ता वा परूविया वा ते भावे सद्द-
हामो पत्तियामो रोएमो फासेमो पालेमो अनुपालेमो ते भावे सद्दहतेणं पत्तियतेण रोयतेण फासि० तेण पा-
लितेण अणुपालितेण अतोपक्खस्स ज वाइय पढिय परियट्टिय पुच्छिय अणुपेहिय अणुपालिय त दुक्खक्ख-
याए कम्मक्खयाए बोहिलाभाए ससारुत्तारणाए तिकट्टु उवसपजित्ताण विहरामि अतोपक्खस्स ज न वा-
इय न पढिय न पुच्छिय न परियट्टिय नाणुपालिय नाणुपेहिय सते बले संते वीरिए सते पुरिसक्कारपडिक्कमे ।
तस्स आलोएमो पडिक्कमामो निंदामो गरिहामो विउट्टेमो विसोहेमो अकरणयाए अब्भुट्ठेमो । अहारिह
तवोकम्म पायच्छित्त पडिवज्जामो तस्स मिच्छामि दुक्कड ॥ नमो तेसिं खमासमणाण जिहिं इम वायाइ ( वा-

अनुप्रेक्षित उक्तानुक्तदुरुक्तचिन्तनैः शोधित उक्तसिद्धान्तमध्यादित्यर्थः । तत् दुःखक्षयाय कर्मक्षयाय बोधिलाभाय संसारोत्तारणाय त्रिःकृत्वः उपसंयुज्य सधार्य उपसंपद्य वा । ण इति वाक्यालंकारे । विचरामि अतपक्षस्य चातुर्मासिकस्य सांवत्सरिकस्य यन्न वाचितं न पठितं न परिनिष्ठितं न पृष्टं न प्रेक्षितं नानुपालितं नानुप्रेक्षितं सति बले सति वीर्ये सति पुरुषाकारपराक्रमे बलं देहसंभवं वीर्यमुत्साहसंभवं पुरुषाकारपराक्रमो धैर्यगाम्भीर्यरूपः तस्य अवाचनादिरूपस्य पापस्य आलोचयामः प्रतिक्रमामः आलोचनाप्रतिक्रमार्हप्रायश्चित्तात् निन्दामो गर्हामहे पूर्ववत् वर्तयामः पुण्येन पापं हन्मः विशोधयामः तच्छुद्धिं कुर्मः अकरणतया अकारित्वेन अभ्युत्तिष्ठामः तदुपक्रमं कुर्मः यथार्हं तपःकर्मप्रायश्चित्तं तपोयोग्यमपोहस्तिशोधनार्हं प्रायश्चित्तं प्रतिपद्यामहे । तस्य मिथ्या मे दुष्कृतं पूर्ववत् । पुनर्नमस्तेभ्यः क्षमाश्रमणेभ्यो यैरिदं वाचितं अङ्गबाह्यं । उत्कालिकं भगवता अङ्गबाह्यं द्वादशाङ्ग्या अतिरिक्तं उत्कालिकं योगेषु कालग्रहणसंघट्टादिवर्जितं भगवत इति पूर्ववत् । तद्यथा । दशवैकालिकं १ कल्पाकल्पिकं २ क्षुल्लककल्पश्रुतं ३ महाकल्पश्रुतं ४ उपपातिकं ५ राजप्रश्नेणिकं ६ जीवाभिगमः ७ प्रज्ञापना ८ महाप्रज्ञापना ९ नन्दी १० अनुयोगद्वाराणि ११ देवेन्द्रस्तवः १२ तन्दुलवैकालिकं १३ चन्द्रविध्यंजः १४ प्रमादप्रमाथः १५ पौरुषीमण्डलं १६ मण्डलीप्रवेशः १७ गणिविद्या १८ विद्याचरणविनिश्चयः १९ आत्मविशुद्धिः २० मरणविशुद्धिः ध्यानविशुद्धिः २१ मरणविशुद्धिः २२ संलेखनाश्रुतं २३ वीतरागश्रुतं २४ विहारकल्पः २५ चरणविधिः २६ आतुरप्रत्याख्यानं २७ महाप्रत्या-

स्यास्म २८ सर्वस्मिन् अङ्गबाह्ये उत्कालिके शेष० ॥ पुनर्नमस्तेभ्यः क्षमाश्रमणेभ्यो यैरिद वाचित अङ्गबाह्य कालिक कालग्रहणसंघट्टयोगसहित भगवन् ज्ञानमाहात्म्यमय । तद्यथा । उत्तराध्ययनानि दशाः कल्पः व्यवहारः ऋषिभाषितानि निशीथो महानिशीथः जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिः चन्द्रप्रज्ञप्तिः सूर्यप्रज्ञप्तिः द्वीपसागरप्रज्ञप्तिः क्षुल्लकीविमानप्रज्ञप्तिः महतीविमानप्रज्ञप्तिः अङ्गचूलिकाः वङ्गचूलिकाः व्यवहारचूलिकाः अरुणोपपातः गरुडोपपात. वरुणोपपात. धरणोपपातः वेलधरोपपातः देवेन्द्रोपपातः वैश्रमणोपपातः उत्थानश्रुत समुत्थानश्रुत नागपर्यायलिकाः निरयावलिका' काल्पिकाः कल्पावतंसिकाः पुष्पिकाः पुष्पचूलिकाः वह्निदशाः आशीविषभावनाः दृष्टिविषभावनाः चारणभावनाः महाश्रमणभावना' तेजोग्निविसर्गाः सर्वस्मिन्नप्येतस्मिन्नङ्गबाह्ये कालिके भगवति । शेष० ॥ पुनर्नमस्तेभ्यः क्षमाश्रमणेभ्यो यैरिद वाचितं । कालिकमित्यनुवर्तते । द्वादशाङ्ग गणिपिटक भगवन् । तद्यथा । आचार' सूत्रकृत स्थान समवायः विवाहप्रज्ञप्तिः ज्ञाताधर्मकथाः उपासकदशा' अन्तकृद्दशाः अनुत्तरोपपातिकदशा. प्रश्नव्याकरण विपाकश्रुतं दृष्टिवादः सर्वस्मिन्नप्येतस्मिन्द्वादशाङ्गे गणिपिटके भगवति । शेष० । एतेषा सर्वेषां सिद्धान्ताना अन्त. कथित नामग्रहणमेव कथित । एतेषा भेदाः शास्त्राध्ययनोद्देशप्रमाणानि ग्रन्थविस्तरभयान्नोदितानि महाशास्त्रेभ्योऽवसेयानि ॥ पुनरपि सिद्धान्तप्रधानत्वात् प्रान्ते द्वादशाङ्गीनमस्कारमाह । नमस्तेभ्यः क्षमाश्रमणेभ्यो यैरिद वाचित द्वादशाङ्ग गणिपिटक भगवन् ।

१ भगवतीसूत्र ।

अनुप्रेक्षित उक्तानुक्तदुरुक्तचिन्तने शोधित उक्तसिद्धान्तमध्यादित्यर्थः । तत् दुःखक्षयाय कर्मक्षयाय बोधिलाभाय संसारोत्तारणाय त्रिःकृत्वः उपसंयुज्य संधार्य उपसंपद्य वा । ण इति वाक्यालंकारे । विचरामि अतपक्षस्य चातुर्मासिकस्य सांवत्सरिकस्य यन्न वाचितं न पठितं न परिनिष्ठितं न पृष्टं न प्रेक्षितं नानुपालितं नानुप्रेक्षितं सति बले सति वीर्ये सति पुरुषाकारपराक्रमे बलं देहसंभवं वीर्यमुत्साहसंभवं पुरुषाकारपराक्रमो धैर्यगाम्भीर्यरूपः तस्य अवाचनादिरूपस्य पापस्य आलोचयामः प्रतिक्रमामः आलोचनाप्रतिक्रमार्हप्रायश्चित्तात् निन्दामो गर्हामहे पूर्ववत् वर्तयामः पुण्येन पापं हन्मः विशोधयामः तच्छुद्धिं कुर्मः अकरणतया अकारित्वेन अभ्युत्तिष्ठामः तदुपक्रमं कुर्मः यथार्हतपःकर्मप्रायश्चित्तं तद्योग्यतपोवृत्तिशोधनार्हं प्रायश्चित्तं प्रतिपद्यामहे । तस्य मिथ्या मे दुष्कृतं पूर्ववत् । पुनर्नमस्तेभ्यः क्षमाश्रमणेभ्यो यैरिदं वाचितं अङ्गबाह्यं । उत्कालिकं भगवता अङ्गबाह्यं द्वादशाङ्ग्या अतिरिक्तं उत्कालिकं योगेषु कालग्रहणसंघट्टादिवर्जितं भगवत इति पूर्ववत् । तद्यथा । दशवैकालिकं १ कल्पाकल्पिकं २ क्षुल्लककल्पश्रुतं ३ महाकल्पश्रुतं ४ उपपातिकं ५ राजप्रश्नेणिकं ६ जीवाभिगमः ७ प्रज्ञापना ८ महाप्रज्ञापना ९ नन्दी १० अनुयोगद्वाराणि ११ देवेन्द्रस्तवः १२ तन्दुलवैकल्पिकं १३ चन्द्रविध्वंजः १४ प्रमादप्रमाथः १५ पौरुषीमण्डलं १६ मण्डलीप्रवेशः १७ गणिविद्या १८ विद्याचरणविनिश्चयः १९ आत्मविशुद्धिः २० मरणविशुद्धिः ध्यानविशुद्धिः २१ मरणविशुद्धिः २२ संलेखनाश्रुतं २३ वीतरागश्रुतं २४ विहारकल्पः २५ चरणविधिः २६ आतुरप्रत्याख्यानं २७ महाप्रत्या-

स्थाम २८ सर्वस्मिन् अङ्गबाह्ये उत्कालिके शेष० ॥ पुनर्नमस्तेभ्यः क्षमाश्रमणेभ्यो यैरिद वाचित अङ्गबाह्य कालिक कालग्रहणसघट्टयोगसहित भगवत् ज्ञानमाहात्म्यमय । तद्यथा । उत्तराध्ययनानि दशाः कल्पः व्यवहार' ऋषिभाषितानि निशीथो महानिशीथ' जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिः चन्द्रप्रज्ञप्तिः सूर्यप्रज्ञप्तिः द्वीपसागरप्रज्ञप्तिः क्षुल्लकीविमानप्रज्ञप्तिः महतीविमानप्रज्ञप्ति अङ्गचूलिका: वर्गचूलिकाः व्यवहारचूलिकाः अरुणोपपातः गरुडोपपात' वरुणोपपात, धरणोपपात' वेलधरोपपातः देवेन्द्रोपपातः वैश्रमणोपपातः उत्थानश्रुत समुत्थानश्रुत नागपर्यावलिकाः निरयावलिकाः काल्पिकाः कल्पावतसिकाः पुष्पिकाः पुष्पचूलिकाः वह्निदशाः आशीविषभावनाः दृष्टिविषभावनाः चारणभावनाः महाश्रमणभावनाः तेजोग्निनिसर्गाः सर्वस्मिन्नप्येतस्मिन्नङ्गबाह्ये कालिके भगवति । शेष० ॥ पुनर्नमस्तेभ्यः क्षमाश्रमणेभ्यो यैरिद वाचित । कालिकमित्यनुवर्तते । द्वादशाङ्ग गणिपिटक भगवत् । तद्यथा । आचारः सूत्रकृत स्थान समवायः विवाहप्रज्ञप्तिः[1] ज्ञाताधर्मकथाः उपासकदशा' अन्तकृद्दशाः अनुत्तरोपपातिकदशाः प्रश्नव्याकरण विपाकश्रुत दृष्टिवादः सर्वस्मिन्नप्येतस्मिन्द्वादशाङ्गे गणिपिटके भगवति । शेष० । एतेषां सर्वेषां सिद्धान्ताना अन्तः कथित नामग्रहणमेव कथितं । एतेषा भेदाः शास्त्राध्ययनोद्देशप्रमाणानि ग्रन्थविस्तरमयाभ्नोदितानि महाशास्त्रेभ्योऽवसेयानि ॥ पुनरपि सिद्धान्तप्रधानत्वात् प्रान्ते द्वादशाङ्गीनमस्कारमाह । नमस्तेभ्यः क्षमाश्रमणेभ्यो यैरिद वाचित द्वादशाङ्ग गणिपिटक भगवत् ।

---

[1] भगवतीसूत्र ।

अनुप्रेक्षित उक्तानुक्तदुरुक्तचिन्तनैः शोधित उक्तसिद्धान्तमध्यादित्यर्थं । तत् दुःखक्षयाय कर्मक्षयाय बोधि-
लाभाय संसारोत्तारणाय त्रिःकृत्वः उपसंयुज्य संधार्य उपसंपद्य वा । ण इति वाक्यालंकारे । विचरामि
अतपक्षस्य चातुर्मासिकस्य सांवत्सरिकस्य यन्न वाचित न पठित न परिनिष्ठित न पृष्ट न प्रेक्षित नानुपा-
लित नानुप्रेक्षित सति बले सति वीर्ये सति पुरुषाकारपराक्रमे बल देहसंभव वीर्यमुत्साहसंभव पुरुषाका-
रपराक्रमो धैर्यगाम्भीर्यरूप तस्य अवाचनादिरूपस्य पापस्य आलोचयामः प्रतिक्रमामः आलोचनाप्रतिक्र-
मार्हप्रायश्चित्तात् निन्दामो गर्हामहे पूर्ववत् वर्तयामः पुण्येन पाप हन्मः विशोधयामः तच्छुद्धिं कुर्मः अक-
रणतया अकारित्वेन अभ्युत्तिष्ठामः तदुपक्रम कुर्मः यथार्हत्तपःकर्मप्रायश्चित्त तद्योग्यतपोवृत्तिशोधनार्हं प्राय-
श्चित्त प्रतिपद्यामहे । तस्य मिथ्या मे दुष्कृत पूर्ववत् । पुनर्नमस्तेभ्यः क्षमाश्रमणेभ्यो यैरिद वाचित अङ्ग-
बाह्य । उत्कालिक भगवता अङ्गबाह्य द्वादशाङ्ग्या अतिरिक्तं उत्कालिक योगेषु कालग्रहणसंघट्टादिवर्जित
भगवत इति पूर्ववत् । तद्यथा । दशवैकालिक १ कल्पाकल्पिक २ क्षुल्लककल्पश्रुत ३ महाकल्पश्रुत ४ उपपा-
तिक ५ राजप्रश्नेणिक ६ जीवाभिगमः ७ प्रज्ञापना ८ महाप्रज्ञापना ९ नन्दी १० अनुयोगद्वाराणि ११ देवे-
न्द्रस्तवः १२ तन्दुलवैकल्पिक १३ चन्द्रविध्वंज. १४ प्रमादप्रमाथः १५ पौरुषीमण्डल १६ मण्डलीप्रवेशः १७
गणिविद्या १८ विद्याचरणविनिश्चयः १९ आत्मविशुद्धिः २० मरणविशुद्धिः ध्यानविशुद्धिः २१ मरणविशुद्धि
२२ संलेखनाश्रुत २३ वीतरागश्रुत २४ विहारकल्पः २५ चरणविधिः २६ आतुरप्रत्याख्यान २७ महाप्रत्या-

स्थान २८ सर्वस्मिन् अङ्गबाह्ये उत्कालिके शेष० ॥ पुनर्नमस्तेभ्यः क्षमाश्रमणेभ्यो यैरिद वाचित अङ्गबाह्य कालिक कालग्रहणसद्धयोगसहित भगवन् ज्ञानमाहात्म्यमय । तद्यथा । उत्तराध्ययनानि दशाः कल्पः व्यवहार ऋषिभाषितानि निशीथो महानिशीथ जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिः चन्द्रप्रज्ञप्तिः सूर्यप्रज्ञप्तिः द्वीपसागरप्रज्ञप्तिः क्षुल्लकीविमानप्रज्ञप्तिः महतीविमानप्रज्ञप्तिः अङ्गचूलिकाः व्यङ्गचूलिकाः व्यवहारचूलिकाः अरुणोपपातः गरुडोपपातः वरुणोपपात. धरणोपपातः वेलधरोपपातः देवेन्द्रोपपात वैश्रमणोपपातः उत्थानश्रुत समुत्थानश्रुत नागपर्यावलिकाः निरयावलिकाः कल्पिकाः कल्पावतंसिकाः पुष्पिकाः पुष्पचूलिकाः वह्निदशाः आशीविषभावनाः दृष्टिविषभावनाः चारणभावनाः महाश्रमणभावना तेजोग्निविसर्गाः सर्वस्मिन्नप्येतस्मिन्नङ्गबाह्ये कालिके भगवति । शेष० ॥ पुनर्नमस्तेभ्यः क्षमाश्रमणेभ्यो यैरिद वाचित । कालिकमित्यनुवर्तते । द्वादशाङ्ग गणिपिटक भगवन् । तद्यथा । आचारः सूत्रकृत स्थान समवायः विवाहप्रज्ञप्तिः ज्ञाताधर्मकथाः उपासकदशा अन्तकृद्दशाः अनुत्तरोपपातिकदशाः प्रश्नव्याकरण विपाकश्रुतं दृष्टिवादः सर्वस्मिन्नप्येतस्मिन्द्वादशाङ्गे गणिपिटके भगवति । शेष० । एतेषा सर्वेषां सिद्धान्तानां अन्तः कथित नामग्रहणमेव कथित । एतेषा भेदाः शास्त्राध्ययनोद्देशप्रमाणानि ग्रन्थविस्तरभयान्नोदितानि महाशास्त्रेभ्योऽवसेयानि ॥ पुनरपि सिद्धान्तप्रधानत्वात् प्रान्ते द्वादशाङ्गीनमस्कारमाह । नमस्तेभ्यः क्षमाश्रमणेभ्यो यैरिद वाचित द्वादशाङ्ग गणिपिटक भगवन् ।

---

१ भगवतीसूत्र ।

अनुप्रेक्षित उक्तानुक्तदुरुक्तचिन्तनैः शोधित उक्तसिद्धान्तमध्यावित्यर्थ. । तत् दु:खक्षयाय कर्मक्षयाय बोधि-
लाभाय ससारोत्तारणाय त्रि:कृत्व. उपसयुज्य सधार्य उपसपद्य वा । ण इति वाक्यालकारे । विचरामि
अतपक्षस्य चातुर्मासिकस्य सावत्सरिकस्य यन्न वाचित न पठित न परिनिष्ठितं न पृष्ट न प्रेक्षित नानुपा-
लित नानुप्रेक्षित सति बले सति वीर्ये सति पुरुषाकारपराक्रमे बल देहसभव वीर्यमुत्साहसमव पुरुषाका-
रपराक्रमो धैर्यगाम्भीर्यरूप' तस्य अवाचनादिरूपस्य पापस्य आलोचयामः प्रतिक्रमामः आलोचनाप्रतिक्र-
माईप्रायश्चित्तात् निन्दामो गर्हामहे पूर्ववत् वर्तयाम' पुण्येन पाप हन्मः विशोधयाम' तच्छुद्धिं कुर्मः अक-
रणतया अकारित्वेन अभ्युत्तिष्ठामः तदुपक्रम कुर्मः यथार्हतपःकर्मप्रायश्चित्त तद्योग्यतपोवृत्तिशोधनार्हं प्राय-
श्चित्त प्रतिपद्यामहे । तस्य मिथ्या मे दुष्कृत पूर्ववत् । पुनर्नमस्तेभ्यः क्षमाश्रमणेभ्यो यैरिद वाचित अङ्ग-
बाह्य । उत्कालिक भगवता अङ्गबाह्य द्वादशाङ्ग्या अतिरिक्त उत्कालिक योगेषु कालग्रहणसंघट्टादिवर्जित
भगवत इति पूर्ववत् । तद्यथा । दशवैकालिक १ कल्पाकल्पिक २ क्षुल्लककल्पश्रुत ३ महाकल्पश्रुत ४ उपपा-
तिक ५ राजप्रश्नेणिक ६ जीवाभिगमः ७ प्रज्ञापना ८ महाप्रज्ञापना ९ नन्दी १० अनुयोगद्वाराणि ११ देवे-
न्द्रस्तवः १२ तन्दुलवैकल्पिक १३ चन्द्रविध्वंजः १४ प्रमादप्रमाथः १५ पौरुषीमण्डल १६ मण्डलीप्रवेशः १७
गणिविद्या १८ विद्याचरणविनिश्चयः १९ आत्मविशुद्धिः २० मरणविशुद्धिः ध्यानविशुद्धिः २१ मरणविशुद्धि'
२२ सलेखनाश्रुत २३ वीतरागश्रुत २४ विहारकल्पः २५ चरणविधिः २६ आतुरप्रत्याख्यान २७ महाप्रत्या-

लीकवचनविरतेः कन्यागोभूम्यलीकन्यासापहारकूटसाक्ष्यविरतिरूपायाः अतिचरित शेष० । सहसाभ्याख्यान अश्रुतादृष्टपरविरूपकथन । रहस्स इति परगुह्यभाषण । दारेति परस्य विश्वासेन निवेदितस्य प्रकाशन । मृषोपदेशः ज्ञात्वाऽज्ञात्वा वा भेषजमन्त्रादीना कूटकथन । कूटलेखोऽसत्यवार्तालिखन द्वितीयव्रतस्यातिचारे शेष० ॥ १२ ॥ 'तइए अणुव्वयमी थूलगपरदव्वहरणविरईओ । आयरियमप्पसत्थे इत्थपमायप्पसंगेण ॥ १३ ॥ तेनाहडप्पओगे तप्पडिरूवे य विरुद्धगमणे य । कूडतुलकूडमाणे पडि० ॥ १४ ॥' तृतीये अणुव्रते स्थूलपरद्रव्यहरणविरतेः राजनिग्रहकरचौरनामकरादत्तादानवर्जनात् अतिचरित शेष० । तेनाहृतवस्तुग्रहण मूल्येनापि । प्रयोगः चौर्यार्थं परप्रेरण तत्प्रतिरूप वस्तुसदृशवस्तुमीलन विरुद्धगमन नृपतिनिषिद्धदेशगमन । कूटतुलकूटमान प्रसिद्ध प्रतिक्रमामि शेष० ॥ १४ ॥ 'चउत्थे अणुव्वयमी णिच्च परदारगमणविरईओ । आयरियमप्प० ॥ १५ ॥ अपरिग्गहिया इत्तर अणगवीवाह तिव्वअणुरागे । चउत्थवयस्स अइयारे पडि० ॥ १६ ॥' गाथाद्वयेन सबन्धः । चतुर्थे अणुव्रते नित्य परदारगमनविरतेः अतिचरित शेष पू० । अत्र परदारगमनविरतौ वेश्याविधवोपेक्षितागमने निर्दोषता तथाप्यतिचारमाह । अपरिगृहीतागमन वेश्याविधवादेरस्वीकृताया अभिगमः । इत्वरा केनापि या स्तोककाल द्रव्यादिना वेश्याविधवा स्वीकृता तस्याभिगमः । अनङ्गक्रीडा पुरुषस्य पुरुषादिसंगो हस्तकर्मादि वा । विवाहोऽन्यकन्यापुत्रविवाहकारिता । तीव्रानुरागः कामक्रीडादिकामशास्त्रोचित कर्म चतुर्थस्य व्रतस्यातिचारान् शेष० ॥ १६ ॥ 'इत्तो अणुव्वए पंचममि आयरिय-

कायसमारम्भे षड्विधजीवनिकायघातिन्यारम्भे तेषां षट्कायाना पचने पाचने वा पतने पातने वा आत्मार्थं वा उभयार्थं वा ये दोषाः तान्निन्दामि ॥ ७ ॥ 'पचण्ह अणुव्वयाण गुणव्वयाण च तिण्ह मइयारे । सिक्खाण च चउण्ह पडिक्कमे देवसिय सव्व ॥ ८ ॥' पञ्चाना अणुव्रतानां त्रयाणा गुणव्रताना चतुर्णां शिक्षाव्रताना च अतिचारान्प्रतिक्रमामि ॥ ८ ॥ तानेवाह । 'पढमे अणुव्वयमी थूलगपाणाइवायविरईओ । आयरिउमप्पसत्थे इत्थ पमायप्पसगेण ॥ ९ ॥' वहबंधछविच्छेए अइयारे भत्तपाणवुच्छेए । पढमवयस्स अइयारे पडिक्कमे देवसिय सव्व ॥ १० ॥' गाथाद्वयेन सबन्धः । प्रथमे अणुव्रते स्थूलप्राणातिपातविरतौ आचीर्णे अप्रशस्ते । अत्र प्रमादप्रसगेन अणुव्रतमिति यत्युचितमहाव्रतापेक्षया स्थूलप्राणातिपातविरतिरिति । स्थूलप्राणाना द्वीन्द्रियादीना हिंसननिवृत्तिः । अथवा वधबन्धविच्छेदादिरूपाणा स्थूलप्राणातिपाताना विरतिः अतिचरितमिति अतिचारो नियमातिक्रमकृतः । अप्रशस्ते क्रोधादिकषायवैषम्ये पञ्चेन्द्रियार्तौ वा । अत्र व्रते प्रमादप्रसङ्गेन यथाविप्रमादोपनयेन अतिचारानाह । वधो द्विपदचतुःपदादीनां निर्दयताडन, बन्धो द्विपदादीनां रज्ज्वादिभि, छविच्छेद चर्मनाशादि कर्णादिकर्तन, अतिभारः प्राणिनां शक्त्यनपेक्षया बहुभारदान भक्तपानव्यवच्छेदः प्राणिनामाहारजलादिनिषेधः । प्रथमव्रतस्यातिचारे प्रतिक्रमामि शेष० ॥ १० ॥ 'बीए अणुव्वयमी परिथूलगअलियवयणविरईओ । आयरियमप्पसत्थे इत्थ पमायप्पसगेण ॥ ११ ॥ सहसा रहस्स दारे मोसुवएसे अ कूडलेहे अ । बीयवयस्स इयारे पडि० ॥ १२ ॥' गाथाद्वयेन सबन्धः । द्वितीये अणुव्रते परिस्थूला-

लीकवचनविरतेः कन्यागोभूम्यलीकन्यासापहारकूटसाक्ष्यविरतिरूपायाः अतिचरित शेष० । सहसाभ्याख्यान अश्रुतादृष्टपरविरूपकथन । रहस्स इति परगुह्यभाषण । दारेति परस्य विश्वासेन निवेदितस्य प्रकाशन । मृषोपदेशः ज्ञात्वाऽज्ञात्वा वा भेषजमन्त्रादीना कूटकथन । कूटलेखोऽसत्यवार्तालिखन द्वितीयव्रतस्यातिचारे शेषं० ॥ १२ ॥ 'तइए अणुव्वयमी थूलगपरदव्वहरणविरईओ । आयरियमप्पसत्थे इत्थपमायप्पसगेण ॥ १३ ॥ तेनाहडप्पओगे तप्पडिरूवे य विरुद्धगमणे य । कूडतुलकूडमाणे पडि० ॥ १४ ॥' तृतीये अणुव्रते स्थूलपरद्रव्यहरणविरतेः राजनिग्रहकरचौरनामकरादत्तादानवर्जनात् अतिचरित शेष० । तेनाहृतवस्तुग्रहण मूल्येनापि । प्रयोग. चौर्यार्थं परप्रेरण तत्प्रतिरूप वस्तुसदृशवस्तुमीलन विरुद्धगमन नृपतिनिषिद्धदेशगमन । कूटतुलकूटमान प्रसिद्ध प्रतिक्रमामि शेष० ॥ १४ ॥ 'चउत्थे अणुव्वयमी णिच्च परदारगमणविरईओ । आयरियमप्प० ॥ १५ ॥ अपरिग्गहिया इत्तर अणगवीवाह तिव्वअणुरागे । चउत्थवयस्स अइयारे पडि० ॥ १६ ॥' गाथाद्वयेन सबन्धः । चतुर्थे अणुव्रते नित्य परदारगमनविरतेः अतिचरित शेष पू० । अत्र परदारगमनविरतौ वेश्याविधवोपेक्षितागमने निर्दोषता तथाप्यतिचारमाह । अपरिगृहीतागमन वेश्याविधवादेरस्वीकृताया अभिगमः । इत्वरा केनापि या स्तोककाल द्रव्यादिना वेश्याविधवा स्वीकृता तस्याभिगमः । अनङ्गक्रीडा पुरुषस्य पुरुषादिसगो हस्तकर्मादि वा । विवाहोऽन्यकन्यापुत्रविवाहकारिता । तीव्रानुरागः कामक्रीडादिकामशास्त्रोचित कर्म चतुर्थस्य व्रतस्यातिचारान् शेष० ॥ १६ ॥ 'इत्तो अणुव्वये पचममि आयरिय-

गकेदारप्रहारविशोषण १४, असतीपोषः वित्तनिमित्तं दास्यादिपोषण सारिकाशुकमार्जारकुक्कुटमयूरश्वानपालनरूपं १५, एतत्कर्मादानपञ्चदशक द्वितीयान्त कृत्वा वर्जयेदिति शेषः ॥ २३ ॥ ॥ अथानर्थदण्ड गाथाश्रयेणाह । "सत्थग्गि मुसल जतग तणकठे मतमूलभेसज्जे । दिन्ने दवाविये वा पडिक्कमे देवसिय सव्वं ॥ २४ ॥ न्हाणुव्वट्टण वन्नग विलेवणे सद्दरूवरसगन्धे । वत्थासण आभरणे पडि० ॥ २५ ॥ कदप्पे कुक्कुइए मोहरिअहिगरिणभोग अइरित्ते । दण्डमि अणट्ठाए तइयमि गुणव्वए निंदे ॥ २६ ॥' शस्त्रे अग्नौ मुसले यन्त्रे तृणे काष्ठे मन्त्रे मूले भेषजे दत्ते दापिते वा प्रतिक्रमामि शेष० । इति हिंसोपकारिदानहिंसोपदेशदानविरमणेनानर्थदण्डविरमणमुक्त्वा प्रमादविरमणेन तद्विरमणमाह । स्नानोद्वर्तनवर्णकविलेपनादौ अतिमात्रे कृते अन्यस्मात्कारिते वा अनर्थदण्डः । शब्दे रूपे रसे गन्धे अतिमात्रे अविधिकृते व्यसनरूपे वस्त्रे आसने आभरणे अतिमात्रे प्रतिक्रमामि शेष० ॥ अतिचारानाह । कदर्पः परोपहासः, कौत्कुच्य कुटिलालापसव्याहृतार्थवचन, मौखर्यमतिवावदूकतया परस्तुतिनिन्दे, अधिकरणातिरेकः उलूखलमुसलादिपापोपकरणाधिक्य सयुक्तता वा, भोगातिरेकः कामशास्त्रश्रवणदोलान्दोलनमहामैथुनरूपः, अनर्थदण्डे तृतीयगुणव्रते अतिचारान्निन्दामि ॥ २६ ॥ ॥ अथ सामायिकातिचारानाह । 'तिविहे दुप्पणिहाणे अणवट्ठाणे तहासयविहीणे । सामाइए वितहकए पढमे सिक्खावए निन्दे ॥ २७ ॥' त्रिविधे दुःप्रणिधाने मनोवाक्कायानां दुष्टस्थितिरूपे अनवस्थाने स्मृतिभ्रंशे तथा आशयविहीने अनादरकृते सामायिके वितथकृते सातिचारनिर्मितो प्रथमशिक्षा-

व्रते अतिचारान्निन्दामि ॥ २७ ॥ 'आणवणे पेसवणे सद्दे रूवे य पुग्गलक्खेवे । देसावगासियम्मी बीए सिक्खावए निंदे ॥ २८ ॥' देशावकाशिकनियमे गृहीते अवग्रहबहिर्भागात् वस्तुनो जीवादेर्वा आनयन प्रेषण तत्रैव मनुष्यादेः प्रेषण शब्दस्तद्बहिर्गतस्याकारणरूप तद्बहिर्गतस्य स्वरूप दर्शयित्वा संज्ञादिकरण पुद्गलक्षेपः तद्बहिर्लेष्टुखण्डादिक्षेप देशावकाशिके नियमे द्वितीये शिक्षाव्रते अतिचारान्निन्दामि ॥ २८ ॥ ॥ पौषधातिचारमाह 'संथारुच्चारविही पमाय तह चेव भोयणाभोए। पोसहविहिविवरीए तइए सिक्खावए निंदे ॥ २९ ॥' संस्तारकविधिः उच्चारविधिद्वये अप्यविधिना कृते प्रमादः प्रसिद्धः । तथा चैव भवत्यनाभोगो विस्मरण पौषधविधिविपरीतान्पौषधभङ्गकारिणः तृतीये शिक्षाव्रते अतिचारान्निन्दामि ॥ २९ ॥ ॥ अतिथिसंविभागव्रतातिचारानाह । 'सच्चित्ते निक्खिवणे पिहणे ववएस मच्छरे चेव । कालाइक्कमदाणे चउत्थे सिक्खावए निंदे ॥ ३० ॥' सचित्ते निक्षेपः सचित्तेन पिधान व्यपदेशोऽपरकीयवस्तुस्थापनं । मत्सरोऽन्यदानास्पर्धयादान कालातिक्रमदान चतुर्थशिक्षाव्रते अतिचारान्निन्दामि ॥ ३० ॥ ॥ अथ मिथ्यात्वप्रतिक्रमण प्रकारान्तरेणाह । 'सुहिएसु य दुहिएसु य जा मे अस्संजएसु अणुकंपा । रागेण व दोसेण व तं निंदे तं च गरिहामि ॥ ३१ ॥' सुखितेषु वा दुःखितेषु वा गृहिलिङ्गि–कुलिङ्गि–द्रव्यलिङ्गिषु रागेण वा दोषेण वा या मे अनुकम्पा तां च निन्दामि तां च गर्हे ॥ ३१ ॥ ॥ सम्यक्त्वभङ्गप्रतिक्रमण प्रकारान्तरेणाह । 'साहूसु संविभागो न कओ तवचरणकरणजुत्तेसु । संते फासुयदाणे तं निंदे तं च गरिहामि ॥ ३२ ॥' यन्मया सत्यपि

गकेवारग्रहादिशोषण १४, असतीपोष विसनिमित्त दास्यादिपोषण सारिकाशुकमार्जारकुक्कुटमयूरश्वानपालनरूप १५, एतत्कर्मादानपञ्चदशक द्वितीयान्त कृत्वा वर्जयेदिति शेषः ॥ २३ ॥ ॥ अथानर्थदण्ड गाथात्रयेणाह । 'सत्यग्गि मुसल जतग तणकठे मतमूलमेसज्जे । दिन्ने दवाविये वा पडिक्कमे देवसिय सव्व ॥ २४ ॥ न्हाणुवट्टण वन्नग विलेवणे सद्दरूवरसगन्धे । वत्थासण आभरणे पडि० ॥ २५ ॥ कंदप्पे कुक्कुइए मोहरिअहिगरिणभोग अइरित्ते । दण्डमि अणट्ठाए तइयमि गुणव्वए निंदे ॥ २६ ॥' शस्त्रे अग्नौ मुसले यन्त्रे तृणे काष्ठे मन्त्रे मूले भेषजे दत्ते दापिते वा प्रतिक्रमामि शेष० । इति हिंसोपकारिदानहिंसोपदेशदानविरमणेनानर्थदण्डविरमणमुक्त्वा प्रमादविरमणेन तद्विरमणमाह । स्नानोद्वर्तनवर्णकविलेपनादौ अतिमात्रे कृते अन्यस्मात्कारिते वा अनर्थदण्डः । शब्दे रूपे रसे गन्धे अतिमात्रे अविधिकृते व्यसनरूपे वस्त्रे आसने आभरणे अतिमात्रे प्रतिक्रमामि शेष० ॥ अतिचारानाह । कंदर्पः परोपहासः, कौत्कुच्य कुटिलालापसव्याहृतार्थवचन, मौखर्यमतिवावदूकतया परस्तुतिनिन्दे, अधिकरणातिरेकः उलूखलमुसलादिपापोपकरणाधिक्य सयुक्तता वा, भोगातिरेकः कामशास्त्रश्रवणदोलान्दोलनमहामैथुनरूपः, अनर्थदण्डे तृतीयगुणव्रते अतिचारान्निन्दामि ॥ २६ ॥ ॥ अथ सामायिकातिचारानाह । 'तिविहे दुप्पणिहाणे अणवट्ठाणे तहासपविहीणे । सामाइए वितहकए पढमे सिक्खावए निन्दे ॥ २७ ॥' त्रिविधे दुःप्रणिधाने मनोवाक्कायानां दुष्टस्थितिरूपे अनवस्थाने स्मृतिभ्रंशे तथा आशयविहीने अनादरकृते सामायिके वितथकृते सातिचारनिर्मितौ प्रथमशिक्ष्या-

व्रते अतिचारान्निन्दामि ॥ २७ ॥ 'आणवणे पेसवणे सद्दे रूवे य पुग्गलक्खेवे । देसावगासियम्मी बीए सिक्खावए निंदे ॥ २८ ॥' देशावकाशिकनियमे गृहीते अवग्रहबहिर्भागात् वस्तुनो जीवादेर्वा आनयन प्रेषण तत्रैव मनुष्यादेः प्रेषण शब्दस्तद्बहिर्गतस्याकारणरूप तद्बहिर्गतस्य स्वरूप दर्शयित्वा संज्ञादिकरण पुद्गलक्षेपः तद्बहिर्लेष्टुखण्डादिक्षेपः देशावकाशिके नियमे द्वितीये शिक्षाव्रते अतिचारान्निन्दामि ॥ २८ ॥ ॥ पोषधातिचारमाह 'संथारुच्चारविही पमाय तह चेव भोयणाभोए। पोसहविहिविवरीए तइए सिक्खावए निंदे ॥ २९ ॥' संस्तारकविधिः उच्चारविधिद्वये अप्रत्यविधिना कृते प्रमादः प्रसिद्धः । तथा चैव भवत्यनाभोगो विस्मरण पौषधविधिविपरीतान्पौषधभङ्गकारिणः तृतीये शिक्षाव्रते अतिचारान्निन्दामि ॥ २९ ॥ ॥ अतिथिसंविभागव्रतातिचारानाह । 'सच्चित्ते निक्खिवणे पिहणे ववएस मच्छरे चेव । कालाइक्कमदाणे चउत्थे सिक्खावए निंदे ॥ ३० ॥' सचित्ते निक्षेपः सचित्तेन पिधान व्यपदेशोऽपरकीयवस्तुख्यापन । मत्सरोऽन्यदानासूयया दान कालातिक्रमदान चतुर्थशिक्षाव्रते अतिचारान्निन्दामि ॥ ३० ॥ ॥ अथ मिथ्यात्वप्रतिक्रमण प्रकारान्तरेणाह । 'सुहिएसु य दुहिएसु य जा मे असजएसु अणुकंपा । रागेण व दोसेण व त निंदे त च गरिहामि ॥ ३१ ॥' सुखितेषु वा दुःखितेषु वा गृहिलिङ्गि–कुलिङ्गि–द्रव्यलिङ्गिषु रागेण वा दोषेण वा या मे अनुकम्पा ता च निन्दामि ता च गर्हे ॥ ३१ ॥ ॥ सम्यक्त्वभङ्गप्रतिक्रमण प्रकारान्तरेणाह । 'साहूसु सविभागो न कओ तवचरणकरणजुत्तेसु । सते फासुयदाणे त निंदे त च गरिहामि ॥ ३२ ॥' यन्मया सत्यपि

यथा भारवाहः अपहृतभरः सन् अतिरेकलघुर्भवति इति शेष० ॥ ४० ॥ ॥ अथावश्यकफलमाह । 'आव-स्सएण एएण सावओ जइवि बहुरओ होइ । दुक्खाणमंतकिरियं काही अचिरेण कालेण ॥ ४१ ॥' श्रावको यद्यपि बहुरजा बहुपापमलो भवति तथापि एतेनावश्यकेन षड्विधेन अचिरेण कालेन दुःखानामन्तक्रिया कर्ता ॥ ४१ ॥ ॥ विस्मृतातिचारप्रतिक्रमणमाह । 'आलोयणा बहुविहा नय संभरिया पडिक्कमणकाले । मूलगुणउत्तरगुणे तं निंदे तं च गरिहामि ॥ ४२ ॥' मूलगुणे पञ्चाणुव्रतरूपे उत्तरगुणे गुणव्रतशिक्षाव्रतरूपे बहुविधा आलोचना प्रतिक्रमणकाले न संस्मृता तां निन्दामि तां च गर्हे ॥ ४२ ॥ ॥ अथोर्ध्वीभूय धर्मनि-श्चयकथनं ॥ 'तस्स धम्मस्स केवलिपन्नत्तस्स अब्भुट्ठिओमि आराहणाए विरओमि विराहणाए य । तिवि-हेण पडिक्कंतो वंदामि जिणे चउवीसं ॥ ४३ ॥' तस्य धर्मस्य केवलिप्रज्ञप्तस्य अभ्युद्यतोस्मि आराधनायां विर-तोस्मि विराधनायां त्रिविधेन प्रतिक्रान्तश्चतुर्विंशतिजिनान्वन्दे ॥ ४३ ॥ ॥ अथ चैत्यवन्दन साधुवन्दन । 'जावंति चेइआइं० जावंति के०' इति गाथाद्वयव्याख्यान पूर्ववत् ॥४४॥४५॥ ॥ अथ कर्मक्षयहेतु मनोरथमाह । 'चिरसंचियपावपणासणीइ भवसयसहस्समहणीए । चउवीसजिणविणिग्गयकहाए बोलंतु मे दियहा ॥४६॥' चिरसंचितपापप्रणाशिन्या भवशतसहस्रमथिन्या संसारतारिण्येत्यर्थः । चतुर्विंशतिजिनविनिर्गतकथया मम दिवसा व्यपलीयन्तां अतिक्रमन्तु ॥ ४६ ॥ ॥ अथ प्रतिक्रमणानन्तरं सत्येहामुत्र च मङ्गलयाचनमाह । 'मम मंगलमरिहंता सिद्धा साहू सुयं च धम्मो य । सम्मद्दिट्ठी देवा दिंतु समाहिं च बोहिं च ॥ ४७ ॥' अ-

वदतु ॥ ४७ ॥ ॥
रिहन्तः सिद्धाः साधवः श्रुत च धर्मश्च सम्यग्दृष्टयो देवाः मम मङ्गल समाधि बोधिं च
प्रतिक्रमणकारणमाह । 'पडिसिद्धाण करणे किचाण अकरणे पडिक्कमण । अस्सद्दहणे य तहा विवरीयपरू-
वणाए य ॥ ४८ ॥ प्रतिषिद्धाना हिंसादीना करणे कृत्याना यतनावश्यकाना अकरणे प्रतिक्रमण । अत्र
किल प्रायश्चित्तविधौ यत्प्रतिक्रमणशोधनीय पापं तत्र प्रतिक्रमणमित्यर्थः ॥ ४८ ॥ ॥ अथ क्षामणमाह ।
'खामेमि सव० एवमहमालो०' इत्यादिगाथाद्वय यतिप्रतिक्रमणसूत्रवद्व्याख्येयम् ॥ इति श्राद्धप्रतिक्रमणसूत्र-
छायार्थः ॥ अत्र सर्वत्र यतिश्राद्धप्रतिक्रमणछायार्थ उक्तः । चालनादिव्याख्या न कृता ग्रन्थविस्तरभयात् ।
इत्यावश्यके प्रतिक्रमणम् ॥

अथ कायोत्सर्गः । कायस्य निश्चेष्टत्वादिना उत्सर्जन कायोत्सर्गः । तस्येय व्याख्या । तत्र पूर्वं पापकर्म-
निर्घातनार्थं पापविशुद्ध्यर्थं वा विघ्नोपशमार्थं वा कस्यचिदपि देवादेराराधनार्थं वा कायोत्सर्गकरण । तत्र
करेमि काउस्सग्ग अथवा ठामि काउस्सग्ग अन्नत्थ उससिएण नीससिएण खासिएणं छीएण जभाइएण
उड्डुएण वायनिसग्गेण भमलिए पित्तमुच्छाए सुहुमेहिं अगसंचालेहिं सुहुमेहिं खेलसचालेहिं सुहुमेहिं दि-
ट्ठिसचालेहिं एवमाइएहिं आगारेहिं अभग्गो अविराहिओ हुज्ज मे काउसग्गो जाव अरिहंताण भगवंताणं
नमुक्कारेण न पारेमि तावकाय ठाणेण मोणेण झाणेण अप्पाण वोसिरामि । व्याख्या । करोमि कायोत्सर्गं
तिष्ठामि वा अन्यत्र अनन्तरोक्तचेष्टासमागमे अभग्नत्वे सतीत्यर्थः । अन्यत्रशब्दः सर्वत्र योज्यः । उच्छ्वसि-

यथा भारवाहः अपहृतभरः सन् अतिरेकलघुर्भवति इति शेष० ॥ ४० ॥ ॥ अथावश्यकफलमाह । 'आव-स्सएण एएण सावओ जइवि बहुरओ होइ । दुक्खाणमंतकिरियं काही अचिरेण कालेण ॥ ४१ ॥' श्रावको यद्यपि बहुरजा बहुपापमलो भवति तथापि एतेनावश्यकेन षड्विधेन अचिरेण कालेन दुःखानामन्तक्रिया कर्ता ॥ ४१ ॥ ॥ विस्मृतातिचारप्रतिक्रमणमाह । 'आलोयणा बहुविहा नय संभरिया पडिक्कमणकाले । मूलगुणउत्तरगुणे तं निंदे तं च गरिहामि ॥ ४२ ॥' मूलगुणे पञ्चाणुव्रतरूपे उत्तरगुणे गुणव्रतशिक्षाव्रतरूपे बहुविधा आलोचना प्रतिक्रमणकाले न संस्मृता तां निन्दामि तां च गर्हे ॥ ४२ ॥ ॥ अथोर्ध्वीभूय धर्मनि-रूपकथन ॥ 'तस्स धम्मस्स केवलिपन्नत्तस्स अब्भुट्ठिओमि आराहणाए विरओमि विराहणाए य । तिवि-हेण पडिक्कंतो वंदामि जिणे चउव्वीसं ॥ ४३ ॥' तस्य धर्मस्य केवलिप्रज्ञप्तस्य अभ्युद्यतोस्मि आराधनायां विर-तोस्मि विराधनायां त्रिविधेन प्रतिक्रान्तश्चतुर्विंशतिजिनान्वन्दे ॥ ४३ ॥ ॥ अथ चैत्यवन्दन साधुवन्दन । 'जावंति चेइआई० जावंति के०' इति गाथाद्वयव्याख्यान पूर्ववत् ॥४४॥४५॥ ॥ अथ कर्मक्षयहेतु मनोरथमाह । 'चिरसंचियपावपणासणीए भवसयसहस्समहणीए । चउवीसजिणविणिग्गय कहाए वोलंतु मे दियहा ॥४६॥' चिरसञ्चितपापप्रणाशिन्या भवशतसहस्रमाथिन्या संसारतारिण्येत्यर्थः । चतुर्विंशतिजिनविनिर्गतकथया मम दिवसा व्यपलीयन्तां अतिक्रमन्तु ॥ ४६ ॥ ॥ अथ प्रतिक्रमणानन्तरं सत्येहामुत्र च मङ्गलयाचनमाह । 'मम मंगलमरिहंता सिद्धा साहू सुयं च धम्मो य । सम्मदिट्ठी देवा दिंतु समाहिं च बोहिं च ॥ ४७ ॥' अ-

रिहन्तः सिद्धाः साधवः श्रुत च धर्मश्च सम्यग्दृष्टयो देवाः मम मङ्गल समाधिं बोधिं च ददतु ॥ ४७ ॥ ॥ प्रतिक्रमणकारणमाह । 'पडिसिद्धाण करणे किचाण अकरणे पडिक्कमण । अस्सद्दहणे य तहा विवरीयपरूवणाए य ॥ ४८ ॥ प्रतिषिद्धाना हिंसादीना करणे कृत्याना यतनावश्यकाना अकरणे प्रतिक्रमणं । अत्र किल प्रायश्चित्तविधौ यत्प्रतिक्रमणशोधनीय पाप तत्र प्रतिक्रमणमित्यर्थः ॥ ४८ ॥ ॥ अथ क्षामणमाह । 'खामेमि सव० एवमहमालो०' इत्यादिगाथाद्वय यतिप्रतिक्रमणसूत्रवद्व्यास्येयम् ॥ इति श्राद्धप्रतिक्रमणसूत्रछायार्थः ॥ अत्र सर्वत्र यतिश्राद्धप्रतिक्रमणछायार्थ उक्तः । चालनादिव्याख्या न कृता ग्रन्थविस्तरभयात् । इत्यावश्यके प्रतिक्रमणम् ॥

अथ कायोत्सर्गः । कायस्य निश्चेष्टत्वादिना उत्सर्जन कायोत्सर्गः । तस्येय व्याख्या । तत्र पूर्वं पापकर्मनिर्घातनार्थं पापविशुद्ध्यर्थं वा विघ्नोपशमार्थं वा कस्यचिदपि देवादेराराधनार्थं वा कायोत्सर्गकरण । तत्र करेमि काउस्सग्ग अथवा ठामि काउस्सग्ग अन्नत्थ ऊससिएण नीससिएण खासिएण छीएण जंभाइएण उड्डुएण वायनिसग्गेण भमलिए पित्तमुच्छाए सुहुमेहिं अगसचालेहिं सुहुमेहिं खेलसचालेहिं सुहुमेहिं दिट्ठिसचालेहिं एवमाइएहिं आगारेहिं अभग्गो अविराहिओ हुज्ज मे काउसग्गो जाव अरिहताण भगवंताणं नमुक्कारेण न पारेमि तावकाय ठाणेण मोणेण झाणेण अप्पाण वोसिरामि । व्याख्या । करोमि कायोत्सर्गं तिष्ठामि वा अन्यत्र अनन्तरोक्तचेष्टासमागमे अभग्नत्वे सतीत्यर्थः । अन्यत्रशब्दः सर्वत्र योज्यः । उच्छ्वसि-

यथा भारवाहः अपहृतभरः सन् अतिरेकलघुर्भवति इति शेष० ॥ ४० ॥ ॥ अथावश्यकफलमाह । 'आवस्सएण एएण सावओ जइवि बहुरओ होइ । दुक्खाणमंतकिरियं काही अचिरेण कालेण ॥ ४१ ॥' श्रावको यद्यपि बहुरजा बहुपापमलो भवति तथापि एतेनावश्यकेन षड्विधेन अचिरेण कालेन दुःखानामन्तक्रियां कर्ता ॥ ४१ ॥ ॥ विस्मृतातिचारप्रतिक्रमणमाह । 'आलोयणा बहुविहा नय संभरिया पडिक्कमणकाले । मूलगुणउत्तरगुणे तं निंदे तं च गरिहामि ॥ ४२ ॥' मूलगुणे पञ्चाणुव्रतरूपे उत्तरगुणे गुणव्रतशिक्षाव्रतरूपे बहुविधा आलोचना प्रतिक्रमणकाले न संस्मृता तां निन्दामि तां च गर्हे ॥ ४२ ॥ ॥ अथोर्ध्वीभूय धर्मनिश्चयकथन ॥ 'तस्स धम्मस्स केवलिपन्नत्तस्स अब्भुट्ठिओमि आराहणाए विरओमि विराहणाए य । तिविहेण पडिक्कंतो वंदामि जिणे चउवीसं ॥ ४३ ॥' तस्य धर्मस्य केवलिप्रज्ञप्तस्य अभ्युद्यतोऽस्मि आराधनायां विरतोऽस्मि विराधनायां त्रिविधेन प्रतिक्रान्तश्चतुर्विंशतिजिनान्वन्दे ॥ ४३ ॥ ॥ अथ चैत्यवन्दन साधुवन्दन । 'जावंति चेइआइं० जावंति के०' इति गाथाद्वयव्याख्यान पूर्ववत् ॥४४॥४५॥ ॥ अथ कर्मक्षयहेतु मनोरथमाह । 'चिरसंचियपावपणासणीए भवसयसहस्समहणीए । चउवीसजिणविणिग्गय कहाए वोलंतु मे दियहा ॥४६॥' चिरसंचितपापप्रणाशिन्या भवशतसहस्रमाथिन्या संसारतारिण्येत्यर्थः । चतुर्विंशतिजिनविनिर्गतकथया मम दिवसा व्यपलीयन्तां अतिक्रमन्तु ॥ ४६ ॥ ॥ अथ प्रतिक्रमणानन्तरं स्वस्येहामुत्र च मङ्गलयाचनमाह । 'मम मंगलमरिहंता सिद्धा साहू सुयं च धम्मो य । सम्मद्दिट्ठी देवा दिंतु समाहिं च बोहिं च ॥ ४७ ॥' अ-

अतिक्रान्ते पर्वणि यत्पालोचनादितपः क्रियते तदतिक्रान्त २, एकस्य तपसः समाप्तौ द्वितीयतपस आरम्भे तद्दिन एव प्रत्याख्यानेन कोटिद्वयमीलन कोटिसहित ३, मासे मासे इयन्ति दिनानि अष्टमादिविधेयमेव ग्लानत्वेपि सति तन्नियमित ४, एतच्च प्रथमसंघननेन सह व्यवच्छिन्न सहसाकारैर्महत्तरादेर्वचस इति साकार ५, आकारैर्वर्जितमनाकार ६, यत्र दत्तिकवलसङ्ख्यादि तत्परिमाणकृत ७, सर्वचतुर्विधाहारकृतपरित्यागान्निरवशेष ८, अङ्गुष्ठमुष्टिग्रन्थादिचिह्नोपलक्षित सकेत न ९, अद्धा कालस्तदुपलक्षितं अद्धाप्रत्याख्यान १०,॥ एतद्गाथा यथा । 'नवकार १ पोरिसीए २ पुरिमड्ढ ३ इक्कासणे ४ गट्ठाणेअ ५ । आयंबिल ६ अभत्तट्ठे ७ चरमेय ८ अभिग्गहे ९ विगइ १० ॥ १ ॥ नमस्कारसहित दिनोदये घटीद्वयपर्यन्त १, पौरुषी पुरुषप्रमाणच्छायया प्रहरमात्रादिनोदये २, पूर्वार्धमध्याह्नपर्यन्त ३ एकासन एकेनासनेन एकवेलं भोजन ४, एकस्थानं आकुञ्चितमसारितादिवर्जितमेकासन ५, आचाम्ल एकवेलमेकान्नजलभोजन ६, अभक्तार्थं उपवासः त्रिविधाहाररहितो वा ७, चरम दिवसचरम भवचरमपर्यन्त प्रत्याख्यान ८, अभिग्रहो ग्रन्थिमुष्टिपर्यन्त प्रत्याख्यान ९, विकृतिः विकृतीना सर्वथा त्यागः सङ्ख्या वा १० ॥ अथैषामागारसंख्या । 'दो चेव नमुक्कारे आगारा छच्च पोरसीए उ । सत्तेव य पुरिमड्ढे एगासणम्मि अट्ठेव ॥ १ ॥ सत्तेगट्ठाणस्स उ अट्ठेव य अंबिलम्मि आगारा । पचेव य अभत्तट्ठे छप्पाणे चरमचत्तारि ॥२॥ पच चउरो अभिग्गहो निव्वीए अट्ठनवय आगारा । अप्पावरणे पचउ हवंति सेसेसु चत्तारि ॥ ३ ॥' नमस्कारसहिते द्वावेवाकारौ यथा । 'उग्गए सूरे नवकार-

करयलम्ति दक्षिणोत्तरपाणिभ्यां मुखवस्त्रिकारजोहरणं । कुप्परत्ति कूर्पराभ्यां चोलपट्टश्च धारणीयः । उस्सारिय पारियमि थुइत्ति उत्सारिते पूरिते कायोत्सर्गे नमस्कारेण पारिते जिनस्तुतिर्भणनीया पाठान्तरं च । गाथोत्तरार्धे एगूणवीसदोसा काउस्सग्गे विवज्जिआ सर्वत्र कायोत्सर्गे चतुर्विंशतिस्तवचिन्तने चन्देसु निम्मलयरापर्यन्तं चिन्तनं । नमस्कारचिन्तने नवपदपरिपूर्णचिन्तनं सर्वत्र कायोत्सर्गपारणे नमो अरिहंताणं इति पदं ततः स्तुतिपाठादि यथायोग्यं । इत्यावश्यके कायोत्सर्गः ॥

अथ प्रत्याख्यानम् । तच्च द्विधा । मूलगुणप्रत्याख्यानं उत्तरगुणप्रत्याख्यानं च । मूलगुणप्रत्याख्यानं द्विधा । देशसर्वभेदात्सर्वमूलगुणप्रत्याख्यानं साधूनां पञ्चमहाव्रतानि देशमूलगुणप्रत्याख्यानं श्राद्धानां पञ्चाणुव्रतानि । उत्तरगुणप्रत्याख्यानमपि द्विधा । देशसर्वभेदात् । साधूनां सर्वोत्तरगुणप्रत्याख्यानमनेकधा । यथा । 'पिंडस्स जा विसोही समिईओ भावणा तवो दुविहो । पडिमा अभिग्गहावि य उत्तरगुणमो वियाणाहि ॥ १ ॥' श्राद्धानां देशोत्तरगुणप्रत्याख्यानं त्रीणि गुणव्रतानि चत्वारि शिक्षाव्रतानि । उभयोरपि सर्वोत्तरगुणप्रत्याख्यानमनागतादिभेदाद्दशविधं । यथा । 'अणागय १ मइक्कतं २ कोडीसहियं ३ नियंटियं चेव ४ । सागार ५ मणागार ६ परिमाणकडं ७ निरवसेसं ८ ॥ १ ॥ संकियं ९ मचिअद्धाए १० पच्चक्खाणं तु दसविहं होइ । सयमेव अणुपालणीयं दाणुवएसे जहसमाही ॥ २ ॥' व्याख्या । तत्र पर्युषणादौ ग्लानस्य वैयावृत्त्यकरणव्यग्रत्वेन पूर्वमपि यदष्टमाद्यालोचनतपः क्रियते तदनागतं १, पर्युषणचतुर्मासकादिषु अशक्तो वैयावृत्त्ये

अतिक्रान्ते पर्वणि यदालोचनादितपः क्रियते तदतिक्रान्तं २, एकस्य तपसः समाप्तौ द्वितीयतपस आरम्भे तद्दिन एव प्रत्याख्यानेन कोटिद्वयमीलन कोटिसहितं ३, मासे मासे इयन्ति दिनानि अष्टमादिविधेयमेव ग्लानत्वेपि सति तन्नियन्त्रितं ४, एतच्च प्रथमसंघननेन सह व्यवच्छिन्नं सहसाकारैर्महत्तरादेर्वचस इति साकारं ५, आकारैर्वर्जितमनाकारं ६, यत्र दत्तिकवलसंख्यादि तत्परिमाणकृतं ७, सर्वचतुर्विधाहारकृतपरित्यागान्निरवशेषं ८, अङ्गुष्ठमुष्टिग्रन्थ्यादिचिह्नोपलक्षितं सकेतनं ९, अद्धा कालस्तदुपलक्षितं अद्धाप्रत्याख्यानं १०,॥ एतद्दशधा यथा । 'नवकार १ पोरिसीए २ पुरिमड्ढ ३ इक्कासणे ४ गट्ठाणेअ ५ । आयंबिल ६ अभत्तट्ठे ७ चरमेय ८ अभिग्गहे ९ विगइ १० ॥ १ ॥ नमस्कारसहितं दिनोदये घटीद्वयपर्यन्तं १, पौरुषी पुरुषप्रमाणच्छायया प्रहरमात्रादिनोदये २, पूर्वार्धमध्याह्नपर्यन्तं ३ एकासनं एकेनासनेन एकवेलं भोजनं ४, एकस्थानं आकुञ्चितप्रसारितादिवर्जितमेकासनं ५, आचाम्लं एकवेलमेकान्नजलभोजनं ६, अभक्तार्थं उपवासः त्रिविधाहाररहितो वा ७, चरमं दिवसचरमं भवचरमपर्यन्तं प्रत्याख्यानं ८, अभिग्रहो ग्रन्थिमुष्टिपर्यन्तं प्रत्याख्यानं ९, विकृतिः विकृतीनां सर्वथा त्यागः सङ्ख्या वा १० ॥ अथैषामागारसंख्या । 'दो चेव नमुक्कारे आगारा छच्च पोरसीए उ । सत्तेव य पुरिमड्ढे एगासणम्मि अट्ठेव ॥ १ ॥ सत्तेगट्ठाणस्स उ अट्ठेव य अंबिलम्मि आगारा । पंचेव य अभत्तट्ठे छप्पाणे चरमचत्तारि ॥२॥ पंच चउरो अभिग्गहो निव्वीए अट्ठनवय आगारा । अप्पावरणे पंचउ हवंति सेसेसु चत्तारि ॥ ३ ॥' नमस्कारसहिते द्वावेवाकारौ यथा । 'उग्गए सूरे नवकार-

करयलत्ति दक्षिणोत्तरपाणिभ्यां मुखवस्त्रिकारजोहरण' । कुप्परत्ति कूर्पराभ्यां चोलपट्टश्च धारणीयः । उस्सारिय पारियम्मि थुइत्ति उत्सारिते पूरिते कायोत्सर्गे नमस्कारेण पारिते जिनस्तुतिर्भणनीया पाठान्तर च । गाथोत्तरार्धे एगूणवीसदोसा काउस्सग्गे विवज्जिज्जा सर्वत्र कायोत्सर्गे चतुर्विंशतिस्तवचिन्तने चन्दे सुनिम्मलयरापर्यन्त चिन्तन । नमस्कारचिन्तने नवपदपरिपूर्णचिन्तन सर्वत्र कायोत्सर्गपारणे नमो अरिहंताण इति पद ततः स्तुतिपाठादि यथायोग्य । इत्यावश्यके कायोत्सर्गः ॥

अथ प्रत्याख्यानम् । तत्र द्विधा । मूलगुणप्रत्याख्यान उत्तरगुणप्रत्याख्यानं च । मूलगुणप्रत्याख्यान द्विधा । देशसर्वभेदात्सर्वमूलगुणप्रत्याख्यान साधूनां पञ्चमहाव्रतानि देशमूलगुणप्रत्याख्यान श्राद्धाना पञ्चाणुव्रतानि । उत्तरगुणप्रत्याख्यानमपि द्विधा । देशसर्वभेदात् । साधूना सर्वोत्तरगुणप्रत्याख्यानमनेकधा । यथा । 'पिंडस्स जा विसोही समिईओ भावणा तओ दुविहा । पडिमा अभिग्गहावि य उत्तरगुणमो वियाणाहि ॥ १ ॥' श्राद्धानां देशोत्तरगुणप्रत्याख्यान त्रीणि गुणव्रतानि चत्वारि शिक्षाव्रतानि । उभयोरपि सर्वोत्तरगुणप्रत्याख्यानमनागतादिभेदाद्दशविध । यथा । 'अणागय १ मइक्कंत २ कोडीसहिय ३ नियंटिय चेव ४ । सागार ५ मणागारं ६ परिमाणकड ७ निरवसेस ८ ॥ १ ॥ सकिय ९ मविअद्धाए १० पच्चक्खाण तु दसविह होइ । सयमेव अणुपालणीय दाणुवएसे जहसमाही ॥ २ ॥' व्याख्या । तत्र पर्युषणादौ ग्लानस्य वैयावृत्त्यकरणव्यग्रत्वेन पूर्वमपि यदष्टमादितपः क्रियते तदनागतं १, पर्युषणचतुर्मासकादिषु अशक्तो वैयावृत्ये

अतिक्रान्ते पर्वणि यदालोचनादितपः क्रियते तदतिक्रान्तं २, एकस्य तपसः समाप्तौ द्वितीयतपस आरम्भे तद्दिन एव प्रत्याख्यानेन कोटिद्वयमीलन कोटिसहित ३, मासे मासे इयन्ति दिनानि अष्टमादिविधेयमेव ग्लानत्वेपि सति तन्नियन्त्रितं ४, एतच्च प्रथमसंघननेन सह व्यवच्छिन्नं सहसाकारमहत्तरादेर्वेषस इति साकार ५, आकारैर्वर्जितमनाकार ६, यत्र दत्तिकवलसंख्यादि तत्परिमाणकृतं ७, सर्वचतुर्विधाहारकृतपरित्यागान्निरवशेष ८, अङ्गुष्ठमुष्टिग्रन्थादिचिह्नोपलक्षितं सकेतन ९, अद्धा कालस्तदुपलक्षितं अद्धाप्रत्याख्यान १०,॥ एतद्गाथा यथा । 'नवकार १ पोरिसीए २ पुरिमड्ढ ३ इक्कासणे ४ गट्ठाणेअ ५ । आयंबिल ६ अभत्तट्ठे ७ चरमेय ८ अभिग्गहे ९ विगइ १० ॥ १ ॥ नमस्कारसहित दिनोदये घटीद्वयपर्यन्त १, पौरुषी पुरुषप्रमाणच्छायया प्रहरमात्रादिनोदये २, पूर्वार्धमध्याह्नपर्यन्तं ३ एकासनं एकेनासनेन एकवेल भोजन ४, एकस्थानं आकुञ्चितप्रसारितादिवर्जितमेकासन ५, आचाम्ल एकवेलमेकान्नजलभोजन ६, अभक्तार्थे उपवासः त्रिविधाहाररहितो वा ७, चरम दिवसचरमभवचरमपर्यन्त प्रत्याख्यान ८, अभिग्रहो ग्रन्थिमुष्टिपर्यन्त प्रत्याख्यान ९, विकृतिः विकृतीनां सर्वथा त्यागः सख्या वा १० ॥ अथैषामागारसंख्या । 'दो चेव नमुक्कारे आगारा छच्च पोरसीए उ । सत्तेव य पुरिमड्ढे एगासणम्मि अट्ठेव ॥ १ ॥ सत्तेगट्ठाणस्स उ अट्ठेव य अंबिलम्मि आगारा । पंचेव य अभत्तट्ठे छप्पाणे चरमचत्तारि ॥२॥ पंच चउरो अभिग्गहो निव्वीए अट्ठनवय आगारा । अप्पावरणे पंचउ हवंति सेसेसु चत्तारि ॥ ३ ॥' नमस्कारसहिते द्वावेवाकारौ यथा । 'उग्गए सूरे नवकार-

करयलसि दक्षिणोत्तरपाणिभ्यां मुखवस्त्रिकारजोहरण' । कुप्परसि कूर्पराभ्यां चोलपट्टश्च धारणीयः । उस्सारिय पारियमि थुइत्ति उत्सारिते पूरिते कायोत्सर्गे नमस्कारेण पारिते जिनस्तुतिर्भणनीया पाठान्तर च । गाथोत्तरार्धे एगूणवीसदोसा काउस्सग्गे विवज्जिज्जा सर्वत्र कायोत्सर्गे चतुर्विंशतिस्तवचिन्तने चन्देसु निम्मलयरापर्यन्त चिन्तन । नमस्कारचिन्तने नवपदपरिपूर्णचिन्तन सर्वत्र कायोत्सर्गपारणे नमो अरिहंताण इति पद ततः स्तुतिपाठादि यथायोग्य । इत्यावश्यके कायोत्सर्गः ॥

अथ प्रत्याख्यानम् । तच्च द्विधा । मूलगुणप्रत्याख्यान उत्तरगुणप्रत्याख्यान च । मूलगुणप्रत्याख्यान द्विधा । देशसर्वभेदात्सर्वमूलगुणप्रत्याख्यान साधूना पञ्चमहाव्रतानि देशमूलगुणप्रत्याख्यान श्राद्धाना पञ्चाणुव्रतानि । उत्तरगुणप्रत्याख्यानमपि द्विधा । देशसर्वभेदात् । साधूना सर्वोत्तरगुणप्रत्याख्यानमनेकधा । यथा । 'पिंडस्स जा विसोही समिईओ भावणा तवो दुविहा । पडिमा अभिग्गहावि य उत्तरगुणमो वियाणाहि ॥ १ ॥' श्राद्धाना देशोत्तरगुणप्रत्याख्यान त्रीणि गुणव्रतानि चत्वारि शिक्षाव्रतानि । उभयोरपि सर्वोत्तरगुणप्रत्याख्यानमनागतादिभेदाद्दशविधं । यथा । 'अणागय १ मइक्कत २ कोडीसहिय ३ नियंटिय चेव ४ । सागार ५ मणागारं ६ परिमाणकड ७ निरवसेस ८ ॥ १ ॥ सकेय ९ मविअद्धाए १० पच्चक्खाण तु दसविह होइ । सयमेव अणुपालणीय दाणुवएसे जहसमाही ॥ २ ॥' व्याख्या । तत्र पर्युषणादौ ग्लानस्य वैयावृत्त्यकरणव्यग्रत्वेन पूर्वमपि यदष्टमाद्यालोचनतपः क्रियते तदनागतं १, पर्युषणचतुर्मासकादिषु अशक्तौ वैयावृत्त्ये

८

साइम होई ॥ १ ॥ दन्तवणं दन्तधावन प्रसिद्ध । तयोल सा-
कुडेडगाईयं । महुत्तपिप्पलि सुठाई अणेगहा साइम होई ॥ १ ॥ दन्तवणं दन्तधावन प्रसिद्ध । तुलसीकुडेडकादि तुलसीग्रहणेन सर्वाण्यपि सुरभिकषाय-
म्मूल पत्रसौगन्धिक । चित्त चित्र नानाप्रकार । तुलसीकुडेडकादि तुलसीग्रहणेन सर्वाण्यपि सुरभिकषाय-
द्रुमपत्राणि । कुहेटकग्रहणे मर्मर्यार्यकादि । मधु मधुयष्टी । पिप्पली पिंपली । सुठाई शुण्ठ्यादि प्रसिद्ध । अणे-
आदिशब्दात् त्रिफलात्रिकटुपूगलवङ्गैलाजातीफलप्रभृति सर्वमपि अपुष्टिकर शुष्क पुष्पपत्रफलादि । अन्नत्थणाभोगेण
गहा साइम होइ अनेकधा स्वादिम भवति स्वाद्यते वक्त्रसौरभप्रमोदार्थिभिरिति स्वादिम । अन्नत्थणाभोगेण
सहसागारेणं । अत्र आकारग्रहण नियमभङ्गेपि अदोषार्थं । अनाभोगात् अन्यत्र सहसाकारात् अन्यत्र प्र-
त्याख्यामीति शेषः । आभोगः स्वचित्तावधानेन कर्तव्यकरण । अनाभोगो वैपरीत्येन विस्मृत्यान्यकार्यव्याक्षे-
पेण कार्यकरण तस्मात् । सहसाकार इति सहसौत्सुक्येन कार्यकरण, अथवा स्वयमेव कार्योत्पत्तिः यथा
पचनाद्याहृत किंचिन्मुखे निपतति इति सहकारस्तस्मात् । पोरसिय पच्चक्खाहि पौरुषीं यावत्प्रत्याख्याहि
प्रहर यावदित्यर्थः । प्रत्याख्यामि उद्गतेसूर्ये सूर्योदयादारभ्येत्यर्थः । चतुर्विधमप्याहार अशन ४ पूर्ववत् अन्न०
सह० पूर्ववत् । पच्छन्नकालेण प्रच्छन्नकालात् अभ्ररजश्छन्नसूर्यसयोगे प्रच्छन्नकालः तत्र दिनप्रमाण न ज्ञायते
तस्मात् । दिसामोहेणं दिग्मोहात् पूर्वदक्षिणपश्चिमादिदिशामज्ञाने रविस्थितावज्ञाताया न कालपरिमाण
ज्ञान । साहुवयणेणं साधुवचनात् यथा साधवः पादोनेपि प्रहरे अतिक्रान्ते 'भयव बहुपडिपुन्ना पोरिसी सा-
ढयो उवत्ता होइ' इति वचनात् । सव्वसमाहिवत्तियागारेणं सर्वसमाधिवर्तिताकारेण सर्वेषां साधुसाध्वीश्रा-

खाद्यकविधिर्नानाप्रकारानि । खीराइ क्षीरादि क्षीरदधितक्रघृतादि । सूरणाई सूरणादिसर्वोप्यार्द्रो कन्द-
जातिः । भत्तगपमिइइ मण्डकप्रभृतिग्रहणात् पूपपोलिकाकृसराप्रभृति विज्ञेय विशेय । पाण यथा । 'पाण
सोवीर जवोदगाइ चित्तं सुराइय चेव । आउक्काओ सव्वो ककडिगजलाइय च तहा ॥ १ ॥' पीयते तृष्णार्त-
र्दाहार्तैर्वा इति पान । तत्किमित्याह । सोवीर सौवीरं काञ्जिकं जवोदगाइ यवोदकादि यवोदकतिलोदकतु-
षोदकप्रभृति । चित्तं चित्रं नानाप्रकार । सुराइय चेव सुरादिक चैव । सुराग्रहणेन काष्टपिष्टपुष्पफलरसक्षो-
द्रनिष्पन्न मद्य यत्पुष्टिकरमतृप्तिकर । ततः सर्वपान आउक्काओ सव्वो । सर्वोप्यप्कायः हिमकरकशुद्धोदकप्र-
भृतिः ककडिगजलाइय च तहा कर्कटिकाजलादिक तथा । कर्कटिकाजलग्रहणेन इक्षुरसवर्जितः पुष्टिकरणर-
हितः सर्वोपि पुष्पफलरसः । खाइम खादिम यथा । 'भत्तोस दन्ताई खज्जूर नालिकेर दक्खाई । कक्कडिअ-
बगफणसाइ बहुविह खाइम होइ ॥ १ ॥' भत्तोस भक्तोष येन शुक्तेन भक्तभोजनवत् तृप्तिर्भवति तद्भक्तोष
गुडक्षौद्रविकारादि । दन्ताई दन्त्यादि दन्तसरिप्रभृतिवृक्षनिर्यासाः सर्वेपि आराद्धाः शाकाश्च । खज्जूर नालि-
केरदक्खाइ खर्जूरनारिकेलद्राक्षाः प्रसिद्धाः आदिशब्दात् वातामप्रभृतयः । कक्कडिअंबफणसाइ कर्कट्यादि
कर्कटीग्रहणेन चिर्भीफलादिसुस्वादमबलकरं फल । आमग्रहणेन नारिङ्गजम्बीरबीजपूरादिषड्रसफल । पन-
सग्रहणेन कदलीफलबोदिकादिप्रभृति बृंहण मधुररसफलं । बहुविहं खाइम होइ इत्यादि । बहुविध खादिम
भवति खाद्यते पुष्टिसुखस्वादार्थिभिरिति खादिमं । साइमं स्वादिम यथा । 'दतवण तबोल चित्तं तुलसी

गहा साइम होई ॥ १ ॥ दन्तवणं दन्तधावन प्रसिद्ध । तयोल ता-
कुडेडगाईय । मह्तत्तपिप्पलि सुठाई अणेगहा साइम होई
म्बूल पञ्चसौगन्धिक । चित्त चित्र नानाप्रकार । तुलसीकुडेडकादि तुलसीग्रहणेन सर्वाण्यपि सुरभिकषाय-
द्रुमपत्राणि । कुडेटकग्रहणे मर्मर्यायेकादि । मधु मधुयष्टी । पिप्पली पिंपली । सुंठाई शुण्ठ्यादि प्रसिद्ध ।
आदिशब्दात् त्रिफलात्रिकटुपूगलवङ्गैलाजातीफलप्रभृति सर्वमपि अपुष्टिकर शुष्क पुष्पपत्रफलादि । अणे-
गहा साइम होइ अनेकधा स्वादिम भवति स्वाद्यते वक्त्रसौरभप्रमोदार्थिभिरिति स्वादिम । अन्नत्यणाभोगेण
सहसागारेण । अत्र आकारग्रहण नियमभङ्गेपि अदोषार्थं । अनाभोगात् अन्यत्र सहसाकारात् अन्यत्र प्र-
त्याख्यामीति शेषः । आभोगः स्वचित्तावधानेन कर्तव्यकरण । अनाभोगो वैपरीत्येन विस्मृत्यान्यकार्यव्याक्षे-
पेण कार्यकरण तस्मात् । सहसाकार इति सहसौत्सुक्येन कार्यकरण, अथवा स्वयमेव कार्योत्पत्तिः यथा
पवनाघ्याहत किंचिन्मुखे निपतति इति सहकारस्तस्मात् । पोरसिय पञ्चक्खाइ पौरुषीं यावत्प्रत्याख्याति
प्रहर यावदित्यर्थः । प्रत्याख्यामि उद्गतेसूर्ये सूर्योदयादारभ्येत्यर्थः । चतुर्विधमप्याहारं अशन ४ पूर्ववत् अन्न०
सह० पूर्ववत् । प्रच्छन्नकालेण प्रच्छन्नकालात् अभ्ररजश्छन्नसूर्यसयोगे प्रच्छन्नकालः तत्र दिनप्रमाण न ज्ञायते
तस्मात् । दिसामोहेण दिग्मोहात् पूर्वदक्षिणपश्चिमादिदिशामज्ञाने रविस्थितावज्ञातायां न कालपरिमाण
ज्ञान । साहुवयणेण साधुवचनात् यथा साधवः पादोनेपि प्रहरे अतिक्रान्ते 'भयव बहुपडिपुन्ना पोरिसी सा-
हयो उवत्ता होइ' इति वचनात् । सव्वसमाहिवत्तियागारेणं सर्वसमाधिवर्तिताकारेण सर्वेषा साधुसाध्वीश्रा-

दृयान्तमित्यर्थः। भवचरिम आयुःपूर्णतापर्यन्त प्रत्याख्याति । त्रिविध चतुर्विध वा आहार अशनं खादिम स्वादिम ३ अशन ४ अन्न० सह० मह० सव० पूर्ववत्। गठिसहित मुष्टिसहित अङ्गुष्ठसहित इत्यादि प्रत्याख्याति चतुर्वि० अशन पान ४ अन्न० सह० पारि० मह० सव० पूर्ववत्॥ निविगइय विगईयो सेसिआओ वा पच० निर्विकृतिक गृहीतशेषा वा विकृतीः प्रत्याख्याति अन्न० सह० लेवा० गिह० उक्खि० पूर्ववत्। पडुचमक्खिएण प्रत्युतपुरस्कारेण म्रक्षितात् घृततैलादिनाभ्यक्तात् परि० मह० सव० पूर्ववत् । यत्रोक्त अष्ट नव च आकारा अत्र च नवणीओगाहिमए इति वचनात् अद्रवविकृतिस्पर्शात् उक्खित्तविवेगेण कथन द्रवविकृतिस्पर्शात् न इत्यष्ट नव चाकाराः । अत्र विकृतय इति मनोवाक्कायाना कामाद्याश्लेषकारकत्वात् विकारिसद्भावात् विकृतय उच्यन्ते। ताश्च सूत्रोक्ताश्च दशधा। यथा । 'दुद्ध १ दहि २ घय ३ तिल्ल ४ गुड ५ तह्रोगाहिम ६ छ भक्खाओ। मधु ७ मज्ज ८ मस ९ मक्खण १० चत्तारि अभक्खविगईओ ॥ १ ॥' दुग्ध गोमहिषीछागीमेष्युष्ट्रिकाभव दधि नवनीत घृत तासामेव। उष्ट्रीणा दध्याद्यभावात् । तैल तिलात सीलट्टासर्षपोद्भव चतुर्धा। गुडः पिण्डद्रवभेदो द्विधा । उत्कथित अवगाहित वा घृततैलाभ्या केवलाभ्या पक्व। पक्वाश्च षट् भक्ष्या विकृतयः। चतस्रोऽभक्ष्याः मधुमद्यमासनवनीतरूपाः । अथ कटाहिकाया घृततैलादिपूर्णाया चलाचल खाद्यकादि पच्यते तेनैव स्नेहेन द्वितीय तृतीय च तद्विकृतिः। ततः पर पक्व योगवाहिना निर्विकृतिकप्रत्याख्यानेपि आगाढकारणे कल्पते । एव शेषाण्यपि विकृतिगतानि निर्विकृतिकप्रत्या-

'अह पेआ १ दुद्धट्टी २ दुद्धवलेही य ३ दुद्धसाडी य ४ । पच य स्याने कल्पन्ते । तानि कथ्यन्ते यथा । 'अयिललेयम्मि विगयगयाइ दुद्धम्मि य खोरिसहियाइ ५ ॥ १ ॥' क्षीरेयीपेये प्रसिद्धे । अय च व्याख्यायते । 'अयिललेयम्मि दुद्धे दुद्धट्टी दक्खमीसदुद्धमि । पइसाडी तह तदुल चुन्नय सिद्धम्मि अवलेही ॥ १ ॥ इति दुग्धविकृतिगतानि ॥ अथ दधिविकृतिगतानि यथा । 'दहिए विगयगयाइ घोलवडा १ घोल २ सिहिरिणि ३ करबो ४ । लवणकणदहियमहिय ५ सगरिगायम्मि अप्पडिए ॥ १ ॥' घृतविकृतिगतानि यथा । 'पक्कघिअ १ घयकिट्टी २ पक्कोसहिउवरितरियसप्पि च ३ । निज्झजण ४ वीसदण ५ गाढेघिअ विगइ विगइगया ॥ १ ॥' तैलविकृतिगतानि यथा । 'तिल्लमली १ तिलकुट्टी २ दद्धतिल्ल ३ तहो सहुबरिय ४ । लक्खाइदवपक्क तिल्लतिल्लमि पंचेव ॥ १ ॥ गुडविकृतिगतानि यथा । अद्धकढिइक्खुरसो १ गुलवाणीय य २ सक्करा ३ खड ४ । पायगुल ५ गुलविगई ६ विगयगया हुंति पचेव ॥ १ ॥' अथ अवगाहितविकृतिगतानि यथा । 'एग एग सुवारिं १ तिह्वेवरि बीयग च ज पक्क । तुप्पेण तेण चिय २ तइय गुलहाणिआ पभिई ३ ॥ १ ॥ चउत्थ जलेण सिद्धा लप्पसिआ ४ पंचम तु पूयलिया । चुपडियतावियाए परिपक्का ५ तीसमिलिएसु ॥ २ ॥' एव षट्सु भक्ष्यविकृतिषु त्रिंशत् विकृतिगतानि निर्विकृतिकेषु भक्ष्याणि । अभक्ष्यविकृतयस्तु मधु पौतिकमाक्षिकभ्रामरभेदात्त्रिविध । मद्य काष्ठपिष्टभेदात् द्विधा । मांस जलचरस्थलचरखचरभेदात्त्रिधा । नवनीत चतुर्धा पूर्वभे-

---

१ तिहलमि पचेव विगइगया ।

दयान्तमित्यर्थः। भवचरिम आयुःपूर्णतापर्यन्त प्रत्याख्याति । त्रिविध चतुर्विध वा आहार अशन खादिमं स्वादिम ३ अशन ४ अन्न० सह० मह० सव० पूर्ववत्। गठिसहित मुष्टिसहित अङ्गुष्ठसहित इत्यादि प्रत्याख्याति चतुर्वि० अशन पान ४ अन्न० सह० पारि० मह० सव० पूर्ववत्॥ निविगइय विगईयो सेसिआओ वा पच० निर्विकृतिकं गृहीतशेषा वा विकृतीः प्रत्याख्याति अन्न० सह० लेवा० गिह० उक्खि० पूर्ववत्। पडुच्चमक्खिएण प्रत्युतपुरस्कारेण म्रक्षितात् घृततैलादिनाभ्यक्तात् परि० मह० सव० पूर्ववत् । यत्रोक्त अष्ट नव च आकारा अत्र च नवणीओगाहिमए इति वचनात् अद्रवविकृतिस्पर्शात् उक्खित्तविवेगेण कथन द्रवविकृतिस्पर्शात् न इत्यष्ट नव चाकारा । अत्र विकृतय इति मनोवाक्कायाना कामाद्याश्लेषकारकत्वात् विकारिसद्भावात् विकृतय उच्यन्ते। ताश्च सूत्रोक्ताश्च दशधा। यथा । 'दुद्ध १ दहि २ घय ३ तिल्ल ४ गुड ५ तहोगाहिम ६ छ भक्खाओ। महु ७ मज्ज ८ मस ९ मक्खण १० चत्तारि अभक्खविगईओ॥ १॥' दुग्ध गोमहिषीछागीमेष्युष्ट्रिकाभव दधि नवनीत घृत तासामेव। उष्ट्रीणा दध्याद्यभावात् । तैल तिलात-सीलट्टासर्षपोद्भव चतुर्धा। गुडः पिण्डद्रवभेदो द्विधा । उत्कथित अवगाहित वा घृततैलाभ्या केवलाभ्या पक्व। पक्वान्न षट् भक्ष्या विकृतयः। चतस्रोऽभक्ष्याः मधुमद्यमासनवनीतरूपाः । अथ कटाहिकाया घृततैलादिपूर्णायां चलाचल खाद्यकादि पच्यते तेनैव स्नेहेन द्वितीय तृतीय च तद्विकृतिः। ततः पर पक्व योगवाहिना निर्विकृतिकप्रत्याख्यानेपि आगाढकारणे कल्पते । एव शेषाण्यपि विकृतिगतानि निर्विकृतिकप्रत्या-

क्याने कल्पन्ते । तानि कथ्यन्ते यथा । 'अह पेआ १ दुद्धट्टी २ दुद्धवलेही य ३ दुद्धसाडी य ४ । पच य विगयगयाइं दुद्धम्मि य खोरिसहियाइ ५ ॥ १ ॥' क्षीरेयीपेये प्रसिद्धे । अय च व्याख्यायते । 'अंबिललेयम्मि दुद्धे दुद्धट्टी वुक्खमीसदुद्धमि । पइसाडी तह तदुल चुन्नय सिद्धम्मि अवलेही ॥ १ ॥ इति दुग्धविकृतिगतानि ॥ अथ दधिविकृतिगतानि यथा । 'दहिए विगयगयाइ घोलवडा १ घोल २ सिहिरिणि ३ करबो ४ । लवणकणदहियमहिय ५ सगरिगायम्मि अप्पडिए ॥ १ ॥' घृतविकृतिगतानि यथा । 'पक्कघिअ १ घयकिट्टी २ पक्कोसहिउवरितरियसर्पिप च ३ । निज्जजण ४ वीसदण ५ गाईघिअ विगइ विगइगया ॥ १ ॥' तैलविकृतिगतानि यथा । 'तिल्लमली १ तिलकुट्टी २ दड्ढतिल्ल ३ तहो सहुघरिय ४ । लक्खाइदवपक्क तिल्लतिल्लमि पचेव ॥ १ ॥ गुडविकृतिगतानि यथा । अद्धकढिइक्खुरसो १ गुलपाणीय व २ सक्करा ३ खडं ४ । पायगुलं ५ गुलविगई ६ विगयगया हुति पचेव ॥ १ ॥' अथ अवगाहितविकृतिगतानि यथा । 'एग एग छुचरिं १ तिल्लेवरि पीयग च ज पक्कं । तुप्पेण तेण चिय २ तइय गुलहाणिआ पभिई ३ ॥ १ ॥ चउत्थ जलेण सिद्धा लप्पसिआ ४ पचम तु पूयलिया । चुपडियतावियाए परिपक्का ५ तीसमिलिएसु ॥ २ ॥' एव षट्सु भक्ष्यविकृतिषु त्रिंशत् विकृतिगतानि निर्विकृतिकेषु भक्ष्याणि । अभक्ष्यविकृतयस्तु मधु पौतिकमाक्षिकभ्रामरभेदात्त्रिविध । मद्य काष्ठपिष्टभेदात् द्विधा । मास जलचरस्थलचरखचरभेदात्त्रिधा । नवनीत चतुर्धा पूर्वभे-

१ तिल्लमि पचेव विगइगया ।

द्रया तमित्यर्थः। भवचरिम आयुःपूर्णतापर्यन्त प्रत्याख्याति । त्रिविध चतुर्विध वा आहार अशनं खादिम स्वादिम ३ अशन ४ अन्न० सह० मह० सव० पूर्ववत्। गठिसहित मुष्टिसहित अङ्गुष्ठसहित इत्यादि प्रत्याख्याति चतुर्वि० अशन पान ४ अन्न० सह० पारि० मह० सव० पूर्ववत्॥ निविगइय विगईयो सेसिआओ वा पच० निर्विकृतिक गृहीतशेषा वा विकृती प्रत्याख्याति अन्न० सह० लेवा० गिह० उक्खि० पूर्ववत्। पडुचमक्खिएणं भ्रत्युतपुरस्कारेण म्रक्षितात् घृततैलादिनाभ्यक्तात् परि० मह० सव० पूर्ववत्। यत्रोक्त अष्ट नव च आकारा अत्र च नवणीओगाहिमए इति वचनात् अद्रवविकृतिस्पर्शात् उक्खित्तविवेगेण कथन द्रवविकृतिस्पर्शात् न इत्यष्ट नव चाकाराः। अत्र विकृतय इति मनोवाक्कायाना कामाद्याश्लेपकारकत्वात् विकारिसद्भावात् विकृतय उच्यन्ते। ताश्च सूत्रोक्ताश्च दशधा। यथा। 'दुद्ध १ दहि २ घय ३ तिल्ल ४ गुड ५ तहोगाहिम ६ छ भक्खाओ। महु ७ मज्ज ८ मस ९ मक्खण १० चत्तारि अभक्खविगईओ॥ १॥' दुग्ध गोमहिषीछागीमेष्युष्ट्रिकाभव दधि नवनीत घृत तासामेव। उष्ट्रीणा दध्याद्यभावात्। तैल तिलातसीलट्टासर्षपोद्भव चतुर्धा। गुडः पिण्डद्रवभेदो द्विधा। उत्कथित अवगाहित वा घृततैलाभ्या केवलाभ्या पक्व। पक्वाश्च षट् भक्ष्या विकृतयः। चतस्रोऽभक्ष्याः मधुमद्यमासनवनीतरूपाः। अथ कटाहिकाया घृततैलादिपूर्णाया चलाचल खाद्यकादि पच्यते तेनैव स्नेहेन द्वितीय तृतीय च तद्विकृतिः। ततः पर पक्व योगवाहिना निर्विकृतिकप्रत्याख्यानेपि आगाढकारणे कल्पते। एव शेषाण्यपि विकृतिगतानि निर्विकृतिकप्रत्या-

पच य
च्याने कल्पन्ते । तानि कथ्यन्ते यथा । 'अह पेआ १ दुद्धट्टी २ दुद्धवलेही य ३ दुद्धसाडी य ४ । विगयगयाइ दुद्धम्मि य खीरिसहियाइ ५ ॥ १ ॥' क्षीरेयीपेये प्रसिद्धे । अय च व्याख्यायते । 'अधिललेयम्मि दुद्धे दुद्धट्टी वक्खमीसदुद्धमि । पइसाडी तह तंदुल चुन्नय सिद्धम्मि अवलेही ॥ १ ॥ इति दुग्धविकृतिगतानि ॥ अथ दधिविकृतिगतानि यथा । 'दहिए विगयगयाइं घोलवडा १ घोल २ सिहिरिणि ३ करंबो ४ । लवणकणदहियमहिय ५ सगरिगायम्मि अप्पडिए ॥ १ ॥' घृतविकृतिगतानि यथा । 'पक्कघिअ १ घयकिट्टी २ पक्कोसहिउवरितरियसप्पि च ३ । निब्भजण ४ वीसंदण ५ गाईघिअ विगइ विगइगया ॥ १ ॥' तैलवि-कृतिगतानि यथा । 'तिल्लमली १ तिलकुट्टी २ दद्धतिल्ल ३ तहो सहुघरिय ४ । लक्खाइदव्वपक्क तिल्लतिल्लमि पंचेव ॥ १ ॥ गुडविकृतिगतानि यथा । अद्धकढिइक्खुरसो १ गुलवाणीय व २ सक्करा ३ खंड ४ । पायगुल ५ गुलविगई ६ विगयगया हुंति पंचेव ॥ १ ॥' अथ अवगाहितविकृतिगतानि यथा । 'एग एग तुषरिं १ तिह्रेवरि बीयग च ज पक्क । तुप्पेण तेण चिय २ तइय गुलहाणिआ पभिई ३ ॥ १ ॥ चउत्थ जलेण सिद्धा लप्पसिआ ४ पंचम तु पूयलिया । तुपडियतावियाए परिपक्का ५ तीसमिलिएसु ॥ २ ॥' एव पट्सु भक्ष्य-विकृतिषु त्रिंशत् विकृतिगतानि निर्विकृतिकेषु भक्ष्याणि । अभक्ष्यविकृतयस्तु मधु पौतिकमाक्षिकभ्रामरभे-दात्त्रिविध । मद्य काष्ठपिष्टभेदात् द्विधा । मांस जलचरस्थलचरखचरभेदात्त्रिधा । नवनीत चतुर्धा पूर्वमे-

१ सिहमि पचेव विगइगया ।

द्यान्तमित्यर्थः। भवचरिम आयुःपूर्णतापर्यन्त प्रत्याख्याहि । त्रिविध चतुर्विध वा आहार अशनं खादिम खादिम ३ अशन ४ अन्न० सह० मह० सव० पूर्ववत्। गठिसहित मुष्टिसहित अङ्गुष्ठसहित इत्यादि प्रत्याख्याहि चतुर्वि० अशन पान ४ अन्न० सह० पारि० मह० सव० पूर्ववत्॥ निविगइय विगईयो सेसिआओ वा पच० निर्विकृतिक गृहीतशेषा वा विकृतीः प्रत्याख्याहि अन्न० सह० लेवा० गिह० उक्खि० पूर्ववत्। पडुचमक्खिएण प्रत्युतपुरस्कारेण म्रक्षितात् घृततैलादिनाभ्यक्तात् परि० मह० सव० पूर्ववत् । यथोक्त अष्ट नव च आकारा अष्ठ च नवणीओगाहिमए इति वचनात् अद्रवविकृतिस्पर्शात् उक्खित्तविवेगेण कथन द्रवविकृतिस्पर्शात् न इत्यष्ट नव चाकाराः । अथ विकृतय इति मनोवाक्कायाना कामाद्याक्षेपकारकत्वात् विकारिसद्भावात् विकृतय उच्यन्ते। ताश्च सूत्रोक्ताश्च दशधा। यथा । 'दुद्ध १ दहि २ घय ३ तिल्ल ४ गुड ५ तह्योगाहिम ६ छ भक्खाओ। महु ७ मज्ज ८ मंस ९ मक्खण १० चत्तारि अभक्खविगईओ ॥ १ ॥' दुग्ध गोमहिषीछागीमेष्युष्ट्रिकाभव दधि नवनीत घृत तासामेव। उष्ट्रीणा दध्याद्यभावात् । तैल तिलातसीलट्टासर्षपोद्भव चतुर्धा। गुडः पिण्डद्रवभेदो द्विधा । उत्कथित अवगाहित वा घृततैलाभ्यां केवलाभ्या पक्व। पक्वास षट् भक्ष्या विकृतयः। चतस्रोऽभक्ष्याः मधुमद्यमांसनवनीतरूपाः । अथ कटाहिकायां घृततैलाद्विपूर्णाया चलाचल खाद्यकादि पच्यते तेनैव स्नेहेन द्वितीय तृतीय च तद्विकृतिः। ततः पर पक्व योगवाहिनां निर्विकृतिकप्रत्याख्यानेपि आगाढकारणे कल्पते । एव शेषाण्यपि विकृतिगतानि निर्विकृतिकप्रत्या-

का० कार० अनु० ९ एवं ४० ॥ नवमकोष्टकत्रयस्य भङ्गा नव यथा । म० क० १ । म० कार० २ । म० अनु० ३ । व० करो० ४ । व० कार० ५ । व० अनु० ६ । का० करो० ७ । का० कार० ८ । क० अनु० ९ एव सर्वमीलने भङ्गका० ४९ । एव सर्वमीलने एकत्रित्रित्रिनवनवत्रिनवनवभङ्गोत्पादने एकोनपञ्चाशद्भङ्गाः । एते च नाकार्षे न करोमि न कारयिष्यामीति कालत्रयमाने त्रिगुणीकृते सप्तचत्वारिंशदधिक शत भङ्गाना भवति । इत्यावश्यके प्रत्याख्यानं सपूर्णं ॥ इत्युक्त षड्विधमावश्यक क्रमेण सामायिक १ चतुर्विंशतिस्तव २ वन्दन ३ प्रतिक्रमण ४ कायोत्सर्ग ५ प्रत्याख्यान ६ रूप संक्षेपतः । अवश्य क्रियते इत्यावश्यकं । तन्नित्यमेव करणीय साधूना श्रावकाणा च । तच्च न योजना विना करणीयानुष्ठानमुपयाति तदर्थं योजना कथ्यते । प्रथम सामायिकस्य योजना यथा । सर्वविरतिसामायिक प्रव्रज्याग्रहणविधेरवसित । श्रुतसम्यक्त्वदेशविरतिसामायिकानि श्राद्धव्रताधिरोपाधिकारादवसितानि ॥

| | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| ३ | ३ | ३ | २ | २ | २ | १ | १ | १ |
| ३ | २ | १ | ३ | २ | १ | ३ | २ | १ |
| १ | ३ | ३ | ३ | ९ | ९ | ३ | ९ | ९ |

अधुना च आवश्यकसामायिक यदवश्य श्राद्धैरनुष्ठीयते । सर्वकर्मारम्भे पूर्वं परमेष्ठिमन्त्रपाठः किं पुनरावश्यके । अतः पूर्वं नमस्कार पठेत् । 'मुहपत्ति नमुक्कार वंदग मिरियासणस्स पडिलेहा । सज्झायपच्चक्खाणे गुरुमुणिसङ्गाइय पणामो ॥ १ ॥' पूर्वं श्राद्धः पुरोधृतासनो गुरुं नत्वा इच्छाकारेण सदिसह भगवन् सामाइयमुहपुत्तियं पडिलेहेमि इत्युक्त्वोपविश्य मुखवस्त्रिका प्रतिलेखयति । तत ऊर्ध्वीभूय नमस्कार त्रिरेकवेल

सलस्ति ॥ ३ ॥' प्रथमकोष्ठकत्रये मनसा वचसा कायेन न करोमि न कारयामि नतु जानामि १ इति एको भङ्गः । द्वितीयकोष्टकत्रये भङ्गत्रय यथा । मनसा वचसा कायेन न करोमि न कारयामि १, मनसा वचसा कायेन न करोमि नानुजानामि २, मनसा वचसा कायेन न कारयामि नानुजानामि ३, एव ४ ॥ अथ तृतीयकोष्ठके भङ्गत्रय मनसा वचसा कायेन न करोमि १, मनसा वचसा कायेन न कारयामि २, मनसा वचसा कायेन नानुजानामि ३, एव ७ ॥ अथ चतुर्थकोष्टकत्रये भङ्गत्रय यथा । म० व० नक० नका० नानु० १, मन० व० का० नक० नानु० २, व० का० नक० नका० नानु० ३ एव १० । अथ पञ्चमकोष्टत्रये भङ्गनवक यथा । म० व० करोमि० कारयामि १ । म० व० करोमि अनुजानामि २ । म० व० कारयामि अनु० ३ । म० काये० करो० कार० ४ म० का० करो० अनु० ५ । म० का० कार० अनु० ६ । व० का० करो० कार० ७ । व० का० करो० अनु० ८ । व० का० कार० अनु० ९ एव १९ ॥ अथ षष्ठकोष्टकत्रयस्य भङ्गा यथा । म० नक० १ । म० का० नक० २ । व० का० नक० ३ । म० व० नका ४ । म० का० नका० ५ । व० का० नका० ६ । म० व० नानु० ७ । म० का० नानु० ८ व० का० नानु० ९ एव २८ ॥ अथ सप्तमकोष्टकत्रयस्य भङ्गत्रय यथा । म० नक० नका० नानु० १ । व० नक० नका० नानु० २ । का० नक० नका० नअ० ३ एव ॥ ३१ ॥ अष्टमकोष्टत्रयस्य भङ्गनवक यथा । म० करो० कार० १ । म० करो० अनु० २ । म० कार० अनु० ३ । वच० करो० कार० ४ । व० करो० अनु० ५ । व० कार० अनु० ६ । का० करो० कार० ७ । का० करो० अनु० ८ ।

का० कार० अनु० ९ एव ४० ॥ नवमकोष्टकत्रयस्य भङ्गा नव यथा । म० क० १ । म० कार० २ । म० अनु० ३ । व० करो० ४ । व० कार० ५ । व० अनु० ६ । का० करो० ७ । का० कार० ८ । क० अनु० ९ एव सर्वमीलने भङ्गका० ४९ । एव सर्वमीलने एकत्रित्रित्रिनवनवत्रिनवनवभङ्गोत्पादने एकोनपञ्चाशद्भङ्गाः । एते च नाकार्षं न करोमि न कारयिष्यामीति कालत्रयमाने त्रिगुणीकृते सप्तचत्वारिंशदधिक शत भङ्गाना भवति। इत्यावश्यके प्रत्याख्यानं सपूर्णं ॥ इत्युक्त षड्विधमावश्यक क्रमेण सामायिक १ चतुर्विंशतिस्तव २ वन्दन ३ प्रतिक्रमण ४ कायोत्सर्ग ५ प्रत्याख्यान ६ रूप संक्षेपतः । अवश्य क्रियते इत्यावश्यकं । तन्नित्यमेव करणीय साधूनां श्रावकाणा च । तच्च न योजना विना करणीयानुष्ठानमुपयाति तदर्थं योजना कथ्यते । प्रथम सामायिकस्य योजना यथा । सर्वविरतिसामायिकं प्रव्रज्याग्रहणविधेरवसित । श्रुतसम्यक्त्वदेशविरतिसामायिकानि श्राद्धव्रताधिरोपाधिकारावसितानि ॥

| | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| ३ | ३ | ३ | २ | २ | २ | १ | १ | १ |
| ५ | २ | १ | ३ | २ | १ | ३ | २ | १ |
| १ | १ | ३ | ३ | ९ | ९ | ३ | ९ | ९ |

अधुना च आवश्यकसामायिक यदवश्य श्राद्धैरनुष्ठीयते । सर्वकर्मारम्भे पूर्वं परमेष्ठिमन्त्रपाठः किं पुनरावश्यके । अतः पूर्वं नमस्कार पठेत् । 'मुहपत्ति नमुक्कार दंडग मिरियासणस्स पडिलेहा । सज्झायपच्चक्खाणे गुरुमुणिसङ्घाइय पणामो ॥ १ ॥' पूर्वं श्राद्धः पुरोभूतासनो गुरुं नत्वा इच्छाकारेण संदिसह भगवन् सामाइयमुहपुत्तियं पडिलेहेमि इत्युक्त्वोपविश्य मुखवस्त्रिकां प्रतिलेखयति । तत ऊर्ध्वीभूय नमस्कार त्रिरेकवेल

सत्ति ॥ ३ ॥' प्रथमकोष्ठकत्रये मनसा वचसा कायेन न करोमि न कारयामि नानु जानामि १ इति एको भङ्गः । द्वितीयकोष्ठकत्रये भङ्गत्रयं यथा । मनसा वचसा कायेन न करोमि न कारयामि १, मनसा वचसा कायेन न करोमि नानुजानामि २, मनसा वचसा कायेन न कारयामि नानुजानामि ३, एव ४ ॥ अथ तृतीयकोष्ठके भङ्गत्रय मनसा वचसा कायेन न करोमि १, मनसा वचसा कायेन न कारयामि २, मनसा वचसा कायेन नानुजानामि ३, एव ७ ॥ अथ चतुर्थकोष्ठकत्रये भङ्गत्रयं यथा । म० व० नक० नका० नानु० १, मन० व० का० नक० नका० नानु० २, व० का० नक० नका० नानु० ३ एवं १० । अथ पञ्चमकोष्टत्रये भङ्गनवक यथा । म० व० करोमि० कारयामि १ । म० व० करोमि अनुजानामि २ । म० व० कारयामि अनु० ३ । म० काये० करो० कार० ४ म० का० करो० अनु० ५ । म० का० कार० अनु० ६ । व० का० करो० कार० ७ । व० का० करो० अनु० ८ । व० का० कार० अनु० ९ एव १९ ॥ अथ षष्ठकोष्टकत्रयस्य भङ्गा यथा । म० नक० १ । म० का० नक० २ । व० का० नक० ३ । म० व० नका ४ । म० का० नका० ५ । व० का० नका० ६ । म० व० नानु० ७ । म० का० नानु० ८ व० का० नानु० ९ एव २८ ॥ अथ सप्तमकोष्टकत्रयस्य भङ्गत्रय यथा । म० नक० नका० नानु० १ । व० नक० नका० नानु० २ । का० नक० नका० नअ० ३ एव ॥ ३१ ॥ अष्टमकोष्टत्रयस्य भङ्गनवकं यथा । म० करो० कार० १ । म० करो० अनु० २ । म० कार० अनु० ३ । वच० करो० कार० ४ । व० करो० अनु० ५ । व० कार० अनु० ६ । का० करो० कार० ७ । का० करो० अनु० ८ ।

भगवन्, उपधिसदिसावउ उपधिपडिलेहउ इत्युक्त्वा यदि पूर्वं प्रतिलेखनाकाले वस्त्र पौषधागाराद्यप्रतिले-
खित स्यात् तदा प्रतिलेखयेत्। यदि प्रतिलेखित स्यात् तदा क्षमाश्रमणेनैव पूरयेत् । ततः क्षमाश्रमणद्वय-
पूर्वं भणति भगवन्, वसतिसदिसावउं वसतिपडिलेहउ इत्युक्त्वा यदि वसतिमात्रकादि पूर्वं प्रतिलेखना-
काले अप्रतिलेखित स्यात् तदा प्रतिलेखयेत्। प्रतिलेखितेपि क्षमाश्रमणेनैव पूरयेत्। वसतिप्रमार्जन दण्डप्रो-
ञ्छनेन। ततः पुनः गुरुसमीपमागत्य क्षमाश्रमणपूर्वमिति वदेत् भगवन्, पसाउकरी पच्चक्खाण करावउ।
ततो गुरुर्यदि श्राद्ध आहारार्थी भवति तदा दिवसपौषधे प्रातर्गृहीते नमस्कारसहित प्रत्याख्यानमुच्चारयेत्
यथा। उग्गए सूरे नवकारसहिय पच्च० चउ० ४ अन्न० सह० वोसिरइ । स्वाध्यायकाले पुनराचाम्लैकभक्त-
निर्विकृतिकादित्रिविधाहार उपवास वा दद्यात्। सध्याकृते रात्रिपौषधे तु दिवसचरिम पच्च० चउ० ४ अन्न०
सह० मह० सव० वोसिरइ। तत्र यः किल आहारग्राही भवति तदा स वन्दनकद्वय ददाति। यो न आहा-
रग्राही तस्य न आचार्योपाध्यायगुरुसाधुवन्दन। अय च सामान्यपौषधग्रहणविधिः। यत्किल अहोरात्रिक
पौषध गृह्णाति तस्यैव चर्या। ब्राह्मे मुहूर्ते पूर्वोक्तविधिना पौषध गृह्णाति । अतीतसध्याप्रतिलेखितोपधिव-
सति.। ततो जाताया प्रतिक्रमणवेलाया प्राभातिकप्रतिक्रमण करोति। तदन्ते क्षमा० द्वयपूर्वं बहुवेलं सदि-
सावेमि बहुवेल करेमि इत्युक्त्वा आचार्योपाध्यायसर्वसाधून् वन्दते । ततो जाते प्रतिलेखनाकाले क्षमा०
द्वयेन भणति भग० पडिलेहणं सदिसावेमि पडिलेहण करेमि इत्युक्त्वा मुखवस्त्रिकां प्रतिलेखयति। ततः

ततः श्राद्ध ऊर्ध्वीभूय नमस्कार त्रिरेकवेल वा पठति । ततो गुर्वग्रे कथयति । भगवन्, पोसहदण्डक उचराव । ततो गुरुस्त्रिरेकवेलं वा पौषधदण्डक वदति श्राद्धोपि तमनु वदति । दण्डको यथा । 'करेमि भंते पोसह आहारपोसह सवओ सरीरसकारपोसह सवओ अबाबारपोसह सवओ बंभचेरपोसह सवओ चउविहे पोसहे ठामि जाव दिवस वा रत्तिं वा अहोरत्त वा पज्जवासामि दुविह तिविहेण मणेण वायाए काएण न करेमि न कारवेमि तस्स भंते पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि १ अत्र च यः किल दिवसपौषधे अहोरात्र्यौषधे वा आहारार्थी तस्य आहारपोसह देसओ इत्युच्चारः शेष तथैव । तत उपविश्य इच्छाकारेण संदिसह भगवन्, सामाइकमुहपत्तिं पडिलेहेमि इत्युक्त्वा मुखवस्त्रिका प्रतिलेखयति । ततः श्राद्ध ऊर्ध्वीभूय परमेष्ठिमन्त्र त्रिरेकवेल वा पठित्वा पुनः कथयति भगवन्, सामाइकदण्डक उचरावउ । ततो गुरुस्त्रिरेकवेल वा सामायिकदण्डकमुच्चारयति यथा करेमि भंते सामाइय सावज्ज जोग पच्चक्खामि जाव पोसह पज्जुवासामि दुविह तिविहेण मणेण वायाए काएण न करेमि न कारवेमि तस्सभ ॥ १ ॥ १ । ततः क्षमाश्रमण दत्त्वा भणति । वर्षाकाले भगवन्, कट्ठासण सदिसावामि । कट्ठासण पडिलेहेमि । शेषाष्टमासेषु पाउछणउ सदिसावेमि । पाउछणउ पडिलेहेमि । इत्युक्त्वा पट्टक पादप्रोञ्छन वा प्रतिलेखयेत् । ततः क्षमाश्रमण दत्त्वा भणति भगवन्, सज्झायं सदिसावेमि सज्झायं करेमि । तत ऊर्ध्वीभूय नमस्कारत्रय पठित्वा । जयइ जगजीवजोणी इत्यादिगाथापञ्चक पञ्चविंशतिं वा पठेत् । ततः पुनः क्षमाश्रमणपूर्वं भणति

भगवन्, उपधिसंदिसावउं उपधिपडिलेहउं इत्युक्त्वा यदि पूर्वं प्रतिलेखनाकाले यत्र पौषधागाराद्यप्रतिलेखितं स्यात् तदा प्रतिलेखयेत्। यदि प्रतिलेखितं स्यात् तदा क्षमाश्रमणेनैव पूरयेत् । ततः क्षमाश्रमणद्वयपूर्वं भणति भगवन्, वसतिसंदिसावउं वसतिपडिलेहउं इत्युक्त्वा यदि वसतिमात्रकादि पूर्वं प्रतिलेखनाकाले अप्रतिलेखितं स्यात् तदा प्रतिलेखयेत्। प्रतिलेखितेपि क्षमाश्रमणेनैव पूरयेत्। वसतिप्रमार्जनं दण्डप्रोंछनेन। ततः पुनः गुरुसमीपमागत्य क्षमाश्रमणपूर्वमिति वदेत् भगवन्, पसाउकरी पच्चक्खाण करावउ। ततो गुरुर्यदि श्राद्ध आहारार्थी भवति तदा दिवसपौषधे प्रातर्गृहीते नमस्कारसहितं प्रत्याख्यानमुच्चारयेत् यथा। उग्गए सूरे नवकारसहियं पच्च० चउ० ४ अन्न० सह० वोसिरइ । स्वाध्यायकाले पुनराचाम्लैकभक्तनिर्विकृतिकाद्वित्रिविधाहारं उपवासं वा दद्यात्। सध्याकृते रात्रिपौषधे तु दिवसचरिमं पच्च० चउ० ४ अन्न० सह० मह० सव० वोसिरइ। तत्र यः किल आहारग्राही भवति तदा स वन्दनकद्वयं ददाति। यो न आहारग्राही तस्य न आचार्योपाध्यायगुरुसाधुवन्दनं। अयं च सामान्यपौषधग्रहणविधिः। यत्किल अहोरात्रिकं पौषधं गृह्णाति तस्येयं चर्या। ब्राह्मे मुहूर्ते पूर्वोक्तविधिना पौषधं गृह्णाति । अतीतसंध्याप्रतिलेखितोपधिवसतिः। ततो जातायां प्रतिक्रमणवेलायां प्राभातिकप्रतिक्रमणं करोति। तदन्ते क्षमा० द्वयपूर्वं बहुवेलं संदिसावेमि बहुवेलं करेमि इत्युक्त्वा आचार्योपाध्यायसर्वसाधून् वन्दते । ततो जाते प्रतिलेखनाकाले क्षमा० द्वयेन भणति भग० पडिलेहणं संदिसावेमि पडिलेहणं करेमि इत्युक्त्वा मुखवस्त्रिकां प्रतिलेखयति। ततः

ततः श्राद्ध ऊर्ध्वीभूय नमस्कार त्रिरेकवेल वा पठति। ततो गुर्वग्रे कथयति। भगवन्, पोसहदण्डक उच्चरावउ। ततो गुरुस्त्रिरेकवेल वा पौषधदण्डक वदति श्राद्धोपि तमनु वदति। दण्डको यथा। 'करेमि भंते पोसह आहारपोसह सव्वओ सरीरसक्कारपोसह सव्वओ अव्वावारपोसह सव्वओ बम्भचेरपोसह सव्वओ चउव्विहे पोसहे ठामि जाव दिवस वा रत्तिं वा अहोरत्त वा पज्जुवासामि दुविह तिविहेण मणेण वायाए काएण न करेमि न कारवेमि तस्स भंते पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाण वोसिरामि १ अत्र च यः किल दिवसपौषधे अहोरात्रपौषधे वा आहारार्थी तस्य आहारपोसह देसओ इत्युच्चारः शेष तथैव। तत उपविश्य इच्छाकारेण संदिसह भगवन्, सामाइकमुहपत्ति पडिलेहेमि इत्युक्त्वा मुखवस्त्रिका प्रतिलेखयति। ततः श्राद्ध ऊर्ध्वीभूय परमेष्ठिमन्त्र त्रिरेकवेल वा पठित्वा पुनः कथयति भगवन्, सामाइकदण्डक उच्चरावउ। ततो गुरुस्त्रिरेकवेल वा सामायिकदण्डकमुच्चारयति यथा करेमि भंते सामाइय सावज्ज जोग पच्चक्खामि जाव पोसह पज्जुवासामि दुविह तिविहेण मणेण वायाए काएण न करेमि न कारवेमि तस्सभ ॥ १ ॥ १। ततः क्षमाश्रमण दत्त्वा भणति। वर्षाकाले भगवन्, कट्ठासणं संदिसावामि। कट्ठासण पडिलेहेमि। शेषाष्टमासेषु पाउछणउ संदिसावेमि। पाउछणउ पडिलेहेमि। इत्युक्त्वा पट्टक पादप्रोंछन वा प्रतिलेखयेत्। ततः क्षमाश्रमण दत्त्वा भणति भगवन्, सज्झायं संदिसावेमि सज्झाय करेमि। तत ऊर्ध्वीभूय नमस्कारत्रय पठित्वा। जयइ जगजीवजोणी इत्यादिगाथापञ्चक पञ्चविंशतिं वा पठेत्। ततः पुनः क्षमाश्रमणपूर्वं भणति

भगवन्, उपधिसंदिसावउ उपधिपडिलेहउ इत्युक्त्वा यदि पूर्वं प्रतिलेखनाकाले वस्त्र पौषधागाराद्यप्रतिलेखित स्यात् तदा प्रतिलेखयेत्। यदि प्रतिलेखित स्यात् तदा क्षमाश्रमणेनैव पूरयेत् । ततः क्षमाश्रमणद्वयपूर्वं भणति भगवन्, वसतिसंदिसावउ वसतिपडिलेहउ इत्युक्त्वा यदि वसतिमात्रकादि पूर्वं प्रतिलेखनाकाले अप्रतिलेखित स्यात् तदा प्रतिलेखयेत्। प्रतिलेखितेपि क्षमाश्रमणेनैव पूरयेत्। वसतिप्रमार्जन दण्डप्रोंछनेन। ततः पुनः गुरुसमीपमागत्य क्षमाश्रमणपूर्वमिति वदेत् भगवन्, पसाउकरी पच्चक्खाण करावउ। ततो गुरुर्यदि श्राद्ध आहारार्थी भवति तदा दिवसपौषधे प्रातर्गृहीते नमस्कारसहित प्रत्याख्यानमुच्चारयेत् यथा। उग्गए सूरे नवकारसहिय पच्च० चउ० ४ अन्न० सह० वोसिरइ । स्वाध्यायकाले पुनराचाम्लैकभक्तनिर्विकृतिकादिस्त्रिविधाहार उपवास वा दद्यात्। सन्ध्याकृते रात्रिपौषधे तु दिवसचरिम पच्च० चउ० ४ अन्न० सह० मह० सव्व० वोसिरइ। तत्र यः किल आहारग्राही भवति तदा स वन्दनकद्वय ददाति। यो न आहारग्राही तस्य न आचार्योपाध्यायगुरुसाधुवन्दन। अय च सामान्यपौषधग्रहणविधिः। यत्किल अहोरात्रिकं पौषध गृह्णाति तस्यैव चर्या। ब्राह्मे मुहूर्ते पूर्वोक्तविधिना पौषध गृह्णाति । अतीतसन्ध्याप्रतिलेखितोपधिवसति०। ततो जातायां प्रतिक्रमणवेलायां प्राभातिकप्रतिक्रमण करोति। तदन्ते क्षमा० द्वयपूर्वं बहुवेल संदिसावेमि बहुवेल करेमि इत्युक्त्वा आचार्योपाध्यायसर्वसाधून् वन्दते । ततो जाते प्रतिलेखनाकाले क्षमा० द्वयेन भणति भग० पडिलेहण संदिसावेमि पडिलेहण करेमि इत्युक्त्वा मुखवस्त्रिका प्रतिलेखयति। ततः

ततः श्राद्ध ऊर्ध्वीभूय नमस्कार त्रिरेकवेलं वा पठति । ततो गुर्वग्रे कथयति । भगवन्, पोसहदण्डक उच्चरा-वउ । ततो गुरुस्त्रिरेकवेल वा पौषधदण्डक वदति श्राद्धोपि तमनु वदति । दण्डको यथा । 'करेमि भते पोसह आहारपोसह सव्वओ सरीरसक्कारपोसह सव्वओ अव्वावारपोसह सव्वओ बंभचेरपोसह सव्वओ चउव्विहे पोसहे ठामि जाव दिवस वा रत्तिं वा अहोरत्त वा पज्जुवासामि दुविह तिविहेण मणेण वायाए काएण न करेमि न कारवेमि तस्स भते पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि १ अत्र च यः किल दिवसपौषधे अहोरात्र्यौषधे वा आहारार्थी तस्य आहारपोसह देसओ इत्युच्चारः शेष तथैव । तत उपविश्य इच्छाकारेण संदिसह भगवन्, सामाइकमुहपत्तिं पडिलेहेमि इत्युक्त्वा मुखवस्त्रिका प्रतिलेखयति । तत. श्राद्ध ऊर्ध्वीभूय परमेष्ठिमन्त्र त्रिरेकवेल वा पठित्वा पुनः कथयति भगवन्, सामाइकदण्डक उच्चरावउ । ततो गुरुस्त्रिरेकवेल वा सामायिकदण्डकमुच्चारयति यथा करेमि भते सामाइय सावज्ज जोग पच्चक्खामि जाव पोसह पज्जुवासामि दुविह तिविहेण मणेण वायाए काएण न करेमि न कारवेमि तस्सभ ॥ १ ॥ १ । ततः क्षमाश्रमण दत्त्वा भणति । वर्षाकाले भगवन्, कट्ठासणं संदिसावामि । कट्ठासण पडिलेहेमि । शेषाष्टमासेषु पाउछणउ संदिसावेमि । पाउछणउ पडिलेहेमि । इत्युक्त्वा पट्टक पादप्रोंछन वा प्रतिलेखयेत् । ततः क्षमाश्रमण दत्त्वा भणति भगवन्, सज्झायं संदिसावेमि सज्झाय करेमि । तत ऊर्ध्वीभूय नमस्कारत्रय पठित्वा । जयइ जगजीवजोणी इत्यादिगाथापञ्चक पञ्चविंशतिं वा पठेत् । ततः पुनः क्षमाश्रमणपूर्वं भणति

भगवन्, उपधिसंदिसावउ उपधिपडिलेहउ इत्युक्त्वा यदि पूर्वं प्रतिलेखनाकाले वस्त्र पौषधागाराद्यप्रतिलेखित स्यात् तदा प्रतिलेखयेत्। यदि प्रतिलेखित स्यात् तदा क्षमाश्रमणेनैव पूरयेत् । ततः क्षमाश्रमणद्वयपूर्वं भणति भगवन्, वसतिसंदिसावउं वसतिपडिलेहउं इत्युक्त्वा यदि वसतिमात्रकादि पूर्वं प्रतिलेखनाकाले अप्रतिलेखित स्यात् तदा प्रतिलेखयेत्। प्रतिलेखितेपि क्षमाश्रमणेनैव पूरयेत्। वसतिप्रमार्जन दण्डप्रोंछनेन। ततः पुनः गुरुसमीपमागत्य क्षमाश्रमणपूर्वमिति वदेत् भगवन्, पसाउकरी पच्चक्खाण करावउ। ततो गुरुर्यदि श्राद्ध आहारार्थी भवति तदा दिवसपौषधे प्रातर्गृहीते नमस्कारसहित प्रत्याख्यानमुच्चारयेत् यथा। उग्गए सूरे नवकारसहिय पच्च० चउ० ४ असं० सह० वोसिरइ । स्वाध्यायकाले पुनराचाम्लैकभक्तनिर्विकृतिकादित्रिविधाहार उपवास वा दद्यात्। सन्ध्याकृते रात्रिपौषधे तु दिवसचरिम पच्च० चउ० ४ असं० सह० मह० सव० वोसिरइ। तत्र यः किल आहारग्राही भवति तदा स वन्दनकद्वय ददाति। यो न आहारग्राही तस्य न आचार्योपाध्यायगुरुसाधुवन्दन। अय च सामान्यपौषधग्रहणविधिः। यत्किल अहोरात्रिकं पौषध गृह्णाति तस्येय चर्या। ब्राह्मे मुहूर्ते पूर्वोक्तविधिना पौषध गृह्णाति । अतीतसन्ध्याप्रतिलेखितोपधिवसतिः। ततो जातायां प्रतिक्रमणवेलाया प्राभातिकप्रतिक्रमण करोति। तदन्ते क्षमा० द्वयपूर्वं बहुवेल संदिसावेमि बहुवेल करेमि इत्युक्त्वा आचार्योपाध्यायसर्वसाधून् वन्दते । ततो जाते प्रतिलेखनाकाले क्षमा० द्वयेन भणति भग० पडिलेहण संदिसावेमि पडिलेहण करेमि इत्युक्त्वा मुखवस्त्रिका प्रतिलेखयति। ततः

ततः श्राद्ध ऊर्ध्वीभूय नमस्कार त्रिरेकवेल वा पठति। ततो गुर्वग्रे कथयति। भगवन्, पोसहदण्डक उच्चरावउ। ततो गुरुस्त्रिरेकवेल वा पौषधदण्डक वदति श्राद्धोपि तमनु वदति। दण्डको यथा। 'करेमि भंते पोसह आहारपोसह सवओ सरीरसक्कारपोसह सवओ अबाबारपोसह सवओ बंभचेरपोसह सवओ चउविहे पोसहे ठामि जाव दिवस वा रत्तिं वा अहोरत्त वा पज्जुवासामि दुविह तिविहेण मणेण वायाए काएण न करेमि न कारवेमि तस्स भंते पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि १ अत्र च यः किल दिवसपौषधे अहोरात्र्यौषधे वा आहारार्थी तस्य आहारपोसह देसओ इत्युच्चारः शेष तथैव। तत उपविश्य इच्छाकारेण संदिसह भगवन्, सामाइकमुहपत्तिं पडिलेहेमि इत्युक्त्वा मुखवस्त्रिका प्रतिलेखयति। ततः श्राद्ध ऊर्ध्वीभूय परमेष्ठिमन्त्र त्रिरेकवेल वा पठित्वा पुनः कथयति भगवन्, सामाइकदण्डक उच्चरावउ। ततो गुरुस्त्रिरेकवेल वा सामायिकदण्डकमुच्चारयति यथा करेमि भंते सामाइय सावज्ज जोग पच्चक्खामि जाव पोसह पज्जुवासामि दुविह तिविहेण मणेण वायाए काएण न करेमि न कारवेमि तस्सभ॥ १॥ १। ततः क्षमाश्रमण दत्वा भणति। वर्षाकाले भगवन्, कट्ठासण संदिसावामि। कट्ठासण पडिलेहेमि। शेषाष्टमासेषु पाउछणउ संदिसावेमि। पाउछणउ पडिलेहेमि। इत्युक्त्वा पट्टक पादप्रोञ्छन वा प्रतिलेखयेत्। ततः क्षमाश्रमण दत्वा भणति भगवन्, सज्झायं संदिसावेमि सज्झाय करेमि। तत ऊर्ध्वीभूय नमस्कारत्रय पठित्वा। जयइ जगजीवजोणी इत्यादिगाथापञ्चक पञ्चविंशतिं वा पठेत्। ततः पुनः क्षमाश्रमणपूर्वं भणति

भगवन्, उपधिसंदिसावउं उपधिपडिलेहउ इत्युक्त्वा यदि पूर्वं प्रतिलेखनाकाले वस्त्र पौषधागाराद्यप्रतिलेखित स्यात् तदा प्रतिलेखयेत्। यदि प्रतिलेखित स्यात् तदा क्षमाश्रमणेनैव पूरयेत् । ततः क्षमाश्रमणद्वयपूर्वं भणति भगवन्, वसतिसंदिसावउं वसतिपडिलेहउ इत्युक्त्वा यदि वसतिमात्रकादि पूर्वं प्रतिलेखनाकाले अप्रतिलेखित स्यात् तदा प्रतिलेखयेत्। प्रतिलेखितेपि क्षमाश्रमणेनैव पूरयेत्। वसतिप्रमार्जन दण्डप्रोंछनेन। तत पुनः गुरुसमीपमागत्य क्षमाश्रमणपूर्वमिति वदेत् भगवन्, पसाउकरी पच्चक्खाण करावउ। ततो गुरुर्यदि श्राद्ध आहारार्थी भवति तदा दिवसपौषधे प्रातर्गृहीते नमस्कारसहित प्रत्याख्यानमुच्चारयेत् यथा। उग्गए सूरे नवकारसहिय पच्च० चउ० ४ अन्न० सह० वोसिरइ । स्वाध्यायकाले पुनराचाम्लैकभक्तनिर्विकृतिकादित्रिविधाहार उपवास वा दद्यात्। सध्याकृते रात्रिपौषधे तु दिवसचरिम पच्च० चउ० ४ अन्न० सह० मह० सव० वोसिरइ। तत्र य फिल आहारग्राही भवति तदा स वन्दनकद्वय ददाति। यो न आहारग्राही तस्य न आचार्योपाध्यायगुरुसाधुवन्दन। अथ च सामान्यपौषधग्रहणविधिः। यत्किल अहोरात्रिकं पौषध गृह्णाति तस्येय चर्या। ब्राह्मे मुहूर्ते पूर्वोक्तविधिना पौषध गृह्णाति । अतीतसंख्याप्रतिलेखितोपधिवसति। ततो जाताया प्रतिक्रमणवेलायां प्राभातिकप्रतिक्रमण करोति। तदन्ते क्षमा० द्वयपूर्वं बहुवेल संदिसावेमि बहुवेल करेमि इत्युक्त्वा आचार्योपाध्यायसर्वसाधून् वन्दते । ततो जाते प्रतिलेखनाकाले क्षमा० द्वयेन भणति भग० पडिलेहणं संदिसावेमि पडिलेहण करेमि इत्युक्त्वा मुखवस्त्रिका प्रतिलेखयति। ततः

ततः भाद्ध ऊर्ध्वीभूय नमस्कार त्रिरेकवेल वा पठति । ततो गुर्वग्रे कथयति । भगवन्, पोसहदण्डक उच्चरा-
वउ । ततो गुरुस्त्रिरेकवेल वा पौषधदण्डक वदति श्राद्धोपि तमनु वदति । दण्डको यथा । 'करेमि भते पो-
सह आहारपोसह सवओ सरीरसक्कारपोसह सवओ अवाबारपोसह सवओ बम्भचेरपोसह सवओ चउव्विहे
पोसहे ठामि जाव दिवस वा रत्तिं वा अहोरत्त वा पज्जुवासामि दुविह तिविहेण मणेण वायाए काएण न
करेमि न कारवेमि तस्स भंते पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाण वोसिरामि १ अत्र च यः किल दिव-
सपौषधे अहोरात्र्यौषधे वा आहारार्थी तस्य आहारपोसह देसओ इत्युच्चारः शेष तथैव । तत उपविश्य
इच्छाकारेण संदिसह भगवन्, सामाइकमुहपत्तिं पडिलेहेमि इत्युक्त्वा मुखवस्त्रिकां प्रतिलेखयति । ततः
श्राद्ध ऊर्ध्वीभूय परमेष्ठिमन्त्र त्रिरेकवेल वा पठित्वा पुनः कथयति भगवन्, सामाइकदण्डक उच्चरावउ । ततो
गुरुस्त्रिरेकवेल वा सामायिकदण्डकमुच्चारयति यथा करेमि भंते सामाइय सावज्ज जोग पच्चक्खामि जाव पो-
सह पज्जुवासामि दुविह तिविहेण मणेण वायाए काएण न करेमि न कारवेमि तस्सभ ॥ १ ॥ १ । ततः
क्षमाश्रमण दत्वा भणति । वर्षाकाले भगवन्, कट्ठासण सदिसावामि । कट्ठासण पडिलेहेमि । शेषाष्टमा-
सेषु पाउछणउ संदिसावेमि । पाउछणउं पडिलेहेमि । इत्युक्त्वा पट्टक पादप्रोंछनं वा प्रतिलेखयेत् । ततः
क्षमाश्रमण दत्वा भणति भगवन्, सज्झायं सदिसावेमि सज्झाय करेमि । तत ऊर्ध्वीभूय नमस्कारत्रय
पठित्वा । जयइ जगजीवजोणी इत्यादिगाथापञ्चक पञ्चविंशतिं वा पठेत् । ततः पुनः क्षमाश्रमणपूर्व भणति

भगवन्, उपधिसंदिसावउ उपधिपडिलेहउ इत्युक्त्वा यदि पूर्वं प्रतिलेखनाकाले वस्त्र पौषधागाराद्यप्रतिलेखित स्यात् तदा प्रतिलेखयेत्। यदि प्रतिलेखित स्यात् तदा क्षमाश्रमणेनैव पूरयेत् । ततः क्षमाश्रमणद्वयपूर्वं भणति भगवन्, वसतिसंदिसावउ वसतिपडिलेहउ इत्युक्त्वा यदि वसतिमात्रकादि पूर्वं प्रतिलेखनाकाले अप्रतिलेखित स्यात् तदा प्रतिलेखयेत्। प्रतिलेखितेपि क्षमाश्रमणेनैव पूरयेत्। वसतिप्रमार्जन दण्डप्रोञ्छनेन। ततः पुनः गुरुसमीपमागत्य क्षमाश्रमणपूर्वमिति वदेत् भगवन्, पसाउकरी पच्चक्खाण करावउ। ततो गुरुर्यदि श्राद्ध आहारार्थी भवति तदा दिवसपौषधे प्रातर्गृहीते नमस्कारसहित प्रत्याख्यानमुच्चारयेत् यथा। उग्गए सूरे नवकारसहिय पच्च० चउ० ४ अन्न० सह० वोसिरइ । स्वाध्यायकाले पुनराचाम्लैकभक्तनिर्विकृतिकादित्रिविधाहार उपवास वा दद्यात्। संध्याकृते रात्रिपौषधे तु दिवसचरिम पच्च० चउ० ४ अन्न० सह० मह० सव्व० वोसिरइ। तत्र यः किल आहारग्राही भवति तदा स वन्दनकद्वय ददाति। यो न आहारग्राही तस्य न आचार्योपाध्यायगुरुसाधुवन्दन। अय च सामान्यपौषधग्रहणविधिः। यत्किल अहोरात्रिक पौषध गृह्णाति तस्येय चर्या। ब्राह्मे मुहूर्ते पूर्वोक्तविधिना पौषध गृह्णाति । अतीतसंध्याप्रतिलेखितोपधिवसतिः। ततो जातायां प्रतिक्रमणवेलायां प्राभातिकप्रतिक्रमण करोति। तदन्ते क्षमा० द्वयपूर्वं बहुवेल संदिसावेमि बहुवेल करेमि इत्युक्त्वा आचार्योपाध्यायसर्वसाधून् वन्दते । ततो जाते प्रतिलेखनाकाले क्षमा० द्वयेन भणति भग० पडिलेहणं संदिसावेमि पडिलेहण करेमि इत्युक्त्वा मुखवस्त्रिका प्रतिलेखयति। ततः

ततः श्राद्ध ऊर्ध्वीभूय नमस्कार त्रिरेकवेल वा पठति । ततो गुर्वग्रे कथयति । भगवन्, पोसहदण्डक उच्चरा- वउ । ततो गुरुस्त्रिरेकवेल वा पोषधदण्डक वदति श्राद्धोपि तमनु वदति । दण्डको यथा । 'करेमि भंते पो- सह आहारपोसह सवओ सरीरसक्कारपोसह सवओ अबाबारपोसह सवओ बम्भचेरपोसह सवओ चउविहे पोसहे ठामि जाव दिवस वा रत्तिं वा अहोरत्त वा पज्जुवासामि दुविह तिविहेण मणेण वायाए काएण न करेमि न कारवेमि तस्स भंते पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाण वोसिरामि १ अत्र च यः किल दिव- सपौषधे अहोरात्र्यौषधे वा आहारार्थी तस्य आहारपोसह देसओ इत्युच्चारः शेष तथैव । तत उपविश्य इच्छाकारेण संदिसह भगवन्, सामाइकमुहपत्तिं पडिलेहेमि इत्युक्त्वा मुखवस्त्रिका प्रतिलेखयति । ततः श्राद्ध ऊर्ध्वीभूय परमेष्ठिमन्त्र त्रिरेकवेल वा पठित्वा पुनः कथयति भगवन्, सामाइकदण्डक उच्चरावउ । ततो गुरुस्त्रिरेकवेल वा सामायिकदण्डकमुच्चारयति यथा करेमि भंते सामाइय सावज्ज जोग पच्चक्खामि जाव पो- सह पज्जुवासामि दुविहं तिविहेण मणेण वायाए काएण न करेमि न कारवेमि तस्सभ ॥ १ ॥ १ । ततः क्षमाश्रमण दत्त्वा भणति । वर्षाकाले भगवन्, कट्ठासणं संदिसावामि । कट्ठासण पडिलेहेमि । शेषाष्टमा- सेषु पाउछणउ सदिसावेमि । पाउछणउ पडिलेहेमि । इत्युक्त्वा पट्टक पादप्रोंछनं वा प्रतिलेखयेत् । ततः क्षमाश्रमण दत्त्वा भणति भगवन्, सज्झायं संदिसावेमि सज्झाय करेमि । तत ऊर्ध्वीभूय नमस्कारत्रय पठित्वा । जयइ जगजीवजोणी इत्यादिगाथापञ्चक पञ्चविंशतिं वा पठेत् । ततः पुनः क्षमाश्रमणपूर्वं भणति

णवुस्छुमिणराईपायच्छित्त चित्तविशोधनार्थं कायोत्सर्गं करोति शक्रस्तव च पठति । ततो मुखवस्त्रिका प्रतिलिख्य सामायिकदण्डकमुच्चार्य स्वाध्यायपर्यन्त करोति । पुनः शुभध्यानेन रात्रिशेषमतिवाहयति । ततः प्रतिक्रमणवेलाया प्राभातिक प्रतिक्रमण करोति । ततः पूर्ववत्सर्वं प्राभातिक कर्म विदध्यात् । जाते पौषधपारणावसरे इच्छा० भगवन् पोसहपारणमुहपत्तिं पडिलेहेमि । मुखवस्त्रिका प्रतिलिख्य क्षमा० द्वयपूर्वक भणति भगवन् पोसह पारउ भग० पोसह पारियउ । मुखवस्त्रिकापिहितवदनो मून्यस्तशीर्षः पौषधपारणगाथाः पठति यथा–'सागरचंदो कामो चदवर्डिसो सुदंसणो धन्नो । जेहिं पोसहपडिमा न खंडिया जीवियतेवि ॥ १ ॥ जो गन्मवासमीओ ताछुल्लिओ महामुणी अभओ । उम्मुक्कमणिसुवन्नो पडिपुन्न पोसह कुणइ ॥ २ ॥ पोसहसुहे भावे असुहाइ खवेइ नत्थि सदेहो । छिंदइ नरनिरियगई इह भणिय पोसह कुणइ ॥ ३ ॥ पोसहसामाइयसठियस्स जीवस्स जाइ जो कालो । सो सफलो बोधव्वो सेसो ससारफलहेउ ॥४॥ चक्कवट्टित्तमिवत्त मुक्खो कालओ विक्खिओ । इचेअ पोसहस्सेव फल विंति महेसिणो ॥ ५ ॥' ततो नमस्कार भणित्वा सामायिकपारणमुखवस्त्रिका प्रतिलिख्य पूर्ववत्सामायिक पारयति । ततः पोषधपारणके साधुषु सत्सु नियतमतिथिसविभागो विधेय एव । इत्याहोरात्रिकपोषधविधिः ॥ सामायिक च द्विघट्यन्त नमस्कारजापप्रतिक्रमणादिभिः पूरयेत् । केचित्स्थूलमतयः परमेष्ठिमन्त्रपञ्चशतीजपान्त ब्रुवते । तदनन्तर तत्पारयित्वा पुनः सामायिक गृह्णीयादिति रूढिः । इत्यावश्यके सामायिकयोजना संपूर्णा ॥

ओहीयछिळे पडिलेहेमि । ततो वस्त्रकम्बलादि प्रतिलिख्य पुनः शुभध्यानेन तिष्ठति । समागतायां कालवे-
लायां चतुर्विंशतिस्थण्डिलानि प्रतिलेखयति उच्चारप्रस्रवणार्थं । ततस्तद्दिवसानुसारेण सांवत्सरिक चातुर्मा-
सिक पाक्षिक वा दैवसिक वा प्रतिक्रमण करोति । तदनन्तर साधुविश्रामणां करोति । ततः स्वाध्यायेन
निशाप्रथमप्रहरमतिवाहयति । ततः शरीरचिन्तां कृत्वा ऐर्यापथिकीं प्रतिक्रम्य मुखवस्त्रिका प्रतिलिख्य क्ष-
मा० द्वयपूर्वं भणति भग० राईसथारए संदिसावेमि राईसथारए ठापमि इत्युक्त्वा शक्रस्तव पठति । ततः
संस्तारक शरीर च प्रमृज्य जानूपरि संस्तारकोत्तरपट्टं मीलयित्वा भूमौ संस्थाप्य । अणुजाणह निस्सीही
नमो खमासमणाण इत्युक्त्वा संस्तारकोपरि उपविशति । तत्र नमस्कारत्रय भणित्वा त्रिवेल चतुःशरण च
पठित्वा गाथात्रय त्रिः पठति यथा । 'अणुजाणह परमगुरू गुरुगुणरयणेहिं भूसियशरीरा । बहुपडिपुन्ना पो-
रसि राईसथारए ठापमि ॥ १ ॥ अणुजाणह संथार बाहुवहाणेण वामपासेण । कुक्कुडपायपसारण अतरतु
पमज्जए भूमिं ॥ २ ॥ संकोडियसंडासा उव्वट्टते य कायपडिलेहा । दव्वाईअणुओग ऊसासनिरुंभणा लोए
॥ ३ ॥' इति त्रि' पठित्वा संकोचितपाणिर्वामबाहूपधानो वामपार्श्वेन शेते । यद्युद्वर्तना करोति तदा संस्ता-
रक शरीर च प्रतिलेखयेत् ॥ अथ शरीरचिन्तार्थमुत्तिष्ठति तदा शरीरचिन्ता कृत्वा ऐर्यापथिकीं प्रतिक्रम्य
एकवेल अणुजाणह प० इत्यादिगाथात्रय पठति । पुनः शेते । सुप्तस्य चेन्निद्रा नायाति तदा शुभध्यानेन
धर्मजागर्यां करोति । ततो रजन्याः पश्चिमप्रहरे उत्थाय देहचिन्तादिविधाय ऐर्यापथिकीं प्रतिक्रम्य कुसुमि-

णदुस्सुमिणराईपायच्छित्त चित्तविशोधनार्थं कायोत्सर्गं करोति शक्रस्तव च पठति । ततो मुखवस्त्रिका प्रतिलिख्य सामायिकदण्डकमुच्चार्य स्वाध्यायपर्यन्त करोति । पुनः शुभध्यानेन रात्रिशेषमतिवाहयति । ततः प्रतिक्रमणवेलाया प्राभातिक प्रतिक्रमण करोति । ततः पूर्ववत्सर्वं प्राभातिक कर्म विदध्यात् । जाते पौषधपारणावसरे इच्छा० भगवन् पोसहपारणमुहपत्तिं पडिलेहेमि । मुखवस्त्रिका प्रतिलिख्य क्षमा० द्वयपूर्वक भणति भगवन् पोसह पारउ भग० पोसह पारियउ । मुखवस्त्रिकापिहितवदनो भून्यस्तशीर्षः पौषधपारणगाथा' पठति यथा–'सागरचंदो कामो चंदवडिंसो सुदसणो धन्नो । जेहिं पोसहपडिमा न खंडिया जीवियतेवि ॥ १ ॥ जो गब्भवासभीओ तावुल्ललिओ महामुणी अभओ । उम्मुक्कमणिसुवन्नो पडिपुन्न पोसह कुणइ ॥ २ ॥ पोसइसुहे भावे असुहाइ खवेइ नत्थि सदेहो । छिंदइ नरनिरियगइं इह भणिय पोसह कुणइ ॥ ३ ॥ पोसहसामाइयसठियस्स जीवस्स जाइ जो कालो । सो सफलो बोधव्वो सेसो ससारफलहेऊ ॥४॥ चक्कवट्टित्तमिदत्त मुक्खो कालओ विक्खिओ । एवेअ पोसहस्सेव फल विंति महेसिणो ॥ ५ ॥' ततो नमस्कार भणित्वा सामायिकपारणमुखवस्त्रिका प्रतिलिख्य पूर्ववत्सामायिक पारयति । ततः पोषधपारणके साधुषु सत्सु नियतमतिथिसविभागो विधेय एव । इत्याहोरात्रिकपौषधविधिः ॥ सामायिक च द्विघट्यन्त नमस्कारजापप्रतिक्रमणादिभिः पूरयेत् । केचित्स्थूलमतयः परमेष्ठिमन्त्रपञ्चशतीजपान्त मुचते । तदनन्तर तत्पारयित्वा पुनः सामायिक गृह्णीयादिति रूढिः । इत्यावश्यके सामायिकयोजना संपूर्णा ॥

ओहीपडिलेहणा पडिलेहेमि । ततो वस्त्रकम्बलादि प्रतिलिख्य पुनः शुभध्यानेन तिष्ठति । समासायां कालवे-
लाया चतुर्विंशतिस्थण्डिलानि प्रतिलेखयति उच्चारप्रस्रवणार्थं । ततस्तद्दिवसानुसारेण सांवत्सरिक चातुर्मा
सिक पाक्षिक वा दैवसिक वा प्रतिक्रमण करोति । तदनन्तर साधुविश्रामणां करोति । ततः स्वाध्यायेन
निशाप्रथमप्रहरमतिवाहयति । ततः शरीरचिन्तां कृत्वा ऐर्यापथिकीं प्रतिक्रम्य मुखवस्त्रिका प्रतिलिख्य क्ष-
मा० द्वयपूर्वं भणति भग० राईसथारए सदिसावेमि राईसथारए ठाएमि इत्युक्त्वा शक्रस्तव पठति । तत.
सस्तारक शरीर च प्रमृज्य जानूपरि सस्तारकोत्तरपट्ट मीलयित्वा भूमौ सस्थाप्य । अणुजाणह निस्सीही
नमो खमासमणाण इत्युक्त्वा सस्तारकोपरि उपविशति । तत्र नमस्कारत्रय भणित्वा त्रिवेल चतुःशरण च
पठित्वा गाथात्रय त्रिः पठति यथा । 'अणुजाणह परमगुरू गुरुगुणरयणेहि भूसियशरीरा । बहुपडिपुन्ना पो-
रसि राईसथारए ठाएमि ॥ १ ॥ अणुजाणह सथारं बाहुवहाणेण वामपासेण । कुक्कुडपायपसारण अतरतु
पमज्जए भूमिं ॥ २ ॥ सकोडियसडासा उवट्टते य कायपडिलेहा । दव्वाईअणुओग ऊसासनिरुभणा लोए
॥ ३ ॥' इति त्रि' पठित्वा सकोचितपाणिर्वामबाहूपधानो वामपार्श्वेन शेते । यद्युद्वर्तना करोति तदा सस्ता-
रक शरीर च प्रतिलेखयेत् ॥ अथ शरीरचिन्तार्थमुत्तिष्ठति तदा शरीरचिन्ता कृत्वा ऐर्यापथिकीं प्रतिक्रम्य
एकवेल अणुजाणह प० इत्यादिगाथात्रय पठति । पुनः शेते । सुप्तस्य चेन्निद्रा नायाति तदा शुभध्यानेन
धर्मजागर्यां करोति । ततो रजन्याः पश्चिमप्रहरे उत्थाय देहचिन्तादिविधाय ऐर्यापथिकीं प्रतिक्रम्य कुसुमि-

ततः प्रतिक्रमणमध्ये यथायुक्त्या वन्दनकानि । स्वाध्यायकरणेपि वन्दनक कायोत्सर्गे च क्षामणे आलोचने गुरूपासनाया सर्वेष्वपि उत्तमार्थेषु वन्दनकदान । एकमुखवस्त्रिकाप्रतिलेखनेन त्रिर्द्वादशावर्तवन्दनक भवति । एकवेल द्वादशावर्तवन्दनकदाने आलोचन क्षामण प्रत्याख्यान क्रमेण विदध्यात् । वन्दनकादौ सर्वत्र ऐर्यापथिकीं प्रतिक्रमेत् । इत्यावश्यके वन्दनकयोजना संपूर्णा ॥

अथ प्रतिक्रमणम् ॥ यथा । गुर्वग्रे स्थापनाचार्याग्रे वा क्षमाश्रमणपूर्वं कथयति इच्छा० भग० इरियावहिय पडिक्कमामि यावत् अप्पाण वोसिरामि । चतुर्विंशतिस्तवचिन्तन पारयित्वा मुखेन चतुर्विंशतिस्तवन । 'चिइवदणमि तह वदणमि पडिक्कमणयमि सज्झाए । पडिलेहणाइ आहारसगहे तहय आलोए ॥ १ ॥ आगमपढणारमे लोए मलमुत्तमाइ उस्सग्गे । गमणागमणे भिक्खारियाइ आलोअणाकाले ॥ २ ॥ वसई उवहिज्झाणे आरमे लेवमाइए विहिए । कालग्गहणे सज्झायमाइपट्ठाणकालेय ॥ ३ ॥ अप्पडिलेहियमग्ग निसिसचरणे य वीसघणुगमणे । इरियावहिया साहूहिँ फासियचेघमाईहिँ ॥ ४ ॥' इति इर्यापथिकी ॥ ॥ अथ चैत्यवन्दनवन्दनक्षामण आलोचनकायोत्सर्गप्रत्याख्यानादिभिर्मिलितैः प्रतिक्रमणयुक्तिर्भण्यते । यथा । पूर्वं प्राभातिकप्रतिक्रमण यथा । 'इरियावहिया कुसमिण काउस्सग्गो गुरूणनमण च । पडिक्कमणगयण चिय सक्कच्छय कहण मह उवरिं ॥ १ ॥ सामाइयवडयकाउस्सग्गा चउवीसथयमि उस्सग्गो । सुयथयउस्सग्गो चिय सिद्धत्थय कहण मुहपत्ती ॥ २ ॥ वदणय आलोयण सथारुवरण सुत्तकहणाइ । वंदणय खामण चिय

घत्वा घरकनकआर्यां पठेत् । तत' शक्रस्तव पठित्वा । अरहत चेइयाण करेमि काउस्सग्ग अन्नत्थ० यावत् अप्पाण वोसिरामि । ततो नमस्कार चिचिन्त्य नमो अरिहताण इति पारयित्वा नमोर्हत्सिद्धा० इति कथयित्वा प्रस्तुतजिनस्तुतिमेका पठेत् । पुनश्चतुर्विंशति भणित्वा सव्वलोए अरिहत० वदणवत्तियाए जाव अप्पाण० पूर्ववत् । नमस्कार चिचिन्त्य नमस्कारेण पारयित्वा सर्वजिनस्तुतिभणन । तत' श्रुतस्तव पठित्वा सुअस्स भगवओ करेमि काउ० वदणव० जाव अप्पाण वो० पूर्ववचिन्तन श्रुतस्तुतिभणन। तत' सिद्धस्तवपठन ततो वेयावच्चगराण सतिगराण समदिट्ठिसमाहिगराण करेमि काउस्सग्ग अन्नत्थ ऊ० यावदप्पाण वो० पूर्ववचिन्तन नमस्कारेण पारयित्वा नमोर्हत्सिद्ध० पूर्वक वैयावृत्यकरस्तुतिपाठः । पुनरुपविश्य शक्रस्तवपाठः । ततश्चैत्यगाथासाधुगाथापाठ' ततो नमोर्हत्सिद्धा० कथनपूर्वं प्रस्तुतजिनस्तोत्रपाठः ततः जयवीयरायगाथापठन तत आचार्योपाध्यायगुरुसाधुवन्दन । इत्युत्कृष्टचैत्यवन्दना । इत्यावश्यके शक्रस्तवचतुर्विंशतिस्तवयोजना ॥

अथ वन्दनकयोजना ॥ यथा । तत्र वन्दनक द्वादशावर्तं । तदुक्त पूर्वं । 'पडिक्कमणे सज्झाए काउस्सग्गा वराहपाहुणए । आलोअणपडिसुणणे उत्तम अट्ठेय वदणय ॥ १ ॥' तत्र सामान्यवन्दनकं उत्कृष्टचैत्यवन्दना विधाय मुखवस्त्रिकां प्रतिलिख्य द्वादशावर्तवदन दद्यात् । ततः इच्छा० भगव० देवसिय आलोएमि० पुनः द्वादशावर्तवन्दनक दत्वा इच्छा० भग० देवसिय खामेमि० इति क्षामणं पुनः द्वादशावर्तवन्दन दत्वा प्रत्याख्यानोच्चार कुर्यात् । तत आचार्योपाध्यायगुरुसाधुवन्दन चैत्यवन्दनाभावेपि गुरुभक्त्यर्थं वन्दनक दत्वा ।

ततः प्रतिक्रमणमध्ये यथायुक्त्या वन्दनकानि। स्वाध्यायकरणेपि वन्दनक कायोत्सर्गे च क्षामणे आलोचने गुरूपासनाया सर्वेष्वपि उत्तमार्थेषु वन्दनकदान। एकमुखवस्त्रिकाप्रतिलेखनेन त्रिर्द्वादशावर्तवन्दनक भवति। एकवेल द्वादशावर्तवन्दनकस्थाने आलोचन क्षामण प्रत्याख्यान क्रमेण विदध्यात्। वन्दनकादौ सर्वत्र ऐर्यापथिकीं प्रतिक्रमेत्। इत्यावश्यके वन्दनकयोजना संपूर्णा॥

अथ प्रतिक्रमणम्॥ यथा। गुर्वग्रे स्थापनाचार्याग्रे वा क्षमाश्रमणपूर्वं कथयति इच्छा० भग० इरियावहिय पडिक्कमामि यावत् अप्पाण वोसिरामि। चतुर्विंशतिस्तवचिन्तन पारयित्वा मुखेन चतुर्विंशतिस्तवन। 'चिइवदणमि तह वदणमि पडिक्कमणयमि सज्झाए। पडिलेहणाइ आहारसगहे तहय आलोए॥ १॥ आगमपढणारंभे लोए मलमुत्तमाइ उस्सग्गे। गमणागमणे भिक्खारियाइ आलोअणाकाले॥ २॥ वसई उवहिज्झाणे आरंभे लेवमाहए विहिए। कालग्गहणे सज्झायमाइपट्ठाणकालेय॥ ३॥ अप्पडिलेहियमग्ग निसिसचरणे य वीसमणुगमणे। इरियावहिया साहूहिं फासियव्वेवमाईहिं॥ ४॥' इति ईर्यापथिकी॥ ॥ अथ चैत्यवन्दनवन्दनक्षामण आलोचनकायोत्सर्गप्रत्याख्यानादिभिर्मिलितैः प्रतिक्रमणयुक्तिर्भण्यते। यथा। पूर्वं प्राभातिकप्रतिक्रमण यथा। 'इरियावहिया कुसमिण काउस्सग्गो गुरूणनमण च। पडिक्कमणगयण चिय सक्कच्छय कहण मह उवरिं॥ १॥ सामाइयदडयकाउस्सग्गा चउवीसययमि उस्सग्गो। सुययथयउस्सग्गो विय सिद्धत्थय कहण मुहपत्ती॥ २॥ वदणय आलोयण सघारुखरण सुत्तकहणाइ। वदणय खामण चिय

कृत्वा वरकनकआर्यां पठेत्। ततः शक्रस्तव पठित्वा। अरहंत चेइयाणं करेमि काउस्सग्गं अन्नत्थ० यावत् अप्पाणं वोसिरामि। ततो नमस्कार विचिन्त्य नमो अरिहंताणं इति पारयित्वा नमोर्हत्सिद्धा० इति कथयित्वा प्रस्तुतजिनस्तुतिमेकां पठेत्। पुनश्चतुर्विंशति भणित्वा सव्वलोए अरिहंत० वंदणवत्तियाए जाव अप्पाणं० पूर्ववत्। नमस्कार विचिन्त्य नमस्कारेण पारयित्वा सर्वजिनस्तुतिभणन। ततः श्रुतस्तव पठित्वा सुअस्स भगवओ करेमि काउ० वंदणव० जाव अप्पाणं वो० पूर्ववच्चिन्तन श्रुतस्तुतिभणन। तत सिद्धस्तवपठन ततो वेयावच्चगराणं संतिगराणं सम्मदिट्ठिसमाहिगराणं करेमि काउस्सग्ग अन्नत्थ ऊ० यावदप्पाणं वो० पूर्ववच्चिन्तन नमस्कारेण पारयित्वा नमोर्हत्सिद्ध० पूर्वक वैयावृत्यकरस्तुतिपाठः। पुनरुपविश्य शक्रस्तवपाठः। ततश्चैत्यगाथासाधुगाथापाठः ततो नमोर्हत्सिद्धा० कथनपूर्वं प्रस्तुतजिनस्तोत्रपाठः ततः जयवीयरायगाथापठन तत आचार्योपाध्यायगुरुसाधुवन्दन। इत्युत्कृष्टचैत्यवन्दना। इत्यावश्यके शक्रस्तवचतुर्विंशतिस्तवयोजना॥

अथ वन्दनकयोजना॥ यथा। तत्र वन्दनकं द्वादशावर्तं। तदुक्तं पूर्वं। 'पडिक्कमणे सज्झाए काउस्सग्गा वराहपाहुणए। आलोअणपडिसुणणे उत्तम अट्ठेय वंदणय॥ १॥' तत्र सामान्यवन्दनकं उत्कृष्टचैत्यवन्दनां विधाय मुखवस्त्रिका प्रतिलिख्य द्वादशावर्तवन्दनं दद्यात्। ततः इच्छा० भगव० देवसिय आलोएमि० पुनः द्वादशावर्तवन्दनकं दत्त्वा इच्छा० भग० देवसिय खामेमि० इति क्षामणं पुनः द्वादशावर्तवन्दनं दत्त्वा प्रत्याख्यानोच्चारं कुर्यात्। तत आचार्योपाध्यायगुरुसाधुवन्दनं चैत्यवन्दनाभावेपि गुरुभक्त्यर्थं वन्दनकं दत्त्वा।

तत. प्रतिक्रमणमध्ये यथायुक्त्या वन्दनकानि । स्वाध्यायकरणेपि वन्दनक कायोत्सर्गे च क्षामणे आलोचने गुरूपासनाया सर्वदपि उत्तमार्थेषु वन्दनकदान । एकमुखवस्त्रिकाप्रतिलेखनेन त्रिर्द्वादशावर्तवन्दनक भवति । एकवेल द्वादशावर्तवन्दनकदाने आलोचन क्षामण प्रत्याख्यान क्रमेण विदध्यात् । वन्दनकादौ सर्वत्र ऐर्यापथिकीं प्रतिक्रमेत् । इत्यावश्यके वन्दनकयोजना संपूर्णा ॥

अथ प्रतिक्रमणम् ॥ यथा । गुर्वग्रे स्थापनाचार्याग्रे वा क्षमाश्रमणपूर्वं कथयति इच्छा० भग० इरियावहिय पडिक्कमामि यावत् अप्पाण वोसिरामि । चतुर्विंशतिस्तवचिन्तन पारयित्वा मुखेन चतुर्विंशतिस्तवन । 'चिइयवंदणमि तह वंदणमि पडिक्कमणयमि सज्झाए । पडिलेहणाइं आहारसगहे तहय आलोए ॥ १ ॥ आगमपढणारंभे लोए मलमुत्तमाइ उस्सग्गे । गमणागमणे भिक्खारियाइ आलोअणाकाले ॥ २ ॥ वसई उवहिझाणे आरंभे लेवमाइए विहिए । कालग्गहणे सज्झायमाइपट्ठाणकालेय ॥ ३ ॥ अप्पडिलेहियमग्ग निसिसचरणे य वीसवणुगमणे । इरियावहिया साहूहिं फासियव्वेवमाईहिं ॥ ४ ॥' इति इर्यापथिकी ॥ ॥ अथ चैत्यवन्दनवन्दनक्षामण आलोचनकायोत्सर्गप्रत्याख्यानादिभिर्मिलितैः प्रतिक्रमणयुक्तिर्भण्यते । यथा । पूर्वं प्राभातिकप्रतिक्रमणं यथा । 'इरियावहिया कुसमिण काउस्सग्गो गुरूणनमण च । पडिक्कमणगयण चिय सपाच्छय कहण मह उवरिं ॥ १ ॥ सामाइयदडयकाउस्सग्गा चउवीसथयमि उस्सग्गो । सुयथयउस्सग्गो चिय सिद्धत्थय कहण मुहपत्ती ॥ २ ॥ वंदणय आलोयण सधारुचरण सुत्तकहणाइ । वंदणय खामण चिय

पडिलेहण संदिसावेमि पडि० करेमि इत्युक्त्वा मुखवस्त्रिकां प्रतिलेखयेत्। अत्र—'मुहपत्ति चोलपट्टा कप्प-तिग तइय चेव रयहरण। संथारुत्तरपट्टो दसपोहा उग्गए सूरे ॥ १ ॥ बहुवेल पडिलेहण अंगोवहिवसहि इरियसज्झाय। उपओगकाउसग्गो मुनिगुरुवयणं च गुरुनमण ॥ २ ॥' ततो मुखवस्त्रिकाप्रतिलेखनानन्तर क्षमा० द्वयपूर्वक वदेत् भग० अगपडिलेहण संदि० अगप० करेमि। ततः स्थापनाचार्यं चोलपट्ट कल्पत्रय रजोहरण प्रतिलेखयेत्। एतेषां प्रतिलेखन साधुप्रतिलेखनाचेष्टितादवसेय। ततः क्षमाश्रमण दत्वा इच्छा० भगव० उपधिमुहपत्तिं पडिलेहेमि। ततः क्षमा० द्वयपूर्वक कथयेत् इच्छा० भग० उपधि संदिसावउ उपधि पडिलेहउ इत्युक्त्वा संस्तारकोत्तरच्छदादिप्रतिलेखयेत्। क्षमा० द्वयपूर्वं भणति भग० वसति संदिसावउँ वसति पडिलेखउ इत्युक्त्वा वसतिमात्रकप्रभृति दण्डप्रोञ्छनेन मार्जयेत्। तत ऐर्यापथिकीं प्रतिक्रम्य गुर्वग्रे क्षमा० द्वयपूर्वं वदेत् इच्छा० भग० सज्झाय संदिसावेमि। नमस्कार पठित्वा दशवैकालिकादिमाध्ययनद्वय एकमध्ययनं वा। अथवा जयइ जगजी० गाथापञ्चविंशतिं गाथापञ्चकं वा उपविष्ट पठेत्। ततः क्षमा० पूर्वं भणति भग० उपयोग करेमि उपयोगस्स करावणत्थ करेमि काउस्सग्ग० अन्नत्थ० यावत् अप्पाण वोसि० कायोत्सर्गः नमस्कारचिन्तनं पारयित्वा नमस्कारभणन ततः इच्छाकारेण संदिसह साधुभिरित्युक्ते गुरुः कथयति लाभु। पुनः साधवः कथयन्ति भग० कहलेसह गुरु० जह गहिय पुव्वसाहूहिं। पुनः साधु कथयति इच्छ आवस्सियाए जस्स विजुग्गस्सि। ततः क्रमेण साधुवन्दन ततो धर्मव्याख्यान पठनपाठनकर्म साधवः

कुर्वन्ति । समाप्ते पादोनप्रहरे पुनः प्रतिलेखना तस्याः कालसूचन यथा सर्वत्र प्राग्वत् विशेषस्तूच्यते । पुरुष प्रमाणमस्याः सा पौरुषी छाया । कथं कर्कसङ्क्रान्तेः पूर्वाह्णे अपराह्णे वा यदा शरीरप्रमाणा छाया भवति तदा सर्वदिनेषु पौरुषी यथा । पुरुषस्योर्ध्वस्य दक्षिणकर्णनिवेशितार्कबिम्बस्य दक्षिणायनाद्यदिने । यदा तु छाया द्विपदी भवति तदा पौरुषी यथा । 'आसाढे मासे दुपया पोसे मासे चउप्पया चित्ता । सोएसु मासेसु तिपया हवइ पोरसी ॥ १ ॥' हानिवृद्धित्वे एव । अंगुल सत्तरत्तेण पक्खेण तु दुरगुल । वड्ढए हायए वावि मासेण चतुरंगुलं ॥ २ ॥ साद्धपयणेणमित्यत्र पादोनप्रहरेणाप्यविकारोऽतस्तत्र पौरुषीछायोपरि प्रक्षेप । 'जिह्वामूले आसाढसावणे छहिं अगुलेहिं पडिलेहा । अट्ठाहिं बीयतयमी तइए दस अट्ठहिं चउत्थे ॥ १ ॥' सार्धपौरुषत्वे एष । 'पोसे तणुछायाए नवहिं एएहिं तु पोरसी सड्ढा । ताविक्किक्कहाणी जावा साढे पया तिन्नि ॥ १ ॥' पूर्वार्धे अग्रे वक्ष्यमाणोपि प्रमाणविशेषप्रस्तावादेव विज्ञेय । 'पोसेवि हत्थछाया बारस अगुलपमाण पुरिमड्ढे । मासि दुअगुलहाणी आसाढे निट्ठिआ सघा ॥ १ ॥' सुखावबोधार्थं स्थापना चैषा । द्वादशारयन्त्रकन्यासः[1] ॥ तदनन्तर क्षमा० पूर्वं साधवः कथयन्ति । भयव बहुपडिपुन्नापोरसी साहवो वय जक्षा होइ । इत्युक्त्वा मुखवस्त्रिका प्रतिलेख्य सर्वं मृन्नारिकेलकाष्ठालाबुमय पात्रनिचय प्रतिलेखयेत् । ततश्चैत्य परिपाटीप्रभृतिकर्म विधाय ऐर्यापथिकीं प्रतिक्रम्य पारणा मुखवस्त्रिका प्रतिलेखयेत् । तत इति कथयेत् ।

---

१ यन्त्राकृतिरस्मिन्नपेऽन्यत्र पोषितास्ति ।

पडिलेहण सदिसावेमि पडि० करेमि इत्युक्त्वा मुखवस्त्रिकां प्रतिलेखयेत्। अत्र—'मुहपत्ति चोलपट्टो कप्प-तिग तहय चेव रयहरणं। संथारुत्तरपट्टो दसपोहा उग्गए सूरे ॥ १ ॥ बहुवेल पडिलेहण अंगोवट्ठिवसहि इरियसज्झाय। उवओगकाउसग्गो मुनिगुरुवयणं च गुरुनमणं ॥ २ ॥' ततो मुखवस्त्रिकाप्रतिलेखनानन्तरं क्षमा० द्वयपूर्वकं वदेत् भग० अंगपडिलेहण सदि० अंगप० करेमि । ततः स्थापनाचार्यं चोलपट्टं कल्पत्रयं रजोहरणं प्रतिलेखयेत्। एतेषां प्रतिलेखनं साधुप्रतिलेखनाचेष्टितावघसेय। ततः क्षमाश्रमणं दत्वा इच्छा० भगव० उपधिमुहपत्तिं पडिलेहेमि। ततः क्षमा० द्वयपूर्वकं कथयेत् इच्छा० भग० उपधि सदिसावउं उपधि पडिलेहउं इत्युक्त्वा संस्तारकोत्तरच्छदादिप्रतिलेखयेत्। क्षमा० द्वयपूर्वं भणति भग० वसतिं सदिसावउँ वसतिं पडिलेहउं इत्युक्त्वा वसतिमात्रकप्रभृति दण्डप्रोञ्छनेन मार्जयेत् । तत ऐर्यापथिकीं प्रतिक्रम्य गुर्वग्रे क्षमा० द्वयपूर्वं वदेत् इच्छा० भग० सज्झाय सदिसावेमि। नमस्कारं पठित्वा दशवैकालिकादिमाध्ययनद्वयं एकमध्ययनं वा। अथवा जयइ जगजी० गाथापञ्चविंशतिं गाथापञ्चकं वा उपविष्टः पठेत् । तत. क्षमा० पूर्वं भणति भग० उपयोग करेमि उपयोगस्स करावणत्थं करेमि काउस्सग्ग० अन्नत्थ० यावत् अप्पाणं वोसि० कायोत्सर्गः नमस्कारचिन्तनं पारयित्वा नमस्कारभणनं ततः इच्छाकारेण सदिसह साधुभिरित्युक्ते गुरु कथयति लाभु। पुनः साधवः कथयन्ति भग० कहलेसह गुरु० जह गहियं पुव्वसाहूहिं। पुन' साधु' कथयति इच्छं आवस्सियाए जस्स थिजुग्गत्ति। ततः क्रमेण साधुवन्दनं ततो धर्मव्याख्यानं पठनपाठनकर्म साधव.

कुर्वन्ति। समासे पादोनप्रहरे पुनः प्रतिलेखना तस्याः कालसूचन यथा सर्वत्र प्राग्वत् विशेषस्तूच्यते। पुरुष प्रमाणमस्याः सा पौरुषी छाया। कथं कर्कसङ्क्रान्तेः पूर्वाह्णे अपराह्णे वा यदा शरीरप्रमाणा छाया भवति तदा सर्वदिनेषु पौरुषी यथा। पुरुषस्योर्ध्वस्य दक्षिणकर्णनिवेशितार्कबिम्बस्य दक्षिणायनाद्यदिने। यदा तु छाया द्विपदी भवति तदा पौरुषी यथा। 'आसाढे मासे दुपया पोसे मासे चउप्पया भिसा। सोएसु मासेसु तिपया हवइ पोरसी॥ १॥' हानिवृद्धिस्त्वे एव। अगुल सत्तरत्तेण पक्खेण तु दुरगुल। वड्ढए हावए वावि मासेण चतुरगुल॥ २॥ सार्धप्रहरेणेणमित्यत्र पादोनप्रहरेणाप्यधिकारोऽतस्तत्र पौरुषीछायोपरि प्रक्षेप्य। 'जिह्वामूले आसाढसावणे छहिं अगुलेहिं पडिलेहा। अट्ठाहिं बीयतयमी तइए दस अट्ठहिं चउत्थे॥ १॥' सार्धपौरुषत्वे एव। 'पोसे तणुछायाए नवहिं एएहिं तु पोरसी सड्ढा। तावित्तिकाहाणी जावा साढे पया तिन्नि॥ १॥' पूर्वार्धे अग्रे वक्ष्यमाणोपि प्रमाणविशेषप्रस्तावादेव विज्ञेय। 'पोसेवि हत्थछाया बारस अगुलपमाण पुरिमड्ढे। मासि दुअगुलहाणी आसाढे निट्ठिआ सवा॥ १॥' सुखावबोधार्थं स्थापना चैषा। द्वादशारंयत्रकन्यासः॥ तदनन्तर क्षमा० पूर्वं साधवः कथयन्ति। भयव बहुपडिपुन्नापोरसी साहवो उय जहा होह। इत्युक्त्वा मुखवस्त्रिका प्रतिलेख्य सर्वं मृन्नारिकेलकाष्ठालाबुमय पात्रनिचय प्रतिलेखयेत्। ततश्चैत्यपरिपाटीप्रभृतिकर्म विधाय ऐर्यापथिकीं प्रतिक्रम्य पारणा मुखवस्त्रिका प्रतिलेखयेत्। तत इति कथयेत्।

१ अस्याकृतिरस्मिन्प्रतेऽन्यत्र योजितास्ति।

घता वैरोट्याप्रभृतीनां कायोत्सर्गस्तुतयः। ततो नमस्कारपूर्वं मुखवस्त्रिकाप्रतिलेखन वद्नक। तत इच्छामो-णुसट्ठिय नमोऽर्हत्सिद्धा० पूर्वकं। 'नमोस्तु वर्धमानाय स्पर्धमानाय कर्मणा। तज्जयावाप्तमोक्षाय परोक्षाय कुतीर्थिना ॥१॥ येषां विकचारविन्दराज्याज्यायः क्रमकमलावलिं दधत्या। सदृशैरिति सगत प्रशस्य कथित सन्तु शिवाय ते जिनेन्द्राः ॥ २ ॥ कषायतापार्जितजन्तुनिर्वृतिं करोतु यो जैनमुखाम्बुदोद्गतः। स शुक्रमासोद्भववृष्टिसन्निभो दधातु तुष्टिं मयि विस्तरो गिरां ॥ ३ ॥' इति स्तुतित्रयपाठः। शक्रस्तवपाठः। स्तोत्रकथन आचार्योपाध्यायगुरुसाधुनमन दैवसिकप्रायश्चित्तविशोधनाकायोत्सर्गः चतु० चतुष्टयचिन्तन चतु० भणन क्षमा० द्वयपूर्वं भणति भग० सज्झाय सदिसावेमि सज्झायं करेमि इत्युक्त्वा नमस्कारत्रयपाठः। ततः क्षुद्रोपद्रवोपशमनार्थं कायोत्सर्गः चतुष्टयचिन्तन मुखेन चतु० भणन०। ततः प्रव्रज्याविधानपाठः। इति दैवसिकप्रतिक्रमणविधिः ॥

अथ पाक्षिके तु। 'मुहपत्ती वदणय संबुद्धाखामण तहा लोए। वदणपत्तेय खामणाणि वदणय सुत्त च ॥ १ ॥ सुत्तं उब्भट्ठाण उस्सग्गो पुत्तिवदण तहय। पज्जतिय खामणय तह चउरो त्थोभवदणय ॥ २ ॥' प्रतिक्रमणसूत्रकथन यावत् दैवसिकप्रतिक्रमणवत्। ततः क्षमा० पूर्वक इति वदेत् भग० पक्खियमुहपत्तिप पडिलेहेमि इत्युक्त्वा मुखवस्त्रिका प्रतिलेखयेत्। ततो वदनक। ततः इच्छा० भग० संबुद्धाखामणेण अब्भुट्ठिओमि अब्भिंतरपक्खिय खामेमि। इत्थ खामेमि पक्खिय ज किंचि अपत्तिय पर० इत्यादि यावत् तस्स

मिच्छामि दुक्कडं । तत ऊर्ध्वीभूय भग० पक्खिअ आलोएमि इत्थं आलोएमि पक्खियं जो मे० इत्यादि । तदनन्तर गुरुः कथयति चउत्थेण पडिक्कमइ इच्छाकारि जीणिआलोयउ तेहरिहि एकउपवास लेखइ तपश्चरणु एकु उपवासु । अथवा पिआयिल अथवा ३ निवी अथवा ४ एकासणा अथवा २ सहस्र सज्झायए तलइ तपश्चरणि करी । यथाशक्ति पक्षदिवसमाहिं प्रवेश करिज्जउ । पुनर्वन्दनक । तत ऊर्ध्वीभूय इति वदेत् देवसिय आलोइय वइक्कत प्रत्येकखामणेणं अब्भुट्ठिओमि अभिंतरपक्खिअय खामेमि इत्युक्त्वा पूर्वं गुरुः स्थापनाचार्यं क्षामयति इच्छा० भग० पक्खिय खामेमि इत्थ खामेमि पक्खिय ज किंचि इति दण्डकमुक्त्वा पुनः क्षमा० पूर्वं भग० सुखतपु । पुनः क्षमाश्रमणेन भग० सुखपाक्षिकु । पुनः क्षमाश्रमणेन भग० पक्षदिवसमाहि अभक्तिआसातना मनवचनकायखण्डनाविराधना कीधी हुइए तस्स० । ततः शिष्याः गुरुं ज्येष्ठादिअनुक्रमेण क्षमयन्ति । शिष्यो यदा भणति भग० पक्खिय खामेमि तदा गुरुः क० अहमवि खामेमि तुब्भे । शिष्यः क्षामणदण्डक कथयति तदा गुरुः क० ज किंचि अपत्तिय परपत्तिय अविणया सारिया वारिया चोइया पडिचोइया तस्स० । यदा शिष्यः क्षमा० पूर्वं सुखत० पाक्षिकइतिक० तदा गुरुः क० देवगुरुप्रसादेन । यदा शिष्य, क्षमाश्रमणेन भग० पक्षदिवसमाहि अभक्तिआसातना इत्यादिक० तदा गुरुः क० पक्षदिवसमाहि अपत्यउअ समाधान उपजाव्यउ तस्स० । एव ज्येष्ठकनिष्ठानुक्रमेण यतिश्राद्धाना क्षमितिक्षामणा । ततो गुरुः कथयति इच्छाकारेण चउरासीलक्खजीवयोनिमध्ये पृथ्वीकायअप्कायतेजस्कायवायुकायवनस्प-

वता वैरोट्याप्रभृतीनां कायोत्सर्गस्तुतयः। ततो नमस्कारपूर्वं मुखवस्त्रिकाप्रतिलेखन वंदनक। तत इच्छामो-
णुसट्ठिय नमोर्हत्सिद्धा० पूर्वकं। 'नमोस्तु वर्धमानाय स्पर्धमानाय कर्मणा। तज्जयावाप्तमोक्षाय परोक्षाय कुती-
र्थिनां ॥ १ ॥ येषा विकचारविन्दराज्याज्याय' क्रमकमलावलिं दधत्या। सदृशैरिति संगत प्रशस्य कथित सन्तु
शिवाय ते जिनेन्द्राः ॥ २ ॥ कषायतापार्जितजन्तुनिर्वृतिं करोतु यो जैनमुखाम्बुदोद्गतः। स शुक्रमासो-
द्भववृष्टिसंनिभो दधातु तुष्टिं मयि विस्तरो गिरां ॥ ३ ॥' इति स्तुतित्रयपाठः। शक्रस्तवपाठः। स्तोत्रकथन
आचार्योपाध्यायगुरुसाधुनमन दैवसिकप्रायश्चित्तविशोधनाकायोत्सर्गः चतु० चतुष्टयचिन्तन चतु० भणन
क्षमा० द्वयपूर्वं भणति भग० सज्झाय संदिसावेमि सज्झायं करेमि इत्युक्त्वा नमस्कारत्रयपाठः। ततः
क्षुद्रोपद्रवोपशमनार्थं कायोत्सर्गः चतुष्टयचिन्तन मुखेन चतु० भणन०। ततः प्रव्रज्याविधानपाठः। इति
दैवसिकप्रतिक्रमणविधिः॥

अथ पाक्षिके तु। 'मुहपत्ती वंदणय संबुद्धाखामणं तहा लोए। वंदणपत्तेय खामणाणि वंदणय सुत्त च
॥ १ ॥ सुत्त अब्भुट्ठाण उस्सग्गो पुत्तिवंदण तहय। पज्जतिय खामणय तह चउरो त्थोभवंदणय ॥ २ ॥' प्रति-
क्रमणसूत्रकथन यावत् दैवसिकप्रतिक्रमणवत्। ततः क्षमा० पूर्वक इति वदेत् भग० पक्खियमुहपत्तिय प
डिलेहेमि इत्युक्त्वा मुखवस्त्रिकां प्रतिलेखयेत्। ततो वंदनक। ततः इच्छा० भग० संबुद्धाखामणेण अब्भुट्ठि-
ओमि अब्भिंतरपक्खियं खामेमि। इत्थं खामेमि पक्खिय जं किंचि अपत्तिय पर० इत्यादि यावत् तस्स

पक्खियं जो मे० इत्यादि।
मिच्छामि दुक्कड। तत ऊर्ध्वीभूय भग० पक्खिअ आलोएमि इत्थ आलोएमि पक्खियं जो मे० इत्यादि। तवनन्तर गुरुः कथयति चउत्थेण पडिक्कमह इच्छाकारि जीणिआलोयउ तेहरिहि एकउपवास लेखइ तपश्चरणु एकु उपवासु। अथवा बिआंबिल अथवा ३ निवी अथवा ४ एकासणा अथवा २ सहस्र सज्झायए तलइ तपश्चरणि करी। यथाशक्ति पक्षदिवसमाहिं प्रवेश करिज्जउ। पुनर्वन्दनकं। तत ऊर्ध्वीभूय इति वदेत् देव-सिय आलोइय वइक्कत प्रत्येकखामणेण अब्भुट्ठिओमि अब्भिंतरपक्खियं खामेमि इत्युक्त्वा पूर्वं गुरुः स्था-पनाचार्यं क्षामयति इच्छा० भग० पक्खियं खामेमि इत्थ खामेमि पक्खियं जं किंचि इति दण्डकमुक्त्वा पुनः क्षमा० पूर्वं भग० सुखतपु। पुनः क्षमाश्रमणेन भग० सुखपाक्षिकु। पुन. क्षमाश्रमणेन भग० पक्षदि-वसमाहि अभक्तिआसातना मनवचनकायखण्डनाविराधना कीधी हुइए तस्स०। ततः शिष्याः गुरुं ज्ये-ष्ठादिअनुक्रमेण क्षमयन्ति। शिष्यो यदा भणति भग० पक्खियं खामेमि तदा गुरुः क० अहमवि खामेमि तुम्भे। शिष्य' क्षामणदण्डक कथयति तदा गुरुः क० जं किंचि अपत्तिय परपत्तिय अविणया सारिया वारिया चोइया पडिचोइया तस्स०। यदा शिष्यः क्षमा० पूर्वं सुखत० पाक्षिकइतिक० तदा गुरुः क० देवगुरुप्रसादेन। यदा शिष्य' क्षमाश्रमणेन भग० पक्षदिवसमाहि अभक्तिआसातना इत्यादिक० तदा गुरुः क० पक्षदिव-समाहि अमलउअ समाधान उपजाव्यउ तस्स०। एवं ज्येष्ठकनिष्ठानुक्रमेण यतिश्राद्धानां क्षमितिक्षामणा। ततो गुरुः कथयति इच्छाकारेण चउरासीलक्खजीवयोनिमध्ये पृथ्वीकायअप्कायतेजस्कायवायुकायवनस्प-

प्रथमे यामे साधु कथयति भग० बहुपडिपुन्ना पोरसी राइसथारए ठामि । मुखवस्त्रिकां प्रतिलिख्य शक्रस्तव पठेत् । मध्यरीत्या चैत्यवन्दनक ॥ ॥ श्राद्धानां व्यग्रत्वे कदाचित्त प्रतिक्रमणसामग्री भवति तदा प्रभातसध्ययोः श्राद्धा ऐर्यापथिकीं प्रतिक्रम्य उत्कृष्टचैत्यवन्दनेन देववन्दन विधाय गुरोरग्रे मुखवस्त्रिका प्रतिलिख्य वन्दनमालोचनं प्रत्याख्यान कुर्वन्ति ज्ञानपूजारात्रिकमङ्गलप्रदीपान्ते श्रुतकायोत्सर्ग यथा । तमतिमिरपडलविद्धसणस्स इत्यादिश्रुतस्तव पठित्वा पूर्ववत् श्रुतकायोत्सर्गं नमस्कार स्मृत्वा पारयित्वा श्रुतस्तुतिकथन । ततः 'निव्वुइपसासणयं जयइ सया सव्वभावदेसणय । कुसमयमयनासणय जिणदवरवीरसासणय ॥ १ ॥' इत्यावश्यकोक्तप्रतिक्रमणयोजना ॥ ॥ अथ कायोत्सर्गयोजना । तत्र कायोत्सर्गं जिनचैत्यश्रुततीर्थज्ञानदर्शनचारित्रसमस्तपूआराधनार्थं क्रियमाणः कायोत्सर्गः वदणवत्तिया इत्यादिपूर्वक करणीयः । प्रायश्चित्तविशोधनार्थं उपद्रवनिवारणार्थं श्रुतदेवताराधनार्थं समस्तचतुर्णिकायदेवताराधनार्थं वदणवत्तियाए इत्यादि न करणीय किंतु अन्नत्थ० इत्याद्येव वाच्य । तथाच ऐर्यापथिकी कायोत्सर्गः सर्वत्रापि एकचतुर्विंशतिस्तवमय प्रायश्चित्तविशोधनार्थं क्षुद्रोपद्रवोपशमनार्थं चतुर्णिकायदेवताराधनार्थं इष्टार्हत्प्रणमनार्थं कायोत्सर्गास्ते चतुश्चतु० मयाः कायोत्सर्गे चतु० चिन्तन । वन्दे सुनिम्मलयरा इतिपर्यन्त ये च उत्कृष्टदेववन्दने श्रुतदेवताद्याराधने सत्युत्तराः कायोत्सर्गाः ये च स्वाध्यायोपगतास्ते सर्वे एकनमस्कारचिन्तनरूपा. प्रतिक्रमणमध्यगताः कायोत्सर्गास्तत्रैव निवेदिताः । अन्ये च ये अभिग्रहैः साधुभिः कायोत्सर्गाः क्रियन्ते समनीपितचतु०

नमस्काराभिग्रहचिन्तनरूपाः । तथा सम्यक्त्वारोपणनन्दीयोगोद्वहनोद्देशादिषु ये कायोत्सर्गास्ते एकचतु० चिन्तनरूपाः । इत्यावश्यके कायोत्सर्गयोजना ॥ ॥ अथ प्रत्याख्यान । तत्र दशविधप्रत्याख्यानानि । उग्गए सूरे नवकारसहियं पच्चक्खाहि चउव्विहंपि आहारं असणं पाणं खाइमं साइमं अन्नत्थणाभोगेणं सहसागारेणं विगइसेसिआओ पच्चक्खाहि अन्न० सह० लेवालेवेणं गिहत्थसंसट्ठेणं उक्खित्तविवेगेणं पडुच्चमक्खेणं पारिट्ठावणियागारेणं महत्तरागारेणं सव्वसमाहिवत्तियागारेणं बिआसणं पच्चक्खा० दुविहंपि आहारं असणं खाइमं अन्नत्थ० सह० सागारियागारेणं आउंटणपसारणेणं गुरुअब्भुट्ठाणेणं पारि० मह० सव्व० द्रव्यसचित्तदेसावगासियं भोगं परिभोगं पच्च० अन्न० सह० मह० सव्व० वोसिरइ २ पोरसियं पच्च० उग्गए सूरे चउ० अ० पा० खा० सा० अन्न० सह० पच्छन्नकालेणं दिसामोहेणं साहुवयणेणं सव्व० विगइसेसियाउ पच्च० अन्न० सह० लेवा० गिहत्थ० उक्खि० पडुच्चमक्खिएणं पारि० मह० सव्वसमा० एकासणं पच्च० त्रिविहंपि आहारं असणं खाइमं साइमं अन्नत्थ० सह० सागा० आउ० गुरु० पारि० मह० सव्व० द्रव्यसचित्तदेसावगासियं भोगपरिभोगं पच्चक्खाहि अन्न० सह० मह० सव्व० वोसिरामि ४ साढपोरसहियं पच्च० उग्गए सूरे चउ० असणं ४ अन्नत्थ० सह० पच्छ० दिसा० साहु० सव्व० निव्विगइयं पच्च० अ० सहसा० लेवा० गिहत्थ० उक्खित्त० पडु० पारि० मह० सव्व० एकासणं पच्च० त्रिविहं० अ० खा० सा० अन्न० सह० सागा० आउ० गुरु० पारि० मह० सव्व० द्रव्यसचित्तनियमु० देसा० भोग० अन्न० सह० मह० सव्व० वोसिरइ ६ सूरेउग्गे

प्रथमे यामे साधुः कथयति भग० बहुपडिपुन्ना पोरसी राइसंथारए ठामि । मुखवस्त्रिका प्रतिलिख्य शक्रस्तव पठेत् । मध्यरीत्या चैत्यवन्दनक ॥ ॥ श्राद्धाना व्यग्रत्वे कदाचिन्न प्रतिक्रमणसामग्री भवति तदा प्रभातसंध्ययोः श्राद्धाः ऐर्यापथिकीं प्रतिक्रम्य उत्कृष्टचैत्यवन्दनेन देववन्दन विधाय गुरोरग्रे मुखवस्त्रिकां प्रतिलिख्य वन्दनमालोचनं प्रत्याख्यान कुर्वन्ति ज्ञानपूजारात्रिकमङ्गलप्रदीपान्ते श्रुतकायोत्सर्गं यथा । तमतिमिरपडलविद्धंसणस्स इत्यादिश्रुतस्तव पठित्वा पूर्ववत् श्रुतकायोत्सर्गः नमस्कार स्मृत्वा पारयित्वा श्रुतस्तुतिकथन । ततः 'निव्वुइपसासणय जयइ सया सव्वभावदेसणय । कुसमयमयनासणय जिणदवरवीरसासणय ॥ १ ॥' इत्यावश्यकोक्तप्रतिक्रमणयोजना ॥ ॥ अथ कायोत्सर्गयोजना । तत्र कायोत्सर्गः जिनचैत्यश्रुततीर्थज्ञानदर्शनचारित्रसमस्तपूजाराधनार्थं क्रियमाणः कायोत्सर्गः वंदणवत्तिया इत्यादिपूर्वक करणीयः । प्रायश्चित्तविशोधनार्थं उपद्रवनिवारणार्थं श्रुतदेवताराधनार्थं समस्तचतुर्णिकायदेवताराधनार्थं वंदणवत्तियाए इत्यादि न करणीय किंतु अन्नत्थ० इत्याद्येव वाच्य । तथाच ऐर्यापथिकी कायोत्सर्गः सर्वत्रापि एकचतुर्विंशतिस्तवमयः प्रायश्चित्तविशोधनार्थं क्षुद्रोपद्रवोपशमनार्थं चतुर्णिकायदेवताराधनार्थं इष्टार्हत्प्रणमनार्थं कायोत्सर्गास्ते चतु० अतु० मयाः कायोत्सर्गे चतु० चिन्तन । वन्दे सुनिम्मलयरा इतिपर्यन्त ये च उत्कृष्टदेववन्दने श्रुतदेवताद्याराधने सत्युत्तराः कायोत्सर्गाः ये च स्वाध्यायोपगतास्ते सर्वे एकनमस्कारचिन्तनरूपाः प्रतिक्रमणमध्यगताः कायोत्सर्गास्तत्रैव निवेदिताः । अन्ये च ये अभिग्रहैः साधुभिः कायोत्सर्गाः क्रियन्ते तमनीपितचतु०

नमस्काराभिग्रहचिन्तनरूपाः । तथा सम्यक्त्वारोपणनन्दीयोगोद्वहनोद्देशादिषु ये कायोत्सर्गास्ते एकचतु० चिन्तनरूपाः । इत्यावश्यके कायोत्सर्गयोजना ॥ ॥ अथ प्रत्याख्यान । तत्र दशविधप्रत्याख्यानानि । उग्गए सूरे नवकारसहियं पच्चक्खाहि चउव्विहंपि आहार असण पाण खाइम साइम अन्नत्थणाभोगेण सहसागारेण विगइसेसिआओ पच्चक्खाहि अन्न० सह० लेवालेवेण गिहत्थससट्ठेण उक्खित्तविवेगेण पडुच्चमक्खेण पारिट्ठावणियागारेण महत्तरागारेण सव्वसमाहिवत्तियागारेण विआसण पच्चक्खा० दुविहंपि आहार असण खाइम अन्नत्थ० सह० सागारियागारेण आउंटणपसारणेण गुरुअ०भुट्ठाणेण पारि० मह० सव्व० द्रव्यसचित्तदेसावगासिय भोग परिभोग पच्च० अन्न० सह० मह० सव्व० वोसिरइ २ पोरसिय पच्च० उग्गए सूरे चउ० अ० पा० खा० सा० अन्न० सह० पच्छन्नकालेण दिसामोहेण साहुवयणेण सव्व० विगइसेसियाउ पच्च० अन्न० सह० लेवा० गिहत्थ० उक्खि० पडुच्चमक्खिएण पारि० मह० सव्वसमा० एकासण पच्च० त्रिविहंपि आहार असण खाइम साइम अन्नत्थ० सह० सागा० आउ० गुरु० पारि० मह० सव्व० द्रव्यसचित्तदेसावगासिय भोगपरिभोग पच्चक्खाहि अन्न० सह० मह० सव्व० वोसिरामि ४ साढपोरसहियं पच्च० उग्गए सूरे चउ० असण ४ अन्नत्थ० सह० पच्छ० दिसा० साहु० सव्व० निव्विगइय पच्च० अ० सहसा० लेवा० गिहत्थ० उक्खित्त० पडु० पारि० मह० सव्व० एकासण पच्च० त्रिविहं० अ० खा० सा० अन्न० सह० सागा० आउ० गुरु० पारि० मह० सव० द्रव्यसचित्तनियमु० देसा० भोग० अन्न० सह० मह० सव्व० वोसिरइ ६ सूरेउग्गे

प्रथमे यामे साधुः कथयति भग० बहुपडिपुन्ना पोरसी राइसथारए ठामि । मुखवस्त्रिका प्रतिलिख्य शक्रस्तव पठेत् । मध्यरीत्या चैत्यवन्दनक ॥ ॥ श्राद्धाना व्यग्रत्वे कदाचिन्न प्रतिक्रमणसामग्री भवति तदा प्रभातसन्ध्ययोः श्राद्धा ऐर्यापथिकीं प्रतिक्रम्य उत्कृष्टचैत्यवन्दनेन देववन्दन विधाय गुरोरग्रे मुखवस्त्रिका प्रतिलिख्य वन्दनमालोचनं प्रत्याख्यान कुर्वन्ति ज्ञानपूजारात्रिकमङ्गलप्रदीपान्ते श्रुतकायोत्सर्गे यथा । तमतिमिरपडलविद्धसणस्स इत्यादिश्रुतस्तव पठित्वा पूर्ववत् श्रुतकायोत्सर्ग' नमस्कार स्मृत्वा पारयित्वा श्रुतस्तुतिकथन ।
ततः 'निव्वुइपसासणय जयइ सया सव्वभावदेसणय । कुसमयमयनासणय जिणवरवीरसासणय ॥ १ ॥'
इत्यावश्यकोक्तप्रतिक्रमणयोजना ॥ ॥ अथ कायोत्सर्गयोजना । तत्र कायोत्सर्गः जिनचैत्यश्रुततीर्थज्ञानदर्शनचारित्रसमस्तपूजाराधनार्थं क्रियमाणः कायोत्सर्गः वदणवत्तिया इत्यादिपूर्वक करणीयः । प्रायश्चित्तविशोधनार्थं उपद्रवनिवारणार्थं श्रुतदेवताराधनार्थं समस्तचतुर्णिकायदेवताराधनार्थं वदणवत्तियाए इत्यादि न करणीय किंतु अन्नत्थ० इत्याद्येव वाच्य । तथाच ऐर्यापथिकी कायोत्सर्ग' सर्वत्रापि एकचतुर्विंशतिस्तवमयः प्रायश्चित्तविशोधनार्थं क्षुद्रोपद्रवोपशमनार्थं चतुर्णिकायदेवताराधनार्थं इष्टार्हत्प्रणमनार्थं कायोत्सर्गास्ते चतुर्मतु० मयाः कायोत्सर्गे चतु० चिन्तन । चन्देसु निम्मलयरा इतिपर्यन्तं ये च उत्कृष्टदेववन्दने श्रुतदेवताद्याराधने स्तुत्युत्तराः कायोत्सर्गा' ये च स्वाध्यायोपगतास्ते सर्वे एकनमस्कारचिन्तनरूपाः प्रतिक्रमणमध्यगताः कायोत्सर्गास्तत्रैव निवेदिताः । अन्ये च ये अभिग्रहैः साधुभिः कायोत्सर्गा. क्रियन्ते समनीषितचतु०

यथा। 'सचित्त १ दव्व २ विगई ३ वाहण ४ तंबोल ५ वत्थ ६ कुसमेसु ७। आसण ८ सयण ९ विलेवण १० बंभ ११ दिसि १२ न्हाण १३ भत्तेसु १४ ॥ १ ॥ सचित्तानि अप्रासुकभक्ष्याणि १ द्रव्याणि प्रासुकभक्ष्याणि २ विकृतयः पूर्वोक्ता दश ३ वाहनानि अश्वादीनि ४ ताम्बूलं क्रमुकपत्रादि ५ वस्त्राणि आच्छादनानि ६ कुसुमानि माल्यानि ७ आसनानि वेत्रासनपट्टप्रभृतीनि ८ शयनानि खट्वातूलिकादीनि ९ विलेपनानि चन्दनकस्तूरिकादीनि १० ब्रह्मव्रत ११ दिक्षु देशावकासिक १२ स्नान स्नेहोद्वर्तनजलमय १३ भक्त अन्न १४ एतेषां गृहिणो यथाशक्ति प्रतिदिन सख्या कुर्वन्ति । वोसिरामि वोसिरइ व्युत्सृजामि व्युत्सृज इति परित्यागवाचक पद । इत्यावश्यके प्रत्याख्यानयोजना ॥

नृपादीना नियोगिना परसेवकानां बहुव्यवसायाना च कृते आवश्यकविधिर्यथा । सर्ववस्त्रालङ्कारसहितोपि शुचिर्भूत्वा देवाग्रे शुचिस्थाने वा पूर्वोदङ्मुखः कृतोत्तरासङ्गः उपविष्टः सन् पूर्वं परमेष्ठिमन्त्र पठेत् । ततः। 'पचमहव्वयजुत्तो पचविहायारपालणसमत्थो। पञ्चसमिओ तिगुत्तो छत्तीसगुणो गुरू मज्झ' ॥१॥ ततः इच्छाका० भग० इरियावहिय इत्यारभ्य यावत्तस्स मिच्छामि दुक्कड इतिपर्यन्त ऐर्यापथिकीं पठेत् । ततः करेमि भते सामाइय सावज्ज जोग पच्चक्खामि जाव आवस्सय पज्जुवासामि दुविह० शेषो दण्डकः पूर्ववत् । तदनन्तर शक्रस्तव सव्वेसिं तेसिं पुणो तिविहेण तिदण्डवीरियाण इतिपर्यन्त पठेत् । चतुर्विंशतिस्तव सिद्धा सिद्धिं मम दिसन्तु इतिपर्यन्त, श्रुतस्तव धम्मुत्तर वड्ढउ इतिपर्यन्तं, सिद्धस्तव सिद्धा सिद्धिं मम दिसतु

लक्खिम्स० पडु० पारि० मह० सव्व० एकासणं एकलट्ठाण पच० त्रिविं० ३ अ० स्वा० सा० अस० सह० मा०
उक्खित्त० पडु० पारि० मह० सव्व० एकासणं एकलट्ठाण पच० त्रिविं० ३ अ० स्वा० सा० सह० मह० सव० वोसिरइ । पचक्खा-
गारि० गुरु० पारि० मह० सव्व० ग्र० स० नि० देसा० भोग० अन्न० सह० मह० सह० विगइसेसि० अस० सह० टेया० गिह०
णापच्चक्खाण । गठि० चउ० असण ४ अन्न० सह० मह० सह० विगइसेसि० अस० सह० सागा०
लक्खि० पडु० पारि० मह० सव्व० एकासण अट्ठकवल पच० त्रिविं० ३ अ० स्वा० सा० अस० सह० मह०
आउ० गुरु० पारि० मह० सव्व० ग्र० स० नि० देसावगासिय भोगपरिभोग पचक्खाइ । अस० सह० मह०
सव्व० वोसिरई अट्ठकवल ॥ इति विविधतपच्चक्खाणानि ॥ ॥ 'पचक्खाइ परसंति पचक्खामि तथात्मन ।
पाणस्सेति च साधूनां श्रव्यादि गृहिणा पुनः ॥ १ ॥' यथा साधूना पाणस्स लेपालेवेण वा अलेपालेवेण वा
अत्थेण वा बहुलेण वा ससित्थेण वा असित्थेण वा वोसिरइ । इति साधूना वाच्य कप-
नीय ॥ ॥ गृहिणा यथा । द्रव्यसचित्तनियमेति । 'नवकारपोरसीए पुरिमड्ढेकासणे अभत्तट्ठे । उप्पो० सा०
सू० सू० सू० नेया पच्चक्खरा कमसो ॥ १ ॥' सार्धपोरुषी अपार्धपोरुषी पूर्वार्धपोरन्तर्वपेते तपोराकारादि
तद्वत् ॥ ॥ अभिग्रहास्तु मनःकल्पिताः यथा । 'अङ्गुट्ठमुट्ठिगठी घरसे उस्सास थिबुगजोइक्खे । भणिय
सकियसेय वीरेहिं अणतनाणीहिं ॥ १ ॥' तथाच मुनयः प्रत्याख्यानान्ते पाणस्स लेवालेवेण वा इत्यादि प्र-
त्याख्याति । श्राद्धास्तु द्रव्यसचित्तदेसावगासिय इति । तत्रागारचतुष्क पूर्वमेवोक्तं यथा । इत्याति सेसेस
चत्तारि इति वचनात् । तथाच श्राद्धाः प्राभातिकप्रतिक्रमणमध्ये प्रत्याख्यानादौ सचित्तादिसख्यां कुर्वन्ति

यथा। 'सचित्त १ दव्व २ विगई ३ वाहण ४ तंबोल ५ वत्थ ६ कुसमेसु ७। आसण ८ सयण ९ विलेवण १० बंभ ११ दिसि १२ न्हाण १३ भत्तेसु १४ ॥ १ ॥ सचित्तानि अप्रासुकभक्ष्याणि १ द्रव्याणि प्रासुकभक्ष्याणि २ विकृतयः पूर्वोक्ता दश ३ वाहनानि अश्वादीनि ४ ताम्बूलं क्रमुकपत्रादि ५ वस्त्राणि आच्छादनानि ६ कुसुमानि माल्यानि ७ आसनानि वेत्रासनपट्टप्रभृतीनि ८ शयनानि खट्वातूलिकादीनि ९ विलेपनानि चन्दनकस्तूरिकादीनि १० ब्रह्मव्रत ११ दिक्षु देशावकासिक १२ स्नान स्नेहोद्वर्तनजलमय १३ भक्त अन्नं १४ एतेषां गृहिणो यथाशक्ति प्रतिदिन सख्या कुर्वन्ति । वोसिरामि वोसिरइ व्युत्सृजामि व्युत्सृज इति परित्यागवाचक पद् । इत्यावश्यके प्रत्याख्यानयोजना ॥

नृपादीना नियोगिना परसेवकाना बह्वव्यवसायाना च कृते आवश्यकविधिर्यथा । सर्ववस्त्रालङ्कारसहितोपि शुचिर्भूत्वा देवाग्रे शुचिस्थाने वा पूर्वोदङ्मुखः कृतोत्तरासङ्गः उपविष्टः सन् पूर्वं परमेष्ठिमन्त्र पठेत् । तत' । 'पचमहव्वयजुत्तो पचविहायारपालणसमत्थो। पञ्चसमिओ तिगुत्तो छत्तीसगुणो गुरू मज्झ' ॥१॥ ततः इच्छाका० भग० इरियावहिय इत्यारभ्य यावत्तस्स मिच्छामि दुक्कड इतिपर्यन्त ऐर्यापथिकीं पठेत् । ततः करेमि भंते सामाइय सावज्ज जोग पच्चक्खामि जाव आवस्सय पज्जवासामि दुविह० शेषो दण्डकः पूर्ववत् । तदनन्तर शक्रस्तव सव्वेसिं तेसिं पुणो तिविहेण तिदण्डवीरियाण इतिपर्यन्त पठेत् । चतुर्विंशतिस्तव सिद्धा सिद्धिं मम दिसन्तु इतिपर्यन्त, श्रुतस्तव धम्मुत्तर वड्ढउ इतिपर्यन्तं, सिद्धस्तव सिद्धा सिद्धिं मम दिसतु

इतिपर्यन्तं । ततः । 'अज्ञानतिमिरान्धानां ज्ञानाञ्जनशलाकया । नेत्रमुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥१॥' इति पठित्वा आयरिउ उवज्झाए इति गाथात्रयं पठेत् । ततो ये मया क्रोधमानमायालोभाः स्वपापा शब्द-रूपरसगन्धस्पर्शलालसतया कृता' तेषां मिथ्या मे दुष्कृतं । यद्देवस्य प्रतिमादि दुःस्थापनतच्छासनलङ्घननि-न्दनोपहासादि कृतं तद्भगवन्तोऽर्हन्तः क्षम्यन्तां । यच्च गुरूणां त्रयस्त्रिंशदाशातनारूपं अविनयं कृतं तद्गुरवः क्षम्यन्तां । यच्च मिथ्यात्वहिंसानृतस्तेयमैथुनपरिग्रहार्तरौद्रैः धर्मलङ्घनं कृतं तद्भगवान् धर्मः क्षम्यतां । यत्पु-स्तकादिदुःस्थापनेन अदेशकालादिपाठेन ज्ञानाशातनं कृतं तद्भगवानागमः क्षम्यतां । यच्च शङ्कादिभिः मि-थ्यात्वपोषणेन दर्शनलङ्घनं कृतं तद्भगवद्दर्शनं क्षम्यतां । यावद्बन्धच्छविच्छेदातिभारारोपणान्नरोधैः प्राणातिपाताणुव्रतलङ्घनं तस्य मिथ्या मे दुष्कृतं १ मिथ्योपदेशाभ्याख्यानकूटलेखन्यासापहारमन्त्रभेदैः मृषावा-दाणुव्रतलङ्घनं कृतं तस्य मिथ्या मे दुष्कृतं २ स्तेयानुज्ञातस्तदादानराज्यलङ्घनप्रतिरूपकरणकूटमानादिभिः यददत्तादानाणुव्रत० ३ इत्वरानात्तागमपरविवाहकरणातिरागानङ्गक्रीडाभिः यन्मैथुनाणुव्रत० ४ धनधान्यरूप्य-कुप्यक्षेत्रवास्तुद्विपदचतुष्पदसंख्यालङ्घनेन यत्परिग्रहाणुव्रत० ५ ऊर्ध्वाधस्तिर्यग्व्यतिक्रमस्मृत्यन्तर्धानक्षेत्रवृ-द्धिभिर्यद्दिग्विरतिगुणव्रत० ६ सचित्ततत्सम्बद्धतत्संमिश्रसन्धानदुःपक्वाहारैः अङ्गारवनशकटभाटकस्फोटजी-विकाभिः दन्तलाक्षारसकेशविषवाणिज्यैर्यन्त्रपीडानिर्लाञ्छनासतीपोषणदवदानसरःशोषैः खरकर्मभिर्यद्भो-गोपभोगमानगुणव्रत० ७ संयुक्ताधिकरणोपभोगातिरेकमौखर्यकन्दर्पकौत्कुच्यैर्यदनर्थदण्डविरतिगुणव्रत० ८

मनोवाक्कायदुःप्रणिधानानादरस्मृत्यनुपस्थानैः सामायिकशिक्षाव्रत० ९ प्रयोगानयनपुद्गलक्षेपशब्दरूपानुपातैर्यद्देशावकाशिकशिक्षाव्रत० १० अनादरस्मृत्यनुपस्थापनअदृष्टाप्रमार्जितोत्सर्गादानसंस्तरणैर्यत्पौषधगुणव्रत० ११ सचित्तक्षेपविधानकालातिक्रममत्सरान्यापदेशैर्यदतिथिसंविभागगुणव्रतलङ्घनं कृत तस्य मिथ्या मे दुष्कृत १२। सर्वमपि दिवारात्रौ यद्दुश्चरित (दुश्चिन्तित) दुर्भाषित दुश्चेष्टित तस्य मिथ्या मे दुष्कृत इति पठित्वा। ततः चत्तारिमङ्गल अरिहन्तामङ्गल सिद्धामङ्गल साहूमङ्गलं केवलिपन्नत्तो धम्मो मङ्गल १ चत्तारिलोगुत्तमा अरिहन्तालोगुत्तमा सिद्धालोगुत्तमा साहूलोगुत्तमा केवलिपन्नत्तो धम्मो लोगुत्तमो २ चत्तारिसरण पवज्जामि अरिहते सरण पवज्जामि ३ इति पठेत्। तदनन्तर जिनस्तोत्रपाठः। ततः। शिवमस्तु सर्वजगतः परहितनिरता भवन्तु भूतगणाः। दोषाः प्रयान्तु नाशं सर्वत्र सुखी भवतु लोकः ॥ १ ॥ इति कथन। ततः परमेष्ठिमन्त्र पठित्वा। मनोवाक्काययोगाना शुभसंस्थापनान्मया। शुभावश्यककार्येण पूर्णं सामायिक कृत ॥ १ ॥ अतीचारैरभग्न मे सामायिकमनुत्तर। अर्हद्गुरुप्रसादेन पुनरस्तु क्षणे क्षणे ॥ २ ॥ पुनः पुनरस्तु सामायिक इति सामायिकपारणश्लोकः। ततः प्रत्यक्षतया वा मनसा वा गुरुवन्दन। इति नृपतियोगिकार्यव्याक्षिप्ताना गृहिणा संक्षेपतः प्रतिक्रमणविधिः संपूर्णः ॥ ॥ कदाचित्कस्यचित्प्रज्ञामान्द्येन सामायिकप्रत्याख्यानदण्डक मुखपाठेन नायाति तेन चित्ताभिग्रहेणैव सामायिकप्रत्याख्याने करणीये पर चाय विशेषः दण्डकोच्चारणेनादृत सामायिक प्रत्याख्यान च। अतीचारागमनैरभग्न भवति तन्मध्याकारोच्चारणव-

शात् मनस्यारते तु दण्डकोच्चारवर्जिते सामायिके प्रत्याख्याने भग्ने भवत. तच्छुद्धे प्रायश्चित्तविधिप्रक्रमोक्त प्रायश्चित्तमाचरणीयं । तथा च । 'जिनार्चनगुरोः पूजा सिद्धान्तपठनं तथा । वैयावृत्त्य मुनीनां च पिच्छपुस्तकयोरपि ॥ १ ॥ धर्मोपदेशश्रवणं व्याख्यानं धर्मशास्त्रकं । प्रमार्जनादि वा कार्यं प्रतिपत्तिर्गुरोरपि ॥ २ ॥ परमेष्ठिमन्त्रजापः स्तोत्रपाठोर्हतामपि । इत्यादिधर्मवैयग्र्य सर्वमावश्यक विदुः ॥ ३ ॥ मध्याह्नान्मध्यरात्रं च यावद्दैवसिकं विदुः । मध्यरात्राच्च मध्याह्न यावत्कर्म च रात्रिकं ॥ ४ ॥' इत्याचार्यश्रीवर्धमानसूरिकृते आचारदिनकरे उभयधर्मस्तम्भे षड्विधावश्यककीर्तनो नामाष्टत्रिंशत्तम उदयः ॥ ३८ ॥ ग्रन्थाग्र २५०० ॥

---

## एकोनत्रिंशत्तम उदयः ।

अथ तपोविधिरुच्यते ॥ तत्राय । यद्दूरं यद्दुराराध्यं यच्च दूरे व्यवस्थितम् । तत्सर्वं तपसा साध्यं तपो हि दुरतिक्रमम् ॥ १ ॥ ततः शिवकुमारश्चरति मन्दिरस्थोपि यः स देवपरिषद्यपि द्युतिमहत्त्वविस्फूर्तिभृत् । कृशत्वकृशतापनोल्लसितकर्णकं काञ्चनं सुधालुषु विशिष्टता नृपतिमौलितामेति च ॥ २ ॥ ततः सकलकर्मनिर्दलविधलब्धिकृन्निश्चितं गृहे पुरि च दुर्मरोप्यहह नन्दिषेणो द्विजः । व्रते शमतपःपरः सुरनरैकवन्द्यो भवेत् प्रविज्वलनतापितः भवति वीसिमाप्यो घटः ॥ ३ ॥ यस्तपोविधिराम्नातो जिनैर्गीतार्थसाधुभिः । तं तथा कुर्वतां सन्तु मनोवाञ्छितसिद्धयः ॥ ४ ॥ असत्यां दानशक्तौ च देहशक्तिमवेक्ष्य च । अनुष्ठेयं पुण्यवद्भिस्त-

पःकर्म सुदुष्कर ॥ ५ ॥ तद्धि द्वादशरूप स्याद्बाह्याभ्यन्तरभेदतः । सपोज्य षड्विध बाह्यमुपवासादिकर्मभिः । ॥ ६ ॥ तपोविधिः श्रेणियुक्त्या प्रोक्तोऽर्हद्भिश्च साधुभिः । कश्चित्केवलिसदिष्टः कश्चिद्गीतार्थभाषितः ॥ ७ ॥ कश्चित्फलादिभिश्चीर्णस्त्रिविधः स तपोविधिः । योगोपधानमुख्यो यः स विधिः केवलीरितः ॥ ८ ॥ कल्याणादिपुण्डरीकतपोमुख्यो मुनीरितः । रोहिणीकल्पवृक्षादिविधिः फलतपोमयः ॥ ९ ॥ एष समील्य विद्वद्भिस्तपःश्रेणि. प्रदर्शिता । कार्यं न साधुसाध्वीभिः प्रतिमाद्युपासकैः ॥१०॥ कृतोपधानैः सम्यक्त्वधारिभिः फलदं तपः । नोक्ता योगा गृहस्थैश्च शेष सर्वं तपोपि हि ॥११॥ विधेय श्रावकैः शान्तैः श्राविकाभिस्तथाविध । शान्तोऽल्पनिद्रोऽल्पाहारो निष्कामो निःकषायकः ॥ १२ ॥ धीरोऽन्यनिन्दारहितो गुरुशुश्रूषणे रतः । कर्मक्षयार्थी प्रायेण रागद्वेषविवर्जितः ॥ १३ ॥ दयालुर्विनयापेक्षी प्रेत्येहफलनिःस्पृहः । क्षमी नीरुक् निरुत्सेको जीवस्तपसि योज्यते ॥ १४ ॥ षाण्मासिके वार्षिके च मासोर्ध्वं तपसि स्फुटे । त्यक्त प्रतिष्ठादीक्षासु काल तस्मिन्नपि त्यजेत् ॥ १५ ॥ शुभे मुहूर्ते प्रारब्धे काण्डान्यायान्तु यान्तु वा । पक्षमासदिनाब्दानि न पश्येत्तत्र दूषण ॥ १६ ॥ मृदुध्रुवचरक्षिप्रैर्वारैर्भौम शनिं विना । आघाटनतपोनन्द्यालोचनादिषु भ शुभ ॥ १७ ॥ क्रियमाणे तपस्यन्तस्तपः पुण्यतिथौ यदि । आयाति नियमात्कार्यं दुर्लङ्घ्यो नियमः सता ॥ १८ ॥ प्रवर्धमानः सस्थाप्य पश्चात्तत्क्रियतां तपः । तपोमध्ये तपः कार्यं गरिष्ठं तप आचरेत् ॥ १९ ॥ अवशेषं लघु तपः कार्यं पश्चात्ततोपि हि । अनाभोगादिभिर्भग्ने तपःकर्मणि मध्यतः ॥ २० ॥ आलोचनीय तत्तत्र कार्यं पश्चात्तपोऽथवा ।

शात् मनस्याहते तु दण्डकोच्चारवर्जिते सामायिके प्रत्याख्याने भग्ने भवतः तद्भङ्गे प्रायश्चित्तविधिप्रक्रमोक्त प्रायश्चित्तमाचरणीयं। तथा च। 'जिनार्चनगुरोः पूजा सिद्धान्तपठनं तथा। वैयावृत्त्य मुनीनां च बिम्बपुस्तकयोरपि ॥ १ ॥ धर्मोपदेशश्रवणं व्याख्यानं धर्मशास्त्रकं। प्रमार्जनादि वा कार्यं प्रतिपत्तिर्गुरोरपि ॥ २ ॥ परमेष्ठिमन्त्रजापः स्तोत्रपाठोऽर्हतामपि। इत्यादिधर्मवैयग्र्यं सर्वमावश्यकं विदुः ॥ ३ ॥ मध्याह्नान्मध्यरात्रं च यावद्दैवसिकं विदुः। मध्यरात्राच्च मध्याह्नं यावत्कर्म च रात्रिकं ॥ ४ ॥' इत्याचार्यश्रीवर्धमानसूरिकृते आचारदिनकरे उभयधर्मस्तम्भे षडावश्यककीर्तनो नामाष्टत्रिंशत्तम उदयः ॥ ३८ ॥ ग्रन्थाग्र २५०० ॥

---

## एकोनत्रिंशत्तम उदयः ।

अथ तपोविधिरुच्यते ॥ तत्रादौ। यद्दूरं यद्दुराराध्यं यच्च दूरे व्यवस्थितम्। तत्सर्वं तपसा साध्यं तपो हि दुरतिक्रमम् ॥ १ ॥ ततः शिवकुमारवच्चरति मन्दिरस्थोऽपि यः स देवपरिषद्यपि श्रुतिमहत्त्वविस्फूर्तिभृत्। कुशलकुशतापनोल्लसितकर्णकं काञ्चनं सुधातुषु विशिष्टता नृपतिमौलितामेति च ॥ २ ॥ ततः सकलकर्मभिर्विविधलब्धिकृल्लिखितं गृहे पुरि च दुर्भरोऽप्यहह वह्निषेणो द्विजः। प्रसे शमतपःपरः सुरनरैकवन्द्यो भवेप्रविज्वलनतापितः प्रयति दीप्तिमाप्नो भटः ॥ ३ ॥ यस्तपोविधिराम्नातो जिनैर्गीतार्थसाधुभिः। स तथा कुर्वतां सन्तु मनोवाञ्छितसिद्धयः ॥ ४ ॥ असत्या दानशक्तौ च देहशक्तिमपेक्ष्य च। अनुष्ठेयं पुण्यबद्भिस्त-

पःकर्म सुदुष्कर ॥ ५ ॥ तद्धि द्वादशरूप स्याद्बाह्याभ्यन्तरभेदतः । सयोज्य षड्विध बाह्यमुपवासादिकर्मभिः । ॥ ६ ॥ तपोविधिः श्रेणियुक्त्या प्रोक्तोऽर्हद्भिश्च साधुभिः । कश्चित्केवलिसंदिष्टः कश्चिद्गीतार्थभाषितः ॥ ७ ॥ कश्चित्फलादिभिश्चीर्णस्त्रिविधः स तपोविधिः । योगोपधानमुख्यो यः स विधिः केवलीरितः ॥ ८ ॥ कल्याणादिपुण्डरीकतपोमुख्यो मुनीरितः । रोहिणीकल्पवृक्षादिविधिः फलतपोमयः ॥ ९ ॥ एव समील्य विद्वद्भिस्तपःश्रेणिः प्रदर्शिता । कार्य न साधुसाध्वीभिः प्रतिमावाग्युपासकैः ॥१०॥ कृतोपधानैः सम्यक्त्वधारिभिः फलद तपः । नोद्या योगा गृहस्थैश्च शेष सर्वं तपोपि हि ॥११॥ विधेय श्रावकैः शान्तैः श्राविकाभिस्तथाविध । शान्तोऽल्पनिद्रोऽल्पाहारो निष्कामो निःकषायकः ॥ १२ ॥ धीरोऽन्यनिन्दारहितो गुरुशुश्रूषणे रतः । कर्मक्षयार्थी प्रायेण रागद्वेषविवर्जितः ॥ १३ ॥ दयालुर्विनयापेक्षी प्रेत्येहफलनिःस्पृहः । क्षमी नीरुक् निरुत्सेको जीवस्तपसि योज्यते ॥ १४ ॥ षाण्मासिके वार्षिके च मासोर्ध्वं तपसि स्फुटे । त्यक्त प्रतिष्ठादीक्षासु काल तस्मिन्नपि त्यजेत् ॥ १५ ॥ शुभे मुहूर्ते प्रारब्धे काण्डान्यायान्तु यान्तु वा । पक्षमासदिनाब्दानि न पश्येत्तत्र दूषण ॥ १६ ॥ मृदुध्रुवचरक्षिप्रैर्वारैर्भौम शनि विना । आयाटनतपोनन्द्यालोचनादिपु भ शुभ ॥ १७ ॥ क्रियमाणे तपस्यन्तस्तपः पुण्यतिथौ यदि । आयाति नियमात्कार्यं दुर्लङ्घ्यो नियमः सता ॥ १८ ॥ प्रवर्धमानः सस्थाप्य पश्चात्तत्क्रियता तपः । तपोमध्ये तपः कार्यं गरिष्ठ तप आचरेत् ॥ १९ ॥ अवशेष लघु तपः कार्य पश्चात्तदोपि हि । अनाभोगादिभिर्भग्ने तपःकर्मणि मध्यतः ॥ २० ॥ आलोचनीय तत्तत्र कार्यं पश्चात्तपोऽयथा ।

क्रमजे तपसि प्रायो न गणेयस्तिथिक्रमः ॥ २१ ॥ तिथिजे तपसि श्रेष्ठा सूर्योदयगता तिथिः । तिथेः पाते च
पूर्वस्मिन्वृद्धौ परत्र वा ॥ २२ ॥ कार्यं तिथितपःकर्म प्राहेति भगवान् जिनः । कालवृद्ध्या रसत्यागवृत्तिसं-
क्षेपतस्तथा ॥ २३ ॥ ऊनोदर्यमनशनं कायक्लेशान्तरेषु च । अधिकं यत्तपस्तत्तु ज्ञेयं वृद्ध्योत्तरोत्तरं ॥ २४ ॥
मौहूर्तिकं प्राहरिकं सार्धप्राहरिकं तथा । मध्याह्नमापराह्णं च तपः कालोत्तरोत्तरं ॥ २५ ॥ सकल्याविकृतिश्चैव
तथा नैर्विकृतं पुनः । आचाम्लमेकसिक्थं च रसत्यागोत्तरोत्तरं ॥ २६ ॥ द्विभक्तमेकभक्तं च सदत्तिरेकदत्-
तिकं । उपवासमनीरं च वृत्तिसंक्षेपणोत्तरं ॥ २७ ॥ तपःप्रारम्भणे कार्यमष्टधा जिनपूजनं । तपोनिर्विघ्नसि-
द्ध्यर्थं पौष्टिकं विधिसंयुतं ॥ २८ ॥ ग्रहदिक्पालयक्षाणां मुद्रानैवेद्यसत्फलैः । पदर्चनं गुरुः कुर्यात्तपोऽष्टिक-
मुदाहृतं ॥ २९ ॥ पुस्तकाम्बरपात्राद्याशनं शुक्लगुरुष्वपि । सङ्घार्चनं क्षेत्रदेवीपुरदैवतपूजनं ॥ ३० ॥ योगोप-
धानप्रतिमासु नन्द्यः कार्या मुनीन्द्रैर्विधिसन्निवेदिताः । शेषे तपःकर्मणि शक्रस्तवैरासप्तकादिर्व्रतपालना
विधिः ॥ ३१ ॥ शुद्धं तपः केवलमप्युदारं सोद्यापनस्यास्य पुनस्तुमः किं । रूपं यथो धेनुगुणेन तत्तु श्राक्षासि-
ताक्षोद्युतं सुवैव ॥ ३२ ॥ वृक्षो यथा दोहदपूरणेन कायो यथा सद्रसभोजनेन । विशेषशोभां लभते यथो-
केनोद्यापनेनैव तथा तपोऽपि ॥ ३३ ॥ उपधानानि सर्वाणि श्रावकप्रतिमा यते । एकादश गृहस्थस्य योगाः
सैद्धान्तिका क्रमात् ॥ ३४ ॥ इन्द्रियाणां जयश्चैव कषायजय एव च । योगशुद्धिर्धर्मचक्रं तथैवाष्टाह्निकाद्रूपं
॥ ३५ ॥ कर्मसूदनमन्तानि जिनोक्तानि तपांसि वै । वियोगानि गृहस्थस्य सर्वाण्यपाणि वै यते ॥ ३६ ॥

उपधानतप' १ आद्यप्रतिमातपः २ यतिप्रतिमातपः ३ योगतपः ४ इन्द्रियजयतपः ५ कषायजयतपः ६ योगशुद्धितप ७ धर्मचक्रतपः ८ अष्टाह्निकातपोद्वय ९।१० कर्मसूदनतपः ११ इति जिनोक्तानि तपासि ॥ ॥ कल्याणकानि ज्ञान च दर्शन चरण तथा । चान्द्रायण वर्धमान ततः परमभूषण ॥ १ ॥ दीक्षा च ज्ञाननिर्वाणे तथोनोदरिकातपः । सलेखना सर्ववीर तथा च कनकावली ॥ २ ॥ मुक्तावली रत्नमाला सिंहनिःक्रीडितद्वय । भद्र चैव महाभद्र ततो भद्रोत्तर पुन' ॥ ३ ॥ ततश्च सर्वतोभद्र गुणरत्नमथाङ्कक । सावत्सर नन्दिसरः पुण्डरीक तथैव च ॥ ४ ॥ माणिक्यप्रस्तारी पद्मोत्तरसमवसरणयुगलानि । गणधरमशोकवृक्ष ससतिशतक नमस्कार ॥ ५ ॥ पूर्वचतुर्दशकमथो एकावलिका च दशविधो धर्मः । पञ्चपरमेष्ठिसज्ञा पञ्चम्याद्वितयमथ सघः ॥ ६ ॥ आधीयते च मनुजैः सर्गादिफलार्थिभिर्विमलवृत्तैः । तस्माद्धन महाधनमथ वर्गश्रेणिमेरुतपः ॥ ७ ॥ द्वात्रिंशत्कल्याणकमघच्यवनजन्मलोकनालीनि । कल्याणाष्टाह्निकमथ सूर्यायनमन्तरा वज्र ॥ ८ ॥ आचाम्ल वर्धमान ततस्तपः स्यान्महावीर । माघश्रेणिर्लक्षप्रतिपद्गीतार्थकथिततपः ॥ ९ ॥ साधुसाध्वीश्रावकाणा श्राविकाणा महात्मना । तपास्याचरणीयानि गीतार्थकथितानि वै ॥ १० ॥ कल्याणकतपः १ ज्ञानतपः २ दर्शनतपः ३ चारित्रतपः ४ चान्द्रायणतपः ५ वर्धमानतपः ६ परमभूषणतपः ७ दीक्षातपः ८ ज्ञानतपः ९ निर्वाणतप' १० ऊनोदरीतपः ११ सलेखनातपः १२ सर्वसख्याश्रीमहावीरतपः १३ कनकावलीतपः १४ मुक्तावलीतपः १५ रत्नावलीतप. १६ लघुसिंहनिःक्रीडिततपः १७ बृहत्सिंहनिःक्रीडिततपः १८ भद्रतपः १९ महाभद्र-

तपः २० भद्रोत्तरतपः २१ सर्वतोभद्रतप' २२ गुणरत्नसंवत्सरतपः २३ अष्टतपः २४ संवत्सरतपः २५ नन्दीश्वरतपः २६ पुण्डरीकतप' २७ ॥ माणिक्यप्रस्तारिकातपः २८ पद्मोत्तरतपः २९ समवसरणतप' ३० द्वितीयसमवसरणतपः ३१ गणधरतप' ३२ अशोकवृक्षतपः ३३ सप्ततिशततपः ३४ नमस्कारतपः ३५ चतुर्दशपूर्वतपः ३६ एकावलीतपः ३७ दशविधयतिधर्मतपः ३८ पञ्चपरमेष्ठितपः ३९ लघुपञ्चमीतपः ४० बृहत्पञ्चमीतप' ४१ चतुर्विधसंघतपः ४२ घनतपः ४३ महाघनतपः ४४ वर्गतपः ४५ श्रेणितपः ४६ मेरुतपः ४७ द्वात्रिंशत्कल्याणकतपः ४८ च्यवनतपः ४९ जन्मतपः ५० लोकनालितपः ५१ कल्याणकाष्टाह्निकातपः ५२ सूर्यायनतपः ५३ आचाम्लवर्धमानतप' ५४ महावीरतप. ५५ माघमालातपः ५६ लक्षप्रतिपत्तपः ५७ इति गीतार्थाचीर्णानि तपांसि ॥ ॥ 'सर्वाङ्गसुन्दरतपो १ निरुजशिख २ सुभगता त्रिदशवृक्ष ३ । दमयन्त्या ४ यतिजनक ५ साक्षयनिधि ६ मुकुटसप्तमी ७ च तपः ॥ १ ॥ अम्बा ८ श्रुतदेवी ९ रोहिणी १० च मातरितपश्च ११ सुखसंपत् १२ । अष्टापदसोपान १३ निर्वृतिदण्ड १४ स्वदुःखदर्शियुग १५ ॥ २ ॥ गौतमपात्र १६ निर्वाण १७ दीपक १८ तदनु चामृताष्टमिका १९ । तस्मादखण्डदशमी २० परत्रपालिश्च २१ सोपान २२ ॥ ३ ॥ कर्मचतुर्थं २३ परमेष्ठिफल २४ मवेषव्यदशमिका २५ चैव । नन्द्यावर्तयुग २६।२७ पुनरेतत्फलतप इति ख्यात ॥ ४ ॥ दमयन्त्यादेर्दृष्टान्तदर्शनाद्रोहिणीगुणश्रवणात् । कार्यं फलार्थिभिरिदं गृहिभिः फलतप इति ख्यात ॥ ५ ॥ सर्वाङ्गसुन्दरतपः १ निरुजशिखतपः २ सौभाग्यकल्पवृक्षतपः ३ दमयन्तीतपः ४ आयतिजनकतप. ५ अक्षयनि-

धितप' ६ मुकुटससमीतपः ७ अम्बातपः ८ श्रुतदेवीतपः ९ रोहिणीतपः १० माउरतपः ११ सर्वसुखसपत्तितपः १२ अष्टापदपावडीतपः १३ मोक्षदण्डतपः १४ अदुःखदर्शितपोद्वय १६ गौतमपडिगहातपः १७ निर्वाणदीपतप' १८ अमृताष्टमीतप' १९ अखण्डदशमीतपः २० परतपालितपः २१ पावडीतपः २२ कर्मचतुर्थतपः २३ नवकारफलतपः २४ अविधवादशमीतपः २५ बृहन्नन्द्यावर्ततपः २६ लघुनन्द्यावर्ततपः २७ इति ससर्विंशतिफलतपासि ॥ तत्र उपधानतपो व्रतारोपाधिकारादवसेय १ गृहस्थस्यैकादशप्रतिमाव्रतारोपसस्कारादवसेयाः २ यतेर्द्वादशप्रतिमातपो यतिधर्मोत्तरायणात्प्रतिमाधिकारादवसेय ३ सैद्धान्तिकायोगायोगोद्वहनाधिकारादवसेयाः ४॥ ॥ अथावशेषा व्याख्यायन्ते चत्वारि व्याख्यातानि। तेषु पूर्वं जिनोक्ताना कथन। पञ्चसमिन्द्रियजयतपः । 'पूर्वार्धमेकभक्त च विरसाम्ले उपोषित । प्रत्येकमिन्द्रियजयः पञ्चविंशतिवासरैः ॥ १ ॥' इन्द्रियाणा स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुःश्रोत्ररूपाणा जयार्थं तप इन्द्रियजयतपः । तत्र एकमेकमिन्द्रिय प्रति क्रमेण पूर्वार्ध १ एकभक्त २ निर्विकृतिक ३ आचाम्ल ४ उपवास ५ रूपाणि । एव पञ्चपञ्च प्रत्याख्यानानि पञ्चविंशत्या दिनैः पर्यन्ते तावद्भूमिशयन ब्रह्मचर्यं यक्षकन्यासः । उद्यापने जिनाग्रतः सर्वपक्वान्नभक्ष्यफलप्रकारान्तराणा पञ्चविंशतिसख्यया ढौकन । एतत्सख्यया साधुभ्योपि दान । एतत्करणे सर्वेन्द्रियाणा दुःप्रवृत्तिनिषेधः फलं । इति यतिश्राद्धकर-

| ५ इन्द्रियजयतप आगाढदिन २५ | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| स्पर्श | पु १ | ए १ | नि १ | आं १ | उप १ |
| रस | पु १ | ए १ | नि १ | आं १ | उप १ |
| घ्राण | पु १ | ए १ | नि १ | आं १ | उप १ |
| चक्षु | पु १ | ए १ | नि १ | आं १ | उप १ |
| श्रोत्र | पु १ | ए १ | नि १ | आं १ | उप १ |

तपः २० भद्रोत्तरतपः २१ सर्वतोभद्रतपः २२ गुणरत्नसंवत्सरतपः २३ अङ्गतपः २४ संवत्सरतपः २५ नन्दीश्वरतपः २६ पुण्डरीकतप २७ ॥ माणिक्यप्रस्तारिकातपः २८ पद्मोत्तरतपः २९ समवसरणतपः ३० द्वितीयसमवसरणतप. ३१ गणधरतपः ३२ अशोकवृक्षतपः ३३ सप्ततिशततपः ३४ नमस्कारतप ३५ चतुर्दशपूर्वतपः ३६ एकावलीतपः ३७ दशविधयतिधर्मतप ३८ पञ्चपरमेष्ठितपः ३९ लघुपञ्चमीतपः ४० बृहत्पञ्चमीतपः ४१ चतुर्विधसंघतपः ४२ घनतपः ४३ महाघनतपः ४४ वर्गतपः ४५ श्रेणितपः ४६ मेरुतपः ४७ द्वात्रिंशत्कल्याणकतपः ४८ च्यवनतपः ४९ जन्मतपः ५० लोकनालितपः ५१ कल्याणकाष्टाह्निकातपः ५२ सूर्यायनतपः ५३ आचाम्लवर्धमानतप ५४ महावीरतपः ५५ माघमालातपः ५६ लक्षप्रतिपत्तपः ५७ इति गीतार्थाचीर्णानि तपांसि ॥ ॥ 'सर्वाङ्गसुन्दरतपो १ निरुजशिख २ सुभगता त्रिदशवृक्ष ३ । दमयन्त्या ४ यतिजनक ५ साक्षयनिधि ६ मुकुटसप्तमी ७ च तपः ॥ १ ॥ अम्बा ८ श्रुतदेवी ९ रोहिणी १० च मातरितपश्च ११ सुखसंपद् १२ । अष्टापदसोपान १३ निर्वृतिदण्ड १४ स्वदुःखदर्शियुग १५ ॥ २ ॥ गौतमपात्र १६ निर्वाण १७ दीपक १८ तदनु चामृताष्टमिका १९ । तस्मादखण्डदशमी २० परत्रपालिश्च २१ सोपान २२ ॥ ३ ॥ कर्मचतुर्थं २३ परमेष्ठिफल २४ मवैधव्यदशमिका २५ चैव । नन्द्यावर्तयुग २६।२७ पुनरेतत्फलतप इति ख्यात ॥ ४ ॥ दमयन्त्यादेर्दृष्टान्तदर्शनाद्रोहिणीगुणश्रवणात् । कार्यं फलार्थिभिरिद गृहिभिः फलतप इति ख्यात ॥ ५ ॥ सर्वाङ्गसुन्दरतपः १ निरुजशिखतपः २ सौभाग्यकल्पवृक्षतपः ३ दमयन्तीतपः ४ आयतिजनकतप. ५ अक्षयनि-

धितपः ६ मुकुटसप्तमीतपः ७ अम्बातपः ८ श्रुतदेवीतपः ९ रोहिणीतपः १० मातोरतपः ११ सर्वसुखसंपत्तितपः १२ अष्टापदपावडीतपः १३ मोक्षदण्डतपः १४ अदुःखदर्शितपोद्वय १६ गौतमपडिगहातपः १७ निर्वाणदीपतपः १८ अमृताष्टमीतपः १९ अखण्डदशमीतपः २० परतपालितपः २१ पावडीतपः २२ कर्मचतुर्थतपः २३ नवकारफलतपः २४ अविधवादशमीतपः २५ बृहन्नन्द्यावर्ततपः २६ लघुनन्द्यावर्ततपः २७ इति सप्तविंशतिफलतपांसि ॥ तत्र उपधानतपो व्रतारोपाधिकाराद्वसेय १ गृहस्थस्यैकादशप्रतिमाव्रतारोपसंस्कारादवसेयाः २ यतेर्द्वादशप्रतिमातपो यतिधर्मोत्तरायणात्प्रतिमाधिकारादवसेय ३ सैद्धान्तिकायोगायोगोद्वहनाधिकारादवसेयाः ४॥ ॥ अथावशेषा व्याख्यायन्ते चत्वारि व्याख्यातानि। तेषु पूर्वं जिनोक्ताना कथन। पञ्चममिन्द्रियजयतपः । 'पूर्वार्धमेकभक्त च विरसाम्ले उपोषित । प्रत्येकमिन्द्रियजयः पञ्चविंशतिवासरैः ॥ १ ॥' इन्द्रियाणा स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुःश्रोत्ररूपाणा जयार्थं तप इन्द्रियजयतपः । तत्र एकमेकमिन्द्रियं प्रति क्रमेण पूर्वार्धं १ एकभक्त २ निर्विकृतिक ३ आचाम्ल ४ उपवास ५ रूपाणि । एव पञ्चपञ्च प्रत्याख्यानानि पञ्चविंशत्या दिनैः पर्यन्ते तावद्भूमिशयन ब्रह्मचर्य यत्नकन्यासः । उद्यापने जिनाग्रतः सर्वपक्वान्नभक्ष्यफलप्रकारान्तराणा पञ्चविंशतिसंख्यया ढौकन । एतत्संख्यया साधुभ्योपि दान । एतत्करणे सर्वेन्द्रियाणा दुःप्रवृत्तिनिषेधः फल । इति यतिश्राद्धकर-

| ५ इन्द्रियजयतप आगाढदिन २५ | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| स्पर्श | पु १ | ए १ | नि १ | आं १ | उप १ |
| रस | पु १ | ए १ | नि १ | आं १ | उप १ |
| घ्राण | पु १ | ए १ | नि १ | आं १ | उप १ |
| चक्षु | पु १ | ए १ | नि १ | आं १ | उप १ |
| श्रोत्र | पु १ | ए १ | नि १ | आं १ | उप १ |

णीयमागाढमिन्द्रियजयतप ॥५॥ ॥ अथ कषायजतपः। 'एकभक्त निर्विकृति सजलानशने तथा। कषाय-

| ६ कषायजयतपआगाढं १६ | | | | |
|---|---|---|---|---|
| क्रोध | ए १ | नि १ | आं १ | उप १ |
| मान | ए १ | नि १ | आं १ | उप १ |
| माया | ए १ | नि १ | आं १ | उप १ |
| लोभ | ए १ | नि १ | आं १ | उप १ |

जय एकस्मिन्कषायेऽन्येष्वपीदृश ॥ १ ॥' कषायाणा क्रोधमानमायालोभाना जयार्थं तपः कषायजयतपः। तथैकमेक कषाय प्रति एकभक्त १ निर्विकृतिक २ आचाम्लो ३ पवासौ ४ रूप प्रत्याख्यानचतुष्क दिनचतुष्टय। दोषत्रयमेव षोड-शभिर्दिनैः पूर्यते। यन्त्रकन्यासः। उद्यापने षोडशसख्यसर्वफलजातिपक्वान्नपड्-विकृतिढौकन देवाग्रे। यतिभ्योप्येतद्वस्तुदान। एतत्फल सर्वकषायविनाश। इति यतिश्राद्धकरणीयमागाढ कषायजतपः ॥६॥ ॥ अथ योगशुद्धितप.। 'योगे प्रत्येकमरसमाचाम्ल चाप्यु-

| ७ योगशुद्धतपआगा ९ | | | |
|---|---|---|---|
| मन | नि १ | आं १ | उ १ |
| वचन | नि १ | आं १ | उ १ |
| काया | नि १ | आं १ | उ १ |

पोषित। एव नवदिनैर्योगशुद्धिः सपूर्यते ततः ॥ १ ॥' योगाना मनोवाक्कायाना शुद्धि-कारित्वाद्योगशुद्धि'। तत्र मनःप्रति प्रथमेह्नि निर्विकृतिक १। द्वितीये आचाम्ल २ तृ-तीये उपवासः ३ एव वचःकायौ प्रत्यपि। एव नवभिर्दिनैः पूर्यते। यन्त्रन्यासः। उद्यापने जिनाग्रे षड्विकृतिढौकन। साधुभ्यस्तद्दान। एतत्फल मनोवाक्कायाना शुद्धता भवति। इति यतिश्राद्धकरणीयमागाढ योगशुद्धितपः ॥७॥ ॥ अथ धर्मचक्रतप'।' विधाय प्रथम षष्ठ षष्टिमेकान्तर तथा। उपवास धर्मचक्रे कुर्याद्यष्टकवासरे' ॥ १ ॥' धर्मस्य चक्र समूह। अथवा भगवतोऽर्हतोऽतिशयरूप धर्मचक्र तत्प्राप्तिहेतुत्वाद्धर्मचक्र। तत्र पूर्वं षष्ठतपः ततोऽनन्तर षष्टिरुपवासा एकान्तरिता। एव विंशत्यु-

| ८ धर्मचक्रतप आपाढदिन १२३ पर्यंते | | | | | | | | | | | | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| उ | पा | उ | पा | उ | पा | उ | पा | उ | पा | उ | पा | उ | पा | उ | पा | उ | पा | उ | पा |
| उ | पा | उ | पा | उ | पा | उ | पा | उ | पा | उ | पा | उ | पा | उ | पा | उ | पा | उ | पा |
| उ | पा | उ | पा | उ | पा | उ | पा | उ | पा | उ | पा | उ | पा | उ | पा | उ | पा | उ | पा |
| उ | पा | उ | पा | उ | पा | उ | पा | उ | पा | उ | पा | उ | पा | उ | पा | उ | पा | उ | पा |
| उ | पा | उ | पा | उ | पा | उ | पा | उ | पा | उ | पा | उ | पा | उ | पा | उ | पा | उ | पा |
| उ | पा | उ | पा | उ | पा | उ | पा | उ | पा | उ | पा | उ | पा | उ | पा | उ | पा | उ | पा |

त्तरशतदिनैः पूर्यन्ते । यन्त्रकन्यासः । उद्यापने स्वर्णमय रूप्यमय वा रत्नजडित धर्मचक्र निर्माय महापूजापूर्वक जिनाग्रे ढौकयेत् । तदनन्तर यथाशक्ति संघपूजा । एतत्फल निरतिचारबोधिप्राप्तिः।

इति यतिश्राद्धकरणीयमागाढ धर्मचक्रतप' ॥ ८ ॥ ॥अथ लघुअष्टाह्निकातप.। 'अष्टमीभ्या समारभ्य शुक्लाश्वयुजचैत्रयो' । राका यावत्सप्तवर्षं स्वशक्त्याष्टाह्निकातपः ॥ १ ॥' सदैव पुण्यानां अष्टानामह्ना समाहारोष्टाह्निका । आश्वयुजशुक्लचैत्रशुक्लाष्टमीमारभ्य पूर्णिमा यावदष्टदिनानि स्वशक्त्या एकभक्तनिर्विकृतिकाचाम्लोपवासैः प्रत्याख्यानानि विधेयानि । तत्र बृहत्स्नात्रविधिना जिनस्नात्र यावत्तेषु दिनेषु सप्तवर्षं विदध्यात् । यन्त्रकन्यासः । उद्यापने षट्पञ्चाशत्सङ्ख्यया पुष्पफलनैवेद्यपक्वान्नैर्जिनपूजा साधुभ्यस्तद्दान च । यथा-

| ९।१० चैत्रशुक्लाष्टम्यादि दिन ८।१७ आसोजशुक्लाष्टम्यादि ८ | | | | | | | | | | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| ति | ८ | ९ | १० | ११ | १२ | १३ | १४ | १५ | ति | ८ | ९ | १० | ११ | १२ | १३ | १४ | १५ |
| वि | पु | नि | आं | उ | पु | नि | आं | उ | वि | पु | नि | आं | उ | पु | नि | आं | उ |

णीयमागाढमिन्द्रियजयतपः ॥५॥ ॥ अथ कषायजतपः । 'एकभक्तं निर्विकृति सजलानशने तथा । कषायजय एकस्मिन्कषायेऽन्येष्वपीदृश ॥ १ ॥' कषायाणां क्रोधमानमायालोभानां जयार्थं तपः कषायजयतपः । तत्रैकमेकं कषायं प्रति एकभक्तं १ निर्विकृतिकं २ आचाम्लो ३ पवासौ ४ रूपं प्रत्याख्यानचतुष्कं दिनचतुष्टयं । शेषेष्वप्येवं षोडशभिर्दिनैः पूर्यते । यन्त्रकन्यासः । उद्यापने षोडशसङ्ख्यसर्वफलजातिपक्वान्नषड्विकृतिढौकनं देवाग्रे । यतिभ्योऽप्येतद्वस्तुदानं । एतत्फलं सर्वकषायविनाशः ।

| ६ कषायजयतपआगाढं १६ | | | | |
|---|---|---|---|---|
| क्रोध | ए १ | नि १ | आं १ | उप १ |
| मान | ए १ | नि १ | आं १ | उप १ |
| माया | ए १ | नि १ | आं १ | उप १ |
| लोभ | ए १ | नि १ | आं १ | उप १ |

इति यतिश्राद्धकरणीयमागाढं कषायजतपः ॥६॥ ॥ अथ योगशुद्धितपः। 'योगे प्रत्येकमरसमायाम्लं याप्युपोषितं । एवं नवदिनैर्योगशुद्धिः संपूर्यते ततः ॥ १ ॥' योगानां मनोवाक्कायानां शुद्धिकारित्वाद्योगशुद्धिः । तत्र मनःप्रति प्रथमेऽह्नि निर्विकृतिकं १ । द्वितीये आचाम्लं २ तृतीये उपवासः ३ एवं वचःकायौ प्रत्यपि । एवं नवभिर्दिनैः पूर्यते । यन्त्रन्यासः । उद्यापने जिनाग्रे षड्विकृतिढौकनं । साधुभ्यस्तद्दानं । एतत्फलं मनोवाक्कायानां शुद्धता भवति ।

| ७ योगशुद्धतपआगा ९ | | | |
|---|---|---|---|
| मन | नि १ | आं १ | उ १ |
| वचन | नि १ | आं १ | उ १ |
| काया | नि १ | आं १ | उ १ |

इति यतिश्राद्धकरणीयमागाढं योगशुद्धितपः ॥ ७ ॥ ॥ अथ धर्मचक्रतपः।' विधाय प्रथमं षष्ठं षष्टिमेकान्तरं तथा । उपवासं धर्मचक्रे कुर्याद्व्यधिकवासरे' ॥ १ ॥' धर्मस्य चक्रं समूहः । अथवा भगवतोऽर्हतोऽतिशयरूपं धर्मचक्रं तत्प्राप्तिहेतुत्वाद्धर्मचक्रं । तत्र पूर्वं षष्ठतपः ततोऽनन्तरं षष्टिरुपवासा एकान्तरिताः । एवं विंशत्यु-

धेय यत्तदागाद जगौ जिनः ॥ २ ॥' इति जिनोक्तानि तपांसि ॥ ॥ अथ गीतार्थाचीर्णानि तपास्यभिधी-
यन्ते । यथा । तत्र प्रथम कल्याणकतपः । उपजातिः—'यस्मिन्दिने तीर्थकरस्य गर्भावतारजन्मव्रतकेवलानि ।
मोक्षो भवेद्यात्र दिने तपो यत्कल्याणक तत्समुदाहरन्ति ॥ १ ॥ कल्याणक एकस्मिन्नेकाशनमेतयोर्द्वये वि-
रस । आचाम्ल त्रितयेपि हि चतुष्टयेप्यनशन प्राहुः ॥ २ ॥ एव कृत्वा प्रतिवर्षं पूर्यते वर्षसप्तकात् । कल्या-
णतप एतद्धि तद्दिनान्यागमाद्विदेत् ॥ ३ ॥'—सम्म नमिऊण जिणे चउवीस तेसि चेव पत्तेय । वुच्छं चुइजम्म-
णदिक्खानाणनिव्वाणकल्लाणे ॥ १ ॥ कत्तियबहुले पचमि समवनाण दुवालसीएऊ । नेमि चुइ पउमजम्मो
तेरसि पउमप्पहे दिक्खा ॥ २ ॥ पनरसि मुक्खो वीरे सिअबारसि तइअ अरसुविहिनाण । मग्गसिरक-
सिणपचमि जम्मो सुविहिस्स छट्ठवय ॥ ३ ॥ दसमीइ वीरदिक्खा इक्कारसि पउमनाहनिव्वाणो । सिअद-
समि जम्म मुक्खो अरस्स इक्कारसीइ पुणो ॥ ४ ॥ अरदिक्खा नमिनाण मल्लिजिणे जम्मदिक्खनाणाइ ।
चउद्दसि जम्मो पुन्निम निक्खमणं समवजिणस्स ॥ ५ ॥ पोसाइदसमिगारसि पासे बारसीतेरसीससिणो ।
जहसंख जम्मवया सीयलनाण चउद्दसीए ॥ ६ ॥ सुद्धेलट्ठी विमले नवमी संतिस्सि कारसी अजिए । अभि
नन्दणे चउद्दसि पुन्निमधम्मे अ नाणाइं ॥ ७ ॥ माहाइछट्टि पउमचुइ बारसी सीअलस्स जम्मवया । तेरसि
मुक्खाउसभे सिज्जसेऽमावसा नाण ॥ ८ ॥ सियबीयनाणजम्मा वसुपुज्जभिनदणाण अह जम्मो । तइआइ
विमलधम्माण चउत्थि दिक्खाइ विमलस्स ॥ ९ ॥ अट्ठमि जम्मो अजिए नवमीबारसीतेरसीसु वय । अजि-

इति यतिश्राद्धविधेय आगाढ लघुअष्टाह्निकातपोद्वय ॥ १० ॥ ॥ अथ कर्मसूदनतप' । 'प्रत्याख्यानान्यष्टौ प्रत्येक कर्मणां विघाताय । इति कर्मसूदनतपः पूर्णं स्याद्गुरस ६४ मिताहोभि' ॥ १ ॥ उपवास १ मेकभक्त २ तथैकसिक्थं ३ कस-स्थिती ४ दत्ति ५ । निर्विकृतिक ६ माचाम्ल ७ चाष्टमास ८ कमा-त्कुर्यात् ॥ २ ॥' कर्माणि ज्ञानावरण १ दर्शनावरण २ वेदनीय ३ मोहनीय ४ आयु ५ नाम ६ गोत्र ७ अन्तराय ८ रूपाणि सूदयति सर्वथा छिनत्तीति कर्मसूदन। तत्रैक कर्म १ प्रति उपवास २ एकसिक्थ ३ एकस्थान ४ एकदत्ति ५ निर्विकृतिक ६ आचाम्ल ७ अष्टकवल ८ रूप । दिनाष्टकें प्रत्याख्यानाष्टक कुर्यात् । एव कर्माष्टकेपि । एव च-तुःषष्ट्या दिनैः पूर्यन्ते । यन्त्रकन्यासः । उद्यापने रूप्यमय वृक्ष स्वर्ण-मय कुठार मोदकचतुःषष्टिं पुस्तकाग्रे ढौकयेत् । वृहत्स्नात्रविधिना

११ कर्मसूदनतपः आगाढं दिन ६४

| | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| ज्ञाना | उ | ए | सी | एग | एद | नि | आं | अष्ट |
| दर्शना | उ | ए | सी | एग | एद | नि | आं | अ॰ |
| वेद | उ | ए | सी | एग | एद | नि | आं | अ॰ |
| मोह | उ | ए | सी | एग | एद | नि | आं | अ॰ |
| आयु | उ | ए | सी | एग | एद | नि | आं | अ॰ |
| नाम | उ | ए | सी | एग | एद | नि | आं | अ॰ |
| गोत्र | उ | ए | सी | एग | एद | नि | आं | अ॰ |
| अन्त | उ | ए | सी | एग | एद | नि | आं | अ॰ |

जिनस्नात्र सघपूजा च । एतत्फल कर्मक्षयः । इति यतिश्राद्धविधेयमागाढं कर्मसूदनतपः ॥ ११ ॥ इत्येव यति-श्राद्धकरणीयानि जिनोक्तान्येकादशतपासि सपूर्णानि ॥ ॥ 'उद्यापने च गृहिभिः कार्यं कर्म यथोदित । कारार्प्य यतिभिः श्राद्धास्तदभावे च मानस ॥ १ ॥ यद्दिनान्तरित कार्यं तदनागाढमुच्यते । एकश्रेण्या दि-

धेय यत्तद्गगाद जगौ जिनः ॥ २ ॥' इति जिनोक्तानि तपांसि ॥ ॥ अथ गीतार्थाचीर्णानि तपांस्यभिधीयन्ते । यथा । तत्र प्रथम कल्याणकतपः । उपजातिः—'यस्मिन्दिने तीर्थकरस्य गर्भावतारजन्मव्रतकेवलानि । मोक्षो बभूवात्र दिने तपो यत्कल्याणकं तत्समुदाहरन्ति ॥ १ ॥ कल्याणके एकस्मिन्नेकाशनमेतयोर्द्वये चिरस । आचाम्ल त्रितयेपि हि चतुष्टयेप्यनशन प्राहुः ॥ २ ॥ एवं कृत्वा प्रतिवर्षं पूर्यते वर्षसप्तकात् । कल्याणतप एतद्धि तद्दिनान्यागमाद्विदेत् ॥ ३ ॥'—सम्म नमिऊण जिणे चउवीस तेसि चेव पत्तेय । वुच्छं चुइजम्मणदिक्खानाणनिव्वाणकल्लाणे ॥ १ ॥ कत्तियबहुले पचमि समवनाण दुवालसीएऊ । नेमि चुइ पउमजम्मो तेरसि पउमप्पहे दिक्खा ॥ २ ॥ पनरसि मुक्खो वीरे सिअबारसि तइअ अरसुविहिनाण । मग्गसिरकसिणपचमि जम्मो सुविहिस्स छट्ठचय ॥ ३ ॥ दसमीइ वीरदिक्खा इक्कारसि पउमनाहनिव्वाणो । सिअदसमि जम्म मुक्खो अरस्स इक्कारसीइ पुणो ॥ ४ ॥ अरदिक्खा नमिनाण मल्लिजिणे जम्मदिक्खनाणाइ । चउद्दसि जम्मो पुन्निम निक्खमण सभवजिणस्स ॥ ५ ॥ पोसाइदसमिगारसि पासे बारसीतेरसीससिणो । जइसख जम्मवया सीयलनाण चउद्दसीए ॥ ६ ॥ सुद्धेछट्ठी विमले नवमी संतिस्सि कारसी अजिए । अभिनन्दणे चउद्दसि पुन्निमधम्मे अ नाणाइ ॥ ७ ॥ माहाइछट्टि पउमचुइ बारसी सीअलस्स जम्मवया । तेरसि मुक्खाउसभे सिज्जसेऽमावसा नाण ॥ ८ ॥ सियबीयनाणजम्मा वसुपुज्जभिनदणाण अट्ठ जम्मो । तइआई विमलधम्माण चउत्थि दिक्खाइ विमलस्स ॥ ९ ॥ अट्ठमि जम्मो अजिए नवमीबारसीतेरसीसु वय । अजि-

शक्तिसंघपूजा । एतत्फल दुर्गतरभाव । इति यतिश्राद्धविधेय आगाढ [illegible]
अथ कर्मसूदनतप । 'प्रत्याख्यानान्यष्टौ प्रत्येक कर्मणा विघाताय । इति कर्मसूदनतप पूर्णं स्याद्गुरस ६४ मिताहोभिः ॥ १ ॥ उपवास १ मेकभक्त २ तथैकसिक्थै ३ कस्थिती ४ दत्ति ५ । निर्विकृतिक ६ माचाम्ल ७ चाष्टग्रास ८ क्रमास्कुर्यात् ॥ २ ॥' कर्माणि ज्ञानावरण १ दर्शनावरण २ वेदनीय ३ मोहनीय ४ आयु ५ नाम ६ गोत्र ७ अन्तराय ८ रूपाणि सूदयति सर्वथा छिनत्तीति कर्मसूदन। तत्रैकं कर्म १ प्रति उपवास २ एकसिक्थ ३ एकस्थान ४ एकदत्ति ५ निर्विकृतिक ६ आचाम्ल ७ अष्टकवल ८ रूप । दिनाष्टके प्रत्याख्यानाष्टक कुर्यात् । एव कर्माष्टकेपि । एव चतुःषष्ट्या दिनैः पूर्यन्ते । यन्त्रकन्यासः । उद्यापने रूप्यमय वृक्ष स्वर्णमय कुठार मोदकचतुःषष्टिं पुस्तकाग्रे ढौकयेत् । बृहत्स्नात्रविधिना

११ कर्मसूदनतपः आगाढ दिन ६४

| | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| ज्ञाना | उ | ए | सी | एग | एद | नि | आं | अट |
| दर्शना | उ | ए | सी | एग | एद | नि | आं | अ० |
| वेद | उ | ए | सी | एग | एद | नि | आं | अ० |
| मोह | उ | ए | सी | एग | एद | नि | आं | अ० |
| आयु | उ | ए | सी | एग | एद | नि | आं | अ० |
| नाम | उ | ए | सी | एग | एद | नि | आं | अ० |
| गोत्र | उ | ए | सी | एग | एद | नि | आं | अ० |
| अंत | उ | ए | सी | एग | एद | नि | आं | अ० |

जिनस्नात्र सघपूजा च । एतत्फल कर्मक्षयः । इति यतिश्राद्धविधेयमागाढं कर्मसूदनतपः ॥ ११ ॥ इत्येव यतिश्राद्धकरणीयानि जिनोक्तान्येकादशतपांसि सपूर्णानि ॥ ॥ 'उद्यापने च गृहिभिः कार्यं कर्म यथोदित । काराप्यं यतिभिः श्राद्धास्तदभावे च मानस ॥ १ ॥ यद्दिनान्तरितं कार्यं तदनागाढमुच्यते । एकश्रेण्या वि-

धेय यत्तवागाढ जगौ जिनः ॥ २ ॥' इति जिनोक्तानि तपासि ॥ ॥ अथ गीतार्थाचीर्णानि तपास्यभिधीयन्ते । यथा । तत्र प्रथम कल्याणकतपः । उपजातिः—'यस्मिन्दिने तीर्थकरस्य गर्भावतारजन्मव्रतकेवलानि । मोक्षो यमूघात्र दिने तपो यत्कल्याणक तत्समुदाहरन्ति ॥ १ ॥ कल्याणक एकस्मिन्नेकाशनमेतयोर्द्वये विरस । आचाम्ल त्रितयेपि हि चतुष्टयेप्यनशन प्राहुः ॥ २ ॥ एव कृत्वा प्रतिवर्षं पूर्यते वर्षसप्तकात् । कल्याणतप एतद्धि तद्दिनान्यागमाद्विदेत् ॥ ३ ॥'—सम्म नमिऊण जिणे चउवीस तेसि चेव पत्तेय । वुच्छं चुइजम्मणदिक्खानाणनिव्वाणकल्लाणे ॥ १ ॥ कत्तियबहुले पचमि सभवनाण दुवालसीएऊ । नेमि चुइ पउमजम्मो तेरसि पउमप्पहे दिक्खा ॥ २ ॥ पनरसि मुक्खो वीरे सिअयारसि तइअ अरसुविहिनाणं । मग्गसिरकसिणपचमि जम्मो सुविहिस्स छट्ठचय ॥ ३ ॥ दसमीइ वीरदिक्खा इक्कारसि पउमनाहनिव्वाणो । सिअदसमि जम्म मुक्खो अरस्स इक्कारसीइ पुणो ॥ ४ ॥ अरदिक्खा नमिनाण मल्लिजिणे जम्मदिक्खनाणाइ । चउद्दसि जम्मो पुन्निम निक्खमण सभवजिणस्स ॥ ५ ॥ पोसाइदसमिगारसि पासे वारसीतेरसीससिणो । जइसंख जम्मवया सीयलनाण चउद्दसीए ॥ ६ ॥ छुद्देलट्ठी विमले नवमी संतिस्सि कारसी अजिए । अभिनन्दणे चउद्दसि पुन्निमधम्मे अ नाणाइं ॥ ७ ॥ माहाइछट्टि पउमचुइ वारसी सीअलस्स जम्मवया । तेरसि मुक्खाउसभे सिज्जसेऽमावसा नाण ॥ ८ ॥ सियवीयनाणजम्मा वसुपुज्जभिनदणाण अह जम्मो । तइआई विमलधम्माण चउत्थि दिक्खाइ विमलस्स ॥ ९ ॥ अट्ठमि जम्मो अजिए नवमीवारसीतेरसीसु वय । अजि

शक्तिसघपूजा । एतत्फल दुर्गतेरभाव । इति यतिश्राद्धविधेय आगाढ लघुअष्टाह्निकातपोद्वय ॥ १० ॥ ॥
अथ कर्मसूदनतपः । 'प्रत्याख्यानान्यष्टौ प्रत्येक कर्मणां विघाताय । इति कर्मसूदनतपः पूर्णं स्याद्युगरस ६४ मिताहोभिः ॥ १ ॥ उपवास १ मेकभक्तं २ तथैकसिक्थै ३ कस्थिती ४ दत्ति ५ । निर्विकृतिक ६ माचाम्ल ७ चाष्टग्रास ८ क्रमात्कुर्यात् ॥ २ ॥' कर्माणि ज्ञानावरण १ दर्शनावरण २ वेदनीय ३ मोहनीय ४ आयु ५ नाम ६ गोत्र ७ अन्तराय ८ रूपाणि सूदयति सर्वथा छिनत्तीति कर्मसूदन। तत्रैक कर्म १ प्रति उपवास २ एकसिक्थ ३ एकस्थान ४ एकदत्ति ५ निर्विकृतिक ६ आचाम्ल ७ अष्टकवल ८ रूप । दिनाष्टके प्रत्याख्यानाष्टक कुर्यात् । एष कर्माष्टकेपि । एव चतु'षष्ट्या दिनैः पूर्यन्ते । यन्त्रकन्यासः । उद्यापने रूप्यमय वृक्ष स्वर्णमय कुठार मोदकचतुःषष्टि पुस्तकाग्रे ढौकयेत् । बृहत्स्नात्रविधिना जिनस्नात्र सघपूजा च । एतत्फल कर्मक्षयः । इति यतिश्राद्धविधेयमागाढ कर्मसूदनतपः ॥ ११ ॥ इत्येव यतिश्राद्धकरणीयानि जिनोक्तान्येकादशतपासि सपूर्णानि ॥ ॥ 'उद्यापने च गृहिभिः कार्यं कर्म यथोदित । काराप्यं यतिभिः श्राद्धात्तदभावे च मानस ॥ १ ॥ यद्दिनान्तरितं कार्यं तदनागाढमुच्यते । एकश्रेण्या वि-

| ११ कर्मसूदनतपः आगाढं दिन ६४ | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| ज्ञाना | उ | ए | सी | एग | एद | नि | आं | अट |
| दर्शना | उ | ए | सी | एग | एद | नि | आं | अ० |
| वेद | उ | ए | सी | एग | एद | नि | आं | अ० |
| मोह | उ | ए | सी | एग | एद | नि | आं | अ० |
| आयु | उ | ए | सी | एग | एद | नि | आं | अ० |
| नाम | उ | ए | सी | एग | एद | नि | आं | अ० |
| गोत्र | उ | ए | सी | एग | एद | नि | आं | अ० |
| अंत | उ | ए | सी | एग | एद | नि | आं | अ० |

अट्ठमि नमिजम्मु नवमि कुंथुचुई । सिअवीअ सुओ सुमई पंचमि छट्ठि नेमिजम्मवया ॥ २४ ॥ पासस्सट्ठमि मुक्खो सुवयजुइ पुन्निमाइ भद्दवए । संतिससि चवणमुक्खो सत्तमि अट्ठमि सुपासचुई ॥ २५ ॥ सियनवमि सुविहिमुक्खो नेमिस्सा सोअवमायसानाण । पुन्निम मुनअनमिजिनसहुइ पयवेसु पणयाण ॥ २६ ॥ नारकाणामपि मुहूर्तप्रमोदकारित्वाद्विश्वत्रयस्य कल्याणकराणीति कल्याणकानि । तानिच शुभदिने कल्याणकदिने मारभ्यन्ते । यस्या यस्यां तिथौ आगमवचनेन जिनाना कल्याणकमायाति तच्च च्यवनजन्मदीक्षाज्ञाननिर्वाणलक्षण । तद्दिने एकस्मिन्कल्याणके एकभक्त द्वयोर्निर्विकृतिक त्रिष्वाचाम्ल चतुर्पूपवासः । पञ्चकल्याणकसगमे प्रथमदिने उपवासो द्वितीयदिने एकभक्त ॥ एंग उववासो दो अयिलाइ निविआइ तेरस हवंति । एगासणाइ चुलसी कल्लाणतवस्स परिमाण ॥ १ ॥ एव वर्ष सपूर्य वर्षसप्तकमेवमेव कुर्यात् । तदन्ते उद्यापने जिनाग्रतश्चतुर्विंशतिसख्यया स्नानपट्टस्नात्रकलशवन्दनपात्रधूपदहनपात्रपरिधापनिकानैवेद्यपात्रकुम्पिकाप्रभृतिपूजोपकरणाना बृहत्स्नात्रविधिना जिनस्नात्र चतुर्विंशतिसख्यया सर्वपक्वान्नजातिफलजातिढौकनं चतुर्विंशतिस्वर्णमयरत्नजटिततिलकदान साधुभ्यो वस्त्रान्नपात्रदान सघवात्सल्य सघपूजा च । अथवा जिनाना च्यवनजन्मदिनेषु प्रत्येकमेकैकोपवासः । दीक्षाज्ञाननिर्वाणेषु येन तीर्थंकरेण यादृक् तपो रचित तादृगेवैकान्तरोपवासरीत्या विधीयते । इय द्वितीया कल्याणकतपोरीतिः ॥ यन्त्रकन्यासः । उद्यापन पूर्ववत् । एतत्फल तीर्थंकर-

१ उपवास एकना चार एकासणा ४ आयम्बिल एकना त्रण गणतां ६ निविना बेगणतां २६–८४ एकासणा सर्व मळीने १२० एकासणानि० ।

अभिनंदणधम्माण फग्गुणे कसिणछट्ठीए ॥ १० ॥ नाणसुपासे सत्तमि सुपासमुक्खो ससिस्स नाण च । सुविहिचुईनवमीए इक्कारसि नाणमुसभस्स ॥ ११ ॥ सिज्जसजम्मसुधय नाण बारसहिदिक्खसेअसे । तेरसि चउदसि जम्मो पनरसि दिक्खाइ वसुपुज्जे ॥ १२ ॥ सियथीय चउत्थि अट्ठमि चवण अरमल्लिसभवजिणाण । बारसि मुक्खो मल्लिस्स जयइ मुणिसुव्वयवय च ॥ १३ ॥ चित्ताइचउत्थि पासे चवण नाण च पचमी चवण । ससिणो धसमे अट्ठमि जम्मवया सुद्धतइयाए ॥ १४ ॥ कुथूनाण पचमि सिद्धीसभव अणतअजियाण । नवमिहि मुक्खो सुविहस्स नाण मिक्कारसीए य ॥ १५ ॥ तेरसिजम्मो वीरे पुसिमपउमस्स नाणमह पहूले । वइसाहपढिवबीआ कुथु तह सीअले मुक्खो ॥ १६ ॥ पचमीहिं कुथुदिक्खा सीअलचुइ छट्ठि दसमि नमि-मुक्खो । तेरसि जम्मो चउदसि दिक्खा नाण अणतस्स ॥ १७ ॥ चउदसि जाओ कुथु सिअचउत्थिचुओभि-नंदणो जयइ । सत्तमि धम्मोवि चुओ अट्ठमि अभिनदणो सिद्धो ॥ १८ ॥ जम्मट्ठमि नवमियव सुमइ जिणे दसमि केवल वीरे । बारसि तेरसि चुअ विमल अजिय अह जिट्ठबहुलमि ॥ १९ ॥ छट्ठि चुई सेअसे सुवय-जम्मट्ठमी नवमिमुक्खो । तेरसि जम्म मुक्खो चउदसि दिक्खा य सतिस्स ॥२०॥ सिअपचमी य मुक्खो धम्मे नवमीइ वासुपुज्जचुई । बारसि सुपासजम्मो तेरसि दिक्खा सुपासस्स ॥ २१ ॥ आषाढाइचउत्थी उसभचुई सत्तमी विमलमुक्खो । नमिदिक्खा नवमीए सिअछट्ठिहिं वीरजिणचवण ॥ २२ ॥ अट्ठमि सिद्धो नेमी वसुपुज्जो निव्वुओ चउदसीए । सावणबहुले तइआ सिद्धिगओ जयइ सेअसो ॥ २३ ॥ सत्तमि चवणमणते

अट्ठमि नमिजम्मु नवमि कुंथुचुई । सिअपीअ चुओ सुमई पचमि छट्ठि नेमिजम्मवया ॥ २४ ॥ पासस्सट्ठमि मुक्खो सुधयचुइ पुन्निमाइ भद्दवए । सत्तिससि चवणमुक्खो सत्तमि अट्ठमि सुपासचुई ॥ २५ ॥ सियनवमि सुविहिमुक्खो नेमिस्सा सोअघमावसानाण । पुन्निम मुनअनमिजिनवल्लह पयदेसु पणयाण ॥ २६ ॥ नारकाणामपि मुहूर्तप्रमोदकारित्वाद्भिश्वत्रयस्य कल्याणकराणीति कल्याणकानि । तानिच शुभदिने कल्याणकदिने प्रारभ्यन्ते । यस्यां यस्यां तिथौ आगमवचनेन जिनाना कल्याणकमायाति तत्र च्यवनजन्मदीक्षाज्ञाननिर्वाणलक्षण । तद्दिने एकस्मिन्कल्याणके एकभक्त द्वयोर्निर्वृत्तिक त्रिषाचाम्ल चतुर्षूपवासः । पञ्चकल्याणकसगमे प्रथमदिने उपवासो द्वितीयदिने एकभक्त ॥ ऐग उववासो दो अबिलाइ निविआइ तेरस हवति । एगासणाइं चुलसी कल्लाणतवस्स परिमाण ॥ १ ॥ एव सर्व सपूर्य वर्षसप्तकमेवमेव कुर्यात् । तदन्ते उद्यापने जिनाग्रतश्चतुर्विशतिसख्यया स्नानपट्टस्नात्रकलशचन्दनपात्रधूपदहनपात्रपरिधापनिकानैवेद्यपात्रकुम्पिकाप्रभृतिपूजोपकरणाना बृहत्स्नात्रविधिना जिनस्नात्र चतुर्विशतिसख्यया सर्वपक्वान्नजातिफलजातिढौकनं चतुर्विशतिस्वर्णमयरत्नजटिततिलकदान साधुभ्यो वस्त्रान्नपात्रदान सघवात्सल्य सघपूजा च । अथवा जिनाना च्यवनजन्मदिनेषु प्रत्येकमेकैकोपवास. । दीक्षाज्ञाननिर्वाणेषु येन तीर्थकरेण यादृक् तपो रचित तादृगेवैकान्तरोपवासरीत्या विधीयते । इय द्वितीया कल्याणकतपोरीतिः ॥ यन्त्रकन्यासः । उद्यापन पूर्ववत् । एतत्फल तीर्थकर-

१ उपवास एकमा चार एकासणा ४ आचाम्ल एकमा त्रण गणवां ३ निविना बेगणसां २६–८४ एकासणा सर्व मळीने १२० एकासणानि० ।

नामकर्मबन्ध. । इति यतिश्राद्धविधेयमागाढ कल्याणकतप ॥ १ ॥ ॥ अथ ज्ञानतप । [illegible]
त्रिभिर्वापि निरन्तरैः । कार्यं ज्ञानतपश्चोद्यापने ज्ञानस्य
पूजन ॥ १ ॥ ज्ञानाराधनार्थं तपः ज्ञानतपः। तत्रोपवासत्रय
एकान्तरं निरन्तर वा यथाशक्ति विधीयते। उद्यापने सा-
धुभ्यः वस्त्रान्नपात्रदान । इति श्राद्धकरणीयमागाढ ज्ञान-

| ४ ज्ञानादित्रीणि तपांसि आगाढानि ३ | | | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| ज्ञान | उ | उ | उ | अप | उ | पा | उ | पा | उ | पा |
| दर्श | उ | उ | उ | अप | उ | पा | उ | पा | उ | पा |
| चारि | उ | उ | उ | अप | उ | पा | उ | पा | उ | पा |

तपः ॥ २ ॥ ॥ दर्शनतपोपि ज्ञानवत् । नवर उद्यापने वृहत्स्नात्रविधिना स्नात्र जिनप्रतिमाग्रे पङ्क्तिढौकन साधुभ्यो वस्त्रान्नपात्रदान सम्यक्त्वोद्भावनाश्रवण । एतत्फल विमलबोधिप्राप्तिः । इति यतिश्राद्धकरणीयमागाढं दर्शनतपः ॥ ३ ॥ ॥ चारित्रतपोपि ज्ञानवत् ॥ यन्त्रकन्यासः । नवर उद्यापने यतिभ्य पङ्क्तिवस्त्रान्नपात्रदान । एतत्फल विमलचारित्रप्राप्ति । इति यतिश्राद्धकरणीयमागाढ चारित्रतपः ॥ ४ ॥ ॥ अथ चान्द्रायणतपः ॥ चान्द्रायण च द्विविध प्रथम यवमध्यम । द्वितीय वज्रमध्य तु तयोश्चर्या विधीयते ॥ १ ॥ यवमध्ये प्रतिपद् शुक्लामारभ्य वृद्धितः । एकैकयोर्ग्रासदत्त्यो राका यावत्समानयेत् ॥ २ ॥ ततः कृष्णप्रतिपदमारभ्यैकैकहानितः । अमावास्यां तदेकत्वे यवमध्य च पूर्यते ॥ ३ ॥ वज्रमध्ये कृष्णपक्षमारभ्य प्रतिपत्तिथिः । कार्या पञ्चदशग्रासदत्तिभ्यां हानिरेकत ॥ ४ ॥ अमावास्यां परतो ग्रासदत्ती विवर्धयेत् । यावत्पञ्चदशैव स्यु. पूर्णमास्यां च मासतः ॥ ५ ॥ एव मासद्वयेन स्यात्पूर्णं च यववज्रकं । चान्द्रायणं यतेर्दत्तैः तस्या ग्रासस्य

# अथ चाद्रायणतपः

| | | | |
|---|---|---|---|
| १ मास | ६ कार्तिकवदि | | |
| प ५ | माण संभवजिणस्स | उप | २ |
| नि १२ | चवण नेमिजिणस्स | उप | १ |
| १२ | जम्मो पउमप्पहस्स | उप | १ |
| प १३ | दिक्खा पउमप्पहस्स | उप | २ |
| प १५ | मुक्खो वीरजिणस्स | उप | २ |
| | कार्तिकसुदि | | |
| प ३ | नाण सुविहिजिणस्स | उप | १ |
| प १२ | नाण अरनाहस्स | उप | २ |
| २ मास | मार्गसिरवदि | | |
| प ५ | जम्मो सुविहिनाहस्स | उ | १ |
| प ६ | दिक्खा सुविहिनाहस्स | उ | २ |
| प १० | दिक्खा वीरजिणस्स | उ | २ |
| प ११ | मुक्खो पउमप्पहस्स | उ | १० |

| | | | |
|---|---|---|---|
| | मार्गसिरसुदि | | |
| नि १० | जम्मो अरजिणस्स | उ | १ |
| १० | मुक्खो अरजिणस्स | उ | १० |
| उ ११ | दिक्खा अरजिणस्स | उ | २ |
| ११ | नाण नमिजिणस्स | उ | २ |
| ११ | जम्मो मल्लिजिणस्स | उ | १ |
| ११ | दिक्खा मल्लिजिणस्स | उ | ३ |
| प ११ | नाण मल्लिजिणस्स | उ | ३ |
| प १४ | जम्मो संभवजिणस्स | उ | १ |
| प १५ | दिक्खा संभवजिणस्स | उ | २ |
| ३ मास | पौषवदि | | |
| प १० | जम्मो पासजिणस्स | उ | १ |
| प ११ | दिक्खा पासजिणस्स | उ | ३ |
| प १२ | जम्मो चंदप्पहस्स | उ | १ |
| प १३ | दिक्खा चंदप्पहस्स | उ | २ |
| प १४ | नाण सीयलजिणस्स | उ | २ |

| | | | |
|---|---|---|---|
| | पौषसुदि | | |
| प ६ | नाण विमलजिणस्स | उ | २ |
| प ९ | नाण संतिजिणस्स | उ | २ |
| प ११ | नाण अजियजिणस्स | उ | २ |
| प १४ | नाणं अभिनंदणस्स | उ | २ |
| प १५ | नाण धम्मनाहस्स | उ | २ |
| ४ मास | माघवदि | | |
| प ६ | चवण पउमप्पहस्स | उ | १ |
| नि १२ | जम्मो सीयलजिणस्स | उ | १ |
| १२ | दिक्खा सीयलजिणस्स | उ | २ |
| प १३ | मुक्खो रिसहजिणस्स | उ | ६ |
| प १५ | नाण सेयंसजिणस्स | उ | २ |
| | माघसुदि | | |
| नि २ | नाण वासुपुज्जस्स | उ | १ |
| २ | जम्मो अभिणंदणस्स | उ | १ |

नामकर्मबन्धः । इति यतिश्राद्धविधेयमागाढ कल्याणकतप ॥ १ ॥ ॥ अथ ज्ञानतप । एकान्तरोपवासैश्च त्रिभिर्वापि निरन्तरैः । कार्यं ज्ञानतपश्चोद्यापने ज्ञानस्य पूजन ॥ १ ॥ ज्ञानाराधनार्थं तपः ज्ञानतपः। तत्रोपवासत्रय एकान्तर निरन्तर वा यथाशक्ति विधीयते। उद्यापने साधुभ्यः वस्त्रान्नपात्रदान । इति श्राद्धकरणीयमागाढ ज्ञानतप ॥ २ ॥

| ४ ज्ञानादित्रीणि तपांसि आगाढानि ३ | | | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| ज्ञान | उ | उ | उ | अप | उ | पा | उ | पा | उ | पा |
| दर्श | उ | उ | उ | अप | उ | पा | उ | पा | उ | पा |
| चारि | उ | उ | उ | अप | उ | पा | उ | पा | उ | पा |

॥ दर्शनतपोपि ज्ञानवत् । नवर उद्यापने बृहत्स्नात्रविधिना स्नात्र जिनप्रतिमाग्रे पङ्क्तिढौकन साधुभ्यो वस्त्रान्नपात्रदान सम्यक्त्वोद्भावनाश्रवण । एतत्फलं विमलबोधिप्राप्तिः । इति यतिश्राद्धकरणीयमागाढ दर्शनतप ॥ ३ ॥ ॥ चारित्रतपोपि ज्ञानवत् ॥ यन्त्रकन्यासः । नवर उद्यापने यतिभ्य पङ्क्तिकृतिवस्त्रान्नपात्रदान । एतत्फल विमलचारित्रप्राप्तिः । इति यतिश्राद्धकरणीयमागाढ चारित्रतपः ॥ ४ ॥ ॥ अथ चान्द्रायणतपः ॥ चान्द्रायण च द्विविध प्रथम यवमध्यम । द्वितीय वज्रमध्य तु तयोश्चर्या विधीयते ॥ १ ॥ यवमध्ये प्रतिपद शुक्लामारभ्य वृद्धितः । एकैकयोर्ग्रासदत्त्यो राका यावत्समानयेत् ॥ २ ॥ ततः कृष्णप्रतिपदमारभ्यैकैकहानितः । अमावास्या तदेकस्ये यवमध्य च पूर्यते ॥ ३ ॥ वज्रमध्ये कृष्णपक्षमारभ्य प्रतिपत्तिथिः । कार्या पञ्चदशग्रासदत्तिभ्यां हानिरेकतः ॥ ४ ॥ अमावास्याश्च परतो ग्रासदत्ती विवर्धयेत् । यावत्पञ्चदशैव स्युः पूर्णमास्यां च मासतः ॥ ५ ॥ एव मासद्वयेन स्यात्पूर्णं च यववज्रकं । चान्द्रायण यतेर्दत्तैः सत्या ग्रासस्य

| | | वैशाखसुदि | | |
|---|---|---|---|---|
| प | ४ | चवण अभिनंदनस्स | उ | १ |
| प | ७ | चवण धम्मस्सजिणस्स | स | १ |
| मि | ८ | मुक्खो अभिनंदणस्स | उ | १० |
| | ८ | जम्मो सुमइजिणस्स | स | १ |
| प | ९ | दिक्खा सुमइ० " | उ | १ |
| प | १० | नाण वीरजिणस्स | उ | २ |
| प | १२ | चवण विमलजिणस्स | उ | १ |
| प | १३ | चवण अजियजिणस्स | उ | १ |

| ८ मास | | ज्येष्ठवदि | | |
|---|---|---|---|---|
| प | ६ | चवण सेयंसस्स | उ | १ |
| प | ८ | जम्मो मुणिसुव्वय | स | १ |
| ९ | ९ | मुक्खो मुणिसुव्वय | उ | १० |
| मि | १३ | जम्मो संतिना० | स | १ |
| | १३ | मुक्खो संतिना० | उ | १० |
| प | १४ | दिक्खा संतिना० | स | २ |

| | | ज्येष्ठसुदि | | |
|---|---|---|---|---|
| प | ५ | मुक्खो धम्मनाहस्स | स | १० |
| प | ९ | चवण वासुपुज्जस्स | स | १ |
| प | १२ | जम्मो सुपासस्स | उ | १ |
| प | १३ | दिक्खा सुपासस्स | उ | २ |

| ९ मास | | आषाढवदि | | |
|---|---|---|---|---|
| प | ४ | चवण रिसहस्स | उ | १ |
| प | ७ | मुक्खो विमलस्स | उ | १० |
| प | ९ | दिक्खा नमिनाहस्स | स | २ |

| | | आषाढसुदि | | |
|---|---|---|---|---|
| प | ६ | चवण वीरजिणस्स | उ | १ |
| प | ८ | मुक्खो नेमिजिणस्स | उ | १० |
| प | १४ | मुक्खो वासुपुज्जस्स | उ | १० |

| १० मास | | श्रावणवदि | | |
|---|---|---|---|---|
| प | ३ | मुक्खो सेयंसस्स | स | १० |
| प | ७ | चवण अणंतस्स | उ | १ |
| प | ८ | जम्मो नमिनाहस्स | उ | १ |
| प | ९ | चवण कुंथुनाहस्स | उ | १ |

| | | श्रावणसुदि | | |
|---|---|---|---|---|
| प | २ | चवण सुमति० | उ | १ |
| प | ५ | जम्मो नेमि० | स | १ |
| प | ६ | दिक्खा नेमि० | उ | २ |
| प | ८ | मुक्खो पास० | उ | १० |
| प | १५ | च० मुनिसु० | उ | १ |

| ११ मास | | भाद्रपदवदि | | |
|---|---|---|---|---|
| प | ७ | चवण संतिस्स | उ | १ |
| प | ७ | मु० चंदप्पहस्स | उ | १ |
| प | ८ | चवण सुपासस्स | स | १ |

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| मि | १ | जम्मो बिमलस्स | ठ | १ |
| | १ | जम्मो धम्मनाहस्स | ठ | १ |
| प | ३ | सिक्खा बिमलस्स | ठ | २ |
| प | ८ | जम्मो अजियजिणस्स | ठ | १ |
| प | ९ | सिक्खा अजियजिणस्स | ठ | २ |
| प | १२ | सिक्खा अभिनंदणस्स | ठ | २ |
| प | १३ | सिक्खा धम्मस्स | ठ | २ |

| ५ मास | | फागुणवदि | | |
|---|---|---|---|---|
| प | ६ | नाण सुपासस्स | ठ | २ |
| मि | ७ | सुक्खो सुपासस्स | ठ | १० |
| | ७ | नाण चदप्पहस्स | ठ | २ |
| प | ९ | चवणं सुविहिस्स | ठ | १ |
| प | ११ | नाण रिसहस्स | ठ | ३ |
| मि | १२ | जम्मो सेअंसस्स | ठ | १ |
| | १२ | नाण मुणिसुव्वयस्स | ठ | २ |
| प | १३ | सिक्खा सेअंसस्स | ठ | २ |
| प | १४ | जम्मो वासुपुज्जस्स | ठ | १ |
| प | १५ | सिक्खा वासुपुज्जस्स | ठ | १ |

| | | फागुणसुदि | | |
|---|---|---|---|---|
| प | २ | चवण अरजिणस्स | ठ | १ |
| प | ४ | चवण मल्लिजिणस्स | ठ | १ |
| प | ८ | चवण संभवजिणस्स | ठ | १ |
| मि | १२ | सुक्खो मल्लिजिणस्स | ठ | १० |
| | १२ | सिक्खा मुणिसुव्वयस्स | ठ | २ |

| ६ मास | | चेत्रवदि | | |
|---|---|---|---|---|
| मि | ४ | चवण पासजिणस्स | ठ | १ |
| | ४ | नाण पासजिणस्स | ठ | ३ |
| प | ५ | चवण चदप्पहस्स | ठ | १ |
| | ८ | जम्मो रिसहजिणस्स | ठ | १ |
| मि | ८ | सिक्खा रिसहजिणस्स | ठ | २ |

| | | चेत्रसुदि | | |
|---|---|---|---|---|
| प | ३ | नाण कुंथुजिणस्स | ठ | २ |
| ओ | ५ | सुक्खो संभवजिणस्स | ठ | १० |

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| | ५ | सुक्खो अणंतजिनस्स | ठ | १० |
| | ५ | सुक्खो अजियजिनस्स | ठ | १० |
| प | ९ | सु० सुमइजिणस्स | ठ | १० |
| प | ११ | नाण सुमइजिनस्स | ठ | २ |
| प | १३ | जम्मो महावीरस्स | ठ | १ |
| प | १५ | नाण पउमप्पहस्स | ठ | २ |

| ७ मास | | वैशाखवदि | | |
|---|---|---|---|---|
| प | १ | सुक्खो कुंथुनाहस्स | ठ | १० |
| प | २ | सुक्खो सीयलजिणस्स | ठ | १० |
| प | ५ | सिक्खा कुंथुनाहस्स | ठ | २ |
| प | ६ | चवण सीयलजिणस्स | ठ | १ |
| प | १० | सुक्खो नमिजिणस्स | ठ | १० |
| प | १३ | जम्मो अणंतजिणस्स | ठ | १ |
| पुओ | १४ | सिक्खा अणंतजिणस्स | ठ | २ |
| | १४ | नाण अणंतजिणस्स | ठ | २ |
| | १४ | जम्मो कुंथुजिणस्स | ठ | १ |

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| | | वैशाखसुदि | | |
| प | ४ | चवणं अभिनंदणस्स | उ | १ |
| प | ७ | चवण धम्मस्सजिणस्स | उ | १ |
| मि | ८ | मुक्खो अभिणंदणस्स | उ | १० |
| | ८ | जम्मो सुमइजिणस्स | उ | १ |
| प | ९ | दिक्खा सुमइ० " | उ | १ |
| प | १० | नाण वीरजिणस्स | उ | २ |
| प | १२ | चवण विमलजिणस्स | उ | १ |
| प | १३ | चवण अजियजिणस्स | उ | १ |
| ८मास | | ज्येष्ठवदि | | |
| प | ६ | चवण सेयंसस्स | उ | १ |
| प | ८ | जम्मो मुणिसुव्वय | उ | १ |
| ९ | ९ | मुक्खो मुणिसुव्वय | उ | १० |
| मि | १३ | जम्मो संतिना० | उ | १ |
| | १३ | मुक्खो संतिना० | उ | १० |
| प | १४ | दिक्खा संतिना० | उ | २ |

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| | | ज्येष्ठसुदि | | |
| प | ५ | मुक्खो धम्मनाहस्स | उ | २० |
| प | ९ | चवण वासुपुज्जस्स | उ | १ |
| प | १२ | जम्मो सुपासस्स | उ | १ |
| प | १३ | दिक्खा सुपासस्स | उ | २ |
| ९ मास | | आषाढवदि | | |
| प | ४ | चवण रिसहस्स | उ | १ |
| प | ७ | मुक्खो विमलस्स | उ | १० |
| प | ९ | दिक्खा नमिनाहस्स | उ | २ |
| | | आषाढसुदि | | |
| प | ६ | चवण वीरजिणस्स | उ | १ |
| प | ८ | मुक्खो नेमिजिणस्स | उ | १० |
| प | १४ | मुक्खो वासुपुज्जस्स | उ | २० |

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| १०मास | | श्रावणवदि | | |
| प | ३ | मुक्खो सेयंसस्स | उ | १० |
| प | ७ | चवण अणंतस्स | उ | १ |
| प | ८ | जम्मो नमिनाहस्स | उ | १ |
| प | ९ | चवण कुंथुनाहस्स | उ | १ |
| | | श्रावणसुदि | | |
| प | २ | चवण सुमति० | उ | १ |
| प | ५ | जम्मो नेमि० | उ | १ |
| प | ६ | दिक्खा नेमि० | उ | २ |
| प | ८ | मुक्खो पास० | उ | १० |
| प | १५ | च० मुनिसु० | उ | १ |
| ११मास | | भाद्रवावदि | | |
| प | ७ | चवण संतिस्स | उ | १ |
| प | ७ | मु० चंदप्पभस्स | उ | १ |
| प | ८ | चवण सुपासस्स | उ | १ |

देहिनाम् ॥ ६ ॥ चन्द्रस्य अयन हानिवृद्धिभिस्तद्रूप तच्चान्द्रायण । यव-
मध्यं स्थूलमाद्यन्तहीन मध्य यस्य तद्यवमध्यं । वज्रमध्य सूक्ष्म-
माद्यन्तस्थूल मध्य यस्य तद्वज्रमध्य । अत्र स्थूलहीनते दत्तिग्रासयह
स्वस्तोकस्वप्रतिबद्धे । पूर्वं यवमध्यचान्द्रायणे शुक्ले प्रतिपदमारभ्य एकै-
कग्रासदत्तिवृद्ध्या पूर्णिमायावत्पञ्चदशसंख्ये कवलदत्ती जायेते आद्य-
यत्योः । ततः कृष्णप्रतिपदमारभ्यैकैकहान्या यावदमावास्या आद्य-
त्योरेकैकग्रासदत्ती जायेते । इति यवमध्यचान्द्रायण ॥ वज्रमध्ये तु
कृष्णप्रतिपदमारभ्य पञ्चदशसंख्यग्रासदत्तिभ्यामेकैकहान्या आद्यत्यो-
रमावास्यामेकैकग्रासदत्ती जायेते । ततः शुक्लप्रतिपदमारभ्यैकैकग्रासद-

| | | |
|---|---|---|
| | भाद्रवासुदि | |
| ए ९ | शु० सुविधि | च १० |
| १२मास | आश्विनवदि | |
| ए ११ | गा० गर्भापहारस्स | च ३ |
| ए १५ | गा० नेमिजिनस्स | च ३ |
| | आश्विनसुदि | |
| ए १५ | चवन नमिनाहस्स | च १ |

| यवमध्यचान्द्रायणतपः शुक्लपक्षेवृद्धिः | | | | | | | | | | | | | | | | यवमध्यचान्द्रायणतप कृष्णपक्षेहानिः। | | | | | | | | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| शुक्ल तिथि | १ क | २ क | ३ क | ४ क | ५ क | ६ क | ७ क | ८ क | ९ क | १० क | ११ क | १२ क | १३ क | १४ क | १५ क | १५ क | १४ क | १३ क | १२ क | ११ क | १० क | ९ क | ८ क | ७ क | ६ क | ५ क | ४ क | ३ क | २ क | १ क | कृष्णपक्षः |

| वज्रमध्यचान्द्रायणतपः कृष्णपक्षेहानिः | | | | | | | | | | | | | | | | वज्रमध्यचान्द्रायणतपः शुक्लपक्षेवृद्धिः | | | | | | | | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| कृष्ण तिथि | १५ क | १४ क | १३ क | १२ क | ११ क | १० क | ९ क | ८ क | ७ क | ६ क | ५ क | ४ क | ३ क | २ क | १ क | १ क | २ क | ३ क | ४ क | ५ क | ६ क | ७ क | ८ क | ९ क | १० क | ११ क | १२ क | १३ क | १४ क | १५ क | शुक्लपक्षः |

त्तिवृद्ध्या आद्यपत्यो' पूर्णिमां यावत्पञ्चदशग्रासवृत्ती भवतः । एवं वज्रमध्यचान्द्रायणमपि मासेन पूर्यते । यवन्यासः । एवं मासद्वयं पूरयित्वा उद्यापने बृहत्स्नात्रविधिना स्नात्रं विधाय षड्विकृतिनैवेद्यसहितं रूप्यमयं चन्द्रं सुवर्णमयं वज्रं सुवर्णमयांश्च षष्टिकावत्कवलसंख्यया मोदकांश्चाशीत्यधिकचतु'शतसंख्यानि ४८० जिनप्रतिमाग्रे ढौकयेत् । साधुभ्यो वस्त्रान्नपात्रदानं संघपूजा च । एतत्फलं सर्वपापापगमः पुण्यवृद्धिश्च । इति यतिश्राद्धकरणीयमागाढं द्विविधं चान्द्रायणतपः ॥ ५ ॥ ॥ अथ वर्धमानतपः । 'ऋषभादेर्जिनसंख्यावृद्ध्या

| ६ वर्धमानतपदिन ६२५ | | | | | | | | | | अथैकैक जिनप्रति संख्यादि ६२५ आगाढदिन २५ | | | | | | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| ऋषभ | अ | सं | अ | सु | प | सु | चं | सु | शी | श्रे | वा | वि | अ | ध | शां | कुं | अ | म | मु | न | ने | पा | वर्ध |
| १ उ | २ उ | ३ उ | ४ उ | ५ उ | ६ उ | ७ उ | ८ उ | ९ उ | १० उ | ११ उ | १२ उ | १३ उ | १४ उ | १५ उ | १६ उ | १७ उ | १८ उ | १९ उ | २० उ | २१ उ | २२ उ | २३ उ | २४ उ |
| वर्ध | पा | ने | न | मु | म | अ | कुं | शां | ध | अ | वि | वा | श्रे | शी | सु | चं | सु | प | सु | अ | सं | अ | ऋ |
| १ उ | २ उ | ३ उ | ४ उ | ५ उ | ६ उ | ७ उ | ८ उ | ९ उ | १० उ | ११ उ | १२ उ | १३ उ | १४ उ | १५ उ | १६ उ | १७ उ | १८ उ | १९ उ | २० उ | २१ उ | २२ उ | २३ उ | २४ उ |
| ऋष | अ | सं | अ | सु | प | सु | चं | सु | शी | श्रे | वा | वि | अ | ध | शां | कुं | अ | म | मु | न | ने | पा | वर्द्ध |
| २५ उ | २५ उ | २५ उ | २५ उ | २५ उ | २५ उ | २५ उ | २५ उ | २५ उ | २५ उ | २५ उ | २५ उ | २५ उ | २५ उ | २५ उ | २५ उ | २५ उ | २५ उ | २५ उ | २५ उ | २५ उ | २५ उ | २५ उ | २५ उ |

| | | |
|---|---|---|
| प ९ | भाद्रवासुदि<br>सु० सुविधि | द १० |
| १२मास<br>प ११<br>प १५ | आश्विनवदि<br>मा० गर्भापहारस्य<br>मा० नेमिभिमस्य | द ६<br>द ६ |
| प १५ | आश्विनसुदि<br>वर्धमानस्य | द १ |

देहिनाम् ॥ ६ ॥ चन्द्रस्य अयन हानिवृद्धिभिस्तत्रव तथान्द्रायण । यव-मन्मध्य स्थूलमाद्यन्तहीन मध्य यस्य तद्यवमध्यं । वज्रवन्मध्य सूक्ष्म-माद्यन्तस्थूल मध्य यस्य तद्वज्रमध्य । अत्र स्थूलहीनते वृत्तिग्रासयद्वु स्वस्तोकस्वप्रतिपद्दे । पूर्वं यवमध्यचान्द्रायणे शुक्ले प्रतिपदमारभ्य एके-कग्रासदत्तिवृद्ध्या पूर्णिमांयावत्पञ्चदशसख्ये कवलदत्ती जायेते आद्य-यस्योः । ततः कृष्णप्रतिपदमारभ्यैकैकहान्या यावदमावास्या आद्यप-त्योरेकैकग्रासदत्ती जायेते । इति यवमध्यचान्द्रायण ॥ वज्रमध्ये तु कृष्णप्रतिपदमारभ्य पञ्चदशसख्यग्रासदत्तिभ्यामेकैकहान्या आद्यपत्यो-रमावास्यामेकैकग्रासदत्ती जायेते । ततः शुक्लप्रतिपदमारभ्यैकैकग्रासद-

| | यवमध्यचान्द्रायणतपः शुक्लपक्षेवृद्धिः | | | | | | | | | | | | | | | यवमध्यचान्द्रयणतपः कृष्णपक्षेहानिः । | | | | | | | | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| शुक्ल तिथि | १ क | २ क | ३ क | ४ क | ५ क | ६ क | ७ क | ८ क | ९ क | १० क | ११ क | १२ क | १३ क | १४ क | १५ क | १५ क | १४ क | १३ क | १२ क | ११ क | १० क | ९ क | ८ क | ७ क | ६ क | ५ क | ४ क | ३ क | २ क | १ क | कृष्णपक्षः |
| | वज्रमध्यचान्द्रायणतपः कृष्णपक्षेहानिः | | | | | | | | | | | | | | | वज्रमध्यचान्द्रायणतपः शुक्लपक्षेवृद्धिः | | | | | | | | | | | | | | | |
| कृष्ण तिथि | १५ क | १४ क | १३ क | १२ क | ११ क | १० क | ९ क | ८ क | ७ क | ६ क | ५ क | ४ क | ३ क | २ क | १ क | १ क | २ क | ३ क | ४ क | ५ क | ६ क | ७ क | ८ क | ९ क | १० क | ११ क | १२ क | १३ क | १४ क | १५ क | शुक्लपक्ष |

त्तिवृद्ध्या श्राद्धयत्यो. पूर्णिमां यावत्पञ्चदशग्रासदत्ती भवतः । एव वज्रमध्यचान्द्रायणमपि मासेन पूर्यते । यन्नन्यासः । एव मासद्वय पूरयित्वा उद्यापने वृहत्स्नात्रविधिना स्नात्र विधाय पङ्क्तिकृतिनैवेद्यसहित रूप्यमय चन्द्र सुवर्णमय वज्र सुवर्णमयाश्च षष्टिकावत्कवलसंख्यया मोदकाश्चाशीत्यधिकचतुःशतसख्यानि ४८० जिनप्रतिमाग्रे ढौकयेत् । साधुभ्यो वस्त्रान्नपात्रदान सघपूजा च । एतत्फल सर्वपापापगमः पुण्यवृद्धिश्च । इति यतिश्राद्धकरणीयमागाढं द्विविध चान्द्रायणतपः ॥ ५ ॥ ॥ अथ वर्धमानतपः । ऋषभादेर्जिनसख्यावृद्ध्या

६ वर्धमानतपदिन ६२५ अथैकैक जिनप्रति सख्यादि ६२५ आगाढंदिन २५

| | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| ऋषभ | अ | सं | अ | सु | प | सु | चं | सु | शी | श्रे | वा | वि | अ | ध | शां | कु | अ | म | मु | न | ने | पा | वर्ध |
| १ उ | २ उ | ३ उ | ४ उ | ५ उ | ६ उ | ७ उ | ८ उ | ९ उ | १० उ | ११ उ | १२ उ | १३ उ | १४ उ | १५ उ | १६ उ | १७ उ | १८ उ | १९ उ | २० उ | २१ उ | २२ उ | २३ उ | २४ उ |
| वर्ध | पा | ने | न | मु | म | अ | कु | शां | ध | अ | वि | वा | श्रे | शी | सु | चं | सु | प | सु | अ | सं | अ | ऋ |
| १ उ | २ उ | ३ उ | ४ उ | ५ उ | ६ उ | ७ उ | ८ उ | ९ उ | १० उ | ११ उ | १२ उ | १३ उ | १४ उ | १५ उ | १६ उ | १७ उ | १८ उ | १९ उ | २० उ | २१ उ | २२ उ | २३ उ | २४ उ |
| ऋ | अ | सं | अ | सु | प | सु | चं | सु | शी | श्रे | वा | वि | अ | ध | शां | कु | अ | म | मु | न | ने | पा | वर्ध |
| २५ उ | २५ उ | २५ उ | २५ उ | २५ उ | २५ उ | २५ उ | २५ उ | २५ उ | २५ उ | २५ उ | २५ उ | २५ उ | २५ उ | २५ उ | २५ उ | २५ उ | २५ उ | २५ उ | २५ उ | २५ उ | २५ उ | २५ उ | २५ उ |

तावन्ति चैकभक्तानि । वीरादेरप्येव चलमान वर्धमानतप ॥ १ ॥ अथवैकैकमर्हत प्रत्येकाशनकानि च । पश्च विंशतिसंख्यानि षट्शताद्येन पूर्यंते ॥ २ ॥ वर्धते तद्वर्धमान । तत्र ऋषभनाथस्यैकमेकभक्त अजितस्य द्वे एव क्रमेण यावच्छ्रीवर्धमानस्य चतुर्विंशतिः पुनर्वलमानरीत्या श्रीवर्धमानस्यैकैकभक्त पार्श्वनाथस्य द्वे पाचदृष-मस्य पश्चानुपूर्व्या पञ्चविंशतिः इतिपरिवर्तनद्वायनैका रीतिः । अथवैकैक जिनप्रति पश्चविंशतिसंख्यान्येक-भक्तानि विधेयानि । इय द्वितीया रीतिः । रीतिद्वयमपि षट्शताद्यात्पञ्चविंशत्युत्तरात् ६२५ समाप्यते । तपःकाङ्क्षिणा द्वयोर्मध्यादेका रीतिः षट्शताद्येन पञ्चविंशत्युत्तरेण समाप्या । यन्त्रकन्यास । उद्यापने चतु-र्विंशतिजिनानां बृहत्स्नात्रविधिना स्नात्र चतुर्विंशतिसंख्यपुष्पफलपक्वान्नजातिढौकन । संघवात्सल्य संघ पूजा च । एतत्फल तीर्थंकरनामकर्मबन्धः । इति श्राद्धकरणीयमागाढ वर्धमानतप ॥ ६ ॥ ॥ अथ परमभूषण-तपः । द्वात्रिंशदाचाम्लैरेकभक्तैस्तदन्तरे । वासराणा चतुष्षष्ट्या तप. परमभूषण ॥१॥ परमाणि भूषणानि

७ परमभूषणतपः आगाढ दिनसंख्या ६४

| | | | | | | | | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| आं | ए | आं | ए | आं | ए | आं | ए | आं | ए | आं | ए | आं | ए | आं | ए |
| आं | ए | आं | ए | आं | ए | आं | ए | आं | ए | आं | ए | आं | ए | आं | ए |
| आं | ए | आं | ए | आं | ए | आं | ए | आं | ए | आं | ए | आं | ए | आं | ए |
| आं | ए | आं | ए | आं | ए | आं | ए | आं | ए | आं | ए | आं | ए | आं | ए |

ज्ञानदर्शनचारित्रादीनि यस्मात्परमभूषण । अत्रैकाशनैकान्तरितानि द्वात्रिंशदाचाम्लानि कुर्यात्। चतु-
पष्टिदिनै पूर्यते । यन्त्रकन्यासः । उद्यापने बृहत्स्नात्रविधिपूर्वक जिनप्रतिमाया सुवर्णमयरत्नजटितसर्वाङ्गी-
णाभरणदान द्वात्रिंशत्सङ्ख्यया सर्वपक्वान्नफलढौकन । एतत्फल परमसंपद्गुणप्राप्तिः ॥ दीक्षातपसि चार्ह-

८ दीक्षातप अनागाढं दिन ७२

| ऋ | अ | सं | अ | सु | प | सु | च | सु | शी | श्रे | वा | वि | म | ध | शां | कु | अ | म | मु | न | ने | पा | वीर |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| उ ८ | उ ८ | उ ८ | उ ८ | उ ८ | उ ८ | उ प | उ प | उ प | उ प | उ प | उ प | उ प | उ प | उ प | उ प | उ प | उ प | उ प | उ प | उ प | उ प | उ प | उ प |
| २ १ | २ १ | २ १ | १ | २ १ | २ १ | २ १ | २ १ | २ १ | २ १ | १ १ | २ १ | २ १ | २ १ | २ १ | २ १ | २ १ | १ १ | २ १ | २ १ | २ १ | २ १ | १ १ | २ १ |

द्भिर्येनैव तपसां व्रत । जगृहे तत्तथा कार्यमेकान्तरितयुक्तितः ॥ १ ॥ तद्यथा । सुमइत्थ निच्चभत्तेण वासु-
पुज्जो जिणो चउत्थेण । सो मल्लीवि अ अट्ठमेण सेसा उ छट्ठेण ॥ १ ॥ अर्हतां दीक्षयानुकरणीय तपः दी-
क्षातपः । तत्र सुमतिनित्यभक्तेन दीक्षा जगृहे तत्रैकभक्त कार्यं । वासुपूज्यो जिनोपि चतुर्थेन पार्श्वो मल्लिर-
ष्टमेन शेषा षष्ठेन एवमेकैकान्तरितैकभक्तैरुपवासा विधीयन्ते । यन्त्रकन्यासः । उद्यापने एकभक्त बृहत्स्ना-
त्रविधिना जिनस्याग्रे अष्टप्रकारपूजा षड्विकृतिढौकन । एतत्फल विमलव्रतावाप्तिः । इति यतिश्राद्धकरणीय-
मर्हद्दीक्षातपः ॥ ८ ॥ ॥ अथ ज्ञानतपः । 'येन तीर्थकृता येन तपसा ज्ञानमाप्यते । तत्तत्तथा विधेय

९ केवलज्ञानतपः अनागाढ दिन ७५।९

| ऋ | | अ | | सं | | अ | | सु | | प | | सु | | चं | | सु | | सी | | श्रे | | वा | | वि | | अ | | ध | | शां | | कु | | अ | | म | | मु | | न | | ने | | पा | | वीर | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| उ | ए | उ | ए | उ | ए | उ | ए | उ | ए | उ | ए | उ | ए | उ | ए | उ | ए | उ | ए | उ | ए | उ | ए | उ | ए | उ | ए | उ | ए | उ | ए | उ | ए | उ | ए | उ | ए | उ | ए | उ | ए | उ | ए | उ | ए | उ | ए |
| १ | १ | २ | १ | २ | १ | २ | १ | २ | १ | २ | १ | २ | १ | २ | १ | २ | १ | २ | १ | २ | १ | २ | १ | २ | १ | २ | १ | २ | १ | २ | १ | २ | १ | २ | १ | २ | १ | २ | १ | २ | १ | २ | १ | २ | १ | २ | १ |

स्यादेकान्तरितषष्ठित: ॥ १ ॥' यथा । अट्ठमभत्तवसणे पासो सह मल्लिरिट्ठनेमीण । वासुपुज्जचउत्थेण छट्ठ-भत्तेण सेसाण ॥ १ ॥ ज्ञानेनोपलक्षित तपो ज्ञानतपः तत्र श्रीऋषभमल्लिनेमिपार्श्वानामष्टमेन वासुपूज्यस्य चतुर्थेन शेषाणां षष्ठेन एव मनुष्येणाप्येकान्तरितोपवासैकभक्तैः कार्यं । यन्त्रकन्यास. । उद्यापन दीक्षावत् । एतत्फल विशुद्धिज्ञानावाप्तिः । इति यतिश्राद्धकरणीयमनागाढ केवलज्ञानतपः ॥ ९ ॥ ॥ अथ निर्वाणतप. ।

१० निर्वाणतपः अनागाढ दिन ६५।२

| ऋ | | अ | | सं | | अ | | सु | | प | | सु | | चं | | सु | | सी | | श्रे | | वा | | वि | | अ | | ध | | शां | | कु | | अ | | म | | मु | | न | | ने | | पा | | वीर | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| उ | ए | उ | ए | उ | ए | उ | ए | उ | ए | उ | ए | उ | ए | उ | ए | उ | ए | उ | ए | उ | ए | उ | ए | उ | ए | उ | ए | उ | ए | उ | ए | उ | ए | उ | ए | उ | ए | उ | ए | उ | ए | उ | ए | उ | ए | उ | ए |
| १ | १ | १० | १ | १० | १ | १० | १ | १० | १ | २ | १ | २ | १ | १० | १ | १ | १ | २ | १ | २ | १ | १ | १ | १० | १ | १० | १ | २० | १ | १० | १ | १० | १ | १० | १ | २० | १ | १० | १ | २ | १ | १ | १ | १० | १ | २ | १ |

'येन तीर्थकृता येन तपसा मुक्तिराप्यते । तत्तत्तथा विधेय स्यादेकान्तरितछ्स्तितः ॥१॥' यथा—निर्वाणमंत-किरिया सा चउदसमेण पढमनाहस्स । सेसाण मासिएण वीरजिणंदस्स छट्टेण ॥ १ ॥ निर्वाणेनोपलक्षित तप प्रथमजिनेन्द्रस्य चतुर्दशमभक्तेन शेषाणा मासोपवासेन वीरस्य षष्ठेन एवमेकान्तरैकैकभक्तैर्विधेयानि । यन्त्रकन्यासः । उद्यापने बृहत्स्नात्रपूर्वं चतुर्विंशतिसंख्यया सर्वं फलनैवेद्यपकान्नढौकन साध्वर्चन सघपूजा च । एतत्फल भवाष्टकान्तर्मोक्षप्राप्तिः । इति यतिश्राद्धकरणीयमागाढ निर्वाणतपः ॥ अत्र दीक्षाज्ञाननिर्वा-णतपसा कल्याणकतपस्यप्यन्तर्भावोऽस्ति । परस्त्वेष विशेषः कल्याणकतपसा आगाढतया कल्याणकदिनाना प्रत्याख्यानस्पर्शेन सपद्यते । एतानि यथायोगमनागाढतया तत्कृततपःसख्यया यथायोगेन सपद्यन्ते । एकस्मि-न्दिने च्यवनादिकल्याणकद्वये एकैकस्य जिनस्य वा दिनद्वयस्य वा आराधन कृत्वा भोक्तव्य पारणक कर्त-व्यमित्यर्थे नियमो नास्ति। पर दीक्षाज्ञाननिर्वाणकल्याणकत्रयेऽपि दिनत्रयस्याराधन कृत्वा ततः पारण विधेय। एकस्याराधन कृत्वा न करणीय। एतानि तपास्येकान्तरोपवासैः कर्तव्यानि ॥ १० ॥ ॥ अथ ऊनोदर्यतपः । तच्च पञ्चविधमागमे । यथा । अप्पाहार १ अवड्ढा २ दुभाग ३ पत्ता ४ तहेव देसूणा ५ । अट्ठ ८ दुवालस १२ सोलस १६ चउवीस २४ तहिकतीसाय ३१ ॥ १ ॥ ऊनोदरस्य भाव ऊनोदर्यं १ । अथ यथासख्यसम्बन्धः । स यथा । एकादिभिरष्टान्तैः कवलैरल्पाहारा १ नवादिभिर्द्वादशान्तैः कवलैरपार्धा २ त्रयोदशादिभिः षोड-शान्तैर्द्विभागा ३ सप्तदशादिभिश्चतुर्विंशत्यन्तैः प्राप्ता ४ पञ्चविंशत्यादिभिरेकत्रिंशदन्तैः किंचिदूना ५ । इय

९ केवलज्ञानतपः अनागाढं दिन ७५।९

| ऋ | | अ | | सं | | अ | | सु | | प | | सु | | च | | सु | | शी | | श्रे | | वा | | वि | | अ | | ध | | शां | | कु | | अ | | म | | मु | | न | | ने | | पा | | वीर | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| उ | प | उ | प | उ | प | उ | प | उ | प | उ | प | उ | प | उ | प | उ | प | उ | प | उ | प | उ | प | उ | प | उ | प | उ | प | उ | प | उ | प | उ | प | उ | प | उ | प | उ | प | उ | प | उ | प | उ | प |
| १ | १ | २ | १ | २ | १ | २ | १ | २ | १ | २ | १ | २ | १ | २ | १ | २ | १ | २ | १ | २ | १ | २ | १ | २ | १ | २ | १ | २ | १ | २ | १ | २ | १ | २ | १ | १ | २ | २ | १ | १ | १ | १ | १ | १ | १ | २ | १ |

स्याद्वेकान्तरितभूषित' ॥ १ ॥' यथा । अट्ठमभत्तवसणे पासो सह मल्लिरिट्ठनेमीण । वासुपुज्जचउत्थेण छट्ठभत्तेण सेसाण ॥ १ ॥ ज्ञानेनोपलक्षितं तपो ज्ञानतप' तत्र श्रीऋषभमल्लिनेमिपार्श्वानामष्टमेन वासुपूज्यस्य चतुर्थेन शेषाणां षष्ठेन एव मनुष्येणाप्येकान्तरितोपवासैकभक्तैः कार्यं । यन्त्रकन्यासः । उद्यापन दीक्षावत् । एतत्फल विशुद्धिज्ञानावाप्तिः । इति यतिश्राद्धकरणीयमनागाढ केवलज्ञानतपः ॥ ९ ॥ ॥ अथ निर्वाणतपः ।

१० निर्वाणतपः अनागाढं दिन ६५।२

| ऋ | | अ | | सं | | अ | | सु | | प | | सु | | च | | सु | | शी | | श्रे | | वा | | वि | | अ | | ध | | शां | | कु | | अ | | म | | मु | | न | | ने | | पा | | वीर | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| उ | प | उ | प | उ | प | उ | प | उ | प | उ | प | उ | प | उ | प | उ | प | उ | प | उ | प | उ | प | उ | प | उ | प | उ | प | उ | प | उ | प | उ | प | उ | प | उ | प | उ | प | उ | प | उ | प | उ | प |
| ९ | १ | १० | १ | १० | १ | १० | १ | १ | १ | २ | १ | १ | १ | १ | १ | १० | १ | १० | १ | २० | १ | १० | १ | २ | १ | १ | १ | १० | १ | १० | १ | २० | १ | १० | १ | १० | १ | १० | १ | २ | १ | १ | १ | १० | १ | २ | १ |

शतिग्रासा उत्कृष्टा ५ । पञ्चदशभिर्दिनैः पूर्यते । यन्त्रकन्यासः । एषा द्रव्योनोदरिका ॥ ॥ भाषोनोदरिका

| ११पुरुषस्त्रोनोदरिका तप आगार ग्रा० | | जघन्यमध्यमो त्कृष्टे | लोकप्रवाहोनोद रीतपः | | स्त्रियमल्पूनोदर्यतपः | आगार | | ज म उ ग्रासः | स्त्रियां | लोकप्रवा होनोदरी |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| अस्सा- हारा | ११२१३१४ ५१६१७१८ | ज १ म २१३१४१५ उ ६१७१८ | प्रथमदिने | कवल ८ | ११२१३१४१५१६१७ | अस्सा | ज ११२ म | ३१४१५१६ १७ | प्रथम दिने | कवल ७ |
| उपा र्धा | ९१९०१११ १२ | ज ९ म १०११ उ १२ | द्वितीयदिने | कव ल१२ | ८१९१९०१११ | उपा | ज ८ म ९ | उ० १०१११ | द्वितीय दिने | कव ल११ |
| द्विभा गा | १३१९४१९५ १६ | ज१३ म १४ उ १५ १६ | तृतीयदिने | कव ल१६ | १२१९३१९४ | द्विभा | ज १२ म १३ | उ० १४ | तृतीय दिने | कव ल१४ |
| प्राप्ता | १७१९८१९९ २०१२११२२ २३१२४ | ज १७११८म१९१२० २११२२ उ २३१२४ | चतुर्थदिने | कव ल२४ | १५११६११७११८११९ २०१२१ | प्राप्ता | ज १५११६ | म१७११८११९ उ २०१२१ | चतुर्थ दिने | कव ल२१ |
| किंचि- दूना | २५१२६१२७ २८१२९१३० ३१ | ज २५१२६१ म २७। २८१२९ उ ३०१३१ | पञ्चमदिने | कव ल३१ | २२१२३१२४१२५१ २६१२७ | किंचि | ज २२१२३१ २६१२७ | म २४१२५ उ | पञ्चम दिने | कव ल२७ |

च पञ्चविधाप्यूनोदरिका प्रत्येकं त्रिभेदा भावनीया । सा यथा । एकादिभिः कवलैर्जघन्या द्व्यादिभिर्मध्यमा अष्टादिभिरुत्कृष्टा । एवं पञ्चविधापि तत्तद्भागकवलैस्त्रिविधा ज्ञेया । तत्राल्पाहारा एकग्रासेन जघन्या द्वित्रिचतुःपञ्चग्रासैर्मध्यमा षट्सप्ताष्टग्रासैरुत्कृष्टा १ । उपार्धा नवग्रासैर्जघन्या दशैकादशग्रासैर्मध्यमा द्वादशभिरुत्कृष्टा २ । द्विभागा त्रयोदशभिर्ग्रासैर्जघन्या चतुर्दशपञ्चदशभिर्मध्यमा षोडशभिरुत्कृष्टा ३ । प्राप्ता सप्तदशाष्टादशभिर्ग्रासैर्जघन्या एकोनविंशतिविंशत्येकविंशतिद्वाविंशतिभिर्मध्यमा त्रयोविंशतिचतुर्विंशतिभिरुत्कृष्टा ४ । किंचिदूना पञ्चविंशतिषड्विंशतिग्रासैर्जघन्या । सप्तविंशत्यष्टाविंशत्येकोनत्रिंशद्भिर्मध्यमा । त्रिंशदेकत्रिंशद्भिरुत्कृष्टा ५ । एवं द्वात्रिंशत्कवलसंख्यया पुरुषस्यैवमूनोदरिका पञ्चदशदिनैः पूर्यते । स्त्रियास्तु सप्तविंशतिकवलानुसारेण तत्तद्भागैः पञ्चविधाप्यूनोदरिका । सा यथा । एकादिसप्तान्तैरल्पाहारा १ । अष्टाद्येकादशान्तैरुपार्धा २ । द्वादशादिचतुर्दशान्तैर्द्विभागा ३ । पञ्चदशाद्येकविंशत्यन्तैः प्राप्ता ४ । द्वाविंशत्यादिसप्तविंशत्यन्तैः किंचिदूना ५ । एभिरपि जघन्यमध्यमोत्तमभागैः प्रत्येकं त्रिधा । यथा । अल्पाहारा एकद्विग्रासा जघन्या त्रिचतुःपञ्चग्रासा मध्यमा षट्सप्तग्रासा उत्कृष्टा १ । उपार्धा अष्टग्रासा जघन्या नवग्रासा मध्यमा दशैकादशग्रासा उत्कृष्टा २ । द्विभागा द्वादशग्रासैर्जघन्या त्रयोदशभिर्मध्यमा चतुर्दशभिरुत्कृष्टा ३ । प्राप्ता पञ्चदशषोडशभिर्ग्रासैर्जघन्या सप्तदशाष्टादशैकोनविंशतिग्रासैर्मध्यमा विंशतिएकविंशतिग्रासा उत्कृष्टा ४ । किंचिदूना द्वाविंशतित्रयोविंशतिग्रासा जघन्या चतुर्विंशतिपञ्चविंशतिग्रासा मध्यमा षड्विंशतिसप्तविं-

शतिमासा उत्कृष्टा ५ । पञ्चदशभिर्दिनैः पूर्यते । पञ्चकन्यासः । एषा द्रव्योनोदरिका ॥ ॥ भावोनोदरिका

| ११पुरुषऊणोदरिका तप आगार प्रा० | | जघन्यमध्यमोत्कृष्टे | ओकप्रथाहारोदरीतपः | | स्त्रियमस्त्रूणोदर्यतपः | आगार | | ज म उ प्रासः | स्त्रियां | ओकप्रथा ऊणोदरी |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| अस्वा-हारा | १।२।३।४। ५।६।७।८ | ज १। म २।३।४।५ उ ६।७।८ | प्रथमदिने | कवल ८ | १।२।३।४।५।६।७ | अस्वा | ज १।२। म | ३।४।५।६। ६।७ | प्रथम दिने | कवल ७ |
| उपा र्धा | ९।१०।११ १२ | ज ९। म १०।११ उ १२ | द्वितीयदिने | कव ल१२ | ८।९।१०।११ | उपा | ज ८ म ९ | उ० १०।११ | द्वितीय दिने | कव ल११ |
| द्विभा गा | १३।१४।१५ १६ | ज१३।म १४।उ १५। १६ | तृतीयदिने | कव ल१६ | १२।१३।१४ | द्विभा | म १२ म १३ | उ० १४ | तृतीय दिने | कव ल१४ |
| प्राप्ता | १७।१८।१९ २०।२१।२२ २३।२४ | ज १७।१८म१९।२० २१।२२ उ २३।२४ | चतुर्थदिने | कव ल२४ | १५।१६।१७।१८।१९ २०।२१ | प्राप्ता | ज १५।१६ | म१७।१८।१९ उ २०।२१ | चतुर्थ दिने | कव ल२१ |
| किंचि-दूना | २५।२६।२७ २८।२९।३० ३१ | ज २५।२६। म २७। २८।२९ उ ३०।३१ | पञ्चमदिने | कव ल३१ | २२।२३।२४।२५। २६।२७ | किंचि | ज २२।२३। २६।२७ | म २४।२५ उ | पञ्चम दिने | कव ल२७ |

पुनरागमे यथा । कोहाईण निरोहो षाओ जिणवयणभावणाओ अ । भावेनोणोदरिआ पन्नत्ता वीयराएहिं ॥ १ ॥ छोकषाद्दोनोदरी पुन' प्रथमदिने ग्रासानामष्टक ८ द्वितीये दिने द्वादशक १२ तृतीये षोडशक १६ चतुर्थे चतुर्विंशतिक २४ पञ्चमे एकत्रिंशतिक ३१ स्त्रिया पुनः प्रथमदिने ग्रासाना सप्तक ७ द्वितीये एकादशक ११ तृतीये चतुर्दशक १४ चतुर्थे एकविंशतिक २१ पञ्चमे सप्तविंशतिक २७ पञ्चभिर्दिने पूर्यते ॥ ज्ञानादित्रिकस्योनोदरिकाप्रमाणमागमोक्त यथा । नवचउसट्ठीपणवीससोलनवछसयसट्टि तह सोल । चउसट्ठीचउसट्ठी तीसा चउसयअसीअहिआ ॥ १ ॥ अडयालइक्कवण्णा छसयाअडसमहिया पच । नाणतिगाई ऊणोदर तु तघविणपमाणमिण ॥ २ ॥ उद्यापने जिनस्याष्टविधपूजा सघवात्सल्य सघपूजा च । एतत्फल विशिष्टभोगमोक्षप्राप्तिः । इति श्रीयतिश्राद्धकरणीयमागाढमोनोदर्यतपः ॥ ११ ॥ ॥ अथ सलेखनतपः । चत्तारि विचित्ताइ विगइनिजूहियाइ चत्तारि । सवच्छराइ दुन्नि उ एगतरिय च आयाम ॥ १ ॥ नाइविगिट्ठो

| |
|---|
| १२ संलेखनातप आगाढं एतानि तपांसि यथोक्तैकान्तरितानि वर्ष १२ |
| वर्ष ४ यावत् उ १। प । उ २। प । उ ३। प । उ ५प । उ ६। प उ १५।पाठ ३०प।पूरणीयौ |
| वर्ष ४ यावत् उ २ नि । उ ३ नि । उ ४ नि । उ ५ नि । उ ६। नि । उ १५ नि । उ ३०नि |
| वर्ष २ यावत् उ १ नि । आं । नि । इत्यादिपूरणीया |
| मास ६। यावत् उ १ आं । उ २। आं । उ ३ आं । पूरणीया |
| मास ६ यावत् उ ४ आं । उ ७। आं । पूरणीया |
| वर्ष १ यावत् । आचाम्लानि कर्तव्यानि |

अ तवो छम्मासे परिमिय तु आयामं। अवरे वि अद्धमासे होइ विगिट्ठ तवोकम्म ॥ २॥ वास कोडीसहिय आयामाय तु आणुपुव्वीए । एसो बारसवरिसाइ होइ सलेहणाइ तवो ॥ ३ ॥ सलिखितसर्वभावकृत

| १३ सर्वसंख्याश्रीमहावीरतपः अनागाढ | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| उप | १०८० | उप | ६० | उप | १२० | उप | ११ |
| ,, | ३६० | ,, | ६० | ,, | १२० | | |
| ,, | ४५ | ,, | ६० | ,, | १२० | ,, | १ |
| ,, | ४५ | ,, | ९० | ,, | १२० | | |
| ,, | ७५ | ,, | ९० | ,, | १८० | | |
| ,, | ७५ | ,, | ११० | ,, | १०५ | एवं दिन ४५ | |
| ,, | ६० | ,, | १२० | ,, | ४५८ | १५ वर्ष १२ मास ६ दिन | |
| ,, | ६० | ,, | १२० | ,, | ३६ | १५ एकान्तरेः | |
| ,, | ६० | ,, | १२० | ,, | ३४९ | पूर्ववे इति | |

| पक्ष पक्ष | मास पक्ष | मास १॥ | मास २॥ | मास २ | मास ३ | छठ | मास ४ | अठम | मास ६ | मास ६ ऊ ५ | प्रतिमा | भद्रदिन | पारणासर्वे | संख्या तपः | १२ वर्ष | ६॥ मास |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| ७२ | १२ | २ | २ | ६ | २ | २२९ | ९ | १२ | १ | १ | १६ | १ | ३४९ | | | |

पाप विशोषयतीति सलेखना। एतद्व्याख्यान यतिधर्मान्त्याधिकारादवसेय। एतत्फल सद्गतिः। यन्त्रन्यासः॥ इति यतिश्राद्धकरणीयमागाढ सलेखनातपः॥ १२ ॥ ॥ अथ सर्वसंख्याश्रीमहावीरतपः । महावीरेण कृत तपो महावीरतपः। तच्चेद् । नवकिरचाउम्मासे छक्किरदोमासिए उवासी अ। बारस य मासिआई बावत्तरिअद्धमासाइ ॥ १ ॥ इक्क किर छम्मास दो किर तेमासिए उवासीय। अड्ढाइज्जाइ दुवे दो चेव दुविड्ढमासाई ॥ २ ॥ भद्द च महाभद्द पडिम

तत्तो अ सवओ भद्द । दोचत्तारिदसेव य दिवसे ठासी अ अणुयद्ध ॥ ३ ॥ गोअरमभिग्गहजुअ खमणं छम्मासिय च कासी य । पंचदिवसेहिं ऊण अवहिओ वच्छनयरीऐ ॥ ४ ॥ दसदोअकिरमहप्पा ठाइमुणी- एगराइअ पडिमा । अट्ठमभत्तेण जई इक्किक्क चरमरयणीय ॥ ५ ॥ दो चेव य छट्ठसए अउणातीसे उवासिओ भयवं । कयाइ निच्चभत्त चउत्थभत्तं च से आसि ॥ ६ ॥ तिण्णिसए दिवसाण अउणापण्णे उ पारणा- कालो । उक्कुडुअनिसिज्जाण पि अ पडिमाण सए बहुए ॥ ७ ॥ सवपि तवोकम्म अप्पाणय आसि वीरना- हस्स । पवज्जाए दिवसे पढमे खित्तमि सवमिण ॥ ८ ॥ बारस चेव य वासा मासा छच्चेव अद्धमासो अ । वीरवरस्स भगवओ एसो छउमत्थपरियाओ ॥ ९ ॥ बावत्तरिअद्धमासा बारमासिअ दुविवट्टय दोअड्ढाइ य छद्विमासा दुति नवचउमासि अ दो छम्मासा पंचदिनऊण छठदोस यगुणतीस य बारठम पारणाए तिसय अति वीरकेवलिलहिओ ॥ १ ॥ भगवान् श्रीमहावीरो द्वासप्ततिपक्षक्षपणानि द्वादशमासक्षपणानि द्वे सार्ध- मासक्षपणे द्वे सार्धद्विमासक्षपणे षट् द्विमासक्षपणानि द्वे त्रिमासक्षपणे नव चतुर्मासक्षपणानि एकं षण्मा- सक्षपण द्वितीय च षण्मासक्षपण पञ्चदिवसोनं कौशाम्ब्या एकोनत्रिंशदधिक षट्शतद्रूप द्वादशाष्टमानि एकोनपञ्चाशदधिक पारणादिनशतत्रय षोडश प्रतिमादिनानि व्रतग्रहण दिवस च अकार्षीत् । एवं द्वाद- शवर्षाणि सपोदशपक्षा श्रीमहावीरस्य छद्मस्थत्वे तपांसि । एतानि यथाशक्ति [illegible]

यानि । यन्नकन्यासः । उद्यापने श्रीमहावीरस्य बृहत्स्नात्रविधिना स्नात्र पद्विकृतिफलढौकन संघवात्सल्य संघपूजा च । सर्वतपसोऽशक्तिस्त्वे एकमपि किंचित्तपः स्वशक्तिकालानुसारेण विधीयते । उद्यापन च पूर्व-वत् । एतत्फल तीर्थंकरनामकर्मबन्धः । इति यतिश्राद्धकरणीयमनागाढ सर्वसंख्याश्रीमहावीरतपः ॥ १३ ॥

॥ अथ कनकावलीतपः । तपसः कनकावल्याः काहलादाडिमे अपि । लता च पदक चान्यलता दाडिमका-हले ॥ १ ॥ एक १ द्वि २ त्र्यु ३ पवासतः प्रगुणित सपूरिते काहले तत्राष्टाष्टमितैश्च षष्ठकरणैस्तपाद्येडा-डिमे । एकाद्यैः स्वलु षोडशाशगणितै श्रेणी उभे गुम्फितः षष्ठैस्तैः कनकावलौ फिल चतुस्त्रिंशन्मितैर्नायकः

| काहली | २ | २ | २ | पा | पा | पा | पा | पा | पा | पा | पा | पा | पा | पा | पा | पा | पा | पा | पा | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| पा | पा | पा | २ | | २ | १ | २ | ३ | ४ | ५ | ६ | ७ | ८ | ९ | १० | ११ | १२ | १३ | १४ | १५ | १६ | |
| १ | २ | ३ | २ | २ | २ | | | | | | | | | | | | | | | | | |

१४ । ६० कनकावलीतपसि दिन २८४ पारणकदिन ८८ आगाढ

| | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| १ | २ | ३ | २ | २ | २ | १ | २ | ३ | ४ | ५ | ६ | ७ | ८ | ९ | १० | ११ | १२ | १३ | १४ | १५ | १६ | |
| उ | उ | उ | २ | | २ | | | | | | | | | | | | | | | | | |
| काहर्लक | २ | ३ | २ | उ | उ | उ | उ | उ | उ | उ | उ | उ | उ | उ | उ | उ | उ | उ | उ | पारणांतरित | |

| | | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| | | | पा | | | पा | | | |
| | | | | २ | २ | | | | |
| | | | २ | २ | २ | २ | | | |
| | | २ | २ | २ | २ | २ | २ | | |
| २ | २ | २ | २ | २ | २ | २ | २ | २ | २ |
| | | २ | २ | २ | २ | २ | २ | | |
| | | | २ | २ | २ | २ | | | |
| | | | | २ | २ | | | | |
| | | | पा | | | पा | | | |

तत्तो अ सवओ भद्द । वोमत्तारिदसेव य दिवसे ठासी अ अणुबद्ध ॥ ३ ॥ गोअरमभिग्गहजुअं खमणं छम्मासियं च कासी य । पंचदिवसेहिं ऊणं अव्वहिओ वच्छनयरीए ॥ ४ ॥ दसदोअकिरमहप्पा ठाइमुणी-एगराइअं पडिमा । अट्ठमभत्तेण जई इक्किक चरमरयणीय ॥ ५ ॥ दो चेव य छट्ठसए अउणातीसे उवासिओ भयवं । कयाइ निच्चभत्तं चउत्थभत्तं च से आसि ॥ ६ ॥ तिण्णिसए दिवसाण अउणापण्णे उ पारणा-कालो । उक्कुडुअरिसिज्झाण पि अ पडिमाण सए बहुए ॥ ७ ॥ सव्वपि तवोकम्मं अप्पाणयं आसि वीरना-हस्स । पव्वज्जाए दिवसे पढमे खित्तमि सव्वमिण ॥ ८ ॥ बारस चेव य वासा मासा छच्चेव अद्धमासो अ । वीरवरस्स भगवओ एसो छउमत्थपरियाओ ॥ ९ ॥ चाउम्मासिअद्धमासा चारमासिअ दुविहइय दोअट्ठाइ य छद्दिमासा दुति नवचउमासि अ दो छम्मासा पचदिनऊण छठदोस यगुणतीस य बारठम पारणाय तिसय एगुणपचास य इइ खिवत्तु सोळ पडिमा दिवस वयदिवसेण सिउ मेलविओ पक्खसहिअसट्ठबारस वरिस-अति वीरकेवलिलहिओ ॥ १ ॥ भगवान् श्रीमहावीरो द्वासप्ततिपक्षक्षपणानि द्वादशमासक्षपणानि द्वे सार्ध-मासक्षपणे द्वे सार्धद्विमासक्षपणे षट् द्विमासक्षपणानि द्वे त्रिमासक्षपणे नव चतुर्मासक्षपणानि एकं षण्मा-सक्षपणं द्वितीयं च षण्मासक्षपणं पञ्चदिवसोनं कौशाम्ब्यां एकोनत्रिंशदधिकं षट्शतद्वयं द्वावष्टाङ्कानि एकोनपञ्चाशदधिकं पारणादिनशतत्रयं षोडश प्रतिमादिनानि व्रतग्रहणं दिवसं च अकार्षीत् । एवं द्वाद-शवर्षाणि सपोदशपक्षा श्रीमहावीरस्य छद्मस्थे तपांसि । एतानि चाप्यासनि पानाम्भसितोपवासैः कृतानि

वलीतपः । मुक्तावल्या चतुर्थादिषोडशान्तावलीद्वय। पूर्वानुपूर्व्यापश्चानुपूर्व्याज्ञेय यथाक्रम ॥१॥ एकद्व्येकगुणैकषेदवसुधाद्याणैकषड्भूमितिः ससैकाष्टमहीनवैकदशभिर्भूरुद्रभूमानुभिः । भूविश्वेशशिमन्विलातिथिधराविध्याशुरीभिर्मतैरेतद्व्युत्क्रमणोपवासगणितैर्मुक्तावली जायते ॥२॥ तपस्विना कण्ठाभरणत्वे निर्मला मुक्तावलीव मुक्तावली । तत्र पूर्वं चतुर्थं तपःपारणक। पुनः षष्ठ कृत्वा पारणक पुनश्चतुर्थं कृत्वा पारणक पुनश्च अष्टम कृत्वा पारणक पुनश्चतुर्थ कृत्वा पारणक पुनर्दशम पुनः पारणक। पुनश्चतुर्थ पुनः पारणक पुनर्द्वादशक पुनः पारणक पुनश्चतुर्थ पुनः पारणक पुनश्चतुर्दशमक पुनः पारणक पुनश्चतुर्थ पुनः पारणक पुनः सप्तोपवासाः पारणक पुनश्चतुर्थं पुन. पारणक पुनरष्टोपवासाः पुनः पारणक पुनश्चतुर्थं पुनः पारणक पुनर्नवोपवासाः पुनः पारणक पुनश्चतुर्थं पुनः पारणक पुनर्दशोपवासाः पुनः पारणक पुनश्चतुर्थं पुन. पारणक पुनरेकादश उपवासाः पुनः पारणक पुनश्चतुर्थ पुनः पारणक पुनर्द्वादशोपवासाः पुनः पारणक पुनश्चतुर्थं पुनः पारणक पुनस्त्रयोदशोपवासाः पुनः पारणक पुन-

| | | | | | | | | | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| पा | पा | पा | पा | पा | पा | पा | पा | पा | पा | पा | पा | पा | पा | पा | पा | • |
| १ | २ | ३ | ४ | ५ | ६ | ७ | ८ | ९ | १० | ११ | १२ | १३ | १४ | १५ | १६ | • |
| ७।१५ मुक्तावलीतपः दिन ३०० पार दि ६० आ० सर्वदिनसंख्या ३६० | | | | | | | | | | | | | | | ० | ७७ |
| १ | २ | ३ | ४ | ५ | ६ | ७ | ८ | ९ | १० | ११ | १२ | १३ | १४ | १५ | १६ | ० |
| उ | उ | उ | उ | उ | उ | उ | उ | उ | उ | उ | उ | उ | उ | उ | उ | • |

यतः द्वितीयदाडिमकस्थाष्टमानि विधेयानि । पुनर्द्विस्त्रिश्चैकोपवासैः पूर्ववत् द्वितीयादाडिमकाद्रष्टिका पूर्वा इति तपोदिनानि चतुःशतानि चतुर्स्त्रिंशदधिकानि ४३७

॥ २ ॥ तपस्विना हृदयभूषणकारित्वात्कनकावली। तस्यां प्रथमं चतुर्थं कृत्वा पारणं ततः षष्ठं कृत्वा पारणं ततः अष्टमं कृत्वा पारणं इत्येका काहलिका पूर्यते। ततोऽष्टौ षष्ठानि कुर्यात्। इत्येकं दाडिमकं पूर्यते। तत एकमुपवासं कृत्वा पारयेत्। ततो द्वावुपवासौ कृत्वा पारयेत् ततस्त्रीन् ततश्चतुरः पञ्च षट् सप्त अष्टौ नव दश एकादश द्वादश त्रयोदश चतुर्दश पञ्चदश षोडशोपवासान् क्रमेण कृत्वा पारयेत्। इत्येका लता पूर्यते। ततश्चतुस्त्रिंशत्षष्ठानि विदध्यात्। एतावता पदकं पूर्यते। ततः षोडशोपवासान्कृत्वा पारयेत्। ततः पञ्चदशचतुर्दशत्रयोदशद्वादशएकादशदशनवअष्टसप्तषट्पञ्चचतुरस्त्रीन्द्वौएकं उपवासान्कृत्वा पारयेत् इत्येवं द्वितीया लता पूर्यते। ततोऽष्टौ षष्ठानि विदध्यात्। इति द्वितीयं दाडिमकं पूर्यते। ततोऽष्टमं ततः षष्ठं ततश्चतुर्थं कुर्यात्। इति द्वितीया काहलिका पूर्यते॥ एकंकाहलिकादाडिमकलतासमाप्तौ पदकं कृत्वा ततः प्रतिलोमगत्या लतादाडिमककाहला विधीयन्ते। एते चोपवासाः चतुर्थाष्टमषष्ठाद्याअपि उत्क्रमासपारणकाः निरन्तरा एव विधेयाः। एतन्मध्ये पारणका अष्टाशीतिः उपवासाश्चतुरशीत्युत्तराणि त्रीणि शतानि सर्वाग्रेण एकोनवर्षेण त्रिभिर्मासैः द्वाविंशत्यादिनैः पूर्यते। एतन्मध्ये पारणकं चतुर्था सर्वकामिताहारैर्वा निर्विकृतिकेन वा अलेपद्रव्येण वा आचाम्लेन वा। यन्त्रकन्यासः। उद्यापने उपवाससंख्यया सुवर्णटकावलिमालया बृहत्स्नात्रविधिं विधाय प्रतिमाकण्ठं भूषयेत्। चक्रिकृतिढौकनं यतिभ्यो वस्त्रान्नपात्रदानं संघवात्सल्यं संघपूजा च। एतत्फलं स्वर्गभोगमोक्षप्राप्तिः। इति श्राद्धकरणीयमागाढं कनकावलीतपः॥ १४॥ ॥ अथ मुक्ता-

वलीतपः । मुक्तावल्या चतुर्थादिषोडशान्तावलीद्वय। पूर्वानुपूर्व्यापश्चानुपूर्व्याज्ञेय यथाक्रम ॥१॥ एकद्व्येकगुणेकवेदवसुधाबाणैकषड्भूमिभि' ससैकाष्टमहीनवैकदशभिर्भूरुद्रभूभानुभिः । भूविश्वेशशिमन्विलातिथिधराविधाशुरीभिर्मतैरेतद्युत्क्रमणोपवासगणितैर्मुक्तावली जायते ॥२॥ तपस्विना कण्ठाभरणत्वे निर्मला मुक्तावलीव मुक्तावली । तत्र पूर्वं चतुर्थं तपःपारणक। पुनः षष्ठ कृत्वा पारणक पुनश्चतुर्थं कृत्वा पारणक पुनश्च अष्टमं कृत्वा पारणक पुनश्चतुर्थं कृत्वा पारणक पुनर्दशम पुनः पारणक। पुनश्चतुर्थ पुनः पारणक पुनर्द्वादशक पुनः पारणक पुनश्चतुर्थं पुनः पारणक पुनश्चतुर्दशमक पुनः पारणक पुनश्चतुर्थं पुनः पारणक पुनः सप्तोपवासाः पारणक पुनश्चतुर्थं पुन. पारणक पुनरष्टोपवासा. पुनः पारणक पुनश्चतुर्थं पुनः पारणक पुनर्नवोपवासाः पुनः पारणक पुनश्चतुर्थं पुनः पारणक पुनर्दशोपवासाः पुनः पारणक पुनश्चतुर्थं पुन. पारणकं पुनरेकादश उपवासाः पुनः पारणक पुनश्चतुर्थं पुनः पारणक पुनर्द्वादशोपवासाः पुनः पारणक पुनश्चतुर्थं पुनः पारणक पुनस्त्रयोदशोपवासाः पुनः पारणक पुन-

| | | | | | | | | | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| पा | पा | पा | पा | पा | पा | पा | पा | पा | पा | पा | पा | पा | पा | पा | पा | ० |
| १ | २ | ३ | ४ | ५ | ६ | ७ | ८ | ९ | १० | ११ | १२ | १३ | १४ | १५ | १६ | ० |
| धा१५ मुक्तावलीतपः दिन २०० पार दि ६० आ० सर्वदिनसंख्या ३६० | | | | | | | | | | | | | | | | ० ७७ |
| १ | २ | ३ | ४ | ५ | ६ | ७ | ८ | ९ | १० | ११ | १२ | १३ | १४ | १५ | १६ | ० |
| उ | उ | उ | उ | उ | उ | उ | उ | उ | उ | उ | उ | उ | उ | उ | उ | ० |

यदा द्वितीयद्वादिमकक्षाष्टाष्टमानि विधेयानि । पुनर्द्विद्विद्येकोपवासैः पूर्ववत् द्वितीयाद्वादिमकाद्यन्तिका पूर्णा इति तपोदिवसानि चतुःशतानि चतुस्त्रिंशदधिकानि ४३४

श्चतुर्थं पुन: पारणक पुनश्चतुर्दशोपवासाः पुनः पारणक पुनश्चतुर्थं पुनः पारणक पुन: पञ्चदशोपवासा: पुन: पारणक पुनश्चतुर्थं पुनः पारणक पुनः षोडशोपवासाः पुनः पारणक । एतदेव प्रतिलोमगत्या द्वितीयश्रेण्पा क्रियते । यथा षोडशोपवासाः पारणक पुनश्चतुर्थं पुनः पारणक पुन: पञ्चदशोपवासा. पुनः पारणक इत्या-दियावच्चतुर्थं पुनः पारणक । इति मुक्तावलीतपोऽत्र विधिपूर्वक जिनप्रतिमायाः स्थूलमुक्तावलीरोपण सघवा-त्सल्य सघपूजा च । एतत्फल विविधगुणसन्तानावाप्तिः । इति यतिश्राद्धकरणीयमागाढ मुक्तावलीतप: ॥१५॥

॥ अथ रत्नावलीतपः । काहलिका दाडिमक लता तरल एव च । अन्या लता दाडिमक काहली चेति च क्र-मात् ॥ १ ॥ एकद्वित्र्युपवासैः स्तः काहल्यौ दाडिमे पुनः । तरलश्चाष्टममथो रत्नावल्या मले न्यसेत् ॥ २ ॥

| पा | पा | पा | १ | १ | १ | १ | पा | पा | पा | पा | पा | पा | पा | पा | पा | पा | पा | पा | पा | पा | पा | क्वा २ |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| ३ | २ | १ | १ १ | १ १ | १ १ | १ | २ | ३ | ४ | ५ | ६ | ७ | ८ | ९ | १० | ११ | १२ | १३ | १४ | १५ | १६ | |

काहलादाडिमौ ॥ १६ ॥ रत्नावलीतपसि दिन ५१४ पारणक ८८ आगाढं

| | | | | | | | | | | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| | | १ | २ | ३ | ४ | ५ | ६ | ७ | ८ | ९ | १० | ११ | १२ | १३ | १४ | १५ | १६ |
| | | व | व | व | व | व | व | व | व | व | व | व | व | व | व | व | व |
| क्वा १ | | | | | | | | | | | | | | | | | |

| | | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| | | | | १ | १ | | | | |
| | | | १ | १ | १ | १ | | | |
| | | १ | १ | १ | १ | १ | १ | | |
| १ | १ | १ | १ | १ | १ | १ | १ | १ | १ |
| | | १ | १ | १ | १ | १ | १ | | |
| | | | १ | १ | १ | १ | | | |
| | | | | १ | १ | | | | स्वर्ण |

गुणमयानामावली रत्नावली । तत्र प्रथमकाहलिकायां एक उपवासः ततः पारणक द्वौ उपवासौ पारणक त्रय उपवासाः पारणक । ततो दाडिमके अष्टाष्टमानि कुर्यात् । ततो लतायां एक उपवासः पारणक द्वौ उपवासौ पारणक एव क्रमेण पारणकान्तरिताः षोडशपर्यन्ता निरन्तरा उपवासाः । ततः पदके चतुस्त्रिंशदष्टमानि ततो विलोमतया षोडशाद्येकान्त उपवासाः पारणान्तरिता निरन्तराः इति द्वितीया लता पूर्यते । पारणक दिनानि अष्टाशीतिः ८८ । यन्त्रकन्यासः । उद्यापने बृहत्स्नात्रविधिपूर्वक बहुमूल्यनिर्भासनिर्मलनानाप्रकाररत्नजातिमयी रत्नमाला जिनप्रतिमाकण्ठे समारोप्या सघवात्सल्य सघपूजा च । एतत्फल विविधसतानलक्ष्मीप्राप्ति । इति यतिश्राद्धकरणीयमागाढ रत्नावलीतपः ॥१६॥ ॥ अथ लघुसिंहनिःक्रीडिततपः । गच्छन्सिंहो यथा नित्य पश्चाद्भागं विलोकयेत् । सिंहनिःक्रीडिताख्य च तथा तप उदाहृत ॥ १ ॥ एकद्व्येकत्रियुग्मैर्युगगुणविशिखैर्वेदषट्पञ्चताक्ष्यैः षट्कुम्भ्यश्वैर्निधानाष्टनिधिहयगजैः षट्हयैः पञ्चषड्भिः । वेदैर्बाणैर्युगद्वित्रिशशिभुजकुभिश्चोपवासैश्च मध्ये कुर्वाणानां समन्तादशनमिति तपः सिंहनिःक्रीडित स्यात् ॥ २ ॥ सिंहवन्निःक्रीडित पश्चादवलोकन तथैव तपसा परिवृत्त्योपवासकरण सिंहनिःक्रीडित । तत्र प्रथममेकोपवासः पुनः पारणक द्वौ उपवासौ पारणक पुनरेकोपवासः पारणक त्रय उपवासाः पारणक द्वौ उपवासौ पारणक चत्वार

श्चतुर्थं पुन' पारणक पुनश्चतुर्दशोपवासा' पुनः पारणक पुनश्चतुर्थं पुन' पारणक पुनः पञ्चदशोपवासा' पुनः पारणक पुनश्चतुर्थं पुनः पारणक पुन' षोडशोपवासा' पुन' पारणक । एतदेव प्रतिलोमगत्या द्वितीयश्रेण्पा क्रियते । यथा षोडशोपवासा' पारणक पुनश्चतुर्थं पुनः पारणक पुन' पञ्चदशोपवासा. पुनः पारणक इत्यादियावचतुर्थं पुन' पारणक । इति मुक्तावलीतपोऽत्र विधिपूर्वक जिनप्रतिमायाः स्थूलमुक्तावलीरोपण सघवात्सल्य सघपूजा च । एतत्फल विविधगुणसतानावाप्तिः । इति यतिश्राद्धकरणीयमागाढ मुक्तावलीतपः ॥१५॥

॥ अथ रत्नावलीतपः । काहलिका दाडिमकं लता तरल एव च । अन्या लता दाडिमक काहली चेति च क्रमात् ॥ १ ॥ एकद्विव्युपवासै' स्तः काहल्यौ दाडिमे पुनः । तरलश्चाष्टमथो रत्नावल्या मले न्यसेत् ॥ २ ॥

| | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| पा | पा | पा | १ | १ | १ | १ | पा | पा | पा | पा | पा | पा | पा | पा | पा | पा | पा | पा | पा | पा | पा | क्षा २ |
| १ | २ | ३ | १<br>१ | १<br>१ | १<br>१ | १ | २ | ३ | ४ | ५ | ६ | ७ | ८ | ९ | १० | ११ | १२ | १३ | १४ | १५ | १६ | |

काहलदाडिमौ ॥ १६ ॥ रत्नावलीतपसि दिन ४३४ पारणक ८८ आगाढं

| | | | | | | | | | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| १ | २ | ३ | ४ | ५ | ६ | ७ | ८ | ९ | १० | ११ | १२ | १३ | १४ | १५ | १६ | |
| च | च | च | च | च | च | च | च | च | च | च | च | च | च | च | च | क्षा १ |

| | | | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| पदक | | | | | | | | | | |
| | | | | १ | १ | | | | | |
| | | | १ | १ | १ | १ | | | | |
| | | १ | १ | १ | १ | १ | १ | | | |
| | १ | १ | १ | १ | १ | १ | १ | १ | १ | १ |
| | | १ | १ | १ | १ | १ | १ | | | |
| | | | १ | १ | १ | १ | | | | |
| | | | | १ | १ | | | | | |

लजातिनैवेद्यढौकन संघवात्सल्य संघपूजा च । एतत्फल कर्मक्षयावासिः । इति यतिश्राद्धकरणीयमागाढ लघुसिंहनिःक्रीडित तप. ॥ १७ ॥ ॥ अथ बृहत्सिंहनिःक्रीडित तपः । एकद्व्येकत्रिपीटयोनियमलैर्वेदत्रिवीणाब्धिभि' षट्पञ्चाभ्य रसाष्टससनवभिर्नागैश्च दिग्नन्दकैः । रुद्राशारविरुद्रविश्वविबुधैर्मार्तण्डमन्वन्वितैर्विश्वे-

| | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| पा | पा | पा | पा | पा | पा | पा | पा | पा | पा | पा | पा | पा | पा | पा | पा | पा | पा | पा | पा | पा | पा | पा | पा | पा | पा | पा | पा | पा | पा | | |
| १ | २ | १ | ३ | २ | ४ | ३ | ५ | ४ | ६ | ५ | ७ | ६ | ८ | ७ | ९ | ८ | १० | ९ | ११ | १० | १२ | ११ | १३ | १२ | १४ | १३ | १५ | १४ | १६ | | |
| १८ बृहत्सिंहनि क्रीडिततपोदिन ४९७ पारणकदिन ६१ सर्वदिन ५५७ आगाढ | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | |
| १ | २ | १ | ३ | २ | ४ | ३ | ५ | ४ | ६ | ५ | ७ | ६ | ८ | ७ | ९ | ८ | १० | ९ | ११ | १० | १२ | ११ | १३ | १२ | १४ | १३ | १५ | १४ | १६ | [illegible] | १५ |
| व | व | व | व | व | व | व | व | व | व | व | व | व | व | व | व | व | व | व | व | व | व | व | व | व | व | व | व | व | व | ० | पा |

वेवतिथिप्रमाणमनुभिश्चाष्टिप्रतिथ्यान्वितै ॥ १ ॥ कलामनुतिथित्रयोदशचतुर्दशाङ्कान्वितैस्त्रयोदशशिवाशुभिर्दशगिरीशनन्दैरपि । दशाष्टनवसप्तभिर्गजरसाश्च बाणै रसैश्चतुर्विशिखवह्निभिर्युगभुजाग्निभूर्वाङ्कुभिः ॥२॥ उपवासैः क्रमात्कार्याः पारणा अन्तरान्तराः । सिंहनि क्रीडित नाम बृहत्सजायते तपः ॥ ३ ॥ अत्र बृहत्सिंहनि क्रीडिते एकोपवास' पारणक द्वौ उपवासौ पारणक एकोपवासः पारणक त्रय उपवासाः पारणक द्वौ उपवासौ पारणक चत्वार उपवासाः पारणक त्रय उपवासाः पारणक पञ्चोपवासाः पारणक चत्वार उपवासाः

| | | | | | | | | | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| उ | उ | उ | उ | उ | उ | उ | उ | उ | उ | उ | उ | उ | उ | उ | उ | उ |
| १ | २ | १ | ३ | २ | ४ | ३ | ५ | ४ | ६ | ५ | ७ | ६ | ८ | ७ | ९ | ८ |
| • | • | • | • | • | • | • | • | • | • | • | • | • | • | • | • | • |
| पा | पा | पा | पा | पा | पा | पा | पा | पा | पा | पा | पा | पा | पा | पा | पा | पा |

१७ लघुसिंहनिष्क्रीडिततपोदिन १५४ पारणकदिन ३३ आगाढ । सर्वदिन १८७

| | | | | | | | | | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| उ | उ | उ | उ | उ | उ | उ | उ | उ | उ | उ | उ | उ | उ | उ | उ | उ |
| १ | २ | १ | ३ | २ | ४ | ३ | ५ | ४ | ६ | ५ | ७ | ६ | ८ | ७ | ९ | ८ |
| • | • | • | • | • | ० | • | • | • | ० | • | ० | • | • | ० | • | • |
| पा | पा | पा | पा | पा | पा | पा | पा | पा | पा | पा | पा | पा | पा | पा | पा | पा |

उपवासा' पारणक त्रय उपवासा' पारणक पञ्च उपवासाः पारणक चत्वार उपवासाः पारणक षट् उपवासाः पारणकं पुन' पञ्चोपवासाः पारणक सप्तोपवासाः पारणक पुन' षडुपवासा. पारणक अष्टोपवासा. पारणक पुन' सप्तोपवासाः पारणक नव उपवासाः पारणक पुनरष्टोपवासा. पारणक एतावता गतिमध्य । पुनर्द्वितीया गतिर्विलोमतया यथा । नवोपवासाः पारणक सप्तोपवासाः पारणक अष्टोपवासा' पारणक षट् उपवासा. पारणक सप्तोपवासाः पारणक पञ्चोपवासाः पारणक षट् उपवासा' पारणक चत्वार उपवासाः पारणक पञ्चो-पवासाः पवारणक त्रय उपवासाः पारणक चत्वार उपवासाः पारणक द्वौ उपवासौ पारणक त्रय उपवासा' पारणक एकोपवास' पारणक द्वौ उपवासौ पारणक एकोपवासः पारणक इति उपवासाश्चतुःपञ्चाशदुत्तर शत १५४ पारणकदिनानि त्रयस्त्रिंशत् । यन्त्रकन्यासः । उद्यापने बृहत्स्नात्रविधिपूर्वक उपवाससख्यया पुष्पक-

लजातिनैवेद्यढौकन संघवात्सल्य संघपूजा च। एतत्फल कर्मक्षयावाप्तिः । इति यतिश्राद्धकरणीयमागाढ लघुसिंहनिःक्रीडित तपः ॥ १७ ॥ ॥ अथ बृहत्सिंहनिःक्रीडित तपः । एकद्व्येकत्रिद्वीटयोनिधमलैर्वेदत्रिषी-णाब्धिभिः षट्पञ्चाब्धि रसाष्टसप्तनवभिर्नागैश्च दिग्नन्दकैः । रुद्राशारविरुद्रविश्वविबुधैर्मार्तण्डमन्वन्वितैर्विश्वे-

| | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| पा | पा | पा | पा | पा | पा | पा | पा | पा | पा | पा | पा | पा | पा | पा | पा | पा | पा | पा | पा | पा | पा | पा | पा | पा | पा | पा | पा | पा | पा |
| १ | २ | १ | ३ | २ | ४ | ३ | ५ | ४ | ६ | ५ | ७ | ६ | ८ | ७ | ९ | ८ | १० | ९ | ११ | १० | १२ | ११ | १३ | १२ | १४ | १३ | १५ | १४ | १६ |

१८ बृहत्सिंहनिःक्रीडिततपोदिन ४९७ पारणकदिन ६१ सर्वदिन ५५७ आगाढ

| | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| १ | २ | १ | ३ | २ | ४ | ३ | ५ | ४ | ६ | ५ | ७ | ६ | ८ | ७ | ९ | ८ | १० | ९ | ११ | १० | १२ | ११ | १३ | १२ | १४ | १३ | १५ | १४ | १६ | ३ | १५ |
| उ | उ | उ | उ | उ | उ | उ | उ | उ | उ | उ | उ | उ | उ | उ | उ | उ | उ | उ | उ | उ | उ | उ | उ | उ | उ | उ | उ | उ | उ | • | पा |

देवतिथिप्रमाणमनुभिश्चाष्टिप्रतिथ्यान्वितै ॥ १ ॥ कलामनुतिथित्रयोदशचतुर्दशाक्कान्वितैस्त्रयोदशशिवाशु-भिर्दशगिरीशनन्दैरपि । दशाष्टनवसप्तभिर्गजरसाश्च बाणै रसैश्चतुर्भिशिखवह्निभिर्युगभुजाभ्रिभूर्वीन्दुभिः ॥२॥ उपवासैः क्रमात्कार्याः पारणा अन्तरान्तराः । सिंहनि क्रीडित नाम बृहत्सजायते तपः ॥ ३ ॥ अत्र बृहत्सिं-हनि क्रीडिते एकोपवास. पारणक द्वौ उपवासौ पारणक एकोपवासः पारणक त्रय उपवासा. पारणक द्वौ उपयासौ पारणक चत्वार उपवासाः पारणक त्रय उपवासा. पारणक पञ्चोपवासाः पारणक चत्वार उपवासाः

| | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| उ | • | उ | • | उ | • | उ | • | उ | • | उ | • | उ | • | उ | • | उ | • | • | ० | उ | ० | उ | ० | उ | • | उ | ० | उ | • | उ | • |
| १ | पा | २ | पा | १ | पा | ३ | पा | २ | पा | ४ | पा | ३ | पा | ५ | पा | ४ | पा | ६ | पा | ५ | पा | ७ | पा | ६ | पा | ८ | पा | ७ | पा | ९ | पा |

१७ लघुसिंहनिःक्रीडिततपोदिन १५४ पारणकदिन ३३ आगाढ। सर्वदिन १८७

| | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| १ | पा | २ | पा | १ | पा | ३ | पा | २ | पा | ४ | पा | ३ | पा | ५ | पा | ४ | पा | ६ | पा | ५ | पा | ७ | पा | ६ | पा | ८ | पा | • | पा | ९ | पा |
| उ | • | उ | • | उ | • | उ | • | उ | • | उ | • | उ | • | उ | • | उ | • | उ | • | उ | • | उ | • | उ | • | उ | • | उ | • | उ | • |

उपवासाः पारणक श्रय उपवासा' पारणक पञ्च उपवासाः पारणक चत्वार उपवासाः पारणक पट् उपवासा' पारणकं पुनः पञ्चोपवासा' पारणक सप्तोपवासाः पारणक पुनः षडुपवासा, पारणक अष्टोपवासाः पारणक पुनः सप्तोपवासाः पारणक नव उपवासाः पारणक पुनरष्टोपवासाः पारणक एतावता गतिमध्य। पुनर्द्वितीया गतिर्विलोमतया यथा। नवोपवासाः पारणक सप्तोपवासाः पारणक अष्टोपवासा' पारणक षट् उपवासाः पारणक सप्तोपवासाः पारणक पञ्चोपवासा' पारणक षट् उपवासाः पारणक चत्वार उपवासाः पारणक पञ्चो-पवासाः पवाणक श्रय उपवासा' पारणक चत्वार उपवासाः पारणक द्वौ उपवासौ पारणक श्रय उपवासा पारणक एकोपवास' पारणक द्वौ उपवासौ पारणक एकोपवासः पारणक इति उपवासाश्चतु'पञ्चाशदुत्तर शत १५४ पारणकदिनानि श्रयस्त्रिंशत्। यन्त्रकन्यासः। उद्यापने बृहत्स्नात्रविधिपूर्वक उपवाससङ्ख्यया पुष्पक-

वात्सल्य संघपूजा च । एतत्फल उपशमश्रेणिप्राप्तिः । इति यतिश्राद्धकरणीयमागाढ बृहत्सिंहनिःक्रीडित तप' ॥ १८ ॥ ॥ अथ भद्रतपः । एकद्वित्रिचतु'पञ्चत्रिचतुःपञ्चभूद्वयैः । पञ्चैकद्वित्रिवेदैश्च द्वित्रिवेदेपुभूमिभि' ॥ १ ॥ पञ्चैकद्वित्रिभिश्चोपवासकैः श्रेणिपञ्चक । भद्रे तपसि मध्यस्थपारणाश्रेणिसंयुत ॥ २ ॥ भद्रकारित्वाद्भद्र । तत्र प्रथमश्रेणौ क्रमात् एकद्वित्रिचतुःपञ्चोपवासैर्निरन्तरैः पारणकानि द्वितीयश्रेणौ त्रिचतुःपञ्चैकद्व्युपवासैर्निरन्तरैः पारणकानि । तृतीयश्रेणौ पञ्चैकद्वित्रिचतुरुपवासैर्निरन्तरैः पारणकानि चतुर्थश्रेणौ द्वित्रिचतुःपञ्चैकोपवासैर्निरन्तरैः पारणकानि पञ्चमश्रेणौ चतुःपञ्चैकद्वित्रिरुपवासैर्निरन्तरैः पारणकानि एव उपवासाः पञ्चसप्तति' ७५ पारणकदिनानि पञ्चविंशतिः २५ सर्वसंख्या शत । यन्त्रन्यास' । उद्यापने जिनस्नात्र संघवात्सल्य संघपूजा च । एतत्फल कल्याण । इति यतिश्राद्धकरणीयमागाढ भद्रतपः ॥ १९ ॥ ॥ अथ महाभद्रतपः । एकद्वित्रिचतु'पञ्चषट्सप्तनिरुपोषणैः । निरन्तरैः पारणकमाद्यश्रेणौ प्रजायते ॥ १ ॥ द्वितीयपाल्या वेदेपुषट्सप्तैकद्विवह्निभिः । तृतीयपाल्या सप्तैकद्वित्रिवेदशरै रसैः ॥ २ ॥ चतुर्थपाल्या त्रिचतुःपञ्चषट्सप्तभूभुजैः । पञ्चम्या रससप्तैकद्वित्रिवेदशिलीमुखैः ॥ ३ ॥ षष्ठ्या द्वित्रिचतुःपञ्चषट्सप्तैकैरुपोषणैः । सप्तम्या

| १९ भद्रतप आगाढ दिन १०० | | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| उ १ | पा | उ २ | पा | उ ३ | पा | उ ४ | पा | उ ५ | पा |
| उ ३ | पा | उ ४ | पा | उ ५ | पा | उ १ | पा | उ २ | पा |
| उ ५ | पा | उ १ | पा | उ २ | पा | उ ३ | पा | उ ४ | पा |
| उ २ | पा | उ ३ | पा | उ ४ | पा | उ ५ | पा | उ १ | पा |
| उ ४ | पा | उ ५ | पा | उ १ | पा | उ २ | पा | उ ३ | पा |

पारणक पडुपवासाः पारणक पञ्चोपवासाः पारणक ससोपवासाः पारणक पडुपवासाः पारणक अष्टोपवासा' पारणक ससोपवासा' पारणक नवोपवासाः पारणक अष्टोपवासाः पारणक दशोपवासा. पारणक नवोपवासा' पारणक एकादशोपवासा' पारणक दशोपवासा. पारणक द्वादशोपवासा पारणक एकादशोपवासा' पारणक त्रयोदशोपवासा' पारणक द्वादशोपवासाः पारणक चतुर्दशोपवासाः पारणक त्रयोदशोपवासा पारणक पञ्चदशोपवासा' पारणक चतुर्दशोपवासा' पारणक पोडशोपवासाः पारणक पञ्चदशोपवासाः पारणक एतावता मध्ये पुनर्द्वितीया गतिर्विलोमतया षोडशोपवासाः पारणक चतुर्दशोपवासा' पारणक पञ्चदशोपवासाः पारणक त्रयोदशोपवासा' पारणक चतुर्दशोपवासाः पारणक द्वादशोपवासा. पारणक त्रयोदशोपवासा पारणक एकादशोपवासाः पारणक द्वादशोपवासाः पारणक दशोपवासाः पारणक दशोपवासा. पारणक एकादशोपवासाः पारणक नवोपवासाः पारणक दशोपवासाः पारणक अष्टोपवासाः पारणक नवोपवासा पारणक ससोपवासा पारणक अष्टोपवासाः पारणक पडुपवासाः पारणक ससोपवासा पारणक पञ्चोपवासा' पारणक षडुपवासाः पारणक चत्वार उपवासा' पारणक पञ्चोपवासा पारणक त्रय उपवासा पारणक चत्वार उपवासाः पारणक द्वौ उपवासौ पारणक त्रय उपवासाः पारणक एक उपवास' पारणक द्वौ उपवासौ पारणक एक उपवास' पारणक । एवमुपवासानां सप्तनवत्युत्तरा चतुःशती ४९७ पारणाविंशत्ये कषष्टि ११ । यत्नकन्यास' । उद्यापने बृहत्स्नात्रविधिपूर्वक उपवाससंख्यया पुष्पफलनैवेद्यढौकनं संघ-

तपो भवेत् ॥ ३ ॥ अत्र उपवासाः पञ्चसप्तत्युत्तरं शत १७५ पारणकदिनानि पञ्चविंशतिः २५ । यत्र कन्यासः1 ॥ अथ उद्यापन भद्रवत् । एतत्फल वाञ्छितप्राप्ति । इति यतिश्राद्धकरणीयमागाढ भद्रोत्तरतपः ॥ २१ ॥ ॥ अथ सर्वतोभद्रतपः । आद्याः पञ्चषडश्वनागनवभिर्दिग्शमुभि श्रेणिका नागैर्नन्दककुप्शिवाशररसैरश्वैर्द्वितीया च सा । रुद्रैर्बाणरसाश्वनागनवभिर्दिग्भिस्तृतीया भवेत्तुर्या सप्तगजैश्च नन्ददशभि श्रीकण्ठबाणै रसैः ॥ १ ॥ काष्ठारुद्रशरै रसैर्हयगजैर्नन्दान्वितैः पञ्चमी षष्ठी षट्तुरगेभनन्ददशभिः श्रीकण्ठबाणैः पर । नन्दाशाशिवबाणषड्हयगजैः पूर्णावलि सप्तमी ते वै पारणकान्तरा निगदिता नित्योपवासा बुधैः ॥ २ ॥ सर्वतो भद्रकारित्वात्सर्वतोभद्र । एव सर्वतोभद्रतपसि उपवासाना द्विनवत्युत्तरा त्रिशती ३९२ पारणकदिनान्येकोनपञ्चाशत् ४९ ।

२२ सर्वतोभद्रतप आगाढ उ० ३९२ पा० ४९ सर्व० ४४१

| | | | | | | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| उ ५ | पा | उ ६ | पा | उ ७ | पा | उ ८ | पा | उ ९ | पा | उ १० | पा | उ ११ | पा |
| उ ८ | पा | उ ९ | पा | उ १० | पा | उ ११ | पा | उ ५ | पा | उ ६ | पा | उ ७ | पा |
| उ ११ | पा | उ ५ | पा | उ ६ | पा | उ ७ | पा | उ ८ | पा | उ ९ | पा | उ १० | पा |
| उ ७ | पा | उ ८ | पा | उ ९ | पा | उ १० | पा | उ ११ | पा | उ ५ | पा | उ ६ | पा |
| उ १० | पा | उ ११ | पा | उ ५ | पा | उ ६ | पा | उ ७ | पा | उ ८ | पा | उ ९ | पा |
| उ ६ | पा | उ ७ | पा | उ ८ | पा | उ ९ | पा | उ १० | पा | उ ११ | पा | उ ५ | पा |
| उ ९ | पा | उ १० | पा | उ ११ | पा | उ ५ | पा | उ ६ | पा | उ ७ | पा | उ ८ | पा |

| २० महाभद्रतप आगाढ उपवासाः १९६ पारणानि ४९ सर्व २४५ | | | | | | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| उ १ | पा | उ २ | पा | उ ३ | पा | उ ४ | पा | उ ५ | पा | उ ६ | पा | उ ७ | पा |
| उ ४ | पा | उ ५ | पा | उ ६ | पा | उ ७ | पा | उ १ | पा | उ २ | पा | उ ३ | पा |
| उ ७ | पा | उ १ | पा | उ २ | पा | उ ३ | पा | उ ४ | पा | उ ५ | पा | उ ६ | पा |
| उ ३ | पा | उ ४ | पा | उ ५ | पा | उ ६ | पा | उ ७ | पा | उ १ | पा | उ २ | पा |
| उ ६ | पा | उ ७ | पा | उ १ | पा | उ २ | पा | उ ३ | पा | उ ४ | पा | उ ५ | पा |
| उ २ | पा | उ ३ | पा | उ ४ | पा | उ ५ | पा | उ ६ | पा | उ ७ | पा | उ १ | पा |
| उ ५ | पा | उ ६ | पा | उ ७ | पा | उ १ | पा | उ २ | पा | उ ३ | पा | उ ४ | पा |

पञ्चपट्समसभूयुग्मत्रिचतुष्टयोः ॥ ४ ॥ एव सपूर्यते सप्तश्रेणिभिर्मध्यपारणै । महाभद्र तपः सप्तप्रस्तारपरिवारित ॥ ५ ॥ महाभद्रकारित्वान्महाभद्र । यन्त्रकन्यास. । अत्रोपवासाः षण्णवत्युत्तर शत १९६ पारणकदिनान्येकोनपञ्चाशत् ४९ । उद्यापने बृहत्स्नात्रविधिना जिनपूजा सघवात्सल्य सघपूजा च । एतत्फल सर्वविघ्नविनाश पुण्यप्राप्तिः । इति यतिश्राद्धकरणीयमागाढ महाभद्रतप ॥ २० ॥

| २१ भद्रोत्तरतप आगाढ दिन २०० | | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| उ ५ | पा | उ ६ | पा | उ ७ | पा | उ ८ | पा | उ ९ | पा |
| उ ७ | पा | उ ८ | पा | उ ९ | पा | उ ५ | पा | उ ६ | पा |
| उ ९ | पा | उ ५ | पा | उ ६ | पा | उ ७ | पा | उ ८ | पा |
| उ ६ | पा | उ ७ | पा | उ ८ | पा | उ ९ | पा | उ ५ | पा |
| उ ८ | पा | उ ९ | पा | उ ५ | पा | उ ६ | पा | उ ७ | पा |

॥ अथ भद्रोत्तरतप । भद्रेण कल्याणेन उत्तर भद्रोत्तर । आद्यश्रेणौ पञ्चषड्भिः ससाष्टनवभिस्तथा । द्वितीयाया च ससाष्टनवपाणरसैरपि ॥ १ ॥ तृतीयाया नन्दबाणषट्ससाष्टभिरुत्तमे । चतुर्थ्या रससप्ताष्टनवबाणमितैः क्रमात् ॥ २ ॥ पञ्चम्यामष्टनन्देषुषट्सप्तभिरुपोषणैः । निरन्तर पारणाभिर्भद्रोत्तर-

२३ गुणरत्नसंवत्सरतप मास १६ आगाढ

| | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| १ मास | उ १ | पा | उ १ | पा | उ १ | पा | उ १ | पा | उ १ | पा | उ १ | पा | उ १ | पा | उ १ | पा | उ १ | पा | उ १ | पा | उ १ | पा | उ १ | पा | उ १ | पा | उ १ | पा | उ १ | पा | उ १ | पा |
| २ मास | २ | पा | २ | पा | २ | पा | २ | पा | २ | पा | २ | पा | २ पा २ पा २ पा २ पा उ २० पा १० सर्व ३० | | | | | | | | | | | | | | | | | | | |
| ३ मास | ३ | पा | ३ | पा | ३ | पा | ३ | पा | ३ | पा | ३ | पा | ३ पा उ २४ पा ८ सर्व ३२ | | | | | | | | | | | | | | | | | | | |
| ४ मास | ४ | पा | ४ | पा | ४ | पा | ४ | पा | ४ | पा | उ २४ पा ६ सर्व ३० | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | |
| ५ मास | ५ | पा | ५ | पा | ५ | पा | ५ | पा | ५ | पा | उ २५ पा ५ सर्व ३० | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | |
| ६ मास | ६ | पा | ६ | पा | ६ | पा | ६ | पा | उ २४ पा ४ सर्व २८ | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | |
| ७ मास | ७ | पा | ७ | पा | ७ | पा | उ २१ पा ३ सर्व २४ | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | |
| ८ मास | ८ | पा | ८ | पा | ८ | पा | उ २४ पा ३ सर्व २७ | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | |
| ९ मास | ९ | पा | ९ | पा | ९ | पा | उ २७ पा ३ सर्व ३० | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | |
| १० मास | १० | पा | १० | पा | १० | पा | उ ३० पा ३ सर्व ३३ | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | |
| ११ मास | ११ | पा | ११ | पा | ११ | पा | उ ३३ पा ३ सर्व ३६ | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | |
| १२ मास | १२ | पा | १२ | पा | उ २४ पा २ सर्व २६ | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | |
| १३ मास | १३ | पा | १३ | पा | उ २६ पा २ सर्व २८ | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | |
| १४ मास | १४ | पा | १४ | पा | उ २८ पा २ सर्व ३० | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | |
| १५ मास | १५ | पा | १५ | पा | उ ३० पा २ सर्व ३२ | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | |
| १६ मास | १६ | पा | १६ | पा | उ ३२ पा २ सर्व ३४ | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | |

पञ्चकन्यास' । उद्यापन भद्रवत् । कश्चिदेतेषा चतुर्णामप्युद्यापने उपवाससख्यया पुष्पफलपक्वान्नादिढौकन जिनाग्रे वदीयते । एतत्फल सर्वशान्ति कर्मक्षयान्मोक्षावाप्तिः । इति यतिश्राद्धकरणीयमागाढ सर्वतोभद्र-तप' ॥ २२ ॥ ॥ अथ गुणरत्नसंवत्सरतप' । गुणरत्न षोडशभिर्मासैस्सपूर्यते पुनस्तत्र । मासे मासे चैकादि-षोडशान्ता' स्युरुपवासाः ॥ १ ॥ गुणरत्नाना प्राप्तिहेतुत्वाद्गुणरत्न तच्च षोडशमासैः पूर्यते । तत्र प्रथममासे एकैकेनोपवासेन पारणकानि तत्रोपवासाः पञ्चदश पारणकानि पञ्चदश सर्वदिनानि त्रिंशत् । द्वितीयमासे उपवासद्वयान्तरितानि पारणकानि तत्रोपवासा विंशतिः पारणकानि दश सर्वदिनानि त्रिंशत् । तृती यमासे उपवासत्रयान्तरितानि पारणकानि तत्रोपवासाश्चतुर्विंशतिः पारणकान्यष्टौ सर्वदिनानि द्वात्रिंशत् । चतुर्थमासे चतुरुपवासान्तरितानि पारणकानि तत्रोपवासाश्चतुर्विंशति पारणकानि षट् सर्वदिनानि त्रिंशत् । पञ्चममासे पञ्चोपवासान्तरितानि पारणकानि तत्रोपवासाः पञ्चविंशति' पारणकानि पञ्च सर्वदिनानि त्रिंशत् । षष्ठमासे षडुपवासान्तरितानि पारणकानि तत्रोपवासाश्चतुर्विंशतिः पारणकानि चत्वारि सर्वदि-नान्यष्टाविंशति' । सप्तममासे सप्तोपवासान्तरितानि पारणकानि तत्रोपवासा एकविंशति' पारणकानि त्रीणि सर्वदिनानि चतुर्विंशति' । अष्टममासे अष्टोपवासान्तरितानि पारणकानि तत्रोपवासाश्चतुर्विंशति' पारणकानि त्रीणि सर्वदिनानि सप्तविंशतिः । नवमे मासे नवोपवासान्तरितानि पारणकानि तत्रोपवासाः सप्तविंशति' पारणकानि त्रीणि सर्वदिनानि त्रिंशत् । दशममासे दशोपवासान्तरितानि पारणकानि तत्रो-

२६ गुणरत्नसंवत्सरतपः मास १६ आगाढ

| | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| १ मास | उ १ | पा | उ १ | पा | उ १ | पा | उ १ | पा | उ १ | पा | उ १ | पा | उ १ | पा | उ १ | पा | उ १ | पा | उ १ | पा | उ १ | पा | उ १ | पा | उ १ | पा | उ १ | पा | उ १ | पा | उ १ | पा |
| २ मास | २ | पा | २ | पा | २ | पा | २ | पा | २ | पा | २ | पा | २ पा २ पा २ पा २ पा उ २० पा १० सर्व ३० | | | | | | | | | | | | | | | | | | | |
| ३ मास | ३ | पा | ३ | पा | ३ | पा | ३ | पा | ३ | पा | ३ | पा | ३ पा उ २४ पा ८ सर्व ३२ | | | | | | | | | | | | | | | | | | | |
| ४ मास | ४ | पा | ४ | पा | ४ | पा | ४ | पा | ४ | पा | उ २४ पा ६ सर्व ३० | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | |
| ५ मास | ५ | पा | ५ | पा | ५ | पा | ५ | पा | ५ | पा | उ २५ पा ५ सर्व ३० | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | |
| ६ मास | ६ | पा | ६ | पा | ६ | पा | ६ | पा | उ २४ पा ४ सर्व २८ | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | |
| ७ मास | ७ | पा | ७ | पा | ७ | पा | उ २१ पा ३ सर्व २४ | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | |
| ८ मास | ८ | पा | ८ | पा | ८ | पा | उ २४ पा ३ सर्व २७ | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | |
| ९ मास | ९ | पा | ९ | पा | ९ | पा | उ २७ पा ३ सर्व ३० | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | |
| १० मास | १० | पा | १० | पा | १० | पा | उ ३० पा ३ सर्व ३३ | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | |
| ११ मास | ११ | पा | ११ | पा | ११ | पा | उ ३३ पा ३ सर्व ३६ | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | |
| १२ मास | १२ | पा | १२ | पा | उ २४ पा २ सर्व २६ | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | |
| १३ मास | १३ | पा | १३ | पा | उ २६ पा २ सर्व २८ | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | |
| १४ मास | १४ | पा | १४ | पा | उ २८ पा २ सर्व ३० | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | |
| १५ मास | १५ | पा | १५ | पा | उ ३० पा २ सर्व ३२ | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | |
| १६ मास | १६ | पा | १६ | पा | उ ३२ पा २ सर्व ३४ | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | |

घस्रकन्यास । उद्यापन भद्रवत् । कश्चित्तेषां चतुर्णामप्युद्यापने उपवाससंख्यया पुष्पफलपक्वान्नादिढौकनं जिनाग्रे उदीर्यते । एतत्फलं सर्वशान्ति कर्मक्षयान्मोक्षावाप्ति । इति यतिश्राद्धकरणीयमागाढ सर्वतोभद्रतप ॥ २२ ॥ ॥ अथ गुणरत्नसंवत्सरतपः । गुणरत्न षोडशभिर्मासैस्सम्पूर्यते पुनस्तत्र । मासे मासे चैकादिषोडशान्ता स्युरुपवासाः ॥ १ ॥ गुणरत्नाना प्राप्तिहेतुत्वाद्गुणरत्न तच्च षोडशमासैः पूर्यते । तत्र प्रथममासे एकैकेनोपवासेन पारणकानि तत्रोपवासा पञ्चदश पारणकानि पञ्चदश सर्वदिनानि त्रिंशत् । द्वितीयमासे उपवासद्वयान्तरितानि पारणकानि तत्रोपवासा विंशतिः पारणकानि दश सर्वदिनानि त्रिंशत् । तृतीयमासे उपवासत्रयान्तरितानि पारणकानि तत्रोपवासाश्चतुर्विंशतिः पारणकान्यष्टौ सर्वदिनानि द्वात्रिंशत् । चतुर्थमासे चतुरुपवासान्तरितानि पारणकानि तत्रोपवासाश्चतुर्विंशति पारणकानि षट् सर्वदिनानि त्रिंशत् । पञ्चममासे पञ्चोपवासान्तरितानि पारणकानि तत्रोपवासाः पञ्चविंशतिः पारणकानि पञ्च सर्वदिनानि त्रिंशत् । षष्ठमासे षडुपवासान्तरितानि पारणकानि तत्रोपवासाश्चतुर्विंशतिः पारणकानि चत्वारि सर्वदिनान्यष्टाविंशतिः । सप्तममासे सप्तोपवासान्तरितानि पारणकानि तत्रोपवासा एकविंशति पारणकानि त्रीणि सर्वदिनानि चतुर्विंशति । अष्टममासे अष्टोपवासान्तरितानि पारणकानि तत्रोपवासाश्चतुर्विंशति पारणकानि त्रीणि सर्वदिनानि सप्तविंशतिः । नवमे मासे नवोपवासान्तरितानि पारणकानि तत्रोपवासाः सप्तविंशतिः पारणकानि त्रीणि सर्वदिनानि त्रिंशत् । दशममासे दशोपवासान्तरितानि पारणकानि तत्रो-

यथाशक्ति पूर्यतेऽङ्गतपः स्फुटं ॥१॥ अङ्गाना आचारादीनामेकादशाना तप अङ्गतपः। तत्र शुभे मासे चन्द्र-
पले शुक्लैकादश्या यथाशक्ति एकाशननिर्विकृतिकाचाम्लोपवासैस्तप आरभेत। पक्षे पक्षे एकादश्या तदेव
तप कुर्वीत यावदेकादशमासै पूर्यते। उद्यापन ज्ञानपञ्चमीवत्। चञ्चकन्यासः। एतत्फल आगमावाप्तिः।
इति यतिश्राद्धकरणीयमागाढमङ्गतप ॥ २४ ॥ ॥ अथ सवत्सरतप । सावत्सरतपः सावत्सरिके पाक्षि-

| २५ सवत्सरतपः अनागाढ | |
|---|---|
| पक्ष २४ पर्वमध्ये | उ २४ |
| कार्तिकचतुर्मासे | उ २ |
| फाल्गुनचतुर्मासे | उ २ |
| आषाढचतुर्मासे | उ २ |
| पर्यूषणपर्वणि | उ ३ |

केपि च। चातुर्मासे कृतलोचे क्रियते तदु-
दीर्यते ॥ १ ॥ सवत्सरे निश्चयेन कृते
सावत्सर तत्र पाक्षिकालोचन। प्रत्येकमे-
कैकोपवासकरणे उपवासाश्चतुर्विंशतिः।
चातुर्मासिकालोचने प्रत्येक द्व्युपवास-
करणे उपवासाः षट् सवत्सरालोचने उ-
पवासत्रय एव वत्सरे उपवासास्त्रयस्त्रिं-
शत्। चञ्चकन्यासः। उद्यापन पूर्ववत्।
एतत्फल सवत्सरकृतपापक्षयः। इति य-

| २६ नन्दीश्वर तप आगाढ वर्ष ७ | | | | | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| १ पर्वे | उ | ○ | ○ | ○ | ● | ● | ○ | ○ | ● | ● | ● | ● |
| २ पर्वे | उ | ○ | ● | ○ | ○ | ○ | ● | ○ | ● | ● | ○ | ● |
| ३ पर्वे | उ | ● | ● | ○ | ○ | ● | ● | ○ | ○ | ● | ● | ○ |
| ४ पर्वे | उ | ○ | ○ | ○ | ○ | ○ | ● | ○ | ● | ● | ● | ● |
| ५ पर्वे | उ | ○ | ○ | ○ | ○ | ○ | ○ | ○ | ○ | ● | ○ | ○ |
| ६ पर्वे | उ | ● | ● | ● | ○ | ● | ● | ○ | ○ | ○ | ○ | ○ |
| ७ पर्वे | उ | ○ | ○ | ● | ○ | ○ | ○ | ○ | ● | ● | ○ | ● |
| ११ | उ | ○ | ● | ● | ○ | ○ | ○ | ○ | ○ | ○ | ● | ○ |

तिश्राद्धकरणीयमनागाढ सावत्सरतप ॥ २५ ॥ ॥ अथ नन्दीश्वरतपः। नन्दीश्वरतपो दीपोत्सवदर्शाद्दुदी

पवासास्त्रिंशत् पारणकानि त्रीणि सर्वदिनानि त्रयस्त्रिंशत्। एकादशमासे एकादशोपवासान्तरितानि पारणकानि तत्रोपवासास्त्रयस्त्रिंशत् पारणकानि त्रीणि सर्वदिनानि षट्त्रिंशत्। द्वादशममासे द्वादशोपवासान्तरितानि पारणकानि तत्रोपवासाश्चतुर्विंशति पारणके द्वे सर्वदिनानि षड्विंशति। त्रयोदशममासे त्रयोदशोपवासान्तरितानि पारणकानि तत्रोपवासा षड्विंशतिः पारणे द्वे सर्वदिनान्यष्टाविंशति। चतुर्दशममासे चतुर्दशोपवासान्तरितानि पारणकानि तत्रोपवासा अष्टाविंशतिः पारणे द्वे सर्वदिनानि त्रिंशत्। पञ्चदशममासे पञ्चदशोपवासान्तरितानि पारणकानि तत्रोपवासास्त्रिंशत् पारणे द्वे सर्वदिनानि द्वात्रिंशत्। षोडशमासे षोडशोपवासान्तरितानि पारणकानि तत्रोपवासा द्वात्रिंशत् पारणे द्वे सर्वदिनानि चतुस्त्रिंशत्। एतत्तप समनुष्ठितशुद्धिदिने षोडशमासैरेव पूर्यते। उद्यापने वृहत्स्नात्रविधिपूर्वक जिनपूजा सघवात्सल्य सघपूजा च। एतत्फल गुणस्थानारोह। यत्नकन्यास। इति यतिश्राद्धकरणीयमागाढ गुणरत्नसंवत्सरतप.॥ २३ ॥

| २४ मास ११ एकादशी २२ आगाढ | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्रथमेमा | उ | छ | ११ | फ | ११ | ति |
| द्वितीये | उ | छ | ११ | फ | ११ | ति |
| तृतीये | उ | छ | ११ | फ | ११ | ति |
| चतुर्थे | उ | छ | ११ | फ | ११ | ति |
| पञ्चमे | उ | छ | ११ | फ | ११ | ति |
| षष्ठेमा | उ | छ | ११ | फ | ११ | ति |
| सप्तमे | उ | छ | ११ | फ | ११ | ति |
| अष्टमे | उ | छ | ११ | फ | ११ | ति |
| नवमे | उ | छ | ११ | फ | ११ | ति |
| दशमे | उ | छ | ११ | फ | ११ | ति |
| एकादशे | उ | छ | ११ | फ | ११ | ति |

॥ अथाङ्गतपः। एकादश्या समारभ्य शुक्लायां रुद्रसंख्यया। मासैस्तपो

नान्दपुम्या पुरुषः पुम्या अगणितमण्डकैर्भोजन दद्यात्। पश्चात्तस्या हरिद्राराग कौसुम्भवस्त्रयुगल ताम्बूल कङ्कणनूपुरादि दद्यात्। साधुसाध्वीना रजोहरणमुखवस्त्रिकावस्त्रपात्राद्यगणितमण्डकदान समस्तु श्राद्धगृहेपु अगणितमण्डकैर्लोमन। एतत्फल सिद्धिप्राप्तिः। इति श्राद्धकरणीयमागाढ पुण्डरीकतपः ॥ २७ ॥ ॥ अथ माणिक्यप्रस्तारिकातप। माणिक्यप्रस्तारी चाश्विनशुक्लस्य पक्षसंयोगे। आरभ्यैकादशिका राका यावद्विदध्याद्य ॥ १ ॥ माणिक्यवत्तपसः प्रस्तारो यस्या सा माणिक्यप्रस्तारी। तत्र आश्विनशुक्लैकादश्यामुपवासः द्वादश्यामेकभक्त त्रयोदश्या निर्विकृतिक चतुर्दश्यामाचाम्ल पूर्णिमास्यां द्विभुक्त। अथवा एकादश्यामुपवासः द्वादश्यामाचाम्ल त्रयोदश्या निर्विकृतिक चतुर्दश्यामेकभक्त पूर्णिमाया द्विभक्त। पर प्रभाते सूर्ये अनुदिते पञ्चस्वपि दिनेषु स्नानपूर्वक अविधवायाः सुभगाया मुखमण्डन उद्वर्तन च कुर्यात्।

| २८ माणिक्यप्रस्तारिकातप आगाढ | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| १ | वर्षे | ११उ | १२ए | १३नि | १४आ | १५द्वि | मासोष्ठ |
| २ | वर्षे | ११उ | १२ए | १३नि | १४आ | १५द्वि | ऽअष्ठु |
| ३ | वर्षे | ११उ | १२ए | १३नि | १४आ | १५द्वि | ऽअष्ठु |
| ३ | वर्षे | ११उ | १२ए | १३नि | १४आ | १५द्वि | ऽअष्ठु |

ततः स्वयमपि शुचिभव्यवस्त्राणि कौसुम्भवस्त्रयुगल वा परिधाय यथासपत्ति भूषणानि च धृत्वा अखण्डाक्षताञ्जलिं भृत्वा उपरि जातीफलमेक न्यस्य मङ्गलाचारपूर्वक चैत्यस्य प्रदक्षिणा दत्वा जिनाग्रे न्यसेत्। द्वितीयप्रदक्षिणाया नालिकेर तृतीयप्रदक्षिणाया सपत्र सवृन्त बीजपूर अक्षताञ्जलिमुपरिकरण पूगीफल देवाग्रे स्थापयेत्। चतुर्थप्रदक्षिणाया अक्षताञ्जलिमुपरि न्यस्य स्थालं देवाग्रे स्थापयेत्। चतुर्थप्रदक्षिणा दत्वा ततः

रित' । सप्तवर्षाणि वर्षं वा क्रियते च तदर्पने ॥ १ ॥ नन्दीश्वरचैत्यानामाराधनार्थं तपो नन्दीश्वरतपः । तत्र दीपोत्सवोमावास्या पटलिखित नन्दीश्वर पूरयित्वा उपवासैर्वा स्वशक्तित आचाम्लैकभक्तनिर्विकृतिकैर्वा तप आरभ्यते । अमावास्याममावास्या समागतायां तदेव तपः क्रियते यावत्सप्तवर्षाणि । साम्प्रत प्रवाहा-देकवर्षं वा । यन्त्रकन्यास' । उद्यापने बृहत्स्नात्रविधिना जिनपूजा कृत्वा स्वर्णमयकारितनन्दीश्वराग्रे द्विप-ञ्चाशत्सङ्ख्यया द्वापञ्चाशत् फलजातयः द्वापञ्चाशत् पक्वान्नजातयः द्वापञ्चाशत्सङ्ख्यया पुष्पजातयो ढौक्यन्ते । सघवात्सल्य सघपूजा च । एतत्फल भवाष्टकान्ते मोक्षः । इति यतिश्राद्धकरणीयमागाढ नन्दीश्वरतप' ॥२६॥

| २७ पुण्डरीकतप आगाढं वर्ष ७ चैत्रादारभ्यते | | | | | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| १ वर्षे | उ १ | पू | पू | पू | पू | पू | पू | पू | पू | पू | पू | पू |
| १ वर्षे | उ १ | पू | पू | पू | पू | पू | पू | पू | पू | पू | पू | पू |
| १ वर्षे | उ १ | पू | पू | पू | पू | पू | पू | पू | पू | पू | पू | पू |
| १ वर्षे | उ १ | पू | पू | पू | पू | पू | पू | पू | पू | पू | पू | पू |
| ५ वर्षे | उ १ | पू | पू | पू | पू | पू | पू | पू | पू | पू | पू | पू |
| ६ वर्षे | उ १ | पू | पू | पू | पू | पू | पू | पू | पू | पू | पू | पू |
| ७ वर्षे | उ १ | पू | पू | पू | पू | पू | पू | पू | पू | पू | पू | पू |

॥ अथ पुण्डरीकतपः । सप्तवर्षाणि वर्षं वा पूर्णमास्या यथाबल । कुर्वता पुण्डरीकाख्य तपस्तत्सञ्ज्ञयोच्यते ॥ १ ॥ पुण्डरीकस्य श्रीऋषभप्रथमगणधरस्य आराधनार्थं तप. पुण्डरीकतप. । स च चैत्रपूर्णिमास्या श्रीविमलाद्रौ सिद्धस्तद्दिने श्रीपुण्डरीकप्रतिमा-पूजापूर्वक यथाशक्ति एकाशनादिभिस्तप प्रारभ्यते । पुण्डरीक-पूजा तु कुसुम्भरक्तपरिधापनिकया कुसुम्भरक्तपट्या च नेत्राञ्ज-नेन सुरभिहरिद्रारागेण । ततः पूर्णिमायां यथाशक्ति तपो विद-ध्यात् । एव सप्तवर्षान्ते वर्षान्ते वा । यन्त्रकन्यास' । उद्यापने श्रीम-

विदध्यात् । षोडशदिनानि नित्य समवसरणपूजा । एव वर्षचतुष्टय सपूर्य उद्यापने समवसरणस्य बृहत्स्ना-
त्रविधिपूर्वक स्थालचतुष्टये पक्किकृतिढौकन सघवात्सल्य सघपूजा च । यक्षकन्यासः । एतत्फल साक्षादर्ह-
द्दर्शन । इति यतिश्राद्धकरणीयमागाढ समवसरणतपः ॥ ३० ॥ ॥ अथ द्वितीय समवसरणतपः । भाद्रपद-
कृष्णचतुर्थीमारभ्य शुक्लचतुर्थी यावत् यथाशक्ति तपो विधीयते । शेष पूर्ववत् ॥ इति समवसरणतपोद्वय
॥३१॥ ॥ अथ एकादशगणधरतपः । चरमजिनस्यैकादश शिष्या गणधारिणस्तदर्थं च । प्रत्येकमनशनान्यथा

| ३२ एकादशगणधरतपः आगाढ उ० ११ पा० ११ | | | | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| इंद्रभूति | उ १ | पा | अग्निभूति | उ १ | पा | वायुभूति | उ १ | पा | श्रीव्यक्त | उ १ | पा |
| मंडपित | उ १ | पा | अचलभूति | उ १ | पा | मेतार्य | उ १ | पा | प्रभास | उ १ | पा |
| सुधर्मा | उ १ | पा | मंडिक | उ १ | पा | मौर्यपुत्र | उ १ | पा | | | |

चाम्लान्यथा विदध्याच्च ॥१॥ गणधराराध-
नार्थं तपो गणधरतपः । आराधनार्थं प्रत्येक-
मेकादशोपवासानेकान्तरान् आचाम्लानि
वा विदधीत । यक्षकन्यासः । उद्यापने
गणधरमूर्तिपूजन सघवात्सल्य संघपूजा च । एतत्फलं केवलावाप्तिः । इति यतिश्राद्धकरणीयमागाढ गणधर-
तपः ॥ ३२ ॥ ॥ अथ अशोकवृक्षतपः । आश्विनशुक्लप्रतिपदमारभ्य तिथिश्च पञ्चजिनशक्त्या । कुर्यात्तपसा
सहिताः पञ्चसमा इदमशोकतपः॥ १ ॥ अशोकवृक्षवन्मङ्गलरूपमशोकवृक्षतपः। तत्र आश्विनशुक्लप्रतिपदमा-
रभ्य पञ्चमीं यावत् पञ्च दिनानि अशोकद्रुमसहितजिनपूजापूर्वक यथाशक्ति तपो विदधीत यावत्पञ्च वर्षाणि।

सप्तधान्यानि लवण च । अष्टोत्तरशतहस्तप्रमाण वस्त्र रक्तगुञ्जा अष्टोत्तरशत कौसुम्भवस्त्र देवाग्रे ढौकयेत् । एव वर्षचतुष्टय कुर्यात् । उद्यापने अष्टोत्तरशतप्रमाण सुकुमारिका पूर्णकुम्भप्रदीपादेया एक रूप्यमय दीप स्वर्णवर्तिसहित च दद्यात् । सघवात्सल्य सघपूजा च । एतत्फल विमलगुणावाप्ति । इति यतिश्राद्धकरणीयमागाढ माणिक्यप्रस्तारिकातपः ॥ २८ ॥ ॥ अथ पद्मोत्तरतप[1] । प्रत्येक नवपद्मेष्वष्टाष्टप्रत्येकसख्यया । उपवासा मीलिताः स्युर्द्वासप्ततिरनुत्तराः ॥ १ ॥ पद्मवत् श्रिया उत्तर उत्कृष्ट पद्मोत्तर । तत्र नव पद्मानि तेषु प्रत्येकमष्टावष्टौ दलानि तत्सख्यया द्वासप्तत्युपवासा एकान्तरा विधीयन्ते ॥ यन्त्रकन्यास । उद्यापने बृहत्स्नात्रविधिपूर्वक अष्टदलस्वर्णमयकमलनवक ढौकनीय सघवात्सल्य सघपूजा च । एतत्फल महालक्ष्मीप्राप्तिः । इति यतिश्राद्धकरणीयमागाढ पद्मोत्तरतपः ॥ २९ ॥ ॥ अथ समवसरणतपः । श्रावणमथ भाद्रपद कृष्णप्रतिपदमिहादिता नीत्वा । षोडशदिनानि कार्यं वर्षचतुष्क सशक्तितपः ॥ १ ॥ समवसरणस्य आराधनार्थं तप. समवसरणतप । तत्र श्रावणकृष्णप्रतिपद भाद्रपदकृष्णप्रतिपद वा प्रारभ्य स्वशक्त्या द्विभक्तैकभक्तादि

३० समवसरणतप आगाढं भाद्रपदे कार्यश्रावण

| | | | | | | | | | | | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| १श्रमा | उ१ | सि | १ | २ | ३ | ४ | ५ | ६ | ७ | ८ | ९ | १० | ११ | १२ | १३ | १४ | १५ | १ |
| २श्रमा | उ१ | सि | १६ | २ | ३ | ४ | ५ | ६ | ७ | ८ | ९ | १० | ११ | १२ | १३ | १४ | १५ | छ१ |
| ३श्रमा | उ१ | सि | १६ | २ | ३ | ४ | ५ | ६ | ७ | ८ | ९ | १० | ११ | १२ | १३ | १४ | १५ | छ१ |
| ४श्रमा | उ१ | सि | १६ | २ | ३ | ४ | ५ | ६ | ७ | ८ | ९ | १० | ११ | १२ | १३ | १४ | १५ | छ१ |

[1] पद्मोत्तरतपः २९ अस्याकृतिरस्मिन्ग्रन्थेऽप्यत्र योजिताऽस्ति ।

न्यष्टषष्टिः । यत्रकन्यासः । उद्यापने रूप्यमयपट्टिकायां सुवर्णलेखिन्या पञ्चपरमेष्ठिमन्त्रं लिखित्वा ज्ञानपूजा विदध्यात् । अष्टषष्टिसंख्यया फलपुष्पमुद्रापक्वान्नढौकनं संघवात्सल्यं संघपूजा च । एतत्फलं सर्वसुखप्राप्तिः । इति यतिश्राद्धकरणीयमागाढं नमस्कारतपः ॥ ३५ ॥ ॥ अथ चतुर्दशपूर्वतपः । शुक्लपक्षे तपः कार्यं

| ३५ नमस्कारतपः आगाढ सर्वदिन ६८ | | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| १ पदेऽक्षर ७। | ० म | मो | अ | रि | हं | ता | णं | पृ | =७ |
| २ पदेऽक्षर | ५ | म | मो | सि | द्धा | ण | पृ | ५ | = |
| ३ पदेऽक्षर | ० | म | मो | आ | य | रि | या | णं | पृ ७ |
| ४ पदेऽक्षर | ० म | मो | उ | व | ज्झा | या | णं | । | पृ ७ |
| ५ पदेऽक्षर | ९ म | मो | लो | ए | स | व्व | सा | हूण | पृ ९ |
| ६ पदेऽक्षर | ८ ए | सो | पं | च | ण | मु | क्का | रो | पृ ८ |
| ७ पदेऽक्षर | ८ स | व्व | पा | व | प्प | णा | स | णो | पृ ८ |
| ८ पदेऽक्षर | ८ म | ग | ला | ण | च | स | व्व | सिं | पृ ८ |
| ९ पदेऽक्षर | ७।८ प | ढ | मं | ह | व | इ | म | गं | लंपृ ९ |

| ३६ चतुर्दशपूर्वतप आगाढ । | | | | |
|---|---|---|---|---|
| शुक्ल | चतुर्दशी | १४ | २ अग्रायणीय | १४ |
| पृ | उत्पादपू १ | १४ | अस्तिप्रवाद ४ | पृ |
| पृ | वीर्यप्रवाद ३ | १४ | सत्यप्रवाद ६ | पृ |
| पृ | ज्ञानप्रवाद ५ | १४ | कर्मप्रवाद ८ | पृ |
| पृ | आत्मप्रवाद ७ | १४ | विद्याप्रवाद १० | पृ |
| पृ | प्रत्याख्यान ९ | १४ | प्राणायाय १२ | पृ |
| पृ | कल्याणनाम ११ | १४ | लोकबिंदुसार | पृ |
| पृ | क्रियाविशाल १३ | १४ | पृ | पृ |

| ३३ अशोकवृक्षतपः आगाढ | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| १ अष्टु | १ | २ | ३ | ४ | ५ | ति | उ |
| २ अष्टु | १ | २ | ३ | ४ | ५ | ति | उ |
| ३ अष्टु | १ | २ | ३ | ४ | ५ | ति | उ |
| ४ अष्टु | १ | २ | ३ | ४ | ५ | ति | उ |
| ५ अष्टु | १ | २ | ३ | ४ | ५ | ति | उ |

यन्त्रकन्यासः। उद्यापने अशोकवृक्षसहित नव्य जिनबिम्ब कारयित्वा विधिना प्रतिष्ठाप्य षड्विकृतिपूगफलादिभिः पूजयेत्। संघवात्सल्य संघपूजा च। एतत्फल सर्वसुखप्राप्तिः। इति यतिश्राद्धकरणीयमागाढ अशोकवृक्षतप ॥ ३३ ॥

॥ ॥ अथ सप्तत्युत्तरशततपः। सप्ततिशत जिनानामुद्दिश्यैकैकमेकभक्त च। कुर्वाणानामुद्यापनात्तपः पूर्यते सम्यक् ॥ १॥ सप्ततिशतजिनानामाराधनार्थं तपः सप्ततिशततपः। तत्र सप्ततिशतजिनानुद्दिश्य सप्ततिशतमेकभक्तानि कुर्यादेकश्रेण्या अथवा विंशत्येकभक्तानि कृत्वा पारणकानि। यन्त्रन्यासः। उद्यापने बृहत्स्नात्रविधिं विधाय सप्ततिशतसंख्यया सर्वपक्वान्नपुष्पफलढौकन संघवात्सल्यं संघपूजा च। एतत्फल आर्यदेशजन्म। इति यतिश्राद्धकरणीयमनागाढं सप्ततिशततप. ॥३४॥ ॥

| ३४ सप्ततिशततपः अनागाढ | | | |
|---|---|---|---|
| एकभक्त | २० | पारणक | १ |
| एकभक्त | २० | पारणक | १ |
| एकभक्त | २० | पारणक | १ |
| एकभक्त | २० | पारणक | १ |
| एकभक्त | २० | पारणक | १ |
| एकभक्त | २० | पारणक | १ |
| एकभक्त | २० | पारणक | १ |
| एकभक्त | २० | पारणक | १ |
| एकभक्त | २० | पारणक | १ |

॥ अथ नमस्कारतपः। नमस्कारतपश्चाष्टषष्टिसंख्यैकभक्तकैः। विधीयते च तत्पादसंख्यायाश्च प्रमाणतः ॥ १ ॥ नमस्कार आराधनार्थं तपः नमस्कारतपः। तत्र प्रथमपदे वर्णसंख्यासप्तैकभक्तानि द्वितीयपदे पञ्च तृतीये सप्त चतुर्थे सप्त पञ्चमे नव षष्ठे अष्टौ सप्तमेऽष्टौ अष्टमेऽष्टौ नवमे नव वाष्टौ वा शुर्वाम्नायविशेषात्। एवं एकभक्ता-

न्यष्टषष्टि । पञ्चकन्यासः । उद्यापने रूप्यमयपट्टिकायां सुवर्णलेखिन्या पञ्चपरमेष्ठिमन्त्रं लिखित्वा ज्ञानपूजां विदध्यात् । अष्टषष्टिसंख्यया फलपुष्पमुद्रापक्वान्नढौकनं संघवात्सल्य संघपूजा च । एतत्फलं सर्वसुखप्राप्तिः । इति यतिश्राद्धकरणीयमागाढ नमस्कारतपः ॥ ३५ ॥ ॥ अथ चतुर्दशपूर्वतपः । शुक्लपक्षे तपः कार्यं

| ३५ नमस्कारतपः आगाढ तपोदिन ६८ | | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| १ पदेऽक्षर ७। | ७ न | मो | अ | रि | हं | ता | णं | पू | =७ |
| २ पदेऽक्षर | ५ | न | मो | सि | द्धा | णं | पू | ५ | = |
| ३ पदेऽक्षर | ७ | न | मो | आ | य | रि | या | णं | पू ७ |
| ४ पदेऽक्षर | ७ न | मो | उ | व | ज्झा | या | णं | । | पू ७ |
| ५ पदेऽक्षर | ९ न | मो | लो | ए | स | व्व | सा | हूणं | पू ९ |
| ६ पदेऽक्षर | ८ ए | सो | पं | च | न | मु | क्का | रो | पू ८ |
| ७ पदेऽक्षर | ८ स | व्व | पा | व | प्प | णा | स | णो | पू ८ |
| ८ पदेऽक्षर | ८ मं | ग | ला | णं | च | स | व्वे | सिं | पू ८ |
| ९ पदेऽक्षर | ९।८ प | ढ | म | हं | व | इ | मं | ग | लंपू ९ |

| ३६ चतुर्दशपूर्वतप आगाढ । | | | | |
|---|---|---|---|---|
| छठ | चतुर्दशी | १४ | २ अग्रायणीय | १४ |
| पू | उत्पादपू १ | १४ | अस्तिप्रवाद ४ | पू |
| पू | वीर्यप्रवाद ३ | १४ | सत्यप्रवाद ६ | पू |
| पू | ज्ञानप्रवाद ५ | १४ | कर्मप्रवाद ८ | पू |
| पू | आत्मप्रवाद ७ | १४ | विद्याप्रवाद १० | पू |
| पू | प्रत्याख्यान ९ | १४ | प्राणावाय १२ | पू |
| पू | कल्याणनाम ११ | १४ | लोकबिंदुसार | पू |
| पू | क्रियाविशा १३ | १४ | पू | पू |

चतुर्दशचतुर्दशीः । चतुर्दशानां पूर्वाणां तपस्तेन समाप्यते ॥ १ ॥ चतुर्दशाना पूर्वाणामाराधनार्थं तप. चतुर्दशपूर्वतपः । तत्र शुभसयोगे । शुक्लचतुर्दशीं प्रारभ्य चतुर्दशमासेषु शुक्लचतुर्दशीषु यथाशक्ति एकाशनादि तपो विधेय । यन्त्रकन्यास । उद्यापने ज्ञानपञ्चमीवत् चतुर्दशसख्यैः पुस्तकादिभिर्ज्ञानपूजा सघवात्सल्य सघपूजा च । एतत्फल सम्यक्श्रुतज्ञानावाप्तिः । इति यतिश्राद्धकरणीयमागाढ चतुर्दशपूर्वतपः ॥३६॥

॥ अथ एकावलीतपः । एकद्वित्र्युपवासैः काहलके द्वे तथा च दाडिमके । चतुसख्यैश्च चतुर्थैः श्रेणी कनकाव-

| | | |
|---|---|---|
| १ | पा | पा |
| २ | पा | पा |
| ३ | पा | पा |
| १ | १ | १ |
| १ | | १ |
| १ | १ | १ |
| १ | | पा |
| २ | | पा |
| ३ | | पा |
| ४ | | पा |
| ५ | | पा |
| ६ | | पा |
| ७ | | पा |
| ८ | | पा |
| ९ | | पा |
| १० | | पा |
| ११ | | पा |
| १२ | | पा |
| १३ | | पा |
| १४ | | पा |
| १५ | | पा |
| १६ | | पा |

काहली दाडिमो ६० । ३७। एकावलीतपसि दिन ४३४ पारणा ८८ आगाढ

| | | |
|---|---|---|
| | व | १ |
| | व | २ |
| | व | ३ |
| १ | १ | १ |
| १ | | १ |
| १ | १ | १ |
| व | १ | |
| व | २ | |
| व | ३ | |
| व | ४ | |
| व | ५ | |
| व | ६ | |
| व | ७ | |
| व | ८ | |
| व | ९ | |
| व | १० | |
| व | ११ | |
| व | १२ | |
| व | १३ | |
| व | १४ | |
| व | १५ | |
| व | १६ | |

| आवली २ | | | | | | | | | पदकं |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| | | | | १ | १ | | | | |
| | | | १ | १ | १ | १ | | | |
| | | १ | १ | १ | १ | १ | १ | | |
| १ | १ | १ | १ | १ | १ | १ | १ | १ | १ |
| | | १ | १ | १ | १ | १ | १ | | |
| | | | १ | १ | १ | १ | | | |
| | | | | १ | १ | | | | |
| आवली १ | | | | | | | | | पारणांतर |

लीवच ॥ १ ॥ चतुस्त्रिंशच्चतुर्थैश्च पूर्यते तरलः पुनः । समाप्तिमेति साधूनामेवमेकावलीतपः ॥ २ ॥ एकावलीवदुपवासैस्तप एकावलीतपः । तत्र प्रथमकाहलिकायां एकद्वित्र्युपवासैर्निरन्तरैः क्रमात्पारणकानि । ततो

दाडिमकस्याष्टमचतुर्थानि पारणान्तरितानि । तत एकद्वित्र्यादिभिः षोडशान्तैः पारणकान्तरैर्निरन्तरैरुपवासैरेका आवलिका पूर्यते । ततः पदकस्य चतुस्त्रिंशच्चतुर्थानि पारणान्तरितानि । ततो विलोमक्रमेण षोडशादिभिरेकान्तैः पारणान्तरितैर्निरन्तरोपवासैर्द्वितीयावलिका पूर्यते । पुनरष्टचतुर्थैः पारणान्तरैर्द्वितीयदाडिमक पूर्यते । ततस्त्रिद्व्येकोपवासैर्द्वितीया काहलिकां पूरयेत् । अत्रोपवासाना त्रिशती चतुस्त्रिंशदुत्तरा ३३४ पारणकदिनान्यष्टाशीतिः ८८ । यन्त्रकन्यासः । उद्यापने बृहत्स्नात्रविधिना पूजा विधाय प्रतिमाया बृहन्मुक्ताबल्येकावलीहार समारोपयेत् सघवात्सल्य संघपूजा च । एतत्फल विमलगुणाप्तिः । इति यतिश्राद्धकरणीयमागाढमेकावलीतपः ॥ ३७ ॥ ॥ अथ दशविधयतिधर्मतपः । सयमादौ दशविधे धर्मे एकान्तरा अपि । क्रियन्त उपवासा यत्तत्तपः पूर्यते हि तैः ॥ १ ॥ दशविधस्य यतिधर्मस्याराधनार्थं तपः दशविधयतिधर्मतपः । तत्र त्रयोदशोपवासा एकान्तरिता विधेयाः । यन्त्रकन्यासः । उद्यापने बृहत्स्नात्रविधिपूर्वक कुर्यात् सघवात्सल्य संघपूजा च । एतत्फल विशुद्धधर्मप्राप्तिः । इति यतिश्राद्धकरणीयमागाढ यतिधर्मतपः ॥३८॥ ॥ अथ पञ्चपरमेष्ठितपः । उपवासैकस्थाने आचाम्लैकाशने च निर्विकृतिः । प्रतिपरमेष्ठि च पङ्क्ति प्रत्याख्यानस्य भवतीद ॥१॥

| ३८ यतिधर्मतपः आगाढ | | | | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| संयम | उ १ | पा | सूनृत | उ १ | पा | शौच | उ १ | पा | ब्रह्म | उ १ | पा |
| क्षांति | उ १ | पा | मार्दव | उ १ | पा | ऋजुता | उ १ | पा | मुक्ति | उ १ | पा |
| | | | | | | आर्किंचन्य | उ १ | पा | | | |

चतुर्दशचतुर्दशीः । चतुर्दशानां पूर्वाणां तपस्तेन समाप्यते ॥ १ ॥ चतुर्दशाना पूर्वाणामाराधनार्थं तपः चतुर्दशपूर्वतपः । तत्र शुभसयोगे । शुक्लचतुर्दशीं प्रारभ्य चतुर्दशमासेषु शुक्लचतुर्दशीषु यथाशक्ति एकाशनादि तपो विधेय । यन्त्रकन्यास । उद्यापने ज्ञानपञ्चमीवत् चतुर्दशसंख्य पुस्तकादिभिर्ज्ञानपूजा सघवात्सल्य सघपूजा च । एतत्फल सम्यक्श्रुतज्ञानावाप्तिः । इति यतिश्राद्धकरणीयमागाढ चतुर्दशपूर्वतपः ॥२६॥

॥ अथ एकावलीतपः । एकद्वित्र्युपवासैः काहलके द्वे तथा च दाडिमके । वसुसंख्यैश्च चतुर्थैः श्रेणी कनकाव-

| | | |
|---|---|---|
| १ | पा | पा |
| २ | पा | पा |
| ३ | पा | पा |
| १ | १ | १ |
| १ | | १ |
| १ | १ | १ |
| १ | | पा |
| २ | | पा |
| ३ | | पा |
| ४ | | पा |
| ५ | | पा |
| ६ | | पा |
| ७ | | पा |
| ८ | | पा |
| ९ | | पा |
| १० | | पा |
| ११ | | पा |
| १२ | | पा |
| १३ | | पा |
| १४ | | पा |
| १५ | | पा |
| १६ | | पा |

काहलौ दाडिमौ १० । २७ । एकावलीतपसि दिन ३३४ पारणा ८८ आगाढ

| | | |
|---|---|---|
| | पा | १ |
| | पा | २ |
| | पा | ३ |
| १ | १ | १ |
| १ | | १ |
| १ | १ | १ |
| पा | १ | |
| पा | २ | |
| पा | ३ | |
| पा | ४ | |
| पा | ५ | |
| पा | ६ | |
| पा | ७ | |
| पा | ८ | |
| पा | ९ | |
| पा | १० | |
| पा | ११ | |
| पा | १२ | |
| पा | १३ | |
| पा | १४ | |
| पा | १५ | |
| पा | १६ | |

| आवर्ते २ | | | | | | | | | पदकं |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| | | | | १ | १ | | | | |
| | | | १ | १ | १ | १ | | | |
| | | १ | १ | १ | १ | १ | १ | | |
| १ | १ | १ | १ | १ | १ | १ | १ | १ | १ |
| | | १ | १ | १ | १ | १ | १ | | |
| | | | १ | १ | १ | १ | | | |
| | | | | १ | १ | | | | |
| आवर्ते १ | | | | | | | | | पारणांतरं |

लीवत् ॥ १ ॥ चतुस्त्रिंशच्चतुर्थैश्च पूर्यते तरलः पुनः । समाप्तिमेति साधूनामेवमेकावलीतपः ॥ २ ॥ एकावलीवदुपवासैस्तप एकावलीतप । तत्र प्रथमकाहलिकायां एकद्वित्र्युपवासैर्निरन्तरैः क्रमात्पारणकानि । ततो

कुसुमाद्यिर्चः शुभतन्दुलैः पूरितवप्रः चारुस्वस्तिकोपरिघृतपरिपूर्णप्रदीपितपञ्चवर्तिप्रदीपः फलादिबलिविघानपूर्वं शिरःप्रक्षिपितगन्धाक्षतचन्दनः गुरुसमीपे शुक्लपञ्चमीं प्रारभ्य तथा पञ्चमासीं शुक्लपञ्चमीषु द्विभक्तानि पञ्चमासीं एकभक्तानि पञ्चमासीं निर्विकृतिकानि पञ्चमासीमाचाम्लानि पञ्चमासीमुपवासाः एव मासपञ्चविंशत्या पूर्यते । केष्वपि गच्छान्तरेषु मासपञ्चविंशत्यामपि एकमेव यथारब्ध द्विभक्तमेकभक्त वा निर्विकृतिक वा आचाम्ल वा उपवासो वा विधीयते । यन्त्रकन्यासः । उद्यापने जिनस्य बृहत्स्नात्रविधिः पञ्चसङ्ख्यया विविधपक्वान्नफलमुद्राढौकन पुस्तकाग्रे पुस्तकस्य च वर्तिकादोरक उत्तरीयक वेष्टनक पिंछिका निःक्षपण जपमाला वासकूपक लेखिनी मषीभाजन मुखवस्त्रिका छुरी कर्तरी नखहृन्नी दण्डप्रोञ्छनक कमली ठवणीदोरी पाढुला दावडी दीयी अगलुहणाश्रीखण्डीवासपुडी वीजणीप्रभृति ज्ञानोपकरण । अष्टप्रकारपूजापूर्वक पञ्चपञ्चसङ्ख्यढौकनीय । सघवात्सल्यं सघपूजा च । एतत्फल ज्ञानलाभ । इति यतिश्राद्धकरणीयमागाढं लघुपञ्चमीतपः ॥ ४० ॥ ॥ अथ बृहत्पञ्चमीतपः । एवमेव तपो वर्षपञ्चक कुर्वता नृणां । बृहत्पञ्चमिकायास्तु तपः सपूर्यतेऽखिल ॥ १ ॥ समास्यारम्भो लघुपञ्चमीवत् शुक्ल २ पञ्चमीषु वर्षमेक द्व्यशनानि वर्षमेकमेकभक्तानि वर्षमेकं निर्विकृतिकानि वर्षमेकमाचाम्लानि वर्षमेकमुपवासाः शुक्लपञ्चमीषु एव पञ्चसंवत्सराः पूर्यन्ते । यन्त्रकन्यासः । उद्यापने लघुपञ्चमीवत् पर वस्तुसङ्ख्या पञ्चविंशतिपञ्चविंशतिरूपा । एतत्फलं महाज्ञानावाप्तिः । इति यतिश्राद्धकरणीयमागाढ बृहज्ज्ञानपञ्चमीतपः ॥ ४१ ॥ ॥ अथ चतुर्विधसघतपः । उपवा-

पञ्चानां परमेष्ठिनामाराधनार्थं तपः परमेष्ठितपः । तत्र प्रथमपरमेष्ठिनं प्रति प्रथममुपवास । ततः एकाशन ततः आचाम्ल ततः एकाशन ततो निर्विकृतिक ततोपि पूर्वार्धं अष्टग्रास । एवं परेषां चतुर्णामपि परमेष्ठिनां इति पञ्चविंशदिनै पूर्यते । यन्त्रकन्यास । उद्यापने ज्ञानपञ्चमीवत् पञ्चभिः पञ्चभि पुस्तकादिभिर्विधिर्विधेयः । सङ्घवात्सल्य सङ्घपूजा च । एतत्फल सर्वविघ्नोपशमः । इति यतिश्राद्धकरणीयमागाढ पञ्चपरमेष्ठितप ॥ ३९ ॥ ॥ अथ लघुपञ्चमीतपः । लघुपञ्चम्या ह्यशनादिपञ्चमासोत्तर तपः कृत्वा । तत्पञ्चविधसमाप्तौ स-

| ३९। ३९। पञ्चपरमेष्ठितपः आगाढ | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| नमोअरि० | उ | ए | आं | ए | नि | पु | अठकव |
| नमोसिद्धा० | उ | ए | आं | ए | नि | पु | अठक० |
| नमोआय० | उ | ए | आं | ए | नि | पु | अठक० |
| नमोउवज्झा० | उ | ए | आं | ए | नि | पु | अठक० |
| नमोलोएस० | उ | ए | आं | ए | नि | पु | अठक० |

| ४० लघुपञ्चमीतप आगा० । ४१ बृहत्पञ्चमीतपआ० | | | | |
|---|---|---|---|---|
| मास ५ | द्विभक्त | वर्ष | द्वि | शुक्ल ५ |
| मास ५ | एकभक्त | वर्ष | ए | शुक्ल ५ |
| मास ५ | निभक्त | वर्ष | नि | शुक्ल ५ |
| मास ५ | आंबिल | वर्ष | आं | शुक्ल ५ |
| मास ५ | उपवास | वर्ष | उ | शुक्ल ५ |

माप्यते मासपञ्चविंशाख्या ॥ १ ॥ पञ्चम्यां तप तत्र चतुर्मासी श्रावणभाद्रपदआश्विनकार्तिकपौषवैशाखवर्जयित्वा पुरुषो महिला वा जिनभवने ज्ञानादिपुष्पैर्विरचितजिनपूजां तदग्रे विधिवेदय पुस्तक तत्र विधि-

कुसुमाविष्वर्चः शुभतन्दुलैः पूरितत्वमः चारुस्वस्तिकोपरिघृतपरिपूर्णप्रदीपितपञ्चवर्तिप्रदीपः फलाविबलिवि-
धानपूर्वं शिर'प्रक्षिपितगन्धाक्षतचन्दनः गुरुसमीपे शुक्लपञ्चमीं प्रारभ्य तथा पञ्चमासीं शुक्लपञ्चमीषु द्विभ-
क्तानि पञ्चमासीं एकभक्तानि पञ्चमासीं निर्विकृतिकानि पञ्चमासीमाचाम्लानि पञ्चमासीमुपवासाः एव मा-
सपञ्चविंशत्या पूर्यते । केष्वपि गच्छान्तरेषु मासपञ्चविंशत्यामपि एकमेव यथारम्भं [illegible] वा नि-
र्विकृतिकं वा आचाम्लं वा उपवासो वा विधीयते । पञ्चकन्यासः । उद्यापने [illegible] पञ्च-
सङ्ख्यया विविधपक्वान्नफलप्रमुखढौकनं पुस्तकाग्रे पुस्तकार्धं च वर्तिकाद्वोरक [illegible]
क्षपणं जपमाला पासकुपकं लेखिनी मषीभाजनं गुलपक्षिका छुरी कातरी [illegible]
वीरोरी पाउला दाबडी दीवी संगटूणाश्रीलपट्टीवारपुट्ठी मीजणीप्रभृति ज्ञानोपकरणं । [illegible]
र्वकं [illegible] । [illegible] । एतत्फलं ज्ञानलाभः । इति [illegible]
[illegible] ॥ १० ॥ ॥ अथ सुदुःखप्रभीतपः । एतयोस्तपो [illegible] । [illegible]
[illegible] ॥ ११ ॥ [illegible] । [illegible]
[illegible]
[illegible] । [illegible]
[illegible] ॥ १२ ॥ ॥ अथ [illegible] । [illegible]

सद्वय कृत्वा ततो वत्सर ६० सङ्ख्यया। एकान्तरोपवासैश्च पूर्णं सघतपो भवेत् ॥ १ ॥ चतुर्विधस्य सघस्याराधनार्थं तपश्चतुर्विधसघतपः। तत्र उपवासद्वय निरन्तर विधाय पारण कृत्वा षष्टिरुपवासा एकान्तरा विधेया। यन्त्रकन्यासः। उद्यापने सघवात्सल्य सघपूजा च। एतत्फलं तीर्थंकरनामकर्म। इति यतिश्राद्धकरणीयमागाढ चतुर्विधसघतपः ॥ ४२ ॥ ॥ अथ घनतपः। एकद्व्येकद्व्येकयुग्मशशिसङ्ख्ययोपवासैश्च। पारणकान्तरितैरपि निरन्तरैः पूर्यतेऽत्र घन ॥ १ ॥ अङ्कानां घनयुक्त्या तपो घनतपः। तत्र एकोपवासः पारणक द्वौ उपवासौ पारणक एकोपवासः पारणक द्वौ उपवासौ पारणक पुनः द्वौ उपवासौ पारणक एकोपवासः पारणक द्वौ उपवासौ पारणक एकोपवासः पारणक एव उपवासाः द्वादश पारणकान्यष्टौ।

४२ चतुर्विधसंघतप आगाढ दिन १२२

| | | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| उ १ | पा | उ १ | पा | उ १ | पा | उ १ | पा | उ १ | पा |
| उ १ | पा | उ १ | पा | उ १ | पा | उ १ | पा | उ १ | पा |
| उ १ | पा | उ १ | पा | उ १ | पा | उ १ | पा | उ १ | पा |
| उ १ | पा | उ १ | पा | उ १ | पा | उ १ | पा | उ १ | पा |
| उ १ | पा | उ १ | पा | उ १ | पा | उ १ | पा | उ १ | पा |
| उ १ | पा | उ १ | पा | उ १ | पा | उ १ | पा | उ १ | पा |
| उ १ | पा | उ १ | पा | उ १ | पा | उ १ | पा | उ १ | पा |
| उ १ | पा | उ १ | पा | उ १ | पा | उ १ | पा | उ १ | पा |
| उ १ | पा | उ १ | पा | उ १ | पा | उ १ | पा | उ १ | पा |
| उ १ | पा | उ १ | पा | उ १ | पा | उ १ | पा | उ १ | पा |
| उ १ | पा | उ १ | पा | उ १ | पा | उ १ | पा | उ १ | पा |
| उ १ | पा | उ १ | पा | उ १ | पा | उ १ | पा | उ १ | पा |

४३ घनतप आगाढ

| | | | |
|---|---|---|---|
| उ १ | पा | उ २ | पा |
| उ १ | पा | उ २ | पा |
| उ २ | पा | उ १ | पा |
| उ २ | पा | उ १ | पा |

यन्नकन्यासः। उद्यापने बृहत्स्नात्रविधिपूर्वक उपवाससख्यया फलपुष्पपक्वान्नजातिढौकन संघवात्सल्य संघपूजा च। एतत्फल महालक्ष्मीः। इति यतिश्राद्धकरणीयमागाढ घनतपः ॥ ४३ ॥ ॥ अथ महाघनतपः।

| ४४ महाघनतप आगाढ | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| उ १ | पा | उ | २ | पा | उ ३ | पा |
| उ २ | पा | उ | ३ | पा | उ १ | पा |
| उ ३ | पा | उ | १ | पा | उ २ | पा |
| उ २ | पा | उ | ३ | पा | उ १ | पा |
| उ ३ | पा | उ | १ | पा | उ २ | पा |
| उ १ | पा | उ | २ | पा | उ ३ | पा |
| उ २ | पा | उ | ३ | पा | उ १ | पा |
| उ ३ | पा | उ | १ | पा | उ २ | पा |
| उ २ | पा | उ | ३ | पा | उ १ | पा |

महाघनतपः श्रेष्ठमेकद्वित्रिभिरेव हि। उपवासैर्नवकृत्वः पृथक्श्रेणिमुपागतैः ॥ १ ॥ घनाङ्कबाहुल्यान्महाघन। तत्र प्रथमश्रेणौ एकद्वित्रि उपवासा निरन्तराः पारणान्तरिताः द्वितीयश्रेणौ द्वित्र्येकोपवासाः। तृतीयाया त्र्येकद्वयोपवासाः चतुर्थ्यां द्वित्र्येकोपवासाः पञ्चम्या त्र्येकद्वयोपवासाः षष्ठ्यामेकद्वित्रिउपवासाः सप्तम्या द्वित्र्येकोपवासाः अष्टम्या एकद्वयोपवासाः नवम्या द्वित्र्येकोपवासाः एव उपवासाश्चतुःपञ्चाशत् पारणकानि सप्तविंशतिः सर्वदिनान्येकाशीतिः। यन्नकन्यासः। उद्यापने बृहत्स्नात्रविधिपूर्वकमेकाशीतिसख्यया पक्वान्नफलजातिढौकन संघवात्सल्य संघपूजा च। एतत्फल सार्वभूमर्द्धिप्राप्तिः। इति यतिश्राद्धकरणीयमागाढ महाघनतपः ॥ ४४ ॥ ॥ अथ वर्गतपः। एकद्व्येककयुग्मभूमियमलैरेकद्विभूमिद्विकैर्द्व्येकद्वीन्दुयुगैकयुग्मधरणीयुग्मेन्दुयुग्मैककैः। एकद्व्येकभुजद्विचन्द्रधरणीयुग्मैकयुग्मे-

न्तुभिर्द्व्येकद्व्येकयुगैर्युगेन्दुधरणीयुग्मैकयुग्मेन्दुभिः ॥ १ ॥ द्विद्व्येकद्विमहीद्विभूमियुगलय्याप्याद्विभूमिद्वयैर्द्व्ये-

४५ वर्गतप आगारं दिनसंख्या १६०

| | | | | | | | | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| उ | १ | पा | २ | पा | १ | पा | २ | पा | १ | पा | २ | पा | १ | पा | २ |
| उ | १ | पा | २ | पा | २ | पा | १ | पा | २ | पा | १ | पा | २ | पा | १ |
| उ | २ | पा | १ | पा | २ | पा | १ | पा | १ | पा | २ | पा | १ | पा | २ |
| उ | २ | पा | १ | पा | १ | पा | २ | पा | १ | पा | २ | पा | १ | पा | २ |
| उ | १ | पा | २ | पा | १ | पा | २ | पा | २ | पा | १ | पा | १ | पा | २ |
| उ | १ | पा | २ | पा | १ | पा | २ | पा | २ | पा | १ | पा | २ | पा | १ |
| उ | २ | पा | १ | पा | २ | पा | १ | पा | १ | पा | २ | पा | २ | पा | १ |
| उ | २ | पा | १ | पा | २ | पा | १ | पा | २ | पा | १ | पा | २ | पा | १ |

कद्व्येकमहीद्विचन्द्रयुगलैः श्रेण्यष्टकस्य गते.। वर्गाख्य तप उच्यते ह्यनशनैर्मध्योल्लसत्पारणै सर्वत्रापि निरन्तरैरपि दिनान्यस्मिन्खषट्भूमयः ॥ २ ॥ वर्गाङ्कैस्तपः वर्गतपः । तत्र एकद्विएकद्विएकद्विएकद्विएकउपवासैर्निरन्तरैः पारणान्तरितैः प्रथमा श्रेणिः । एकद्विद्विएकद्विएकद्विएकउपवासैर्द्वितीया श्रेणिः । द्विएकद्विएकएकद्विएकद्विउपवासैस्तृतीया श्रेणिः । द्विएकएकद्विएकद्विएकद्विउपवासैश्चतुर्थी श्रेणिः । एकद्विएकद्विद्विएकएकद्विउपवासैः पञ्चमी श्रेणिः । एकद्विएकद्विद्विएकद्विएकउपवासैः षष्ठी श्रेणिः । द्विएकद्विएकएकद्विद्विएकउपवासैः सप्तमीश्रेणिः । द्विएकद्विएकद्विएकद्विएकउपवासैरष्टमी श्रेणिः । एवं श्रेण्यष्टकेन षण्णवतिउपवासैः पूर्यते । पारणकानि चतुःषष्टिः । सर्वदिनानि षष्ठ्युत्तर शतं । उद्यापने बृहत्स्नात्रवि-धिपूर्वक षष्ठ्युत्तरशतसंख्यया पक्वान्नफलादिढौकनं संघवात्सल्यं संघपूजा च । एतत्फलं महत्तम । श्रावक-

न्यासः । इति यतिश्राद्धकरणीयमागाढ वर्गतपः ॥ ४५ ॥

४६ श्रेणितप आगाढ उ०८३ पा० २७ दिन ११०

| | | | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| | | | | | | | उ १ | पा | उ २ | पा |
| | | | | | उ १ | पा | उ २ | पा | उ ३ | पा |
| | | | | १० | २ | पा | ३ | पा | ४ | पा |
| | | पा | उ २ | पा | ३ | पा | ४ | पा | ५ | पा |
| उ १ | पा | पा२ | ३ | पा | ४ | पा | ५ | पा | ६ | पा |
| पा १ | पा २ | पा३ | ४ | पा | ५ | पा | ६ | पा | ७ | पा |

४७ पञ्चमेरुतप आगाढ

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| प्रथममेरुतपः | उ | ५ | पा | ५ |
| द्वितीयमेरुतप० | उ | ५ | पा | ५ |
| तृतीयमेरु० | उ | ५ | पा | ५ |
| चतुर्थमेरु० | उ | ५ | पा | ५ |
| पञ्चममेरु० | उ | ५ | पा | ५ |

॥ अथ श्रेणितपः । श्रेणौ षट् श्रेणयः प्रोक्ता एको द्वौ प्रथमे क्षणे । द्वितीयादिषु चैकाङ्कक्रमवृद्ध्याभिजायते ॥ १ ॥ श्रेण्यङ्कैस्तपः श्रेणितपः । तत्र प्रथमश्रेणौ एकद्विउपवासा निरन्तराः पारणान्तरिताः । द्वितीयायां एकद्वित्रिउपवासाः तृतीयाया एकद्वित्रिचतुरुपवासाः चतुर्थ्यां एकद्वित्रिचतुःपञ्चोपवासाः । पञ्चम्या एकद्वित्रिचतुःपञ्चषडुपवासाः एव षडुपवासाः षष्ठ्या एकद्वित्रिचतुःपञ्चषट्सप्तोपवासाः एव त्र्यशीत्युपवासैः सप्तविंशतिपारणैर्दशोत्तरशतदिनैः षड्भिः श्रेणिभिः पूर्यते । यन्त्रकन्यासः । उद्यापने दशोत्तरशतसंख्यया पक्वान्नफलजातिढौकन बृहत्स्नात्रविधिः । संघवात्सल्य संघपूजा च । एतत्फलं क्षपणकश्रेणिः । इति यतिश्राद्धकरणीयमागाढ श्रेणितपः ॥ ४६ ॥ ॥ अथ मेरुतपः । प्रत्येकं पञ्चमेरूणामुपोषणकपञ्चक । एकान्तर मेरुतपस्तेन संजायते शुभ ॥ १ ॥ मेरुसंख्यया तपः

न्दुभिर्द्व्येकद्व्येकयुगैर्युगेन्दुधरणीयुग्मैकयुग्मेन्दुभिः ॥ १ ॥ द्विद्व्येकद्विमहीद्विभूमियुगलस्पाख्याद्विभूमिद्वयैर्द्व्येकद्व्येकमहीद्विचन्द्रयुगलैः श्रेण्यष्टकस्य गतैः। वर्गाख्य तप उच्यते घनशनैर्मध्योल्लसत्पारणे सर्वत्रापि निरन्तरैरपि दिनान्यस्मिन्खपट्टभूमयः ॥ २ ॥ वर्गाङ्कैस्तपः वर्गतपः । तत्र एकद्विएकद्विएकद्विएकद्विएकउपवासैर्निरन्तरैः पारणान्तरितैः प्रथमा श्रेणिः । एकद्विद्विएकद्विएकद्विएकउपवासैर्द्वितीया श्रेणि । द्विएकद्विएकएकद्विएकद्विउपवासैस्तृतीया श्रेणि. । द्विएकएकद्विएकद्विएकद्विउपवासैश्चतुर्थी श्रेणिः । एकद्विएकद्विद्विएकएकद्विउपवासैः पञ्चमी श्रेणिः । एकद्विएकद्विद्विएकद्विएकउपवासैः षष्ठी श्रेणि । द्विएकद्विएकएकद्विद्विएकउपवासैः सप्तमीश्रेणिः । द्विएकद्विएकद्विएकद्विएकउपवासैरष्टमी श्रेणि । एवं श्रेण्यष्टकेन षण्णवतिउपवासैः पूर्यते । पारणकानि चतुःषष्टिः । सर्वदिनानि चतुरुत्तर शतं । उद्यापने बृहत्स्नात्रविधिपूर्वक चतुरुत्तरशतसंख्यया पक्वान्नफलादिढौकनं संघवात्सल्यं संघपूजा च । एतत्फलं महर्धय । आगाढ-

| ४५ वर्गतपः आगाढ दिनसंख्या १९० | | | | | | | | | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| उ | १ | पा | २ | पा | १ | पा | २ | पा | १ | पा | २ | पा | १ | पा | २ |
| उ | १ | पा | २ | पा | २ | पा | १ | पा | २ | पा | १ | पा | २ | पा | १ |
| उ | २ | पा | १ | पा | २ | पा | १ | पा | १ | पा | २ | पा | १ | पा | २ |
| उ | २ | पा | १ | पा | १ | पा | २ | पा | १ | पा | २ | पा | १ | पा | २ |
| उ | १ | पा | २ | पा | १ | पा | २ | पा | २ | पा | १ | पा | १ | पा | २ |
| उ | १ | पा | २ | पा | १ | पा | २ | पा | २ | पा | १ | पा | २ | पा | १ |
| उ | २ | पा | १ | पा | २ | पा | १ | पा | १ | पा | २ | पा | २ | पा | १ |
| उ | २ | पा | १ | पा | २ | पा | १ | पा | २ | पा | १ | पा | २ | पा | १ |

तितीर्थंकरानुद्दिश्य तद्दिनानि-विनापि यथाशक्ति एकान्तराश्चतुर्विंशत्युपवासा विधीयन्ते। उद्यापने वृहत्स्नात्रविधिपूर्वक जिनाग्रे चतुर्विंशतिसंख्यया,प-

| ५० च्यवनजन्मतपोद्वय अनागाढ यत्रैकाकृतिः | | | | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| उ १ ऋ | पा | उ १ अ | पा | उ १ सं | पा | उ १ अ | पा | उ १ सु | पा | उ १ प | पा |
| उ १ सु | पा | उ १ च | पा | उ १ सु | पा | उ १ शी | पा | उ १ श्रे | पा | उ १ वा | पा |
| उ १ वि | पा | उ १ अ | पा | उ १ ध | पा | उ १ शां | पा | उ १ कु | पा | उ १ अ | पा |
| उ १ म | पा | उ १ मु | पा | उ १ न | पा | उ १ ने | पा | उ १ पा | पा | उ १ व | पा |

क्वान्नफलजातिढौकन सघवात्सल्य सघपूजा च। एतत्फल सद्गतिः। जन्मतपोप्येवमेव। यत्रकन्यासः। इति यतिश्राद्धकरणीयमनागाढ च्यवनजन्मतपोद्वय ॥ ५० ॥ ॥ अथ सूरायणतपः। सूरवदयनं हानिवृद्ध्या यस्य

| ५१ यवमध्ये सूरायणतपः कृष्णपक्षे हानिः २ | | | | | | | | | | | | | | | | यवमध्ये सूरायणतपः शुक्लपक्षे वृद्धिः | | | | | | | | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| कृष्ण तिथि | १५ प्रा | १४ प्रा | १३ प्रा | १२ प्रा | ११ प्रा | १० प्रा | ९ प्रा | ८ प्रा | ७ प्रा | ६ प्रा | ५ प्रा | ४ प्रा | ३ प्रा | २ प्रा | १ प्रा | शुक्ल तिथि | १ प्रा | २ प्रा | ३ प्रा | ४ प्रा | ५ प्रा | ६ प्रा | ७ प्रा | ८ प्रा | ९ प्रा | १० प्रा | ११ प्रा | १२ प्रा | १३ प्रा | १४ प्रा | १५ प्रा |

| ५१ वज्रमध्ये सूरायणतपः कृष्णपक्षे हानिः | | | | | | | | | | | | | | | | वज्रमध्ये सूरायणतप शुक्लपक्षे वृद्धि २ | | | | | | | | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| कृष्ण तिथि | १५ प्रा | १४ प्रा | १३ प्रा | १२ प्रा | ११ प्रा | १० प्रा | ९ प्रा | ८ प्रा | ७ प्रा | ६ प्रा | ५ प्रा | ४ प्रा | ३ प्रा | २ प्रा | १ प्रा | शुक्ल तिथि | १ प्रा | २ प्रा | ३ प्रा | ४ प्रा | ५ प्रा | ६ प्रा | ७ प्रा | ८ प्रा | ९ प्रा | १० प्रा | ११ प्रा | १२ प्रा | १३ प्रा | १४ प्रा | १५ प्रा |

तत्सूरायन। तत्र सूरायणतपो वज्रमध्ययवमध्यचान्द्रायणवत्। नवरं कृष्णप्रतिपदि प्रारम्भः। यत्रकन्यासः।

मेरुतपः । तत्र पञ्चमेरूनुद्दिश्य पञ्चविंशत्युपवासा एकान्तरा विधीयन्ते । पञ्चकन्यासः । उद्यापने बृहत्स्नात्रविधिपूर्वकं स्वर्णमयपञ्चमेरुढौकनं सघवात्सल्यं सघपूजा च । एतत्फलं उत्तमप्राप्तिः । इति यतिश्राद्धकरणीयमनागाढं पञ्चमेरुतपः ॥ ४७ ॥ ॥ अथ द्वात्रिंशत्कल्याणकतपः । उपवासत्रयं कृत्वा द्वात्रिंशदुपवासकाः । एकभक्तान्तरास्तस्मादुपवासत्रयं वदेत् ॥ १ ॥ द्वात्रिंशदुपवासैरुपलक्षितानि कल्याणकानि द्वात्रिंशत्कल्याणकानि । तत्र प्रथमं निरन्तरं उपवासत्रयं ततं एकाशनं ततो द्वात्रिंशदुपवासा एकाशनान्तरिताः ततो निरन्तरं उपवासत्रयं ततः पारणकं एवमुपवासा अष्टत्रिंशत् पारणकानि चतुस्त्रिंशत् सर्वदिनानि द्वासप्ततिः । पञ्चकन्यासः । उद्यापने बृहत्स्नात्रविधिपूर्वकं द्वात्रिंशत्संख्यया पक्वान्नफलजातिढौकनं सघवात्सल्यं सघपूजा च । एतत्फलं तीर्थंकरनामकर्म । इति यतिश्राद्धकरणीयमागाढं द्वात्रिंशत्कल्याणकतपः ॥ ४८ ॥ ॥ अथ च्यवनतपः । चतुर्विंशतितीर्थंकरानुद्दिश्य च्यवनात्मकं । विना कल्याणकदिने कार्योनशनपद्धतिः ॥ १ ॥ च्यवनार्थं तपश्च्यवनतपः । तत्र चतुर्विंश-

४८ द्वात्रिंशत्कल्याणकतप आगाढ

| | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| उ १ | पा | उ १ | पा | उ १ | पा | उ १ | पा |
| उ १ | पा | उ १ | पा | उ १ | पा | उ १ | पा |
| उ १ | पा | उ १ | पा | उ १ | पा | उ १ | पा |
| उ १ | पा | उ १ | पा | उ १ | पा | उ १ | पा |
| उ १ | पा | उ १ | पा | उ १ | पा | उ १ | पा |
| उ १ | पा | उ १ | पा | उ १ | पा | उ १ | पा |
| उ १ | पा | उ १ | पा | उ १ | पा | उ १ | पा |
| उ १ | पा | उ १ | पा | उ १ | पा | उ १ | पा |

देवाग्रे पुरुषप्रमाणतण्डुलपुञ्जोपरि ढौकनीयः नानाविधपक्वान्न च संघवात्सल्य संघपूजा च। एतत्फल परम ज्ञान। इति यतिश्राद्धकरणीयमागाढं लोकनालितप ॥ ५२ ॥ ॥ अथ कल्याणकाष्टाह्निकातपः। नेवभक्ताष्टक[1] कार्यमर्हत्कल्याणपञ्चके। प्रत्येक पूर्यते तच्च बृहद्दष्टाह्निकातपः ॥ १ ॥ कल्याणकैश्च नवजन्मव्रतकेवलज्ञाननिर्वाणरूपैः संयुक्तानि अष्टाष्टावहानि कल्याणाष्टाह्निका। तत्र ऋषभाद्येकस्यैकस्यार्हत एकैक कल्याणक प्रति अष्टाष्टावेकभक्तानि चत्वारिंशदेकभक्तैरेकस्यार्हतः कल्याणकानि पूर्यन्ते। एव परेषामपि षष्ट्यधिकनवशतदिनैः पूर्यते। कदाचिद्दिनान्तरविच्छेदेन निजान्तरतपसि क्रियमाणे न दोषः।

| ५३ अष्टाह्निकातप अनागाढ एकस्य जिनस्य | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| अन्यजिनानामपि एवैव युक्तिः कल्प्या | | | | | | | | |
| ऋषभस्य | च्य० प १ | प १ | प १ | प १ | प १ | प १ | प १ | प १ |
| ऋषभस्य | ज० प १ | प १ | प १ | प १ | प १ | प १ | प १ | प १ |
| ऋषभस्य | व्र० प १ | प १ | प १ | प १ | प १ | प १ | प १ | प १ |
| ऋषभस्य | ज्ञा० प १ | प १ | प १ | प १ | प १ | प १ | प १ | प १ |
| ऋषभस्य | नि० प १ | प १ | प १ | प १ | प १ | प १ | प १ | प १ |

उद्यापने जिनाग्रे विंशत्युत्तरशतसख्यया सर्वफलजातिसर्वपक्वान्नजातिढौकनं बृहत्स्नात्रविधिपूर्वक यतिभ्यो वस्त्रान्नपात्रपानदान संघवात्सल्य संघपूजा च। एतत्फल तीर्थकरनामकर्मबन्धः। यन्त्रकन्यासः। इति यतिश्राद्धकरणीयमनागाढ कल्याणकाष्टाह्निकातपः ॥ ५३ ॥ ॥ अथ आचाम्लवर्धमानतपः। उपवासान्तरितानि

[1] एकभक्ताष्टकमिति पाठः।

उद्यापने चन्द्रस्थाने सूर्यः । शेषं तथैव । एतत्फल महाराज्यप्राप्तिः । इति यतिश्राद्धकरणीयमागाढ द्वरायण-
तपः ॥ ५१ ॥ ॥ अथ लोकनालितपः ॥ सप्त पृथ्व्यो मध्यलोक कल्पा ग्रैवेयका अपि । अनुत्तरा मोक्षशिला

५२ लोकनालितपः
को० १

| | |
|---|---|
| उ १ | मुक्तिशिला |
| आं १ | सर्वार्थसिद्धि |
| आं १ | अपराजित |
| आं १ | जयंत |
| आं १ | वैजयंत |
| आं १ | विजय |
| ५ | पञ्चानुत्तर |
| नि १ | सुदर्शन |
| नि १ | सुप्रतिबद्ध |
| नि १ | मनोरम |
| नि १ | सर्वतोभद्र |
| नि १ | सुविशाल |
| नि १ | सौमनस |
| नि १ | सुमनस |
| नि १ | प्रीतिकर |
| नि १ | आदित्य |
| ९ | ग्रैवेयक |
| १२ | द्वादशकल्पा |
| ए १ | अच्युत |
| ए १ | आरण |
| ए १ | प्राणत |
| ए १ | आनत |
| ए १ | सहस्रार |
| ए १ | शुक्र |
| ए १ | लांतक |
| ए १ | ब्रह्म |
| ए १ | माहेन्द्र |
| ए १ | सनत्कुमार |
| ए १ | ईशान |
| ए १ | सौधर्म |
| उ १ | मध्यलोक |
| ए १ | महातम |
| ए १ | तमःप्रभा |
| ए १ | धूमप्रभा |
| ए १ | पंकप्रभा |
| ए १ | वालुका |
| ए १ | शर्करा |
| ए १ | रत्नप्रभा |
| ० | सप्त |
| • | पृथ्वी |

लोकनालिरितीर्यते ॥ १ ॥ एकभक्तान्युपवास एकभक्तानि नीरसा । आचाम्लान्युपवासाश्च क्रमात्तेषु तप स्मृत ॥ २ ॥ लोकनालिक्रमेण तप लोकनालितपः । तत्र रत्नप्रभादिसप्तपृथ्वीरुद्दिश्य निरन्तराणि सप्तैकभक्तानि ततो मध्यलोकमुद्दिश्य उपवासः । ततो द्वादशकल्पानुद्दिश्य द्वादशैकभक्तानि । ततो नवग्रैवेयकानुत्तरानुद्दिश्य नव निर्विकृतिकानि । पञ्चानुत्तरानुद्दिश्य पञ्चाम्लानि । ततो मुक्तिशिलामुद्दिश्य एकोपवास एव पञ्चविंशतिदिनैः पूर्यते । यन्त्रकन्यास । उद्यापने बृहत्स्नात्रविधिपूर्वक रूप्यमयसप्तविम्ब सुवर्णमयो मध्यलोकः नानामणिमया कल्पग्रैवेयकानुत्तराः स्फटिकमयी मुक्तिशिला तदुपरि कामरत्नन्यास । स च

वेषाग्रे पुरुषप्रमाणतण्डुलपुञ्जोपरि ढौकनीयः नानाविधपक्वान्न च संघवात्सल्य सघपूजा च । एतत्फल परम ज्ञान । इति यतिश्राद्धकरणीयमागाढं लोकनालितपः ॥ ५२ ॥ ॥ अथ कल्याणकाष्टाह्निकातपः । नवभक्ताष्टक कार्यमर्हत्कल्याणपञ्चके । प्रत्येक पूर्यते तच्च वृद्धाह्निकातपः ॥ १ ॥ कल्याणैश्च नवजन्मव्रतकेवलज्ञाननिर्वाणरूपैः सयुक्तानि अष्टाष्टावहानि कल्याणाष्टाह्निका । तत्र ऋषभाद्येकस्यैकस्यार्हत एकैक कल्याणक प्रति अष्टाष्टावेकभक्तानि चत्वारिंशदेकभक्तैरेकस्यार्हतः कल्याणकानि पूर्यन्ते । एव परेषामपि षष्ठ्यधिकनवशतदिनैः पूर्यते । कदाचिद्विनान्तरविच्छेदेन निजान्तरतपसि क्रियमाणे न दोषः ।

| ५३ अष्टाह्निकातप अनागाढ एकस्य जिनस्य | | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| अन्यजिनानामपि एवैव युक्ति कल्प्या | | | | | | | | | |
| ऋषभस्य | च्य० | ए १ | ए १ | ए १ | ए १ | ए १ | ए १ | ए १ | ए १ |
| ऋषभस्य | ज० | ए १ | ए १ | ए १ | ए १ | ए १ | ए १ | ए १ | ए १ |
| ऋषभस्य | व्र० | ए १ | ए १ | ए १ | ए १ | ए १ | ए १ | ए १ | ए १ |
| ऋषभस्य | ज्ञा० | ए १ | ए १ | ए १ | ए १ | ए १ | ए १ | ए १ | ए १ |
| ऋषभस्य | नि० | ए १ | ए १ | ए १ | ए १ | ए १ | ए १ | ए १ | ए १ |

उद्यापने जिनाग्रे विंशत्युत्तरशतसख्यया सर्वफलजातिसर्वपक्वान्नजातिढौकन बृहत्स्नात्रविधिपूर्वक यतिभ्यो वस्त्रान्नपात्रपानदान संघवात्सल्य सघपूजा च । एतत्फल तीर्थकरनामकर्मबन्धः । यस्त्रकन्यासः । इति यतिश्राद्धकरणीयमनागाढ कल्याणकाष्टाह्निकातपः ॥ ५३ ॥ ॥ अथ आचाम्लवर्धमानतपः । उपवासान्तरितानि

१ एकभक्ताष्टकमिति पाठः ।

| ५४ आचाम्लवर्धमानतपः आगाढ वर्ष १४ मास ३ दिन २० पूर्यंते | | | | | | | | | | | | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| आं | उ | आं | उ | आं | उ | आं | उ | आं | उ | आं | उ | आं | उ | आं | उ | आं | उ | आं | उ |
| १ | १ | २ | १ | ३ | १ | ४ | १ | ५ | १ | ६ | १ | ७ | १ | ८ | १ | ९ | १ | १० | १ |
| ११ | १ | १२ | १ | १३ | १ | १४ | १ | १५ | १ | १६ | १ | १७ | १ | १८ | १ | १९ | १ | २० | १ |
| २१ | १ | २२ | १ | २३ | १ | २४ | १ | २५ | १ | २६ | १ | २७ | १ | २८ | १ | २९ | १ | ३० | १ |
| ३१ | १ | ३२ | १ | ३३ | १ | ३४ | १ | ३५ | १ | ३६ | १ | ३७ | १ | ३८ | १ | ३९ | १ | ४० | १ |
| ४१ | १ | ४२ | १ | ४३ | १ | ४४ | १ | ४५ | १ | ४६ | १ | ४७ | १ | ४८ | १ | ४९ | १ | ५० | १ |
| ५१ | १ | ५२ | १ | ५३ | १ | ५४ | १ | ५५ | १ | ५६ | १ | ५७ | १ | ५८ | १ | ५९ | १ | ६० | १ |
| ६१ | १ | ६२ | १ | ६३ | १ | ६४ | १ | ६५ | १ | ६६ | १ | ६७ | १ | ६८ | १ | ६९ | १ | ७० | १ |
| ७१ | १ | ७२ | १ | ७३ | १ | ७४ | १ | ७५ | १ | ७६ | १ | ७७ | १ | ७८ | १ | ७९ | १ | ८० | १ |
| ८१ | १ | ८२ | १ | ८३ | १ | ८४ | १ | ८५ | १ | ८६ | १ | ८७ | १ | ८८ | १ | ८९ | १ | ९० | १ |
| ९१ | १ | ९२ | १ | ९३ | १ | ९४ | १ | ९५ | १ | ९६ | १ | ९७ | १ | ९८ | १ | ९९ | १ | १०० | १ |

च शतपर्यन्त तथैकमारभ्य। वृद्ध्या निरन्तरतया भवति तदाचाम्लवर्धमान च ॥ १ ॥ आचाम्लैर्वर्धमान आचाम्लवर्धमान तत्रैकमाचाम्ल उपवासः द्वे आचाम्ले उपवास एव शतमाचाम्लाना एकादिवृद्ध्या उपवासान्तरितविधेय चतुर्दशभिर्वर्षैस्त्रिभिर्मासैर्विंशत्यादिनै. पूर्यते। तन्मध्ये पारणक। चक्रकन्यास। उद्यापने बृहत्स्नात्रविधिपूर्वक चतुर्विंशतिजिनपूजा सघवात्सल्य सघपूजा च। एतत्फल तीर्थकरनामकर्मबन्धः। इति यतिश्राद्धकरणीयमनागाढमाचाम्लवर्धमानतप ॥ ५४ ॥ ॥ अथ माघमालातप । आरभ्य पौषदशमीपर्यन्ते माघशुक्ल-

| | | | | | | | | | | | | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| ५५ माघमालातप आगाढ प्रथम वर्षे पौषवदिदशमी १० | प | ११ | १२ | प | १३ | प | १४ | प | ० | माहसुदि पडिया | १ | प | २ | प | ३ | प | ० | | |
| ४ | ५ | ६ | ७ | ८ | ९ | १० | प | का | ११ | प | १२ | प | १३ | प | १४ | प | १५ | प | एव द्वितीयवर्षे तृतीयचतुर्थेपि एवमेव तिथयः |

पूर्णीया । स्नात्वार्हन्त सपूज्य चैकमक्त विदध्याद्य ॥ १ ॥ माघमासे मालारूप करणीय माघमाला । तत्र पौषकृष्णदशमीमारभ्य माघपूर्णिमापर्यन्तं स्नात्वा जिनार्चन एकमक्त च कुर्यात्। एव वर्षचतुष्टय कृत्वा उद्यापने बृहत्स्नात्रविधिपूर्वक जिनाग्रे घृतमय मेरु सुवर्णमणिगर्भित ढौकयेत्। सघवात्सल्य सघपूजा च। एतत्फल परमसुखप्राप्तिः। यन्त्रकन्यासः। इति श्राद्धकरणीयमागाढ माघमालातपः ॥ ५५ ॥ ॥ अथ महावीरतपः। महावीरतपो ज्ञेय वर्षाणि द्वादशैव च। त्रयोदशैव पक्षाश्च पञ्चकल्याणपारणे ॥१॥ महावीरस्य छद्मस्थकालतपः महावीरतपः। तत्र द्वादशवर्षत्रयोदशपक्षपर्यन्त निरन्तर दशोपवासान्तरितानि पारणकानि। यन्त्रकन्यासः। उद्यापने बृहत्स्नात्रविधिपूर्वक श्रीमहावीरप्रतिमाग्रे स्वर्णमय न्यग्रोधतरु ढौकयेत्। सघवात्सल्य सघपूजा च। एतत्फल कर्मक्षयः। इति यतिश्राद्धकरणीयमागाढ

| ५६ महावीरतप आगाढ प्रथमवर्ष | | | | | | | | | | उ १० | पा | १० | पा | १० | पा | १० | पा |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| उ १० | पा | १० | पा | १० | पा | १० | पा | १० | पा | १० | पा | १० | पा | १० | पा | १० | पा |
| १० | पा | १० | पा | १० | पा | १० | पा | १० | पा | १० | पा | १० | पा | १० | पा | १० | पा |
| १० | पा | १० | पा | १० | पा | १० | पा | १० | पा | १० | पा | १० | पा | १० | पा | १० | पा |
| १० | पा | १० | पा | १० | पा | १ | पा | १० | पा | १० | पा | १० | पा | १० | पा | १० | पा |

महावीरतप ॥ ५६ ॥ ॥ अथ लक्षप्रतिपत्तप: । शुक्लप्रतिपद: सूर्यसंख्या एकाशनादिभि । समर्थनीयास्तपसि लक्षप्रतिपदास्यके ॥ १ ॥ शुक्लप्रतिपदमारभ्य प्रतिपत् १२ वर्षमेकं यावद्यथाशक्त्येकाशनादितप: लक्षप्रतिपच्छ्रावकश्राविकाभि: कार्यं । उद्यापने पूजापूर्वं लक्षधान्य ढौकनीय । लक्षसंख्याधान्याना निबन्धो यथा । घोषामाणा ५ पाइली १ मुगसेइ १ पाइली २ मोठसेइ १ पाइली २ जवसेइ २ तिलपाइ ७ गोधूमसेइ ८ चवलासेइ ३ चणासेइ १ कांगुमाणा ३ कोद्रवमाणा ३ वल्लमाणा ५ तूवरिसेइ ४ जुवारिमाणा ५ । एतत्फल अगण्यलक्ष्मीप्राप्ति: । इति श्राद्धकरणीयमागाढ लक्षप्रतिपत्तप. ॥ ५७ ॥ इति तपोधिकारे गीतार्थोक्तानि तपांसि सपूर्णानि ॥

अथ फलतपांसि । यथा । तत्र प्रथम सर्वाङ्गसुन्दरतप: । शुक्लपक्षेऽष्टोपवासा आचाम्लान्तरिता: क्रमात् । विधीयन्ते तेन तपो भवेत्सर्वाङ्गसुन्दर ॥ १ ॥ सर्वाङ्गाणि सुन्दराणि जायन्ते यस्मात्तत्सर्वाङ्गसुन्दर । तत्र शुक्लपक्षे प्रतिपद्युपवास विधाय अष्टोपवासा. सप्ताचाम्लान्तरिता विधेया यथाशक्ति सयमादिदयाविधधर्मपालनं कषायपरिहारोपि पूर्णिमायां उद्यापयेत् । यत्नकन्यास । उद्यापने बृहत्स्नात्रविधि वि-

१ सर्वाङ्गसुन्दरतप: आगाढ दिन १५ पारणक प्रतिपदायां

| शुक्ल | १ प्र | २ द्वि | ३ तृ | ४ च | ५ प | ६ ष | ७ स | ८ अ | ९ न | १० द | ११ ए | १२ द्वा | १३ त्र | १४ च | १५ पू |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| तिथि | उ १ | आं | उ | आं | उ | आं | उ | आं | उ | आं | उ | आं | उ | आं | उ |

धाय जिनाग्रे स्वर्णमयपुरुष रत्नजटित ढौकयेत्। सघवात्सल्य सघपूजा च। एतत्फल सर्वाङ्गसुन्दरता। इति यतिश्राद्धकरणीयमागाढ सर्वाङ्गसुन्दरतपः ॥ १ ॥ ॥ अथ निरुजशिखतपः । तपो निरुजशिख्यास्य विधेय

| २ निरुजशिखातपः आगाढ दिन १५ कृष्णपक्षप्रतिपदात | | | | | | | | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| कृष्ण | १ प्र | २ द्वि | ३ तृ | ४ च | ५ पं | ६ ष | ७ स | ८ अ | ९ न | १० द | ११ ए | १२ द्वा | १३ त्र | १४ च | १५ पू |
| तिथि | उ १ | आं | उ | आं | उ | आं | उ | आं | उ | आं | उ | आं | उ | आं | उ |

तद्वदेव हि। नवर कृष्ण पक्षे तु करण तस्य शस्यते ॥ १ ॥ निरुजा रोगरहिता शिखा चूला यस्य तन्निरुजशिख। तत्र कृष्णपक्षे सर्वाङ्गसुन्दरवद्विधिः। यन्त्रकन्यासः। एतत्फल आरोग्य। इति यतिश्राद्धकरणीयमागाढ निरुजशिखतपः ॥ २ ॥ ॥ अथ सौभाग्यकल्पवृक्षतपः । सौभाग्यकल्पवृक्षस्तु चैत्रेऽ-

| ३ सौभाग्यकल्पवृक्षतप आगाढ चैत्रशुक्लप्रतिपदात | | | | | | | | | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| च शु | उ | पा | उ | पा | उ | पा | उ | पा | उ | पा | उ | पा | उ | पा | उ | पा |
| चै कृ | उ | पा | उ | पा | उ | पा | उ | पा | उ | पा | उ | पा | उ | पा | उ | पा |

नशनसचयैः। एकान्तरैः पर कार्यास्तिथौ चन्द्रादिके शुभे ॥ १ ॥ सौभाग्यस्य दाने कल्पवृक्ष इव सौभाग्यकल्पवृक्षः। तत्र चैत्रमासे सर्वस्मिन् एकान्तरोपवासा विधेयाः। यन्त्रकन्यास्तः। उद्यापने बृहत्स्नात्रविधिपूर्वक सुवर्णरूप्यमयसाङ्गोपाङ्गकल्पवृक्षढौकन सघवात्सल्यं सघपूजा च। एतत्फल सौभाग्य-

महावीरतपः ॥ ५६ ॥ ॥ अथ लक्षप्रतिपत्तपः । शुक्लप्रतिपदः सूर्यसख्या एकाशनादिभिः । समर्थनीयास्तपसि लक्षप्रतिपदाख्यके ॥ १ ॥ शुक्लप्रतिपदमारभ्य प्रतिपत् १२ वर्षमेक यावद्यथाशक्त्येकाशनादितपः लक्षप्रतिपच्छ्रावकश्राविकाभिः कार्या । उद्यापने पूजापूर्वं लक्षधान्य ढौकनीय । लक्षसख्याधान्याना निष्पन्धो यथा । चोषामाणा ५ पाइली १ मुगसेइ १ पाइली २ मोठसेइ १ पाइली २ जवसेइ २ तिलपाइ ७ गोधूमसेइ ८ चउलासेइ ३ चणासेइ १ कांगुमाणा ३ कोद्रवमाणा ३ उडदमाणा ५ तूवरिसेइ ४ जुवारिमाणा ५ । एतत्फल अगण्यलक्ष्मीप्राप्ति । इति श्राद्धकरणीयमागाढ लक्षप्रतिपत्तपः ॥ ५७ ॥ इति तपोधिकारे गीतार्थोक्तानि तपांसि सपूर्णानि ॥

अथ फलतपांसि । यथा । तत्र प्रथम सर्वाङ्गसुन्दरतप । शुक्लपक्षेष्टोपवासा आचाम्लान्तरिताः क्रमात् । विधीयन्ते तेन तपो भवेत्सर्वाङ्गसुन्दर ॥ १ ॥ सर्वाङ्गाणि सुन्दराणि जायन्ते यस्मात्तत्सर्वाङ्गसुन्दर । तत्र शुक्लपक्षे प्रतिपदुपवास विधाय अष्टोपवासाः ससाचाम्लान्तरिता विधेया यथाशक्ति संयमादिदयाविषयधर्मपालनं कषायपरिहारोपि पूर्णिमायां उद्यापयेत् । यत्रकन्यासः । उद्यापने बृहत्स्नात्रविधि वि-

| १ सर्वांगसुन्दरतपः आगाढ दिन १५ पारणक प्रतिपदायां | | | | | | | | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| शुक | १ प्र | २ द्वि | ३ तृ | ४ च | ५ पं | ६ ष | ७ स | ८ अ | ९ न | १० द | ११ ए | १२ द्वा | १३ त्र | १४ च | १५ पू |
| तिथि | उ १ | आं | उ | आं | उ | आं | उ | आं | उ | आं | उ | आं | उ | आं | उ |

घाय जिनाग्रे स्वर्णमयपुरुष रत्नजटित ढौकयेत्। संघवात्सल्य संघपूजा च। एतत्फल सर्वाङ्गसुन्दरता। इति यतिश्राद्धकरणीयमागाढ सर्वाङ्गसुन्दरतपः ॥ १ ॥ ॥ अथ निरुजशिखतपः । तपो निरुजशिख्यास्य विधेय तद्वदेव हि। नवर कृष्ण पक्षे तु करण तस्य शस्यते ॥ १ ॥ निरुजा रोगरहिता शिखा चूला

२ निरुजशिखातपः आगाढ दिन १५ कृष्णपक्षप्रतिपदात

| | | | | | | | | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| कृष्ण | १ प्र | २ द्वि | ३ तृ | ४ च | ५ प | ६ ष | ७ स | ८ अ | ९ न | १० द | ११ ए | १२ द्वा | १३ त्र | १४ च | १५ पू |
| तिथि | उ १ | आं | उ | आं | उ | आं | उ | आं | उ | आं | उ | आं | उ | आं | उ |

यस्य तन्निरुजशिख। तत्र कृष्णपक्षे सर्वाङ्गसुन्दरवद्विधिः। यन्त्रकन्यासः । एतत्फल आरोग्य । इति यतिश्राद्धकरणीयमागाढ निरुजशिखतपः ॥ २ ॥ ॥ अथ सौभाग्यकल्पवृक्षतपः । सौभाग्यकल्पवृक्षस्तु चैत्रेऽनशनसंचयैः। एकान्तरैः पर कार्यास्तिथौ चन्द्रादिके शुभे ॥ १ ॥ सौभाग्यस्य दाने कल्पवृक्ष

३ सौभाग्यकल्पवृक्षतप आगाढ चैत्रशुक्लप्रतिपदात

| | | | | | | | | | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| चै शु | उ | पा | उ | पा | उ | पा | उ | पा | उ | पा | उ | पा | उ | पा | उ | पा |
| चै कृ | उ | पा | उ | पा | उ | पा | उ | पा | उ | पा | उ | पा | उ | पा | उ | पा |

इव सौभाग्यकल्पवृक्ष'। तत्र चैत्रमासे सर्वस्मिन् एकान्तरोपवासा विधेयाः । यन्त्रकन्यास्त.। उद्यापने बृहत्स्नात्रविधिपूर्वक सुवर्णरूप्यमयसाङ्गोपाङ्गकल्पवृक्षढौकन संघवात्सल्यं संघपूजा च। एतत्फल सौभाग्य-

प्राप्तिः । इति यतिश्राद्धकरणीयमागाढ सौभाग्यकल्पवृक्षतपः ॥ ३ ॥ ॥ अथ दमयन्तीतप' । दमयन्त्या प्रति-

| ४ दमयन्तीतप आगाढं अन्येषामपि जिनानामेव विधिः आ २१ पा त पा | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| ऋषभस्य | आं | आं | आं | आं | आं | आं | आं | आं | आं | आं | आं | आं | आं | आं | आं | आं | आं | आं | आं | आं | आं |
| | १ | १ | १ | १ | १ | १ | १ | १ | १ | १ | १ | १ | १ | १ | १ | १ | १ | १ | १ | १ | १ |

जिनमाचाम्लान्येकविंशतिः । कृतानि सन्ततान्येव दमयन्तीतपो हि तत् ॥ १ ॥ दमयन्त्या नलवियुक्तया कृत तपः दमयन्तीतपः । तत्र जिनजिनप्रति विंशतिर्विंशतिराचाम्लानि एकैक शासनदेवतायाः एव निरन्तरतया विधीयन्ते । शक्त्यनुसारेण एकैकजिनस्याचाम्लपूरणे पारणकान्यपि भवन्ति साम्प्रतिककालापेक्षया । यन्त्रकन्यासः । उद्यापने सर्वसंख्यया चतुरुत्तरा पञ्चशती फलपक्वान्नजातिमुद्राढौकन बृहत्स्नात्रविधिपूर्वक आचाम्लाना सर्वसंख्यया चतुरुत्तरा पञ्चशती । सघवात्सल्य सघपूजा च । एतत्फल आपद्विगम' । इति श्राद्धकरणीयमनागाढं दमयन्तीतपः ॥ ४ ॥ ॥ अथायतिजनकतपः । कार्यं द्वात्रिंशदाचाम्लैः स्वसत्त्वेन

| ५ आयतिजनकतप आगाढ । तत्र द्वात्रिंशदाचाम्लानि निरन्तराणि एकश्रेण्या करणीयानि | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| आं | आं | आं | आं | आं | आं | आं | आं | आं | आं | आं | आं | आं | आं | आं | आं | आं | आं | आं | आं | आं | आं | आं | आं | आं | आं | आं | आं | आं | आं | आं | आं |
| १ | १ | १ | १ | १ | १ | १ | १ | १ | १ | १ | १ | १ | १ | १ | १ | १ | १ | १ | १ | १ | १ | १ | १ | १ | १ | १ | १ | १ | १ | १ | १ |

निरन्तरैः । एवं स्यादायतिशुभ तप उद्यापनान्वित ॥ १ ॥ आयतिं उत्तरकाल शुभ जनयति आयतिजनक । यन्नकन्यासः । उद्यापने बृहत्स्नात्रविधिपूर्वक चतुर्विंशतिसख्यया पुष्पफलपक्वान्नढौकन सघवात्सल्य सघपूजा च । एतत्फल उत्तरकाले शुभ । इति श्राद्धकरणीयमागाढ आयतिजनकतपः ॥ ५ ॥ ॥ अथाक्षयनिधितप. । घट सस्थाप्य देवाग्रे गन्धपुष्पादिपूजितं । तपो विधीयते

| ६ अक्षयनिधितप आगाढं माद्रपादवदि | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| म | प | न | प | व | प | ० |

| | | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| चतु | प | पं | प | प | प | स | प | ० | |
| दृश्याप | श | प | थ | प | च | प | म | • | |
| माद्रसुदि | प | दि | प | ए | प | च | प | खा | ध |

पक्ष तवक्षयनिधि स्फुट ॥ १ ॥ अक्षयनिधिवदक्षयनिधि । तत्र माद्रपदकृष्णचतुर्थ्यां जिनबिम्बाग्रे गोमयलेपन विधाय स्थापनकोपरि चित्रित गन्धपुष्पपूजित स्वर्णमणिमुद्राफलऋमुकादिगर्भित घट स्थापयेत् । पक्ष यावत्तस्य नित्यपूजन जिनस्य प्रदक्षिणात्रयपूर्वक अक्षताञ्जलिक्षेपः नैवेद्यढौकन यथाशक्ति द्विभक्तैकभक्तादिप्रत्याख्यान नृत्यगीतोत्सवादि । एव पर्युषणापर्यन्त वर्षचतुष्टय विधेय । यन्नकन्यासः । उद्यापने वृद्धविधिपूर्वक नानापक्वान्नबलिढौकन सघवात्सल्य सघपूजा च । एतत्फल सर्वसपत् । अथवा अक्षतमुष्टिं प्रतिदिन घटे निक्षिपेत् यावत्स घटः पूर्यते तावद्दिनानि प्रतिदिनमेकाशनानि विदध्यात् । इति श्राद्धकरणीयमागाढ अक्षयनिधितपः ॥ ६ ॥ ॥ अथ मुकुटसप्तमीतपः । आषाढादि च पौषान्त सप्तमासान् शितिष्वपि । सप्तमीषूपवासाश्च विधेयाः सप्त निश्चित ॥ १ ॥ मुकुटोद्यापनेन उपलक्षिता सप्तमी मुकुटसप्तमी । तत्र आ-

| ७ मुकुटसप्तमीतप आगाढ | | | |
|---|---|---|---|
| आषाढवदि | विमलनाथ | • | उ |
| श्रावणवदि | अनन्तनाथ | • | उ |
| भाद्रपदवदि | चन्द्रप्रभशान्ति | • | उ |
| आश्विनवदि | नेमिनाथ | • | उ |
| कार्तिकवदि | ऋषभनाथ | • | उ |
| मार्गशिरवदि | महावीर | • | उ |
| पौषवदि | पार्श्वनाथ | • | उ |

षाढश्रावणभाद्रपदआश्विनकार्तिकमार्गशीर्षपौषकृष्णसप्तमीषूपवासाः । तासु क्रमेण विमलनाथ १ अनन्तनाथ २ चन्द्रप्रभशान्ति ३ नेमि ४ ऋषभ ५ महावीर ६ पार्श्वनाथ ७ तीर्थकृतां बृहत्स्नात्रविधिना पूजा । यन्त्रकन्यासः । उद्यापने बृहत्स्नात्रविधिपूर्वक रूप्यमयलोकनालेरुपरि संस्थित सुवर्णमय रत्नजटित मुकुट ढौकयेत् । सप्तसङ्ख्यया पक्वान्नफलजातिं च संघवात्सल्य संघपूजा च । एतत्फल वाञ्छितप्राप्तिः । इति श्राद्धकरणीयमागाढ मुकुटसप्तमीतपः ॥ ७ ॥ ॥ अथ अम्बातपः । शुक्लादिपञ्चमीष्वेव पञ्चमासेषु वै तपः । एकभक्तादि वै कार्यमम्बापूजनपूर्वक ॥ १ ॥

| ८ अम्बातप आगाढ मास ५ | | |
|---|---|---|
| शुक्ल | प | उ |
| शुक्ल | प | उ |
| शुक्ल | प | उ |
| शुक्ल | प | उ |
| शुक्ल | प | उ |

अम्बाराधनार्थं तपः अम्बातपः । तत्र पञ्चसु शुक्लपञ्चमीषु नेमिजिनाम्बापूजनपूर्वक यथाशक्ति तपो विधेयं । यन्त्रकन्यासः । उद्यापने विमलधातुभिर्यथोक्त अम्बामूर्तिविधापन तत्प्रतिष्ठापन कल्पोक्तविधिना नित्य तत्पूजन संघवात्सल्य संघपूजा च । तत्फल अम्बावरप्राप्तिः । इति श्राद्धकरणीयमागाढ अम्बातपः ॥ ८ ॥ ॥ अथ श्रुतदेवतातपः । एकादशेषु शुक्लेषु पक्षेष्वेकादशीषु च । यथाशक्ति तपः कार्यं वाग्देव्यर्च-

| ९ श्रुतदेवीतप आगाढ | | |
|---|---|---|
| श्रुतदेवता | शुक्लपक्ष | उप |
| श्रुतदेवता | शुक्लपक्ष | उप |
| श्रुतदेवता | शुक्लपक्ष | उप |
| श्रुतदेवता | शुक्लपक्ष | उप |
| श्रुतदेवता | शुक्लपक्ष | उप |
| श्रुतदेवता | शुक्लपक्ष | उप |
| श्रुतदेवता | शुक्लपक्ष | उप |
| श्रुतदेवता | शुक्लपक्ष | उप |
| श्रुतदेवता | शुक्लपक्ष | उप |
| श्रुतदेवता | शुक्लपक्ष | उप |

नपूर्वक ॥ १ ॥ श्रुतदेव्याराधनार्थं तपः श्रुतदेवीतपः । तत्र एकादशीषु शुक्लैकादशीषु श्रुतदेवीपूजापूर्वक यथाशक्ति तपो विधेय । यन्त्रकन्यासः । उद्यापने श्रुतदेवीमूर्तिनिर्मापण तत्प्रतिष्ठापन विधिना पूजा सघवात्सल्य सघपूजा च । एतत्फल श्रुतप्राप्तिः । इति श्राद्धकरणीयमागाढ श्रुतदेवीतपः ॥ ९ ॥ ॥ अथ रोहिणीतपः । रोहिण्या च तपः कार्यं वासुपूज्यार्चनायुत । सप्तवर्षं सप्तमासीमु पवासादिभि' पर ॥ १ ॥ रोहिणीनक्षत्रे तपः रोहिणीतपः । तत्राक्ष(य)तृतीयासन्नरोहिण्यां वासुपूज्यजिनपूजापूर्वक तत्प्रारम्भः । ततो रोहिणीनक्षत्रे समागते सप्तवर्षाणि सप्तमासानि यावदुपवासाचाम्लानि निर्विकृतिकादि यथारब्ध तपो

| १० रोहिणीतप आगाढ | | | |
|---|---|---|---|
| रो | वर्ष ७ | मास ७ | उपवा |

विधेय । यद्येकापि रोहिणी विस्मरति तदा तपसः पुनः प्रारम्भः । यन्त्रकन्यासः । उद्यापने श्रीवासुपूज्यप्रतिमाग्रे बृहत्स्नात्रविधिपूर्वक स्वर्णमयमशोकवृक्ष ढौकयेत् सघवात्सल्य सघपूजा च । एतत्फल अवैधव्यसौभाग्यसुखप्राप्तिः । इति श्राद्धकरणीयमागाढ रोहिणीतपः ॥ १० ॥ ॥ अथ मातरतपः । भाद्रस्य शुक्लपक्षे तु प्रारभ्य सप्तमीं तिथिं । त्रयोदश्यन्तमाधेय तपो मातरिसज्ञक ॥ १ ॥ मात्राराधनार्थं तपः मातरतपः ।

| ७ मुकुटसप्तमीतप आगाढ | | | |
|---|---|---|---|
| आषाढवदि | विमलनाथ | • | उ |
| श्रावणवदि | अनन्तनाथ | • | उ |
| भाद्रपदवदि | चन्द्रप्रभशान्ति | • | उ |
| आश्विनवदि | नेमिनाथ | • | उ |
| कार्तिकवदि | आदिनाथ | • | उ |
| मार्गशिरवदि | महावीर | • | उ |
| पौषवदि | पार्श्वनाथ | • | उ |

षाढश्रावणभाद्रपदआश्विनकार्तिकमार्गशीर्षपौषकृष्णसप्तमीषूपवासाः। तासु क्रमेण विमलनाथ १ अनन्तनाथ २ चन्द्रप्रभशान्ति ३ नेमि ४ ऋषभ ५ महावीर ६ पार्श्वनाथ ७ तीर्थकृता वृहत्स्नात्रविधिना पूजा। यन्त्रकन्यासः। उद्यापने वृहत्स्नात्रविधिपूर्वक रूप्यमयलोकनालेरुपरि सस्थित सुवर्णमय रत्नजडित मुकुट ढौकयेत्। सप्तसप्तया पक्वान्नफलजातिं च सघवात्सल्य सघपूजा च। एतत्फल वाञ्छितप्राप्तिः। इति श्राद्धकरणीयमागाढ मुकुटसप्तमीतपः॥ ७॥ ॥ अथ अम्बातप.। शुक्लादिपञ्चमीष्वेव पञ्चमासेषु वै तपः। एकभक्तादि वै कार्यमम्बापूजनपूर्वक॥ १॥

| ८ अबातप आगाढ मास ५ | | |
|---|---|---|
| शुक्र | पं | उ |
| शुक्र | पं | उ |
| शुक्र | प | उ |
| शुक्र | प | उ |
| शुक्र | पं | उ |

अम्बाराधनार्थं तप' अम्बातप'। तत्र पञ्चसु शुक्लपञ्चमीषु नेमिजिनाम्बापूजनपूर्वक यथाशक्ति तपो विधेय। यन्त्रकन्यासः। उद्यापने विमलधातुभिर्यथोक्त अम्बामूर्तिविधापन तत्प्रतिष्ठापन कल्पोक्तविधिना नित्य तत्पूजन सघवात्सल्य सघपूजा च। तत्फल अम्बावरप्राप्तिः। इति श्राद्धकरणीयमागाढ अम्बातपः॥ ८॥ ॥ अथ श्रुतदेवतातपः। एकादशीषु शुक्लेषु पक्षेष्वेकादशीषु च। यथाशक्ति तप' कार्यं वाग्देव्यर्च-

सर्वसुखसंपत्तिहेतुत्वात्सर्वसु-
तिथिषु तप एकाशनादिक । विधेय सर्वसपत्ति सुखे तपसि निश्चितं ॥ १ ॥ सर्वसुखसंपत्तिहेतुत्वात्सर्वसु-
खसपत्ति । तत्र प्रतिपत्सत्कमेकमक्त द्वितीयाया द्वे एव वृद्ध्या यावत्पूर्णिमायाः पञ्चदश । पर यदि कापि
तिथिर्विस्मरति तदा सा पुनरावृत्तो विधेया । एवं विंशत्युत्तरशतदिनैः पूर्यते । यन्त्रकन्यासः । उद्यापने
बृहत्स्नात्रविधिपूर्वकं विंशत्युत्तरशतसङ्ख्यया फलपक्वान्नजातिढौकन सघवात्सल्य सघपूजा च । एतत्फलं
सुखप्राप्तिः । इति श्राद्धकरणीयमागाढ सर्वसुखसपत्तितपः ॥ १२ ॥ ॥ अथाष्टापदपावडीतपः । आश्विना-

| १३ अष्टापदपावडीतप आगाढ | | | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| व १ | अमु | ८ | ९ | १० | ११ | १२ | १३ | १४ | १५ | प |
| व २ | अमु | ८ | ९ | १० | ११ | १२ | १३ | १४ | १५ | प |
| व ३ | अमु | ८ | ९ | १० | ११ | १२ | १३ | १४ | १५ | प |
| व ४ | अमु | ८ | ९ | १० | ११ | १२ | १३ | १४ | १५ | प |
| व ५ | अमु | ८ | ९ | १० | ११ | १२ | १३ | १४ | १५ | प |
| व ६ | अमु | ८ | ९ | १० | ११ | १२ | १३ | १४ | १५ | प |
| व ७ | अमु | ८ | ९ | १० | ११ | १२ | १३ | १४ | १५ | प |
| व ८ | अमु | ८ | ९ | १० | ११ | १२ | १३ | १४ | १५ | प |

ष्टाह्निकास्वेव यथाशक्तितपःक्रमैः । विधेयमष्टवर्षाणि तप अष्टापदः
पर ॥ १ ॥ अष्टापदारोहार्थं तपः अष्टापदपावडीतपः । तत्र आश्वि-
नाष्टाह्निकासु यथाशक्ति तपो विधेय । देवाग्रे स्वर्णमय सोपान स-
स्थाप्य अष्टप्रकारपूजाभिः पूजयेत् । एव अष्टवर्षाण्यष्टसोपानानि
विदध्यात् । यन्त्रकन्यासः । उद्यापने चतुर्विंशतिसङ्ख्यया पक्वान्नफ-
लजातीना बृहत्स्नात्रविधिपूर्वक ढौकनं । सघवात्सल्य सघपूजा च ।
एतत्फल दुर्लभप्राप्तिः ॥ इति श्राद्धकरणीयमागाढं अष्टापदपावडी-
तपः ॥ १३ ॥ ॥ अथ मोक्षदण्डतपः । यावन्मुष्टिप्रमाण स्याद्गुरुद-
ण्डस्य तावतः । विदधीतैकान्तराश्चोपवासान्सुसमाहितः ॥ १ ॥ मोक्ष-

| ११ मातरतप आगाढ | | | |
|---|---|---|---|
| १ व | माद्रशुक्ल | स० आ० प० ए० हा० म० | प |
| २ व | माद्रशुक्ल | ७।८।९।१०।११।१२।१३ | प |
| ३ व | माद्रशुक्ल | ७।८।९।१०।११।१२।१३ | प |
| ४ व | माद्रशुक्ल | ७।८।९।१०।११।१२।१३ | प |
| ५ व | माद्रशुक्ल | ७।८।९।१०।११।१२।१३ | प |
| ६ व | माद्रशुक्ल | ७।८।९।१ ।११।१२।१३ | प |
| ७ व | माद्रशुक्ल | ७।८।९।१ ।११।१२।१३ | प |

तत्र भाद्रपदशुक्लसप्तमीमारभ्य त्रयोदशीपर्यन्त दुग्धदधिघृतकरम्भपायसलपनश्रीघृतपूरैर्जिनमातृका पूजयित्वा यथाशक्ति एकभक्तादितपो विधेय । तच्च सप्तवर्षपर्यन्त । पर वर्षद्वये वर्षद्वये उद्यापन अनया रीत्या विधेय । भाद्रपदशुक्लचतुर्दश्या चतुर्विंशतिसख्ययापूपकादाडिमादिफलजातिं क्षिप्रचदीपात्राणि जिनमातृणामग्रे ढौकयेत् । सपुत्रश्राविकायाश्च चक्षाङ्गराग–ताम्बूलादि देय । सप्तमचर्योद्यापने च जिनमातृणामग्रे सप्तम्या तैलढौकन अष्टम्या घृतढौकन नवम्या पक्वान्नढौकन दशम्या गोदुग्ध ढौकन एकादश्या दधिढौकन द्वादश्या गुडढौकन त्रयोदश्या क्षिप्रचटी कणिकाहरीतकी धान्याका मेथी गुड अजन शलाका सप्तसख्यगतपत्रकमुकढौकन सपुत्रश्राविकाया नालिकेरदान सघवात्सल्य सघपूजा च । एतत्फल पुत्रप्राप्तिः । यत्र-कन्यास' । इति श्राद्धकरणीयमागाढ मातरतप' ॥ २१ ॥ ॥ अथ सर्वसुखसपत्तितपः । एकादिवृद्ध्या

| १२ सर्वसुखसंपत्ति तप आगाढ | | | |
|---|---|---|---|
| ति | प १ | प | १ |
| ति | २ | प | २ |
| ति | ३ | प | ३ |
| ति | ४ | प | ४ |
| ति | ५ | प | ५ |
| ति | ६ | प | ६ |
| ति | ७ | प | ७ |
| ति | ८ | प | ८ |
| ति | ९ | प | ९ |
| ति | १० | प | १० |
| ति | ११ | प | ११ |
| ति | १२ | प | १२ |
| ति | १३ | प | १३ |
| ति | १४ | प | १४ |
| ति | १५ | प | १५ |

सर्वसुखसंपत्तिहेतुत्वात्सर्वसु- तपसि निश्चितं ॥ १ ॥ तिथिषु तप एकाशनादिक । विधेय सर्वसपत्ति सुखे पर यदि कापि खसपत्ति । तत्र प्रतिपत्सक्तमेकभक्त द्वितीयाया द्वे एव वृद्ध्या यावत्पूर्णिमायाः पञ्चदश । उद्यापने तिथिर्विस्मरति तदा सा पुनरादितो विधेया । एवं विंशत्युत्तरशतदिनैः पूर्यते । यन्त्रकन्यासः । एतत्फलं वृहत्स्नात्रविधिपूर्वक विंशत्युत्तरशतसख्यया फलपक्वान्नजातिढौकनं सघवात्सल्य सघपूजा च । सुखप्राप्तिः । इति श्राद्धकरणीयमागाढ सर्वसुखसपत्तितपः ॥ १२ ॥ ॥ अथाष्टापदपावडीतपः । आश्विनाष्टाह्निकास्वेव यथाशक्तितपःक्रमैः । विधेयमष्टवर्षाणि तप अष्टापदः पर ॥ १ ॥ अष्टापदारोहार्थं तपः अष्टापदपावडीतपः । तत्र आश्विनाष्टाह्निकासु यथाशक्ति तपो विधेय । देवाग्रे स्वर्णमय सोपान स्थाप्य अष्टप्रकारपूजाभिः पूजयेत् । एव अष्टवर्षाण्यष्टसोपानानि विदध्यात् । यन्त्रकन्यासः । उद्यापने चतुर्विंशतिसख्यया पक्वान्नफलजातीनां वृहत्स्नात्रविधिपूर्वक ढौकनं । सघवात्सल्य सघपूजा च । एतत्फल दुर्लभप्राप्तिः ॥ इति श्राद्धकरणीयमागाढं अष्टापदपावडीतपः ॥ १३ ॥ ॥ अथ मोक्षदण्डतपः । यावन्मुष्टिप्रमाण स्याद्गुरुदण्डस्य तावतः । विदधीतैकान्तराश्चोपवासान्सुसमाहितः ॥ १ ॥ मोक्ष-

१३ अष्टापदपावडीतप आगाढ

| | | | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| व १ | अमु | ८ | ९ | १० | ११ | १२ | १३ | १४ | १५ | प |
| व २ | अमु | ८ | ९ | १० | ११ | १२ | १३ | १४ | १५ | प |
| व ३ | अमु | ८ | ९ | १० | ११ | १२ | १३ | १४ | १५ | प |
| व ४ | अमु | ८ | ९ | १० | ११ | १२ | १३ | १४ | १५ | प |
| व ५ | अमु | ८ | ९ | १० | ११ | १२ | १३ | १४ | १५ | प |
| व ६ | अमु | ८ | ९ | १० | ११ | १२ | १३ | १४ | १५ | प |
| व ७ | अमु | ८ | ९ | १० | ११ | १२ | १३ | १४ | १५ | प |
| व ८ | अमु | ८ | ९ | १० | ११ | १२ | १३ | १४ | १५ | प |

| ११ मातरतप आगाढ | | | |
|---|---|---|---|
| १ व | मासशुक्ल | स मास० व० पू० द्वा० त्र० | पु |
| २ व | मासशुक्ल | ७।८।९।१०।११।१२।१३ | पु |
| ३ व | मासशुक्ल | ७।८।९।१०।११।१२।१३ | पु |
| ४ व | मासशुक्ल | ७।८।९।१०।११।१२।१३ | पु |
| ५ व | मासशुक्ल | ७।८।९।१०।११।१२।१३ | पु |
| ६ व | मासशुक्ल | ७।८।९।१०।११।१२।१३ | पु |
| ७ व | मासशुक्ल | ७।८।९।१०।११।१२।१३ | पु |

तत्र भाद्रपदशुक्लसप्तमीमारभ्य त्रयोदशीपर्यन्त दुग्धदधिघृतक-रम्बपायसलपनश्रीघृतपूरैर्जिनमातृका पूजयित्वा यथाशक्ति एकभक्तादितपो विधेय। तच्च सप्तवर्षपर्यन्त। पर वर्षद्वये वर्षद्वये उद्यापन अनया रीत्या विधेय। भाद्रपदशुक्लचतुर्दश्या चतुर्विंशतिसख्ययापूपकादाडिमादिफलजातिं क्षिप्रचटीपात्राणि जिनमातृणामग्रे ढौकयेत्। सपुत्रश्राविकायाश्च वस्त्राङ्गराग–ताम्बूलादि देय। सप्तमवर्षोद्यापने च जिनमातृणामग्रे सप्तम्या तैलढौकन अष्टम्यां घृतढौकन नवम्या पक्वान्नढौकन दशम्या गोदुग्ध ढौकन एकादश्या दधिढौकन द्वादश्या शुद्धढौकन त्रयोदश्या क्षिप्रचटी कणिकाहरीतकी धान्याका मेथी शुद अजन शलाका सप्तसख्यगतपत्रकमुकढौकन सपुत्रश्राविकाया नालिकेरदान सघवात्सल्य सघपूजा च। एतत्फल पुत्रप्राप्तिः। यत्र-कन्यास। इति श्राद्धकरणीयमागाढ मातरतपः ॥ ११ ॥ ॥ अथ सर्वसुखसपत्तितपः। एकादिवृद्ध्या

| १२ सर्वसुखसंपत्ति तप आगाढ | | | |
|---|---|---|---|
| ति ति | प १ | पु | १ |
| ति | २ | पु | २ |
| ति | ३ | पु | ३ |
| ति | ४ | पु | ४ |
| ति | ५ | पु | ५ |
| ति | ६ | पु | ६ |
| ति | ७ | पु | ७ |
| ति | ८ | पु | ८ |
| ति | ९ | पु | ९ |
| ति | १० | पु | १० |
| ति | ११ | पु | ११ |
| ति | १२ | पु | १२ |
| ति | १३ | पु | १३ |
| ति | १४ | पु | १४ |
| ति | १५ | पु | १५ |

तिथिषु तप एकाशनादिक । विधेय सर्वसपत्ति सुखे तपसि निश्चितं ॥ १ ॥ सर्वसुखसंपत्तिहेतुत्वात्सर्वसु-
खसपत्ति । तत्र प्रतिपत्सत्कमेकभक्त द्वितीयाया द्वे एव वृद्ध्या यावत्पूर्णिमायाः पञ्चदश । परं यदि कापि
तिथिर्विस्मरति तदा सा पुनरावृत्तो विधेया । एवं विंशत्युत्तरशतदिनैः पूर्यते । यक्षकन्यासः । उद्यापने
बृहत्स्नात्रविधिपूर्वकं विंशत्युत्तरशतसंख्यया फलपक्वान्नजातिढौकनं सघवात्सल्य सघपूजा च । एतत्फलं
सुखप्राप्तिः । इति श्राद्धकरणीयमागाढ सर्वसुखसपत्तितपः ॥ १२ ॥ ॥ अथाष्टापदपावडीतपः । आश्विना-

| १२ अष्टापदपावडीतप आगाढ | | | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| प १ | ऽश्वसु | ८ | ९ | १० | ११ | १२ | १३ | १४ | १५ | प |
| प २ | ऽश्वसु | ८ | ९ | १० | ११ | १२ | १३ | १४ | १५ | प |
| प ३ | ऽश्वसु | ८ | ९ | १० | ११ | १२ | १३ | १४ | १५ | प |
| प ४ | ऽश्वसु | ८ | ९ | १० | ११ | १२ | १३ | १४ | १५ | प |
| प ५ | ऽश्वसु | ८ | ९ | १० | ११ | १२ | १३ | १४ | १५ | प |
| प ६ | ऽश्वसु | ८ | ९ | १० | ११ | १२ | १३ | १४ | १५ | प |
| प ७ | ऽश्वसु | ८ | ९ | १० | ११ | १२ | १३ | १४ | १५ | प |
| प ८ | ऽश्वसु | ८ | ९ | १० | ११ | १२ | १३ | १४ | १५ | प |

ष्टाह्निकास्वेव यथाशक्तितपःक्रमैः । विधेयमष्टवर्षाणि तप अष्टापदः
पर ॥ १ ॥ अष्टापदारोहार्थं तपः अष्टापदपावडीतपः । तत्र आश्वि-
नाष्टाह्निकासु यथाशक्ति तपो विधेय । देवाग्रे स्वर्णमय सोपान स-
स्थाप्य अष्टप्रकारपूजाभिः पूजयेत् । एव अष्टवर्षाण्यष्टसोपानानि
विदध्यात् । यक्षकन्यासः । उद्यापने चतुर्विंशतिसंख्यया पक्वान्नफ-
लजातीना बृहत्स्नात्रविधिपूर्वक ढौकनं । सघवात्सल्य संघपूजा च ।
एतत्फल दुर्लभप्राप्तिः ॥ इति श्राद्धकरणीयमागाढं अष्टापदपावडी-
तपः ॥ १३ ॥ ॥ अथ मोक्षदण्डतपः । यावन्मुष्टिप्रमाण स्याद्गुरुद-
ण्डस्य तावतः । विदधीतैकान्तराश्चोपवासान्सुसमाहितः ॥ १ ॥ मोक्ष-

| | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| १४ मोक्षदण्डतप आगाढ | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | | |
| १४ | उ | उ १ | उ १ | उ १ | उ १ | उ १ | उ १ | उ १ | उ १ | उ १ | उ १ | उ १ | उ १ | उ १ | उ १ | उ १ | उ १ | उ १ | उ १ | उ १ | उ ० | उ ० | उ ० | उ ० | उ ० |
| शुद्धि | | पा | पा | पा | पा | पा | पा | पा | पा | पा | पा | पा | पा | पा | पा | पा | पा | पा | पा | पा | पा | पा | पा | पा | पा |

दण्डस्य तपः मोक्षदण्डतपः । तत्र यावन्मुष्टिप्रमाणो गुरुदण्डो भवति तावत उपवासानेकान्तरान्विदध्यात् । पर्यन्तोपवासे गुरुदण्डस्य चन्दनचर्चितस्य परिधापनिकादान नालिकेराक्षतदान । यावन्मुष्टिप्रमाणता तावत्सङ्ख्यया फलमुद्रापकान्नरजातिदान सघवात्सल्य सघपूजा च । यत्नकन्यास' । एतत्फल सिपङ्क्ति । इति श्राद्धकरणीयमागाढ मोक्षदण्डतपः ॥ १४ ॥

| | | | | | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| १५ अदुःखदर्शितप आगाढ | | | | १६ द्वितीय अदुःखदर्शितप आगाढ | | | | | | | | |
| प्रथममासे शुक्ल | १ | उ १ | अष्टमेमासे शुक्ल | ८ | उ | १ | अ | उ | पा | अ | उ | पा |
| द्वितीयमासे शुक्ल | २ | उ १ | नवमेमासे शुक्ल | ९ | उ | १ | दि | उ | पा | न | उ | पा |
| तृतीयमासे शुक्ल | ३ | उ १ | दसमेमासे शुक्ल | १० | उ | १ | तृ | उ | पा | द | उ | पा |
| चतुर्थमासे शुक्ल | ४ | उ १ | एकादशेमासेशुक्ल | ११ | उ | १ | च | उ | पा | ए | उ | पा |
| पञ्चममासे शुक्ल | ५ | उ १ | द्वादशेमासे शुक्ल | १२ | उ | १ | पं | उ | पा | द्वा | उ | पा |
| षष्ठमासे शुक्ल | ६ | उ १ | त्रयोदशेमासेशुक्ल | १३ | उ | १ | ष | उ | पा | त्र | उ | पा |
| सप्तममासे शुक्ल | ७ | उ १ | चतुर्दशेमासे शुक्ल | १४ | उ | १ | स | उ | पा | च | उ | पा |
| ० | ८ | उ १ | पंचदशेमासे शुक्ल | १५ | उ | १ | ० | ० | ० | पं | उ | पा |

॥ अथ अदुःखदर्शितपः । शुक्लपक्षेषु कर्तव्या' क्रमात्पञ्चदशस्वपि । उपवासास्तिथिष्वेव पूर्यते विधिनैव तत् ॥ १ ॥ न दुःखानि प्रद्द यीसमस्य तदनु-

| १७ गौतमपडिगहातपः | | | |
|---|---|---|---|
| शुक्ल | पू | उ | १ |
| शुक्ल | पू | उ | १ |
| शुक्ल | पू | उ | १ |
| शुक्ल | पू | उ | १ |
| शुक्ल | पू | उ | १ |
| शुक्ल | पू | उ | १ |
| शुक्ल | पू | उ | १ |
| शुक्ल | पू | उ | १ |
| शुक्ल | पू | उ | १ |
| शुक्ल | पू | उ | १ |
| शुक्ल | पू | उ | १ |
| शुक्ल | पू | उ | १ |
| शुक्ल | पू | उ | १ |
| शुक्ल | पू | उ | १ |
| शुक्ल | पू | उ | १ |

स्वर्शि । तत्र एकस्या शुक्लप्रतिपदुपवासः । द्वितीयमासे शुक्लद्वितीयायामुपवासः । एव पञ्चदशसु मासेषु शुक्लपक्षेषु यावत्पूर्णिमाया उपवासाः पञ्चदश संख्यया भवन्ति । यद्येकापि तिथिर्विस्मरति तदा पुनरपि तिथिरारभ्यते । यन्त्रकन्यासः । उद्यापने श्रीऋषभदेवस्य पूजन रूप्यमयवृक्षः तच्छाखाया सुवर्णमयपालनक पट्टसूत्रग्रन्थित पट्टसूत्रमयतूलिका तदुपरि सुवर्णमयपुत्तलिका पञ्चदशसंख्यया पक्वान्नफलजाति-ढौकनं । पर तिथौ तिथौ नव नव नैवेद्य फल च ढौकनीय संघवात्सल्य सघपूजा च । एतत्फल सर्वदुःखप्रणाशः । इति श्राद्धकरणीयमागाढ अदुःखदर्शितपः ॥ १५ ॥ ॥ द्वितीयादुःखदर्शितपसि पञ्चदशोपवासा एकान्तरिताः तिथिंविनापि विधेयाः शेष तथैव । इति द्वितीय अदुःखदर्शितप आगाढ ॥ १६ ॥ ॥ अथ गौतमपडिगहातपः । एकासु पञ्चदशसु स्वशक्तेरनुसारतः । तपः कार्यं गौतमस्य पूजाकरणपूर्वक ॥ १ ॥ गौतमपात्रोपलक्षित तपः गौतमपात्रतपः । तत्र पञ्चदशपूर्णिमा यावत् श्रीगौतम-मूर्तिपूर्वक यथाशक्ति प्रत्याख्यान विधेय । उद्यापने श्रीगौतमस्य श्रीमहावीरस्य च बृहत्स्नात्रविधिपूजा । रूप्यमयपात्र काष्ठमय च द्वे पायसपूरिते गुरवे दद्यात् वेष्टनकक्षोलिकासहिते । सघवात्सल्य सघपूजा च । एतत्फल विविधलब्धयः । यन्त्रकन्यासः इति

श्राद्धकरणीयमागाढ गौतमपडिगहातपः ॥ १७ ॥ ॥ अथ निर्वाणदीपतपः । वर्षत्रय दीपमाला पूर्वे मुदंपे विनद्वये । उपवासद्वय कार्यं दीपप्रस्तारपूर्वक ॥ १ ॥ निर्वाणमार्गे दीप इव निर्वाणदीपः । तत्र दीपमालिकायाश्चचतुर्दश्यमावास्ययो उपवासद्वय विधेय । तत्र हि रात्रद्वयेपि श्रीमहावीराग्रे अखण्डाक्षतदीपदान । यन्त्रकन्यासः । उद्यापने वर्षत्रयान्ते बृहत्स्नात्रविधिपूर्वक महावीरपूजा दीपसहस्रदान सघवात्सल्य सघपूजा च । एतत्फल मोक्षमार्गप्राप्ति । इति श्राद्धकरणीयमागाढ निर्वाणदीपतप ॥ १८ ॥

| १८ निर्वाणदीपतप आगाढ | | | | |
|---|---|---|---|---|
| १ वर्षे | कार्तिकवदि | १४ • | उ | उ |
| २ वर्षे | कार्तिकवदि | १४ | उ | उ |
| ३ वर्षे | कार्तिकवदि | १४ • | उ | उ |

॥ अथामृताष्टमीतपः । शुक्लाष्टमीषु चाष्टासु आचाम्लादितपासि च । विदधीत स्वशक्त्या च ततस्तत्पूरण भवेत् ॥ १ ॥ अमृताभिषेकेणोपलक्षिता अष्टमी अमृताष्टमी । तत्र अष्टसु शुक्लाष्टमीषु आचाम्लान्येव विधेयानि । यन्त्रकन्यास । उद्यापने बृहत्स्नात्रविधिपूर्वक घृतदुग्धभृत कलश माणकमात्रमोदकसहितं ढौकयेत् । सघवात्सल्य सघपूजा च । एतत्फल आरोग्यं । इति श्राद्धकरणीयमागाढ अमृताष्टमीतपः ॥ १९ ॥

| १९ अमृताष्टमीतप आगाढ | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| शुक्ल | ८ | उ | शुक्ल | ८ | उ | शुक्ल | ८ | उ |
| शुक्ल | ८ | उ | शुक्ल | ८ | उ | शुक्ल | ८ | उ |
| शुक्ल | ८ | उ | शुक्ल | ८ | उ | शुक्ल | ८ | उ |

॥ अथ अखण्डदशमीतपः । शुक्लासु दशसङ्ख्यासु निजशक्त्या तपोविधिं । विदधीत ततः पूर्तिस्तस्य संपद्यते क्रमात् ॥ १ ॥ अखण्डायां दशम्यां

| २० अखण्डदशमीतप आगाढ | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| शुक | १० | उ | १ | शुक | १० | उ | १ |
| शुक | १० | उ | १ | शुक | १० | उ | १ |
| शुक | १० | उ | १ | शुक | १० | उ | १ |
| शुक | १० | उ | १ | शुक | १० | उ | १ |
| शुक | १० | उ | १ | शुक | १० | उ | १ |

तपः अखण्डदशमीतपः । तत्र दशसु शुक्लदशमीषु यथाशक्त्या तपो विधेय । यक्षकन्यासः । उद्यापने दशसङ्ख्यया अन्नपक्वान्नफलजातिढौकन अखण्डिताक्ष-तैर्नैवेद्य अखण्डपट्टेन परिधापनिका अखण्डघृतधाराश्रयदान चैत्यपरिधौ । सघ-वात्सल्य सघपूजा च । एतत्फल अखण्डसुख । इति श्राद्धकरणीयमागाढ अख-ण्डदशमीतपः ॥ २० ॥ ॥ अथ परत्रपालितपः । पञ्चवर्षाणि वीरस्य कल्याणि-कसमासितः । उपवासत्रय कृत्वा द्वात्रिंशदरसांश्चरेत् ॥ १ ॥ परलोके पालिरिव

| २१ परत्रपालितप आगाढ दिन ३५ | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| उ १ | नि १ | नि १ | नि १ | नि १ | नि १ | नि १ |
| नि १ | नि १ | नि १ | नि १ | नि १ | नि १ | नि १ |
| नि १ | नि १ | नि १ | नि १ | नि १ | नि १ | नि १ |
| नि १ | नि १ | नि १ | नि १ | नि १ | नि १ | |
| नि १ | नि १ | नि १ | नि १ | नि १ | नि १ | |

परत्रपालिः । तत्र दीपोत्सवादारभ्य निरन्तर तप उपवासत्रय कृत्वा निरन्तराणि द्वात्रिंशन्निर्विकृतिकानि विदध्यात् । एव पञ्चवर्षाणि । के-चित्रोपवासान्येकान्तराण्याहुः । यक्षकन्यासः । उद्यापने प्रतिवर्षं सेईसत्कलपनश्रीपालिं स्थाले विधाय सुरभिघृतेनापूरयेत् । चरमोद्या-पने बृहत्स्नात्रविधिः सघवात्सल्य संघपूजा च । एतत्फल परत्र स-द्गतिः । इति श्राद्धकरणीयमागाढ परत्रपालितपः ॥ २१ ॥ ॥ अथ सोपान(पावडी)तपः । ससाष्टनवदशभिस्तद्गुणैस्तिथिसक्रमैः । दत्तिभिः पूर्यते चैव सोपानतप उत्तम ॥ १ ॥

श्राद्धकरणीयमागाढ गौतमपडिगहातपः ॥ १७ ॥ ॥ अथ निर्वाणदीपतपः । वर्षत्रय दीपमाला पूर्वे मुदये दिनद्वये । उपवासद्वय कार्यं दीपप्रस्तारपूर्वक ॥ १ ॥ निर्वाणमार्गे दीप इव निर्वाणदीपः । तत्र दीपमालिकायाश्चतुर्दश्यमावास्ययो उपवासद्वय विधेय । तत्र हि रात्रद्वयेपि श्रीमहावीराग्रे अखण्डाक्षतदीपदान । यन्त्रकन्यासः । उद्यापने वर्षत्रयान्ते बृहत्स्नात्रविधिपूर्वक महावीरपूजा दीपसहस्रदान सघवात्सल्य सघपूजा च । एतत्फल मोक्षमार्गप्राप्ति । इति श्राद्धकरणीयमागाढ निर्वाणदीपतप ॥ १८ ॥ ॥ अथामृताष्टदीपतपः । शुक्लाष्टमीषु चाष्टासु आचाम्लादितपासि च । विदधीत सशक्त्या च ततस्तत्पूरण भवेत् ॥ १ ॥ अमृताभिषेकेणोपलक्षिता अष्टमी अमृताष्टमी । तत्र अष्टसु शुक्लाष्टमीषु आचाम्लान्येव विधेयानि । यन्त्रकन्यास । उद्यापने बृहत्स्नात्रविधिपूर्वक घृतदुग्धभृत कलशमाणकमात्रमोदकसहितं ढौकयेत् । सघवात्सल्य सघपूजा च । एतत्फल आरोग्यं । इति श्राद्धकरणीयमागाढ अमृताष्टमीतपः ॥ १९ ॥ ॥ अथ अखण्डदशमीतप । शुक्लासु दशसख्यासु निजशक्त्या तपोविधि । विदधीत ततः पूर्तिस्तस्य संपद्यते क्रमात् ॥ १ ॥ अखण्डायां दशम्यां

१८ निर्वाणदीपतप आगाढ

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| १ वर्षे | कार्तिकमावि | १४ ० | उ | उ |
| २ वर्षे | कार्तिकमावि | १४ | उ | उ |
| ३ वर्षे | कार्तिकमावि | १४ ० | उ | उ |

१९ अमृताष्टमीतप आगाढ

| | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| शुक्ल | ८ | उ | शुक्ल | ८ | उ | शुक्ल | ८ | उ |
| शुक्ल | ८ | उ | शुक्ल | ८ | उ | शुक्ल | ८ | उ |
| शुक्ल | ८ | उ | शुक्ल | ८ | उ | शुक्ल | ८ | उ |

यते। द्वितीयाष्टके द्वे एवमेकैकदत्तिवृद्ध्या नेयं। यावदष्टमेऽष्टके प्रतिदिनमष्टौ दत्तयो गृह्यन्ते। तृतीया नवनवमिकाया नवनवकान्विधीयते। एकाशीतिदिनानीत्यर्थः। अत्रापि प्रथमनवके प्रतिदिनमेकादत्तिः एकैकवृद्ध्या च नवके प्रतिदिन नव दत्तयः चतुर्थी दशदशमिका दशदशकान् यावत्क्रियते शत दिनानीत्यर्थः।

२२ सोपानतप आगाढ नवनवमिका

| | | | | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| १ नवके | दत्ति | १ | १ | १ | १ | १ | १ | १ | १ | १ | दि ९ |
| २ नवके | दत्ति | २ | २ | २ | २ | २ | २ | २ | २ | २ | दि ९ |
| ३ नवके | दत्ति | ३ | ३ | ३ | ३ | ३ | ३ | ३ | ३ | ३ | दि ९ |
| ४ नवके | दत्ति | ४ | ४ | ४ | ४ | ४ | ४ | ४ | ४ | ४ | दि ९ |
| ५ नवके | दत्ति | ५ | ५ | ५ | ५ | ५ | ५ | ५ | ५ | ५ | दि ९ |
| ६ नवके | दत्ति | ६ | ६ | ६ | ६ | ६ | ६ | ६ | ६ | ६ | दि ९ |
| ७ नवके | दत्ति | ७ | ७ | ७ | ७ | ७ | ७ | ७ | ७ | ७ | दि ९ |
| ८ नवके | दत्ति | ८ | ८ | ८ | ८ | ८ | ८ | ८ | ८ | ८ | दि ९ |
| ९ नवके | दत्ति | ९ | ९ | ९ | ९ | ९ | ९ | ९ | ९ | ९ | दि ९ |

२२ सोपानतप आगाढ दशदशमिका

| | | | | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| १ दशके | दत्ति | १ | १ | १ | १ | १ | १ | १ | १ | १ | दि १० |
| २ दशके | दत्ति | २ | २ | २ | २ | २ | २ | २ | २ | २ | दि १० |
| ३ दशके | दत्ति | ३ | ३ | ३ | ३ | ३ | ३ | ३ | ३ | ३ | दि १० |
| ४ दशके | दत्ति | ४ | ५ | ४ | ४ | ४ | ४ | ४ | ४ | ४ | दि १० |
| ५ दशके | दत्ति | ५ | ५ | ५ | ५ | ५ | ५ | ५ | ५ | ५ | दि १० |
| ६ दशके | दत्ति | ६ | ६ | ६ | ६ | ६ | ६ | ६ | ६ | ६ | दि १० |
| ७ दशके | दत्ति | ७ | ७ | ७ | ७ | ७ | ७ | ७ | ७ | ७ | दि १० |
| ८ दशके | दत्ति | ८ | ८ | ८ | ८ | ८ | ८ | ८ | ८ | ८ | दि १० |
| ९ दशके | दत्ति | ९ | ९ | ९ | ९ | ९ | ९ | ९ | ९ | ९ | दि १० |
| १० दशके | दत्ति | १० | १० | १० | १० | १० | १० | १० | १० | १० | दि १० |

मोक्षारोहे सोपानमिव सोपानतपः । तत्र सप्तमिकाद्याश्चतस्रः प्रतिमाः प्रतिपाद्यन्ते यथा सप्तसप्तमिका अष्टाष्टमिका नवनवमिका दशदशमिका चेति । अत्राद्या सप्तसप्तमिका एकोनपञ्चाशद्दिनानीत्यर्थः । तत्राद्यसप्तके प्रतिदिनमेकैका दत्तिर्गृह्यते । द्वितीयसप्तके प्रतिदिन दत्तिद्वय । तृतीयसप्तके प्रतिदिन दत्तित्रिक । चतुर्थे प्रतिदिन दत्तिचतुष्टय । एवमेकैकदत्तिवृद्ध्या ज्ञेय । यावत्सप्तमसप्तके प्रत्यह दत्तिसप्तक ग्राह्य । द्वितीयाष्टाष्टमिका अष्टौ अष्टकान् क्रियते । चतुःषष्टिदिनानीत्यर्थः । अत्रापि प्रथमाष्टके प्रतिदिनमेकैका दत्तिर्गृ-

२२ सोपानतप आगाढ सप्तसप्तमिका तपः

| | | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| १ सप्तके | दत्ति | १ | १ | १ | १ | १ | १ | १ | दि ७ |
| २ सप्तके | दत्ति | २ | २ | २ | २ | २ | २ | २ | दि ७ |
| ३ सप्तके | दत्ति | ३ | ३ | ३ | ३ | ३ | ३ | ३ | दि ७ |
| ४ सप्तके | दत्ति | ४ | ४ | ४ | ४ | ४ | ४ | ४ | दि ७ |
| ५ सप्तके | दत्ति | ५ | ५ | ५ | ५ | ५ | ५ | ५ | दि ७ |
| ६ सप्तके | दत्ति | ६ | ६ | ६ | ६ | ६ | ६ | ६ | दि ७ |
| ७ सप्तके | दत्ति | ७ | ७ | ७ | ७ | ७ | ७ | ७ | दि ७ |

२२ सोपानतप आगाढ अष्टाष्टमिकातपः

| | | | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| १ अष्टके | दत्ति | १ | १ | १ | १ | १ | १ | १ | १ | दि ८ |
| २ अष्टके | दत्ति | २ | २ | २ | २ | २ | २ | २ | २ | दि ८ |
| ३ अष्टके | दत्ति | ३ | ३ | ३ | ३ | ३ | ३ | ३ | ३ | दि ८ |
| ४ अष्टके | दत्ति | ४ | ४ | ४ | ४ | ४ | ४ | ४ | ४ | दि ८ |
| ५ अष्टके | दत्ति | ५ | ५ | ५ | ५ | ५ | ५ | ५ | ५ | दि ८ |
| ६ अष्टके | दत्ति | ६ | ६ | ६ | ६ | ६ | ६ | ६ | ६ | दि ८ |
| ७ अष्टके | दत्ति | ७ | ७ | ७ | ७ | ७ | ७ | ७ | ७ | दि ८ |
| ८ अष्टके | दत्ति | ८ | ८ | ८ | ८ | ८ | ८ | ८ | ८ | दि ८ |

नमस्कारफलतपः। कृत्वा नवकभक्तानि तदुद्यापनमेव च । शक्तिहीनैर्विधेय च पूर्ववत्तत्समापन ॥ १ ॥
नमस्कारफलदायितपः नमस्कारफलतपः। तत्र अष्टषष्ट्यैकाशनेष्वसमर्थः पदसख्यया नवैकाशनानि विद्-

| २४ नवकारफलतपः | | |
|---|---|---|
| नमो अरिहंताणं १ | ए | १ |
| नमो सिद्धाणं २ | | |
| नमो आयरियाणं ३ | | |
| नमो उवज्झायाणं ४ | | |
| नमो लोए सव्वसाहूणं ५ | | |
| एसो पंचनमुक्कारो ६ | | |
| सव्वपावप्पणासणो ७ | | |
| मंगलाणं च सव्वेसिं | | |
| पढमं हवइ मंगलं ९ | | |

ध्यात् । यन्त्रकन्यासः । उद्यापन च पूर्ववत् । एतत्फलं पूर्ववत् । इति श्राद्धकरणीयमागाढ नमस्कारफलतपः ॥ २४ ॥ ॥ अथ अविधवादशमीतपः । भाद्रपदशुक्लदशमी दिन एकाशनमथो निशायां च । अम्बापूजनजागरणकर्मणी सुविधिना कुर्यात् ॥ १ ॥ अवैधव्यार्थं दशमी अविधवादशमी । तत्र भाद्रपदशुक्लदशम्यामेकभक्त विदध्यात् निशि जागरण अम्बापूजन नालिकेरादि फलानी १० पक्वान्नानी १० ढौकन एव तावत्कर्तव्य यावद्दशवर्षाणि । उद्यापने इन्द्राणीपूजा सघवात्सल्य सघपूजा च ।

| २५ अविधवादशमी तप आगाढ | | | |
|---|---|---|---|
| १ वर्षे | भाद्रपदसुदि | १० | उ |
| २ वर्षे | भाद्रपदसुदि | १० | उ |
| ३ वर्षे | भाद्रपदसुदि | १० | उ |
| ४ वर्षे | भाद्रपदसुदि | १० | उ |
| ५ वर्षे | भाद्रपदसुदि | १० | उ |
| ६ वर्षे | भाद्रपदसुदि | १० | उ |
| ७ वर्षे | भाद्रपदसुदि | १० | उ |
| ८ वर्षे | भाद्रपदसुदि | १० | उ |
| ९ वर्षे | भाद्रपदसुदि | १० | उ |
| १० वर्षे | भाद्रपदसुदि | १० | उ |

एतत्फल अवैधव्यं । यन्त्रकन्यासः । इति श्राद्धकरणीयमागाढ अविधवादशमीतपः ॥ २५ ॥ ॥ अथ बृहन्न-

अत्रापि प्रथमदशके प्रतिदिनमेका दत्तिः । ततश्चैकैकदत्तिवृद्ध्या दशमदशके प्रतिदिनं दशदत्तयः । यन्त्रकाणि यथा । एष नवभिर्मासैश्चतुर्विंशत्यादिनैश्चतस्रोऽपि प्रतिमाः समर्थ्यन्ते । उद्यापने बृहत्स्नात्रविधिपूर्वकं नानाप्रकारफलढौकनं सघवात्सल्य सघपूजा च । एतत्फल मोक्षमार्गः । इति श्राद्धकरणीयमागाढ सोपानतपः ॥ २२ ॥ ॥ अथ कर्मचतुर्थं तपः । उपवासत्रय कुर्यादादावन्ते निरन्तर । मध्ये षष्टिमितान्कुर्यादुपवासांश्च सान्तरान् ॥१॥ कर्मणां चतुर्थं खण्डनरूप कर्मचतुर्थं । तत्र पूर्वं निरन्तरमुपवासत्रय ततः षष्टिरुपवासा एकाशनान्तरिताः पुनरुपवासत्रय निरन्तर । उद्यापने बृहत्स्नात्रविधिपूर्वकं रूप्यमय वृक्ष स्वर्णकुठार च ढौकयेत् । यन्त्रकन्यासः । उद्यापने सघवात्सल्य सघपूजा च । एतत्फल कर्मच्छेदः । इति श्राद्धकरणीयमागाढं कर्मचतुर्थतपः ॥ २३ ॥ ॥ अथ

२३ कर्मचतुर्थतप आगाढ

| | | | | | | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| उ १ | पा १ | उ १ | प | उ १ | प | उ | प | उ १ | प | उ | प | उ | प |
| उ १ | प | उ | प | उ | प | उ | प | उ | प | उ | प | उ | प |
| उ | प | उ | प | उ | प | उ | प | उ | प | उ | प | उ | प |
| उ | प | उ | प | उ | प | उ | प | उ | प | उ | प | उ | प |
| उ | प | उ | प | उ | प | उ | प | उ | प | उ | प | उ | प |
| उ | प | उ | प | उ | प | उ | प | उ | प | उ | प | उ | प |
| उ | प | उ | प | उ | प | उ | प | उ | प | उ | प | उ | प |
| उ | प | उ | प | उ | प | उ | प | उ | प | उ | प | उ | प |
| उ | प | उ | प | उ | प | उ | प | उ | प | उ | प | उ | प |

घत् ॥ १ ॥ तत्र प्रथम नन्द्यावर्ताराधनार्थमुपवासः । ततो धरणेन्द्राम्बिका श्रुतदेवीश्रीगौतमाराधनार्थं आचा-
म्लचतुष्टय । ततः परमेष्ठिरत्नत्रयाराधनार्थं आचाम्लाष्टक । ततः षोडशविद्यादेव्याराधनार्थं षोडशैकम-
क्तानि । ततश्चतुर्विंशतिशासनयक्षिण्याराधनार्थं चतुर्विंशत्येकभक्तानि । ततो दशदिक्पालाराधनार्थं दशै ।
कभक्तानि । ततो ग्रहक्षेत्रपालाराधनार्थं दशैकभक्तानि । ततश्चतुर्णिकायदेवताराधनार्थं चत्वार्येकभक्तानि-
ततः सर्वाराधनार्थमुपवासः एवमुपवासत्रय द्वादशाचाम्लानि चतुःषष्ट्येकभक्तानि सर्वदिनान्यष्टाविंशतिः ।
उद्यापने चैत्ये बृहत्स्नात्रविधिः । धर्मागारे लघुनन्द्यावर्तपूजन पूर्ववत् । सघवात्सल्य संघपूजा च । एतत्फल
परत्र तीर्थंकरनामगोत्र इह च सर्वदेवसान्निध्य । इति यतिश्राद्धकरणीयमागाढ लघुनन्द्यावर्ततपः ॥ २७ ॥
इति फलतपांसि सप्तविंशतिः । इति त्रिविधान्यपि तपांसि सपूर्णानि ॥
अथ विंशतिस्थानकानि । अर्हत्पूजा १ सिद्धपूजा २ प्रवचनपूजा ३ गुरुपूजा ४ स्थविरपूजा ५ बहुश्रुत-
पूजा ६ तपस्विपूजा ७ ज्ञानोपयोग ८ सम्यक्त्वपालन ९ विनयकरणं १० आवश्यककरण ११ ब्रह्मचर्य १२
धर्मध्यान १३ यथाशक्तितपः १४ वैयावृत्त्य १५ समाधिः १६ अपूर्वज्ञानपाठः १७ श्रुतभक्तिः १८ ज्ञानपूजा
१९ सघपूजादिकरण २० इति विंशतिस्थानकाराधन ॥ एतेषु तपःकरणस्य न निश्चयः किंत्वेषा मुक्ताना आ-
राधनमेव करणीय ॥ अरहत १ सिद्ध २ पवयण ३ गुरु ४ थेर ५ बहुस्सु ए ६ तवस्सी ७ य । वत्सलया य
एसिं अभिक्खनाणोवउगे ८ य ॥ १ ॥ दसण ९ विणए १० आवस्सए ११ य सील वए १२ निरइयारो ।

न्यावर्ततपः । बृहन्नन्द्यावर्तविधिसंस्थयैकाशनादिभिः । पूरणीयं तपश्चोद्यापने तत्पूजनं महत् ॥ १ ॥ नन्द्यावर्ताराधनार्थं तपः नन्द्यावर्ततपः । तत्र प्रथममुपवासो नन्द्यावर्ताराधनाय । ततः सौधर्मेन्द्रईशानेन्द्रश्रुतदेवतानामाचाम्लत्रयं । ततोऽर्हदादि अष्टकाना आराधनार्थं अष्टाचाम्लानि । ततश्चतुर्विंशतिजिनमात्राराधनार्थं चतुर्विंशतिरेकभक्तानि । ततः षोडशविद्यादेव्याराधनार्थं षोडशैकभक्तानि । ततश्चतुर्विंशतिलोकान्तिकाराधनार्थं चतुर्विंशतिरेकभक्तानि । ततश्चतुःषष्टीन्द्राराधनार्थं चतुःषष्टिरेकभक्तानि । ततश्चतुष्षष्टीन्द्रदेव्याराधनार्थं चतुष्षष्टिरेकभक्तानि । ततश्चतुर्विंशतिशासनयक्षाराधनार्थं चतुर्विंशतिरेकभक्तानि । ततश्चतुर्विंशतिशासनयक्षिण्याराधनार्थं चतुर्विंशतिरेकभक्तानि । ततो दशदिक्पालाराधनार्थं दशैकभक्तानि । ततो ग्रहक्षेत्रपालाराधनार्थं दशैकभक्तानि । ततश्चतुर्णिकायदेवताराधनार्थं चत्वार्येकभक्तानि । ततः सर्वाराधनार्थमुपवासः । अत्रोपवासद्वयं एकादशाचाम्लानि द्विशती चतुःपञ्चाशत्तरा एकभक्तानां । एवं सप्तसप्तत्यधिकेन दिनशतद्वयेन पूर्यते । यन्त्रकन्यासः । उद्यापने चैत्ये बृहत्स्नात्रविधिः धर्मागारे नन्द्यावर्तपूजा प्रतिष्ठाविधिवत् । संघपूजा संघवात्सल्यं । एतत्फलं परलोके तीर्थंकरनामकर्म इहलोके सर्वर्द्धयः सर्वदेवतासान्निध्यं । इति यतिश्राद्धकरणीयमागाढं बृहन्नन्द्यावर्ततपः ॥ २५ ॥ ॥ अथ लघुनन्द्यावर्ततपः । नन्द्यावर्ताराधनार्थं तपः नन्द्यावर्ततपः । लघोश्च नन्द्यावर्तस्य तपः कार्यं विशेषतः । तदाराधनसङ्ख्याभिरुपायनमिहादि-

१ पद्मोत्तरतपः २१ [illegible]

धत् ॥ १ ॥ तत्र प्रथम नन्द्यावर्ताराधनार्थमुपवासः । ततो धरणेन्द्राम्बिका श्रुतदेवीश्रीगौतमाराधनार्थं आचा-
म्लचतुष्टय । ततः परमेष्ठिरत्नत्रयाराधनार्थं आचाम्लाष्टक । ततः षोडशविद्यादेव्याराधनार्थं षोडशैकम-
क्तानि । ततश्चतुर्विंशतिशासनयक्षिण्याराधनार्थं चतुर्विंशत्येकभक्तानि । ततो दशदिक्पालाराधनार्थं दशै ।
कभक्तानि । ततो ग्रहक्षेत्रपालाराधनार्थं दशैकभक्तानि । ततश्चतुर्णिकायदेवताराधनार्थं चत्वार्येकभक्तानि-
ततः सर्वाराधनार्थमुपवासः एवमुपवासद्वय द्वादशाचाम्लानि चतुःषष्ट्येकभक्तानि सर्वदिनान्यष्टाविंशतिः ।
उद्यापने चैत्ये बृहत्स्नात्रविधिः । धर्मागारे लघुनन्द्यावर्तपूजन पूर्ववत् । सघवात्सल्य सघपूजा च । एतत्फल
परत्र तीर्थंकरनामगोत्र इह च सर्वदेवसान्निध्य । इति यतिश्राद्धकरणीयमागाढ लघुनन्द्यावर्ततपः ॥ २७ ॥
इति फलतपासि सप्तविंशतिः । इति त्रिविधान्यपि तपासि सपूर्णानि ॥

अथ विंशतिस्थानकानि । अर्हत्पूजा १ सिद्धपूजा २ प्रवचनपूजा ३ गुरुपूजा ४ स्थविरपूजा ५ बहुश्रुत-
पूजा ६ तपस्विपूजा ७ ज्ञानोपयोग ८ सम्यक्त्वपालन ९ विनयकरणं १० आवश्यककरण ११ ब्रह्मचर्यं १२
धर्मध्यान १३ यथाशक्तितपः १४ वैयावृत्त्य १५ समाधिः १६ अपूर्वज्ञानपाठः १७ श्रुतभक्तिः १८ ज्ञानपूजा
१९ सघपूजादिकरण २० इति विंशतिस्थानकाराधन ॥ एतेषु तपःकरणस्य न निश्चयः किंत्वेषा मुक्ताना आ-
राधनमेव करणीय ॥ अरहत १ सिद्ध २ पवयण ३ गुरु ४ थेर ५ बहुस्सु ए ६ तवस्सी ७ य । वत्सलया य
एसि अभिक्खनाणोवउगे ८ य ॥ १ ॥ दंसण ९ विणए १० आवस्सए ११ य सील व्वए १२ निरइयारो ।

न्यावर्ततपः । बृहन्नन्द्यावर्तविधिसंस्थयैकाशनादिभिः । पूरणीय तपश्चोद्यापने तत्पूजन महत् ॥ १ ॥ नन्द्यावर्ताराधनार्थं तपः नन्द्यावर्ततपः । तत्र प्रथममुपवासो नन्द्यावर्ताराधनाय । ततः सौधर्मेन्द्रईशानेन्द्रश्रुतदेवतानामाचाम्लत्रयं । ततोऽर्हदादि अष्टकाना आराधनार्थं अष्टाचाम्लानि । ततश्चतुर्विंशतिजिनमात्राराधनार्थं चतुर्विंशतिरेकभक्तानि । ततः षोडशविद्यादेव्याराधनार्थं षोडशैकभक्तानि । ततश्चतुर्विंशतिलोकान्तिकाराधनार्थं चतुर्विंशतिरेकभक्तानि । ततश्चतुःषष्टीन्द्राराधनार्थं चतुःषष्टिरेकभक्तानि । ततश्चतुष्षष्टीन्द्रदेव्याराधनार्थं चतुष्षष्टिरेकभक्तानि । ततश्चतुर्विंशतिशासनयक्षाराधनार्थं चतुर्विंशतिरेकभक्तानि । ततश्चतुर्विंशतिशासनयक्षिण्याराधनार्थं चतुर्विंशतिरेकभक्तानि । ततो दशदिक्पालाराधनार्थं दशैकभक्तानि । ततो ग्रहक्षेत्रपालाराधनार्थं दशैकभक्तानि । ततश्चतुर्णिकायदेवताराधनार्थं चत्वार्येकभक्तानि । ततः सर्वाराधनार्थमुपवासः । अत्रोपवासद्वय एकादशाचाम्लानि द्विशती चतुःषष्ट्युत्तरा एकभक्तानां । एवं सप्तसप्तत्यधिकेन दिनशतद्वयेन पूर्यते । यन्त्रकन्यासः । उद्यापने चैत्ये बृहत्स्नात्रविधिः धर्मागारे नन्द्यावर्तपूजा प्रतिष्ठाविधिवत् । संघपूजा सघवात्सल्य । एतत्फल परलोके तीर्थंकरनामकर्म इहलोके सर्वद्धय सर्ववेवतसाक्षिप्य । इति यतिश्राद्धकरणीयमागाढ बृहन्नन्द्यावर्ततपः ॥ २६ ॥ ॥ अथ लघुनन्द्यावर्ततप. । नन्द्यावर्ताराधनार्थं तपः नन्द्यावर्ततप । लघोश्च नन्द्यावर्तस्य तप कार्यं विशेषतः । तदाराधनसकयाभिरुद्यापनमिहावि-

१ पत्रोत्तरपा २१ यन्त्राकृतिरस्मिन्नन्येऽन्यत्र बोधितास्ति । २ यन्त्राकृतिरन्यत्र बोधितास्ति ।

आचार्यपदोचितलग्ने स्वगुरुरन्यो वा कश्चिद्वयोवृद्धो ज्ञानवृद्धो गीतार्थोचार्यः पूर्ववद्वासाभिमन्त्रणं विधाय वासक्षेपं कृत्वा गणधरविधिना तिलकं करोति तदन्वये आचार्योपाध्यायसाधुसाध्वीश्रावकश्राविका अपि परमेष्ठिमन्त्रपाठपूर्वं तथैव श्रीखण्डेन तिलकं कुर्वन्ति । ततो वृद्धगुरुः पूर्ववदभिमन्त्रितवासाक्षतदानं साधुश्राद्धेभ्यः करोति । ततो वृद्धाचार्य'—क्षमासमणाणं सुत्तेणं अत्थेणं तदुभयेणं गुरुगुणेहिं वुड्ढाहि नित्थारगपारगो होहि इत्युक्ते सर्वेपि वासाक्षतक्षेपं कुर्वन्ति । ततो वन्दनकविधिः पूर्ववत् । अन्येषामुपाध्यायसाध्वीनां गणानुज्ञा गणमुख्यत्वकथनं वाचनानुज्ञाधिकाराद्वसेयं । इति पदारोपाधिकारे यतिपदारोपविधिः ॥

॥ अथ विप्राणां । तेषां च आचार्योपाध्यायस्थानपतिकर्माधिकारिभेदाच्चतुर्धा पदक्रमः । तत्राचार्याः शुद्धसम्यग्दृष्टयो द्वादशव्रतधरा अन्यदैवतलिङ्गिप्रणामसम्भाषणसंस्तवविवर्जितास्त्यक्तसावद्याः कुप्रतिग्रहरहिता नित्यं कृतप्रत्याख्याना भवन्ति । तद्यथा—स्वभावादल्पसंतुष्टा अल्पभाषणतत्पराः । जिनागमात्परं नैव पठन्ति श्रुतमादरात् ॥ १ ॥ नित्यं धौतवस्त्रभाजो द्वादशव्रतधारिणः । सम्यगभ्यस्ततत्त्वार्थाः प्रमाणग्रन्थवेदिनः ॥ २ ॥ प्रायः सावद्यविरता मिथ्यादृक्सङ्गवर्जिताः । धीराः शान्ता गुणोपेताः सर्वशास्त्रविदस्तथा ॥ ३ ॥ प्रतिष्ठादिसर्वकर्मकरणाभ्यासशालिनः । प्रत्याख्यानरताः प्रायः प्राय' प्राशुकभोजिनः ॥४॥ नित्यस्नानरता दान्ता वाग्मिनो मन्त्रवेदिनः । षट्कर्मसाधनाध्यग्रहृदयास्ते द्विजैव हि ॥ ५ ॥ साधूपास्तिपरा नित्यं शुद्धवंशसमुद्भवाः । प्रायः कनकहस्ताश्च कुप्रतिग्रहवर्जिताः ॥ ६ ॥ प्राणात्ययेपि शूद्रान्नभोजनेऽतिपराङ्मुखाः । वार्ताकमू-

मूलपट्टाभिसेओ कओ तहिं मयणसुंदरीएवि । सेसाण अट्ठण्ह कओ अ लहुपट्टअभिसेओ॥१०६५॥
मइसायरो अ इक्को तिअेण य धवलसिट्ठिणो मित्ता। एए चउरोऽवि तया रन्ना निअमतिणो ठविआ॥
कोसंबीनयरीओ अणाविओ धवलनंदणो विमलो। सो कणयपट्टपुव्वं सिट्ठी सठाविओ रन्ना ॥१०६७॥
अट्ठाहियाउ चेईहरेसु काराविऊण विहिपुव्वं । सिरिसिद्धचक्कपूआ च कारए परमभत्तीए ॥ १०६८ ॥
ठाणे ठाणे चेईहराइं कारेइ तुंगसिहराइं । घोसावेइ अमारिं दाणं दीणाण दावेइ ॥ १०६९ ॥

तत्र मदनसुन्दर्य्या अपि मूलपट्टाभिषेकः, सा मूलपट्टराज्ञीपदे स्थापितेत्यर्थः, च पुनः शेषाणां अष्टानां राज्ञीनां लघुपट्टाभिषेकः कृत' ॥ १०६५ ॥ तदा एकश्च मतिसागर श्रीपयेन च धवलश्रेष्ठिनो मित्राणि एते चत्वारोऽपि राज्ञा श्रीपालेन निजमन्त्रिणः स्थापिताः ॥ १०६६ ॥ तथा कोशाम्बीनगरीतो विमलो नाम धवलनन्दनो-धवलश्रेष्ठिपुत्र आनायित , स विमलो राज्ञा श्रीपालेन कनकपट्टपूर्व-सौवर्णपट्टबन्धकपूर्वकं श्रेष्ठी सं-सम्यक् प्रकारेण स्थापित ॥ १०६७॥ तथा श्रीपा चैत्यगृहेषु-जिनमन्दिरेषु अष्टाह्निकामहोत्सवान् कारयित्वा विधिपूर्वं परमभक्त्या श्रीसिद्धचक्रपूजां च कारयति ॥१०६८॥ स्थाने स्थाने तुङ्गानि-उच्चानि शिखराणि येषां तानि तुङ्गशिखराणि चैत्यगृहाणि कारयति, तथाऽमारिं-सर्वजन्तुभ्योऽभयदानं घोषयति, पुनः दीनेभ्यो दान दापयति, इत्थं पुण्यकृत्यानि करोतीत्यर्थ ॥ १०६९ ॥

नायमग्गेण रज्जं पालंतो पियअमाहिं संजुत्तो । सिरिसिरिपालनरिंदो इंदुव्व करेइ लीलाओ ॥
अह अजिअसेणनामा रायरिसी सो विसुद्धचारित्तो । उप्पन्नावहिनाणो समागओ तत्थ नयरीए ॥
तस्सागमणं सोऊण नरवरो पुलइओ पमोएणं । माइपियाहिं समेओ संपत्तो वंदणनिमित्तं ॥
तिपयाहिणित्तु सम्मं तं मुणिनाहं नमित्तु नरनाहो । पुरओ अ संनिविट्ठो सपरिवारो अ विणयपरो ॥
सोऽवि सिरिअजिअसेणो मुणिराओ रायरोसपरिमुक्को । करुणिक्कपरो परमं धम्मसरूवं कहइ एवं ।

न्यायमार्गेण राज्यं पालयन् प्रियतमाभिः—वल्लभाभिः संयुक्तः—सहितः श्रीश्रीपालनरेन्द्रः इन्द्र इव लीलाः—क्रीडाः करोति ॥ १०७० ॥ अथ स श्रीअजितसेननामा राजर्षिस्तत्र नगर्यां—चम्पायां समागतः, कीदृशः सः ?—विशुद्ध—निर्मलं चारित्रं यस्य स तथाऽत एव उत्पन्नं अवधिज्ञानं यस्य स तथाभूतः ॥ १०७१ ॥ तस्य—राजर्षेरागमनं श्रुत्वा नरवरो—राजा श्रीपालः प्रमोदेन—हर्षेण पुलकितः—सञ्जातरोमोद्गमः सन् मात्रा जनन्या प्रियाभिश्च—वल्लभाभिः समेतः—सहितो वन्दननिमित्तं—मुनेः वन्दनार्थं सम्प्राप्तः ॥ १०७२ ॥ नरनाथो—राजा श्रीपालस्तं—मुनिनाथं त्रिः प्रदक्षिणीकृत्य पुनः सम्यग् नत्वा—प्रणम्य पुरतः—अग्रतश्च संनिविष्टः, कीदृशो नरनाथः ?—सपरिवारः—परिवारसहितश्च पुनर्विनयपरः ॥१०७३॥ सः श्रीअजितसेनोऽपि मुनिराजो रागरोषपरिमुक्तो रागद्वेषाभ्यां समन्ताद्रहितः, पुनः करुणा परा—प्रकृष्टा यस्य स तथाभूतः सन् एवं वक्ष्यमाणप्रकारेण परमं—प्रधानं धर्मस्य स्वरूपं कथयति ॥ १०७४ ॥

मूलपट्टाभिसेओ कओ तहिं मयणसुंदरीएवि । सेसाण अट्ठण्ह कओ अ लहुपट्टअभिसेओ॥१०६५॥
मइसायरो अ इक्को तिन्नेव य धवलसिट्ठिणो मित्ता। एए चउरोऽवि तया रन्ना निअमंतिणो ठविआ॥
कोसंबीनयरीओ अणाविओ धवलनंदणो विमलो। सो कणयपट्टपुव्वं सिट्ठी सठाविओ रन्ना॥१०६७॥
अट्ठाहियाउ चेईहरेसु काराविऊण विहिपुव्वं । सिरिसिद्धचक्कपूआ च कारए परमभत्तीए ॥ १०६८॥
ठाणे ठाणे चेईहराइं कारेइ तुंगसिहराइं । घोसावेइ अमारिं दाणं दीणाण दावेइ ॥ १०६९ ॥

तत्र मदनसुन्दर्य्या अपि मूलपट्टाभिषेकः, सा मूलपट्टराज्ञीपदे स्थापितेत्यर्थः, च पुनः शेषाणां अष्टानां राज्ञीनां लघुपट्टाभिषेकः कृतः ॥ १०६५ ॥ तदा एकश्च मतिसागर त्रीण्येव च धवलश्रेष्ठिनो मित्राणि एते चत्वारोऽपि राज्ञा श्रीपालेन निजमन्त्रिणः स्थापिताः ॥ १०६६ ॥ तथा कोशाम्बीनगरीतो विमलो नाम धवलनन्दनो-धवलश्रेष्ठिपुत्र आनायित , स विमलो राज्ञा श्रीपालेन कनकपट्टपूर्व-सौवर्णपट्टबन्धकपूर्वकं श्रेष्ठी सं-सम्यक् प्रकारेण स्थापित ॥ १०६७॥ तथा श्रीपा समैत्यगृहेषु-जिनमन्दिरेषु अष्टाह्निकामहोत्सवान् कारयित्वा विधिपूर्वं परमभक्त्या श्रीसिद्धचक्रपूजां च कारयति ॥१०६८॥ स्थाने स्थाने तुङ्गानि-उच्चानि शिखराणि येषां तानि तुङ्गशिखराणि चैत्यगृहाणि कारयति, तथाऽमारिं-सर्वजन्तुभ्योऽभयदानं घोषयति, पुनः दीनेभ्यो दान दापयति, इत्थं पुण्यकृत्यानि करोतीत्यर्थः ॥ १०६९ ॥

महंतेण च पुन्नेण, जाएवि गुरुसगमे । आलस्साईहिं रुद्धाणं, दुलहं गुरुदंसगं ॥ १०८० ॥
कहं कहंपि जीवाण, जाएऽवि गुरुदसणे । वुग्गाहियाण धुत्तेहिं, डुलहं पज्जुवासणं ॥ १०८१ ॥
गुरुपासेऽवि पत्ताण, दुल्लहा आगमस्सुई । जं निद्दा विगहाओ अ, दुज्जआओ सयाइवि ॥ १०८२ ॥
सपत्ताए सुईएवि, तत्तबुद्धी सुदुल्लहा । ज सिंगारकहाईसु, सावहाणमणो जणो ॥ १०८३ ॥
उवइट्ठेऽवि तत्तंमि, सद्धा अच्चंतदुल्लहा । ज तत्तरुइणो जीवा, दीसंति विरला जए ॥ १०८४ ॥

कदाचित् महता पुण्येन च गुरुसङ्गमे जातेऽपि आलस्यादिभि' त्रयोदशवस्करै रुद्धानां प्राणिनां गुरुदर्शन दुर्लभ, ते चामी " आलस्समोहवन्ना थंभा कोहा पमाय किवणत्ता । भयसोगा अन्नाणा, वक्खेव कुऊहला रमणा ॥१॥" ॥ इति ॥१०८०॥ जीवानां कथकथमपि—केन केनापि प्रकारेण गुरुदर्शने जातेऽपि धूर्तैर्व्युद्ग्राहितानां—भ्रान्तचित्तीकृतानां पर्युपासन--गुरुसेवन दुर्लभम् ॥ १०८१ ॥ गुरुपार्श्वे प्राप्तानामपि आगमस्य--सिद्धान्तस्य श्रुति'--श्रवण दुर्लभा, यत्—यस्मात्कारणात् निद्रा विकथाश्च सदापि दुर्जयाः सन्ति, तत्प्रसङ्गात् श्रवणं दुर्लभमपीत्यर्थ' ॥ १०८२ ॥ श्रुतौ—आगमश्रवणे सम्प्राप्तायामपि तत्वबुद्धिः सुदुर्लभा, यत्—यस्मात्कारणात् जनो—लोकः शृङ्गारकथादिषु—शृङ्गारहास्यादिकथासु सावधान—ऐकाग्र्ययुक्त मनो यस्य स तथा बहुर्दृश्यन्ते इति शेषः ॥ गुरुभिस्तत्त्वे उपदिष्टेऽपि श्रद्धा—आस्तिक्यं अत्यन्तदुर्लभा, यद्—यस्मात् कारणात्तत्त्वेषु—जिनोक्तपदार्थेषु रुचिर्येषां ते तत्त्वरुचयो जीवा जगति—लोके विरला दृश्यन्ते ॥ १०८४ ॥

भो भो भव्वा ! भवोहम्मि, दुल्लहो माणुसो भवो । चुल्लगाईहिं नाएहिं, आगमम्मि विआहिओ ॥१०७५॥
लद्धंमि माणुसे जम्मे, दुल्लहं खित्तमारिअं । ज दीसंति इहाणेगे, मिच्छा भिल्ला पुलिंदया ॥१०७६॥
आरिएसु अ खित्तेसु, दुल्लहं कुलमुत्तमं । जं वाहसुणियाईण, कुले जायाण को गुणो ? ॥ १०७७ ॥
कुले लद्धेऽवि दुल्लंभ, रूवमारुग्गमाउअं । विगला वाहिआऽकालमया दीसंति ज जणा ॥ १०७८ ॥
तेसु सव्वेसु लद्धेसु, दुल्लहो गुरुसंगमो । ज सया सव्वखित्तेसु, पाविज्जंति न साहुणो ॥ १०७९ ॥

भो ! भो ! भव्या भवौघे-भवसमूहे मानुषो-मनुष्यसम्बन्धी भवो-जन्म आगमे-सिद्धान्ते चुल्लकादिभिः-चुल्लगपासग-धन्ने इत्यादिभिर्ज्ञातैः-दृष्टान्तैः दुर्लभो-दुष्प्रापो व्याख्यात-उक्तः ॥ १०७५ ॥ कदाचित् मानुषे जन्मनि लब्धे सति आर्यं क्षेत्रं दुर्लभं यद्-यस्मात्कारणात् इह भरते अनार्यक्षेत्रेषु अनेके-बहवो म्लेच्छा भिल्लाः पुलिन्दाश्च म्लेच्छभेदा एव दृश्यन्ते-विलोक्यन्ते ॥ १०७६ ॥ आर्येषु च क्षेत्रेषु उत्तमं कुलं दुर्लभं यद्-यस्मात्कारणात् व्याधसौनिकादीनां-लुब्धकखाटिकादीनां कुलेषु जातानां-उत्पन्नानां को गुणः ?, न कोऽपीत्यर्थः ॥ १०७७ ॥ कुले लब्धेऽपि रूपं-परिपूर्णेन्द्रियपञ्चकं तथा आरोग्यं नीरोगता तथा आयुष्कं-महदायुः एतच्च दुर्लभम्, यद्-यस्मात्कारणात् जना-उत्तमकुलोद्भवा अपि बहवो लोका विकला-हीने-न्द्रियास्तथा व्याधिता-रोगिणस्तथाऽकाले मृता दृश्यन्ते ॥ १०७८ ॥ तेषु रूपादिषु सर्वेषु लब्धेष्वपि गुरुसङ्गमः-सद्गुरोः सङ्गो दुर्लभः, यद्-यस्मात्कारणात् सर्वक्षेत्रेषु सदा साधवो न प्राप्यन्ते ॥ १०७९ ॥

महतेण च पुन्नेण, जाएवि गुरुसंगमे । आलस्साईहिं रुद्धाणं, दुल्लहं गुरुदंसणं ॥ १०८० ॥
कहं कहवि जीवाण, जाएऽवि गुरुदंसणे । वुग्गाहियाण धुत्तेहिं, दुल्लहं पज्जुवासणं ॥ १०८१ ॥
गुरुपासेऽवि पत्ताण, दुल्लहा आगमस्सुई । जं निद्दा विगहाओ अ, दुज्जआओ सयाइवि ॥ १०८२ ॥
सुपत्ताए सुईएवि, तत्तबुद्धी सुदुल्लहा । जं सिंगारकहाईसु, सावहाणमणो जणो ॥ १०८३ ॥
उवइट्ठेऽवि तत्तंमि, सद्धा अच्चंतदुल्लहा । जं तत्तरुइणो जीवा, दीसंति विरला जए ॥ १०८४ ॥

कदाचित् महता पुण्येन च गुरुसङ्गमे जातेऽपि आलस्यादिभि त्रयोदशतस्करै रुद्धानां प्राणिनां गुरुदर्शनं दुर्लभं, ते चामी "आलस्समोहवन्ना थंभा कोहा पमाय किवणत्ता । भयसोगा अन्नाणा, वक्खेव कुऊहला रमणा ॥१॥" ॥ इति ॥ १०८० ॥ जीवानां कथंकथमपि–केन केनापि प्रकारेण गुरुदर्शने जातेऽपि धूर्तैर्व्युद्ग्राहितानां–भ्रान्तचित्तीकृतानां पर्युपासनं–गुरुसेवनं दुर्लभम् ॥ १०८१ ॥ गुरुपार्श्वे प्राप्तानामपि आगमस्य–सिद्धान्तस्य श्रुतिः–श्रवणं दुर्लभा, यत्–यस्मात्कारणात् निद्रा विकथाश्च सदापि दुर्जया सन्ति, तत्प्रसङ्गात् श्रवणं दुर्लभमपीत्यर्थः ॥ १०८२ ॥ श्रुतौ–आगमश्रवणे सम्प्राप्तायामपि तत्त्वबुद्धिः सुदुर्लभा, यत्–यस्मात्कारणात् जनो–लोकः शृङ्गारकथादिषु–शृङ्गारहास्यादिकथासु सावधानं–ऐकाग्र्ययुक्तं मनो यस्य स तथा परिदृश्यन्ते इति शेषः ॥ गुरुभिस्तत्त्वे उपदिष्टेऽपि श्रद्धा–आस्तिक्यं अत्यन्तदुर्लभा, यद्–यस्मात् कारणात्तत्त्वेषु–जिनोक्तपदार्थेषु रुचिर्येषां ते तत्त्वरुचयो जीवा जगति–लोके विरला दृश्यन्ते ॥ १०८४ ॥

आयाए तत्तसद्धाए, तत्तबोहो सुदुल्लहो । ज आसन्नसिवा केई, तत्त बुज्झंति जंतुणो ॥ १०८५ ॥
तत्थ दसविहो धम्मो, खंती मद्दव अज्जव । मुत्ती तवो दया सच्च, सोय बंभमकिंचणं ॥ १०८६ ॥
खंतीनामअकोहत्त, मद्दव माणवज्जण । अज्जव सरलो भावो, मुत्ती निग्गथया दुहा ॥ १०८७ ॥
तवो इच्छानिरोहो अ, दया जीवाण पालणं । सच्च वज्जमसावज्ज, सोय निम्मलचित्तया ॥ १०८८ ॥
बंभमट्ठारभेअस्स, मेहुणस्स विवज्जण । अकिंचण न मे कज्ज, केणावित्थित्तिऽणीहया ॥ १०८९ ॥

तत्त्वश्रद्धायां-तत्त्वप्रतीतौ जातायामपि तत्त्वबोधः-तत्त्वज्ञानं सुदुर्लभः, यद्-यस्मात्कारणात्केचिद् आसन्न-निकट शिव-मुक्तिर्येषां ते आसन्नशिवा एव जन्तवो-जीवाः तत्त्वं बुध्यन्ते, न सर्वेऽपीत्यर्थः ॥ १०८५ ॥ तत्त्वं किमित्याह-तत्त्व दशविधो धर्मस्तथाहि-क्षान्तिः१ मार्दवं२ आर्जवं३ मुक्तिः४ तपः५ दया६ सत्य७ शौच ८ ब्रह्म ९ आकिञ्चन्य१० ॥ १०८६ ॥ अथैषामर्थानाह-क्षान्तिर्नाम अक्रोधत्व-क्रोधाभाव १ मार्दवं-मानवर्जनम्२ आर्जवम् सरलो भाव-अभिप्राय ३ मुक्तिर्द्विधा निर्ग्रन्थता-निर्लोभता, द्रव्यतो भावतश्च परिग्रहरहितत्वमित्यर्थः४ ॥ १०८७ ॥ इच्छाया निरोधश्च तप उच्यते५ जीवानां पालन-रक्षण दया उच्यते६ असावद्य-निर्दोषं वाक्य सत्यमुच्यते७ निर्मलचित्तता शौचमुच्यते८ ॥ १०८८ ॥ अष्टादशभेदस्य मैथुनस्य विवर्जन ब्रह्म उच्यते, तत्र औदारिकवैक्रियभेदाद् द्विविधं मैथुनं, तदेकैकमपि मनोवाक्काय करणकारणानुमतिभेदान्नवविध, द्वयोर्मिलने अष्टादशविधमिति९, केनापि वस्तुना मम कार्यं न-नास्ति इत्येव याऽनीहता-निःस्पृहता तद् आकिञ्चन्यमुच्यते१० ॥ १०८९ ॥

एसो दसविहोद्देसो, धम्मो कप्पदुमोवमो । जीवाण पुण्णपुण्णाण, सव्वसुक्खाण दायगो ॥१०९०॥
धम्मो चिंतामणी रम्मो, चिंतिअत्थाण दायगो । निम्मलो केवलालोअलच्छिविच्छिड्डिकारओ ॥
कल्लाणिक्कमओ वित्तरूवो मेरूवमो इमो । सुमणाणं मणोतुट्ठिं, देइ धम्मो महोदओ ॥ १०९२ ॥

दशविधा-दशप्रकारा उद्देशा-अवयवा नामोच्चारणानि वा यस्य स तथाभूत एष धर्म्मः कल्पद्रुमोपमः-कल्पवृक्षसदृशः पूर्णपुण्येभ्यो जीवेभ्य' सर्वसौख्यानां दायकोऽस्ति, पूर्णं पुण्य येषां ते पूर्णपुण्यास्तेभ्यः, कल्पवृक्षाणामपि दशविधत्वाच-दुपमा धर्मे उक्त ॥ १०९० ॥ धर्म्मश्चिन्तामणिरिव रम्यो-मनोज्ञश्चिन्तितार्थानां-वाञ्छितार्थानां दायको दाताऽस्ति, कीदृशो धर्म्मो ?-निर्म्मलो-निर्दोषो अत एव केवलालोकः केवलज्ञानरूपप्रकाशः सा एव लक्ष्मी'-सम्पत् तस्या विच्छिड्डि-विस्तारस्तत्कारकः ॥ १०९१ ॥ कल्याण-मङ्गल मेरुपक्षे कल्याणम्-सुवर्णं सदेव एकं स्वरूपमस्येति कल्याणैकमयः पुन-र्वित्त प्रसिद्ध रूप-स्वरूप यस्य स तथा द्वयोस्तुल्य विशेषणमिद, यद्वा मेरुपक्षे वृत्त-वर्त्तुलं रूपम् आकृतिर्यस्य स तथा, पुनर्म-हान् उदयो यस्मात् स महोदय , मेरुपक्षे महानुदय-उन्नत्य यस्य स तथाऽत एव मेरुणा गिरिराजेन उपमा यस्य स मेरू-पमोऽय धर्म्म , सुमनसां-शोभनमनोवृत्तीनां जनानां मेरुपक्षे देवानां मनसि तुष्टि-तोष ददाति ॥ १०९२ ॥

आयाए तच्चसद्धाए, तत्तबोहो सुदुल्लहो । ज आसन्नसिवा केई, तत्त बुज्झति जतुणो ॥ १०८५ ॥
तत्त दसविहो धम्मो, खती मद्दव अज्जव । मुत्ती तवो दया सच्च, सोय बंभमकिंचणं ॥ १०८६ ॥
खंतीनाममकोहत्त, मद्दवं माणवज्जण । अज्जवं सरलो भावो, मुत्ती निग्गथया दुहा ॥ १०८७ ॥
तवो इच्छानिरोहो अ, दया जीवाण पालण । सच्च वक्कमसावज्ज, सोयं निम्मलचित्तया ॥ १०८८ ॥
बंभमट्ठारभेअस्स, मेहुणस्स विवज्जण । अकिंचण न मे कज्ज, केणाविरिथाचिऽणीहया ॥ १०८९ ॥

तत्त्वश्रद्धायां-तत्त्वप्रतीतौ जातायामपि तत्त्वबोधः-तत्त्वज्ञान सुदुर्लभः, यद्-यस्मात्कारणात्केचित् आसन्न-निकट शिव-मुक्तिर्येषां ते आसन्नशिवा एव जन्तवो-जीवाः तत्त्वं बुध्यन्ते, न सर्वेऽपीत्यर्थः ॥ १०८५ ॥ तत्त्व किमित्याह-तत्त्वं दशविधो धर्मस्तथाहि-क्षान्तिः१ मार्दव२ आर्जवं३ मुक्तिः४ तपः५ दया६ सत्य७ शौचं ८ ब्रह्म ९ आकिञ्चन्य१० ॥ १०८६ ॥ अथैषामर्थानाह-क्षान्तिर्नाम अक्रोधत्व-क्रोधाभाव १ मार्दव-मानवर्जनम्२ आर्जवम् सरलो भाव-अभिप्राय ३ मुक्तिर्द्विधा निर्ग्रन्थता-निर्लोभता, द्रव्यतो भावतश्च परिग्रहरहितत्वमित्यर्थः४ ॥ १०८७ ॥ इच्छाया निरोधश्च तप उच्यते५ जीवानां पालन-रक्षण दया उच्यते६ असावद्य-निर्दोष वाक्यं सत्यमुच्यते७ निर्मलचित्तता शौचमुच्यते८ ॥ १०८८ ॥ अष्टादशभेदस्य मैथुनस्य विवर्जनं ब्रह्म उच्यते, तत्र औदारिकवैक्रियभेदात् द्विविध मैथुन, तदेकैकमपि मनोवाक्कायैः करणकारणानुमतिभेदान्नवविध, द्वयोर्मिलने अष्टादशविधमिति९, केनापि वस्तुना मम कार्यं न-नास्ति इत्येव याऽनीहता-निःस्पृहता तद् आकिञ्चन्यमुच्यते१० ॥ १०८९ ॥

एअस्सेवावबोहेणं, तत्त नाणंपि निच्छय। एअस्साराहणारूवं, तत्त चारित्तमेव य ॥ १०९७ ॥
इत्तो जा निज्जरा तीए, रूव तत्त तवोऽवि अ। एवमेआइं सव्वाइ, पयाइं तत्तमुत्तमं ॥ १०९८ ॥
इत्तो जा निज्जरा तीए, रूव तत्त तवोऽवि अ। एवमेआइं सव्वाइ, पयाइं तत्तमुत्तमं ॥ १०९८ ॥
तत्तो नवपइ एसा, तत्तभूआ विसेसओ। सव्वेहिं भव्वसत्तेहिं, नेआ झेआ य निच्चसो ॥ १०९९ ॥
एय नवपय भव्वा !, झायता सुद्धमाणसा। अप्पणो चेव अप्पमि, सक्ख पिक्खति अप्पय ॥११००॥
अप्पमि पिक्खिए ज च, खणे खिज्जइ कम्मय। न त तवेण तिव्वेण, जम्मकोडीहिं खिज्जए॥११०१॥

एतस्य धर्मस्यैव अवबोधेन–सम्यग्ज्ञानेन निश्चयं–निश्चयात्मकं वस्तुनिर्णयजनकं ज्ञानमपि तत्त्व, च पुनरेतस्य धर्मस्य आराधनारूप चारित्रमपि तत्त्व, एवशब्दोऽप्यर्थे ॥ १०९७ ॥ इत –अस्माच्चारित्रात् या कर्मणां निर्जरा तस्या रूपं–स्वरूप तपोऽपि च तत्त्वमस्ति एवम्–अमुना प्रकारेण एतानि सर्वाणि पदानि उत्तमं–सर्वोत्कृष्टं तत्त्वमस्ति, अत्र जातावेकवचनम् ॥ १०९८ ॥ तत –तस्मात्कारणात् एषा–अनन्तरोक्ता नवानां पदानां समाहारो नवपदी सर्वैर्भव्यसत्त्वै –भव्यप्राणिभिर्विशेषत-स्तत्त्वभूता ज्ञेया नित्यशो ध्येया–ध्यातव्या च ॥ १०९९ ॥ एतां नवपदीं ध्यात्वा शुद्धं मानस–मनो येषां ते शुद्धमानसाः सन्तो ध्यायन्तो नरा आत्मना–स्वयमेव आत्मनि–स्वस्मिन् साक्षात्–प्रत्यक्ष आत्मान प्रेक्षन्ते–पश्यन्ति ॥११००॥ आत्मनि प्रेक्षिते–दृष्टे सति क्षणे–क्षणमात्रे यत् कर्म क्षीयते तत्कर्म तीव्रेण तपसा जन्मकोटिभिरपि न क्षीयते ॥ ११०१ ॥

सुगुत्तसत्तखित्तीए, सव्वस्सव य सोहिओ । धम्मो जयइ संवित्तो, जबूदीवोवमो इमो ॥ १०९३ ॥
एसो भ जेहिं पन्नत्तो, तेऽवि तत्त जिणुत्तमा। एअस्स फलनूआ य, सिद्धा तत्त न संसओ ॥१०९४॥
दंसता एयमायार, तत्तमायरिआवि हु । सिक्खयता इम सीसे, तत्तमुज्झावयावि अ ॥ १०९५ ॥
साहयता इम सम्म, तत्तरूवा सुसाहुणो । एअस्स सद्दहाणेण, सुतत्त दसणपि हु ॥ १०९६ ॥

सर्वस्वमत्–सर्वगृहसारमत् सुगुप्ता–सुष्ठु रचिता या सप्तश्रेणी 'जिणभवणबिम्ब पुत्थये'त्यादिका जम्बूद्वीपपक्षे भरतैरावत विदेहहैमवतैरण्यवतहरिवर्षरम्यकारूपा तया शोभितो–विराजित., पुनः स–सम्यग् वृत्तम्–आचारो यत्र स जम्बूद्वीपपक्षे संवृत्तः–सम्यग् वर्तुलोऽत्र एव जम्बूद्वीपेन उपमा यस्य स तथाभूतोऽयं धर्मो जयति, सर्वोत्कर्षेण वर्तते इत्यर्थ ॥ १०६३॥ एष धर्मो यैः प्रज्ञप्तः–प्रदर्शितस्ते जिनोत्तमा–जिनेन्द्रा अपि तत्त्व, एतस्य धर्मस्य फलभूता' सिद्धाश्च तत्त्व.न संशय, अत्र सन्देहो नास्तीत्यर्थ ॥ १०६४ ॥ एवं धर्मरूपमाचारं दर्शयन्त आचार्या अपि तत्त्व, तथा शिष्यान् इमं धर्मं शिक्षयन्तोऽध्यापका–उपाध्याया अपि च तत्त्वम् ॥ १०९५ ॥ इमं धर्मं सम्यक् साधयन्तः सुसाधवस्तत्त्वरूपा सन्ति, एतस्य धर्मस्य श्रद्धानेन दर्शन–सम्यक्त्वमपि सुष्ठु–शोभन तत्त्वम् ॥ १०६६ ॥

एअस्सेवावबोहेण, तत्तं नाणंपि निच्छयं । एअस्साराहणारूवं, तत्तं चारित्तमेव य ॥ १०९७ ॥
इत्तो जा निजरा तीए, रूव तत्त तवोऽवि अ । एवमेआइं सव्वाइं, पयाइं तत्तमुत्तमं ॥ १०९८ ॥
तत्तो नवपइ एसा, तत्तभूआ विसेसओ । सव्वेहिं भव्वसत्तेहिं, नेआ झेआ य निच्चसो ॥ १०९९ ॥
एय नवपय भव्वा !, झायता सुद्धमाणसा । अप्पणो चेव अप्पमि, सक्ख पिक्खति अप्पय ॥११००॥
अप्पमि पिक्खिए ज च, खणे खिज्जइ कम्मय । न त तवेण तिव्वेण, जम्मकोडीहिं खिज्जए॥११०१॥

एतस्य धर्मस्यैव अवबोधेन–सम्यग्ज्ञानेन निश्चयं–निश्चयात्मक वस्तुनिर्णयजनकं ज्ञानमपि तत्त्व, च पुनरेतस्य धर्मस्य आराधनारूप चारित्रमपि तत्त्व, एवशब्दोऽप्यर्थे ॥ १०९७ ॥ इत –अस्माच्चारित्रात् या कर्मणां निर्जरा तस्या रूप–स्वरूपं तपोऽपि च तत्त्वमस्ति एवम्–अमुना प्रकारेण एतानि सर्वाणि पदानि उत्तमं–सर्वोत्कृष्टं तत्त्वमस्ति, अत्र जातावेकवचनम् ॥ १०९८ ॥ तत –तस्मात्कारणात् एषा–अनन्तरोक्ता नवानां पदाना समाहारो नवपदी सर्वैर्भव्यसत्त्वै–भव्यप्राणिभिर्विशेषतस्तत्त्वभूता ज्ञेया नित्यशो ध्येया–ध्यातव्या च ॥ १०९९ ॥ एतां नवपदीं ज्ञात्वा शुद्धं मानस–मनो येषां ते शुद्धमानसाः सन्तो ध्यायन्तो नरा आत्मना–स्वयमेव आत्मनि–स्वस्मिन् साक्षात्–प्रत्यक्ष आत्मान प्रेक्षन्ते–पश्यन्ति ॥११००॥ आत्मनि प्रेक्षिते–दृष्टे सति क्षणे–क्षणमात्रे यत्र कर्म क्षीयते तत्कर्म तीव्रेण तपसा जन्मकोटिभिरपि न क्षीयते ॥ ११०१ ॥

ता तुज्झे भो महाभागा !, नाऊण तत्तमुत्तम । सम्म झाएह ज सिग्घ, पावेहाणंदसपय ॥ ११०२ ॥
एव सो मुणिराओ काऊण देसण ठिओ जाव । ताव सिरिपालराया विणयपरो जपए एव॥११०३॥
नाणमहोयहि! भयव केण कुकम्मेण तारिसो रोगो। बालत्ते मह जाओ ? केण सुकम्मेण समिओ अ ? ॥
केण च कम्मणाऽह ठाणे ठाणे अ परिसिं रिद्धि । सपत्तो ? तह केण कुकम्मणा सायरे पडिओ ? ॥
तह केण नीअकम्मेण चेव डुंबत्तण महाघोर । पत्तोऽह ? त सव्व कहेह काऊण सुपसाय ॥११०६॥

तत:–तस्मात्कारणात् भो ! महाभागा–अहो ! महाभाग्यवन्तो यूयमिद उत्तम तत्त्व ज्ञात्वा सम्यग् यथा स्यात्तथा ध्यायत, यत्–यतः शीघ्र आनन्दसम्पद–परमाह्लादरूपसम्पत्तिं प्राप्नुत ॥११०२॥ सोऽजितसेनो मुनिराज एवम्–उक्तप्रकारेण देशनां कृत्वा यावत् स्थितस्तावत् श्रीपालो राजा विनयपरः सन् एव–वक्ष्यमाणप्रकारेण जल्पति–वदति ॥ ११०३ ॥ हे ज्ञानमहोदधे–हे ज्ञानसमुद्र ! हे भगवन् ! केन कुकर्मणा मम बालत्वे तादृशो रोगो जात–उत्पन्न ? च पुन केन सुकर्मणा शान्तो–नाशम्प्राप्तः ? ॥११०४॥ च पुनः केन कर्मणाऽहं स्थाने स्थाने ईदृशीं ऋद्धि सम्प्राप्त ? तथा केन–कर्मणाऽह सागरे–समुद्रे पतित ? ॥ ११०५ ॥ तथा केन नीचकर्मणा एवाह महाघोरं–महादारुण डुम्बत्व प्राप्त ? तत्सर्वं सुतरामतिशयेन प्रसादं कृत्वा कथय ॥ ११०६ ॥

तो भणइ मुणिवरिंदो नरवर! जीवाण इत्थ संसारे। पुव्वकयकम्मवसओ हवंति सुक्खाइं दुक्खाइं ॥
इत्थेव भरहवासे हिरण्णउरनामयंमि वरनयरे। सिरिकंतो नाम निवो पावद्धिपसत्तओ अत्थि ॥
तस्सऽत्थि सिरिसमाणा सरीरसोहाइ सिरिमई देवी। जिणधम्मनिउणबुद्धी विसुद्धसमत्तसीलजुआ ॥
तीए अ नरवरिंदो भणिओ तुह नाह! जुज्जइ न एअं। पावद्धिमहावसणं निबंधणं नरयदुक्खाण ॥
भीसणसत्थकरेहिं तुरयारूढेहिं जं हणिज्जंति। नासंतावि हु ससया सो किर को खत्तिआयारो? ॥

ततः—तदनन्तरं मुनिवरेन्द्रो भणति हे नरवर— हे राजन्! अत्र—अस्मिन् संसारे जीवानां पूर्वकृतकर्मणां वशात् सुखानि दुःखानि च भवन्ति ॥ ११०७ ॥ अत्रैव भरतक्षेत्रे हिरण्यपुरनामके प्रधाननगरे पापर्द्धौ—आखेटके प्रसक्त—आसक्तः श्रीकान्तो नाम नृपो—राजाऽस्ति—आसीदित्यर्थः ॥ ११०८ ॥ तस्य राज्ञः शरीरशोभया श्रीसमाना—लक्ष्मीतुल्या श्रीमतीनाम देवी-पट्टराज्ञी अस्ति, कीदृशी?-जिनधर्मे निपुणा—दक्षा बुद्धिर्यस्याः सा तथा, पुनर्विशुद्धे—निर्मले ये सम्यक्त्वशीले—सम्यग्दर्शन ब्रह्मचर्ये ताभ्यां युता—सहिता ॥११०९॥ तया च श्रीमत्या नरवरेन्द्रो भणित, कथमित्याह—हे नाथ—हे स्वामिन्! एतत्-पापर्द्धिमहाव्यसनं तव न युज्यते, कीदृशमेतत्?-नरकदुःखानां निबन्धनं—कारणम् ॥ १११० ॥ भीषणानि—भयङ्कराणि शस्त्राणि करेषु—हस्तेषु येषां ते भीषणशस्त्रकरास्तैस्तुरगारूढैः—अश्वारूढैर्नरैर्यन्नश्यन्तोऽपि शशका—जन्तुविशेषा हन्यन्ते—मार्यन्ते स किल कः क्षत्रियाणां आचारः?, न कोऽपीत्यर्थः ॥ ११११ ॥

ता तुज्झे भो महाभागा !, नाऊण तत्तमुत्तम । सम्मं झाएह ज सिग्घ, पावेहाणदसपय ॥ ११०२ ॥
एव सो मुणिराओ काऊण देसणा ठिओ जाव । ताव सिरिपालराया विणयपरो जपए एव॥११०३॥
नाणमहोयहि! भयव केण कुकम्मेण तारिसो रोगो। बालत्ते मह जाओ ? केण सुकम्मेण समिओ अ ? ॥
केण च कम्मणाऽह ठाणे ठाणे अ परिसिं रिद्धि। सपत्तो ? तह केण कुकम्मणा सायरे पडिओ ? ॥
तह केण नीअकम्मेण चेव डुबत्तणं महाघोर । पत्तोऽह ? त सव्व कहेह काऊण सुपसाय ॥११०६॥

तत:-तस्मात्कारणात् भो ! महाभागा-महो ! महाभाग्यवन्तो यूयमिद उत्तम तत्त्व ज्ञात्वा सम्यग् यथा स्यात्तथा ध्यायत, यत्-यतः शीघ्र आनन्दसम्पद-परमाह्लादरूपसम्पत्तिं प्राप्नुत ॥११०२॥ सोऽजितसेनो मुनिराज एवम्-उक्तप्रकारेण देशनां कृत्वा यावत् स्थितस्तावत् श्रीपालो राजा विनयपरः सन् एव-वक्ष्यमाणप्रकारेण जल्पति-वदति ॥ ११०३ ॥ हे ज्ञानमहोदधे-हे ज्ञानसमुद्र ! हे भगवन् ! केन कुकर्मणा मम बालत्वे तादृशो रोगो जात-उत्पन्न ? च पुन केन सुकर्मणा शान्तो-नाशम्प्राप्तः ? ॥११०४॥ च पुनः केन कर्मणाऽहं स्थाने स्थाने ईदृशीं ऋद्धिं सम्प्राप्त ? तथा केन-कर्मणाऽहं सागरे-समुद्रे पतित ? ॥ ११०५ ॥ तथा केन नीचकर्मणा एताद्द महाघोर-महादारुण डुम्बत्व प्राप्त ? तत्सर्वं सुतरामतिशयेन प्रसादं कृत्वा कथय ॥ ११०६ ॥

त चेव भणतेहिं तेहिं वंठेहिं दुट्ठचित्तेहिं । उवसग्गिओ मुणिंदो खमापरो लिट्ठुलट्ठीहिं ॥ १११७ ॥
जह जह ताडंति मुणिं ते दुट्ठा तह तहा समुल्लसइ । हासरसो नरनाहे मुणिनाहे उवसमरसो अ ॥
ते कयमुणिउवसग्गा निब्भग्गा हरिणभूरिमयवग्गा । नरवइपुट्ठिविलग्गा पत्ता निअयंमि नयरंमि ॥
अन्नदिणे सो पुणरवि राया मिगयागओ निअ सिन्नं । मुत्तूण हरिणपुट्ठीइ धाविओ इक्कगो चेव ॥
नइतडवणे निलुक्को सो हरिणो नरवरो तओ चुक्को । जा पिच्छइ ता पासइ नइउवकंठे ठिअं साहुं ॥

तैरेव–नृपोक्तमेव वचनं भणद्भिः–जल्पद्भिस्तैर्दुष्टचित्तैः षण्ढै(ण्ठैः)र्मुनीन्द्रो लेष्टुभिः–लोष्टैर्यष्टिभिः–लकुटैः उपसर्गित–उपद्रुतः, कीदृशो मुनीन्द्रः ?–क्षमापरः–क्षमाप्रधानः ॥ १११७ ॥ ते दुष्टा वण्ठा यथा यथा मुनिं ताडयन्ति तथा तथा नरनाथे–नृपे हास्यरसः समुच्छलति, मुनिनाथे–मुनीश्वरे च उपशमरसः–शान्तरसः समुच्छलति ॥ ११११८ ॥ कृतो मुनेरुपसर्गो यैस्ते तथाऽत एव निर्भाग्या–भाग्यहीनाः पुनर्हता भूरयो–बहवो मृगवर्गा–मृगसमूहा यैस्ते तथा, ते वण्ठा नरपते–राज्ञः पृष्ठौ विलग्नाः सन्तो निजके–स्वकीये नगरे प्राप्ताः ॥ १'१९ ॥ अन्यस्मिन्दिने स–राजा पुनरपि मृगयायां गतो निजं सैन्यं मुक्त्वा–त्यक्त्वा एकक:–एकाकी एव हरिणस्य पृष्ठौ धावितः ॥ ११२०॥ स हरिणो नद्यास्तटे वने तत्र 'निलुक्को'–त्ति घनवृक्षाद्याच्छादितत्वाददृश्यतां गतस्तदा नरवरो–राजा ततो मृगाच्च्युतः सन् यावत्प्रेक्षते–विलोकयति तावन्नद्या उपकण्ठे–समीपे स्थित साधु पश्यति ॥ ११२१ ॥

जत्थ अकयावराहा मया वराहाइणोऽवि निन्नाहा । मारिज्जंति वराया सा सामिअ! केरिसी नीई ॥
हतूण परप्पाण अप्पाण जे कुणंति सप्पाण । अप्पाण दिवसाण कए अ नासंति अप्पाण ॥१११३॥
इच्चाइजिणिंदागमउवएससएहिं बोहयंतीए । तीए न सक्किओ सो निवारिउं पावसणाओ ॥
अन्नदिणे सो सत्तहिं सएहिं उब्भडदुट्ठवंठेहिं । मइआसत्तो पत्तो कत्थवि एगंमि वणगहणे ॥१११५॥
दट्ठूण तत्थ एग धम्मज्झयसजुअ मुणिवरिंद । राया भणेइ एसो चमरकरो कुट्टिओ कोऽवि ॥१११६॥

यत्र नीतिमार्गे न कृतोऽपराधो यैस्तेऽकृतापराधा मृगा–हरिणा वराहादयः–शूकरादयोऽपि निर्नाथा–अनाथा वराका–दुर्बला जीवा मार्यन्ते सा स्वामिन्! कीदृशी नीतिः ?॥१११२॥ परात्मान–परजीवं हत्वा ये जीवास्तन्मांसभक्षणेन आत्मान समांसं–सबलं कुर्वन्ति ते दुष्टा अल्पानां–स्तोकानां दिवसानां कृते च–निमित्तं आत्मानं नाशयन्ति ॥ १११३ ॥ इत्यादिभिर्जिनेन्द्रागमसम्बन्धिभिरुपदेशानां शतैर्बोधयन्त्या तया राज्ञ्या स राजा पापव्यसनान्निवारयितु न शक्तोऽभूत् ॥१११४॥ अन्यस्मिन्दिने स श्रीकान्तो राजा सप्तभि शतै उद्भटदुष्टवण्ठैः पुरुषैः सह मृगयायां–पापर्द्धौ आसक्तः सन् क्वाप्येकस्मिन् वनगहने–दुरवगाहवने प्राप्त ॥ १११५ ॥ तत्र वने एकं धर्मध्वजेन–रजोहरणेन सयुतं–सहितं मुनिवरेन्द्रं दृष्ट्वा राजा भणति, मक्षिकापनयनार्थं चामरं करे यस्य स चामरकर एष कोऽपि कुष्ठिकोऽस्ति ॥ १११६ ॥

त चेव भणतेहिं तेहिं वठेहिं दुट्ठचित्तेहिं । उवसग्गिओ मुणिंदो खमापरो लिट्ठुलट्ठीहिं ॥ १११७ ॥
जह जह ताडंति मुणिं ते दुट्ठा तह तहा समुच्छलइ । हासरसो नरनाहे मुणिनाहे उवसमरसो अ ॥
ते कयमुणिउवसग्गा निब्भग्गा हणिअभूरिमयवग्गा । नरवइपुट्ठिविलग्गा पत्ता निअयंमि नयरंमि ॥
अन्नदिणे सो पुणरवि राया मिगयागओ निअसिन्नं । मुत्तूण हरिणपुट्ठीइ धाविओ इक्कगो चेव ॥
नइतडवणे निलुक्को सो हरिणो नरवरो तओ चुक्को । जा पिच्छइ ता पासइ नइउवकंठे ठिअं साहुं ॥

तदेव—नृपोक्तमेव वचनं भणद्भिः—जल्पद्भिस्तैर्दुष्टचित्तैः वण्ठैः(षण्ठैः)मुनीन्द्रो लेष्टुभिः—लोष्टैर्यष्टिभिः—लकुटैः उपसर्गित—उपद्रुतः, कीदृशो मुनीन्द्रः ?—क्षमापरः—क्षमाप्रधानः ॥ १११७ ॥ ते दुष्टा वण्ठा यथा यथा मुनिं ताडयन्ति तथा तथा नरनाथे—नृपे हास्यरस समुच्छलति, मुनिनाथे—मुनीश्वरे च उपशमरसः—शान्तरसः समुच्छलति ॥ १११८ ॥ कृतो मुने रुपसर्गो यैस्ते तथाऽत एव निर्भाग्या—भाग्यहीनाः पुनर्हता भूरयो—बहवो मृगवर्गा—मृगसमूहा यैस्ते तथा, ते वण्ठा नरपते—राज्ञः पृष्ठौ विलग्ना सन्तो निजके—स्वकीये नगरे प्राप्ताः ॥ १११९ ॥ अन्यस्मिन्दिने स—राजा पुनरपि मृगयायां गतो निजं सैन्यं मुक्त्वा—त्यक्त्वा एकक:—एकाकी एव हरिणस्य पृष्ठौ धावितः ॥ ११२० ॥ स हरिणो नद्यास्तटे वने तत्र 'निलुक्को'—त्ति घनवृक्षाद्याच्छादितत्वाददृश्यतां गतस्तदा नरवरो—राजा ततो मृगाच्च्युतः सन् यावत्प्रेक्षते—विलोकयति तावन्नद्या उपकण्ठे—समीपे स्थितं साधुं पश्यति ॥ ११२१ ॥

तं दट्ठूण पावेणं तेण तह पिल्लिओ मुणिवरिंदो । सहसत्ति जहा पडिओ नईजले तो पुणो तेण ॥

सज्जायकिंपिकरुणाभावेणं कड्ढिऊण सो मुक्को । को जाणइ जीवाण भावपरावत्तमइविसमं ? ॥

गिहमागएण तेण निअभावयाओ निवेइओ सहसा । सिरिमइदेवीपुरओ तीए अ निवो इम भणिओ ॥

अन्नेसिंपि जीआण पीडाकरणं हवेइ कडुअफलं । जं पुण मुणिजणपीडाकरणं तं दारुणविवागं ॥

तं साधुं दृष्ट्वा तेन पापेन क्रूरेण राज्ञा तथा-तेन प्रकारेण कराभ्यां प्रेरितो यथा मुनिवरेन्द्रः सहसेति-अकस्मात् नदीजले पतितः तदनन्तरम् ॥ ११२२ ॥ पुनस्तेन राज्ञा सञ्जात-समुत्पन्न किमपि करुणाभावो-दयापरिणामो यस्य स तेन तथाभूतेन सता स मुनीन्द्रः ' कड्ढिऊण ' त्ति जलमध्यान्निष्कास्य नदीतटे मुक्तः, कथमेतदेवमित्याह-जीवानां अतिविषमं भावपरावर्त(न)-परिणामविपर्ययं को जानाति ? अतिशयितज्ञानिनं विना ?, न कोऽपीत्यर्थः, सुगममेतत् ॥ ११२३ ॥ गृहमागतेन तेन राज्ञा सहसा-सद्यः श्रीमत्या-देव्याः पुरतः-अग्रतो निजावदातः-स्वकीयनिर्मलभावो निवेदितो-ज्ञापितः, तदा तया नृप इदं-वक्ष्यमाणं भणितः, नृपायेदमुक्तमित्यर्थः ॥ ११२४ ॥ अन्येषामपि जीवानां पीडाकरणं कटुकं फलं यस्य तत् कटुकफलं भवति, यत्पुनर्मुनिजनस्य पीडाकरणं तद्दारुणो विपाको यस्य तद्दारुणविपाकं, अतिभयङ्करफलप्रदमित्यर्थः ॥ ११२५ ॥

जओ—साहूण हीलाए हाणी हासेंण रोयण होइ । निंदाइ बहो बधो ताडणया वाहिमरणाईं ॥११२६॥
मुणिमारणेण जीवाणऽणतससारिआण बोहीवि । दुलहा चिअ होइ धुव भणिअमिण आगमेऽवि जओ॥
चेइअदव्वविणासे इसिघाए पवयणस्स उड्डाहे । सजइचउत्थभंगे मूलग्गी बोहिलाभस्स ॥११२८॥
त सोऊण नरिंदो किंपि समुल्लसिअधम्मपरिणामो । पभणेइ अह पुणरवि न करिस्स एरिसमकज्ज॥

यत उक्त शास्त्रे, साधूनां हीलया हानिर्भवति, साधूनां हास्येन—हसनेन रोदन भवति, साधूनां निन्दया बन्धो वधश्च भवति, साधूनां ताडनया व्याधिमरणादिः—रोगप्राणवियोगादिर्भवति ॥ ११२६ ॥ मुनिमारणेन अनन्त संसारोऽस्त्येषा मित्यनन्तससारिकास्तेषां जीवानां बोधि—जिनधर्मप्राप्तिरपि ध्रुव—निश्चित दुर्लभैव भवति, यत आगमे—सिद्धान्तेऽपि इद भणित—उक्तमस्ति ॥ ११२७ ॥ किमित्याह—चैत्यद्रव्य—जिनगृहसम्बन्धि द्रव्यं तस्य विनाशे—भक्षणोपेक्षणादिना मूलतो ध्वसे तथा ऋषिघाते—साधुमारणे तथा प्रवचनस्य—चतुर्विधसङ्घस्य उड्डाहे—कलङ्कदानादिनाऽपवादकरणे तथा सयत्याः—साध्व्याश्चतुर्थव्रतस्य—ब्रह्मचर्यस्य भङ्गे बोधिलाभस्य—अर्हद्धर्मावाप्तेर्मूलेऽग्निर्दत्त', एतावता एतत्कर्तु पुन सद्धर्मलाभो दुर्लभ एवेति [आवश्यकनिर्युक्तौ] ॥११२८॥ तत् राज्ञीवचन श्रुत्वा नरेन्द्रो—राजा प्रभणति, कीदृशो नरेन्द्र ?-किमपि समुल्लसितो धर्मपरिणामो यस्य स तथा, किं कथयतीत्याह—अह पुनरपि ईदृश अकार्य—अकृत्य न करिष्यामि ॥ ११२९ ॥

तं दट्ठूण पावेण तेण तह पिल्लिओ मुणिवरिंदो । सहसत्ति जहा पडिओ नईजले तो पुणो तेण ॥
सजायकिंपिकरुणाभावेणं कड्ढिऊण सो मुक्को । को जाणइ जीवाणं भावपरावत्तमइविसमं ? ॥
गिहमागएण तेण निअयभावो निवेइओ सहसा । सिरिमइदेवीपुरओ तीए अ निवो इमं भणिओ॥
अन्नेसिंपि जीवाण पीडाकरणं हवेइ कडुअफलं । जं पुण मुणिजणपीडाकरणं तं दारुणविवागं ॥

तं साधुं दृष्ट्वा तेन पापेन क्रूरेण राज्ञा तथा-तेन प्रकारेण कराभ्यां प्रेरितो यथा मुनिवरेन्द्रः सहसेति-मकस्मात् नदीजले पतितः तदनन्तरम् ॥ ११२२ ॥ पुनस्तेन राज्ञा सञ्जात-समुत्पन्न किमपि करुणाभावो-दयापरिणामो यस्य स तेन तथाभूतेन सता स मुनीन्द्रः 'कड्ढिऊण' त्ति जलमध्यान्निष्कास्य नदीतटे मुक्तः, कथमेतज्जातमित्याह-जीवानां मतिविषमं भावपरावर्त(न)-परिणामविपर्ययं को जानाति ? अतिशयितज्ञानिनं विना ?, न कोऽपीत्यर्थः, युग्ममेतत् ॥ ११२३ ॥ गृहमागतेन तेन राज्ञा सहसा-सद्यः श्रीमत्या-देव्याः पुरतः-अग्रतो निजावदातः-स्वकीयनिर्मलभावो निवेदितो-ज्ञापित, तदा तया नृप इदं-वक्ष्यमाणं भणितः, नृपायेदमुक्तमित्यर्थः ॥ ११२४ ॥ अन्येषामपि जीवानां पीडाकरणं कटुकं फलं यस्य तत् कटुकफलं भवति, यत्पुनर्मुनिजनस्य पीडाकरणं तद्दारुणो विपाको यस्य तद्दारुणविपाकं, भीतिभयङ्करफलप्रदमित्यर्थः ॥ ११२५ ॥

सो मुणिनाहो रन्ना तत्तो आणाविओ निआवास । नमिओ अ पूइओ खामिओ अ त निअयमवराहं॥
पुट्ठो अ सिरिमईए भयवं ! अन्नाणभावओ रन्ना । साहूण उवसग्ग काऊण कय महापावं ॥११३६॥
तप्पावघायणत्थं किंपि उवाय कहेह पसिऊण । जेण कएण एसो पावाओ छुट्टइ नरेसो ॥११३७॥
तो भणइ मुणिवरिंदो भद्दे ! पाव कय अणेण घण । ज गुणिणो उवघाए सव्वगुणाणपि उवघाओ॥
तहवि कयदुक्कयाणवि जियाण जइ होइ भावउल्लासो । ता होइ दुक्कयाण नासो सव्वाणवि खणेण ॥

ततः–तदनन्तर राज्ञा स मुनिनाथो निजं–स्वकीय आवास गृह आनायितश्च पुनर्नतो–नमस्कृतः पूजितो वस्त्रादिना च पुनस्स्व निजकमपराध क्षामित' ॥ ११३५ ॥ श्रीमतया पृष्टम्–हे भगवन् ! राज्ञाऽज्ञानभावत साधूनां उपसर्गं कृत्वा महापाप कृतं–उपार्जित ॥ ११३६ ॥ तस्य पापस्य घातनार्थं–विनाशार्थं प्रसद्य–प्रसन्नीभूय कमपि उपाय कथय, येन उपायेन कृतेन एष नरेशो–राजा पापात् छुटति ॥ ११३७ ॥ ततो मुनिवरेन्द्रो भणति–हे भद्रे ! अनेन–राज्ञा घनं–सान्द्रं पापं कृतम्, कथमित्याह–यद्–यस्मात्कारणात् गुणिनो–गुणवत पुरुषस्य उपघाते–विनाशे कृते सति सर्वेषामपि गुणानां उपघातो भवति ॥ ११३८ ॥ तथापि कृत दुष्कृत–पाप यैस्ते कृतदुष्कृतास्तेषामपि जीवानां यदि भावोल्लास –शुभपरिणामविशुद्धिर्भवति तत्–तर्हि सर्वेषामपि दुष्कृतानां क्षणेन नाशो भवति ॥ ११३९ ॥

कइवयदिणेसु पुणरवि तेण गवक्ख वट्टिएण कोवि मुणी। दिट्ठो मलमलिणतणू गोअरचरिअ परिभमतो ॥
तत्तो सहसा वीसारिऊण त सिरिमईइ सिक्खपि । सो राया दुट्ठमणो निअवठे एवमाइसइ ॥
रे रे एअ दुब नयर विट्टालयतमम्हाण। कठे घित्तूण डुअ निस्सारह नयरमज्झाओ ॥ ११३२ ॥
तेहिँ नरेहिँ तहच्चिअ कड्डिज्जतो पुराउ सो साहू । निअयगवक्खाठिआए दिट्ठो तीए सिरिमईए ॥
तो कुविआए तीए राया निब्भच्छिओ कडुगिराए । तो सोऽवि लज्जिओ भणइ देवि मे खमसु अवराह॥

कतिपयदिनेषु—कियद्दिवसेषु गतेषु पुनरपि गवाक्षस्थितेन तेन राज्ञा कोऽपि मुनिर्दृष्ट, कीदृशो ?—मलेन—रज प्रस्वेद-समुत्थेन मलिना तनुः—कायो यस्य स तथा, पुनः कीदृशः ?—गोचरचर्यां परिभ्रमन् ॥११३०॥ ततो मुनिदर्शनानन्तरं स राजा दुष्टं मनो यस्य स दुष्टमनाः सन् सहसा—सद्यः श्रीमत्याः शिक्षां विसार्य निजकपठान् एवं—वक्ष्यमाणप्रकारेण मादिशति—आज्ञां ददाति ॥ ११३१ ॥ रे रे सेवकाः ! अस्माकं नगरं ' विट्टालयन्त'न्ति अशुद्ध कुर्वं त एव द्रुम्भे कण्ठे गृहीत्वा द्रुत—शीघ्र नगरमध्यात् निस्सारयत—निष्कासयत ॥ ११३२ ॥ एव राज्ञा उक्ते सति तैर्नरैस्तथैव पुरान्निष्कास्यमान स साधु निजगवाक्षस्थितया—स्वगवाक्षस्थया तया श्रीमत्या देव्या दृष्टः ॥११३३॥ ततः कुपितया—क्रुद्धया तया राज्या कटुगिरा—कटुकवाण्या राजा निर्भर्त्सितः, ततः स राजापि लज्जितः सन् भणति—हे देवि ! ममापराध क्षमस्व, पुनर्नैव करिष्या-मीतिभावः ॥ ११३४ ॥

सो मुणिनाहो रन्ना तत्तो आणाविओ निआवासं । नमिओ अ पूइओ खामिओ अ त निअयमवराहं ॥
पुट्ठो अ सिरिमईए भयवं ! अन्नाणभावओ रन्ना । साहूण उवसग्ग काऊण कय महापावं ॥११३६॥
तप्पावघायणत्थ किंपि उवाय कहेह पसिऊण । जेण कएण एसो पावाओ छुट्टइ नरेसो ॥११३७॥
तो भणइ मुणिवरिंदो भद्दे ! पाव कय अणेण घण । ज गुणिणो उवघाए सव्वगुणाणपि उवघाओ ॥
तहवि कयदुक्कयाणवि जियाण जइ होइ भावउल्लासो । ता होइ दुक्कयाण नासो सव्वाणवि खणेण ॥

तत –तदनन्तर राज्ञा स मुनिनाथो निजं–स्वकीय आवास गृह आनायितश्च पुनर्नतो–नमस्कृत' पूजितो वस्त्रादिना च पुनस्व निजकमपराध क्षामित ॥ ११३५ ॥ श्रीमत्या पृष्टश्च–हे भगवन् ! राज्ञाऽज्ञानभावत साधूनां उपसर्गं कृत्वा महापाप कृत– उपार्जित ॥ ११३६ ॥ तस्य पापस्य घातनार्थ–विनाशार्थं प्रसद्य–प्रसन्नीभूय कमपि उपायं कथय, येन उपायेन कृतेन एष नरेशो–राजा पापात् छुटति ॥ ११३७ ॥ ततो मुनिवरेन्द्रो भणति–हे भद्रे ! अनेन–राज्ञा घन–सान्द्रं पाप कृतम्, कथ- मित्याह–यद्–यस्मात्कारणात् गुणिनो–गुणवत पुरुषस्य उपघाते–विनाशे कृते सति सर्वेषामपि गुणानां उपघातो भवति ॥ ११३८ ॥ तथापि कृत दुष्कृतं–पापं यैस्ते कृतदुष्कृतास्तेषामपि जीवानां यदि भावोल्लास –शुभपरिणामविशुद्धिर्भवति तत्–तर्हि सर्वेषामपि दुष्कृताना क्षणेन नाशो भवति ॥ ११३६ ॥

कइवयदिणेसु पुणरवि तेण गवक्ख चट्ठिएण कोवि मुणी। दिट्ठो मलमलिणतणू गोअरचरिअं परिभमंतो ॥
तत्तो सहसा वीसारिऊण त सिरिमईइ सिक्खंपि । सो राया ट्ठमणो निअवटे एवमाइसइ ॥
रे रे एअं दुव नयर विट्टालयतमम्हाण। कंठे घित्तूण ड्डुअ निस्सारह नयरमज्झाओ ॥ ११२२ ॥
तेहिँ नरेहिँ तहच्चिअ कड्डिज्जंतो पुराउ सो साहू । निअयगवक्खाठिआए दिट्ठो तीए सिरिमईए ॥
तो कुविआए तीए राया निब्भच्छिओ कडुगिराए । तो सोऽवि लज्जिओ भणइ देवि मे खमसु अवराहं॥

कतिपयदिनेषु–कियद्दिवसेषु गतेषु पुनरपि गवाक्षस्थितेन तेन राज्ञा कोऽपि मुनिर्दृष्ट, कीदृशो ?–मलेन–रज प्रस्वेद-समुद्भवेन मलिना तनुः–कायो यस्य स तथा, पुनः कीदृशः ?–गोचरचर्यां परिभ्रमन् ॥११२०॥ ततो मुनिदर्शनानन्तरं स राजा दुष्टं मनो यस्य स दुष्टमनाः सन् सहसा–सद्यः श्रीमत्याः शिक्षां विस्मार्य निजवपठान् एवं–वक्ष्यमाणप्रकारेण आदिशति–आज्ञां ददाति ॥ ११२१ ॥ रे रे सेवका ! अस्माकं नगर ‘विट्टालयन्त’न्ति अशुद्धं कुर्वन्त एत इम्प कण्ठे गृहीत्वा द्रुत–शीघ्रं नगरमध्यात् निस्सारयत–निष्कासयत ॥ ११२२ ॥ एवं राज्ञा उक्ते सति तैर्वपठैर्नरैस्तथैव पुराभिष्कास्यमान स साधु निजगवाक्षस्थितया–स्वगवाक्षस्थया तया श्रीमत्या देव्या दृष्टः ॥११२३॥ ततः कुपितया–क्रुद्धया तया राज्या कटुगिरा–कटुक-वाण्या राजा निर्भर्त्सितः, ततः स राजापि लज्जितः सन् भणति–हे देवि ! ममापराधं क्षमस्व, पुनर्नैव कर्त्ता मीतिभावः ॥ ११२४ ॥

ते अन्नदिणे रायाएसेण सीहनामनरवइणो । हणिऊण गाममिक्क जा वलिआ गोधण गहिउ ॥
ता पुट्ठि पत्तो सीहो बहुबलकलिओ पयण्डभुअदंडो । तेण कुविएण सव्वे धाडयपुरिसा हया तत्थ ॥
तेऽवि मरिऊण खत्तिअपुत्ता होऊण तरुणभावेऽवि । साहूवसग्गपावप्पसायओ कुट्ठिणो जाया ॥
जो सिरिकंतो राया पुन्नपभावेण सो तुम जाओ । सिरिमइजीवो मयणासुंदरि एसा मुणिअतत्ता ॥
ज पुव्वपि हु धम्मुज्जमपरा तुहहिइक्कतल्लिच्छा । आसि इमा त जाया एसा तुह मूलपट्टंमि ॥

अन्यस्मिन्दिने ते सप्तशतपुरुषा राज्ञ आदेशेन-आज्ञया सिंहनाम्नो नरपत -नृपस्य एक ग्रामं हत्वा गोधन गृहीत्वा यावत्पश्चाद्वलिता ॥ ११४५ ॥ तावद्बहुबलकलितो-बहुसैन्ययुक्तः पुनः प्रचण्डौ भुजदण्डौ यस्य स तथाभूतः सिंहो राजा तेषां पृष्ठे प्राप्तः, तेन सिंहेन कुपितेन सता तत्र प्रदेशे सर्वे धाटकपुरुषा हता -मारिता इत्यर्थ. ॥११४६॥ तेऽपि सप्तशतनृपसेवका मृत्वा क्षत्रियाणां पुत्रा भूत्वा तरुणभावेऽपि-यौवनेऽपि साधूपसर्गपापप्रसादात् कुष्ठिनो जाताः, साधूनामुपसर्गा' साधूपसर्गास्ते एव पापहेतुत्वात्पापं तस्य प्रसादात् कुष्ठोत्पत्तिरभूदित्यर्थः ॥ ११४७ ॥ यः श्रीकान्तो राजा स पुण्यप्रभावेण त्व जात , श्रीमत्या जीव एषा मदनसुंदरी जाता, कीदृशी एषा ?-मुणित-ज्ञात तत्त्व यया सा तथा ॥ ११४८ ॥ हु इति निश्चित इय यद्-यस्मात् कारणात् पूर्वमपि धर्मे य उद्यमः स एव परः-प्रधानः यस्या. सा धर्मोद्यमपरा, पुनस्तव यत् हित तत्र एका सा एव लिप्सा यस्याः सा एवम्भूता आसीत् तत्-तस्मात्कारणात् एषा तव मूलपट्टे जाता, मूलपट्टराज्ञी अभूदित्यर्थ. ॥ ११४९ ॥

भावस्सुद्धासकए अरिहाइपसिद्धसिद्धचक्कस्स । आराहण मुणीहिं उवइट्ठं भव्वजीवाण ॥ ११९० ॥
ता जइ करेइ सम्मं एयस्साराहणं नरवरोऽवि । तो छुट्टइ सयलाण पावाण नत्थि संदेहो ॥११९१॥
तो सिक्खिऊण पूआतवोविहाणाइअं विहिं राया । भत्तीइ सिद्धचक्कं आराहइ सिरिमईसमेओ ॥
पुन्ने अ तवोकम्मे रन्ना मंडाविए अ उज्जमणे । सिरिमइसहीहिं अट्ठहिं विहिआ अणुमोअणा तस्स॥
सत्तहिं सएहिं तेहिं सेवयपुरिसेहिं तस्स नरवइणो । दट्ठूण धम्मकरणं पसंसिअं किंपि खणमित्तं ॥

भावस्य उल्लासकृते-विशुद्धिनिमित्तं अर्हदादिभिःपदैः प्रसिद्धसिद्धचक्रस्य आराधनं भव्यजीवेभ्यो मुनिभिः उपदिष्टम्॥११४०॥ तत्-तस्मात्कारणात् नरवरोऽपि-राजापि यदि सम्यक् एतस्य-श्रीसिद्धचक्रस्य आराधनं करोति तत्-तर्हि सकलेभ्य -सर्वेभ्य पापेभ्यश्छुटति, अत्र सन्देहो नास्ति ॥ ११४१ ॥ ततो राजा पूजायास्तपसश्च यद्विधान-करणं तदादिकं विधिं शिक्षयित्वा श्रीमत्या राज्या समेतः-सहितो भक्त्या सिद्धचक्रं आराधयति ॥११४२॥ च पुनस्तप कर्मणि-तपःक्रियायां पूर्णे सति राज्ञा उद्यापने च मण्डिते सति अष्टभि श्रीमत्याः सखीभिस्तस्य-उद्यापनयुक्ततपसोऽनुमोदना-प्रशंसा विहिता-कृता ॥११४३॥ तै सप्तभिः शतैः सेवकपुरुषैः तस्य नरपतेः-राज्ञो धर्मकरणं-प्रागुक्तरीत्या धर्मकार्यकरणं दृष्ट्वा क्षणमात्रं किमपि प्रशंसितम्-अस्माकं स्वामी सम्यक्कार्यं कुरुते इत्यादिका प्रशंसा कृतेत्यर्थः ॥ ११४४ ॥

ते अन्नदिणे रायाएसेण सीहनामनरवइणो । हणिऊण गाममिक्क जा वलिआ गोधणं गहिउं ॥
ता पुट्ठि पत्तो सीहो बहुबलकलिओ पयंडभुअदंडो । तेण कुविएण सव्वे धाडयपुरिसा हया तत्थ ॥
तेऽवि मरिऊण खत्तिअपुत्ता होऊण तरुणभावेऽवि । साहूवसग्गपावप्पसायओ कुट्ठिणो जाया ॥
जो सिरिकंतो राया पुन्नपभावेण सो तुमं जाओ । सिरिमइजीवो मयणासुंदरि एसा मुणिअतत्ता ॥
जं पुव्वंपि हु धम्मुज्जमपरा तुहहिइक्कतल्लिच्छा । आसि इमा तं जाया एसा तुह मूलपट्टंमि ॥

अन्यस्मिन्दिने ते सप्तशतपुरुषा राज्ञ आदेशेन-आज्ञया सिंहनाम्नो नरपते -नृपस्य एकं ग्रामं हत्वा गोधनं गृहीत्वा यावत्पश्चाद्वलिता ॥ ११४५ ॥ तावद्बहुबलकलितो-बहुसैन्ययुक्तः पुनः प्रचण्डौ भुजदण्डौ यस्य स तथाभूतः सिंहो राजा तेषां पृष्ठे प्राप्तः, तेन सिंहेन कुपितेन सता तत्र प्रदेशे सर्वे धाटकपुरुषा हताः-मारिता इत्यर्थः ॥११४६॥ तेऽपि सप्तशतनृपसेवका मृत्वा क्षत्रियाणां पुत्रा भूत्वा तरुणभावेऽपि-यौवनेऽपि साधूपसर्गपापप्रसादात् कुष्ठिनो जाताः, साधूनामुपसर्गाः साधूपसर्गास्ते एव पापहेतुत्वात्पापं तस्य प्रसादात् कुष्ठोत्पत्तिरभूदित्यर्थः ॥ ११४७ ॥ यः श्रीकान्तो राजा स पुण्यप्रभावेण त्वं जातः, श्रीमत्या जीव एषा मदनसुंदरी जाता, कीदृशी एषा ?-मुणित-ज्ञातं तत्त्वं यया सा तथा ॥ ११४८ ॥ हु इति निश्चितं इयं यत्-यस्मात् कारणात् पूर्वमपि धर्मे य उद्यमः स एव परः-प्रधानः यस्याः सा धर्मोद्यमपरा, पुनस्तव यत् हितं तत्र एका सा एव लिप्सा यस्याः सा एवम्भूता आसीत् तत्-तस्मात्कारणात् एषा तव मूलपट्टे जाता, मूलपट्टराज्ञी अभूदित्यर्थः ॥ ११४९ ॥

भावस्सुल्लासकए अरिहाइपसिद्धसिद्धचक्कस्स । आराहण मुणीहिं उवइट्ठ भव्वजीवाण ॥ ११४० ॥
ता जइ करेइ सम्मं एयस्साराहणं नरवरोऽवि । तो छुट्टइ सयलाण पावाण नत्थि सदेहो ॥११४१॥
तो सिक्खिऊण पूआतवोविहाणाइअ विहिं राया । भत्तीइ सिद्धचक्क आराहइ सिरिमइसमेओ ॥
पुन्ने अ तवोकम्मे रन्ना मडाविए अ उज्जमणे । सिरिमइसहीहि अट्ठहि विहिआ अणुमोअणा तस्स ॥
सत्तहिं सएहिं तेहिं सेवयपुरिसेहिं तस्स नरवइणो । दट्ठूण धम्मकरण पसासिअ किंपि खणमित्त ॥

भावस्य उल्लासकृते-विशुद्धिनिमित्त अर्हदादिभिःपदै प्रसिद्धसिद्धचक्रस्य आराधनं भव्यजीवेभ्यो मुनिभिः उपदिष्टम् ॥११४०॥ तत्-तस्मात्कारणात् नरवरोऽपि-राजापि यदि सम्यक् एतस्य-श्रीसिद्धचक्रस्य आराधन करोति तत्-तर्हि सकलेभ्य -सर्वेभ्य पापेभ्यश्छुटति, अत्र सन्देहो नास्ति ॥ ११४१ ॥ ततो राजा पूजायास्तपसश्च यद्विधान-करण तदादिक विधि शिक्षयित्वा श्रीमत्या राज्ञ्या समेत-सहितो भक्त्या सिद्धचक्रं आराधयति ॥११४२॥ च पुनस्तप.कर्मणि-तप क्रियायां पूर्णे सति राज्ञ उद्यापने च मण्डिते सति अष्टभि श्रीमत्या सखीभिस्तस्य-उद्यापनयुक्ततपसोऽनुमोदना-प्रशसा विहिता-कृता ॥११४३॥ तै सप्तभिः शतै सेवकपुरुषै तस्य नरपतेः-राज्ञो धर्मकरण-प्रागुक्तनीत्या धर्मकार्यकरण दृष्ट्वा क्षणमात्र किमपि प्रशसितम् अस्माक स्वामी सम्यक्कार्यं कुरुते इत्यादिका प्रशसा कृतेत्यर्थः ॥ ११४४ ॥

ते अन्नदिणे रायाएसेण सीहनामनरवइणो । हणिऊण गाममिक्क जा वलिआ गोधणं गहिउं ॥
ता पुट्ठि पत्तो सीहो बहुबलकलिओ पयंडभुअदंडो । तेण कुविएण सव्वे धाडयपुरिसा हया तत्थ ॥
तेऽवि मरिऊण खत्तिअपुत्ता होऊण तरुणभावेऽवि । साहूवसग्गपावप्पसायओ कुट्ठिणो जाया ॥
जो सिरिकंतो राया पुन्नपभावेण सो तुमं जाओ । सिरिमइजीवो मयणासुंदरि एसा मुणिअतत्ता ॥
जं पुव्वंपि हु धम्मुज्जमपरा तुहहिइक्कतल्लिच्छा । आसि इमा तं जाया एसा तुह मूलपट्टंमि ॥

अन्यस्मिन्दिने ते सप्तशतपुरुषा राज्ञ आदेशेन-आज्ञया सिंहनाम्नो नरपतेः-नृपस्य एकं ग्रामं हत्वा गोधनं गृहीत्वा यावत्प्रत्यावलिताः ॥ ११४५ ॥ तावद्बहुबलकलितो-बहुसैन्ययुक्तः पुनः प्रचण्डौ भुजदण्डौ यस्य स तथाभूतः सिंहो राजा तेषां पृष्ठे प्राप्तः, तेन सिंहेन कुपितेन सता तत्र प्रदेशे सर्वे धाटकपुरुषा हताः-मारिता इत्यर्थः ॥११४६॥ तेऽपि सप्तशतनृपसेवका मृत्वा क्षत्रियाणां पुत्रा भूत्वा तरुणभावेऽपि-यौवनेऽपि साधूपसर्गपापप्रसादात् कुष्ठिनो जाताः, साधूनामुपसर्गः साधूपसर्गस्तं एव पापहेतुत्वात्पापं तस्य प्रसादात् कुष्ठोत्पत्तिरभूदित्यर्थः ॥ ११४७ ॥ यः श्रीकान्तो राजा स पुण्यप्रभावेण त्वं जातः, श्रीमत्या जीव एषा मदनसुंदरी जाता, कीदृशी एषा ?-मुणित-ज्ञातं तत्त्वं यया सा तथा ॥ ११४८ ॥ हु इति निश्चितं इयं यत्-यस्मात् कारणात् पूर्वमपि धर्मे य उद्यमः स एव परः-प्रधानः यस्याः सा धर्मोद्यमपरा, पुनस्तव यत् हितं तत्र एका सा एव लिप्सा यस्याः सा एवम्भूता आसीत् तत्-तस्मात्कारणात् एषा तव मूलपट्टे जाता, मूलपट्टराज्ञी बभूवित्यर्थः ॥ ११४९ ॥

भावस्सुल्लासकए अरिहाइपसिद्धसिद्धचक्कस्स । आराहण मुणीहिं उवइट्ठं भव्वजीवाण ॥ ११४० ॥
ता जइ करेइ सम्म एयस्साराहणं नरवरोऽवि । तो छुट्टइ सयलाण पावाण नत्थि सदेहो ॥११४१॥
तो सिक्खिऊण पूआतवोविहाणाइअ विहिं राया । भत्तीइ सिद्धचक्क आराहइ सिरिमइसमेओ ॥
पुन्ने अ तवोकम्मे रन्ना मडाविए अ उज्जमणे । सिरिमइसहीहिं अट्ठहिं विहिआ अणुमोअणा तस्स॥
सत्तहिं सएहिं तेहिं सेवयपुरिसेहिं तस्स नरवइणो । दट्ठूण धम्मकरणं पसासिअं किंपि खणमित्त ॥

भावस्य उल्लासकृते-विशुद्धिनिमित्तं अर्हदादिभि पदैः प्रसिद्धसिद्धचक्रस्य आराधनं भव्यजीवेभ्यो मुनिभिः उपदिष्टम्॥११४०॥ तत्-तस्मात्कारणात् नरवरोऽपि-राजापि यदि सम्यक् एतस्य-श्रीसिद्धचक्रस्य आराधन करोति तत्-तर्हि सकलेभ्य -सर्वेभ्य पापेभ्यश्छुट्यति, अत्र सन्देहो नास्ति ॥ ११४१ ॥ ततो राजा पूजायास्तपसश्च यद्विधान-करण तदादिक विधि शिक्षयित्वा श्रीमत्या राज्ञ्या समेत-सहितो भक्त्या सिद्धचक्रं आराधयति ॥११४२॥ च पुनस्तपःकर्मणि-तप क्रियायां पूर्णे सति राज्ञ उद्यापने च मण्डिते सति अष्टभिः श्रीमत्या सखीभिस्तस्य-उद्यापनयुक्ततपसोऽनुमोदना-प्रशंसा विहिता-कृता ॥११४३॥ तैः सप्तभिः शतैः सेवकपुरुषैः तस्य नरपतेः-राज्ञो धर्मकरणं-प्रागुक्तनीत्या धर्मकार्यकरणं दृष्ट्वा क्षणमात्र किमपि प्रशंसितम्-अस्माक स्वामी सम्यक्कार्यं कुरुते इत्यादिका प्रशंसा कृतेत्यर्थः ॥ ११४४ ॥

सीहो य घायविहुरो पालित्ता मासमणसणं दिक्ख । जाओऽहमजिअसेणो बालत्ते तुज्झ रज्जहरो ॥
तेण चिअ वेरेण बद्धोऽह राणएहिं एएहिं । पुव्वकयब्भासेण जाओ मे चरणपरिणामो ॥ ११५७ ॥
सुहपरिणामेण मए जाइ सरिऊण सजमो गहिओ । सोऽह उप्पन्नावहिनाणो नरनाह ! इह पत्तो ॥
एव ज जेण जहा जारिस कम्म कय सुह असुह । त तस्स तहा तारिसमुवट्ठिअं मुणसु इत्थ भवे ॥
त सोउण सिरिपालनरवरो चिंतए सचित्तमि । अहह अहो केरिसय एअ भवनाडयसरूवं ? ॥

सिहम नृपो घात -प्रहारविधुर.-पीडितः सन् एकं मासं यावत् अनशनां-अनशनयुक्तां दीक्षां पालित्वाऽह्म अजितसेनो जातोऽस्मि, कीदृशोऽह ?-बालत्वे तव राज्यहर ॥ ११५६ ॥ तेनैव वैरेण एतै राणाख्यैः अहं बद्धो-निगडितः, पूर्वं कृतो योऽभ्यासो-दीक्षाभ्यासस्तेन मे-मम चरणपरिणाम -चारित्रपरिणामो जात ॥ ११५७ ॥ मया शुभपरिणामेन जातिं-पूर्वजन्म स्मृत्वा सयमो गृहीत, हे नरनाथ !-हे राजन् ! उत्पन्नमवधिज्ञान यस्य स तथाभूत सोऽहं इह प्राप्त ॥ ११५८ ॥ एवं-अमुना प्रकारेण येन प्राणिना यत् शुभं अशुभं यादृशं कर्म यथा कृत तस्य प्राणिनस्तथादृश कर्म अत्र-अस्मिन् भवे तथा-तेन प्रकारेण उपस्थितं-समीपस्थ मुण-जानीहि ॥ ११५९ ॥ श्रीपालो नाम नरवरो-राजा तन्मुनिवचन श्रुत्वा स्वचित्ते चिन्तयति-अहहेतिखेदे अहो इत्याश्चर्ये एतद्भवनाटकस्य स्वरूप कीदृश वर्तते ?, अतिविषमामितिभाव ॥ ११६० ॥

तुमए जहा मुणीण विहिआ आसायणा तहा चेव । कुट्ठित्त जलमज्जणमवि डुवच्च च सपत्त ॥
ज च तए तीए सिरिमईइ वयणेण सिद्धचक्कस्स । आराहणा कया त मयणावयणा सुह पत्तो ॥
जो एसो वित्थारो रिद्धिविसेसस्स तुज्झ सजाओ । सो सयलोऽवि पसाओ नायव्वो सिद्धचक्कस्स ॥
सिरिमइसहीहिं जा हि विहिआ अणुमोअणा तया तुम्ह । ताओ इमाओ जायाओ तुज्झ लहुपट्टदेवीओ ॥
एआसु अट्ठमीए ससवत्तीसमुह कहियमासी । खज्जसु सप्पेण तुमति तेण कम्मेण सा दट्ठा ॥
धम्मपससाकरणेण तत्थ सत्तहिं सयाहिं सुहकम्म । ज विहिअ तेण इमे गयरोगा राणया जाया ॥

त्वया यथा–येन प्रकारेण मुनीनां आशातना–विराधना विहिता–कृता तथैव–तेनैव प्रकारेण त्वया इहभवे कुष्ठित्व ततो जलमज्जनं–समुद्रजले पतन च पुन कुम्भत्वमपि सम्प्राप्तम् ॥११५०॥ च पुनर्यत्त्वया तस्या श्रीमत्या वचनेन सिद्धचक्रस्याराधना कृता तन्मदनसुन्दरीवचनात् इह सुख प्राप्त ॥११५१॥ य एष तव ऋद्धिविशेषस्य विस्तार सञ्जातः स सकलोऽपि–समस्तोऽपि सिद्धचक्रस्य प्रसादः–अनुग्रहो ज्ञातव्य ॥११५२॥ याभि श्रीमत्याः सखीभिस्तदा युवयोरनुमोदना विहिता–कृता ता इमास्तव लघुपट्टदेव्यो जाता ॥ ११५३ ॥ एतासु मध्ये अष्टम्या राज्या प्राग्भवे स्वसपत्न्या सम्मुखं सर्पेण त्व खाद्यस्वेति कथितमासीत् तेन कर्मणा इह सा सर्पेण दष्टा ॥ ११५४ ॥ धर्मस्य प्रशंसाकरणेन तत्र–प्राग्भवे सप्तभि शतै सेवकैर्यत् शुभकर्म विहितं तेन शुभकर्मणा गतो रोगो येषां ते गतरोगा इमे राजात्मजा जाता ॥ ११५५ ॥

सिरिपालोऽवि हु राया भत्तीए पिअयमाहिं सजुत्तो। पुव्वुत्तविहाणेण आराहइ सिद्धवरचक्क ॥११६६
अह मयणसुंदरी भणइ नाह! जइआ तए कया पुव्विं। सिरिसिद्धचक्कपूआ तइआ नो आसि भूरि धण॥
इण्हिं च तुम्ह एसा रज्जसिरी अत्थि वित्थरसमेआ। ता कुणह वित्थरेण नवपयपूआ जहिच्छाए ॥
त सोऊण अइगरुअभत्तिसत्तीहिं सजुओ राया। अरिहंताइपयाण करेइ आराहणा एव ॥ ११६९ ॥
नव चेईहरपडिमा जिन्नुद्धाराइ विहिविहाणेण। नाणाविहपूआहिं अरिहंताराहणा कुणई ॥११७०॥

श्रीपालोऽपि राजा प्रियतमाभि —नवराज्ञीभिः सयुक्तः—सहितो भक्त्या पूर्वोक्तविधानेन—पूर्वभणितविधिना सिद्धवर-चक्र आराधयति ॥ १२६६ ॥ अथ मदनसुन्दरी नृप भणति—हे नाथ! यदा त्वया पूर्वं श्रीसिद्धचक्रस्य पूजा कृता तदा भूरि—प्रचुर धनं नो आसीत् ॥ ११६७ ॥ इदानीं च—साम्प्रत पुनर्युष्माक एषा राज्यश्रीः—राज्यलक्ष्मीर्विस्तारेण समेता—युक्ता अस्ति, तत्—तस्मात् कारणात् यथेच्छया विस्तारेण नवपदपूजां कुरुत ॥ ११६८ ॥ तद्राज्ञीवचन श्रुत्वाऽतिगुरुके—अतिमहत्यौ ये भक्तिशक्ती (क्ती) ताभ्यां सयुत०—सहितो राजा एवं—वक्ष्यमाणप्रकारेण अर्हदादिपदाना आराधनां करोति ॥ ११६९ ॥ तथाहि—नव चैत्यगृहाणि—नवसङ्ख्यानि जिनगृहाणि नव प्रतिमाः नव जीर्णोद्धारा इत्यादिना विधिना विधानं—निर्मापण तेन, तथा नानाविधा—अनेकप्रकारा याः पूजास्ताभिरर्हत — अर्हत्पदस्याराधनां करोति ॥ ११७० ॥

पभणेइ अ मे भयव ! संपइ चरणस्स नत्थि सामत्थं । तो काऊण पसायं मह उचिअं दिसह करणिज्जं॥
तो भणइ मुणिवरिंदो नरवर! जाणेसु निच्छयं एयं । भोगफलकम्मवसओ इत्थ भवे नत्थि तुह चरणं॥
किंतु तुम एआइं अरिहंताई नवावि सुपयाइं । आराहंतो सम्मं नवमं सग्गंपि पाविहिसि ॥११६३॥
तत्तोवि उत्तरुत्तरनरसुरसुक्खाइं अणुहवंतो अ । नवमे भवम्मि मुक्खं सासयसुक्खं धुवं लहसि ॥
तं सोऊण राया साणंदो निअगिहम्मि संपत्तो । मुणिनाहोऽवि अ तत्तो पत्तो अन्नत्थ विहरंतो ॥

च पुनः नृपः प्रभणति–कथयति, हे–भगवन् ! सम्प्रति–अधुना मे–मम चरणस्य–चारित्रस्य सामर्थ्यं नास्ति, तत्–तस्मात्कारणात् प्रसादं कृत्वा ममोचितं–मम योग्यं करणीयं–कर्तव्यं दिश–कथय ॥११६१॥ ततो मुनिवरेन्द्रो भणति–हे नरवर ! एतं निश्चयं जानीष्व भोगः फलं येषां तानि भोगफलानि यानि कर्माणि तेषां वशतोऽत्र–अस्मिन् भवे तव चरणं–चारित्रं नास्ति ॥ ११६२ । किन्तु त्वं एतानि अर्हदादीनि नवापि सुष्ठु शोभनानि पदानि सम्यक् आराधयन् नवमं स्वर्गं–आनताख्यमपि प्राप्स्यसि ॥११६३॥ च पुनः ततः–तस्मादपि देवलोकात् उत्तरोत्तराणि–अधिकाधिकानि नरसुरसुखानि अनुभवन्–भुञ्जानस्त्वं नवमे भवे ध्रुवं–निश्चितं मोक्षं लभसे–प्राप्स्यसीत्यर्थः, कीदृशं मोक्षं ?–शाश्वतं–नित्यं सौख्यं यत्र स तथा तं ॥ ११६४ ॥ तन्मुनिवचनं श्रुत्वा राजा श्रीपालः सानन्दः–आनन्दसहितः सन् निजगृहे सम्प्राप्तः, ततः–तदनन्तरं मुनिनाथो–मुनीन्द्रोऽपि विचरन् अन्यत्र–अन्यस्मिन्नगरादौ प्राप्तः ॥ ११६५ ॥

सिरिपालोऽवि हु राया भत्तीए पिअयमाहिं सजुत्तो । पुव्वुत्तविहाणेणं आराहइ सिद्धवरचक्क ॥११६६

अह मयणसुदरी भणइ नाह ! जइआ तए कया पुव्विं । सिरिसिद्धचक्कपूआ तइआ नो आसि भूरि धण॥

इण्हिं च तुम्ह एसा रज्जसिरी अत्थि वित्थरसमेआ । ता कुणह वित्थरेण नवपयपूआ जहिच्छाए ॥

त सोऊण अइगरुअभत्तिसत्तीहिं सजुओ राया । अरिहंताइपयाण करेइ आराहण एव ॥ ११६९ ॥

नव चेईहरपडिमा जिन्नुद्धाराइ विहिविहाणेण । नाणाविहपूआहिं अरिहंताराहण कुणई ॥११७०॥

श्रीपालोऽपि राजा प्रियतमाभि —नवराज्ञीभि सयुक्त:–सहितो भक्त्या पूर्वोक्तविधानेन–पूर्वमाख्यातविधिना सिद्धवरचक्र आराधयति ॥ १२६६ ॥ अथ मदनसुन्दरी नृप भणति–हे नाथ ! यदा त्वया पूर्वं श्रीसिद्धचक्रस्य पूजा कृता तदा भूरि–प्रचुर धनं नो आसीत् ॥ ११६७ ॥ इदानीं च–साम्प्रत पुनर्युष्माक एषा राज्यश्री –राज्यलक्ष्मीर्विस्तारेण समेता–युक्ता अस्ति, तत्–तस्मात् कारणात् यथेच्छया विस्तारेण नवपदपूजां कुरुत ॥ ११६८ ॥ तद्राज्ञीवचन श्रुत्वाऽतिगुरुके–अतिमहत्यौ ये भक्तिशक्ती (भक्ती) ताभ्यां सयुत.–सहितो राजा एवं–वक्ष्यमाणप्रकारेण अर्हदादिपदाना आराधनां करोति ॥ ११६९ ॥ तथाहि–नव चैत्यगृहाणि–नवसङ्ख्यानि जिनगृहाणि नव प्रतिमा: नव जीर्णोद्धारा इत्यादिना विधिना विधानं–निर्मापण तेन, तथा नानाविधा–अनेकप्रकारा या: पूजास्ताभिरर्हत.– अर्हत्पदस्याराधनां करोति ॥ ११७० ॥

पभणेइ अ मे भयव ! सपइ चरणस्स नत्थि सामत्थ । तो काऊण पसायं मह उचिअं दिसह करणिज्ज॥
तो भणइ मुणिवरिंदो नरवर! जाणेसु निच्छय एय । भोगफलकम्मवसओ इत्थ भवे नत्थि तुह चरण॥
किंतु तुम एआइ अरिहताई नवावि सुपयाइ । आराहतो सम्म नवम सग्गपि पाविहिसि ॥११६३॥
तत्तोवि उत्तरुत्तरनरसुरसुक्खाइ अणुहवंतो अ । नवमे भवमि मुक्खं सासयसुक्ख धुव लहसि ॥
त सोऊण राया साणदो निअगिहमि सपत्तो । मुणिनाहोऽवि अ तत्तो पत्तो अन्नत्थ विहरतो ॥

स पुन नृप प्रभणति–कथयति, हे–भगवन् ! सम्प्रति–अधुना मे–मम चरणस्य–चारित्रस्य सामर्थ्यं नास्ति, तत्–तस्मात्कारणात् प्रसाद कृत्वा ममोचितं–मम योग्यं करणीय–कर्त्तव्यं दिश–कथय ॥'' ११६१॥ ततो मुनिवरेन्द्रो भणति–हे नरवर! एत निश्चयं जानीष्व भोगः फलं येषां तानि भोगफलानि यानि कर्माणि तेषां वशतोऽत्र–अस्मिन् भवे तव चरण–चारित्र नास्ति ॥ ११६२ । किन्तु त्वं एतानि अर्हदादीनि नवापि सुष्ठु शोभनानि पदानि सम्यक् आराधयन् नवम स्वर्गं–आनतास्यमपि प्राप्स्यसि ॥११६३॥ स पुनः तत –तस्मादपि देवलोकात् उत्तरोत्तराणि–अधिकाधिकानि नरसुरसुखानि अनुभवन्–अज्ञानस्त्व नवमे भवे ध्रुवं–निश्चितं मोक्षं लभसे–प्राप्स्यसीत्यर्थः, कीदृशं मोक्ष ?–शाश्वत–नित्यं सौख्य यत्र स तथा त ॥ ११६४ ॥ तन्मुनिवचन श्रुत्वा राजा श्रीपालः सानन्द.–आनन्दसहितः सन् निजगृहे सम्प्राप्तः, ततः–तदनन्तर मुनिनाथो–मुनीन्द्रोऽपि विचरन् अन्यत्र–अन्यस्मिन्नगरादौ प्राप्तः ॥ ११६५ ॥

सिरिपालोऽवि हु राया भत्तीए पिअयमाहिँ सजुत्तो । पुव्वुत्तविहाणेण आराहइ सिद्धवरचक्कं ॥११६६
अह मयणसुंदरी भणइ नाह ! जइआ तए कया पुव्विं । सिरिसिद्धचक्कपूआ तइआ नो आसि भूरि धणं॥
इण्हि च तुम्ह एसा रज्जसिरी अत्थि वित्थरसमेआ । ता कुणह वित्थरेण नवपयपूअं जहिच्छाए ॥
तं सोऊण अइगरुअभत्तिसत्तीहिँ सजुओ राया । अरिहंताइपयाणं करेइ आराहणं एवं ॥ ११६९ ॥
नव चेईहरपडिमा जिन्नुद्धाराइ विहिविहाणेण । नाणाविहपूआहिँ अरिहंताराहणं कुणई ॥११७०॥

श्रीपालोऽपि राजा प्रियतमाभि —नवराज्ञीभि संयुक्तः—सहितो भक्त्या पूर्वोक्तविधानेन—पूर्वभणितविधिना सिद्धवरचक्रं आराधयति ॥ १२६६ ॥ अथ मदनसुन्दरी नृपं भणति—हे नाथ ! यदा त्वया पूर्वं श्रीसिद्धचक्रस्य पूजा कृता तदा भूरि—प्रचुरं धनं नो आसीत् ॥ ११६७ ॥ इदानीं च—साम्प्रतं पुनर्युष्माकं एषा राज्यश्रीः—राज्यलक्ष्मीर्विस्तारेण समेता—युक्ता अस्ति, तत्—तस्मात् कारणात् यथेच्छया विस्तारेण नवपदपूजां कुरुत ॥ ११६८ ॥ तद्राज्ञीवचनं श्रुत्वाऽतिगुरुके-अतिमहत्यौ ये भक्तिशक्ती (क्ती) ताभ्यां संयुत.—सहितो राजा एवं—वक्ष्यमाणप्रकारेण अर्हदादिपदाना आराधनां करोति ॥ ११६६ ॥ तथाहि—नव चैत्यगृहाणि—नवसङ्ख्यानि जिनगृहाणि नव प्रतिमा नव जीर्णोद्धारा इत्यादिना विधिना विधानं—निर्मापणं तेन, तथा नानाविधा—अनेकप्रकारा याः पूजास्ताभिरर्हतं — अर्हत्पदस्याराधनां करोति ॥ ११७० ॥

पभणेइ अ मे भयव ! सपइ चरणस्स नत्थि सामत्थ । तो काऊण पसाय मह उचिअ दिसह करणिज्ज॥
तो भणइ मुणिवरिंदो नरवर! जाणेसु निच्छय एय । भोगफलकम्मवसओ इत्थ भवे नत्थि तुह चरण॥
किंतु तुम एआइ अरिहताई नवावि सुपयाइ । आराहतो सम्म नवम सग्गपि पाविहिसि ॥११६३॥
तत्तोवि उत्तरुत्तरनरसुरसुक्खाइ अणुहवंतो अ । नवमे भवमि मुक्ख सासयसुक्ख धुव लहसि ॥
त सोऊण राया साणदो निअगिहमि संपत्तो । मुणिनाहोऽवि अ तत्तो पत्तो अन्नत्थ विहरतो ॥

स पुन नृप' प्रभणति–कथयति, हे–भगवन् ! सम्प्रति–अधुना मे–मम चरणस्य–चारित्रस्य सामर्थ्यं नास्ति, तत्–तस्मात्कारणात् प्रसादं कृत्वा ममोचितं–मम योग्यं करणीय–कर्त्तव्यं दिश–कथय ॥' ११६१॥ ततो मुनिवरेन्द्रो भणति–हे नरवर! एत निश्चयं जानीष्व भोगः फलं येषां तानि भोगफलानि यानि कर्माणि तेषां वशतोऽत्र–अस्मिन् भवे तव चरण–चारित्र नास्ति ॥ ११६२ । किन्तु त्वं एतानि अर्हदादीनि नवापि सुष्ठु शोभनानि पदानि सम्यक् आराधयन् नवम स्वर्ग–आनतास्यमपि प्राप्स्यसि ॥११६३॥' स पुनः ततः–तस्मादपि देवलोकात् उत्तरोत्तराणि–अधिकाधिकानि नरसुरसुखानि अनुभवन्–भुञ्जानस्त्व नवमे भवे ध्रुव–निश्चित मोक्षं लभसे–प्राप्स्यसीत्यर्थः, कीदृशं मोक्ष ?–शाश्वत–नित्य सौख्य यत्र स तथा त ॥ ११६४ ॥ तन्मुनिवचन श्रुत्वा राजा श्रीपाल सानन्द,–आनन्दसहित सन् निजगृहे सम्प्राप्तः, ततः–तदनन्तर मुनिनाथो–मुनीन्द्रोऽपि विचरन् अन्यत्र–अन्यस्मिन्नगरादौ प्राप्तः ॥ ११६५ ॥

सिद्धतसत्थपुत्थयकारावणरक्खणच्चणाईहिं । सज्झायभावणाइहिं नाणपयाराहणं कुणइ ॥ ११७६ ॥
वयनिअमपालणेण विरइक्कपराण भत्तिकरणेण । जइधम्मणुरागेण चारित्ताराहणं कुणइ ॥ ११७७ ॥
आससाइविरहिअ बाहिरब्भिंतर तवोकम्म । जहसत्तीइ कुणतो सुद्धतवाराहणं कुणइ ॥ ११७८ ॥
एमेयाइ उत्तमपयाइ सो दव्वभावभत्तीए । आराहतो सिरिसिद्धचक्कमच्चेइ निच्चंपि ॥ ११७९ ॥

सिद्धान्तशास्त्राणां ये पुस्तकास्तेषां कारण-निर्मापणं पुनर्यत्नतो रक्षणं तथाऽर्चनं-धूपचन्दनवस्त्रादिभिः पूजनं इत्यादि-स्तथा स्वाध्यायेन-वाचनादिपञ्चप्रकारेण तथा भावनाभिर्ज्ञानस्वरूपचिन्तनरूपाभिर्ज्ञानपदस्याराधनां करोति ॥ ११७६ ॥ व्रतानां-अणुव्रतानां नियमानां-अभिग्रहादीनां पालनेन तथा विरति-सावद्यव्यापारनिवृत्तिः सा एव एका परा-प्रकृष्टा येषां ते तेषां विरत्येकपराणां साध्वादीनां भक्तिकरणेन तथा यतिधर्मे-दशविधसाधुधर्मेऽनुरागेण चारित्रपदस्याराधनां करोति ॥ ११७७ ॥ आशंसा-इहपरभवसुखादिवाञ्छा तया विशेषेण रहितं बाह्यं उपवासादि आभ्यन्तरं च प्रायश्चित्तादि तपःकर्म यथाशक्ति-स्वशक्त्यनुसारेण कुर्वन् शुद्धतपसो-निर्मलतपस आराधनां करोति ॥ ११७८ ॥ एवं-अमुना प्रकारेण स श्रीपाल एतानि उत्तमपदानि द्रव्यभावभक्त्या आराधयन् नित्य-निरन्तरमपि श्रीसिद्धचक्रमर्चयति-पूजयति ॥ ११७९ ॥

सिद्धाणवि पडिमाण काराअणपूअणापणामेहिं । तग्गयमणझाणेण सिद्धपयाराहण कुणइ ॥११७१॥
भत्तिबहुमाणवदणवेआवच्चाइकज्जमुज्जुत्तो । सुस्सूसणविहिनिउणो आयरिआराहण कुणइ॥ ११७२ ॥
ठाणासणवसणाई पढतपाढंतयाण पूरतो । दुविहभत्ति कुणतो उवज्झायाराहण कुणइ ॥ ११७३ ॥
अभिगमणवदणनमंसणेहिं असणाइवसहिदाणेहिं । वेआवच्चाईहिं अ साहुपयाराहण कुणई ॥
रहजत्ताकरणेण सुतित्थजत्ताहिं सघपूआहिं । सासणपभावणाहिं सुदसणाराहण कुणइ ॥११७५॥

सिद्धानामपि या प्रतिमा तासां कारण-निर्मापण पूजना-अर्चना प्रणामो-नमस्कारस्तैस्तथा तद्गतेन-तेषु सिद्धेषु गतेन मनसा यत् ध्यान तेन सिद्धपदस्याराधना करोति ॥११७१॥ भक्ति-मनसि निर्भरा प्रीतिर्बहुमानो-बाह्यभक्ति वन्दनवैयावृत्त्ये प्रसिद्धे इत्यादिकार्येषु युक्त-उद्यतस्तथा शुश्रूषणस्य-सेवनस्य यो विधिस्तत्र निपुणो-दक्ष एवम्भूत सन् आचार्यपदाराधनां करोति ॥११७२॥ पठतां पाठयतां च साध्वादीनां स्थानाशनवसनादि-निवासस्थानभोजनवस्त्रादि पूरयन् द्रव्यभावभेदतो द्विविधां भक्ति कुर्वन् उपाध्यायपदाराधनां करोति ॥११७३॥ अभिगमनं-सम्मुखगमनं वन्दन-स्तुति नमस्यन-नमस्कारकरण तैस्तथा अशनादीनां वसतेश्च दानैश्च पुनर्वैयावृत्त्यादिभि साधुपदाराधनां करोति ॥११७४॥ रथयात्राकरणेन सुतीर्थयात्रादिभि पुन सङ्घपूजाभिस्तथा शासनस्य प्रभावनाभि सुदर्शन-सम्यग्दर्शन तस्याराधनां करोति ॥ ११७५ ॥

सिद्धतसत्थपुत्थयकारावणरक्खणच्चणाईहिं । सज्झायभावणाइहिं नाणपयाराहणं कुणइ ॥ ११७६ ॥
वयनिअमपालणेण विरइक्कपराण भत्तिकरणेण । जइधम्मणुरागेण चारित्ताराहणं कुणइ ॥ ११७७ ॥
आससाइविरहिअ बाहिरब्भिंतर तवोकम्म । जहसत्तीइ कुणतो सुद्धतवाराहणं कुणइ ॥ ११७८ ॥
एमेयाइ उत्तमपयाइ सो दव्वभावभत्तीए । आराहतो सिरिसिद्धचक्कमच्चेइ निच्चंपि ॥ ११७९ ॥

सिद्धान्तशास्त्राणां ये पुस्तकास्तेषां कारण-निर्मापणं पुनर्यत्नतो रक्षणं तथाऽर्चनं-धूपचन्दनवस्त्रादिभिः पूजनं इत्यादि-स्तथा स्वाध्यायेन-वाचनादिपञ्चप्रकारेण तथा भावनाभिर्ज्ञानस्वरूपचिन्तनरूपाभिर्ज्ञानपदस्याराधनां करोति ॥ ११७६ ॥ व्रतानां-अणुव्रतानां नियमानां-अभिग्रहादीनां पालनेन तथा विरति-सावद्यव्यापारनिवृत्तिः सा एव एका परा-प्रकृष्टा येषां ते तेषां विरत्येकपराणां साध्वादीनां भक्तिकरणेन तथा यतिधर्मे-दशविधसाधुधर्मेऽनुरागेण चारित्रपदस्याराधनां करोति ॥ ११७७ ॥ आशंसा-इहपरभवसुखादिवाञ्छा तया विशेषेण रहितं बाह्यं उपवासादि आभ्यन्तरं च प्रायश्चित्तादि तपःकर्म यथाशक्ति-स्वशक्त्यनुसारेण कुर्वन् शुद्धतपसो-निर्मलतपस आराधनां करोति ॥ ११७८ ॥ एवं-अमुना प्रकारेण स श्रीपाल एतानि उत्तमपदानि द्रव्यभावभक्त्या आराधयन् नित्य-निरन्तरमपि श्रीसिद्धचक्रमर्चयति-पूजयति ॥ ११७९ ॥

एव सिरिपालनिवस्स सिद्धचक्कच्चणं कुणंतस्स । अधपचमवरिसेहिं जा पुन्न त तवोकम्म ॥ ११८०॥
तत्तो रन्ना निअरज्जलच्छिविस्थारगरुअसत्तीए । गुरुभत्तीए कारिउमारद्ध तस्स उज्जमण ॥ ११८१ ॥
कस्थवि विच्छिन्ने जिणहरमि काउ तिवेइअ पीढं । विच्छिएण वरकुट्टिमधवलं नवरंग-
कयचित्त ॥ ११८२ ॥
सालिपमुहेहिं धन्नेहिं पञ्चवन्नेहिं मतपूएहिं । रइऊण सिद्धचक्क सपुन्नं चित्तचुज्जकर ॥ ११८३ ॥

एवं–अमुना प्रकारेण सिद्धचक्रस्य अर्चन–पूजन कुर्वत श्रीपालनृपस्य अर्द्धपञ्चमवर्षै–सार्द्धचतुर्भिः सवत्सरैर्यावत्तप – कर्म पूर्ण–पूर्णीभूत, अर्द्धं पञ्चमं येषु तानि अर्द्धपञ्चमानि २ यानि वर्षाणि तैरिति विग्रहः ॥ ११८०॥ तत–तदनन्तर राज्ञा–श्रीपालेन निजराज्यलक्ष्म्या यो विस्तारस्तेन या गुरुका–महती शक्तिस्तया पुनर्गुर्व्या–महत्या भक्त्या तस्य तपस उद्यापनं कारयितुमारब्धम् ॥ ११८१ ॥ क्वापि विस्तीर्णे जिनगृहे तिस्रो वेदिका यत्र तत्त्रिवेदिक विस्तीर्णं वरकुट्टिमेन–प्रधानबद्धभूम्या धवल–उज्ज्वल पुनर्नवरङ्गै–नवीनरङ्गद्रव्यै कृतानि चित्राणि–आलेख्यानि यत्र तत्तथाभूत पीठ कृत्वा ॥ ११८२॥ मन्त्रै पूतानि–पवित्राणि मन्त्रपूतानि तैः पञ्चवर्णैः शालिप्रमुखैर्धान्यै चित्तचोज्जकर सम्पूर्णं सिद्धचक्र रचयित्वेति सम्बन्ध, पश्यतां जनानां चित्ते चोज्ज–आश्चर्यं करोतीति विग्रहः ॥ ११८३

तत्थ य अरिहताइसु नवसु पएसु ससप्पिखडाइं । नालियरगोलयाइं सामन्नेण ठविज्जंति ॥११८४॥
तेण पुणो नरवइणा मयणासहिएण वरविवेएण । ताइंपि गोलयाइं विसेससहियाइं ठवियाइं ॥
जहा—अरिहंतपए धवले चंदणकप्पूरलेवसिअवन्ने । अट्ठकक्केअणचउतीसहीरय गोलय ठविअ ॥
सिद्धपए पुण रत्ते इगतीसपवालअट्ठमाणिक्क । नवरगघुसिणविहिअप्पलेवगुरुगोलय ठविअ ॥

तत्र—सिद्धचक्रेऽर्हदादिषु नवसु पदेषु सामान्येन सर्पिः—घृतं खण्डश्च-मधुधूलिस्ताभ्यां सहितानि भृतानि ससर्पिःखण्डानि नारिकेलफलानि स्थाप्यन्ते ॥११८४॥ तेन पुनर्नरपतिना—राज्ञा श्रीपालेन मदनसुन्दरीसहितेन तान्यपि गोलकानि विशेषसंयुक्तानि स्थापितानि, कीदृशेन तेन ?—वर—प्रशस्तो विवेको यस्य स तेन ॥ ११८५ ॥ कथमित्याह—यथा धवले—धवलवर्णतया व्यवस्थापितेऽर्हत्पदे चन्दनकर्पूरयोर्लेपनेन सितः—श्वेतो वर्णो यस्य तत्तथा पुनरष्टौ कर्केतनानि—श्वेतरत्नविशेषाश्चतुस्त्रिंशच्च हीरका यस्मिंस्तत्तथाभूतं गोलकं स्थापितं, अत्रायं भावः—अष्टप्रातिहार्यापेक्षयाऽष्टौ कर्केतनानि चतुस्त्रिंशदतिशयापेक्षया तावन्तो हीरका इति ॥ ११८६ ॥ रक्ते—रक्तवर्णतया व्यवस्थापिते सिद्धपदे, पुनः एकत्रिंशत् प्रवाला—विद्रुमा यत्र तत्तथा पुनरष्टौ माणिक्यानि यत्र तत्तथा, पुनर्नवरङ्ग—नवीनरक्तत्वयुक्तं यद् घुसृण—कुङ्कुमं तेन विहितः प्रलेपः—प्रकृष्टलेपो यस्य तत् तथाभूतं गुरु—महत् गोलकं स्थापितं, अष्टकर्मक्षयोत्थाष्टगुणापेक्षयाऽष्टौ माणिक्यानि एकत्रिंशद्गुणापेक्षया तावन्तः प्रवाला इति ॥ ११८७ ॥

एव सिरिपालनिवस्स सिद्धचक्कच्चण कुणतस्स । अधपचमवरिसेहि जा पुन्न त तवोकम्म ॥ ११८०॥
तसो रन्ना निअरज्जलच्छिविस्थारगरुअसत्तीए । गुरुभत्तीए कारिउमारद्ध तस्स उज्जमण ॥ ११८१ ॥
कस्थवि विच्छिन्ने जिणहरंमि काउ तिवेइअ पीढं । विच्छिएण वरकुट्टिमधवलं नवरंग-
कयचित्त ॥ ११८२ ॥
सालिपमुहेहिं धन्नेहिं पचवन्नेहिं मतपूएहिं । रइऊण सिद्धचक्क सपुन्नं चित्तचुज्जकर ॥ ११८३ ॥

एवं-अमुना प्रकारेण सिद्धचक्रस्य अर्चनं-पूजनं कुर्वत श्रीपालनृपस्य अर्द्धपञ्चमवर्षै-सार्द्धचतुर्भिः सवत्सरैर्यावत्तप -
कर्म पूर्ण-पूर्णीभूतं, अर्द्ध पञ्चमं येषु तानि अर्द्धपञ्चमानि २ यानि वर्षाणि तैरिति विग्रह ॥११८०॥ तत.-तदनन्तर राज्ञा-
श्रीपालेन निजराज्यलक्ष्म्या यो विस्तारस्तेन या गुरुका-महती शक्तिस्तया पुनर्गुर्व्या-महत्या भक्त्या तस्य तपस उद्यापन
कारयितुमारब्धम् ॥ ११८१ ॥ कुत्रापि विस्तीर्णे जिनगृहे तिस्रो वेदिका यत्र तत्त्रिवेदिक विस्तीर्णं वरकुट्टिमेन-प्रधानबद्ध-
भूम्या धवल-उज्ज्वल पुनर्नवरङ्गैः-नवीनरङ्गकद्रव्यै कृतानि चित्राणि-आलेख्यानि यत्र तत्तथाभूतं पीठ कृत्वा ॥ ११८२ ॥
मन्त्रैः पूतानि-पवित्राणि मन्त्रपूतानि तैः पञ्चवर्णैः शालिप्रमुखैर्धान्यै चित्तचोज्जकर सम्पूर्णं सिद्धचक्र रचयित्वेति सम्बन्ध,
परमतां जनानां चित्ते चोज्ज-आश्चर्य करोतीति विग्रह. ॥ ११८३

६

सेसेसु सिअपएसु चदणसिअगोलए ठवइ राया । सगसट्ठिगवन्नसयरिपन्नमुत्ताहलसमेए ॥११९१॥
अन्न च नवरयाण उद्देसेण नरेसरो तत्थ । तत्तव्वन्नाइ सुमेरुमालाचीराइ मंडेइ ॥ ११९२ ॥
सोलस अणाहएसु अ गरुआइ सक्कराइ लिंगाइं । मंडावेइ नरिंदो नाणामणिरयण

चित्ताइ ॥ ११९३ ॥

शेषेषु दर्शनादिषु चतुर्षु सितपदेषु–श्वेततया व्यवस्थापितेषु पदेषु राजा श्रीपालः चन्दनेन सितानि–धवलानि गोलकानि स्थापयति, कीदृशानि गोलकानि ?–सप्तषष्ट्या ६७ एकपञ्चाशता ५१ सप्तत्या ७० पञ्चाशता ५० च मुक्ताफलैः समेतानि–भृतानि, अयं भावः–दर्शनादिपदेषु भेदापेक्षया क्रमेणैतावन्ति मुक्ताफलानि गोलकेषु–भृतानि, यतः सम्यग्दर्शनस्य चउसद्दहण तिलिङ्गमित्यादिकाः सप्तषष्टिर्भेदाः, ज्ञानस्य स्पर्शनेन्द्रियव्यञ्जनावग्रहमतिज्ञानमित्यादिका ५१ भेदाः, चारित्रस्य वयसमणधम्मसञ्जमेत्यादिकाः सप्ततिर्भेदाः ७० तपस इत्वरानशनतप इत्यादिकाः ५० भेदाः ॥ ११९१ ॥ अन्यच्च नरेश्वरो–राजा श्रीपालो नवपदानां उद्देशेन–नवपदानि उद्दिश्य–आश्रित्येत्यर्थः, तत्र–तस्मिन्पीठे तद्वर्णानि सुमेरुमालाचीराणि मण्डयति ॥ ११९२ ॥ च पुनः षोडशसु अनाहतेषु षोडशैव गुरुकाणि–महान्ति शर्करायाः–सितोपलाया लिङ्गानि नाना–बहुप्रकारैर्मणिरत्नैश्चित्राणि–विचित्राणि नरेन्द्रो–राजा श्रीपालो मण्डयति ॥ ११९३ ॥

कणयाभे सूरिपए गोम गोमेअपचरयणजुअ । छत्तीसकणयकुसुम चंदणघुसिणकिय ठविअ ॥
उज्झायपए नीले अहिलयदलनीलगोलय ठविअ । चउरिंदनीलकलिअ मरगयपणवीसपयगजुय ॥
साहुपए पुण सामे समयमयं पंचरायपट्टंक । सगवीसइरिट्ठमणिं भत्तीए गोलय ठविअ ॥११९०॥

कनकं—सुवर्णं तद्वत् आभा—प्रभा यस्य तत् कनकाभं, तस्मिन् सूरिपदे—आचार्यपदे गोमेदाख्यानि यानि पञ्च रत्नानि संयुक्त षट्त्रिंशत्कनककुसुमानि—स्वर्णपुष्पाणि यस्मिंस्तथा, पुनश्चन्दनघुसृणाभ्यां कृतं—लिप्तं ईदृशं गोलकं स्थापितं, ज्ञानादि-षट्त्रिंशद्गुणोपेतत्वात्तावन्ति स्वर्णपुष्पाणीति ॥ ११८८ ॥ नीले—नीलवर्णतया व्यव-स्थापिते उपाध्यायपदेऽहिलता—नागवल्ली तस्या दलैः—पत्रैर्नीलं—नीलवर्णं गोलकं स्थापितम्, कीदृशं गोलकम्?—चतुर्भिरिन्द्र-नीलैः—नीलमणिभिः कलितं—युक्तं, पुनः मरकतानां—हरिमणीनां पञ्चविंशतिरेव मध्यवर्तिपदकं तेन युक्तं—युक्तं, द्वादशाङ्गादि-चतुरनुयोगयुक्तत्वाच्चत्वार इन्द्रनीलाः पञ्चविंशतिगुणयुक्तत्वात्तावन्तो मरकतमणय इति ॥ ११८९ ॥ श्यामे—श्यामवर्ण-तया व्यवस्थापिते साधुपदे पुनः सह मृगमदेनेति समृगमदं—कस्तूरीलिप्तमित्यर्थः, पुनः पञ्चभिः राजपट्टैः—वैराटरत्नैरङ्को—भूषा यस्य तथा, यद्वा पञ्च राजपट्टा अङ्के-उत्सङ्गे मध्ये यस्य तथा, पुनः सप्तविंशतिः रिष्टमणयः—श्यामरत्नविशेषाः यस्मिंस्त-थाभूतं गोलकं भक्त्या स्थापितम्, पञ्चमहाव्रतापेक्षया पञ्च राजपट्टाः सप्तविंशतिगुणापेक्षया तावन्तो रिष्टमणय इति ॥ ११९० ॥

सेसेसु सिअपएसु चदणसिअगोलए ठवइ राया । सगसट्ठिगवन्नसयरिपन्नमुत्ताहलसमेए ॥११९१॥
अन्न च नवरयाण उद्देसेण नरेसरो तत्थ । तत्तऽवन्नाइ सुमेरुमालाचीराइं मडेइ ॥ ११९२ ॥
सोळस अणाहएसु अ गरुआइ सक्कराइ ळिंगाइं । मडावेइ नरिंदो नाणामणिरयण
चित्ताइं ॥ ११९३ ॥

शेषेषु दर्शनादिषु चतुर्षु सितपदेषु–श्वेततया व्यवस्थापितेषु पदेषु राजा श्रीपालः चन्दनेन सितानि–धवलानि गोलकानि स्थापयति, कीदृशानि गोलकानि ?–सप्तषष्ट्या ६७ एकपञ्चाशता ५१ सप्तत्या ७० पञ्चाशता ५० च मुक्ताफलैः समेतानि–भृतानि, अथ भाव –दर्शनादिपदेषु भेदापेक्षया क्रमेणैतावन्ति मुक्ताफलानि गोलकेषु–भृतानि, यतः सम्यग्दर्शनस्य चउसद्दहण तिलिङ्गमित्यादिकाः सप्तषष्टिर्भेदाः, ज्ञानस्य स्पर्शनेन्द्रियव्यञ्जनावग्रहमतिज्ञानमित्यादिका ५१ भेदाः, चारित्रस्य वयसमणधम्मसञ्जमेत्यादिकाः सप्ततिर्भेदाः ७० तपस इत्वरानशनतप इत्यादिका ५० भेदाः ॥ ११६१ ॥ अन्यच्च नरेश्वरो–राजा श्रीपालो नवपदानां उद्देशेन–नवपदानि उद्दिश्य–आश्रित्येत्यर्थः, तत्र–तस्मिन्पीठे तप्तवर्णानि सुमेरुमाला-चीराणि मण्डयति ॥ ११६२ ॥ च पुनः षोडशसु अनाहतेषु गुरुकाणि–महान्ति शर्करायाः–सितोपलाया लिङ्गानि नाना–बहुप्रकारैर्मणिरत्नैश्चित्राणि–विचित्राणि नरेन्द्रो–राजा श्रीपालो मण्डयति ॥ ११६३ ॥

कणयाभे सूरिपए गोल गोमेअपचरयणजुअ । छत्तीसकणयकुसुम चंदणघुसिणकिय टविअ ॥
उज्झायपए नीले अहिलयदलनीलगोलय ठविअ । चउरिंदनीलकलिअ मरगयपणवीसरयगजुय ॥
साहुपए पुण सामे समयमयं पचरायपट्टक । सगवीसरिट्ठमणिं भत्तीए गोलय टविअ ॥११९०॥

कनक—सुवर्ण तद्वत् आभा—प्रभा यस्य तत् कनकाभं, तस्मिन् सूरिपदे—आचार्यपदे गोमेदाख्यानि यानि पञ्च रत्नानि तैर्युक्त षट्त्रिंशत्कनककुसुमानि—स्वर्णपुष्पाणि यस्मिंस्तत्तथा, पुनश्चन्दनघुसृणाभ्यां अङ्कित—लिप्तं ईदृशं गोलकं स्थापितं, ज्ञानादिपञ्चाचारयुक्तत्वात् पञ्च गोमेदरत्नानि षट्त्रिंशद्गुणोपेतत्वात्तावन्ति स्वर्णपुष्पाणीति ॥ ११८८ ॥ नीले—नीलवर्णतया स्थापिते उपाध्यायपदेऽहिलता—नागवल्ली तस्या दलैः—पत्रैर्नीलं—नीलवर्णं गोलकं स्थापितम्, कीदृशं गोलकम् ?—चतुर्भिरिन्द्रनीलैः—नीलमणिभिः कलितं—युक्तं, पुनः मरकतानां—हरिमणीनां पञ्चविंशतिरेव मध्यवर्तिपदकं तेन युतं—युक्तं, द्रव्यानुयोगादिचतुरनुयोगयुक्तत्वाच्चत्वार इन्द्रनीलाः पञ्चविंशतिगुणयुक्तत्वात्तावन्तो मरकतमणय इति ॥ ११८९ ॥ श्यामे—श्यामवर्णतया स्थापिते साधुपदे पुनः सह मृगमदेनेति समृगमदं—कस्तूर्या लिप्तमित्यर्थः, पुनः पञ्चभिः राजपट्टै—वैराटरत्नैरङ्को—भूषा यस्य तत्तथा, यद्वा पञ्च राजपट्टा अङ्के—उत्सङ्गे मध्ये यस्य तत्तथा, पुनः सप्तविंशति रिष्टमणयः—श्यामरत्नविशेषा यस्मिंस्तत्तथाभूतं गोलकं भक्त्या स्थापितम्, पञ्चमहाव्रतापेक्षया पञ्च राजपट्टाः सप्तविंशतिगुणापेक्षया तावन्तो रिष्टमणय इति ॥ ११९० ॥

सेसेसु सिअपएसु चदणसिअगोलए ठवइ राया । सगसट्ठिगवन्नसयरिपन्नमुत्ताहलसमेए ॥११९१॥
अन्न च नवरयाण उद्देसेण नरेसरो तत्थ । तत्तव्वाइ सुमेरुमालाचीराइं मडेइ ॥ ११९२ ॥
सोळस अणाहएसु अ गरुआइ सक्कराइ र्लिगाइं । मडावेइ नरिंदो नाणामणिरयण चित्ताइं ॥ ११९३ ॥

शेषेषु दर्शनादिषु चतुर्षु सितपदेषु–श्वेततया व्यवस्थापितेषु पदेषु राजा श्रीपालः चन्दनेन सितानि–धवलानि गोलकानि स्थापयति, कीदृशानि गोलकानि ?–सप्तषष्ट्या ६७ एकपञ्चाशता ५१ सप्तत्या ७० पञ्चाशता ५० च मुक्ताफलैः समेतानि–भृतानि, अयं भावः–दर्शनादिपदेषु भेदापेक्षया क्रमेणैतावन्ति मुक्ताफलानि गोलकेषु–भृतानि, यतः सम्यग्दर्शनस्य चउसद्दहण तिलिङ्गमित्यादिकाः सप्तषष्टिर्भेदाः, ज्ञानस्य स्पर्शनेन्द्रियव्यञ्जनावग्रहमतिज्ञानमित्यादिका ५१ भेदाः, चारित्रस्य वयसमणधम्मसञ्जमेत्यादिकाः सप्ततिर्भेदाः ७० तपस इत्वरानशनतप इत्यादिकाः ५० भेदाः ॥ ११९१ ॥ अन्यच्च नरेश्वरो–राजा श्रीपालो नवपदानां उद्देशेन–नवपदानि उद्दिश्य–आभित्येत्यर्थः, तत्र–तस्मिन्पीठे तत्पदवर्णानि सुमेरुमालाचीराणि मण्डयति ॥ ११९२ ॥ च पुनः षोडशसु अनाहतेषु षोडशैव गुरुकाणि–महान्ति शर्करायाः–सितोपलाया लिङ्गानि नाना–बहुप्रकारैर्मणिरत्नैश्चित्राणि–विचित्राणि नरेन्द्रो–राजा श्रीपालो मण्डयति ॥ ११९३ ॥

कणयाभे सूरिपए गोत्त गोमेअपचरयणजुअ । छत्तीसकणयकुसुम चदणघुसिणकिय ठविअ ॥
उज्झायपए नीले अहिलयदलनीलगोलय ठविअ । चउरिंदनीलकलिअ मरगयपणवीसरयगजुय ॥
साहुपए पुण सामे समयमय पचरायपट्टक । सगवीसइरिट्ठमणिं भत्तीए गोलय ठविअ ॥११९०॥

कनक–सुवर्णं तद्वत् आभा–प्रभा यस्य तत् कनकाभ, तस्मिन् सूरिपदे–आचार्यपदे गोमेदाख्यानि यानि पञ्च रत्नानि तैर्युक्त षट्त्रिंशत्कनककुसुमानि–स्वर्णपुष्पाणि यस्मिंस्तथया, पुनश्चन्दनघुसृणाभ्यां आश्लिष्ट–लिप्तं ईदृश गोलक स्थापित, ज्ञानादि-पञ्चाचारयुक्तत्वात् पञ्च गोमेदरत्नानि षट्त्रिंशद्गुणोपेतत्वाच्चावन्ति स्वर्णपुष्पाणीति ॥ ११८८ ॥ नीले–नीलवर्णवत्या स्थर-स्थापिते उपाध्यायपदेऽहिलता–नागवल्ली तस्या दलैः–पत्रैर्नीलं–नीलवर्णं गोलक स्थापितम्, कीदृश गोलक ? –चतुरिन्द्र-नीलै –नीलमणिभिः कलितं–युक्त, पुनः मरकतानां–हरिमणीनां पञ्चविंशतिरेव मण्यर्विपदकं तेन युक्तं–युतं, द्वादशाङ्गाद्य-चतुरनुयोगयुक्तत्वाच्चत्वार इन्द्रनीलाः पञ्चविंशतिगुणयुक्तत्वाच्चावन्तो मरकतमणय इति ॥ ११८९ ॥ श्यामे–श्यामवर्ण-तया स्थापिते साधुपदे पुनः सह मृगमदेनेति समृगमद–कस्तूर्या लिप्तमित्यर्थः, पुनः पञ्चापि राजपट्टाः–वैराटरत्नेरज्ञो–भूषा यस्य तथा, यद्वा पञ्च राजपट्टा अङ्के–उत्सङ्गे मध्यान्तरूपे यस्य तथा, पुनः सप्तविंशति रिष्टमणयः–श्यामरत्नविशेषा यत्रैवस्त-थाभूतं गोलक भक्त्या स्थापितम्, पञ्चमहाव्रतापेक्षया पञ्च राजपट्टाः सप्तविंशतिगुणापेक्षया तावन्तो रिष्टमणय इति ॥ ११९० ॥

सेसेसु सिअपएसु चदणसिअगोलए ठवइ राया । सगसट्ठिगवन्नसयरिपन्नमुत्ताहलसमेए ॥११९१॥
अन्न च नवरयाण उद्देसेणं नरेसरो तत्थ । तत्तव्वन्नाइ सुमेरुमालावीराइं मंडेइ ॥ ११९२ ॥
सोळस अणाहएसु अ गरुआइ सक्कराइ ठिंगाइं । मंडावेइ नरिंदो नाणामणिरयण
विचाइं ॥ ११९३ ॥

शेषेषु दर्शनादिषु चतुर्षु सितपदेषु-श्वेततया व्यवस्थापितेषु पदेषु राजा श्रीपालः चन्दनेन सितानि-धवलानि गोल-कानि स्थापयति, कीदृशानि गोलकानि ?-सप्तषष्ट्या ६७ एकपञ्चाशता ५१ सप्तत्या ७० पञ्चाशता ५० च मुक्ताफलैः समे-तानि-भृतानि, अयं भावः-दर्शनादिपदेषु भेदापेक्षया क्रमेणैतावन्ति मुक्ताफलानि गोलकेषु-भृतानि, यतः सम्यग्दर्शनस्य चउसद्दहण तिलिङ्गमित्यादिकाः सप्तषष्टिर्भेदाः, ज्ञानस्य स्पर्शनेन्द्रियव्यञ्जनावग्रहमतिज्ञानमित्यादिका ५१ भेदाः, चारित्रस्य ययसमणधम्मसञ्जमेत्यादिकाः सप्ततिर्भेदाः ७० तपस इत्वरानशनतप इत्यादिकाः ५० भेदाः ॥ ११९१ ॥ अन्यच्च नरेश्वरो-राजा श्रीपालो नवपदानां उद्देशेन-नवपदानि उद्दिश्य-आश्रित्येत्यर्थः, तत्र-तस्मिन्पीठे तत्तद्वर्णानि सुमेरुमाला-वीराणि मण्डयति ॥ ११९२ ॥ च पुनः षोडशसु अनाहतेषु पदेषु गुरुकाणि-महान्ति शर्करायाः-सितोपलाया खिङ्गानि नाना-बहुप्रकारैर्मणिरत्नैश्चित्राणि-विचित्राणि नरेन्द्रो-राजा श्रीपालो मण्डयति ॥ ११९३ ॥

इगसोलसपचसु सीइ दोसु चउसट्ठि सरसदक्खाओ । कणयकचोलिआइ मडावइ अट्ठवग्गेसु ॥ ११६४ ॥

मणिकणगनिम्मिआइ नरनाहो अट्ठ बीअपूराइं । वग्गंतर गयपढमे परमिट्ठिपयंमि ठावेइ ॥

खारिकपुजयाइ ठावइ अडयालसद्धिठाणेसु । गुरुपाउआसु अट्ठसु नाणाविहदाडिमफलाणि ॥

नारिंगाइफलाइं जयाइठाणेसु अट्ठसु ठवेइ । चत्तारि उ कोहलए चक्काहिट्ठायगपएसु ॥ ११६७ ॥

अष्टसु वर्गेषु एकस्मिन्प्रथमे वर्गे अवर्गाख्ये षोडश सरसद्राक्षाः ततः पञ्चसु वर्गेषु प्रत्येक षोडश षोडश विन्यासाद्‌शीतिद्राक्षाः द्वयोर्द्वयोर्वर्गयोः—यवर्गशवर्गयोः प्रत्येकं द्वात्रिंशद्द्वात्रिंशद्विन्यासात् चतुष्षष्टि सरसद्राक्षाः कनककचोलिकाभिर्मण्डयति ॥ ११६४ ॥ नरनाथो—राजा श्रीपालो मणिकनकाभ्यां निर्मितानि—रचितानि अष्टौ बीजपूरकफलानि वर्गाणां अन्तरेषु-मध्येषु गते-प्राप्ते प्रथमे—आद्ये परमेष्ठिपदे 'नमो अरिहंताणं' मित्याकारके स्थापयति ॥ ११६५ ॥ अष्टचत्वारिंशत्लब्धिस्थानेषु खारिकफलपुञ्जानि स्थापयति, तथा अष्टसु गुरुपादुकासु नानाविधानि—बहुप्रकाराणि दाडिमफलानि स्थापयति ॥ ११६६ ॥ तथाऽष्टसु जयादिस्थानेषु नारङ्गादिफलानि स्थापयति, च पुनः चक्रस्य—सिद्धचक्रस्य अधिष्ठायकपदेषु विमलस्वामिचक्रेश्वरीक्षेत्रपालादिषु चत्वारि कूष्माण्डफलानि स्थापयति ॥ ११६७ ॥

आसन्नसेवयाण देवीण बारस ५ वयगाइ । विज्जसुरिजक्खजक्खिणि चउसट्ठिपएसु पूगाइ ॥११९८॥
पीअचलीकूडाइ चत्तारि दुवारपालगपएसु । कसिणबलीकूडाइं चउवीरपएसु ठविआइ ॥ ११९९ ॥
नवनिहिपएसु कंचणकलसाइ विचित्तरयणपुन्नाइ । गहदिसिवालपएसु अ फलफुल्लाइं
सवन्नाइ ॥ १२०० ॥
इच्चाइगुरुअवित्थरसहिअ मंडाविऊणमुज्जमणं । ण्हवणूसव नरिंदो कारावइ वित्थरविहीए ॥१२०१॥

तथा—आसन्नसेवकानां—निकटसेवाकारिकाणां द्वादशदेवीनां द्वादश च वयङ्गानि—फलविशेषान् स्थापयति, चतुर्थाधिष्ठाय-कस्य द्वादशदेवीनां च नामानि न ज्ञायन्ते, तथाविधसम्प्रदायाभावात्, तथा 'विज्जसुरि' त्ति विद्यादेव्यः षोडश यक्षाश्चतुर्विंशतिः शासनसुराः यक्षिण्यश्चतुर्विंशतिरेव शासनदेव्यः एवमेतेषु चतुष्षष्टिपदेषु पूगानि—क्रमुकफलानि स्थापयति ॥ ११९८ ॥ चतुर्षु द्वारपालकपदेषु कुमुदादिषु चत्वारि पीतस्य—पीतवर्णस्य बले—पक्वान्नादेः कूटानि—पुञ्जानि स्थापितानि, तथा चतुर्षु वीरपदेषु—माणिभद्रादिषु कृष्णवर्णस्य बलेः—पक्वान्नादेः कूटानि स्थापितानि ॥ ११९९ ॥ नवनिधिपदेषु विचित्रैं रत्नैः पूर्णानि—भृतानि काञ्चनस—सुवर्णस्य कलशानि स्थापितानि, तथा ग्रहपदेषु दिक्पालपदेषु च स्वस्ववर्णानि फलपुष्पाणि स्थापितानि ॥ १२०० ॥ इत्यादिना गुरुकेण—महता विस्तारेण सहितं उद्यापनं मण्डयित्वा नरेन्द्रो—राजा श्रीपालो विस्तार-विधिना स्नपनोत्सवं-स्नात्रमहोत्सवं कारयति ॥ १२०१ ॥

छगसोलसपत्तसु सीइ वोसु चउसट्ठि सरसदक्खाओ । कणयकच्चोलिआइ मडावइ
अट्ठवग्गेसु ॥ ११६४ ॥

मणिकणगनिम्मिआइ नरनाहो अट्ठ बीअपूराइ । वग्गतर गयपढमे परमिट्ठिपयमि ठावेइ ॥
खारिक्कपुजयाइ ठावइ अडयालसद्धिठाणेसु । गुरुपाउआसु अट्ठसु नाणाविहदाडिमफलाणि ॥
नारिंगाइफलाइं जयाइठाणेसु अट्ठसु ठवेइ । चत्तारि उ कोहलए चक्काहिट्ठायगपएसु ॥११६७ ॥

अष्टसु वर्गेषु एकस्मिन्प्रथमे वर्गे अवर्गास्ये षोडश सरसद्राक्षाः ततः पञ्चसु वर्गेषु प्रत्येकं षोडश षोडश विन्यासादशीति-द्राक्षाः तयोर्द्वयोर्वर्गयोः—यवर्गशवर्गयो प्रत्येकं द्वात्रिंशद्द्वात्रिंशद्विन्यासात् चतुष्षष्टि सरसद्राक्षा कनककच्चोलिकाभिर्मण्डयति ॥११६४॥ नरनाथो—राजा श्रीपालो मणिकनकाभ्यां निर्मितानि—रचितानि अष्टौ बीजपूरकफलानि वर्गाणां अन्तरेषु मध्येषु गते-प्राप्ते प्रथमे-आद्ये परमेष्ठिपदे 'नमो अरिहंताणं' मित्याकारके स्थापयति ॥ ११६५ ॥ अष्टचत्वारिंशल्लब्धिस्थानेषु खारिकफलपुञ्जानि स्थापयति, तथा अष्टसु गुरुपादुकासु नानाविधानि—बहुप्रकाराणि दाडिमफलानि स्थापयति ॥ ११६६ ॥ तथाऽष्टसु जयादिस्थानेषु नारङ्गादिफलानि स्थापयति, च पुनः चक्रस्य—सिद्धचक्रस्य अधिष्ठायकपदेषु विमलस्वामिचक्रेश्वरी-क्षेत्रपालादिषु चत्वारि कूष्माण्डकफलानि स्थापयति ॥ ११६७॥

उप्पन्नसन्नाणमहोमयाण, सपाडिहेरासणसंठिआण । सद्देसणाणंदियसज्जणाणं, नमो नमो
होउ सया जिणाण ॥ १२०५ ॥

सिद्धाणमाणंदरमालयाण, नमो नमोऽणंतचउक्कयाणं । सूरीण दूरीकयकुग्गहाण, नमो नमो
सूरसमप्पभाण ॥ १२०६ ॥

तथाहि-उत्पन्नं यत्सज्ज्ञान-केवलज्ञानं तदेव महः-तेजस्तत्स्वरूपमेषामिति उत्पन्नसज्ज्ञानमहोमयास्तेभ्यः, पुनः प्राति-हार्यैः-छत्रचामरादिभिः सह वर्त्तते यत्तत्सप्रातिहार्यं ईदृशं यत् आसनं-सिंहासनं तत्र सं-सम्यक् प्रकारेण स्थितेभ्यः, पुनः सद्देशनया-सद्धर्मोपदेशेन आनन्दिताः सज्जनाः-सत्पुरुषा यैस्ते तथा तेभ्यः, ईदृशेभ्यो जिनेभ्यः-अर्हद्भ्यः सदा नमो नमो भवतु, नित्यं पुनः पुनर्नमस्कारोऽस्तु इत्यर्थः । १२०५ ॥ आनन्दरमा-परमानन्दलक्ष्मीस्तस्या आलया-निवासास्तेभ्यः पुनरनन्त चतुष्कं ज्ञानदर्शनसम्यक्त्वाक्षयवीर्यचतुष्टय येषां ते तथा तेभ्यः सिद्धेभ्यो नमो नमोऽस्तु, तथा दूरीकृतः कुग्रहः-कुत्सिताभिनिवेशो यैस्ते दूरीकृतकुग्रहास्तेभ्यः पुनः सूरः-सूर्यस्तेन समा-तुल्या प्रभा-ज्योतिर्येषां ते तथा तेभ्यः सूरिभ्यः-आचार्येभ्यो नमो नमोऽस्तु ॥ १२०६ ॥

विहिआए पूआए अट्ठपयाराइ मंगलावसरे । सधेण तिलयमाला मगलकरण कय रन्नो ॥१२०२॥
तओ–जो धुरि सिरि अरिहंतमूलदढपीढपइट्ठिओ । सिद्धसूरिउज्झाय साहु चउसाहगरिट्ठिओ ॥
दंसणनाणचरित्ततवहिं पडिसाहहिं सुदरु । तत्तक्खरसरवग्गलद्धि, गुरुपयदलहवरु ॥ दिसिवालजक्ख-
जक्खिणि–पमुहसुरकुसुमेहिं अलंकिओ । स सिद्धचक्कगुरुकप्पतरु अम्हह मणवंछिअ दिअओ॥१२०३॥
इच्चाइ नमुक्कारे भणिऊण नरेसरो गहीरसर । सक्कत्थय भणित्ता नवपयथवण कुणइ एवं ॥१२०४॥

अष्टप्रकारायां पूजायां विहितायां–कृतायां सत्यां मङ्गलस्य अवसरे सङ्घेन राज्ञः–श्रीपालस्य तिलकमालयोः मङ्गलकरणं कृतम् ॥ १२०२ ॥ ततश्चैत्यवन्दनं करोति, तत्रादौ नमस्कारमाह–यः श्रीसिद्धचक्ररूपो गुरुः–महान् कल्पतरुः–कल्पवृक्षो धुरि–आदौ अर्हन्नेव मूलदृढपीठं (तत्र) प्रतिष्ठितः, कीदृशः ?–यः सिद्धसूर्युपाध्यायसाधव एव चतस्रः शाखास्ताभिर्गरिष्ठः–अतिमहान्, पुनर्दर्शनज्ञानचारित्रतपोरूपाभिः प्रतिशाखाभिः सुन्दरः, पुनः तत्त्वाक्षराणि ओङ्कारादीनि स्वरा अकारादयः वर्गाः–अवर्गकवर्गादयः लब्धिपदानि अष्टचत्वारिंशत् गुरुपदानि–अर्हत्पादुकादीनि तान्येव दलानां–पत्राणां आडम्बरो यस्य स तथा पुनः दिक्पालयक्षयक्षिणीप्रमुखैः सुरकुसुमैः अलङ्कृतः–शोभितः स सिद्धचक्रगुरुकल्पतरुः अस्मभ्यं मनोवाञ्छितं फलं ददातु ॥१२०३॥ इत्यादि नमस्कारान् भणित्वा नरेश्वरो–राजा श्रीपालो गम्भीरः । स्वरो यत्र कर्मणि तथा स्यात् तथा शक्रस्तवं भणित्वा एवं–वक्ष्यमाणप्रकारेण नवपदानां स्तवनं करोति ॥ १२०४ ॥

इअ नवपयसिद्ध लद्धिविज्जासमिद्ध, पयडिअसरवग्गं ह्रींतिरेहासमग्ग । दिसिवइसुरसार
खोणिपीढावयारं, तिजयविजयचक्कं सिद्धचक्कं नमामि ॥ १२१० ॥

वज्जतएहिं मगलतूरेहिं सासण पभावंतो । साहम्मिअवच्छल्ल करेइ वरसघपूअ च ॥ १२११ ॥

एव सो नरनाहो सहिओ ताहिं च पट्टदेवीहिं । अन्नेहिवि बहूएहिं आराहइ सिद्धवरचक्क ॥१२१२॥

अह तस्स मयणसुंदरिपमुहाहिं राणियाहिं सजाया । नव निरुवमगुणजुत्ता तिहुअणपालाइणो पुत्ता॥

इति-अमुना प्रकारेण नवपदैः सिद्धं निष्पन्न पुनर्लब्धिभिः-लब्धिपदैः विद्याभिः-विद्यादेवीभिश्च समृद्धं-समृद्धियुक्त, पुनः प्रकटिता -प्रकटीकृताः स्वरा वर्णाश्च यस्मिंस्तत्तथा, पुनः ह्रीं इत्यक्षरस्य समन्तात् यास्तिस्रो रेखास्ताभिः, समग्रं-सम्पूर्णं, पुन दिक्पतिभिः-दिक्पालैः सुरैश्च-शेषसुरैः सार-प्रधान, पुनः क्षोणिपीठे-पृथ्वीपीठे अवतारः-अवतरणं यस्य तत्तथा, पुनस्त्रिजगत -त्रिभुवनस्य विजये-विजयार्थं चक्रमिव त्रिजगद्विजयचक्रं, ईदृशं सिद्धचक्र अहं नमामि॥ १२१०॥ इति श्रीसिद्धचक्रस्तव. । मङ्गलतूरैः मङ्गलवाद्यैर्वाद्यमानैः शासनं जिनमतं प्रभावयन्-उद्दीपयन् राजा श्रीपालः साधर्मिकवात्सल्य च पुनर्वरां-प्रधानां सङ्घपूजां करोति ॥ १२११ ॥ एवं-अमुना प्रकारेण स नरनाथो-राजा श्रीपालस्ताभिश्च पट्टदेवीभिः सहितो अन्यैरपि बहुभिर्लोकैः सहित. सिद्धवरचक्रं आराधयति ॥१२१२॥ अथ-अनन्तरं तस्य राज्ञो मदनसुन्दरीप्रमुखाभिः राज्ञीभिर्निरुपमगुणैर्युक्तास्त्रिभुवनपालादयो नव पुत्राः सञ्जाताः ॥ १२१३ ॥

सुत्तत्थवित्थारणतप्पराण, नमो नमो वायगकुंजराण । साहूण संसाहिअसंजमाण, नमो नमो सुद्धदयादमाण ॥ १२०७ ॥

जिणुत्ततत्ते रुइलक्खणस्स, नमो नमो निम्मलदंसणस्स । अन्नाणसम्मोहतमोहरस्स, नमो नमो नाणदिवायरस्स ॥ १२०८ ॥

आराहिआऽखंडिअसक्कियस्स, नमो नमो संजमवीरियस्स । कम्मद्दुमुम्मूलणकुंजरस्स, नमो नमो तिव्वतवोभरस्स ॥ १२०९ ॥

सूत्रार्थयोर्विस्तारणे तत्परेभ्यः वाचका-उपाध्यायाः कुञ्जरास्ते-हस्तिन इव गच्छशोभाकारित्वात् समर्थत्वाच्च वाचककुञ्जरास्तेभ्यो नमो नमोऽस्तु, तथा सं-सम्यक्प्रकारेण साधितः संयमो यैस्ते तथा तेभ्यः, पुनः दया च दमश्च दयादमौ शुद्धौ दयादमौ येषां ते तथा तेभ्यः साधुभ्यो नमो नमोऽस्तु ॥ १२०७ ॥ जिनोक्ततत्त्वे या रुचिः सा लक्षणं यस्य स तथा तस्मै निर्मलदर्शनाय-उज्ज्वलसम्यग्दर्शनाय नमो नमोऽस्तु, तथाऽज्ञानेन यः सम्मोहो-मतिभ्रमः स एव तमः-अन्धकारं तद् हरतीति अज्ञानसंमोहतमोहरस्तस्मै ज्ञानदिवाकराय-ज्ञानसूर्याय नमो नमोऽस्तु ॥ १२०८ ॥ तथा संयमे-संयमविषये यद्वीर्यं-पराक्रमस्तस्मै नमो नमोऽस्तु, कीदृशाय संयमवीर्याय ?-आराधिताऽखण्डिता सत्क्रिया-सदाचाररूपा यस्मात्तत् तथा तस्मै, तथा कर्माण्येव द्रुमा-वृक्षास्तेषां यदुन्मूलनं-उत्खननं तत्र कुञ्जरो हस्ती इव कर्मद्रुमोन्मूलनकुञ्जरस्तस्मै तीव्रतपोभराय नमो नमोऽस्तु ॥ १२०९ ॥

इअ नवपयसिद्ध लद्धिविज्जासमिद्ध, पयडिअसरवग्ग ह्रींतिरेहासमग्ग । दिसिवइसुरसार
खोणिपीढावयारं, तिजयविजयचक्क सिद्धचक्क नमामि ॥ १२१० ॥

वज्जतएहिं मगलतूरेहिं सासण पभावतो । साहम्मिअवच्छल्ल करेइ वरसंघपूअं च ॥ १२११ ॥

एव सो नरनाहो सहिओ ताहिं च पट्टदेवीहिं । अन्नेहिवि बहूएहिं आराहइ सिद्धवरचक्क ॥१२१२॥

अह तस्स मयणसुंदरिपमुहाहिं राणियाहिं संजाया । नव निरुवमगुणजुत्ता तिहुअणपालाइणो पुत्ता॥

इति–अमुना प्रकारेण नवपदै सिद्धं निष्पन्न पुनर्लब्धिभिः–लब्धिपदै विद्याभिः-विद्यादेवीभिश्च समृद्ध–समृद्धियुक्त, पुनः प्रकटिता –प्रकटीकृता स्वरा वर्गाश्च यस्मिंस्तत्तथा, पुनः ह्रीं इत्यक्षरस्य समन्तात् यास्तिस्रो रेखास्ताभिः, समग्र-सम्पूर्ण, पुनः दिक्पतिभिः–दिक्पालैः सुरैश्च–शेषसुरैः सारं–प्रधान, पुनः क्षोणिपीठे–पृथ्वीपीठे अवतारः–अवतरणं यस्य तत्तथा, पुनस्त्रिजगतः–त्रिभुवनस्य विजये–विजयार्थं चक्रमिव त्रिजगद्विजयचक्रं, ईदृशं सिद्धचक्र अहं नमामि ॥ १२१०॥ इति श्रीसिद्ध चक्रस्तवः । मङ्गलतूरैः मङ्गलवाद्यैर्वाद्यमानैः शासनं जिनमतं प्रभावयन्–उद्दीपयन् राजा श्रीपालः साधर्मिकवात्सल्य च पुनर्वरां–प्रधानां सङ्घपूजां करोति ॥ १२११ ॥ एवं–अमुना प्रकारेण स नरनाथो–राजा श्रीपालस्ताभिश्च पट्टदेवीभिः सहितो अन्यैरपि बहुभिर्लोकैःसहित सिद्धवरचक्रं आराधयति ॥१२१२॥ अथ–अनन्तर तस्य राज्ञो मदनसुन्दरीप्रमुखाभिः राज्ञीभिर्निरुपमगुणै-र्युक्तास्त्रिभुवनपालाद्यो नव पुत्राः सञ्जाताः ॥ १२१३ ॥

गयरहसहस्सनवग नव लक्खाइ च जच्चतुरयाण । पत्तीण नवकोडी तस्स नरिंदस्स रज्जमि ॥१२१४॥
एव नवनवलीलाहिं चेव सुक्खाणि अणुहवतो सो । धम्मनिईइ पालइ रज्ज निक्कटय निच्च ॥
रज्ज च तस्स पालयस्स सिरिपालनरवरिंदस्स । जायाइ जाव सम्म नव वाससयाइ पुन्नाइ ॥
ताव निवो त तिहुअणपाल रज्जमि ठावइत्ताण । सिरिसिद्धचक्कनवपयलीणमणो सथुणइ एव ॥
सेसतिभवेहिं मणुएहिं जेहिं विहियारिहाइठाणेहिं । अज्जिज्जइ जिणगुत्त ते अरिहते पणिवयामि ॥

तस्य श्रीपालस्य नरेन्द्रस्य-राज्ञो गजानां-हस्तिनां रथानां च प्रत्येकं सहस्रनवकमासीत्, नव सहस्राणि गजा नव सहस्रा एव रथाश्चासन्नित्यर्थः, च पुनः जात्यतुरगाणां-सुलक्षणाश्वानां नव लक्षाणि आसन्, पत्तीनां-पदातीनां नवकोटय आसन् ॥१२१४॥ एवम्-अनुना प्रकारेण नवनवलीलाभिः-नवनवक्रीडाभिरेव सुखानि अनुभवन् स श्रीपालो धर्मनीत्या-धर्मन्यायेन नित्यं निष्कण्टकं राज्यं पालयति ॥१२१५॥ राज्यं पालयतस्तस्य च श्रीपालनरवरेन्द्रस्य यावन्नववर्षशतानि सम्यग् पूर्णानि जातानि ॥ १२१६ ॥ तावन्नृपः श्रीपालस्त पूर्वोक्त त्रिभुवनपाल-स्वज्येष्ठपुत्र राज्ये स्थापयित्वा श्रीसिद्धचक्रे यानि नवपदानि तेषु लीनं-लग्नं मनो यस्य स सिद्धचक्रनवपदलीनमनाः सन् एवं-वक्ष्यमाणप्रकारेण संस्तौति ॥ १२१७ ॥ शेषा -अवशिष्टास्त्रयो भवा येषां ते पुनर्विहितानि-कृतानि सेवितानीतियावत् अर्हदादिस्थानानि-विंशतिस्थानकानि यैस्ते तथा तैः, एवंभूतैर्यैर्जिनगोत्रं-जिननामकर्म अर्ज्यते-उपार्ज्यते तान् अर्हतोऽहं प्रणिपतामि-नमस्करोमि ॥ १२१८ ॥

जे एगभवतरिया रायकुले उत्तमे अवयरति । महसुमिणसूइअगुणा ते अरिहते पणिवयामि ॥

जेसिं जम्मामि महिम दिसाकुमारीओ सुरवरिंदा य । कुव्वति पहिट्ठमणा ते अरिहते पणिवयामि ॥

आजम्मपिहु जेसिं देहे चत्तारि अइसया हुति । लोगच्छेरयभूया ते अरिहते पणिवयामि ॥१२२१॥

जे तिहुनाणसमग्गा खीण नाऊण भोगफलकम्म । पडिवज्जति चरित्त ते अरिहते पणिवयामि ॥

उवउत्ता अपमत्ता सिअझाणा खवगसेणिहयमोहा । पावति केवल जे ते अरिहते पणिवयामि ॥

ये एकभवान्तरिता उत्तमे राजकुले अवतरन्ति, कीदृशा ये ?–महास्वप्नैश्चतुर्दशभिः सूचिता–ज्ञापिता गुणा येषां ते तथा तानर्हत: प्रणिपतामि–प्रणमामि ॥ १२१९ ॥ येषां जन्मनि महिमां महिमानं वा दिक्कुमार्यः पट्पञ्चाशत् सुरवरेन्द्राश्च चतुष्पष्टिः प्रहृष्ट–प्रकर्षेण हर्षितं मनो येषां ते प्रहृष्टमनसः सन्तः कुर्वन्ति, तानर्हतः प्रणिपतामीति पूर्ववत् ॥ १२२० ॥ हु इति निश्चित, येषां देहे–शरीरे आजन्मापि–जन्मत आरभ्यापि लोके आश्चर्यभूताश्चत्वारोऽतिशया भवन्ति, 'तेषां च देहोऽद्भुतरूपगन्ध' इत्यादयस्तानर्हतः प्रणिपतामि ॥ १२२१ ॥ ये त्रिभिर्ज्ञानैः–मतिश्रुतावधिभिः समग्राः–सम्पूर्णाः सन्तो भोगः फलं यस्य तद्भोगफलं कर्म क्षीणं ज्ञात्वा चारित्रं प्रतिपद्यन्ते–अङ्गीकुर्वन्ति तानर्हतः प्रणिपतामि ॥ १२२२ ॥ ये उपयुक्ता–उपयोगयुताः पुनरप्रमत्ताः–प्रमादरहिताः पुनः सितं–शुक्लं ध्यानं येषां ते सितध्याना अत एव क्षपकश्रेण्या हतो मोहो यैस्ते तथा, ईदृशाः सन्तः केवलज्ञानं प्राप्नुवन्ति, तानर्हतः प्रणिपतामि ॥ १२२३ ॥

गयरहसहस्सनवग नव लक्खाइ च जच्चतुरयाण । पत्तीण नवकोडी तस्स नरिंदस्स रज्जंमि ॥१२१४॥
एव नवनवलीलाहिं चेव सुक्खाणि अणुहवतो सो । धम्मानिईइ पालइ रज्ज निक्कटय निच्च ॥
रज्ज च तस्स पालयस्स सिरिपालनरवरिंदस्स । जायाइ जाव सम्म नव वाससयाइ पुन्नाइ ॥
ताव निवो त तिहुअणपाल रज्जंमि ठावइत्ताण । सिरिसिद्धचक्कनवपयलीणमणो सथुणइ एव ॥
सेसतिभवेहिं मणुएहिं जेहिं विहियारिहाइठाणेहिं । अज्जिज्जइ जिणगुत्त ते अरिहते पणिवयामि ॥

तस्य श्रीपालस्य नरेन्द्रस्य-राज्ञो गजानां-हस्तिनां रथानां च प्रत्येक सहस्रनवकमासीत्, नव सहस्राणि गजा नव सहस्राण्येव रथाश्चासन्नित्यर्थः, च पुनः जात्यतुरगाणां-सुलक्षणाश्वानां नव लक्षाणि आसन्, पत्तीनां-पदातीनां नवकोटय आसन् ॥१२१४॥ एवम्-अमुना प्रकारेण नवनवलीलाभिः-नवनवक्रीडाभिरेव सुखानि अनुभवन् स श्रीपालो धर्मनीत्या-धर्मन्यायेन नित्यं निष्कण्टकं राज्यं पालयति ॥१२१५॥ राज्यं पालयतस्तस्य च श्रीपालनरवरेन्द्रस्य यावन्नववर्षशतानि सम्यग् पूर्णानि जातानि ॥ १२१६ ॥ तावन्नृपः श्रीपालस्तं पूर्वोक्तं त्रिभुवनपाल-स्वज्येष्ठपुत्रं राज्ये स्थापयित्वा श्रीसिद्धचक्रे यानि नवपदानि तेषु लीनं-मग्नं मनो यस्य स सिद्धचक्रनवपदलीनमनाः सन् एवं-वक्ष्यमाणप्रकारेण संस्तौति ॥ १२१७ ॥ शेषाः -अवशिष्टास्त्रयो भवा येषां ते पुनर्विहितानि-कृतानि सेवितानीतियावत् अर्हदादिस्थानानि-विंशतिस्थानकानि यैस्ते तथा तैः, एवंभूतैर्यैर्जिनगोत्रं-जिननामकर्म अर्ज्यते-उपार्ज्यते तान् अर्हतोऽहं प्रणिपतामि-नमस्कुर्वे ॥ १२१८ ॥

जे एगभवतरिया रायकुले उत्तमे अवयरंति । महसुमिणसूइअगुणा ते अरिहते पणिवयामि ॥
जेसिं जम्मामि महिम दिसाकुमारीओ सुरवरिंदा य । कुव्वंति पहिट्ठमणा ते अरिहंते पणिवयामि ॥
आजम्मपिट्ठु जेसिं देहे चत्तारि अइसया हुंति । लोगच्छेरयभूया ते अरिहते पणिवयामि ॥१२२१॥
जे तिहुनाणसमग्गा खीण नाऊण भोगफलकम्म । पडिवज्जति चरित्त ते अरिहते पणिवयामि ॥
उवउत्ता अपमत्ता सिअझाणा खवगसेणिहयमोहा । पावंति केवल जे ते अरिहते पणिवयामि ॥

ये एकभवान्तरिता उत्तमे राजकुले अवतरन्ति, कीदृशा ये ?–महास्वप्नैश्चतुर्दशभिः सूचिता–ज्ञापिता गुणा येषां ते तथा तानर्हतः प्रणिपतामि–प्रणमामि ॥ १२१९ ॥ येषां जन्मनि महिमां महिमानं वा दिक्कुमार्यश्च षट्पञ्चाशत् सुरवरेन्द्राश्च चतुष्षष्टिः प्रहृष्ट–प्रकर्षेण हर्षितं मनो येषां ते प्रहृष्टमनसः सन्तः कुर्वन्ति, तानर्हत प्रणिपतामीति पूर्ववत् ॥ १२२० ॥ तु इति निश्चितं, येषां देहे शरीरे आजन्मापि–जन्मत आरभ्यापि लोके आश्चर्यभूताश्चत्वारोऽतिशया भवन्ति, 'तेषां च देहोऽद्भुतरूपगन्ध' इत्यादयस्तानर्हतः प्रणिपतामि ॥ १२२१ ॥ ये त्रिभिर्ज्ञानैः–मतिश्रुतावधिभिः समग्राः–सम्पूर्णाः सन्तो भोगः फलं यस्य तद्भोगफलं कर्म क्षीणं ज्ञात्वा चारित्रं प्रतिपद्यन्ते–अङ्गीकुर्वन्ति तानर्हतः प्रणिपतामि ॥ १२२२ ॥ ये उपयुक्ता–उपयोगयुताः पुनरप्रमत्ताः–प्रमादरहिताः पुनः सितं–शुक्लं ध्यानं येषां ते सितध्याना अत एव क्षपकश्रेण्या हतो मोहो यैस्ते तथा, ईदृशाः सन्तः केवलज्ञानं प्राप्नुवन्ति, तानर्हतः प्रणिपतामि ॥ ११२३ ॥

कम्मक्खइया तह सुरकया य-जाणं च अइसया हुंति । एगारसगुणवीसं ते अरिहंते पणिवयामि ॥
जे अट्ठपाडिहारेहिं सोहिआ सेविया सुरिंदेहिं । विहरंति सया काल ते अरिहंते पणिवयामि ॥
पणतीसगुणगिराए जे अ विबोहं कुणंति भव्वाण । महिपीढे विहरंता ते अरिहंते पणिवयामि ॥
अरहंता वा सामन्नकेवला अकयकयसमुग्घाया । सेलेसीकरणेणं होऊणमयोगिकेवलिणो ॥ १२२७ ॥
जे दुचरिममि समए दुसयरिपयडीओ तेरस अ चरमे । खविऊण सिवं पत्ता ते सिद्धा दिंतु मे सिद्धिं॥

ये पुनः येषां कर्मक्षयजाः-कर्मक्षयोत्पन्ना एकादश अतिशया भवन्ति, तथा सुरैः-देवैः कृताश्च एकोनविंशतिरतिशया भवन्ति, तानर्हतः प्रणिपतामि ॥ १२२४ ॥ ये 'अष्टप्रातिहार्यैः' अशोकवृक्षादिभिः शोभिता. पुनः सुरेन्द्रैः सेविता. सदाकाल विचरन्ति, तानर्हतः प्रणिपतामि ॥ १२२५ ॥ पञ्चत्रिंशद्गुणाः यस्यां सा पञ्चत्रिंशद्गुणा या गी-वाणी तया ये च भव्यानां विबोधं-विशिष्टज्ञानं कुर्वन्ति, कीदृशाः सन्तः ?-महीपीठे-पृथ्वीपीठे विचरन्तस्तानर्हत प्रणिपतामि । १२२६ ॥ अर्हन्त.-तीर्थङ्करा वा अथवा सामान्यकेवलिन अकृत कृतो वा समुद्घातः-केवलिसमुद्घातो यैस्ते तथा एवम्भूता ये योगीन्द्राः शैलेशी-करणेन-आत्मप्रदेशस्थिरीकरणरूपेण अयोगिकेवलिनो भूत्वा ॥ १२२७ ॥ द्विचरमे-आयु क्षयसमयात् प्राक्तने समये द्वासप्तति ७२ प्रकृतीर्नामादिकर्मोत्तरप्रकृतीः क्षपयित्वा चः पुनश्चरमे समये त्रयोदश प्रकृतीः क्षपयित्वा शिव-मोक्ष प्राप्ताः, ते सिद्धा मे-मह्यं सिद्धिं ददतु ॥ १२२८ ॥

चरमगतिभागोणावगाहणा जे अ एगसमयंमि । संपत्ता लोगग्ग ते सिद्धा दिंतु मे सिद्धिं ॥१२२९॥
पुव्वपओग असंगा बंधणछेया सहावतो वावि । जेसिं उड्ढा हु गई ते सिद्धा दिंतु मे सिद्धिं ॥
ईसीपब्भाराए उवरिं खलु जोयणंमि लोगंते । जेसिं ठिई पसिद्धा ते सिद्धा दिंतु मे सिद्धिं ॥१२३१॥
जे अ अणंता अपुणब्भवा य असरीरया अणाबाहा । दंसणनाणुवउत्ता ते सिद्धा दिंतु मे सिद्धिं ॥

चरमा-अन्तिमा अङ्गस्य-शरीरस्य त्रिभागेन ऊनावगाहना-देहमानं येषां ते तथा, ये च ईदृशाः सन्तः एकस्मिन्समये लोकाग्रं सम्प्राप्तास्ते सिद्धा मे सिद्धिं ददतु ॥ १२२९ ॥ पूर्वप्रयोगतो धनुर्मुक्तबाणवत्, तथाऽसङ्गात्-निःसङ्गतया कर्ममलापगमेन अलाबुद्रव्यवत्, तथा बन्धनच्छेदात्-कर्मबन्धनच्छेदनेन एरण्डफलवत्, तथा स्वभावतो वापि धूमवत्, येषां ऊर्ध्वा गतिः प्रवर्त्तते ते सिद्धा मे सिद्धिं ददतु ॥ १२३० ॥ ईषत्प्राग्भारायाः-सिद्धिशिलाया उपरि खलु-निश्चयेन एकस्मिन् योजने लोकान्तोऽस्ति, तत्र येषां स्थितिः-अवस्थानं प्रसिद्धमस्ति ते सिद्धा मे सिद्धिं ददतु ॥ १२३१ ॥ चः पुनः येऽनन्ताः, पुनरपुनर्भवाः-न विद्यते पुनर्भवो येषां ते तथा, पुनरशरीरका-न विद्यते शरीरं येषां ते, तथा पुनरनाबाधा-न विद्यते आबाधा-पीडा येषां ते तथा, पुनर्दर्शनं च ज्ञानं च दर्शनज्ञाने तयोरुपयुक्ता दर्शनज्ञानोपयुक्ताः, येषां प्रथमसमये ज्ञानोपयोगो द्वितीयसमये दर्शनोपयोगोऽस्ति, ते सिद्धा मे सिद्धिं ददतु ॥ १२३२ ॥

जेऽणतगुणा विगुणा इगतीसगुणा अ अहव अट्ठगुणा । सिद्धाणंतचउक्का ते सिद्धा दिंतु मे सिद्धिं॥
जह नगरगुणे मिच्छो जाणतोऽवि हु कहेउमसमत्थो । तह जेसिं गुणे नाणी ते सिद्धा दिंतु मे सिद्धिं॥
जे अ अणंतमणुत्तरमणोवमं सासय सयाणंद । सिद्धिसुहं सपत्ता ते सिद्धा दिंतु मे सिद्धिं ॥
जे पंचविहायार आयरमाणा सया पयासंति । लोयाणणुग्गहत्थ ते आयरिए नमसामि ॥१२३६॥

ये सिद्धा अनन्तगुणा–अनन्ता ज्ञानादयो येषु ते तथा, पुनर्विगुणा–विगता वर्णादयो गुणा येभ्यस्ते तथा, च पुनरेकत्रिंशत् संस्थानवर्णादिप्रतिषेधरूपा एव गुणा येषु ते तथा, अथवाऽष्टगुणा–अष्टकर्मक्षयसमुद्भवा अष्टौ गुणा येषु ते तथा, पुन सिद्धं–निष्पन्नम् अनन्तचतुष्कं प्रागुक्तलक्षणं येषां ते तथा, ते सिद्धा मे सिद्धिं ददतु ॥ १२३३ ॥ यथा–म्लेच्छो नगर गुणान्–प्रासादनिवासमधुररसभोजनादीन् जानन्नपि अन्येषां म्लेच्छानां पुरस्तात् कथयितुं असमर्थ –समर्थो न भवति, तथा-तेन प्रकारेण येषां सिद्धानां गुणान् जानन्नपि ज्ञानी कथयितु न समर्थो भवति, ते सिद्धा मे सिद्धिं ददतु ॥ १२३४ ॥ ये च सिद्धिसुखं–मुक्तिसुखं सम्प्राप्तास्ते सिद्धा मे–मह्यं सिद्धिं ददतु, कीदृशं सिद्धिसुखम् ?–' अनंत ' न विद्यते अन्तो–नाशो यस्य तत्तथा, पुनः ' अनुत्तरं ' न विद्यते उत्तरम्–उत्कृष्टं यस्मात्तत्तथा, पुनः अनुपम–न विद्यते उपमा यस्य तत्तथा, पुनः 'सदानन्द' सदा–सर्वस्मिन्काले आनन्दो यत्र तत्तथा ॥ १२३५ ॥ ये ज्ञानादिपञ्चविधाचारम् आचरन्तो लोकानामनुग्रहार्थं सदा प्रकाशयन्ति–प्रकटीकुर्वन्ति तान् आचार्यान् अहं नमस्यामि–नमस्करोमि ॥ १२३६ ॥

जे हुंति जुगे पवरा ते आयरिए नमंसामि ॥
देसकुलजाइरूवाइएहिँ बहुगुणगणेहिँ सजुत्ता । धम्मोवएससत्ता ते आयरिए नमसामि ॥१२३८॥
जे निच्चमप्पमत्ता विगहविरत्ता कसायपरिचत्ता । सारंति नियं गच्छं ते आयरिए नमसामि ॥
जे सारणवारणचोयणाहिँ पडिचोयणाहिँ निच्चंपि । तत्तोवएसदाणा ते आयरिए नमसामि ॥ १२४० ॥
जे मुणियसुत्तसारा परोवयारिक्कतप्परा दिंति ।

ये देशकुलजातिरूपादिकैर्बहुभिर्गुणानां गणैः–समूहैः संयुक्ताः–सहिताः सन्तः युगे प्रवरा–मुख्या भवन्ति, तानाचार्यान्
अहं नमस्यामि ॥ १२३७ ॥ ये नित्यम् अप्रमत्ताः–प्रमादरहिताः, पुनः विकथा–राजकथादिकास्ताभ्यो विरक्ता, पुन
परित्यक्ता कषायाः–क्रोधादयो यैस्ते तथा, पुनर्धर्मोपदेशे सक्ता–लग्नाः यद्वा शक्ताः–समर्थास्तानाचार्यान्नमस्यामि
॥ १२३८ ॥ ये आचार्याः स्मारणावारणाचोदनादिभिः पुनः प्रतिचोदनादिभिर्नित्यमपि निज गच्छं सारयन्ति, तत्र
विस्मृतस्य स्मारणं स्मारणा अशुद्धं पठतो वारणं वारणा, अध्ययनाद्यर्थं प्रेरणं चोदना, कठोरवचनैः प्रेरणं प्रतिचोदना,
इत्थं स्मारणादिभिर्ये स्वगच्छस्य रक्षणं कुर्वन्ति तानाचार्यान्नमस्यामि ॥ १२३९ ॥ मुणितो–ज्ञातः सूत्राणां सारो यैस्ते
तथा, अत एव परोपकारे एवैकस्मिन् तत्पराः सन्तो ये तत्त्वोपदेशदानं ददति, तानाचार्यान्नमस्यामि ॥ १२४० ॥

जेऽणंतगुणा विगुणा इगतीसगुणा अ अहव अट्ठगुणा । सिद्धाणंतचउक्का ते सिद्धा दिंतु मे सिद्धिं॥
जह नगरगुणे मिच्छो जाणंतोऽवि हु कहेउमसमत्थो । तह जेसिं गुणे नाणी ते सिद्धा दिंतु मे सिद्धिं॥
जे अ अणंतमणुत्तरमणोवमं सासय सयाणंद । सिद्धिसुह संपत्ता ते सिद्धा दिंतु मे सिद्धिं ॥
जे पंचविहायार आयरमाणा सया पयासंति । लोयाणणुग्गहत्थं ते आयरिए नमसामि ॥१२३६॥

ये सिद्धा अनन्तगुणा–अनन्ता ज्ञानादयो येषु ते तथा, पुनर्विगुणा–विगता वर्णादयो गुणा येभ्यस्ते तथा, च पुनरेकत्रिंशत् संस्थानवर्णादिप्रतिषेधरूपा एव गुणा येषु ते तथा, अथवाऽष्टगुणा–अष्टकर्मक्षयसमुद्भवा अष्टौ गुणा येषु ते तथा, पुनः सिद्धं–निष्पन्नम् अनन्तचतुष्कं प्रागुक्तलक्षणं येषां ते तथा, ते सिद्धा मे सिद्धिं ददतु ॥ १२३३ ॥ यथा–म्लेच्छो नगरगुणान्–प्रासादनिवासमधुररसभोजनादीन् जानन्नपि अन्येषां म्लेच्छानां पुरस्तात् कथयितुं असमर्थः–समर्थो न भवति, तथा-तेन प्रकारेण येषां सिद्धानां गुणान् जानन्नपि ज्ञानी कथयितु न समर्थो भवति, ते सिद्धा मे सिद्धिं ददतु ॥ १२३४ ॥ ये च सिद्धिसुखं–मुक्तिसुखं सम्प्राप्तास्ते सिद्धा मे–मह्यं सिद्धिं ददतु, कीदृशं सिद्धिसुखम् ?–' अनंत ' न विद्यते अन्तो–नाशो यस्य तत्तथा, पुनः ' अनुत्तर ' न विद्यते उत्तरम्–उत्कृष्टं यस्मात्तत्तथा, पुनः अनुपम–न विद्यते उपमा यस्य तत्तथा, पुनः 'सदानन्द' सदा–सर्वस्मिन्काले आनन्दो यत्र तत्तथा ॥ १२३५ ॥ ये ज्ञानादिपञ्चविधाचारम् आचरन्तो लोकानामनुग्रहार्थं सदा प्रकाशयन्ति–प्रकटीकुर्वन्ति तान् आचार्यान् अहं नमस्यामि–नमस्करोमि ॥ १२३६ ॥

जे हुति जुगे पवरा ते आयरिए नमंसामि ॥

देसकुलजाइरूवाइएहिँ बहुगुणगणेहिं सजुत्ता । जे हुति जुगे पवरा ते आयरिए नमसामि ॥१२३८॥

जे निच्चमप्पमत्ता विगहविरत्ता कसायपरिचत्ता । धम्मोवएससत्ता ते आयरिए नमसामि ॥

जे सारणवारणचोयणाहिं पडिचोयणाहिं निच्चपि । सारंति नियं गच्छ ते आयरिए नमसामि ॥ १२४० ॥

जे मुणियसुत्तसारा परोवयारिक्कतप्परा दिंति । तत्तोवएसदाणं ते आयरिए नमसामि ॥ १२४० ॥

ये देशकुलजातिरूपादिकैर्बहुभिर्गुणानां गणैः–समूहैः संयुक्ताः–सहिताः सन्तः युगे प्रवरा–मुख्या भवन्ति, तानाचार्यान् अहं नमस्यामि ॥ १२३७ ॥ ये नित्यम् अप्रमत्ताः–प्रमादरहिताः, पुनः विकथा–राजकथादिकास्ताभ्यो विरक्ता, पुन परित्यक्ता कषाया'–क्रोधादयो यैस्ते तथा, पुनर्धर्मोपदेशे सक्ता–लग्नाः यद्वा शक्ताः–समर्थास्तानाचार्यान्नमस्यामि ॥ १२३८ ॥ ये आचार्याः स्मारणावारणाचोदनादिभिः पुनः प्रतिचोदनादिभिर्नित्यमपि निज गच्छ सारयन्ति, तत्र विस्मृतस्य स्मारणं स्मारणा अशुद्ध पठतो वारणं वारणा, अध्ययनाद्यर्थं प्रेरणं चोदना, कठोरवचनैः प्रेरणं प्रतिचोदना, इत्थं स्मारणादिभिर्ये स्वगच्छस्य रक्षणं कुर्वन्ति तानाचार्यान्नमस्यामि ॥ १२३९ ॥ मुणितो–ज्ञातः सूत्रार्थो सारो यैस्ते तथा, अत एव परोपकारे एवैकस्मिन् तत्पराः सन्तो ये तत्त्वोपदेशदान ददति, तानाचार्यान्नमस्यामि ॥ १२४० ॥

अत्थमिए जिणसूरे केवलिचदेऽवि जे पईवुव्व । पयडंति इह पयत्थे ते आयरिए नमसामि ॥ १२४१ ॥
जे पावभरक्कते निवडते भवमहधकूवमि । नित्थारयति जीए ते आयरिए नमसामि ॥ १२४२ ॥
जे मायतायबंधवपमुहेहिंतोऽवि इत्थ जीवाण । साहति हिअ कज्ज ते आयरिए नमसामि ॥
जे बहुलद्धिसमिद्धा साइसया सासण पभावति । रायसमा निच्चिंता ते आयरिए नमसामि ॥

जिन-अर्हन्नेव सूरः-सूर्यस्तस्मिन् 'अस्तमिते' अस्त गते सति पुन केवली-सामान्यकेवली स एव चन्द्रस्तस्मिन्नपि अस्तमिते सति प्रदीप इव ये इह-लोके पदार्थान् प्रकटयन्ति-प्रकटीकुर्वन्ति, तानाचार्यान्नमस्यामि ॥ १२४१ ॥ पापस्य यो भरः-अतिशयस्तेन आक्रान्तान् अत एव भवः-ससार एव यो महानन्धकूपस्तस्मिन् निपततो जीवान् ये निस्तारयन्ति तानाचार्यान्नमस्यामि ॥ १२४२ ॥ अत्र-अस्मिन्संसारे ये आचार्या जीवानां मातृतातबान्धवप्रमुखेभ्यो-जननीजनकभ्रात्रादिभ्योऽपि अधिकं कार्यं साधयन्ति, तानाचार्यान्नमस्यामि ॥ १२४३ ॥ बहुभिर्लब्धिभिः समृद्धाः-समृद्धिमन्तः, अत एव सह अतिशयैर्वर्तन्ते इति सातिशयाः सन्तो ये शासन-जिनमतं प्रभावयन्ति-दीपयन्ति, कीदृशाः ?-ये राजसमा-नृपतुल्याः, अत एव निर्गता चिन्ता येभ्यस्ते निश्चिन्तास्तानाचार्यान्नमस्यामि ॥ १२४४ ॥

जे बारसंगसज्झायपारगा धारगा तयत्थाण । तदुभयवित्थाररया तेऽहं झाएमि उज्झाए ॥१२४५॥
पाहाणसमाणेऽवि हु कुणंति जे सुत्तधारया सीसे । सयलजणपूयणिज्जे तेऽहं झाएमि उज्झाए ॥
मोहाहिदट्ठनट्ठप्पनाणजीवाण चेयणं दिंति । जे केऽवि नरिंदा इव तेऽहं झाएमि उज्झाए ॥
अन्नाणवाहिविहुराण पाणिण सुअरसायणं सारं । जे दिंति महाविज्जा तेऽहं झाएमि उज्झाए ॥
गुणवणभंजणमणगयदमणंकुससरिसनाणदाणं जे । दिंति सया भवियाण तेऽहं झाएमि उज्झाए ॥

ये द्वादशाङ्गस्वाध्यायस्य पारगाः—पारगामिनः पुनः तदर्थानां—द्वादशाङ्ग्या अर्थानां धारकाः, पुनः तदुभयस्य—सूत्रार्थरूपस्य विस्तारे रताः—रक्तास्तानुपाध्यायानहं ध्यायामि ॥ १२४५ ॥ ये गुरवो हु—इति निश्चितं पाषाणसमानान्—प्रस्तरतुल्यानपि शिष्यान् सूत्रधारया—सूत्ररूपतीक्ष्णशस्त्रधारया सकलजनानां—सर्वलोकानां पूजनीयान् कुर्वन्ति, तानुपाध्यायान् अहं ध्यायामि ॥ १२४६ ॥ मोह एव अहिः—सर्पस्तेन दष्टा, अत एव नष्टमात्मज्ञानं येषां ते नष्टात्मज्ञानाः, एवम्भूता ये जीवास्तेभ्यो ये केऽपि गुरवः चेतनां—चैतन्यं ददति, के इव ?—नरेन्द्रा इव—विषवैद्या इव, तानुपाध्यायानहं ध्यायामि ॥ १२४७ ॥ अज्ञानमेव व्याधिः—रोगस्तेन विधुराः—पीडितास्तेभ्यः प्राणिभ्यः सारं—प्रधानं श्रुतमेव रसायनं—महारोगनाशकौषधं ये महावैद्या इव गुरवो ददति तानुपाध्यायानहं ध्यायामि ॥ १२४८ ॥ गुणा एव वनानि तानि भञ्जन्तीति गुणवनभञ्जना ये मदाः—जातिमदादयोऽष्टौ त एव गजाः—हस्तिनस्तेषां दमने—वशीकरणे अङ्कुशसदृशं यद् ज्ञानं तस्य दानं ये गुरवो भव्येभ्यः सदा ददति तानुपाध्यायान् अहं ध्यायामि ॥ १२४९ ॥

अत्थमिए जिणसूरे केवलिचदेऽवि जे पईवुव्व । पयडंति इह पयत्थे ते आयरिए नमसामि ॥ १२४१ ॥
जे पावभरक्कते निवडंते भवमहधकूवमि । नित्थारयति जीए ते आयरिए नमसामि ॥ १२४२ ॥
जे मायतायबांधवपमुहेहिंतोऽवि इत्थ जीवाणं । साहति हिअ कज्ज ते आयरिए नमसामि ॥
जे बहुलद्धिसमिद्धा साइसया सासणं पभावति । रायसमा निच्चिता ते आयरिए नमसामि ॥

जिन—अर्हमेव सूरः—सूर्यस्तस्मिन् 'अस्तमिते' अस्त गते सति पुन केवली—सामान्यकेवली स एव चन्द्रस्तस्मिन्नपि अस्तमिते सति प्रदीप इव ये इह—लोके पदार्थान् प्रकटयन्ति—प्रकटीकुर्वन्ति, तानाचार्यान्नमस्यामि ॥ १२४१ ॥ पापस्य यो भरः—अतिशयस्तेन आक्रान्तान् अत एव भवः—ससार एव यो महान धकूपस्तस्मिन् निपततो जीवान् ये निस्तारयन्ति तानाचार्यान्नमस्यामि ॥ १२४२ ॥ अत्र—अस्मिन्ससारे ये आचार्या जीवानां मातृतातबान्धवप्रमुखेभ्यो—जननीजनकभ्रात्रादिभ्योऽपि अधिक कार्य साधयन्ति, तानाचार्यान्नमस्यामि ॥ १२४३ ॥ बहुभिर्लब्धिभि समृद्धाः—समृद्धिमन्तः, अत एव सह अतिशयैर्वर्तन्ते इति सातिशया सन्तो ये शासनं—जिनमतं प्रभावयन्ति—दीपयन्ति, कीदृशा ?—ये राजसमा—नृपतुल्याः, अत एव निर्गता चिन्ता येभ्यस्ते निश्चिन्तास्तानाचार्यान्नमस्यामि ॥ १२४४ ॥

जे दसणनाणचरित्तरूवरयणत्तएण इक्केण । साहंति मुक्खमग्ग ते सव्वे साहुणो वंदे ॥ १२५४ ॥
गयदुविहदुट्ठझाणा जे झाइअधम्मसुक्कझाणा य । सिक्खति दुविह सिक्ख ते सव्वे साहुणो वदे ॥
गुत्तित्तएण गुत्ता तिसल्लरहिया तिगारवविमुक्का । जे पालयति तिपइ ते सव्वे साहुणो वदे ॥
चउविहविगहविरत्ता जे चउविहचउकसायपरिचत्ता । चउहा दिसंति धम्मं ते सव्वे साहुणो वदे॥

ये दर्शनज्ञानचारित्ररूपरत्नत्रयेण मोक्षमार्गं साधयन्ति, कीदृशेन दर्शन० त्रयेण ?–' एकेन ' एकीभावं गतेन–सम्मिलितेनेत्यर्थः, त्रयाणामेकत्वं विना मोक्षमार्गो न सिद्ध्यतीतिभाव., तान् सर्वान् साधून् अह वन्दे ॥ १२५४ ॥ गते द्विविधे–द्विप्रकारे दुष्टध्याने–आर्तरौद्राख्ये येभ्यस्ते गतद्विविधदुष्टध्यानाः, च पुनः ध्याते धर्मशुक्लध्याने यैस्ते तथाभूता सन्ता ये द्विविधशिक्षां–ग्रहणासेवनारूपां शिक्षन्ते, तान् सर्वान् साधून् वन्दे ॥ १२५५ ॥ गुप्तित्रयेण–मनोवाक्कायगुप्तिलक्षणेन गुप्ता गुप्तिमन्तः पुनस्त्रिभिः शल्यैः–मायाशल्यादिभिः रहिता–वर्जितास्तथा त्रिभिर्गौरवैः–ऋद्धिगौरवादिभिर्विमुक्ताः सन्तो ये त्रिपदीं–ज्ञानदर्शनचारित्ररूपां पालयन्ति, तान् सर्वान् साधूनह वन्दे ॥ १२५६ ॥ चतुर्विधाभ्य –चतुष्प्रकाराभ्यः विकथाभ्यो–राजकथादिभ्यो विरक्ताः, पुनः चतुर्विधा–अनन्तानुबन्ध्यादिभेदाच्चतुष्प्रकारा ये चत्वारः कषाया–क्रोधादयस्ते परित्यक्ता यैस्ते तथा, ईदृशाः सन्तो ये दानादिभेदाच्चतुर्धा–चतुर्भिः प्रकारैर्धर्मं दिशन्ति–प्ररूपयन्ति, तान् सर्वान् साधूनह वन्दे ॥ १२५७ ॥

दिणमासजीवियताइं सेसदाणाइ मुणिउ जे नाण । मुत्तिंत दिंति सया तेऽहं झाएमि उज्झाए ॥। 
अन्नाणंधे लोयाण लोयणे जे पसत्थसत्थमुहा । उग्घाडयति सम्म तेऽहं झाएमि उज्झाए ॥१२५१॥
पावन्नवणचंदणरसेण जे खोयपावतावाइं । उवसामयंति सहसा तेऽहं झाएमि उज्झाए ॥१२५२॥
जे रायकुमरतुल्ला गणतत्तिपरा अ सूरिपयजुग्गा । वायंति सीसवग्गं तेऽहं झाएमि उज्झाए ॥१२५३॥

शेषदानानि दिनमासजीवितान्तानि 'मुणित्वा' ज्ञात्वा ये गुरव सदा मुक्त्यन्त ज्ञान ददति, तान् उपाध्यायानहं ध्यायामि, दिन च मासश्च जीवित च–दिनमासजीवितानि तेषु अन्तो येषां तानि शेषदानानि सन्ति इति ज्ञात्वा मुक्तौ अन्तो यस्य तत् मुक्त्यन्तं ज्ञानं–श्रुतज्ञानदान ये ददति तानहं ध्यायामीतिभाव. ॥ १२५० ॥ ये गुरवोऽज्ञानेन अन्धानि(नां) लोकानां लोचनानि–नेत्राणि प्रशस्तशास्त्रमुखात् लोचनपक्षे प्रशस्तशस्त्रमुखात् सम्यक् उद्घाटयन्ति, तानुपाध्यायान् अहं ध्यायामि ॥ १२५१ ॥ पापश्रमणवर्णा एव चन्दनरस तेन ये गुरवः सहसा–अकस्मात् लोकानां पापतापान् उपशामयन्ति, तानुपाध्यायानहं ध्यायामि ॥ १२५२ ॥ ये राजकुमारतुल्याः, च पुन गणतप्तिपरा–गणसमाधानकरणतत्पराः तथा सूरिपदस्य–आचार्यपदस्य योग्याः शिष्यवर्गं वाचयन्ति–शिष्यवर्गाय वाचनां ददति, तानुपाध्यायानहं ध्यायामि ॥ १२५३ ॥

जे दसणनाणचरित्तरूवरयणत्तएण इक्केण । साहंति मुक्खमग्ग ते सव्वे साहुणो वंदे ॥ १२५४ ॥
गयदुविहदुट्ठझाणा जे झाइअधम्मसुक्कझाणा य । सिक्खति दुविह सिक्ख ते सव्वे साहुणो वदे ॥
गुत्तित्तएण गुत्ता तिसल्लरहिया तिगारवविमुक्का । जे पालयति तिपइ ते सव्वे साहुणो वदे ॥
चउविहविगहविरत्ता जे चउविहचउकसायपरिचत्ता । चउहा दिसंति धम्मं ते सव्वे साहुणो वदे॥

ये दर्शनज्ञानचारित्ररूपरत्नत्रयेण मोक्षमार्गं साधयन्ति, कीदृशेन दर्शन० त्रयेण ?–' एकेन ' एकीभावं गतेन–सम्मिलितेनेत्यर्थः, त्रयाणामेकत्व विना मोक्षमार्गो न सिद्ध्यतीतिभाव., तान् सर्वान् साधून् अह वन्दे ॥ १२५४ ॥ गते द्विविधे–द्विप्रकारे दुष्टध्याने–आर्तरौद्राख्ये येभ्यस्ते गतद्विविधदुष्टध्याना , च पुनः ध्याते धर्मशुक्लध्याने यैस्ते तथाभूता सन्त ये द्विविधशिक्षां–ग्रहणासेवनारूपां शिक्षन्ते, तान् सर्वान् साधून् वन्दे ॥ १२५५ ॥ गुप्तित्रयेण–मनोवाक्कायगुप्तिलक्षणेन गुप्ता गुप्तिमन्तः पुनस्त्रिभिः शल्यैः–मायाशल्यादिभि रहिता–वर्जितास्तथा त्रिभिर्गौरवैः–ऋद्धिगौरवादिभिर्विमुक्ताः सन्तो ये त्रिपदीं–ज्ञानदर्शनचारित्ररूपां पालयन्ति, तान् सर्वान् साधूनह वन्दे ॥ १२५६ ॥ चतुर्विधाभ्य -चतुष्प्रकाराभ्यः विकथाभ्यो–राजकथादिभ्यो विरक्ताः, पुनः चतुर्विधा–अनन्तानुबन्ध्यादिभेदाच्चतुष्प्रकारा ये चत्वारः कषाया–क्रोधादयस्ते परित्यक्ता यैस्ते तथा, ईदृशा सन्तो ये दानादिभेदाच्चतुर्द्धा–चतुर्भि. प्रकारैर्धर्मं दिशन्ति–प्ररूपयन्ति, तान् सर्वान् साधूनह वन्दे ॥ १२५७ ॥

दिणमासजीवियताइ सेसदाणाइ मुणिउ जे नाण । मुंचित दिंति सया तेऽहं झापमि उज्झाए ॥१२५०॥
अन्नाणंधे लोयाण लोयणे जे पसत्थसत्थमुहा । उग्घाडयंति सम्म तेऽहं झापमि उज्झाए ॥१२५१॥
वायत्तवयणचदणरसेण जे लोयपावतावाइं । उवसामयंति सहसा तेऽहं झापमि उज्झाए ॥१२५२॥
जे रायकुमरतुल्ला गणतत्तिपरा अ सूरिपयजुग्गा । वायंति सीसवग्ग तेऽहं झापमि उज्झाए ॥१२५३॥

शेषदानानि दिनमासजीवितान्तानि 'मुणित्वा' ज्ञात्वा ये गुरव सदा मुचन्त ज्ञान ददति, तान् उपाध्यायानहं ध्यायामि, दिनं च मासश्च जीवितं च–दिनमासजीवितानि तेषु अन्तो येषां तानि शेषदानानि सन्ति इति ज्ञात्वा मुक्तौ अन्तो यस्य तत् मुञ्चन्त ज्ञान–श्रुतज्ञानदान ये ददति तानहं ध्यायामीतिभाव ॥ १२५० ॥ ये गुरवोऽज्ञानेन अन्धानि(नां) लोकानां लोचनानि–नेत्राणि प्रशस्तशास्त्रमुखात् लोचनपदे प्रशस्तशास्त्रमुखात् सम्यक् उद्घाटयन्ति, तानुपाध्यायान् अहं ध्यायामि ॥ १२५१ ॥ ज्ञापआशब्दा एव चन्दनरस तेन ये गुरवः सहसा–अकस्मात् लोकानां पापतापान् उपशामयन्ति, तानुपाध्यायानहं ध्यायामि ॥ १२५२ ॥ ये राजकुमारतुल्याः, च पुनः गणतप्तिपरा–गणसमाधानकरणतत्पराः तथा सूरिपदस्य–आचार्यपदस्य योग्याः शिष्यवर्गं वाचयन्ति–शिष्यवर्गाय वाचनां ददति, तानुपाध्यायानहं ध्यायामि ॥ १२५३ ॥

जे दसणनाणचरित्तरूवरयणत्तएण इक्केण । साहंति मुक्खमग्ग ते सव्वे साहुणो वंदे ॥ १२५४ ॥
गयदुविहदुट्ठझाणा जे झाइअधम्मसुक्कझाणा य । सिक्खंति दुविह सिक्ख ते सव्वे साहुणो वंदे ॥
गुत्तित्तएण गुत्ता तिसल्लरहिया तिगारवविमुक्का । जे पालयंति तिपइ ते सव्वे साहुणो वंदे ॥
चउविहविगहविरत्ता जे चउविहचउकसायपरिचत्ता । चउहा दिसंति धम्मं ते सव्वे साहुणो वंदे॥

ये दर्शनज्ञानचारित्ररूपरत्नत्रयेण मोक्षमार्गं साधयन्ति, कीदृशेन दर्शन० त्रयेण ?–' एकेन ' एकीभाव गतेन–सम्मिलितेनेत्यर्थः, त्रयाणामेकत्व विना मोक्षमार्गो न सिद्ध्यतीतिभावः, तान् सर्वान् साधून् अहं वन्दे ॥ १२५४ ॥ गते द्विविधे–द्विप्रकारे दुष्टध्याने–आर्तरौद्राख्ये येभ्यस्ते गतद्विविधदुष्टध्यानाः, च पुनः ध्याते धर्मशुक्लध्याने यैस्ते तथाभूता सन्ता ये द्विविधशिक्षां–ग्रहणासेवनारूपां शिक्षन्ते, तान् सर्वान् साधून् वन्दे ॥ १२५५ ॥ गुप्तित्रयेण–मनोवाक्कायगुप्तित्रयेण गुप्ता-गुप्तिमन्तः पुनस्त्रिभिः शल्यैः मायाशल्यादिभिः रहिता–वर्जितास्तथा त्रिभिर्गौरवैः–ऋद्धिगौरवादिभिर्विमुक्ताः सन्तो ये त्रिपदीं–ज्ञानदर्शनचारित्ररूपां पालयन्ति, तान् सर्वान् साधूनहं वन्दे ॥ १२५६ ॥ चतुर्विधाभ्य -चतुष्प्रकाराभ्य. विकथाभ्यो–राजकथादिभ्यो विरक्ताः, पुनः चतुर्विधा–अनन्तानुबन्ध्यादिभेदाच्चतुष्प्रकारा ये चत्वारः कषायाः–क्रोधादयस्ते परित्यक्ता यैस्ते तथा, ईदृशाः सन्तो ये दानादिभेदाच्चतुर्द्धा–चतुर्भिः प्रकारैर्धर्मं दिशन्ति–प्ररूपयन्ति, तान् सर्वान् साधूनहं वन्दे ॥ १२५७ ॥

दिणमासजीवियताइ सेसदाणाइ मुणिउ जे नाण । मुंचंति दिंति सया तेऽहं झाएमि उज्झाए ॥१२५०॥
अन्नाणंधे लोयाण लोयणे जे पसत्थसत्थमुहा । उग्घाडयंति सम्म तेऽहं झाएमि उज्झाए ॥१२५१॥
पावत्तवघणचंदणरसेण जे लोयपावतावाइ । उवसामयंति सहसा तेऽहं झाएमि उज्झाए ॥१२५२॥
जे रायकुमरतुल्ला गणतत्तिपरा अ सूरिपयजुग्गा । वायंति सीसवग्गं तेऽहं झाएमि उज्झाए ॥१२५३॥

शेषदानानि दिनमासजीवितान्तानि 'मुणित्वा' ज्ञात्वा ये गुरव सदा मुञ्चन्त ज्ञान ददति, तान् उपाध्यायानहं ध्यायामि, दिनं च मासश्च जीवितं च-दिनमासजीवितानि तेषु अन्तो येषां तानि शेषदानानि सन्ति इति ज्ञात्वा मुक्तो अन्तो यस्य तत् मुक्तान्तं ज्ञान-श्रुतज्ञानदानं ये ददति तानहं ध्यायामीतिभाव. ॥ १२५० ॥ ये गुरवो अज्ञानेन अन्धानि(नां) लोकानां लोचनानि-नेत्राणि प्रशस्तशास्त्रमुखात् लोचनपक्षे प्रशस्तशस्त्रमुखात् सम्यक् उद्घाटयन्ति, तानुपाध्यायान् अहं ध्यायामि ॥ १२५१ ॥ तापश्चाशद्दर्णा एव चन्दनरसं तेन ये गुरवः सहसा-अकस्मात् लोकानां पापतापान् उपशामयन्ति, तानुपाध्यायानहं ध्यायामि ॥ १२५२ ॥ ये राजकुमारतुल्या, च पुनः गणतप्तिपरा-गणसमाधानकरणतत्पराः तथा सूरिपदस्य-आचार्यपदस्य योग्याः शिष्यवर्गं वाचयन्ति-शिष्यवर्गाय वाचनां ददति, तानुपाध्यायानहं ध्यायामि ॥ १२५३ ॥

जे दसणनाणचरित्तरूवरयणत्तएण इक्केण । साहंति मुक्खमग्ग ते सव्वे साहुणो वदे ॥ १२५४ ॥
गयदुविहदुट्ठझाणा जे झाइअधम्मसुक्कझाणा य । सिक्खंति दुविह सिक्ख ते सव्वे साहुणो वदे ॥
गुत्तित्तएण गुत्ता तिसल्लरहिया तिगारवविमुक्का । जे पालयति तिपइ ते सव्वे साहुणो वदे ॥
चउविहविगहविरत्ता जे चउविहचउकसायपरिचत्ता । चउहा दिसंति धम्मं ते सव्वे साहुणो वदे॥

ये दर्शनज्ञानचारित्ररूपरत्नत्रयेण मोक्षमार्गं साधयन्ति, कीदृशेन दर्शन० त्रयेण ?–' एकेन ' एकीभाव गतेन–सम्मिलितेनेत्यर्थः, त्रयाणामेकत्व विना मोक्षमार्गो न सिद्धयतीतिभावः, तान् सर्वान् साधून् अह वन्दे ॥ १२५४ ॥ गते द्विविधे–द्विप्रकारे दुष्टध्याने–आर्तरौद्राख्ये येभ्यस्ते गतद्विविधदुष्टध्यानाः, च पुनः ध्याते धर्मशुक्लध्याने यैस्ते तथाभूता सन्ता ये द्विविधशिक्षां–ग्रहणासेवनारूपां शिक्षन्ते, तान् सर्वान् साधून् वन्दे ॥ १२५५ ॥ गुप्तित्रयेण–मनोवाक्कायगुप्तिलक्षणेन गुप्ता–गुप्तिमन्तः पुनस्त्रिभिः शल्यैः–मायाशल्यादिभि रहिता–वर्जितास्तथा त्रिभिर्गौरवैः–ऋद्धिगौरवादिभिर्विमुक्ताः सन्तो ये त्रिपदीं–ज्ञानदर्शनचारित्ररूपां पालयन्ति, तान् सर्वान् साधूनह वन्दे ॥ १२५६ ॥ चतुर्विधाभ्य -चतुष्प्रकाराभ्यः विकथाभ्यो–राजकथादिभ्यो विरक्ताः, पुनः चतुर्विधा–अनन्तानुबन्ध्यादिभेदाच्चतुष्प्रकारा ये चत्वारः कषायाः–क्रोधादयस्ते परित्यक्ता यैस्ते तथा, ईदृशाः सन्तो ये दानादिभेदाच्चतुर्द्धा–चतुर्भिः प्रकारैर्धर्मं दिशन्ति–प्ररूपयन्ति, तान् सर्वान् साधूनह वन्दे ॥ १२५७ ॥

दिणमासजीवियताइ सेसदाणाइ मुणिउ जे नाण । मुत्तिंत दिंति सया तेऽहं झाएमि उज्झाए ॥१२५०॥
अन्नाणंधे लोयाण लोयणे जे पसत्थसत्थमुहा । उग्घाडयंति सम्मं तेऽहं झाएमि उज्झाए ॥१२५१॥
बावन्नचंदणरसेण जे लोयपावतावाइं । उवसामयंति सहसा तेऽहं झाएमि उज्झाए ॥१२५२॥
जे रायकुमरतुल्ला गणतत्तिपरा अ सूरिपयजुग्गा । वायंति सीसवग्गं तेऽहं झाएमि उज्झाए ॥१२५३॥

शेषदानानि दिनमासजीवितान्तानि 'मुणित्वा' ज्ञात्वा ये गुरवः सदा मुक्त्यन्तं ज्ञानं ददति, तान् उपाध्यायानहं ध्यायामि, दिनं च मासश्च जीवितं च—दिनमासजीवितानि तेषु अन्तो येषां तानि शेषदानानि सन्ति इति ज्ञात्वा मुक्तौ अन्तो यस्य तत् मुक्त्यन्तं ज्ञानं—श्रुतज्ञानदानं ये ददति तानहं ध्यायामीतिभावः ॥ १२५० ॥ ये गुरवोऽज्ञानेनान्धानि(नां) लोकानां लोचनानि—नेत्राणि प्रशस्तशास्त्रमुखात् लोचनपक्षे प्रशस्तशस्त्रमुखात् सम्यक् उद्घाटयन्ति, तानुपाध्यायान् अहं ध्यायामि ॥ १२५१ ॥ बावनाचन्दनरस एव चन्दनरसः तेन ये गुरवः सहसा—अकस्मात् लोकानां पापतापान् उपशामयन्ति, तानुपाध्यायानहं ध्यायामि ॥ १२५२ ॥ ये राजकुमारतुल्याः, च पुनः गणतप्तिपरा—गणसमाधानकरणतत्पराः तथा सूरिपदस्य—आचार्यपदस्य योग्याः शिष्यवर्गं वाचयन्ति—शिष्यवर्गाय वाचनां ददति, तानुपाध्यायानहं ध्यायामि ॥ १२५३ ॥

जे दसणनाणचरित्तरूवरयणत्तएण इक्केण । साहंति मुक्खमग्ग ते सव्वे साहुणो वंदे ॥ १२५४ ॥
गयदुविहदुट्ठझाणा जे झाइअधम्मसुक्कझाणा य । सिक्खति दुविह सिक्ख ते सव्वे साहुणो वदे ॥
गुत्तित्तएण गुत्ता तिसल्लरहिया तिगारवविमुक्का । जे पालयति तिपइ ते सव्वे साहुणो वदे ॥
चउविहविगहविरत्ता जे चउविहचउकसायपरिचत्ता । चउहा दिसति धम्मं ते सव्वे साहुणो वदे॥

ये दर्शनज्ञानचारित्ररूपरत्नत्रयेण मोक्षमार्गं साधयन्ति, कीदृशेन दर्शन० त्रयेण ?–' एकेन ' एकीभाव गतेन–सम्मिलितेनेत्यर्थः, त्रयाणामेकत्व विना मोक्षमार्गो न सिध्यतीतिभावः, तान् सर्वान् साधून् अह वन्दे ॥ १२५४ ॥ गते द्विविधे–द्विप्रकारे दुष्टध्याने–आर्तरौद्राख्ये येभ्यस्ते गतद्विविधदुष्टध्याना, च पुनः ध्याते धर्म्यशुक्लध्याने यैस्ते तथाभूता सन्ता ये द्विविधशिक्षां–ग्रहणासेवनारूपां शिक्षन्ते, तान् सर्वान् साधून् वन्दे ॥ १२५५ ॥ गुप्तित्रयेण–मनोवाक्कायगुप्तिलक्षणेन गुप्ता–गुप्तिमन्तः पुनस्त्रिभिः शल्यैः–मायाशल्यादिभि रहिता–वर्जितास्तथा त्रिभिर्गौरवैः–ऋद्धिगौरवादिभिर्विमुक्ताः सन्तो ये त्रिपदीं–ज्ञानदर्शनचारित्ररूपां पालयन्ति, तान् सर्वान् साधूनहं वन्दे ॥ १२५६ ॥ चतुर्विधाभ्य –चतुष्प्रकाराभ्य. विक थाभ्यो–राजकथादिभ्यो विरक्ताः, पुनः चतुर्विधा–अनन्तानुबन्ध्यादिभेदाच्चतुष्प्रकारा ये चत्वारः कषायाः–क्रोधादयस्ते परित्यक्ता यैस्ते तथा, ईदृशाः सन्तो ये दानादिभेदाच्चतुर्द्धा–चतुर्भिः प्रकारैर्धर्मं दिशन्ति–प्ररूपयन्ति, तान् सर्वान् साधूनह वन्दे ॥ १२५७ ॥

दिणमासजीवियताइ सेसदाणाइ मुणिउ जे नाण। मुर्चित दिंति सया तेऽहं झापमि उज्झाए ॥।
अन्नाणंधे लोयाण लोयणे जे पसत्थसत्थमुहा। उग्घाडयंति सम्म तेऽहं झापमि उज्झाए ॥१२५१।
बावन्नवण्णचंदणरसेण जे लोयपावतावाइ। उवसामयंति सहसा तेऽहं झापमि उज्झाए ॥१२५२॥
जे रायकुमरतुल्ला गणतत्तिपरा अ सूरिपयजुग्गा। वायंति सीसवग्ग तेऽहं झापमि उज्झाए ॥१२५३॥

शेषदानानि दिनमासजीवितान्तानि 'मुणित्वा' ज्ञात्वा ये गुरव सदा मुञ्चन्त ज्ञान ददति, तान् उपाध्यायानह ध्यायामि, दिनं च मासश्च जीवित च–दिनमासजीवितानि तेषु अन्तो येषां तानि शेषदानानि सन्ति इति ज्ञात्वा मुक्तो अन्तो यस्य तत् मुक्तान्त ज्ञान–श्रुतज्ञानदान ये ददति तानह ध्यायामीतिभाव ॥ १२५० ॥ ये गुरवोऽज्ञानन्ध न्धानि(नां) लोकानां लोचनानि–नेत्राणि प्रशस्तशास्त्रमुखात् लोचनपक्षे प्रशस्तशस्त्रमुखात् सम्यक् उद्घाटयन्ति, तानुपाध्यायान् अह ध्यायामि ॥ १२५१ ॥ द्वापञ्चाशद्वर्णा एव चन्दनरस तेन ये गुरव सहसा–अकस्मात् लोकानां पापतापान् उपशामयन्ति, तानुपाध्यायानह ध्यायामि ॥ १२५२ ॥ ये राजकुमारतुल्या, च पुन गणतप्तिपरा–गणसमाधान करणतत्परा: तथा सूरिपदस्य–आचार्यपदस्य योग्याः शिष्यवर्गं वाचयन्ति–शिष्यवर्गाय वाचनां ददति, तानुपाध्यायानह ध्यायामि ॥ १२५३ ॥

जे दसणनाणचरित्तरूवरयणत्तएण इक्केण । साहंति मुक्खमग्ग ते सव्वे साहुणो वंदे ॥ १२५४ ॥
गयदुविहदुट्ठझाणा जे झाइअधम्मसुक्कझाणा य । सिक्खति दुविह सिक्ख ते सव्वे साहुणो वंदे ॥
गुत्तित्तएण गुत्ता तिसल्लरहिया तिगारवविमुक्का । जे पालयति तिपइ ते सव्वे साहुणो वंदे ॥
चउविहविगहविरत्ता जे चउविहचउकसायपरिचत्ता । चउहा दिसति धम्मं ते सव्वे साहुणो वंदे॥

ये दर्शनज्ञानचारित्ररूपरत्नत्रयेण मोक्षमार्गं साधयन्ति, कीदृशेन दर्शन० त्रयेण ?–' एकेन ' एकीभाव गतेन–सम्मिलितेनेत्यर्थः, त्रयाणामेकत्व विना मोक्षमार्गो न सिद्ध्यतीतिभावः, तान् सर्वान् साधून् अह वन्दे ॥ १२५४ ॥ गते द्विविधे–द्विप्रकारे दुष्टध्याने–आर्तरौद्राख्ये येभ्यस्ते गतद्विविधदुष्टध्यानाः, च पुनः ध्याते धर्मशुक्लध्याने यैस्ते तथाभूता सन्ता ये द्विविधशिक्षा–ग्रहणासेवनारूपां शिक्षन्ते, तान् सर्वान् साधून् वन्दे ॥ १२५५ ॥ गुप्तित्रयेण–मनोवाक्कायगुप्तिलक्षणेन गुप्ता–गुप्तिमन्तः पुनस्त्रिभिः शल्यै –मायाशल्यादिभिः रहिता–वर्जितास्तथा त्रिभिर्गौरवैः–ऋद्धिगौरवादिभिर्विप्रमुक्ताः सन्तो ये त्रिपदीं–ज्ञानदर्शनचारित्ररूपा पालयन्ति, तान् सर्वान् साधूनह वन्दे ॥ १२५६ ॥ चतुर्विधाभ्य -चतुष्प्रकाराभ्यः विकथाभ्यो–राजकथादिभ्यो विरक्ताः, पुनः चतुर्विधा–अनन्तानुबन्ध्यादिभेदाच्चतुष्प्रकारा ये चत्वारः कषायाः–क्रोधादयस्ते परित्यक्ता यैस्ते तथा, ईदृशाः सन्तो ये दानादिभेदाच्चतुर्द्धा–चतुर्भि प्रकारैर्धर्मं दिशन्ति–प्ररूपयन्ति, तान् सर्वान् साधूनह वन्दे ॥ १२५७ ॥

उज्झिअपञ्चपमाया निज्जिअपचिंदिया य पालेंति । पञ्चेव समिईओ ते सव्वे साहुणो वंदे ॥१२५८॥
छज्जीवकायरक्खणनिउणा हासाइछक्कमुक्का जे । धारंति अ वयछक्कं ते सव्वे साहुणो वंदे ॥१२५९॥
जे जियसत्तभया गयअट्ठमया नवावि बंभगुत्तीओ । पालंति अप्पमत्ता ते सव्वे साहुणो वंदे ॥
दसविहधम्मं तह बारसेव पडिमाओ जे अ कुव्वंति । बारसविह तवोवि अ ते सव्वे साहुणो वंदे ॥

उज्झिता त्यक्ताः पञ्च प्रमादा–मद्यादयो यैस्ते तथा, च पुनः निर्जितानि पञ्चेन्द्रियाणि यैस्ते निर्जितपञ्चेन्द्रियाः सन्त पञ्चैव समितीः पालयन्ति, तान् सर्वान् साधून् वन्दे, च पादपूरणे ॥ १२५८ ॥ षड्जीवकायानां–पृथिव्यादीनां रक्षणे निपुणा–दक्षाः, च पुन हास्यादिषट्कात् मुक्ता–रहिताः सन्तो ये व्रतषट्क–प्राणातिपातविरमणादिरात्रिभोजन-पर्यन्तं धारयन्ति, तानित्यादि प्राग्वत् ॥ १२५९ ॥ जितानि इहलोकभयादीनि सप्त भयानि यैस्ते तथा, गता अष्टौ मदा–जातिमदाद्यो येभ्यस्ते गताष्टमदाः, पुन अप्रमत्ताः–प्रमादरहिताः सन्तो ये नवापि ब्रह्मगुप्तीः पालयन्ति, तान् सर्वान् साधून् वन्दे ॥ १२६० ॥ च पुनः ये दशविधं–दशप्रकार धर्म्मं–क्षान्त्यादिकं, तथा द्वादशैव प्रतिमाः–साधुसम्बन्धिनी कुर्वन्ति–धारयन्ति, च पुनः द्वादशविधं तपोऽपि–अनशनादिकं कुर्व्वन्ति, तान् सर्वान् साधूनहं वन्दे ॥ १२६१ ॥

जे सतरसजमगा उव्वूढाट्ठारसहस्ससीलगा । विहरंति कम्मभूमिसु ते सव्वे साहुणो वंदे ॥१२६२॥
जं सुद्धदेवगुरुधम्मतत्तसपत्तिसद्दहणरूवं । वण्णिज्जइ सम्मत्तं तं सम्मद्दसणं नमिमो ॥ १२६३ ॥
जावेगकोडाकोडीसागरसेसा न होइ कम्मठिई । ताव न जं पाविज्जइ तं सम्मद्दसणं नमिमो ॥
भव्वाणमद्धपुग्गलपरियट्टवसेसभवनिवासाणं । जं होइ गंठिभेए तं सम्मद्दसणं नमिमो ॥१२६५॥
जं च तिहा उवसमिअं खओवसमियं च खाइयं चेव । भणियं जिणिंदसमए तं सम्मद्दसणं नमिमो ॥

सप्तदशभेदः संयमः अङ्गे—शरीरे येषां ते तथा, पुनरुद्व्यूढानि—उत्कर्षेण धृतानि अष्टादशसहस्रशीलाङ्गानि यैस्ते तथा, एवम्भूतास्सन्तो ये कर्मभूमिषु पञ्चदशसु विहरन्ति—विचरन्ति, तान् साधून् अहं वन्दे ॥ १२६२ ॥ शुद्धा—निर्दोषाः, देवगुरुधर्मा एतत्तत्त्वसंपत्तिः—तत्त्वसम्पत् तस्याः श्रद्धानं रूपं—स्वरूपं यस्य तत्तथाभूतं यत् सम्यक्त्वं सूत्रे वर्ण्यते तत्सम्यग्दर्शनं गुणं वयं नमामः ॥ १२६३ ॥ यावत् एककोटाकोटिसागरोपमाणि शेषाणि यस्यां सा तथाभूता कर्मस्थितिर्न भवति तावत् यन्न प्राप्यते तत्सम्यग्दर्शनं नमामः ॥ १२६४ ॥ अर्द्धपुद्गलपरावर्त्तप्रमाणोऽवशेषो भवनिवासः—संसारवासो येषां ते तथा, तेषां भव्यानां ग्रन्थेः—घनरागद्वेषपरिणामरूपस्य भेदे सति यत्सम्यक्त्वं भवति, तत्सम्यग्दर्शनं नमामः ॥ १२६५ ॥ च पुनः यत्सम्यक्त्वं जिनेन्द्राणाम्—अर्हतां समये—सिद्धान्ते त्रिधा—त्रिभिः प्रकारैर्भणितं—कथितं, तथाहि—औपशमिकम् अन्तर्मुहूर्त्तस्थितिक१, क्षायोपशमिकं षट्षष्टिसागरोपमस्थितिकं२, च पुनः क्षायिकं त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमस्थितिकं३, तत्र मध्यमं पौद्गलिकं अन्यद्वयमपौद्गलिकं, तत्सम्यग्दर्शनं नमामः ॥ १२६६ ॥

उज्झिअपचपमाया निज्जिअपचिंदिया य पालेंति । पचेव समिईओ ते सव्वे साहुणो वंदे ॥१२५८॥
छज्जीवकायरक्खणनिउणा हासाइछक्कमुक्का जे । धारंति अ वयछक्कं ते सव्वे साहुणो वंदे ॥१२५९॥
जे जियसत्तभया गयअट्ठमया नवावि बंभगुत्तीओ । पालंति अप्पमत्ता ते सव्वे साहुणो वंदे ॥
दसविहधम्मं तह बारसेअ पडिमाओ जे अ कुव्वंति । बारसविहं तवोवि अ ते सव्वे साहुणो वंदे ॥

उज्झिता त्यक्ताः पञ्च प्रमादा—मद्यादयो यैस्ते तथा, च पुनः निर्जितानि पञ्चेन्द्रियाणि यैस्ते निर्जितपञ्चेन्द्रिया सन्त पञ्चैव समितीः पालयन्ति, तान् सर्वान् साधून् वन्दे, च पादपूरणे ॥ १२५८ ॥ षड्जीवकायानां—पृथिव्यादीनां रक्षणे निपुणा—दक्षाः, च पुनः हास्यादिषट्कात् मुक्ता—रहिताः सन्तो ये व्रतषट्कं—प्राणातिपातविरमणादिरात्रिभोजन-पर्यन्तं धारयन्ति, तानित्यादि प्राग्वत् ॥ १२५९ ॥ जितानि इहलोकभयादीनि सप्त भयानि यैस्ते तथा, गता अष्टौ मदा-जातिमदाद्यो येभ्यस्ते गताष्टमदाः, पुनः अप्रमत्ताः—प्रमादरहिताः सन्तो ये नवापि ब्रह्मगुप्ती पालयन्ति, तान् सर्वान् साधून् वन्दे ॥ १२६० ॥ च पुनः ये दशविधं—दशप्रकारं धर्मं—क्षान्त्यादिकं, तथा द्वादशैव प्रतिमाः—साधुसम्बन्धिनी कुर्वन्ति—धारयन्ति, च पुनः द्वादशविधं तपोऽपि—अनशनादिकं कुर्वन्ति, तान् सर्वान् साधूनहं वन्दे ॥ १२६१ ॥

जे सतरसजमगा उव्वूढट्ठारसहस्ससीलगा । विहरंति कम्मभूमिसु ते सव्वे साहुणो वंदे ॥१२६२॥
ज सुद्धदेवगुरुधम्मतत्तसपत्तिसद्दहणरूव । वण्णिज्जइ सम्मत्त त सम्मद्दसण नमिमो ॥ १२६३ ॥
जावेगकोडाकोडीसागरसेसा न होइ कम्मठिई । ताव न ज पाविज्जइ त सम्मद्दसणं नमिमो ॥
भव्वाणमद्धपुग्गलपरियट्टवसेसभवनिवासाण । ज होइ गठिभेए त सम्मदसण नमिमो ॥१२६५॥
ज च तिहा उवसमिअ खओवसमिय च खाइय चेव। भणिय जिणिंदसमए त सम्मदसण नमिमो॥

सप्तदशभेद: संयमः अङ्गे—शरीरे येषां ते तथा, पुनरुद्व्यूढानि—उत्कर्षेण धृतानि अष्टादशसहस्रशीलाङ्गानि यैस्ते तथा, एवम्भूतास्ततो ये कर्मभूमिषु पञ्चदशसु विहरन्ति—विचरन्ति, तान् साधून् अहं वन्दे ॥ १२६२ ॥ शुद्धा—निर्दोषाः, देवगुरुधर्मा एतत्तत्त्वसंपत्तिः—तत्त्वसम्पत् तस्याः श्रद्धानं रूपं—स्वरूपं यस्य तत्तथाभूतं यत् सम्यक्त्वं शास्त्रे वर्ण्यते तत्सम्यग्दर्शनं गुणं वयं नमामः ॥ १२६३ ॥ यावत् एककोटाकोटिसागरोपमाणि शेषाणि यस्यां सा तथाभूता कर्मस्थितिर्न भवति तावत् यन्न प्राप्यते तत्सम्यग्दर्शनं नमामः ॥ १२६४ ॥ अर्द्धपुद्गलपरावर्तप्रमाणोऽवशेषो भवनिवासः—संसारवासो येषां ते तथा, तेषां भव्यानां ग्रन्थेः—घनरागद्वेषपरिणामरूपस्य भेदे सति यत्सम्यक्त्वं भवति, तत्सम्यग्दर्शनं नमामः ॥ १२६५ ॥ च पुनः यत्सम्यक्त्वं जिनेन्द्राणाम्—अर्हतां समये—सिद्धान्ते त्रिधा—त्रिभिः प्रकारैर्भणितं—कथितं, तथाहि—औपशमिकम् अन्तर्मुहूर्त्तस्थितिक१, क्षायोपशमिकं षट्षष्टिसागरोपमस्थितिकं२, च पुनः क्षायिकं त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमास्थितिक३, तत्र मध्यमं पौद्गलिकं अन्यद्वयमपौद्गलिकं, तत्सम्यग्दर्शनं नमामः ॥ १२६६ ॥

उज्झिअपचपमाया निज्जिअपचिंदिया य पालेंति । पचेव समिईओ ते सव्वे साहुणो वंदे ॥१२५८॥

छज्जीवकायरक्खणनिउणा हासाइछक्कमुक्का जे । धारंति अ वयछक्कं ते सव्वे साहुणो वंदे ॥१२५९॥

जे जियसत्तभया गयअट्ठमया नवावि बंभगुत्तीओ । पालंति अप्पमत्ता ते सव्वे साहुणो वंदे ॥

दसविहधम्मं तह बारसेव पडिमाओ जे अ कुव्वंति । बारसविह तवोवि अ ते सव्वे साहुणो वंदे ॥

उज्झिता त्यक्ताः पञ्च प्रमादा–मद्यादयो यैस्ते तथा, च पुनः निर्जितानि पञ्चेन्द्रियाणि यैस्ते निर्जितपञ्चेन्द्रिया ...मितीः पालयन्ति, तान् सर्वान् साधून् वन्दे, च पादपूरणे ॥ १२५८ ॥ षड्जीवकायानां–पृथिव्यादीनां ...हास्यषट्कात् मुक्ता–रहिताः सन्तो ये व्रतषट्क–प्राणातिपातविरमणादिरात्रिभोजन ... ...इहलोकभयादीनि सप्त भयानि यैस्ते तथा, गता अष्टौ मदा– ... पालयन्ति, तान् सर्वान्

सव्वन्नुपणीयागमभणियाण जहट्ठियाण तत्ताण । जो सुद्धो अवबोहो त सन्नाण मह पमाण ॥
जेण भक्खाभक्ख पिज्जापिज्ज अगम्ममवि गम्म । किच्चाकिच्च नज्जइ त सन्नाण मह पमाण ॥१२७३॥
सयलकिरिआण मूल सद्धा लोअंमि तीइ सद्धाए । ज किर हवेइ मूल त सन्नाण मह पमाण ॥
ज मइसुअओहिमय मणपज्जवरूवकेवलमय च । पचविहं सुपसिद्ध त सन्नाण मह पमाण ॥

सर्वज्ञैः-अर्हद्भिः प्रणीता-प्रज्ञप्ता ये आगमाः-सिद्धान्तास्तेषु भणितानां प्रोक्तानां यथास्थितानां-सद्भूतानां तत्त्वानाम्-जीवादिपदार्थानां यः शुद्धोऽवबोधो-ज्ञान तत् सत्ज्ञानं मम प्रमाणमस्तीति शेष ॥ १२७२ ॥ येन ज्ञानेन भक्ष्य च अभक्ष्य च ज्ञायते, तथा पेय च अपेयं च ज्ञायते, अगम्यं गम्यमपि च वस्तु ज्ञायते, कृत्यं च अकृत्यं च ज्ञायते, तत् सत्ज्ञान मम प्रमाणम्, अत्राय भावः-भक्ष्य-अन्नादि, अभक्ष्यं-मांसादि, पेय-वस्त्रपूतजलादि, अपेय-सुरादि, गम्यं-स्वस्त्र्यादि, अगम्यं-परस्त्रीभगन्यादि, कृत्य-अहिंसादि, अकृत्य-हिंसादीति, ज्ञानं विना एतद्विवेको न भवतीत्यर्थः ॥ १२७३ ॥ लोके सकलक्रियाणां-सर्वशुभानुष्ठानानां मूल श्रद्धाऽस्ति, तस्या श्रद्धाया मूल किलेति-निश्चयेन यत् ज्ञान भवति, तत् सज्ज्ञान मम प्रमाणम् ॥ १२७४ ॥ यत् ज्ञान पञ्चविध-पञ्चप्रकार सुप्रसिद्ध, तदेव पञ्चविधत्वं विशेषणद्वारेणाह-कीदृशम् ?-मति१ श्रुता२ऽवधय३ स्वरूपमस्येति-मतिश्रुतावधिमयं, च पुनः मनःपर्यव४ केवल५स्वरूपमस्येति मन.पर्यवकेवलमयं तत्सज्ज्ञान मम प्रमाणम् ॥ १२७५ ॥

पण वारा उवसमिअ खओवसमिय असखसो होइ । ज खाइअ च इक्कसि त सम्मदसण नमिमो ॥
ज धम्मदुममूल भाविज्जइ धम्मपुरप्पवेस च । धम्मभवणपीढ च त सम्मदसण नमिमो ॥१२६८॥
ज धम्मजयाहार उवसमरसभायण च ज विंति । मुणिणो गुणरयणनिहिं त सम्मदसण नमिमो ।
जेण विणा नाणंपिहु अपमाण निप्फल च चारित्त । मुक्खोऽवि नेव लब्भइ त सम्मदसण नमिमो ॥
ज सद्दहाणलक्खणभूसणपमुहेहिं वहुअभेएहिं । भणिज्जइ समयमी त सम्मदसण नमिमो ॥

यत् औपशमिकम् आसंसारं पञ्च वारान् भवति, तथा क्षायोपशमिकम् असङ्ख्यवारान् भवति, च पुन क्षायिकम् एकश'–एकवारं भवति, तत्सम्यग्दर्शन नमामः ॥ १२६७ ॥ यत् सम्यक्त्व धर्मद्रुमस्य–धर्मरूपवृक्षस्य मूल–मूलमिव भाव्यते, च पुनः धर्मरूपपुरस्य प्रवेश–प्रवेशद्वारमिव भाव्यते, तथा धर्मरूपं यद्भवन–मन्दिर तस्य पीठ वा–पीठमिव भाव्यते, तत्सम्यग्दर्शन नमामः ॥ १२६८ ॥ तथा–यत्सम्यक्त्वं धर्मरूपस्य जगत आधारमिवाधारं मुनयो ब्रुवन्ति–कथयन्ति, च पुनः यत्सम्यक्त्वमुपशमरूपरसस्य भाजनम्–पात्रमिव भाजन ब्रुवन्ति, तथा–गुणा एव रत्नानि तेषां निधिमिव निधिस्त्व यत्सम्यक्त्व ब्रुवन्ति, तत् सम्यग्दर्शन नमामः ॥ १२६९ ॥ येन सम्यक्त्वेन विना ज्ञानमपि अप्रमाण, च पुनश्चारित्रं निष्फल, तथा मोक्षोऽपि नैव लभ्यते, तत् सम्यग्दर्शन नमामः ॥१२७०॥ बहवो भेदा येषां ते तथा तै., श्रद्धा४ लक्षण५ भूषण५–प्रमुखैर्यत्सम्यक्त्व समये–सिद्धान्ते भण्यते, तत्सम्यग्दर्शनं वयं नमामः । परमार्थसंस्तवादीनि चत्वारि श्रद्धानानि, शमसंवेगादीनि पञ्च लक्षणानि, जिनशासने कौशलमित्यादीनि पञ्च भूषणानि ॥ १२७१ ॥

जं देसविरइरूवं सव्वविरइरूवयं च अणुकमसो । होइ गिहीण जईण तं चारित्तं जए जयइ ॥
नाणंपि दंसणंपि अ संपुण्णफलं फलंति जीवाणं । जेण च्चिअ परिअरिया तं चारित्तं जए जयइ ॥
जं च जईणं जहुत्तरफलं सुसामाइयाइ पंचविहं । सुपसिद्धं जिणसमए तं चारित्तं जए जयइ ॥
जं पडिवन्नं परिपालियं च सम्मं परूवियं दिन्नं । अन्नेसिं च जिणेहिवि तं चारित्तं जए जयइ ॥
छक्खंडाणमखंडं रज्जसिरिं चइअ चक्कवट्टीहिं । जं सम्मं पडिवन्नं तं चारित्तं जए जयइ ॥१२८५॥

यच्चारित्रं देशविरतिरूपं च पुनः सर्वविरतिरूपकं अनुक्रमेण 'गृहिणां' गृहस्थानां 'यतीनां' साधूनां भवति, गृहिणां देशविरतिरूपं यतीनां सर्वविरतिरूपमित्यर्थः, तच्चारित्रं जगति जयति, सर्वोत्कर्षेण वर्त्तते इत्यर्थः ॥१२८१॥ ज्ञानमपि दर्शनमपि च उभे अपि येन चारित्रेण 'परिकरिते' परिवृते एव जीवानां सम्पूर्णफलं यथा स्यात्तथा 'फलतः' फलं दत्तः, सम्पूर्णानि फलानि यत्र कर्मणि तत्तथेतिक्रियाविशेषणं, तच्चारित्रं जगति जयति ॥ १२८२ ॥ च पुनर्यच्चारित्रं 'जिनसमये' जिनसिद्धान्ते 'यतीनां साधूनां सुष्ठु–शोभनं सामायिकादि 'पंचविधं' पंचप्रकारं सुतराम्–अतिशयेन प्रसिद्धं वर्त्तते 'यथोत्तर' उत्तरोत्तराधिकं फलं यस्य तत्तथा, तच्चारित्रं जगति जयति ॥ १२८३ ॥ जिनैरपि यच्चारित्रं 'प्रतिपन्नं' अङ्गीकृतं पुनः परिपालितं पुनः सम्यक् प्ररूपितं–उपदिष्टं अन्येभ्यो दत्तं च तच्चारित्रं जगति जयति ॥ १२८४॥ चक्रवर्त्तिभिः अखण्डां षण्णां खण्डानां राज्यश्रियं–राज्यलक्ष्मीं त्यक्त्वा यच्चारित्रं सम्यक् प्रतिपन्नं–अङ्गीकृतं, तच्चारित्रं जगति जयति ॥१२८५ ॥

केवलमणोहिणंपि हु वयण लोयाण कुणइ उवयार । ज सुयमइरूवेण त सन्नाण मह पमाण ॥
सुयनाण चेव दुवालसगरूव परूविअ जस्थ । लोयाणुवयारकर त सन्नाण मह पमाण ॥ १२७७॥
तत्तुच्चिय ज भव्वा पढति पाढंति दिंति निसुणति । पूयति लिहावति अ त सन्नाण मह पमाण ॥
जस्स बलेण अज्जवि नज्जइ तियलोयगोयरवियारो । करगहियामलयंपिव त सन्नाण मह पमाण ॥
जस्स पसाएण जणा हवंति लोयमि पुच्छणिज्जा य । पूज्जा य वरणिज्जा त सन्नाण मह पमाण ॥

केवलमनःपर्यायावधीनामर्थात् केवलादिज्ञानत्रयधारिणामपि, वचनं यत् श्रुतमतिज्ञानरूपेण लोकानां–भव्यजन्तूनां उपकारं करोति तत्–तस्मात्कारणात् सत् ज्ञानम्–मतिश्रुतरूपं मम प्रमाणम् ॥१२७६॥ लोकानामुपकारकम् आचारादिद्वादशाङ्गरूपं श्रुतज्ञानमेव यत्र प्ररूपित तत् सज्ज्ञानं मम प्रमाणम् ॥ १२७७ ॥ तत.–तस्मात्कारणादेव भव्या यत् श्रुतज्ञानं पठन्ति पाठयन्ति ददति निशृण्वन्ति–आकर्णयन्ति पूजयन्ति लेखयन्ति च तत् सत्ज्ञान मम प्रमाणम् ॥ १२७८ ॥ यस्य श्रुतज्ञानस्य बलेन अद्यापि त्रैलोक्यगोचरः–त्रिभुवनविषयो विचार', करे–हस्ततले गृहीतम्, आमलक–आर्द्रामलकफलमिव ज्ञायते तत् सज्ज्ञान मम प्रमाणम् ॥ १२७९ ॥ यस्य–श्रुतज्ञानस्य प्रसादेन जना–लोका लोके–लोकमध्ये प्रच्छनीयाः–प्रष्टुं योग्याः च पुन' पूज्या'–पूजनीयाः च पुनः वर्णनीया–वर्णयितु योग्या भवन्ति, तत्सज्ज्ञान मम प्रमाणम् ॥ १२८० ॥

माया य मयणसुंदरिपमुहाओ राणियाओ समयंमि । सुहझाणा मरिऊण तत्थेव य सुरवरा जाया ॥
तत्तो चविऊण इमे मणुअभव पाविऊण कयधम्मा । होहिंति पुणो देवा एव चत्तारि वाराओ ॥
सिरिपालभवाउ नवमे भवंमि संपाविऊण मणुयत्त । खविऊण कम्मरासिं सपाविस्सति परमपयं ॥
एव भो मगहेसर ! कहिय सिरिपालनरवरचरित्त । सिरिसिद्धचक्कमाहप्पसजुअ चित्तचुज्जकर ॥

माता-कमलप्रभा च पुन मदनसुन्दरीप्रमुखा राज्य' स्वायुषोऽवसानसमये शुभध्यानान्मृत्वा तत्रैव च-नवमे देवलोके सुरवरा जाताः ॥ १२०० ॥ ततः-तस्माद्देवलोकाच्च्युत्वा इमे-सर्वेऽपि श्रीपालादिजीवा मनुजभव प्राप्य कृतो धर्मो यैस्ते कृतधर्माणः सन्तः पुनः देवा भविष्यन्ति, एव चतुरो वारान् मनुष्या देवाश्च भविष्यन्ति ॥ १२०१ ॥ श्रीपालभवान्नवमे भवे मनुजत्व-मनुष्यत्व सम्प्राप्य कर्मणां राशिं-समूहं क्षपयित्वा परमपद-मोक्षं सम्प्राप्स्यन्ति ॥ १२०२ ॥ श्रीगौतमस्वामी श्रेणिकनृपं वक्ति ' भो मगधेश्वर ' मगधाभिधदेशस्वामिन् ! एवम्-अमुना प्रकारेण श्रीपालनाम्नो नरवरस्य-राज्ञः चरित्र कथितं, कीदृशं ?-श्रीसिद्धचक्रस्य यन्माहात्म्यं तेन सयुतं-युक्त, पुनः लोकानां चित्तेषु चोद्यम्-आश्चर्यं करोतीति चित्तचोद्यकरम् ॥ १२०३ ॥

कप्पतरुस्स व जस्सेरिसाउ सुरनरवराण रिद्धीओ । कुसुमाइँ फल च सिव त तवपयमेस वदामि ॥
अइतमसज्झाइ लीलाइवि सव्वलोयकज्जाइ । सिज्झति झत्ति जेण त तवपयमेस वदामि ॥
दहिदुव्वियाइमंगलपयत्थसत्थंमि मंगल पढम । जं वन्निज्जइ लोए त तवपयमेस वदामि ॥
एव च संथुणतो सो जाओ नवपएसु लीणमणो । तह कहवि जहा पिक्खइ अप्पाणं तमय चेव ॥
एयमि समयकाले सहसा पुण्ण च आउयं तस्स । मरिऊण सिरिपालो नवमे कप्पंमि सपत्तो ॥

कल्पतरोः—कल्पवृक्षस्य इव यस्य तपस ईदृशः सुरवराणां नरवराणां च ऋद्धयः—सम्पद कुसुमानि—पुष्पाणि सन्ति, न पुनः शिवं—मोक्ष फलं वर्तते, तवपःपदमेषोऽहं वन्दे ॥ १२६५ ॥ अत्यन्तं असाध्यानि—साधयितुमशक्यानि सर्वाणि लोकानां कार्याणि येन तपसा लीलयाऽपि—हेलया एव झटिति—शीघ्र सिध्यन्ति तवपःपदमेषोऽह वन्दे ॥ १२६६ ॥ लोके दधिदूर्वादिमङ्गलपदार्थानां सार्थे—समूहे यत्तपः प्रथम मङ्गल वर्ण्यते, तस्य भावमङ्गलरूपत्वात्, तवप पदमेषोऽह वन्दे—स्तवीमि ॥ १२६७ ॥ एवं—अमुना प्रकारेण च संस्तुवन्—सम्यक् स्तुतिं कुर्वन् स श्रीपालः तथा कथमपि नवपदेषु लीनं—लग्नं मनो यस्य स लीनमना जातः, यथा आत्मान [ तन्मानं ] तन्मयं—नवपदमयमेव प्रेक्षते—पश्यति ॥ १२६८ ॥ एव स्मिन् समयरूपे काले सहसा—अकस्मात् तस्य—श्रीपालस्य आयुश्च पूर्ण, तदा श्रीपालो मृत्वा नवमे कल्पे—आनतदेवलोके सम्प्राप्तः ॥ १२६९ ॥

साहुपयविराहणया आराहणया य दुक्खसुक्खाइं । रुप्पिणिरोहिणीजीवेहिं किं नहु पत्ताइ गुरुयाइं ॥ १३०९ ॥

दसणपय विसुद्ध परिपालतीइ निच्चलमणाए । नारीइवि सुलसाए जिणराओ कुणइ सुपससं ॥

नाणपयस्स विराहणफलमि नाओ हवेइ मासतुसो । आराहणाफलमी आहरण होइ सीलमई ॥

चारित्तपय तह भावओवि आराहिय सिवभवमि । जेयं जंबुकुमारो जाओ कयजणचमुक्कारो ॥

वीरमईए तह कहवि तवपयमाराहिय सुरतरुव्व । जह दमयतीइ भवे फलियं तं तारिसफलेहिं ॥

साधुपदस्य विराधनया आराधनया च क्रमेण रुक्मिणीरोहिणीजीवाभ्यां गुरूकाणि–महान्ति दुःखानि सुखानि च किं न हि प्राप्तानि ?, प्राप्तान्येवेत्यर्थः ॥ १३०६ ॥ विशुद्ध–निर्मलं सम्यग्दर्शनपद परि–सामस्त्येन पालयन्त्या', पुन. निश्चल मनो यस्या सा तथा तस्या नार्या अपि सुलसाया–नागपत्न्या जिनराजो–वर्द्धमानः सुतरां प्रशसां करोति ॥ १३१० । ज्ञानपदस्य विराधनाफले मापतुषः साधुर्ज्ञातो–दृष्टान्तो भवति, विधते आराधनाफले शीलवतीनाम सती आहरण–दृष्टान्तो भवति ॥ १३११ ॥ शिवकुमारभवे भावतोऽपि चारित्रपद तथा–तेन प्रकारेण आराधित येन जम्बूकुमारो जातः, कीदृश. ?–कृतो जनानां–लोकानां चमत्कारो येन स तथा ॥ १३१२ ॥ वीरमत्या–नृपराज्ञ्या तथा–तेन प्रकारेण कथमपि तपःपदमाराधित, यथा दमयन्त्या–नलनरेन्द्रपट्टराज्ञ्या भवे तत्तपः सुरतरुरिव–कल्पवृक्ष इव तादृशैः फलैः फलितम् ॥ १३१३ ॥

तं सोऊण सेणियराओ नवपयसमुल्लसियभावो । पभणेइ अहह केरिसमेयाण पयाण माहप्पं ? ॥ १३०४ ॥

तो भणइ गणी नरवर ! पत्तं अरिहंतपयपसाएण । देवपालेण रज्जं सक्कत्तं कत्तिएणावि ॥ १३०५ ॥

सिद्धपयं झायंता के के सिवसंपयं न संपत्ता । सिरिपुंडरीयपंडवपउमपमुणिदाइणो लोए ॥ १३०६ ॥

नाहियवायसमज्जियपावभरोऽवि हु पएसिनरनाहो । जं पावइ सुररिद्धिं आयरियपयप्पसाओ सो ॥ १३०७ ॥

लहुयंपि गुरुवइट्ठं आराहंतेहिं वयरमज्झायं । पत्तो सुसाहुवाओ सीसेहिं सीहगिरिगुरुणो ॥ १३०८ ॥

तत् श्रीपालचरित्रं श्रुत्वा श्रेणिकराजो नवपदेषु समुल्लसितो भावो यस्य स तथाभूतः सन् प्रजल्पति भणति-कथयति, 'अहह' इति आश्चर्ये । एतेषां पदानां कीदृशं माहात्म्यं वर्त्तते ?, अचिन्त्यमित्यर्थः ॥ १३०४ ॥ ततः-तदनन्तरं गणोऽस्यास्तीति गणी-गणधरगौतमो भणति, हे नरवर-हे राजन् ! अर्हत्पदस्य प्रसादेन देवपालेन-श्रेष्ठिसेवकेन राज्यं प्राप्तं, कार्तिकेन श्रेष्ठिनापि शक्रत्वम्-इन्द्रत्वं प्राप्तम् ॥ १३०५ ॥ सिद्धपदं ध्यायन्तो लोके श्रीपुण्डरीकपाण्डवपद्मपमुनीन्द्रादयः के के शिवसम्पदं-मुक्तिसमृद्धिं न सम्प्राप्ताः ?, बहवः सम्प्राप्ता इत्यर्थः, पद्मो-रामचन्द्रः ॥ १३०६ ॥ नास्तिकवादेन समर्जितः-सञ्चितः पापोत्कर्षो येन स तथाभूतोऽपि प्रदेशिनरनाथः-प्रदेशिनामा नृपो यत् सुरऋद्धिं-देवर्द्धिं प्राप्नोति, स आचार्यपदस्य प्रसादः ॥ १३०७ ॥ गुरुणा-सिंहगिरिणा उपदिष्ट-निवेदितं लघुवयसमपि वज्र(ज्रं)-वज्र(स्वा)नामकं उपाध्याय-वाचनाचार्यं आराधयद्भिः सुसाधुवादः सम्यग्विनीताः शिष्या इत्येवंरूपः प्राप्तः ॥ १३०८ ॥

-त सोऊण सेणिअनरनाहो पमुइओ सचित्तमि । रोमचकवचिअतणू वद्धावणिय च से देई ॥
इत्थंतरमि तिहुयणभाणू सिरिवद्धमाणजिणनाहो । अइसयसिरीसणाहो समागओ तत्थ उज्जाणे ॥
देवेहिं समवसरण रइय अच्चंतसुंदर सार । सिरिवद्धमाणसामी उवविट्ठो तत्थ तिजयपहू ॥१३२१॥
गोयमपमुहेसु गणीसरेसु सक्काइएसु देवेसु । सेणिअपमुह निवेसु अ तहिं निविट्ठेसु सव्वेसु ॥
सेणिअमुद्दिस्स पहू पभणइ नरनाह ! तुज्झ चित्तमि । नवपयमाहप्पमिणं अइगुरुयं कुणइ अच्छरियं॥

तद्वचन श्रुत्वा श्रेणिकनरनाथः स्वचित्ते प्रमुदितो—हर्षितः, पुनः रोमाञ्चैः—रोमोद्गमैः कवचिता—कवचयुक्ता तनुः—शरीर यस्य स तथाभूतः सन् 'से' त्ति तस्य—तस्मै इत्यर्थः, वर्धापनिकां ददाति—यथोचितं द्रव्यं ददातीत्यर्थः ॥ १३१९ ॥ अत्रान्तरे—अस्मिन्नवसरे त्रिभुवनभानुः—त्रैलोक्यसूर्यः श्रीवर्द्धमानजिननाथः अतिशयश्रिया—प्रातीहार्याद्यतिशयलक्ष्म्या सनाथः—सहितस्तत्रोद्याने समागतः ॥ १३२० ॥ देवैः अत्यन्तसुन्दर सारं—प्रधानं समवसरणं रचितं, तत्र—तस्मिन् समवसरणे त्रिजगत्प्रभुः श्रीवर्द्धमानस्वामी उपविष्टः ॥ १३२१ ॥ गौतमप्रमुखेषु गणीश्वरेषु—गणभृद्वरेषु शक्रादिकेषु—सौधर्मेन्द्रादिषु देवेषु च पुनः श्रेणिकप्रमुखेषु नृपेषु—राजसु सर्वेषु तत्र समवसरणे निविष्टेषु—उपविष्टेषु सत्सु ॥ १३२२ ॥ श्रेणिकमुद्दिश्य—श्रेणिकनृपस्य नामोच्चारं कृत्वा प्रभुः—श्रीवर्द्धमानस्वामी प्रभणति—प्रकर्षेण कथयति, हे नरनाथ—हे राजन् ! इद नवपदमाहात्म्य तव चित्ते अतिगुरुकं—महत्तरं आश्चर्यं करोति ॥ १३२३ ॥

किं बहुणा मगहेसर! एयाण पयाण भत्तिभावेण । त आगमेसि होहिसि तित्थयरो नत्थि संदेहो ॥
तम्हा एयाइ पयाइ चेव जिणसासणस्स सव्वस्स । नाऊण भो भविया ! आराहह सुद्धभावेण ॥
एयाइ च पयाइ आराहताण भव्वसत्ताण । हुतु सयावि हु मगलकल्लाणसमिद्धिविद्धीओ ॥
एव तिकालगोअरनाणे सिरिगोयमम्मि गणनाहे । कहिऊण ठिए सेणियराओ जा नमवि मुणिनाह ॥
उट्ठेइ तओ हरिसियचित्तो ता तत्थ कोवि नरनाह । विन्नवइ देव ! वद्धाविज्जसि वीरागमेण तुम ॥

हे मगधेश्वर ! किं बहुना कथनेन ?, एतेषां पदानां भक्तिभावेन—भक्तिपरिणामेन त्व आगमिष्यद्भवे तीर्थङ्करो भविष्यसि, अत्रार्थे नास्ति सन्देहः ॥ १३१४ ॥ तस्मात् एतानि पदान्येव जिनशासनस्य सर्वस्य ज्ञात्वा भो भविका ! भो भव्या वा शुद्धभावेन यूयं आराधयत ॥ १३१५ ॥ एतानि च पदानि आराधयतां भव्यसत्त्वानां—भव्यजीवानां सदापि हु इति निश्चित मङ्गलकल्याणसमृद्धिवृद्धयो भवन्तु, मङ्गलं—विपदुपशमरूप, कल्याण—सम्पदुत्कर्षरूप, समृद्धिवृद्धयः—परिवारादिवृद्धिरूपा भवन्तु इत्यर्थः ॥ १३१६ ॥ एवं—अमुना प्रकारेण त्रिकालगोचरं—त्रिकालविषयं ज्ञानं यस्य स तथा, तस्मिन् गौतमे गणनाथे—गणेश्वरे कथयित्वा स्थिते सति श्रेणिकराजो मुनिनाथं नत्वा यावत् ॥ १३१७ ॥ ततः स्थानात् उत्तिष्ठति, तावत् हर्षितं चित्तं यस्य स तथाभूतः कोऽपि पुरुषः तत्र प्रदेशे नरनाथं—राजान विज्ञपयति, 'हे देव' हे—महाराज ! वीरस्य प्रभोरागमेन—अत्रागमनेन त्वं वर्द्धाप्यसे ॥ १३१८ ॥

रूवाईअसहावो केवलसन्नाणदंसणाणंदो । जो चेव य परमप्पा सो सिद्धप्पा न संदेहो ॥ १३२८ ॥
पंचविहायारमओ आयम्मिअ होइ आयरिओ ॥
पचप्पत्थाणमयायरियमहामतझाणलीलमणो । पचविहायारमओ आयम्मिअ होइ आयरिओ ॥
महपाणज्झायदुवालसगसुत्तत्थतदुभयरहस्सो । सज्झायतप्परप्पा पसप्पा चेव उवज्झाओ ॥१३३०॥

रूप पौद्गलिकं, रूपं अतीतः अतिक्रान्तः स्वभावो यस्य स तथा, अत एव केवलाः–परिपूर्णाः सज्ज्ञानदर्शनानन्दा यस्य स तथाभूतो य एव परात्मा स सिद्धात्मा उच्यते, नात्र सन्देहः ॥ १३२८ ॥ पञ्चप्रस्थानमयो यः आचार्यसम्बन्धी महामन्त्रः–प्रधानमन्त्रस्तस्य ध्याने लीनं मनो यस्य स तथा, पुनः पञ्चविधो यः आचारः स प्रधान यस्य सः तथाभूतः आत्मा एव आचार्यो भवति, पञ्च प्रस्थानानि च विद्यापीठ१ सौभाग्यपीठ२ लक्ष्मीपीठ३ मन्त्रयोगराजपीठ४ सुमेरुपीठ५–नामानि, एषामर्थस्तु सूरिमन्त्रकल्पात् ज्ञेयः, भावध्यानमालाप्रकरणे तु अन्यथा पञ्च प्रस्थानान्युक्तानि, तथाहि–अभयप्रस्थानं१ अकरणप्रस्थान२ अहमिन्द्रप्रस्थानं३ तुल्यप्रस्थानं४ कल्पप्रस्थान५ चेति, एषां पञ्चानां स्वामिनः पञ्चपरमेष्ठिनः इत्यादि ॥ १३२९ ॥ महाप्राणेन–ध्यानविशेषेण ध्यातं–चिन्तितं द्वादशाङ्गानां सूत्रस्य अर्थस्य तदुभयस्य च रहस्य येन स तथा पुनः स्वाध्याये–वाचनादिपञ्चप्रकारे तत्पर आत्मा यस्य स तथाभूत एव आत्मा एव उपाध्यायः ॥ १३३० ॥

अथ श्री महोटो बासठियो लि
स्यते जीव १ गइ २ इंडिय ३ का
ए ४ जोग ५ वेए ६ कसाय ७ ले
स्सा ८ सम्मत्त ए नाण १० दंसण
११ सजय १२ उवओग १३ आहा
रे १४।१ भासग १५ परित्त १६
पज्जत्त १७ सुहुम १८ सन्नि १ए भ
वहि २० चरिमेय २१ जीवेयखेत्त
बंधे पुग्गल ए महादभ्मएचेव २ ए
२ गाथानो विस्तार कहेछे

१ समुचय जीवमा जीवना भेद १४
गुणठाणा १४ जोग १५ उपयोग
१२ लेशा ६ इति १ द्वार

१ नरक गतिमा जीवना भेद ३ स
ज्ञीनो अप्र० १ ने प्रजासो २ अ
सज्ञीनो अप्र० ३ गुण० ४ प्रथम
जोग।११।४ मनना ४ वचनना
१ वैक्रेय १ वैक्रेयनो मिश्र १ का
र्मणकायजोग एवं ११ उपयोग ए
३ ज्ञान ३ अज्ञान ३ दर्शने ले
शा ३ प्रथम

२ तिर्यंचनि गतिमा जीवना भेद १४

गुण० ५ प्रथम जोग १३ आहा
रकना २ वर्जिने उप० ए॥ ३ ज्ञान
३ अज्ञान ३ दर्शन लेशा ६
३ तिर्यंचणीमा जीवना भेद २ संज्ञी
नो अप्र० १ ने प्रजासो २ गुण०
५ प्रथम जोग १३ उप० ए ज्ञान
३ अज्ञान ३ दर्श० ३ लेशा ६
४ मनुष्यनि गतिमा जीवना भेद ३
संज्ञीनो अप्र० १ प्रजासो २ अ
संज्ञीनो अप्र० गुण० १४ जोग
१५ उप० १२ लेशा ६

५ मनुष्यणीमां जीवना भेद २ सज्ञी
ना गुण १४ जोग १३ आहार
कना २ वर्जिने उप १२ लेशा ६
६ देवतानि गतिमा जीवना भेद ३
संज्ञीनो अप्र० १ ने प्रजासो २
असंज्ञीनो अप्र० ३ गुण० ४ प
हिला जोग ११। ४ मनना ४ व
चनना २ वैक्रेयना १ कार्मणनो
एवं ११ उप ए लेशा ६
७ देवागनामा जीवना भेद २ सज्ञि
नो अप्रजासो १ ने प्रजासो २

गुण ४ प्रथम जोग ११। ४ मनना
४ वचनना २ वैक्रेयना ने १ का
र्मणनो एव ११ उपयोग ए लेशा ४
८ सिद्धगतिमा जीवना भेद नथि गु
णठाणा नथि जोग नथि उपयो २
केवलज्ञान १ केवलदर्शन २ ले
शा नथि एहनो अल्पबहुत्व सर्व
थि थोडि मनुष्यणी १ तेहथि मनु
ष्य सम्मुर्छिम भेलता असंखेज्जगु
णा २ तेहथि नारकि असंखेज्जगु
णा ३ तेहथि तिर्यंचणी असंखेज्ज
गुणि ४ तेहथि देवता असंखेज्ज
गुणा ५ तेहथि देवी संखेज्जगुणि ६
तेहथि सिद्धभगवत अनतगुणा ७
तेहथि तिर्यंच अनतगुणा ८ इति
बिजो द्वार

१ सइंदियामा जीवना भेद १४ गुण
१२ प्रथम जोग १५ उपयोग १०
केवलज्ञान १ केवलदर्शन २ ए
२ वर्जीने लेशा ६

२ एकेंद्रियमा जीवना भेद ४ सुक्ष्म
एकेंद्रियनो अप्रजासो ने १ प्रजा

सो २ बादर एकेंद्रियनो अप्रजाप्तो ३ ने प्रजाप्तो ४ गुण १ प्रथम जोग ५ उदारिक १ उदारिकनो मिश्र २ वैक्रेय ३ वैक्रेयनो मिश्र ४ कार्मणकायजोग ५ उपयोग ३ वे अज्ञान ने १ अचक्षुदर्शन लेशा ४

५ वेइंद्रिय १ तेइंद्रिय २ चउरिंद्रिय ए ३ मा जीवना भेद २ पोतपोताना अप्रजाप्तो १ ने प्रजाप्तो २ गुण २ पहिला जोग ४ ।२ उदारिकना १ कार्मणनो ने १ व्यवहारवचननो एव ४ उपयोग वेइंद्रिय तेइंद्रियमां ५ । २ ज्ञान २ अज्ञान ने १ अचक्षुदर्शन एवं ५ अने चउरिंद्रियमा ६ ते १ चक्षुदर्शन वध्युं एव ६ लेशा ३

६ पंचेंद्रियमां जीवना भेद ४ संज्ञिनो अप्रजाप्तो १ ने प्रजाप्तो २ असंज्ञीनो अप्रजाप्तो ३ ने प्रजाप्तो ४ एवं ४ गुण १२ प्रथम जोग १५ उपयोग १० केवलज्ञान १

गुण ४ प्रथम जोग ११। ४ मनना
४ वचनना ७ वैक्रेयना ने १ का
र्मणनो एवं ११ उपयोग ए लेश्या ४
८ सिद्धगतिमा जीवना भेद नथि गु
णठाणा नथि जोग नथि उपयो ७
केवलज्ञान १ केवलदर्शन ७ ले
श्या नथि एहनो अल्पबहुत्व सर्व
थि थोका मनुष्यणी १ तेहथि मनु
ष्य सम्मुर्छिम भेलता असंखेज्जगु
णा ७ तेहथि नारकि असखेज्जगु
णा ३ तेहथि तिर्यंचणी असखेज्ज
गुणि ४ तेहथि देवता असखेज्ज
गुणा ५ तेहथि देवी सखेज्जगुणि ६
तेहथि सिद्धभगवत अनतगुणा ७
तेहथि तिर्यंच अनतगुणा ८ इति
बिजो द्वार
१ सइंदियामा जीवना भेद १४ गुण
१७ प्रथम जोग १५ उपयोग १०
केवलज्ञान १ केवलदर्शन ७ ए
७ वर्जीने लेश्या ६
७ एकेंद्रियमा जीवना भेद ४ सुक्ष्म
एकेंद्रियनो अप्रजात्तो ने १ प्रजा

४ गुण १ जोग ३ उप० ३ लेशा ४
६ तेउकाय १ वाउकाय ७ ए ७ मां
जीवना भेद ४ गुण १ जोग तेउमा
३ ने वाउमा ५ ते ७ वैक्रेयना वर्ज्या
उप० ३ लेशा ३
७ त्रशकायमा जीवना भेद १० ते ४
एकेंद्रियना वर्ज्या गुण १४ जोग
१५ उपयोग १२ लेशा ६
८ अकायामा जीवना भेद नथि गुण०
नथि जोग नथि उप २ लेशा नथि
एहनो अल्पबहुत्व सर्वथि थोडा त्र

सकाय १ तेहथि तेउकाया असखे
ज्ज गुणा २ तेहथि पृथवीकाया वि
शेपाहिया ३ तेहथि अपकाया वि
शेपाहिया ४ तेहथि वाउकाया वि
शेपाहिया ५ तेहथि अकाया अ
नंतगुणा ६ तेहथि वनस्पतिकाया
अनंतगुणा ७ तेहथि सकाया वि
शेपाहिया इति चउथो द्वार
१ सजोगीमा जीवना भेद १४ गुण
१३ जोग १५ उप० १२ लेशा ६
२ मनजोगीमा जीवना भेद १ सं

केवलदर्शन २ ए २ वर्ज्यां लेशा ६
७ अणिंदियामा जीवनोभेद १ सङ्गि
नो अजासो गुणठाणा २ तेरमुं ने
चउदमु जोग ७। २ मनना ते सत्य
मन १ व्यवहारमन २ बे वचनना
ते सत्यवचन १ व्यवहारवचन २
एव ४ अने उदारिकनो ५ उदारि
कनो मिश्र ६ कार्मणकायजोग ७
उपयोग २ केवलज्ञान १ केवल
दर्शन २ लेशा १ शुकल एहनो
अल्पबहुत्व सर्वथि थोडा पचेंद्रिय

१ तेहथि चउरिंद्रिय विशेषाहिया
२ तेहथि तेइंद्रिया विशेषाहिया ३
तेहथि बे इंद्रिया विशेषाहिया ४
तेहथि अणिंदिया अनतगुणा ५
तेहथि एकेंद्रिया अनतगुणा ६ ते
हथि सइंद्रिया विशेषाहिया ७ इति
त्रिजो द्वार समाप्त
१ सकायामा जीवनाभेद १४ गुण
१४ जोग १५ उप० १२ लेशा ६
४ पृथवीकाय १ अपकाय २ वनस्प
तिकाय ३ ए ३ मा जीवना भेद

प्रथम जो १५ उप १० केवलज्ञा
न १ केवलदर्शन वर्जिने लेशा ६
३ स्त्रीवेद १ पुरुषवेद २ ए २ मा जी
वना भेद २ संज्ञीना गुण ए जोग
१५ पुरुषवेदमा अने स्त्रीवेदमां
१३ ते २ आहारकना वर्जिने उप
१० लेशा ६
४ नपुसकवेदमा जीवना भेद १४ गु
ण ए जोग १५ उपयोग १० केवल
ज्ञान१ केवलदर्शन वर्जिने लेशा६
५ अवेदीमा जीवनो भेद १ संज्ञीनो

प्रजासो गुण ६ नवमांथि ते १४
मांसुधिजोग ११। ४ मनना ४ व
चनना ने २ उदारिकना १ कार्म
णनो एवं ११ उपयोग ए। २ अ
ज्ञान वर्जिने लेशा १ शुकल ए
दनो अल्पबहुत्व सर्वथि थोमा पु
रुषवेदी १ तेहथि स्त्रीवेदी संखेज्ञ
गुणा २ तेहथि अवेदी अनंतगुणा
३ तेहथि नपुंसकवेदी अनंतगुणा
४ तेहथि सवेदी विशेषाहिया ५
इति ७ोघार

ज्ञीनो प्रजास्तो गुण १३ जोग १४ एक कार्मणनो वर्जिने उपयोग १२ लेशा ६

३ वचनजोगीमा जीवना भेद ५ बेइन्द्रिय १ तेइन्द्रिय २ चौरिंद्रिय ३ असज्ञीपचेंद्रिय ४ संज्ञीपंचेंद्रिय ५ ए ५ ना प्रजास्ता गुण १३ जोग १४ कार्मण वर्जिने उप० १२ लेशा ६

४ कायजोगीमा जीवना भेद १४ गुण १३ जोग १५ उप०१२ लेशा ६

५ अजोगीमां जीवनो भेद १ सज्ञीनो प्रजास्तो गुणठाणु १ चउदमु जोग नहि उपयोग २ केवल ज्ञान ने केवल दर्शन लेशा नथि एहनो अल्पबहुत्व सर्वथि थोडा मनजोगी १ तेहथि वचनजोगी असंखेज्जगुणा २ तेहथि अजोगी अनंत गुणा ३ तेहथि कायजोगी अनत गुणा ४ तेहथि सजोगी विशेषाहिया ५ इति पाचमो द्वार

१ सवेदीमा जीवना भेद १४ गुण ए

प्रथम जो १५ उप १० केवलज्ञा
न १ केवलदर्शन वर्जिने लेशा ६
३ स्त्रीवेद १ पुरुषवेद २ ए २ मा जी
वना भेद २ सज्ञीना गुण ए जोग
१५ पुरुषवेदमां अने स्त्रीवेदमां
१३ ते २ आहारकना वर्जिने उप
१० लेशा ६
४ नपुसकवेदमा जीवना भेद १४ गु
ण ए जोग १५ उपयोग १० केवल
ज्ञान १ केवलदर्शन वर्जिने लेशा ६
५ अवेदीमा जीवनो भेद १ सज्ञीनो
प्रजासो गुण ६ नवमाथि ते १४
मासुधिजोग ११। ४ मनना ४ व
चनना ने २ उदारिकना १ कार्म
णनो एव ११ उपयोग ए। ३ अ
ज्ञान वर्जिने लेशा १ शुकल ए
हनो अल्पबहुत्व सर्वथि थोमा पु
रुषवेदी १ तेहथि स्त्रीवेदी संखेज्ञ
गुणा २ तेहथि अवेदी अनंतगुणा
३ तेहथि नपुंसकवेदी अनंतगुणा
४ तेहथि सवेदी विशेषाहिया ५
इति बठोद्वार

ज्ञीनो अजाणो गुण १३ जोग १४ एक कार्मणनो वर्जिने उपयोग १२ लेश्या ६

३ वचनजोगीमा जीवना भेद ५ बेइन्द्रिय १ तेइन्द्रिय २ चउरिंद्रिय ३ असंज्ञीपचेन्द्रिय ४ संज्ञीपंचेन्द्रिय ५ ए ५ ना अजाणा गुण १३ जोग १४ कार्मण वर्जिने उप० १२ लेश्या ६

४ कायजोगीमा जीवना भेद १४ गुण १३ जोग १५ उप० १२ लेश्या ६

५ अजोगीमा जीवनो भेद १ संज्ञीनो अजाणो गुणठाणुं १ चउदसु जोग नहि उपयोग २ केवल ज्ञान ने केवल दर्शन लेश्या नथि एहनो अल्पबहुत्व सर्वथि थोडा मनजोगी १ तेहथि वचनजोगी असंखेज्जगुणा २ तेहथि अजोगी अनंतगुणा ३ तेहथि कायजोगी अनंतगुणा ४ तेहथि सजोगी विशेषाहिया ५ इति पाचमो द्वार

१ सवेदीमां जीवना भेद १४ गुण ए

१ सलेशीमा जीवना भेद १४ गुण १३ जोग १५ उप १२ लेशा ६

४ कृष्ण १ निल २ कापुत ३ ए ३ लेशीमे जीवना भेद १४ गुणठाणा ६ प्रथम जोग १५ उपयोग १० वे केवलना वर्ज्या लेशा पोत पोतानि

५ तेजुलेशीमे जीवना भेद ३ सञ्ज्ञिनो अप्रजाप्तो १ प्रजाप्तो २ बादर एकेंद्रियनो अप्रजाप्तो ३ गुण ७ प्रथम जोग १५ उपयोग १० लेशा १ तेजु

६ पद्मलेशीमा जीवना भेद २ संज्ञिना गुण ७ प्रथम जोग १५ उपयोग १० लेशा १ पदम

७ शुकललेशीमा जीवना भेद २ संज्ञिना गुण १३ प्रथम जोग १३ उपयोग १२ लेशा १ शुकल

८ अलेशीमा जीवनो भेद १ सज्ञिनो प्रजाप्तो गुण १ चउदमुं जोग नथि उपयोग २ केवल ज्ञान १ ने केवलदर्शन २ लेशा नथि

एहनो अल्पबहुत्व सर्वथि थोडा

१ सकपायीमा जीवना भेद १४ गुण
१० प्रथम जोग १५ उपयोग १०
केवलज्ञान १ केवलदर्शन २ व
र्जिने लेशा ६
४ क्रोध १ मान २ माया ३ ए ३ मा
जीवना भेद १४ गुण ए जोग १५
उपयोग १० लेशा ६
५ लोभकपायीमा जीवना भेद १४
गुणठाणा १० पहिला जोग १५
उपयोग १० लेशा ६
६ अकपायीमा जीवनो भेद १ संज्ञि

नो प्रजासो गुण ४ उपरला जोग
११।४ मनना ४ वचनना २ उदारि
कना १ कार्मणनो एव ११ उपयोग
५ ज्ञान ४ दर्शन एव ए लेशा ६ ए
हनो अल्पबहुत्व सर्वथि थोमा अ
कषायी१ तेहथि मानकषायी अन
तगुणा २ तेहथि कोह कपायी विशे
पाहिया ३ तेहथि मायाकपायी वि
शेपाहिया ४ तेहथि लोभकषायी
विशेपाहिया ५ तेहथि सकषायी
विशेपाहिया ६ इति सातमो द्वार

१ सलेशीमा जीवना भेद १४ गुण १३ जोग १५ उप १२ लेशा ६

४ कृष्ण १ निल २ कापुत ३ ए ३ लेशीमे जीवना भेद १४ गुणठाणा ६ प्रथम जोग १५ उपयोग १० वे केवलना वर्ज्या लेशा पोत पोतानि

५ तेजुलेशीमे जीवना भेद ३ सज्ञि नो अप्रजाप्तो १ प्रजाप्तो २ बा दर एकेन्द्रियनो अप्रजाप्तो ३ गुण ७ प्रथम जोग १५ उपयोग १० लेशा १ तेजु

६ पद्मलेशीमा जीवना भेद २ साज्ञ ना गुण ७ प्रथम जोग १५ उपयोग १० लेशा १ पदम

७ शुकललेशीमा जीवना भेद २ सं ज्ञिना गुण १३ प्रथम जोग १३ उपयोग १२ लेशा १ शुकल

८ अलेशीमा जीवनो भेद १ सज्ञिनो प्रजाप्तो गुण १ चउदमु जोग नथि उपयोग २ केवल ज्ञान १ ने केवलदर्शन २ लेशा नथि

ए[?]नो अलपबहुत्व सर्वथि थोमा

१ सकषायीमां जीवना भेद १४ गुण
१० प्रथम जोग १५ उपयोग १०
केवलज्ञान १ केवलदर्शन २ व
र्जिने लेशा ६

४ क्रोध १ मान २ माया ३ ए ३ मा
जीवना भेद १४ गुण ए जोग १५
उपयोग १० लेशा ६

५ लोभकषायीमा जीवना भेद १४
गुणठाणा १० पहिला जोग १५
उपयोग १० लेशा ६

६ अकषायीमा जीवनो भेद १ सञ्ज्ञि
नो प्रजाप्तो गुण ४ उपरला जोग
११।४ मनना ४ वचनना २ उदारि
कना १ कार्मणनो एव ११ उपयोग
५ ज्ञान ४ दर्शन एव ए लेशा ६ ए
हनो अल्पबहुत्व सर्वथि थोडा अ
कषायी १ तेहथि मानकषायी अनं
तगुणा २ तेहथि क्रोध कषायी विशे
षाहिया ३ तेहथि मायाकषायी वि
शेषाहिया ४ तेहथि लोभकषायी
विशेषाहिया ५ तेहथि सकषायी
विशेषाहिया ६ इति सातमो बार

१ सलेशीमा जीवना ज्ञेद १४ गुण १३ जोग १५ उप १२ लेशा ६

४ कृष्ण १ निल २ कापुत ३ ए ३ लेशीमे जीवना ज्ञेद १४ गुणठाणा ६ प्रथम जोग १५ उपयोग १० वे केवलना वर्ज्या लेशा पोत पोतानि

५ तेजुलेशीमे जीवना ज्ञेद ३ सज्ञि नो अप्रजाप्तो १ प्रजाप्तो २ बा दर एकेन्द्रियनो अप्रजाप्तो ३ गुण ७ प्रथम जोग १५ उपयोग १० लेशा १ तेजु

६ पद्मलेशीमा जीवना ज्ञेद २ संज्ञि ना गुण ७ प्रथम जोग १५ उपयोग १० लेशा १ पदम

७ शुकललेशीमा जीवना ज्ञेद २ सज्ञिना गुण १३ प्रथम जोग १३ उपयोग १२ लेशा १ शुकल

८ अलेशीमा जीवनो ज्ञेद १ सज्ञिनो प्रजाप्तो गुण १ चउदमु जोग नथि उपयोग २ केवल ज्ञान १ ने केवलदर्शन २ लेशा नथि

एहनो अल्पबहुत्व सर्वथि थोडा

१ सकपायीमा जीवना नेद १४ गुण
१० प्रथम जोग १५ उपयोग १०
केवलज्ञान १ केवलदर्शन २ व
र्जिने लेशा ६
४ क्रोध १ मान २ माया ३ ए ३ मां
जीवना नेद १४ गुण ए जोग १५
उपयोग १० लेशा ६
५ लोनकपायीमा जीवना नेद १४
गुणठाणा १० पहिला जोग १५
उपयोग १० लेशा ६
६ अकपायीमा जीवनो नेद १ सञ्ज्ञि

नो प्रजाप्तो गुण ४ उपरला जोग
११।४ मनना ४ वचनना २ उदारि
कना १ कार्मणनो एवं ११ उपयोग
५ ज्ञान ४ दर्शन एव ए लेशा ६ ए
हनो अल्पबहुत्व सर्वथि थोमा अ
कपायी १ तेहथि मानकसायी अनं
तगुणा २ तेहथि कोह कपायी विशे
पाहिया ३ तेहथि मायाकपायी वि
शेपाहिया ४ तेहथि लोनकपायी
विशेपाहिया ५ तेहथि सकषायी
विशेपाहिया ६ इति सातमो द्वार

११ मा सुधि जोग १५ उपयोग ७ ४ ज्ञान ३ दर्शन लेशा ६

५ क्षयोपशम ने वेदकसम्यक्त्वदृष्टिमां जीवना भेद २ सञ्ज्ञीना गुण क्षयोपशम सम्यकदृष्टिमा ४ थी नवमासुधि अने वेदकमा ४ थि सातमासुधि जोग १५ उप ७ लेशा ६

६ क्षायक सम्य० जीवना भेद २ संज्ञीना गुण ११ चोथाथि ते १४ मासुधि जोग १५ उपयोग ए ॥ ३ अज्ञान वर्जिने लेशा ६

७ मिथ्याल दृष्टिमां जीवना भेद १४ गुण १ प्रथमजोग १३ आहारकना २ वर्जिने उपयोग ६। ३ अज्ञानदर्श लेशा ६

८ समामिथ्यात्व दृष्टिमां जीवनो भेद १ सञ्ज्ञिनो प्रजाप्तो गुण १ त्रिजुं जोग १०। ४ मनना ४ वचनना १ उदारिकनो १ कार्मणनो एव १० उप ६ लेशा ६

एहनो अल्पबहुत्व सर्वेथि थोमा सास्वादान समकिति १ तेहथि

शुकल लेशी १ तेदथि पदमलेशी
सखेज्जगुणा २ तेदथि तेजुलेशी
सखेज्जगुणा ३ तेदथि अलेशी अ
नंतगुणा ४ तेदथि कापुतलेशी अ
नतगुणा ५ तेदथि निललेशी वि
शेपादिया ६ तेदथि कृष्णलेशी वि
शेपादिया ७ तेदथि सलेशी विशे
पादिया ८ इति ८ मो द्वार
१ समुचय सम्यत्कदृष्टिमा जीवना
भेद ६ बे इंद्रिय १ तेइंद्रिय २ च
उरिंद्रिय ३ असज्ञीपचेंद्रिय ४ ए
४ ना अप्रजाप्ता अने सज्ञीपंचेंद्रि
यनो अप्रजाप्तो ने प्रजाप्तो एवं
६ गुण १२ पदिलु त्रिजु वरजीने
जोग १५ उपयोग ए॥३ अज्ञान
वर्जिने लेशा ६
२ सास्वादान सम्यत्कदृष्टिमा जीव
ना भेद ६ गुण बिजु जोग १३ आ
हारकना २ वर्जिने उपयोग ६॥३
ज्ञान ३ दर्शन लेशा ६
३ उपशम सम्यत्कदृष्टिमां जीवना
भेद २ सज्ञीना गुण ८ चोथाथि

११ मा सुधि जोग १५ उपयोग ७
४ ज्ञान ३ दर्शन लेशा ६
५ क्षयोपशम ने वेदकसम्यक्त्वदृष्टिमां
जीवना भेद २ सज्ञीना गुण क्ष
योपशम सम्यकदृष्टिमां ४ थी न
वमांसुधि अने वेदकमां ४ थि सा
तमासुधि जोग १५ उप ७ लेशा ६
६ क्षायक सम्य० जीवना भेद २ स
ज्ञीना गुण ११ चोथाथि ते १४
मांसुधि जोग १५ उपयोग ए ॥ ३
अज्ञान वर्जिने लेशा ६

७ मिथ्यात्व दृष्टिमां जीवना भेद १४
गुण १ प्रथमजोग १३ आहारक
ना २ वर्जिने उपयोग ६। ३ अज्ञा
नदर्श लेशा ६
८ समामिथ्यात्व दृष्टिमा जीवनो भे
द १ सज्ञिनो प्रजाप्तो गुण १ त्रि
जुं जोग १०। ४ मनना ४ वचनना
१ उदारिकनो १ कार्मणनो एवं
१० उप ६ लेशा ६
एहनो अल्पबहुत्व सर्वथि थोडा
सास्वादान समकिति १ तेहथि

शुकल लेशी १ तेहथि पदमलेशी सखेज्जगुणा २ तेहथि तेजुलेशी सखेज्जगुणा ३ तेहथि अलेशी अनतगुणा ४ तेहथि कापुतलेशी अनतगुणा ५ तेहथि निललेशी विशेपाहिया ६ तेहथि कृष्णलेशी विशेपाहिया ७ तेहथि सलेशी विशेपाहिया ८ इति ८ मो द्वार

१ समुचय सम्यक्त्वदृष्टिमा जीवना भेद ६ बे इन्द्रिय १ तेइन्द्रिय २ चउरिंद्रिय ३ असज्ञीपचेन्द्रिय ४ ए ४ ना अप्रजाप्ता अने सज्ञीपचेंद्रियनो अप्रजाप्तो ने प्रजाप्तो एव ६ गुण १२ पहिलु त्रिजु वरजीने जोग १५ उपयोग ए॥ ३ अज्ञान वर्जिने लेशा ६

२ सास्वादान सम्यक्त्वदृष्टिमा जीवना भेद ६ गुण बिजुं जोग १३ आहारकना २ वर्जिने उपयोग ६॥३ ज्ञान ३ दर्शन लेशा ६

३ उपशम सम्यक्त्वदृष्टिमां जीवना भेद २ सज्ञीना गुण ८ चोथाथि

११ मा सुधि जोग १५ उपयोग ७ ४ ज्ञान ३ दर्शन लेशा ६

५ क्षयोपशम ने वेदकसम्यक्त्वदृष्टिमा जीवना भेद २ सज्ञीना गुण क्षयोपशम सम्यकदृष्टिमा ४ थी नवमासुधि अने वेदकमा ४ थि सातमासुधि जोग १५ उप ७ लेशा ६

६ क्षायक सम्य० जीवना भेद २ संज्ञीना गुण ११ चोथाथि ते १४ मासुधि जोग १५ उपयोग ए॥ ३ अज्ञान वर्जिने लेशा ६

७ मिथ्यात्व दृष्टिमा जीवना भेद १४ गुण १ प्रथमजोग १३ आहारकना २ वर्जिने उपयोग ६। ३ अज्ञानदर्श लेशा ६

८ समामिथ्यात्व दृष्टिमां जीवनो भेद १ सज्ञिनो प्रजासो गुण १ त्रिजुं जोग १०। ४ मनना ४ वचनना १ उदारिकनो १ कार्मणनो एवं १० उप ६ लेशा ६

एहनो अल्पबहुत्व सर्वेथि थोडा सास्वादान समकिति १ तेहथि

शुकल लेशी १ तेहथि पदमलेशी सखेजगुणा २ तेहथि तेजुलेशी सखेजगुणा ३ तेहथि अलेशी अ नतगुणा ४ तेहथि कापुतलेशी अ नतगुणा ५ तेहथि निललेशी वि शेपाहिया ६ तेहथि कृष्णलेशी वि शेपाहिया ७ तेहथि सलेशी विशे पाहिया ८ इति ८ मो द्वार

१ समुचय सम्यक्त्वदृष्टिमा जीवना भेद ६ बे इन्डिय १ तेइन्डिय २ च उरिंडिय ३ असज्ञीपचेंन्डिय ४ ए

४ ना अप्रजाप्ता अने सज्ञीपचेंन्डि यनो अप्रजाप्तो ने प्रजाप्तो एव ६ गुण १२ पहिलु त्रिजुं वरजीने जोग १५ उपयोग ए॥ ३ अज्ञान वर्जिने लेशा ६

२ सास्वादान सम्यक्त्वदृष्टिमा जीव ना भेद ६ गुण बिजु जोग १३ आ हारकना २ वर्जिने उपयोग ६॥३ ज्ञान ३ दर्शन लेशा ६

३ उपशम सम्यक्त्वदृष्टिमा जीवना भेद २ संज्ञीना गुण ८ चोथाथि

सज्ञीना गुण १० जोग १५ उप
योग ७ लेशा ६

५ मनपर्यवज्ञानीमा जीवनो भेद १
सज्ञीनो प्रजात्तो गुण ७ छट्ठाथि
वारमासुधि जोग १४ कार्मणनो
वर्जिने उप ७ लेशा ६

६ केवलज्ञानीमा जीवनो भेद १ स
ज्ञिनो प्रजात्तो गुण २ तेरसुं ने
१४ मु जोग ७ उपयोग २ लेशा
१ परमशुकल

७ अज्ञानीमा जीवना भेद१४गुण २
पहिलु ने त्रिजु जोग १३ आ
हारकना २ वर्जिने उप ६। ३ अ
ज्ञान ३ दर्शन लेशा ६

ए मतिश्रुत अज्ञानीमा जीवना भेद
१४ गुण २ पहिलु ने त्रिजुं जोग
१३ उपयोग ६ लेशा ६

१० विभंग ज्ञानीमा जीवना भेद
२ सज्ञीना गुण २ पहिलुं ने त्रिजुं
जोग १३ उप ६ लेशा ६

एहनो अल्प बहुत्व सर्वथि थोमा
मनपर्यवज्ञानी १ तेहथि अवधि

उपसम समकिति सखेजगुणा २ तेहथि मिश्रद्दष्टि सखेज्जगुणा ३ तेहथि त्तयोपशम समकिति असखेज्जगुणा ४ तेहथि वेदक समकिति सखेज्जगुणा ५ तेहथि त्तायकसमकिति अनतगुणा ६ तेहथि समुचय समकिति विशेषाहिया ७ तेहथि मिथ्यात्व द्दष्टि अनतगुणा इति ए मो द्वार

१ समुचयज्ञानिमा जीवना भेद ६ वेइन्डिय १ तेइन्डिय २ चउरिंडिय ३ असंज्ञीपचेंन्डिय ४ ए ४ नाअप्रजाप्ता ने सज्ञीनो अप्रजाप्तो ने प्रजाप्तो एव ६ गुण १२ पहिलु त्रिज्जुं वर्जिने जोग १५ उपयोग ए ५ ज्ञान ने ४ दर्शन लेशा ६

२ मतिज्ञानी १ श्रुतज्ञानीमां २ जीवना भेद ६ गुण १० पहिलुं त्रिज्जु तेरमु चउदमुं वर्जिने जोग १५ उप ७ लेशा ६

४ अवधिज्ञानीमा जीवना भेद २

सङ्गीना गुण १० जोग १५ उप
योग ७ लेशा ६

५ मनपर्यवज्ञानीमा जीवनो भेद १
संज्ञीनो प्रजाप्तो गुण ७ छठाथि
वारमासुधि जोग १४ कार्मणनो
वर्जिने उप ७ लेशा ६

६ केवलज्ञानीमा जीवनो भेद १ स
ज्ञिनो प्रजाप्तो गुण २ तेरमुं ने
१४ मु जोग ७ उपयोग २ लेशा
१ परमशुकल

७ अज्ञानीमा जीवना भेद १४ गुण २
पहिलुं ने त्रिजु जोग १३ आ
हारकना २ वर्जिने उप ६। ३ अ
ज्ञान ३ दर्शन लेशा ६

८ मतिश्रुत अज्ञानीमा जीवना भेद
१४ गुण २ पहिलु ने त्रिजुं जोग
१३ उपयोग ६ लेशा ६

१० विभंग ज्ञानीमा जीवना भेद
२ संज्ञीना गुण २ पहिलुं ने त्रिजुं
जोग १३ उप ६ लेशा ६

एहनो अल्प बहुत्व सर्वथि थोमा
मनपर्यवज्ञानी १ तेहथि अवधि

उपसम समकिति सखेजगुणा २ तेहथि मिश्रदृष्टि सखेजगुणा ३ तेहथि क्षयोपशम समकिति अ सखेजगुणा ४ तेहथि वेदक समकिति सखेजगुणा ५ तेहथि क्षायकसमकिति अनंतगुणा ६ तेहथि समुचय समकिति विशेषाहिया ७ तेहथि मिथ्यात्व दृष्टि अनंतगुणा इति ए मो द्वार

१ समुचयज्ञानिमा जीवना भेद ६ बेइन्द्रिय १ तेइन्द्रिय २ चउरिंद्रिय ३ असंज्ञीपचेंद्रिय ४ ए ४ नाअप्रजाप्ता ने सज्ञीनो अप्रजाप्तो ने प्रजाप्तो एव ६ गुण १२ पहिलु त्रिजु वर्जिने जोग १५ उपयोग ए ५ ज्ञान ने ४ दर्शन लेशा ६

३ मतिज्ञानी १ श्रुतज्ञानीमां २ जीवना भेद ६ गुण १० पहिलुं त्रिजुं तेरमुं चउदमु वर्जिने जोग १५ उप ७ लेशा ६

४ अवधिज्ञानीमा जीवना भेद २

सज्ञीना गुण १० जोग १५ उप
योग ७ लेशा ६

५ मनपर्यवज्ञानीमा जीवनो भेद १
सज्ञीनो प्रजाप्तो गुण ७ छठाथि
वारमासुधि जोग १४ कार्मणनो
वर्जिने उप ७ लेशा ६

६ केवलज्ञानीमा जीवनो भेद १ सं
ज्ञिनो प्रजाप्तो गुण २ तेरमुं ने
१४ मु जोग ७ उपयोग २ लेशा
१ परमशुकल

७ अज्ञानीमा जीवना भेद १४ गुण २
पहिलु ने त्रिजु जोग १३ आ
हारकना २ वर्जिने उप ६। ३ अ
ज्ञान ३ दर्शन लेशा ६

८ मतिश्रुत अज्ञानीमा जीवना भेद
१४ गुण २ पहिलु ने त्रिजुं जोग
१३ उपयोग ६ लेशा ६

१० विभंग ज्ञानीमा जीवना भेद
२ संज्ञीना गुण २ पहिलु ने त्रिजुं
जोग १३ उप ६ लेशा ६

एहनो अल्प बहुत्व सर्वथि थोडा
मनपर्यवज्ञानी १ तेहथि अवधि

ज्ञानी असंख्यात गुणा २ तेहथि
मतिज्ञानी ने श्रुतज्ञानी माहोमा
हि तुल्यने विशेषाहिया ४ तेहथि
विभंग ज्ञानी असंख्यात गुणा
५ तेहथि केवलज्ञानी अनंतगुणा
६ तेहथि ज्ञानीविशेषाहिया ७
तेहथि मतिश्रुत अज्ञानी माहोमा
हि तुल्य ने अनंतगुणा ९ तेहथि
अज्ञानी विशेषाहि या १० इति
१० मो द्वार

१ चक्षुदर्शनीमा जीवना भेद ६ चउ
रिंद्रिय १ असंज्ञि पचेंद्रिय २ स
ज्ञीपचेंद्रिय ३ ए ३ ना अप्रजाप्ता
ने प्रजाप्ता गुण १२ प्रथम जोग
१४ कार्मणनो वर्जिने उप १० के
वलना २ वर्ज्या लेशा ६

२ अचक्षुदर्शनीमा जीवना भेद १४
गुण १२ जोग १५ उप १० लेशा ६

३ अवधिदर्शनीमा जीवना भेद २
गुण १२ जोग १५ उप १० लेशा ६

४ केवलदर्शनीमा जीवनो भेद १ गुण
२ तेरमुंचउदमुं जोग ७ उप २ लेशा १

एहनो अलपवहुत्व सर्वथि थोमा अवधिदर्शनी १ तेहथि चक्षुदर्शनी असस्यातगुणा २ तेहथि केवलदर्शनी अनतगुणा ३ तेहथि अचक्षुदर्शनीय अनतगुणा ४ इति

११ मो द्वार

१ सजतिमा जीवनो भेद १ संज्ञीनो प्रजाप्तो गुण ए बठाथि ते १४ मा सुधि जोग १५ उप ए। ३ अज्ञानवर्जिने लेशा ६

३ सामायक १ बेदोपस्थापनीय २ ए २ चारित्रमा जीवनो भेद १ सज्ञिनो प्रजाप्तो गुण ४ बठाथि ए मा सुधि जोग १४ कार्मणनो वर्जिने उपयो ७। ४ ज्ञानने ३ दर्शन एव ७ लेशा ६

४ परिहारविशुद्धचारित्रमां जीवनो भेद १ गुण २ बठु ने सातमुं जोग ए। ४ मनना ४ वचनना ने १ उदारिकनो एवं ए उप० ७ लेशा ३ उपलि

५ सुक्ष्मसंपरायचारित्रमा जीवनो

ज्ञानी असख्यात गुणा ७ तेहथि मतिज्ञानी ने श्रुतज्ञानी माहोमां हि तुल्यने विशेषाहिया ४ तेहथि विभग ज्ञानी असख्यात गुणा ५ तेहथि केवलज्ञानी अनतगुणा ६ तेहथि ज्ञानीविशेपाहिया ७ तेहथि मतिश्रुत अज्ञानी माहोमा हि तुल्य ने अनंतगुणा ए तेहथि अज्ञानी विशेपाहि या १० इति १० मो द्वार

१ चक्षुदर्शनीमा जीवना भेद ६ चउरिंद्रिय १ असज्ञि पचेंद्रिय ७ सज्ञीपचेंद्रिय ३ ए ३ ना अप्रजाप्ता ने प्रजाप्ता गुण १७ प्रथम जोग १४ कार्मणनो वर्जिने उप १० केवलना ७ वर्ज्या लेशा ६

७ अचक्षुदर्शनीमा जीवना भेद १४ गुण १७ जोग १५ उप १० लेशा ६

३ अवधिदर्शनीमा जीवना भेद ७ गुण १७ जोग १५ उप १० लेशा ६

४ केवलदर्शनीमा जीवनो भेद १ गुण ७ तेरमु चउदमु जोग ७ उप ७ लेशा १

त्रिया सखेज्जगुणा ३ तेहथि छेदो
परथापनीयचारित्रिया सखेज्जगु
णा ४ तेहथि सामायकचारित्रिया
सखेज्जगुणा ५ तेहथि संजति वि
शेषाहिया ६ तेहथि सजतासंजति
असंख्यातगुणा ७ तेहथि ॥ नो स
जति॥ नो असजति॥ नो संजतासं
जति अनतगुणा ८ तेहथि असंज
ति अनतगुणा ए इति १२ मो द्वार
१ सागारोवउत्तामा जीवना भेद १४
गुण १४ जोग १५ उप १२ लेशा ६

२ अणागारोवउत्तामां जीवना भेद
१४ गुण १३ दशमुं वर्जिने जोग
१५ उप १२ लेशा ६
एहनो अल्पबहुत्व सर्वथि थोडा
अणागारोवउत्ता १ तेहथि सागारो
वउत्ता संखेज्जगुणा २ इति १३ मो
द्वार
१ आहारकमां जीवना भेद १४
गुण १३ पहिलाजोग १४ कार्म
णनो वर्जिने उप १२ लेशा ६
२ अणाहारकमा जीवना भेद ८

भेद १ गुण १ दशमु जोग ए उप योग ७ लेशा १ शुकल

६ यथाख्यातचारित्रमा जीवनो भेद १ गुण ४ उपला जोग ११। ४ मनना ४ वचनना २ उदारिकना ने १ कार्मणनो उप ए। ३ अज्ञान वर्जिने लेशा १

७ सजतासजतिमा जीवनो भेद १ गुण। १ पाचमु जोग १२ आहारकना २ ने १ कार्मणनो वर्जिने उपयोग ६। ३ ज्ञान ने ३ दर्शन लेशा ६

८ असंजतिमाजीवना भेद १४ गुण। ४ प्रथमजोग १३ आहारकना २ वर्जिने उप ए। ३ ज्ञान ३ अज्ञान ३ दर्शन लेशा ६

ए नो सजति॥ नो असजति॥ नो सजता सजतिमां जीवनो भेद० गुण० जोग० नथि ने उप० २ लेशा नथि एहनो अल्पबहुत्व सर्वथि थोमा सुक्ष्मसपरायचारित्रिया १ तेहथि परिहारविशुद्धचारित्रिया संखेज्ञगुणा २ तेहथि यथाख्यातचारि

११ ते मनपर्यवज्ञान नहि
लेशा ६

एहनो अल्पबहुत्व सर्वथि थोमा भासगा १ तेहथि अभासगा अनतगुणा २ इति १५ मो द्वार

१ परीतससारिमा जीवना भेद १४ गुण१४ जोग १५ उप१२ लेशा ६

२ अपरीतससारीमा जीवना भेद १४ गुण १ पहिलु जोग १३ आहारकना २ वर्जिने उप ६ अज्ञान ३ दर्शन ३ लेशा ६

३ नोपरीतनो अपरीतमा जीवना भेद० गुण० जोग० नथि उप २ लेशा नथि एहनो अल्पबहुत्व सर्वथि थोमा परीत १ तेहथि नो परीत नो अपरीत अनंतगुणा २ तेहथि अपरीत अनंतगुणा ३ इति १६ मो द्वार

१ प्रजाप्तामा जीवना भेद ७ गुण १४ जोग १५ उप १२ लेशा६

२ अप्रजाप्तामां जीवना भेद ७ गुण ३ ते पहिलुं बिजुं ने चउथुं जोग

सात अप्रजाप्ता ने १ संज्ञिनो
प्रजाप्तो एव ८ गुण ५ पहिलु
बिज्जु चोथु तेरमुं ने चउदमुं ए ५
जोग १ कार्मणनो उपयोग १० म
नपर्यवज्ञान १ ने चक्षुदर्शन २ ए
२ वर्जिने लेशा ६
एहनो अल्पबहुत्व सर्वथि थोडा
अणाहारक १ तेहथि आहारक
असंखेज्जगुणा २ इति १४ मो द्वार
१ भासगामा जीवना भेद ५ बेइंद्रि
य १ तेइंद्रिय २ चउरिंद्रिय ३ अ
संज्ञीपचेंद्रिय ४ सज्ञीपचेंद्रिय ५
ए ५ ना प्रजाप्ता गुण १३ प्रथम
जोग १४ कार्मणनो वर्जिने उपयो
ग १२ लेशा ६
२ अभासगामा जीवना भेद १० ते
१४ मांथि बेइंद्रिय १ तेइंद्रिय २
चउरिंद्रिय ३ असंज्ञीपचेंद्रिय ४
ए ४ वर्ज्या गुण ५ ते पहिलु १
बिज्जु २ चोथुं ३ तेरमुं ४ चउदमु
५ ए ५ जोग ५ ते २ उदारिकना
७ वैक्रेयना ने १ कार्मणनो उप

११ ते मनपर्यवज्ञान नहि लेशा ६.

एहनो अल्पबहुत्व सर्वथि थोमा ज्ञासगा १ तेहथि अज्ञासगा अनंतगुणा २ इति १५ मोद्वार

१ परीतससारिमां जीवना भेद १४ गुण१४ जोग १५ उप१२ लेशा ६

२ अपरीतससारीमा जीवना भेद १४ गुण १ पहिलुं जोग १३ आहारकना २ वर्जिने उप ६ अज्ञान ३ दर्शन ३ लेशा ६

३ नोपरीतनो अपरीतमां जीवना भेद० गुण० जोग० नथि उप २ लेशा नथि एहनो अल्पबहुत्व सर्व थि थोमा परीत १ तेहथि नो परीत नो अपरीत अनतगुणा २ तेहथि अपरीत अनंतगुणा ३ इति १६ मो द्वार

१ प्रजाप्तामां जीवना भेद ७ गुण १४ जोग १५ उप १२ लेशा६

२ अप्रजाप्तामा जीवना भेद ७ गुण ३ ते पहिलुं बिजुं ने चउथुं जोग

५ ते ७ उदारिकना ७ वैक्रेयना ने १ कार्मणनो उप ए। ३ ज्ञान ३ अज्ञान ३ दर्शन एव ए लेशा ६

३ नो प्रजाप्ता ॥ नो अप्रजाप्तामा जीना भेद० गुण० जोग० नभि उप० ७ लेशा नथि

एहनो अल्पबहुत्व सर्वथि थोमा नो प्रजाप्ता ॥ नो अप्रजाप्ता १ तेह थि अप्रजाप्ता अनतगुणा ७ तेह थि प्रजाप्ता सखेज्जगुणा ३ इति १७ मो द्वार

१ सुक्ष्ममा जीवना भेद ७ सुक्ष्म एकेन्द्रियनो अप्रजाप्तो १ ने प्रजाप्तो ७ गुण १ प्रथम जोग ३ वे उदारिकना ने १ कार्मणनो उप ३ वे अज्ञान १ अचक्षुदर्शन ए ३ लेशा ३

७ बादरमा जीवना भेद १७ ते ७ सुक्ष्मना वर्ज्या गुण १४ जोग १५ उपयोग १७ लेशा ६

३ नोसुक्ष्मनो बादरमा जीवना भेद० गुण० जोग० नथि उप० ७ लेशा

नथि एहनो अलपबहुत्व सर्वथि
थोमानो सुक्ष्मनो वादर १ तेहथि
वादर अनतगुणा २ तेहथि सुक्ष्म०
असखेज्जगुणा ३ इति १७ मो द्वार
१ सज्ञीमा जीवना भेद २ गुण १२
पहिला जोग १५ उप १० केव
लना २ वर्ज्यां लेशा ६
२ असज्ञीमां जीवना भेद १२ ते २
सज्ञीना वर्ज्यां गुण २ प्रथम
जोग ६। २ उदारिकना २ वैक्रेय
ना १ कार्मणनो १ व्यवहार वच
ननो एव ६ उप० ६। २ ज्ञान २
अज्ञान २ दर्शन एव ६ लेशा
४ प्रथम
३ नो सज्ञी॥ नो असंज्ञीमां जीवनो
भेद १ सज्ञीनो प्रजात्तो गुण २
तेरमु चउदमुं जोग ७ उपयोग २
लेशा १ परम शुकल एहनो अ
ल्पबहुत्व सर्वथि थोमा संज्ञी १ ते
हथि नो संज्ञीनो॥ असंज्ञी अनंत
गुणा २ तेहथि असंज्ञी अनंत
गुणा ३ इति १ए मो द्वार

१ नव्यमांहि जीवना नेद १४ गुण १४ जोग १५ उप १२ लेशा ६

२ अनव्यमा जीवना नेद १४ गुण १ प्रथम जोग १३ आहारकना २ वर्जिने उप ६ लेशा ६

३ नो नव्य ॥ नो अनव्यमा जीवना नेद० गुण० जोग० नथि उपयोग २ लेशा नथि

एहनो अल्पबहुत्व सर्वथि थोमा अनव्य १ तेहथि नो नव्यनो अनव्य अनतगुणा २ तेहथि नव्य अनतगुणा ३ इति ३० मो द्वार

१ चरममा जीवना नेद १४ गुण १४ जोग १५ उप १२ लेशा ६

२ अचरममां जीवना नेद १४ गुण १ प्रथमजोग १३ आहारकना २ वर्जिने उप ८ लेशा ६

एहनो अल्पबहुत्व सर्वथि थोमा अचरम १ तेहथि चरम अनतगुणा २ इति ३१ मो द्वार

१ समुच्चयकेवलीमा जीवना नेद २ संज्ञीना गुण ११ उपला जोग

१५ उप ए। ३ अज्ञान वर्जिने
लेशा ६
२ वीतरागिमा जीवनो भेद १ गुण
४ जोग ११ उप० ए लेशा १
३ जुगलियामा जीवना भेद २ सं
ज्ञीना गुण२ पहिलुं ने चउथुं जोग
११ ते ४ मनना ४ वचनना २ उ
दारिकना ने १ कार्मणनो एव ११
उप ६ वे ज्ञान वे अज्ञान वे दर्श
न एव ६ लेशा ४ प्रथम
४ असज्ञीतिर्यंचमा जीवना भेद २

गुण २ प्रथम जोग ४ ते २ उदा
रिकना १ कार्मणनो ने १ व्यव
हार वचननो एव ४ उपयोग ६ ते
२ ज्ञान २ अज्ञान २ दर्शन एव
६ लेशा ३ प्रथम समुर्छिम मनु
ष्यमा जीवनो भेद १ गुण १ पहि
लु जोग ३ ते २ उदारिकना ने १
कार्मणनो एव ३ उपयोग ३ ते बे
अज्ञान ने १ अचक्षुदर्शन एव ३
लेशा ३
एहनो अल्पबहुत्व सर्वथि थोडा

वीतरागी १ तेहथि जुगलीया स
खेज्जगुणा २ तेहथि समुर्छिम मनु
ष्य असखेज्जगुणा ३ तेहथि अस
ज्ञी तिर्यंच असंखेज्जगुणा ४ तेह
थि समुचय केवली अनतगुणा ५

१ उदारिक शरिरमा जीवना भेद
१४ गुण १४ जोग १५ उप १२
लेशा ६

२ वैक्रेयशरिरमा जीवना भेद ४ ते
२ सज्ञीना ने १ असज्ञीतिर्यंचनो
अप्रजाप्तो अने १ बादर वाउकाय
नो प्रजाप्तो अने एवं ४ गुण ७
प्रथमजोग १२ ते २ आहारकना
ने १ कार्मणनो ए ३ वर्ज्या उप०
१० ते २ केवलना वर्ज्या लेशा ६

३ आहारकशरिरमा जीवनो भेद १
सज्ञीनो प्रजाप्तो गुण २ छठ्ठुने सा
तमुं जोग १२ ते २ वैक्रेयना ने १
कार्मणनो ए ३ वर्ज्या उप० ७ ते
४ ज्ञानने ३ दर्शन लेशा ६

५ तेजस कार्मणशरिरमा जीवना भेद

१४ गुण १४ जोग १५ उपयोग
१७ लेशा ६
एहनो अल्पवहुत्व सर्वथि थोभा
आहारक शरिरी १ तेहथि वैक्रेय

शरिरी असख्यातगुणा २ तेहाथ
उदारिक शरिरी असख्यातगुणा
३ तेहथि तेजस कार्मण शरिरी
मांहोमाहि तुल्य ने अनतगुणा ५

इति महोटो वासठियो समाप्त

वीतरागी १ तेहथि जुगलीया स
खेज्जगुणा २ तेहथि समुर्छिम मनु
ष्य असखेज्जगुणा ३ तेहथि अस
ज्ञी तिर्यंच असंखेज्जगुणा ४ तेह
थि समुचय केवली अनतगुणा ५

१ उदारिक शरिरमा जीवना भेद
१४ गुण १४ जोग १५ उप १२
लेशा ६

२ वैक्रेयशरिरमा जीवना भेद ४ ते
२ संज्ञीना ने १ असज्ञीतिर्यंचनो
अप्रजासो अने १ बादर वाउकाय
नो प्रजासो अने एव ४ गुण ७
प्रथमजोग १२ ते २ आहारकना
ने १ कार्मणनो ए ३ वर्ज्या उप०
१० ते २ केवलना वर्ज्या लेशा ६

३ आहारकशरिरमा जीवनो भेद १
सज्ञीनो प्रजासो गुण २ छठ्ठने सा
तमुं जोग १२ ते २ वैक्रेयना ने १
कार्मणनो ए ३ वर्ज्या उप० ७ ते
४ ज्ञानने ३ दर्शन लेशा ६

५ तेजस कार्मणशरिरमा जीवना भेद

२१ चोथा देवलोकना देवता असं०
२२ त्रिजा देवलोकना देवता असं०
२३ बिजी नरकना नारकी असंखे०
२४ समुर्छिम मनुष्य असंखेजगुणा
२५ बीजा देवलोकना देवता असं०
२६ बीजा देवलोकनी देवी संखेज०
२७ पेला देवलोकना देवता संखेज०
२८ पेला देवलोकनी देवी संखेज०
२९ भवनपति देवता असंखेजगुणा
३० भवनपतिनी देवी संखेजगुणी
३१ पेली नरकना नारकी असंखे०

३२ खेचर पुरुष असंखेजगुणा
३३ खेचरनीस्त्रि संखेजगुणी
३४ थलचर पुरुष संखेजगुणा
३५ थलचरनी स्त्रि संखेजगुणी
३६ जलचर पुरुष संखेजगुणा
३७ जलचरनी स्त्रि संखेजगुणी
३८ व्यंतर देवता संखेजगुणा
३९ व्यंतरनी देवी संखेजगुणी
४० जोतिषी देवता संखेजगुणा
४१ जोतिषोनी देवी संखेजगुणी
४२ खेचर नपुंसक संखेजगुणा

अथ श्रीअगाणु वोलनो अलपबहु त्वधारलिस्यते

१ सर्वथी थोमा गर्भज मनुष्य
२ मनुष्यणी संखेजगुणी
३ वादर तेउकाया प्रजाप्ता अस०
४ अनुत्तर विमानना देवता असं०
५ उपली त्रिकना देवता संखेजगुणा
६ मझमत्रिकना देवता सखेजगुणा
७ हेठली त्रिकना देवता सखेजगुणा
८ वारमा देवलोकना देवता सखे०
९ इग्यारमा देवलोकना देवता स०
१० दसमा देवलोकना देवता सखे०
११ नवमा देवलोकना देवता सखे०
१२ सातमी नरकना नारकी असं०
१३ छठी नरकना नारकी असखेज०
१४ आठमा देवलोकना देवता अ०
१५ सातमा देवलोकना देवता अ०
१६ पाचमी नरकना नारकी अस०
१७ छठा देवलोकना देवता असखे०
१८ चोथी नरकना नारकी असंखे०
१९ पाचमा देवलोकना देवता अस०
२० त्रिजी नरकना नारको असखे०

६२ वादर अपकाया अप्रजाप्ता अ०
६३ वादर वाउ अप्रजाप्ता असखे०
६४ सुक्ष्म तेउ अप्रजाप्ता असंखेज०
६५ सुक्ष्म पुढवी अप्रजाप्ता विसे०
६६ सुक्ष्म अप अप्रजाप्ता विसेसा०
६७ सुक्ष्म वाउ अप्रजाप्ता विसेसा०
६८ सुक्ष्म तेउ प्रजाप्ता सखेजगुणा
६९ सुक्ष्म पुढवी प्रजाप्ता विसेसादी०
७० सुक्ष्म अप पर्याप्ता विसेसादीया
७१ सुक्ष्म वाउ पर्याप्ता विसेसादीया
७२ सुक्ष्म निगोदीया अपर्याप्ता अ०

७३ सुक्ष्म निगोदिया प्रजाप्ता संखे०
७४ अभव्य अनतगुणा
७५ पडिवाइ समदिठी अनंतगुणा
७६ सिद्धभगवतजी अनतगुणा
७७ वादर वणसई प्रजाप्ता अनत०
७८ बादर प्रजाप्ता विसेसादीया
७९ बादर वणसइ अपर्याप्ता असं०
८० वादर अप्रजाप्ता विसेसादीया
८१ समुचे बादर विसेसादीया
८२ सुक्ष्म वणसइ अपर्याप्ता असं०
८३ सुक्ष्म अपर्याप्ता विसेसादीया

४३ थलचर नपुसक सखेजगुणा
४४ जलचर नपुसक सखेजगुणा
४५ चउरिंद्रिय प्रजाप्ता सखेजगुणा
४६ पचेंद्रीय प्रजाप्ता विसेसाहीया
४७ वेंद्रीय प्रजाप्ता विसेसाहीया
४८ तेंद्रीय प्रजाप्ता विसेसाहीया
४९ पचेंद्रीय अप्रजाप्ता असंखेजगु०
५० चउरिंद्रीय अप्रजाप्ता विसेसाही
५१ तेंद्रीय अप्रजाप्ता विसेसाहीया
५२ वेंद्रीय अप्रजाप्ता विसेसाहीया

५३ प्रत्येक सरीरी वादर वनस्पति०
प्रजाप्ता असखेजगुणा
५४ बादर निगोदीया प्रजाप्ता अस०
५५ बादर पुढवीकाया प्रजाप्ता अ०
५६ बादर अपकाया प्रजाप्ता अस०
५७ बादर वाउकाया प्रजाप्ता अस०
५८ बादर तेउकाकाया अप्रजाप्ता अ०
५९ बादर प्रत्येक सरीरो वणसई०
अप्रजाप्ता असखेजगुणा
६० बादर निगोदीया अप्रजाप्ता अ०
६१ बादर पुढवी अप्रजाप्ता अस०

था पुस्तक पन्डितराज पूज्यश्री० देवजीस्वामीना शिष्य लाधाजीस्वामि पासे

शुद्ध करावी

श्रावक भगवानदास केवलदासे

मुंबईमां निर्णयसागर छापखानामां छपावी प्रसिद्ध कर्यु

संवत १९४२

किंमत ८ आना

८४ सुक्ष्म वणसई पर्याप्ता सखेज०
८५ सुक्ष्म पर्याप्ता विसेसाहीया
८६ सुक्ष्म समुचे विसेसाहीया
८७ भव्य सिद्धीया विसेसाहीया
८८ निगोदिया जीव विसेसाहीया
८९ वणसइ जीव विसेसाहीया
९० एकेंद्रीया जीव विसेसाहीया
९१ तिर्यंच जीव विसेसाहीया
९२ मिथ्यादृष्टी जीव विसेसाहीया
८३ अविरति जीव विसेसाहीया
९४ सकासाया जीव विसेसाहीया
९५ छउमत्था जीव विसेसाहीया
९६ सजोगी जीव विसेसाहीया
९७ संसारत्था जीव विसेसाहीया
९८ सव्वजीवा विसेसाहीया

॥ इतिश्री अठाणु बोलनो अल्प बहुत्व सपूर्णं ॥

॥ इतिश्री प्रकरणसग्रहनो प्रथम भाग सपूर्ण ॥

१७१

# श्रीप्रकरणसंग्रह प्रथमभाग समाप्त